आर्थिक विकास के सिद्धान्त

एवं

भारत में आर्थिक नियोजन

THEORY OF ECONOMIC GROWTH AND ECONOMIC PLANNING IN INDIA

प्रो० जी० एल० गुप्ता
अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

कॉलेज बुक डिपो, जयपुर

ECONOMICS

1	सामाजिक एवं आर्थिक सर्वेक्षण की प्रविधि	डॉ. डी. पी. आप्टे
2	भारतीय बैंकिंग	डॉ. ए. बी. मिश्रा
3	लोक वित्त	डॉ. डी. एन. गुर्टू
4	माइक्रो इकानामिक थ्योरी	डॉ. डी. एन. गुर्टू
5	मैक्रो इकानामिक थ्योरी	डॉ. डी. एन. गुर्टू
6	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र	डॉ. डी. एन. गुर्टू
7	आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं भारत में आर्थिक नियोजन	प्रो. जी. एल. गुप्ता
8	प्रमुख देशों की बैंकिंग प्रणालियाँ	प्रो. के. बी. सक्सेना
9	सामग्री प्रबन्ध	प्रो. जे. आर. कुम्भट
10	माइक्रो इकनामिक थ्योरी	तैला, शर्मा, गुप्ता
11	आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त	तैला, शर्मा, गुप्ता
12	इंगलैण्ड, रूस एवं जापान का आर्थिक विकास	डॉ. चौपड़ा, डोंगी, शाह, मेहता, माथुर
13	आर्थिक संगठन	डॉ गगवाल, कोचर, शाह
14	कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त	प्रो. के एन. शाह
15	भारत एव विदेशों मे कृषि विकास	प्रो. के. एन. शाह
16	श्रम अधिनियम	डॉ बी एस माथुर एवं प्रो जे आर. कुम्भट
17	उत्पादन प्रबन्ध	प्रो जे. आर कुम्भट
18	व्यावसायिक नीति एवं सामाजिक उत्तरदायित्व	डॉ आर के. बजाज
19	मजदूरी नीति एवं सामाजिक सुरक्षा	प्रो सी. एम चौधरी
20	औद्योगिक सम्बन्ध	प्रो सी एम. चौधरी
21	सांख्यिकी	प्रो पी आर. गगर
22	सरकार, समाज और व्यवसाय	डॉ आर. के. बजाज एवं प्रो. बी एल. पोरवाल
23	भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याएँ	डॉ टी एन चतुर्वेदी, डॉ. कमला गगवाल आदि
24	प्रबन्ध के सिद्धान्त	प्रो. सी. एम चौधरी

Published by College Book Depot, Jaipur
Printed at Hema Printers Jaipur.

प्राक्कथन

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त जिस युग का शुभारम्भ इस विश्व में हुआ उसकी दो मुख्य उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं। एक ओर तो राजनीतिक परतन्त्रता को समाप्त करने का बीडा उठाया गया और दूसरी ओर आर्थिक विकास की सभावनाओ पर अधिकाधिक प्रकाश डाल कर पिछडे हुए राष्ट्रो का निराशायुक्त निद्रा से जगाने के अनेक प्रयास किए गए। सम्भवत पहली उपलब्धि में सफलता की अधिक झलक देखी जा सकती है क्योंकि भारत तथा विश्व के अनेक उपनिवेशो ने इस युग के अन्तर्गत दासत्व की बेडियो को काट कर स्वतन्त्रता प्राप्त की। साम्राज्यवादी राष्ट्रो ५ भी प्राय इस बात का आभास हो गया कि किसी दूसरे राष्ट्र की भूमि पर शासन करना न तो व्यावहारिक ही है और न लाभदायक।

किन्तु आर्थिक क्षेत्र का इतिहास कुछ भिन्न प्रतीत होता है। यद्यपि विकास के सिद्धान्त को आगे बढ़ाने में विश्व के प्रमुख अर्थशास्त्रियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है (जिसकी पुष्टि का प्रतीक 1969 से अब तक के अनेक नोबेल प्राइज़ विजेताओं को माना जा सकता है), चिन्ता का विषय यह है कि विकसित राष्ट्रो को आर्थिक क्षेत्र मे उपनिवेशवादी नीति का अन्त दिखाई नही देता। ऐसा लगता है कि राजनीतिक उपनिवेशवाद की बहुत कुछ प्रतिभा का आर्थिक नीतियों मे समावेश हो गया है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक उपनिवेशवाद ने भयकर रूप धारण कर लिया है। यह स्पष्ट है कि इसी प्रवृत्ति का सामना करने के लिए 1973 में खनिज तेल का उत्पादन एव निर्यात करने वाले देशों (O P E C) ने मूल्य वृद्धि की कटु नीति अपनाई, और उसी के परिणामस्वरूप 1974 में अन्तर्राष्ट्रीय सघ की महा सभा द्वारा नए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रारूप (New International Economic Order) स्थापित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। किन्तु जब मई 1976 में अन्तर्राष्ट्रीय सघ के व्यापार एव विकास सम्मेलन (UNCTAD) में इस प्रारूप को व्यवहार में लाने का प्रश्न उठा तो कुछ शक्तिशाली राष्ट्रो के विरोध के कारण केवल यह सहमति प्रकट करके सम्मेलन भग हो गया कि कठिन समस्याओं पर फिर कभी विचार किया जाए।

इस पृष्ठभूमि में श्री जी एल गुप्ता की पुस्तक 'आर्थिक विकास के सिद्धान्त एव भारत मे आर्थिक नियोजन' विशेष महत्त्व रखती हैं । इस पुस्तक मे आर्थिक सिद्धान्त' का गहन विश्लेषण किया हैं और दूसरी ओर भारत मे आर्थिक नियोजन का विद्वतापूर्ण दृश्य प्रस्तुत किया हैं। नवीनतम आँकडे उपलब्ध करके सामयिक विषयों पर—जैसे बेरोजगारी, आय की असमानता तथा पांचवीं पचवर्षीय योजना (1974-79) की प्रगति पर रोचक टिप्पणी प्रस्तुत की गई हैं । राजस्थान में आर्थिक नियोजन का विशेष रूप से सर्वेक्षण किया गया हैं ।

प्रकाशक का प्रयास प्रशसनीय हैं । मुझे आशा हैं कि यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों के वाणिज्य तथा अर्थशास्त्र के छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ० ओमप्रकाश
वरिष्ठ प्रोफेसर

आर्थिक प्रशासन एव वित्तीय प्रबध विभाग,
स्कूल ऑफ कॉमर्स, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

नये संस्करण के दो शब्द

'आर्थिक विकास के सिद्धान्त एव भारत मे आर्थिक नियोजन' अपने संशोधित संस्करण के रूप में आपके सामने है। पूर्व संस्करण का जो स्वागत हुआ और विभिन्न क्षेत्रों से जो रचनात्मक सुझाव प्राप्त हुए, उन्हे सामने रखकर पुस्तक मे कितने ही परिवर्तन और संशोधन किए गए है। इस संस्करण मे अनेक अध्याय तो सर्वथा नए जोड़े गए है और उनमे से कुछ ऐसे है जिन पर विषय-सामग्री हिन्दी मे प्रकाशित पुस्तकों मे प्राय उपलब्ध नही है। उदाहरणार्थ, विकास के दौरान उत्पादन, उपभोग, रोजगार, विनियोग और व्यापार मे संरचनात्मक परिवर्तन, विकास-दर के विभिन्न तत्त्वों के योगदान के सन्दर्भ मे डेनीसन का अध्ययन, योजनाओ मे नियोजित तथा वास्तव मे प्राप्त बचत एव विनियोग दरें, योजनाओ मे क्षेत्रीय लक्ष्य, वित्तीय आवटन और उपलब्धियाँ, विनियोग-वृद्धि और उत्पादिता, सुधार के उपाय, भारत मे गरीबी और असमानता आदि टॉपिक्स ऐसे है जिन पर सामग्री हिन्दी पुस्तको मे प्राय कम उपलब्ध है और जो है वह अधिकांशत अपर्याप्त है। प्रस्तुत संस्करण मे इन विषयों पर प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर व्यवस्थित ठोस जानकारी देने का प्रयास किया गया है। आवश्यकतानुसार गणितीय विधि का प्रयोग किया गया है, लेकिन पुस्तक बोझिल न बने, इसका विशेष ध्यान रखा गया है। यथासाध्य नवीनतम आँकड़े देकर विषय-सामग्री को अद्यतन बनाया गया है। पुस्तक के परिशिष्ट भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति के उपरान्त 25 सितम्बर 1976 को पाँचवी पचवर्षीय योजना का जो संशोधित रूप सामने आया है, उसे भी विस्तार से परिशिष्ट के रूप मे जोड़ दिया गया है। पुस्तक मे अगस्त सितम्बर 1976 तक के आँकड़े प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर दिए गए है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के बुलेटिनों, भारत सरकार की 1975–76 की वार्षिक रिपोर्टों, विभिन्न आर्थिक पत्र-पत्रिकाओं आदि से सभी आवश्यक सहायता ली गई है।

इस संस्करण मे हमारा यह प्रयास रहा है कि विद्यार्थियों को आर्थिक विकास के सिद्धान्तों और देश के आर्थिक नियोजन के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक पहलुओं का सुगमतापूर्वक किन्तु समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके। पुस्तक के अन्त मे विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रश्न पत्र भी दिए गए है ताकि विद्यार्थियों को प्रश्न-शैली का बोध हो सके।

जिन अधिकारिक विद्वानों की कृतियों से पुस्तक के प्रणयन मे सहायता ली गई है, उसके लिए लेखक हृदय से आभारी है।

—लेखक

अनुक्रमणिका

भाग-1. आर्थिक विकास के सिद्धान्त
(Theory of Economic Growth)

भाग–2 भारत मे आर्थिक नियोजन
(Economic Planning in India)

APPENDIX

भाग-1

आर्थिक विकास के सिद्धान्त

(THEORY OF ECONOMIC GROWTH)

1 आर्थिक विकास का अर्थ और अवधारणा

(The Meaning and Concept of Economic Growth)

"भविष्य मे बहुत वर्षों तक अल्पविकसित देशो का विकास अमेरिका और रूस के बीच गहन प्रतियोगिता का क्षेत्र रहेगा। विश्व की समस्याओं मे अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण ऐसे अर्द्ध-विकसित क्षेत्र विशेष रुचि का विषय रहेंगे जो या तो ऐसे सुविशाल प्राकृतिक साधनो से सम्पन्न हो जिनकी आवश्यकता विश्व-शक्तियो को हो अथवा जो सैनिक दृष्टि से सामरिक महत्त्व की स्थिति रखते हो।" —एच डब्लू शैनन

विकास का अर्थशास्त्र मुख्यत अल्पविकसित देशो के आर्थिक विकास की समस्याओ का निरूपण करता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद आर्थिक विकास विश्व की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या बन गया है और विश्व के पिछड़े देशो के विकास मे, मूलत अपने प्रभाव-क्षेत्र की वृद्धि के लिए, विश्व की महाशक्तियो के बीच गहन प्रतियोगिता छिडी हुई है। वर्तमान शताब्दी के पाँचवें दशक मे और विशेषकर द्वितीय महायुद्ध के बाद ही विकसित देशो तथा अर्थशास्त्रियो ने अल्पविकसित देशो की समस्याओ के विश्लेषण की ओर, उनके आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने की ओर ध्यान देना शुरू किया और आज तो अल्पविकसित देशो मे आर्थिक विकास के प्रति वह जागरण पैदा हो चुका है कि विकास एक युग-नारा बन गया है।

विकसित राष्ट्र दुनिया के अल्पविकसित देशो की ओर यकायक ही सहानुभूति से उमड पडे हो, यह बात नही है। वास्तविकता तो यह है कि विकसित देश महायुद्ध के बाद खासतौर पर यह महसूस करने लगे हैं कि *"किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक दूसरे स्थान की समृद्धि के लिए खतरा है।"* एशिया और अफ्रीका मे राजनीतिक पुनरुत्थान की जो लहर फैली उससे भी विकसित देशो को यह महसूस

करने के लिए बाध्य किया कि यदि वे अल्पविकसित देशो की आकांक्षाओं की पूर्ति की दिशा मे सहयोगी नही हुए तो उनके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव-क्षेत्र को गहन और व्यापक आघात पहुँचेगा। विश्व की महाशक्तियाँ आर्थिक-राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार मे एक दूसरे से पिछड जाने के भय से अल्पविकसित देशो को आर्थिक सहयोग देने की दिशा मे इस तरह प्रतियोगी हो उठी।

इसमे सन्देह नही कि अल्पविकसित देशो मे व्याप्त गरीबी को दूर करने मे धनिक राष्ट्रो की रुचि कुछ हद तक मानवतावादी उद्देश्यो से भी प्रेरित है, लेकिन मूल रूप से और प्रधानतया प्रेरणा-स्रोत प्रभावक्षेत्र के विस्तार की प्रतिस्पर्द्धा ही है। प्रो० एल डब्लू शैनन ने वास्तविकता का सही मूल्यांकन किया है कि "भविष्य मे बहुत वर्षो तक अल्पविकसित देशो का विकास अमेरिका और रूस के बीच गहन प्रतियोगिता का क्षेत्र रहेगा। विश्व की समस्याओ मे अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण ऐसे अर्द्ध-विकसित क्षेत्र विशेष रुचि का विषय रहेगे जो या तो ऐसे सुविशाल प्राकृतिक साधनो से सम्पन्न हो जिनकी आवश्यकता विश्व-शक्तियो को हो अथवा जो सैनिक दृष्टि से सामरिक महत्त्व की स्थिति रखते हो।"[1]

आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Economic Growth)

आर्थिक विकास से अभिप्राय विस्तार की उस दर से है जो अर्द्ध-विकसित देशो को जीवन-निर्वाह-स्तर (Subsistence level) से ऊँचा उठाकर अल्पकाल मे ही उच्च जीवनस्तर प्राप्त कराए। इसके विपरीत पहले से ही विकसित देशो के लिए आर्थिक विकास का आशय वर्तमान वृद्धि की दर को बनाए रखना या उसमे वृद्धि करना है। आर्थिक विकास का अर्थ किसी देश की अर्थ-व्यवस्था के एक नही वरन् सभी क्षेत्रो की उत्पादकता मे वृद्धि करना और देश की निर्धनता को दूर करके जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। आर्थिक विकास द्वारा देश के प्राकृतिक और अन्य साधनो का समुचित उपयोग करके अर्थ-व्यवस्था को उन्नत स्तर पर ले जाया जाता है। आर्थिक विकास के विभिन्न पक्षो पर यद्यपि आज भी काफी असहमति है, तथापि इसको हम एक ऐसी प्रक्रिया (Process) कह सकते हैं जिसके द्वारा किसी भी देश के साधनो का अधिकाधिक कुशलता के साथ उपयोग किया जाए। आर्थिक विकास की कोई निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा देना बडा कठिन है। विभिन्न लेखको ने इसकी परिभाषा भिन्न भिन्न विकास के माप के आधारो पर की है।

(क) विद्वानो के एक पक्ष ने कुल देश की आय म सुधार को आर्थिक विकास कहा है। प्रो० कुजनेत्स, पाल एल्वर्ट मेयर एव वाल्डबिन, ऐ जे यगसन आदि इस विचारधारा के प्रतिनिधि हैं।

1 L. W Shannon *Underdeveloped Areas*, p 1

(ख) विद्वानो का दूसरा पक्ष प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे सुधार को आर्थिक विकास मानता है। इस विचारधारा के समर्थक डॉ० हिगिन्स, आर्थर लेविस, विलियमसन, वाइनर, होर्वे लिबिस्टीन आदि हैं।

(ग) अनेक विद्वान आर्थिक विकास को सर्वांगीण विकास के रूप मे लेते हैं।

अग्रिम पक्तियो मे हम इन तीनो ही पक्षो को लेंगे।

(क) आर्थिक विकास का अर्थ राष्ट्रीय आय मे वृद्धि

श्री मेयर और बाल्डविन के अनुसार "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि होती है।"[1]

आर्थिक विकास की इस परिभाषा मे तीन बातें विचारणीय है :—

1. प्रक्रिया (Process)—इसका आशय अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अगो मे परिवर्तन से है। आर्थिक विकास मे वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि आर्थिक चल-राशियो (Variables) मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप होती है। इन परिवर्तनों का सम्बन्ध साधनो की माग और उनकी पूर्ति मे परिवर्तन से है। साधनो की पूर्ति मे परिवर्तन के अन्तर्गत जनसख्या मे वृद्धि, अतिरिक्त साधनो का पता, पूँजी का सचयन, उत्पादन की नवीन विधियो का प्रयोग तथा अन्य सस्थागत परिवर्तन सम्मिलित हैं। साधनो की पूर्ति मे परिवर्तन के साथ ही साथ इनकी माग के स्वरूप म भी परिवर्तन होता है। आय-स्तर तथा उसके वितरण के स्वरूप में परिवर्तन, उपभोक्ताओ के अधिमान मे परिवर्तन, अन्य सस्थागत तथा सगठनात्मक परिवर्तन माँग के स्वरूप मे परिवर्तन के उदाहरण हैं। इस प्रकार आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप माग और पूर्ति के स्वरूप मे कई परिवर्तन होते है। किन्तु ये परिवर्तन आर्थिक विकास के कारण और परिणाम दोनो होते हैं। इन परिवर्तनो की सीमा आर्थिक विकास की गति तथा समय पर निर्भर करती है। आर्थिक विकास के क्षेत्र मे हम विकास प्रक्रिया के कारण होने वाली वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि का ही अध्ययन नही करते अपितु इसके लिए उत्तरदायी इस प्रक्रिया या इन परिवर्तनो का अध्ययन भी करते हैं।

2. वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income)—आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से है। वास्तविक राष्ट्रीय आय का आशय मूल्य-स्तर में हुए परिवर्तनों के लिए समायोजित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net National Product adjusted for Price Changes) से है। इसका अर्थ देश मे उत्पादित वस्तुओ एव सेवाओ के कुल योग के समायोजित मूल्य से है। मूल्यो मे वृद्धि के कारण प्रकट होने वाली राष्ट्रीय आय मे वृद्धि आर्थिक विकास नही कहलाती है। अर्थ-व्यवस्था मे वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन वस्तुत

1. Meier and Baldwin. *Economic Development*, p. 3.

निरंतर बढना चाहिए। सर्वप्रथम निश्चित वर्ष मे देश मे उत्पादित वस्तुओ तथा सेवाओ का वर्तमान मूल्य के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। इसके पश्चात् इस राशि को किसी आधार वर्ष के मूल्य-स्तर के संदर्भ मे समायोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास मापने के लिए कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रयोग न करके शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का प्रयोग किया जाता है। किसी देश मे एक वर्ष की अवधि मे पैदा की जाने वाली समस्त अन्तिम वस्तुओ तथा सेवाओ के मौद्रिक मूल्य को कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते है। इसे उत्पन्न करने के लिए जिन साधनो, यन्त्रो आदि का उपयोग किया जाता है उनमे मूल्य ह्रास या घिसावट (Depreciation) होता है *जिनका प्रतिस्थापन आवश्यक है। अतः कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे से मूल्य* ह्रास की राशि निकाल देने के पश्चात् शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन बचता है। आर्थिक विकास मे मूल्य-स्तर मे हुए परिवर्तन के लिए समायोजित इस शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होनी चाहिए।

3. दीर्घ काल (Long period of time)—आर्थिक विकास का सम्बन्ध दीर्घकाल से है। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे दीर्घ-काल तक वृद्धि हो। आय मे होने वाली अस्थायी वृद्धि को आर्थिक विकास नही कहा जा सकता। किसी वर्ष विशेष मे यथोचित वर्षा के कारण कृषि उत्पादन मे विशेष वृद्धि आदि अनुकूल परिस्थितियो के कारण राष्ट्रीय आय मे होने वाली अस्थायी वृद्धि आर्थिक विकास नही है। इसी प्रकार व्यापार-चक्रो (Trade cycles) के कारण तेजी के काल मे हुई राष्ट्रीय आय मे वृद्धि भी आर्थिक विकास नही है। आर्थिक विकास पर विचार करते समय पन्द्रह, बीस या पच्चीस वर्ष की अवधि तक राष्ट्रीय आय मे होने वाले परिवर्तनो पर ध्यान देना होता है।

(ख) आर्थिक विकास का अर्थ प्रति-व्यक्ति आय मे वृद्धि

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास का आशय वास्तविक राष्ट्रीय आय से दीर्घकालीन वृद्धि से है। किन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो के मतानुसार आर्थिक विकास को राष्ट्रीय आय की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय के संदर्भ मे परिमापित करना चाहिए। वस्तुत आर्थिक विकास का परिणाम जनता के जीवन-स्तर मे सुधार होना चाहिए। *यह संभव है कि राष्ट्रीय आय मे तो वृद्धि हो, किन्तु जनता का जीवन-स्तर* ऊँचा न उठे। जनसंख्या मे वृद्धि की दर अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने पर भी नही बढे या कम हो जाय। ऐसी स्थिति मे *राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होते हुए भी देश विकासोन्मुख नही कहा जायगा। जब प्रति* व्यक्ति आय घटने के कारण लोगो का जीवन-स्तर गिर रहा हो तो हम यह नही कह सकते कि आर्थिक विकास हो रहा है। अत आर्थिक विकास मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होनी चाहिए। *इस प्रकार का मत कई विकासवादी अर्थ-शास्त्रियो ने प्रकट* किया है।

प्रो लेविस के अनुसार "आर्थिक वृद्धि का अभिप्राय प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि से है।"[1]

प्रो वलियमसन के अनुसार "आर्थिक विकास या वृद्धि से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश या क्षेत्र के लोग उपलब्ध साधनो का प्रति व्यक्ति वस्तुओ या सेवाओ के उत्पादन मे स्थिर वृद्धि के लिए उपयोग करते हैं।'[2]

प्रो वेरन के शब्दो मे "आर्थिक विकास या वृद्धि को निश्चित समय मे प्रति व्यक्ति भौतिक वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे परिमापित किया जाना चाहिए।"

बुकानन और एलिस ने भी इसी प्रकार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "विकास का अर्थ अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो की वास्तविक आय की सभावनाओ मे वृद्धि करना है जिसमे विनियोग का उपयोग उन परिवर्तनो को प्रभावित करने और उन उत्पादक साधनो का उपयोग करने के लिए किया जाता है जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि का वादा करते हैं।"

(ग) आर्थिक विकास सर्वांगीण विकास के रूप मे

अधिकाश आधुनिक अर्थ-शास्त्री आर्थिक विकास की उपर्युक्त परिभाषाओ को अपूर्ण मानते हैं। वास्तव मे उपरोक्त परिभाषाएँ आर्थिक प्रगति को स्पष्ट करती हैं जबकि आर्थिक विकास आर्थिक प्रगति से अधिक व्यापक है। आर्थिक विकास मे उपरोक्त आर्थिक प्रगति के अतिरिक्त कुछ परिवर्तन भी सम्मिलित हैं। आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से ही नही है। यह सभव है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि होने पर भी जनता का जीवन स्तर उच्च न हो क्योकि प्रति व्यक्ति उपभोग कम हो रहा हो। जनता बढी हुई आय मे से अधिक बचत कर रही हो या सरकार इस बढी हुई आय का एक बडा भाग स्वय सैनिक कार्यों पर उपयोग कर रही हो। ऐसी दशा मे राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर भी जनता का जीवन-स्तर उच्च नही होगा। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने पर भी सभव है। अधिकांश जनता निर्धन रह जाए और उसके जीवन-स्तर मे कोई सुधार न हो क्योकि बढी हुई आय का अधिकांश भाग विशाल निर्धन वर्ग के पास जाने की अपेक्षा सीमित धनिक वर्ग के पास चला जाए। अत कुछ अर्थ-शास्त्रियो के अनुसार आर्थिक विकास मे धन के अधिक उत्पादन के साथ-साथ उनका न्यायोचित वितरण भी होना चाहिए। इस प्रकार कुछ विचारक आर्थिक विकास के साथ कल्याण का भी सम्बन्ध जोडते हैं। उनके अनुसार आर्थिक विकास पर विचार करते समय न केवल इस बात पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए कि कितना उत्पादन

1 W A Lewis *The Theory of Economic Growth* p 10
2 Williamson and Buttrick *Principles and Problems of Economic Development*, p 7

किया जा रहा है अपितु इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि किस प्रकार उत्पादन किया जा रहा है। अत आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि, जनता के जीवन-स्तर मे सुधार, अर्थ-व्यवस्था की सरचना मे परिवर्तन, देश की उत्पादन-शक्ति मे वृद्धि, देशवासियो की मान्यताओ एव दृष्टिकोणो मे *परिवर्तन तथा मानव के सर्वांगीण विकास से है। विकास को परिमाणात्मक एव* गुणात्मक दोनो पक्षो से देखा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से सयुक्त राष्ट्र सघ की एक रिपोर्ट मे दी गई आर्थिक विकास की यह परिभाषा अत्यन्त उपयुक्त है "विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओ से नही अपितु उसके जीवन की सामाजिक दशाओ के सुधार से भी सम्बन्धित है अत विकास न केवल आर्थिक वृद्धि ही है, किन्तु आर्थिक वृद्धि और सामाजिक, सास्कृतिक, सस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तनो का योग है।"

किन्तु वस्तुत उपरोक्त परिवर्तनो को माप सकना अत्यन्त असम्भव है और जैसा कि *श्री मेयर और बाल्डविन ने बतलाया है, "विकास की अनुकूलतम दर की व्याख्या* करने के लिए हमे आय के वितरण, उत्पादन की सरचना, पसदगियाँ, वास्तविक लागते (Real costs) एव वास्तविक आय मे वृद्धि से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट परिवर्तनों के बारे मे मूल्य-निर्णय (Value-Judgements) देने होगे।"

अत मूल्य निर्णय से बचने एव सरलता के लिए अधिकांश अर्थशास्त्री आर्थिक विकास का तात्पर्य जनसख्या मे वृद्धि को ध्यान मे रखते हुए वास्तविक आय मे वृद्धि से लेते है।

अन्य परिभाषाएँ

श्री पाल एलवर्ट के अनुसार, "यह (आर्थिक विकास) इसके सबसे बडे उद्देश्य के द्वारा सर्वोत्तम प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है जो वास्तविक आय मे विस्तार के लिए एक देश के द्वारा अपने समस्त उत्पादक साधनो का शोषण है।"

प्रो ए जे यगसन के अनुसार "आर्थिक प्रगति का आशय आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की शक्ति मे वृद्धि है।" उन्होने वास्तविक राष्ट्रीय *आय* को आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की शक्ति का सूचकांक माना है।

प्रो० डी० ब्राइटसिंह के मत मे, "*आर्थिक वृद्धि का अर्थ एक देश के समाज* के अविकसित स्थिति से आर्थिक उपलब्धि के उच्च स्तर मे परिवर्तित होने से है।"

श्री साइमन कुजनेत्स के शब्दो मे, "आर्थिक विकास को मापने के लिए हम उसे या तो सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के रूप मे या स्थिर कीमतो पर सम्पूर्ण जनसख्या के उत्पादन के रूप मे अथवा प्रति व्यक्ति उत्पादन के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं।"

आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक उन्नति
(*Economic Development, Economic Growth and* Economic Progress)

आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि, आर्थिक उन्नति एव दीर्घकालीन परिवर्तन

(Secular Change) आदि बहुधा एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किए जाते हैं। किन्तु शुम्पीटर, श्रीमती उर्सुल्ला हिक्स आदि अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास (Economic Development) और आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) मे अन्तर किया है।

आर्थिक विकास का सम्बन्ध अर्द्ध-विकसित देशो की समस्याओ से है जबकि आर्थिक वृद्धि का सम्बन्ध विकसित देशो की समस्याओ से है। आर्थिक विकास का प्रयोग विकासशील देशो के लिए किया जाता है जहां पर अप्रयुक्त या अशोषित साधनो के शोषण की पर्याप्त सभावनाएँ होती हैं। इसके *विपरीत आर्थिक वृद्धि का* प्रयोग आर्थिक दृष्टि से विकसित देशो के लिए किया जाता है जहाँ अधिकांश साधन विकसित होते हैं। इसी प्रकार शुम्पीटर ने भी आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि मे भेद स्पष्ट किया है। उनके अनुसार विकास स्थिर स्थिति (Static situation) से *असतत (Discontinuous)* और *स्वत (Spontaneous)* परिवर्तन *है जो पूर्व* स्थित साम्य की स्थिति को भग कर देता है जबकि आर्थिक वृद्धि जनसख्या और बचत की दर मे सामान्य वृद्धि के द्वारा आने वाला धीरे-धीरे और निरन्तर परिवर्तन है। एवरीमेन्स इकानामिक डिक्सनेरी ने इन दोनो के भेद को निम्नलिखित शब्दो मे और भी स्पष्ट किया है—

"*सामान्य रूप से आर्थिक विकास का आशय केवल आर्थिक वृद्धि से ही है। अधिक* विशिष्टता के साथ इसका उपयोग वृद्धिमान अर्थ-व्यवस्था के परिमाणात्मक माप (जैसे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि की दर) का नही बल्कि आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य परिवर्तनो का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनके कारण वृद्धि होती है। अत वृद्धि मापनीय एव वस्तुगत है। यह श्रम, शक्ति, पूँजी व्यापार की मात्रा और उपभोग मे विस्तार का वर्णन करती है और आर्थिक विकास निहित आर्थिक वृद्धि के निर्धारक तत्त्व जैसे उत्पादन तकनीक, सामाजिक दृष्टिकोण और सस्थाओ मे *परिवर्तन आदि का वर्णन करने के उपयोग मे लाया जा सकता है।* इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक वृद्धि को जन्म देते हैं।"

इसी प्रकार आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) तथा आर्थिक प्रगति (Economic Progress) मे अन्तर किया जाता है। श्री एल० एन० बरेरी के अनुसार आर्थिक प्रगति का अर्थ प्रति व्यक्ति उपज (Per capita Product) मे वृद्धि से है जबकि आर्थिक वृद्धि का आशय जनसख्या और कुल वास्तविक आय दोनो मे वृद्धि से है। उनके अनुसार आर्थिक वृद्धि के तीन रूप हो सकते हैं। प्रथम प्रगतिशील (Progressive) वृद्धि जो तब होती है जबकि कुल आय मे वृद्धि *जनसख्या मे वृद्धि की अपेक्षा अनुपात से अधिक होती है। द्वितीय अधोगामी वृद्धि* (Regressive growth), जब जनसख्या मे वृद्धि कुल आय मे वृद्धि की अपेक्षा अधिक अनुपात मे होनी है। तृतीय स्थिर आर्थिक वृद्धि (Stationary growth), जब दोनो मे एक ही दर से वृद्धि होनी है।

इतना सब होते हुए भी आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि, आर्थिक प्रगति आदि शब्दो को अधिकांश अर्थशास्त्री पर्यायवाची शब्द के रूप मे ही प्रयुक्त करते हैं। प्रो० पाल० ए० बेरन का कथन है कि, "विकास" और "वृद्धि" की धारणा ही कुछ ऐसे परिवर्तन का सकेत देती है जो समाप्त हुए पुराने कुछ की अपेक्षा नया है। प्रो० विलियम आर्थर लेविस ने 'वृद्धि' शब्द का उपयोग किया है किन्तु परिवर्तन के लिए यदा-कदा 'विकास' और 'प्रगति' शब्द का भी उपयोग करना उन्होने वांछनीय समझा है।

आर्थिक विकास की प्रकृति
(Nature of Economic Growth)

आर्थिक विकास के अर्थ को विशद् रूप से समझ लेने के उपरान्त इसकी प्रकृति बहुत कुछ स्वत स्पष्ट हो जाती है। हम यह जानते हैं कि प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था जन्म (Birth), विकास (Growth), पतन (Decay) और मृत्यु (Death) की प्रक्रियाओ से गुजरती है। आर्थिक विकास इसका कोई अपवाद नही है। अविकसित अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था शनै-शनै विकास की ओर अग्रसर होती है और पूर्ण विकास की अवस्था प्राप्त करने के बाद क्रमश पतन की ओर बढती है। हाँ, आज के वैज्ञानिक युग मे इस पतन की क्रिया पर अकुश लगाना अवश्य बहुत कुछ सभव हो गया है। आज वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के कारण किसी भी राष्ट्र को पुराने होने की सज्ञा देना मुश्किल है पर ऐसे देशो को ढूढ निकालना असम्भव नही है जिनकी अर्थ-व्यवस्थाएँ पुरानी हो गई हैं और अपनी अवनत अवस्था के कारण न केवल अपने देश के लिए वरन् अन्य देशो के लिए भी समस्या बनी हुई है। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी यह सुनिश्चित है कि आर्थिक विकास की ओर बढते रहना एक सतत् प्रक्रिया है, जो समाप्त नही होती। आर्थिक विकास की प्रकृति गतिशील है जिसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक प्रगति के अध्ययन के आधार पर दीर्घकालीन अवस्था मे आर्थिक गतिविधियो का विश्लेषण करके महत्वपूर्ण और मूल्यवान निष्कर्ष प्राप्त करना है। आर्थिक विकास के सम्बन्ध मे आर्थिक उतार चढ़ावो का अध्ययन अल्पकाल मे नही किया जा सकता। आर्थिक विकास दीर्घकाल की देन है। आर्थिक विकास मे एक देश की अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे उत्पादन के उच्चत्तम स्तर को प्राप्त करना होता है और इसके लिए आर्थिक शक्तियो मे आवश्यकतानुसार फेर बदल करते रहना पडता है और इन सब का अध्ययन करना पडता है। आर्थिक विकास की प्रकृति को समझने के लिए हमे स्थिर (Static) और गतिशील (Dynamic)—इन दो आर्थिक स्थितियो को समझ लेना चाहिए।

भौतिक-शास्त्र मे स्थिर अथवा स्थैतिक (Static) दशा वह होती है जिसमे गति तो होती है, किन्तु परिवर्तन नही अथवा दूसरे शब्दों मे गति का पूर्ण अभाव नहीं होता, किन्तु फिर भी गति की दर समान रहती है। यह गति एकरस रहती है अर्थात् इसमे सामयिक रूप से अचानक झटके नही लगते। इसमे अनिश्चितता का

प्रभाव रहता है। कहने का अर्थ यह है कि स्थिरावस्था कोई अकर्मण्यता की अवस्था नही है वरन् यह अर्थ-व्यवस्था का एक ऐसा रूप है जिसमे कार्य बिना किसी बाधा के समान गति और सरल रूप मे चलता रहता है। जब अर्थशास्त्र मे प्रयुक्त की गई आर्थिक मात्राएँ समान होती हैं तो इसे स्थिरता की अवस्था कहा जाएगा। अर्थ-व्यवस्था इन स्थिर मात्राओ की सहायता से ही प्रगति के पथ पर बढती रहती है। मार्शल के कथनानुसार, "किसी कार्यशील, किन्तु अपरिवर्तनीय प्रणाली को स्थिर अर्थशास्त्र का नाम दिया जाता है।"

प्रो मैक्फाई ने माना था कि स्थिर अवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमे उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण को नियन्त्रित करने वाले साधन स्थिर होते हैं अथवा स्थिर मान लिए जाते है। जनसख्या उम्र अथवा मात्रा की दृष्टि से बढती ही नही है और यदि बढती है तो उत्पादन की मात्रा भी उसी अनुपात मे बढ जाती है। प्रो स्टिगलर (Stigler), प्रो क्लार्क (Clark) तथा प्रो टिनबर्गन (Tinbergan) आदि ने भी स्थिर अर्थशास्त्र का अर्थ स्थिर अर्थ-व्यवस्था से लिया है। *क्लार्क का कहना है कि "वह अर्थ-व्यवस्था स्थिर है जिसमे जनसख्या, पूँजी,* उत्पादन प्रणाली मनुष्य की आवश्यकता और वैयक्तिक इकाइयो के स्वरूप मे कोई परिवर्तन नही होता।" स्टिगलर महोदय का मत था कि "स्थिर अर्थ-व्यवस्था मे रुचि, साधन एव तकनीकी—इन तीनो मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही होता।" प्रो जे के मेहता ने स्थिरता का अर्थ बताते हुए इसे ऐसी स्थिति माना है जो निश्चित समय के बाद भी उसी रूप मे बनी रहती है। यदि निश्चित समय के बाद उसकी अवस्था मे परिवर्तन आ जाए तो वह गत्यात्मक स्थिति कहलाएगी।

स्थिर अर्थशास्त्र का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इसके कई लाभ हैं। यदि इसकी सहायता न ली जाए तो परिवर्तनशील अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करना अत्यन्त जटिल बन जाए। आर्थिक परिवर्तनो की प्रकृति स्वमेव ही जटिलतापूर्ण होती है। *गतिशील अर्थ-व्यवस्था का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिए छोटी से छोटी* स्थिर अवस्थाओ मे विभाजित कर लिया जाता है। निरतर होने वाले परिवर्तन पर्याप्त अनिश्चितता ला देते हैं और इसलिए गतिशीलता का अध्ययन कठिन बन जाता है। इस सम्बन्ध मे यह कहना उपयुक्त है कि गतिशील अर्थशास्त्र स्थिर अर्थशास्त्र पर लगातार टिका है इसलिए स्थिर अर्थशास्त्र के कानून गतिशील अर्थशास्त्र पर भी लागू होने चाहिए।

स्थिर अर्थशास्त्र के विपरीत गतिशील अर्थशास्त्र परिवर्तन से सम्बन्ध रखता है। दिन प्रतिदिन जो परिवर्तन होते हैं उनका अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र मे नही किया जा सकता। गतिशील अर्थशास्त्र अर्थ-व्यवस्था मे निरन्तर होने वाले परिवर्तनो, इन परिवर्तनो की प्रक्रियाओ और परिवर्तन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारणो का अध्ययन करता है। *गतिशील अर्थशास्त्र को अनेक प्रकार से* परिभाषित किया गया है। रिचार्ड लिप्से (Richard Lipsay) के कथनानुसार इसमे

व्यवस्था की प्रणालियाँ, वैयक्तिक बाजारो अथवा सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की असतुलित दशाओ का अध्ययन किया जाता है।" अर्थ-व्यवस्था मे प्राय परिवर्तन होते रहते हैं। इनके फलस्वरूप असतुलन उत्पन्न होता है। इस असतुलन का अध्ययन गतिशील अर्थशास्त्र करता है। जे बी क्लार्क (J B Clarke) के मतानुसार गतिशील अर्थ व्यवस्था मे जनसख्या, पूँजी, उत्पादन की प्रणालियाँ और औद्योगिक सगठन का रूप बदलता रहता है। इसमें उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ मे वृद्धि होनी रहती है। गतिशील विश्लेषण में इन समस्त परिवर्तनों का विश्लेषण किया जाता है।

हैरोड (Harod) यह मानते थे कि गतिशील अर्थशास्त्र अर्थ-व्यवस्था मे निरन्तर होने वाले परिवर्तनो का विश्लेषण है। उनके शब्दो मे 'गतिशील अर्थशास्त्र विशेष रूप से निरन्तर होने वाले परिवर्तनो के प्रभावो और निश्चित किए जाने वाले मूल्यो मे परिवर्तन की दरो से सम्बन्ध रखता है।'

जीवन की विभिन्न समस्याएँ गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन को आवश्यक बना देती हैं क्योंकि स्थिर विश्लेषण उनके सम्बन्ध मे अधिक उपयोगी सिद्ध नही होता। एक सन्तुलन बिन्दु से लेकर दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक जो परिवर्तन हुए उनका अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र मे नही किया जा सकता। वे केवल गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन द्वारा ही जाने जा सकते है।

वास्तव मे गतिशील और स्थिर विश्लेषण दोनो की ही अपनी अपनी सीमाएँ हैं और इन सीमाओ मे रहते हुए वे अपने कार्य सम्पन्न करते हैं तथापि वास्तविकता तो यह है कि इनमे कोई भी विश्लेषण अपने आप मे पूर्ण नही है। प्रत्येक दूसरे के बिना अधूरा है। यहाँ तक कि वह जिन कार्यों को सम्पन्न कर सकता है उन्हे भी दूसरे की सहायता के बिना सन्तोषजनक रूप से नही कर पाएगा। इनमे गतिशील अर्थशास्त्र अपेक्षाकृत एक नई शाखा है और इसका विकास अभी भी वाँछित स्तर को प्राप्त नही कर सका है। यद्यपि अनेक विचारको ने इसके विकास मे अपना योगदान किया है, किन्तु अभी तक इसका कोई अत्यन्त सामान्य सिद्धान्त आविष्कृत नही हो सका है।

विकास का अर्थशास्त्र (Economics of Growth) एक गतिशील अथवा प्रावैगिक (Dynamic) अर्थशास्त्र है। आर्थिक विकास का एक क्रमिक चक्र होता है जिसमे सदैव परिवर्तन चलते रहते हैं। एक देश की अर्थ-व्यवस्था मे अनेक घटक होते हैं जिनमे समय-समय पर परिवर्तन होते ही रहते है और इन परिवर्तनो से आर्थिक विकास की गति तथा दिशा का भान होता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए गतिशील अर्थ-शास्त्र का ही सहारा लेना पडता है और इसीलिए यह कहना समीचीन है कि आर्थिक विकास की प्रकृति गतिशील है। इसका अध्ययन स्तर यथा स्थैतिक न होकर मूलत गतिशील या प्रावैगिक होता है।

आर्थिक विकास का माप
(Measurement of Economic Growth)

आर्थिक विकास का सम्बन्ध दीर्घकालीन परिवर्तनो से होता है, अत. इसकी कोई सही या निश्चित माप देना बडा कठिन है। आर्थिक विकास के माप के सम्बन्ध मे प्राचीन और आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने अपने-अपने विचार प्रकट किए है।

(क) प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचार

प्राचीन अर्थशास्त्रियो मे वाणिज्यवादियो का विचार था कि देश मे सोना-चांदी के कोष मे वृद्धि होना ही आर्थिक विकास का माप है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर उन्होंने देश के आर्थिक विकास के लिए निर्यात बढाने के सिद्धान्तो पर बल दिया और ऐसे उपायो का पक्ष लिया जिनमे निर्यात मे वृद्धि सम्भव हो। बाद मे *एडम स्मिथ ने विचार प्रकट किया कि वस्तुओ और सेवाओं के उत्पादन मे वृद्धि होने* से देश का आर्थिक विकास होता है। अपने इसी विचार के आधार पर उसने कहा कि आर्थिक क्षेत्र मे सरकार द्वारा स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए ताकि लोग अधिकाधिक उत्पादन कर सके और अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके जिससे लोक-कल्याण मे अधिकाधिक वृद्धि हो। एडम स्मिथ के समकालीन अर्थशास्त्रियो ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट किए। उन्होने कहा कि यदि देश मे उत्पादन की मात्रा तीव्र होगी तो स्वत ही आर्थिक विकास की गति बढेगी, अन्यथा आर्थिक विकास सम्भव नही हो सकेगा। इन सब अर्थशास्त्रियो के विपरीत कार्लमार्क्स ने सहकारिता के सिद्धान्त का समर्थन किया। उसने कहा कि पूंजीवाद को समाप्त करके साम्यवाद या समाजवाद पर चलने मे ही कुशल है और तभी देश मे लोक-कल्याण व आर्थिक विकास लाया जा सकता है। जे एस मिल ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति के कुपरिणामो को दिखाकर, यह विचार प्रकट किया कि लोक कल्याण और आर्थिक विकास के लिए सहकारिता के सिद्धान्त को महत्त्व देना चाहिए। उसने कहा कि *सहकारिता ही आर्थिक विकास का माप है और जिस देश मे जितनी अधिक सहकारिता का चलन होगा, वह देश उतना ही अधिक लोक-कल्याण और आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होगा।*

(ख) आधुनिक विचारधारा

आधुनिक अर्थशास्त्र ने उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी आर्थिक विकास का माप माना। उन्होंने आर्थिक विकास के माप के लिए किसी एक तत्त्व पर नही वरन् सभी आवश्यक तत्त्वो पर बल दिया और कहा कि इन तत्त्वो के सामूहिक प्रयासो के फलस्वरूप ही किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। यदि आधुनिक अर्थशास्त्रियो के विचारो का विश्लेषण करें तो आर्थिक विकास के मुख्य मापदण्ड ये ठहरते हैं—

1. राष्ट्रीय आय—आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास की दृष्टि से सकल राष्ट्रीय उत्पादन को न लेकर शुद्ध उत्पादन को ही लिया है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास का माप इसलिए नही हो सकता क्योंकि इसमे मशीनो व उपकरणों पर होने वाली घिसाई या ह्रास की राशि को घटाने की व्यवस्था नही की जाती, जबकि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन म ऐसा किया जाता है। इस शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि आर्थिक विकास का सूचक होती है, पर शर्त यह है कि यह वृद्धि दीर्घकालीन और निरन्तर होनी चाहिए।

2. आय का वितरण—आधुनिक विचारधारा के अनुसार आर्थिक विकास का दूसरा माप-दण्ड आय का वितरण है। राष्ट्रीय आय तो बढ रही हो, किन्तु उसका न्यायोचित ढग से वितरण न हो तो उसे विकास की अवस्था नही कहा जा सकता। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का इस ढग से वितरण हो कि सबको पर्याप्त आय प्राप्त हो सके। यदि बढी हुई राष्ट्रीय आय का एक बडा भाग केवल गिने चुने व्यक्तियो को ही मिलता है तो इस स्थिति को आर्थिक विकास का सूचक नही माना जा सकता। इस बात की पूरी सम्भावना है कि राष्ट्रीय आय बढने पर भी देश मे दरिद्रता व्याप्त हो। उदाहरणार्थ भारत मे नियोजन के प्रथम 15 वर्षों मे राष्ट्रीय आय 9,530 करोड रुपए से बढ कर 20,010 करोड रुपए प्रति वर्ष तक पहुँच गई और इस तरह प्रति व्यक्ति आय 266 रुपये से बढ कर 421 रु वार्षिक हो गई, लेकिन फिर भी अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब होते गए, क्योकि बढी हुई राष्ट्रीय आय का न्यायोचित ढग से वितरण नही हो पाया। यही स्थिति आज भी विद्यमान है।

3 गरीब जनता को अधिक लाभ—जब तक देश की गरीब जनता की आय मे वृद्धि होकर उसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त नही होगा तब तक उस देश की आर्थिक व्यवस्था विकसित नही कही जा सकती। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि हो और गरीब जनता को अधिकाधिक लाभ मिले।

4 सामान्य एवं वास्तविक विकास दर—आर्थिक विकास का चौथा मापक सामान्य और वास्तविक विकास की दर है। सामान्य विकास की दर वह है जिस पर प्रति वर्ष विकास सामान्यत हुआ करता है। यह दर अनुमान पर आधारित होती है। वास्तविक दर वह है जो वास्तव मे होती है। जिस देश की अर्थ-व्यवस्था मे सामान्य दर और वास्तविक दर समान होती हैं वहाँ आर्थिक विकास की स्थिति पाई जाती है। यदि सामान्य विकास दर वास्तविक विकास दर से कम होती है तो वह अर्थ-व्यवस्था अर्द्ध-विकसित मानी जानी चाहिए। इसी प्रकार यदि सामान्य विकास दर वास्तविक दर से अधिक होती है तो उस अर्थ-व्यवस्था को अधिक विकासशील स्थिति मे माना जाना चाहिए।

5. प्रति व्यक्ति आय—राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ ही प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होना भी आवश्यक है। यदि प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि न हो तो आर्थिक विकास की स्थिति नही मानी जायेगी। यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय बढने पर भी जनता की निधनता बढती जाए। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय आय बढ रही है, लेकिन जनसख्या की मात्रा मे भी तेजी से वृद्धि हो रही है तो प्रति व्यक्ति आय समान रह सकती है या कम हो सकती है और तब ऐसे राष्ट्र को आर्थिक विकास की श्रेणी मे नही रखा जा सकता।

इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि एक देश मे आर्थिक विकास का कोई एक निश्चित माप नही हो सकता। प्रो डी ब्राइटसिंह ने लिखा है "एक देश द्वारा प्राप्त की गई आर्थिक सम्पनता के स्तर का म प उस देश द्वारा प्राप्त की गई उत्पादक सम्पत्ति की मात्रा से लगाया जा सकता है। अर्थ-व्यवस्था के विकसित होने पर नए उत्पादक साधनो को खोज लिया जाता है, विद्यमान साधनो का अधिक उपयोग सम्भव होता है तथा उपलब्ध राष्ट्रीय एव मानवीय सम्पत्ति का उपयोग किया जाता है। एक देश मे जितने अधिक साधन होते हैं उतनी ही अच्छी उसकी आर्थिक स्थिति होती है।"

आर्थिक विकास का महत्व
(Importance of Economic Growth)

पूर्व विवरण से आर्थिक विकास का महत्व स्वत स्पष्ट है। आधुनिक युग मे आर्थिक विकास ही एकमात्र वह है जिसके द्वारा मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। आर्थिक विकास के अभाव मे किसी भी देश का सर्वांगीण विकास नही हो सकता। मानवीय आवश्यकताओ को पूरा करने और निर्धनता व बेरोजगारी को मिटाने के लिए आर्थिक विकास ही एकमात्र और सर्वोत्तम उपाय है। आज के भौतिकवादी युग का नारा ही आर्थिक विकास का है।

आर्थिक विकास का महत्त्व प्रत्येक क्षेत्रो मे प्रकट है। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होती है। राष्ट्रीय उत्पादन बढने से राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बढती है जिससे बचत क्षमता का विकास होता है। बचत बढने से पूँजी निर्माण बढता है और फलस्वरूप विनियोग दर मे पूर्वापेक्षा अधिक वृद्धि हो जाती है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप देशो मे नए-नए उद्योगो का जन्म और विकास होता है। नए उद्योगो के पनपने से जनता को रोजगार के अच्छे अवसर प्राप्त होते है। परिणामस्वरूप बेरोजगारी मिटने लगती है। इनके अतिरिक्त श्रमिको के समुचित प्रशिक्षण विशिष्टीकरण, श्रम विभाजन, श्रम गतिशीलता आदि को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। उत्पादन के विभिन्न साधनो का समुचित उपयोग होने से उत्पादन मे वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय अधिकतम होने की सम्भावना बढ जाती है।

आर्थिक विकास के कारण पूँजी निर्माण और विनियोजन दर मे वृद्धि होने लगती है जिससे पूँजी की गतिशीलता बढ जाती है और फिर भविष्य मे पूँजी निर्माण और भी अधिक होने लगता है। आर्थिक विकास से देश मे औद्योगीकरण प्रोत्साहित होता है। फलत जनता की आय मे वृद्धि होती है और उसकी कर दान क्षमता बढ जाती है। आर्थिक विकास के कारण नए-नए उद्योगो की स्थापना होने से व्यक्ति का चुनाव क्षेत्र भी अधिक व्यापक हो जाता है। उसे मन चाहे क्षेत्रो मे कार्य करने का अवसर मिलता है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप जब व्यक्ति को रुचि के अनुकूल कार्य मिलता है तो उसकी कार्य क्षमता मे वृद्धि होती है जिससे देश मे कुल उत्पादन प्रोत्साहित होता है। साथ ही जनता को अधिकाधिक सेवाएँ और पदार्थ उपलब्ध होने लगते है। इसके अतिरिक्त नागरिको की प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने से उनका मनोवैज्ञानिक झुकाव मानवता की ओर अधिक होने लगता है। जब नागरिक भूखे और नगे नही रहते तो वे अधिक दयालु और सहनशील बन जाते है। आर्थिक विकास के कारण देश मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो का कुशलता और मितव्ययितापूर्वक विदोहन सम्भव हो जाता है। कृषि पर भी अच्छा प्रभाव पडता है। निष्क्रिय भूमि पर कृषि होने लगती है। नवीन वैज्ञानिक साधनो के प्रयोग के कारण प्रति हैक्टर उत्पादन मे वृद्धि होती है और साथ ही भूमि पर जनसख्या का भार भी घटने लगता है।

आर्थिक विकास के कारण मनुष्य प्राकृतिक प्रकोपो पर विजय प्राप्त करने मे समर्थ होता है। तकनीकी साधनो के बल पर अल्प श्रम से ही पर्याप्त खाद्य सामग्री और उत्पादन की अन्य वस्तुएँ प्राप्त की जाना सम्भव हो जाता है जिससे अकाल और अभाव आदि के कष्ट बहुत कम हो जाते हैं। सामाजिक सेवाओं और मनोरजन के साधनो मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप मृत्यु दर घटकर लोगो की औसत आयु बढ जाती है। आर्थिक विकास का महत्त्व सामरिक क्षेत्र मे भी प्रकट होता है। औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न देश अपनी सामरिक व प्रतिरक्षा शक्ति को भली प्रकार सुदृढ बना सकता है। आर्थिक विकास के कारण देश मे इस प्रकार के साधन जुटाना सम्भव हो जाता है जिनसे सामाजिक व्यवस्था को सुचारु ढग से विकसित किया जा सके।

इस प्रकार प्रकट है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप एक देश के सम्पूर्ण जीवन मे विकास होने लगता है। आर्थिक विकास इस भौतिक युग मे सर्वांगीण विकास की कुँजी है।

आर्थिक विकास के दोष—इस ससार मे कोई भी वस्तु सिद्धान्त या विचार सर्वथा दोषमुक्त नही माना जा सकता और आर्थिक विकास भी इसका कोई अपवाद नही है। जहाँ आर्थिक विकास एक राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए आवश्यक है वहाँ इसके कुछ दोष भी हैं जिनसे यथा-सम्भव बचते रहना चाहिए। आर्थिक विकास मे विशाल पैमाने पर उत्पादन की जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है और

उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि पर ध्यान नहीं दिया जाता। आर्थिक विकास के कारण मनुष्य का जीवन मशीनी हो जाता है। विशिष्टीकरण के कारण वह सदैव एक ही क्रिया दोहराता रहता है और इस प्रकार नीरसता का वातावरण पनपता है। पूँजी और श्रम के झगड़े भी सामाजिक-आर्थिक जीवन को अभिशप्त किए रहते हैं। पूँजीपति उद्योगों से अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए श्रमिकों का शोषण करने लगते हैं। फलस्वरूप पूँजीपतियों और श्रमिकों में विवाद उठ खड़े होते हैं जो ताला-बन्दी, हड़ताल और हिंसा का रूप ले लेते हैं। इन झगड़ों के कारण कभी-कभी तो देश की सम्पूर्ण आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था बिगड़ जाती है।

आर्थिक विकास से एकाधिकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। भौतिकवाद इतना छा जाता है कि मानवीय मूल्यों का ह्रास होने लगता है और नास्तिक मनोवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। आर्थिक विकास व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है जिसमें संयुक्त और व्यापक परिवार प्रथा समाप्त होने लगती है। व्यक्ति धीरे-धीरे इतना स्वार्थी बन जाता है कि उसे अपने परिवार और गाँव की चिन्ता नहीं रहती। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर पलायन की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप उद्योगों के केन्द्रीयकरण का भय बढ़ जाता है। महत्त्वपूर्ण उद्योग पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जाते हैं जिनसे प्राप्त होने वाले लाभ का अधिकांश भाग वे खुद ही हड़प जाते हैं। आर्थिक केन्द्रीयकरण की इस प्रवृत्ति के कारण समाज में आर्थिक कल्याण की वृद्धि नहीं हो पाती और गंदी बस्तियों, बीमारियों आदि के दोष देश में घर कर जाते हैं।

आर्थिक विकास देश में धन के असमान वितरण के लिए भी बहुत कुछ उत्तरदायी होता है। पूँजीपति और उद्योगपति औद्योगिक क्षेत्र में छा जाते हैं। वे लाभ का बहुत बड़ा भाग स्वयं हड़प जाते हैं जब कि श्रमिकों को बहुत कम भाग मिल पाता है। फलस्वरूप आर्थिक विषमताएँ पूर्वापेक्षा बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त देश के कुटीर और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। मशीनों के उपयोग के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन करके बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त करने का लालच बना रहता है। लघु और कुटीर उद्योगों की ओर पूँजीपतियों की रुचि नहीं जाती। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों की वस्तुएँ भी महँगी होती हैं जो प्रतिस्पर्द्धा में टिक नहीं पाती।

निष्कर्षतः आर्थिक विकास के अच्छे और बुरे दोनों ही पहलू हैं। कुल मिलाकर अच्छे पहलू ही अधिक सबल और ग्राह्य हैं। आर्थिक विकास के अभाव में कोई देश व समाज जिन बुराइयों और अभिशापों से ग्रस्त रहता है उनकी तुलना में आर्थिक विकास की अवस्था में पाई जाने वाली बुराइयाँ बहुत कम गंभीर और पीड़ाकारक हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास की बुराइयाँ ऐसी नहीं हैं जिनका कोई समाधान न हो सके। प्रयत्न करने पर इसकी अनेक बुराइयों को बहुत कम किया जा सकता है।

---

2 अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं की विशेषताएँ

(Characteristics of Under-developed Economies)

"एक अर्द्ध-विकसित देश अफ्रीका के जिराफ की तरह है जिसका वर्णन करना कठिन है, किन्तु जब हम उसे देखते हैं तो समझ जाते हैं ।"

—सिंगर

आधुनिक आर्थिक साहित्य मे विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओं को विकसित और अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं मे वर्गीकरण करने का चलन-सा हो गया है। पूर्व प्रचलित शब्द अर्थात् 'पिछड़े हुए' (Backward) और 'उन्नत' (Advanced) के स्थान पर अर्द्ध-विकसित एव विकसित शब्दो का प्रयोग श्रेष्ठ समझा जाने लगा है। 'पिछड़े हुए' शब्द की अपेक्षा 'अर्द्ध-विकसित' शब्द वास्तव मे अच्छे भी हैं, क्योकि इसमे विकास की सम्भावना पर बल दिया गया है ।

अर्थ-व्यवस्था का विकास एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। यह अनेक प्रकार के भौतिक और मानवीय घटको के अन्तर्सम्बन्धो एव व्यवहारो का परिणाम होता है। इसीलिए विकसित या अल्प-विकसित अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ का अन्तर स्पष्ट करना और उनके लक्षणो को सर्वमान्य रूप मे ढूढ पाना बहुत कठिन है ।

विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ अथवा देशो के ज्ञान और परिभाषा के सम्बन्ध मे प्राय इतनी कठिनाई पैदा नही होती जितनी अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ के सम्बन्ध मे। विकास के अर्थ-शास्त्र मे अर्द्ध-विकसित व्यवस्था की कोई ऐसी परिभाषा देना जिसमे इसके सब आवश्यक तत्त्व शामिल किए गए हो, अत्यन्त कठिन है। एच. डब्लू सिंगर (H W. Singer) का मत है कि अर्द्ध-विकसित देश की परिभाषा का कोई भी प्रयास समय और श्रम का अपव्यय है क्योकि "एक अर्द्ध-विकसित देश अफ्रीका के जिराफ़ की भांति है जिसका वर्णन करना कठिन है, लेकिन जब हम उसे देखते हैं तो समझ जाते हैं ।"

वस्तुत अर्द्ध-विकसित अवस्था एक तुलनात्मक व्यवस्था है। विभिन्न देशो मे उपस्थित विभिन्न समस्याओ और दशाओ के अनुसार विभिन्न अवसरो पर यह

भिन्न अर्थों को सूचित करता है। अधिक जनसख्या वाले कई देश जनसख्या वृद्धि की उच्च दर के कारण अपने-आपको अर्द्ध-विकसित कहते हैं। कम जन-सख्या और साधनो के विकास की विशाल सम्भावनाओ वाले देश पूंजी की स्वल्पता को अर्द्ध-विकास का निर्णायक तत्त्व मानते हैं। परतन्त्र देश चाहे उनमे विदेशी शासन के अन्तर्गत पर्याप्त आर्थिक विकास हुआ हो, जब तक विदेशी शासन मे रहेंगे अपने आपको अर्द्ध-विकसित कहेगे। इसी प्रकार किसी देश मे सामन्तवादी व्यवस्था की उपस्थिति 'अर्द्ध-विकसित' होने का पर्याप्त प्रमाण माना जायेगा चाहे इस प्रकार के कुछ समाजो मे लोगो को स्वीकृत न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध हो। वास्तव मे विश्व के मान-चित्र मे एक प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देश को बता सकना बडा कठिन कार्य है तथा यह इसलिए और भी कठिन है कि अर्द्ध-विकसित विश्व विभिन्न प्रकार के देशो का समूह है जिसमे स्वय मे विभिन्नतायें पाई जाती हैं।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था का आशय और प्रमुख परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Under-developed Economy)

कोई देश अर्द्ध-विकसित है या विकसित है इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि हम विकसित देश किसे मानते हैं या विकास का आधार किसे मानते हैं। प्रो एस हरबर्ट फ्रंकेल ने कहा है कि "एक देश आर्थिक दृष्टि से विकसित है या अर्द्ध-विकसित है यह उस विशिष्ट मापदड पर निर्भर करेगा जिसे व्यक्ति द्वारा विकास का आधार माना गया है। इस आधार की अनुपस्थिति या कम उपस्थिति अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की सूचक होगी।" यही कारण है कि अर्द्ध-विकसित देशो की विभिन्न आधारो पर व्याख्या की जाती है। पाल हॉफ मेन ने एक अर्द्ध-विकसित देश का निम्न शब्दो मे चित्रण किया है :—

"प्रत्येक व्यक्ति जब किसी अर्द्ध-विकसित देश को देखता है तो उसे जान जाता है। यह एक ऐसा देश होता है जिसमे निर्धनता होनी है, नगरो मे भिखारी होते हैं और ग्रामीण क्षेत्रो मे ग्रामीण जन-जीवन निर्वाह भर कर लेते है। यह एक ऐसा देश होता है जिसमे स्वय के कारखाने नही होते हैं और बहुधा शक्ति और प्रकाश की अपर्याप्त पूर्ति होती है। इसमे बहुधा अपर्याप्त सडकें, रेलें, सरकारी सेवाएँ और पिछडे हुए सचार साधन होते हैं। इसमे थोडे ही अस्पताल और उच्च शिक्षण सस्थाएँ होती हैं। इसके अधिकांश लोग लिख और पढ नही सकते हैं। सामान्य जनता निर्धन होने पर भी इसमे कुछ व्यक्ति धनी होते हैं और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। इसकी बैंकिंग प्रणाली अविकसित होती है और छोटे-छोटे ऋण, ऋणदाताओ के द्वारा प्राप्त करने होते हैं जो शोषण करते हैं। अर्द्ध-विकसित देश का एक प्रमुख लक्षण यह होता है कि बहुधा इसके सब निर्यातो मे कच्चा माल, कच्चे खनिज, फल या कुछ रेशो का उत्पादन होते है जिनमे कुछ विलासितापूर्ण दस्तकारियाँ होती

हैं। बहुधा निर्यात किए जाने वाले इन पदार्थों का उत्पादन या उत्खनन विदेशी कम्पनियों के हाथों में होता है।"

अर्द्ध-विकसित देश अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था का विवरण कुछ अन्य प्रमुख विद्वानों ने इस प्रकार किया है—

श्री पी टी बावर एव बी एस यामे के मतानुसार "अर्द्ध-विकसित देश शब्द बहुधा मोटे रूप से उन देशों या प्रदेशों की ओर सकेत करते हैं जिनकी वास्तविक आय एव प्रति व्यक्ति पूँजी का स्तर उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया के स्तर से नीचा होता है।"[1]

इसी प्रकार की परिभाषा सयुक्त राष्ट्र सघ के एक प्रकाशन मे भी दी गई है जो इस प्रकार है—

"एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय, सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना मे कम हो।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया आदि देशों की प्रति व्यक्ति आय से कम होती है उन्हे अर्द्ध-विकसित कहते हैं। ये परिभाषाएँ अर्द्ध-विकसित देश का एक अच्छा आधार प्रस्तुत करती हैं, किन्तु प्रति व्यक्ति आय ही किसी देश के विकसित और अविकसित होने का उचित मापदड नही है। प्रति व्यक्ति आय विश्व मे सबसे ज्यादा रखने वाला कुवैत केवल इसी आधार पर विकसित नही कहला सकता है।

प्रो जे. आर हिक्स के मतानुसार, "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे तकनीकी और मौद्रिक सीमाएँ व्यवहार मे उत्पत्ति और बचत के वास्तविक स्तर के बराबर नीची होती है जिसके कारण श्रम की प्रति इकाई (प्रति कार्य-शील व्यक्ति) पुरस्कार उससे कम होता है जो ज्ञात तकनीकी ज्ञान का ज्ञात साधनों पर उपयोग करने पर होता।"[3]

इस परिभाषा मे मुख्यत तकनीकी तत्त्वो पर ही अधिक जोर दिया गया है और इसमे प्राकृतिक साधन, जनसख्या आदि आर्थिक तथा अन्य अनार्थिक तत्त्वो पर जोर नहीं दिया गया है।

1 Ban-r and Yame *Economies of Under—developed Count-ies p 3*
2 United Nations *Measures for th- Economic Development of Underdeveloped Countries, p 3*
3 J R Hicks. *Contribution to the Theory of Trade Cycles*

भारतीय योजना आयोग के अनुसार "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे एक ओर अधिक या कम अश मे अप्रयुक्त मानव शक्ति और दूसरी ओर अशोषित प्राकृतिक साधनो का सह-अस्तित्व हो।"[1]

यह परिभाषा इस आधार पर अधिक अच्छी है कि इसमे अशोषित साधनो को अर्द्ध-विकास का सकेत माना गया है जो अर्द्ध-विकसित देश का एक प्रमुख लक्षण होता है, किन्तु इसमे इस बात का स्पष्टीकरण नही मिलता कि ऐसा क्यो हुआ है। इसके अतिरिक्त यदि ये साधन पूँजी, साहस आदि की कमी के कारण अशोषित हैं तब तो ठीक है किन्तु यदि आर्थिक मदी आदि के कारण मानवीय या अन्य साधन अप्रयुक्त रहते है तो यह अनिवार्य रूप से अर्द्ध-विकसित देश की पहचान नही है।

प्रो जेकब वाइनर के मतानुसार, "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे अधिक पूँजी या अधिक श्रम–शक्ति या अधिक उपलब्ध साधनो या इनम से सभी के उपयोग की अधिक सभावनाएँ होती हैं जिससे इसकी वर्तमान जनसख्या का उच्च जीवन-स्तर पर निर्वाह किया जा सके या यदि इस देश की प्रति व्यक्ति आय का स्तर पहले से ही ऊँचा हो तो जीवन स्तर को नीचा किये बिना ही अधिक जनसख्या का निर्वाह किया जा सके।"[2]

उपरोक्त परिभाषा का सार यह है कि अर्द्ध-विकसित देश वह होता है जहाँ आर्थिक विकास की और सभावनाएँ समाप्त नही हुई हो और जहाँ पर वर्तमान जनसख्या के जीवन स्तर को उच्च करने या वर्तमान जीवन स्तर पर अधिक जनसख्या का निर्वाह किये जाने की गु जाइश हो। इस परिभाषा की एक अच्छी बात यह है कि इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि ऐसे देशो मे साधनो का उपयोग करके जीवन स्तर को उच्च बनाया जा सकता है, किन्तु यह परिभाषा प्राकृतिक साधनो के पूँजी द्वारा प्रतिस्थापना को कम महत्त्व देती है जैसा कि जापान, हॉलैण्ड और स्विट्जरलैण्ड मे हुआ है। डॉ. आस्करलेन्गे के शब्दो मे, "एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमे उपलब्ध पूँजीगत वस्तुओ का स्टॉक उत्पादन की आधुनिक तकनीक के आधार पर कुल उपलब्ध श्रमशक्ति को नियोजित करने के लिए अपर्याप्त होता है।"

प्रो० नर्कसे ने भी उन देशो को अर्द्ध-विकसित देश बतलाया है जो प्रगतिशील देशो की तुलना मे अपनी जनसख्या और प्राकृतिक साधनो के सम्बन्ध मे कम पूँजी से सम्पन्न होते हैं।

डॉ० लेंगे और नर्कसे ने पूँजी की कमी पर ही जोर दिया है अत ये परिभाषाएँ एकाँगी होने के साथ-साथ विकास की सम्भावनाओ तथा सामाजिक और

1. *India's First Five Year Plan.*
2 Jacob Viner : *International Trade and Economic Development, p. 128.*

राजनीतिक दशाओ के महत्त्व के बारे मे कुछ नही बताती हैं जैसा कि स्वय प्रो० नर्क्से ने लिखा है—

"आर्थिक विकास का मानव व्यवहार, सामाजिक दृष्टिकोण, राजनीतिक दशाओ और ऐतिहासिक आकस्मिकताओ से गहरा सम्बन्ध है। पूँजी आवश्यक है किन्तु यह प्रगति की पर्याप्त शर्त नही है।" अत अर्द्ध-विकसित देशो की परिभाषा मे वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियो पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

श्री यूजीन स्टेनले ने अर्द्ध-विकसित देश की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि "यह एक ऐसा देश होता है जिसमे जन-दरिद्रता व्याप्त होती है, जो किसी अस्थाई दुर्भाग्य का परिणाम नही होकर स्थाई होती है, जिसमे उत्पादन तकनीक पुरानी और सामाजिक सगठन अनुपयुक्त होता है, जिसका अर्थ यह है कि देश की निर्धनता पूर्ण रूप से प्राकृतिक साधनो की कमी के कारण नही होती है और इसे अन्य देशो मे परीक्षित उपायो द्वारा कम किया जा सकता है।"[1]

श्री स्टेनले की उपरोक्त परिभाषा मे अर्द्ध-विकसित देश के कुछ लक्षणो की ओर सकेत किया गया है, किन्तु अर्द्ध-विकास की परिभाषा इन तीन लक्षणो के आधार पर पर्याप्त नही हो जाती। इस परिभाषा मे सामाजिक दशाओ पर भी आर्थिक विकास की निर्भरता स्वीकार की गई है।

वस्तुत प्रति व्यक्ति उत्पादन एक ओर प्राकृतिक साधनो पर और दूसरी ओर मानव व्यवहार पर निर्भर करता है। लगभग समान प्राकृतिक साधन होने हुए भी कई देशो की आर्थिक प्रगति मे अन्तर प्रतीत होता है। इसका एक प्रमुख कारण मानव व्यवहार का अन्तर है। श्री अल्फ्रेड बोन के अनुसार मानव व्यवहार विशेष रूप से जन-रुचि आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। श्री डब्ल्यू० ए० लेविस ने भी इसी बात पर बल देते हुए लिखा है कि "जन उत्साह योजना के लिए स्निग्धता देने वाला तैल और आर्थिक विकास का पेट्रोल है।" अत अर्द्ध-विकसित देशो की परिभाषा मे इस तत्त्व की भी अवहेलना नही की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध मे डॉ० डी० एस० नाग की परिभाषा उचित जान पडती है जो इस प्रकार है —

"एक अर्द्ध-विकसित देश या प्रदेश वह होता है जिसमे इसकी वर्तमान जनसख्या को उच्च जीवन स्तर पर निर्वाह करने या यदि जनसख्या बढ रही हो, तो जनसख्या वृद्धि की दर से अधिक गति से जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अधिक पूँजी, या अधिक श्रम-शक्ति या अधिक उपलब्ध या सम्भाव्य प्राकृतिक साधनो या उनके सयुक्त उपयोग के लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ हो और इसके लिए जनता मे उत्साह हो।"

1. Eugene Stanley *The Future of Under-developed Countries*, p 13

'अर्द्ध-विकसित', 'अविकसित', 'निर्धन' और 'पिछड़े हुए' देश
('Under-developed', 'Undeveloped', 'Poor' and 'Backward' Countries)

कभी-कभी इन सभी शब्दो को पर्यायवाची शब्द माना जाता है और अर्द्ध-विकसित देशो को 'अविकसित', 'निर्धन' और 'पिछड़े हुए' आदि शब्दो से सबोधित किया जाता है। किन्तु आजकल इन शब्दो मे भेद किया जाता है और अर्द्ध-विकसित शब्द ही अधिक उपयुक्त माना जाने लगा है। अधिकांश साम्राज्यवादी देशो के लेखको ने अपने उपनिवेशो के बारे मे लिखते हुए 'गरीब' या 'पिछड़े हुए' शब्दो का प्रयोग किया है। बहुधा इन शब्दो से और जिस प्रकार इनका प्रयोग किया गया है यह निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर ने विश्व को धनी और गरीब दो भागो मे विभाजित किया है, एक गरीब देश इसलिए गरीब है क्योकि इसके प्राकृतिक साधन कम हैं और उसे आर्थिक स्थिरता के उसी निम्न स्तर पर रहता है किन्तु अब यह नही माना जाता है कि इन निर्धन देशो के प्राकृतिक साधन भी कम हैं और यही इनकी निर्धनता का मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त 'निर्धनता' केवल देश की प्रति व्यक्ति निम्न आय को ही इगित करती है, अर्द्ध-विकसित देश की अन्य विशेषताओ को नही। इसीलिए 'निर्धन' एव 'पिछड़े हुए' शब्दो का प्रयोग अलोकप्रिय हो गया है। इसी प्रकार (*Undeveloped*) *शब्द भी अर्द्ध-विकसित देश का समानार्थक* माना जाता है किन्तु दोनो मे भी यह स्पष्ट अन्तर किया जाता है कि अविकसित देश वह होता है जिसमे विकास की सभावनाएँ नही होती है। इसके विपरीत अर्द्ध-विकसित देश वह होता है जिसमे विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हो। *अन्टार्कटिक, आर्कटिक और सहारा के प्रदेश अविकसित कहला सकते हैं क्योकि* वर्तमान तकनीकी ज्ञान एव अन्य कारणो से इन प्रदेशो के विकास की सभावनाएँ सीमित हैं। किन्तु भारत, पाकिस्तान, कोलम्बिया, युगांडा आदि अर्द्ध विकसित देश कहलाएँगे क्योकि इन देशो मे विकास की पर्याप्त सभावनाएँ हैं। इस प्रकार अविकसित शब्द स्थैतिक स्थिति का द्योतक है। वस्तुत किसी देश के बारे मे यह धारणा बना लेना कठिन है कि उस देश मे निरपेक्ष रूप मे साधनो की स्वल्पता है क्योकि साधनो की उपयोगिता तकनीकी ज्ञान के स्तर माँग की दशाएँ और नई खोजो पर निर्भर करती है। वस्तुत इन देशो के प्राकृतिक साधन, तकनीकी ज्ञान और उपक्रम के इन साधनो पर उपयोग नही किए जाने के कारण अधिकांश म अविकसित दशा मे होते हैं पर इनके विकास की पर्याप्त सभावनाएँ होती हैं। सयुक्त राष्ट्र सघ की एक विशेष राय के अनुसार, "सब देश, चाहे उनके प्राकृतिक साधन कैसे ही हो, वर्तमान मे अपने इन साधनो के अधिक अच्छे उपयोग के द्वारा अपनी आय को बड़ी मात्रा मे बढा सकने की स्थिति मे हैं।"

अत 'अविकसित' शब्द के स्थान पर 'अर्द्ध-विकसित' शब्द का उपयोग किया जाने लगा है। ये अर्द्ध-विकसित देश आजकल आर्थिक विकास का प्रयत्न कर रहे हैं

जिसके परिणामस्वरूप इन्हे 'विकासशील' (Developing) देश भी कहते हैं; किन्तु *सामान्यतया इन सब शब्दो को लगभग समान अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है।*

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ या लक्षण
(Characteristics of Under-developed Economies)

अर्द्ध-विकसित विश्व विभिन्न प्रकार के देशो का समूह है। इन देशो की अर्थ-व्यवस्था मे विभिन्न प्रकार के अन्तर पाए जाते हैं। किन्तु इतना सब होते भी इन अर्द्ध-विकसित देशो मे एक आधारभूत समानता पाई जाती है। यद्यपि किसी एक देश को प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देश की सज्ञा देना कठिन है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे सामान्य लक्षणो को बताना सभव है जो कई अर्द्ध-विकसित देशो मे आमतौर से पाए जाते है। यद्यपि ये सामान्य लक्षण सब अर्द्ध-विकसित देशो मे समान अशो मे नही पाए जाते और न केवल ये ही अर्द्ध-विकसित देशो के लक्षण होते हैं, किन्तु ये सब मिलकर एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था को बनाने मे समर्थ हैं। अर्द्ध-विकसित देशो के इन लक्षणो को मुख्यत निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित करके अध्ययन *किया जा सकता है—*

(अ) आर्थिक लक्षण
(ब) जनसख्या सम्बन्धी लक्षण
(स) सामाजिक विशेषताएँ
(द) तकनीकी विशेषताएँ
(ई) राजनीतिक विशेषताएँ

(अ) आर्थिक लक्षण
(Economic Characteristics)

आर्थिक लक्षणो मे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

1. अर्द्ध-विकसित प्राकृतिक साधन (Under-developed Natural Resources)—अर्द्ध-विकसित देशो का एक प्रमुख लक्षण इनके साधनो का अर्द्ध-विकसित होना है। इन देशो मे यद्यपि ये साधन पर्याप्त मात्रा मे होते हैं, किन्तु पूँजी और तकनीकी ज्ञान के अभाव तथा अन्य कारणो से इन साधनो का देश के विकास के लिए पर्याप्त और उचित विदोहन नही किया गया होता है। उदाहरणार्थ एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमरीका, आस्ट्रेलिया एव द्वीप-समूहो मे बहुत बडी मात्रा मे भूमि ससाधन अप्रयुक्त पडे हुए हैं। श्री केलोग *(Kellog)* के अनुसार उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका तथा न्यूगीनिया, मेडागास्कर, बोर्नियो आदि द्वीपो की कम से कम 20% अप्रयुक्त भूमि कृषि योग्य है जिसका कृषि कार्यों मे उपयोग करके विश्व की कृषि भूमि मे एक बिलियन एकड अतिरिक्त भूमि की वृद्धि की जा सकती है। प्रो० बोन द्वारा हाल ही मे किए गए मध्यपूर्व के आठ देशो के सर्वेक्षण से ज्ञात होता

है कि इन देशो के कुल 118 मिलियन हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि मे से केवल एक तिहाई से भी कम भूमि मे कृषि की जाती थी और 85 मिलियन एकड कृषि योग्य भूमि बेकार पडी हुई थी। श्री कालिन क्लार्क ने बतलाया है कि विश्व की वर्तमान कृषि योग्य भूमि से उपभोग और कृषि के डेनिश स्टेन्डर्ड के अनुसार 12,000 मिलियन व्यक्तियो का निर्वाह किया जा सकता है जबकि वर्तमान मे केवल 2,300 मिलियन लोगो का ही निर्वाह किया जा रहा है। स्पष्टत भूमि के ये अप्रयुक्त साधन अधिकाश मे अर्द्ध-विकसित देशो मे ही हैं।

इसी प्रकार अर्द्ध-विकसित देशो मे खनिज एव शक्ति के साधनो की सम्पन्नता है, किन्तु यहाँ इनका विकास नही किया गया है। अकेले अफ्रीका मे विश्व की सभावित जल-शक्ति के 44% साधन है, किन्तु यह महाद्वीप केवल 0·1% जल साधनो का ही उपयोग कर रहा है। श्री वोयटिन्सकी और वोयटिन्सकी के अनुसार एशिया, मध्य-अमेरिका और दक्षिण अमेरिका भी अपने जल-विद्युत साधनो के क्रमश केवल 13%, 5% और 3% भाग का ही उपयोग कर रहे है। इसी प्रकार अफ्रीका मे ताँबा, टिन और सोने के तथा एशिया मे पेट्रोल, लोहा, टिन और बाक्साइट आदि के अपार भडार हैं, किन्तु इनका भी पूरा विदोहन नही किया जा रहा है। इसी प्रकार बर्मा, थाइलैंड, इण्डोचीन तथा अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिकी देशो की वन सम्पत्ति का उपयोग नही किया गया है या साम्राज्यवादी शासको द्वारा शासक देशो के हित के कारण दुरुपयोग किया गया है।

भारत मे भी उसके खनिज सम्पत्ति, जल-साधन, भूमि-साधन और वन-साधन पर्याप्त मात्रा मे हैं, किन्तु उनका पर्याप्त विकास और उचित विदोहन नही किया गया है। उदाहरणार्थ भारत मे विश्व मे उपलब्ध लोहे का लगभग 25 प्रतिशत अर्थात् 2,160 करोड टन लौह भण्डार होने का अनुमान है, किन्तु यहाँ लोहे का वार्षिक खनन लगभग 1·70 करोड टन से कुछ ही अधिक है। इसी प्रकार 1951 तक देश मे सिंचाई के लिए उपलब्ध जल का केवल 17 प्रतिशत और कुल जल-प्रवाह का केवल 5 6 प्रतिशत ही उपयोग मे लाया जा रहा था तथा 31 मार्च, 1970 तक भी सिंचाई के लिए उपलब्ध जल का केवल 39 प्रतिशत ही उपयोग मे था।

2 **कृषि की प्रधानता और उसकी निम्न उत्पादकता (Importance of Agriculture and its Low Productivity)**—अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि की प्रधानता होती है। उन्नत देशो मे जितने लोग कृषि करते हैं, अर्द्ध-विकसित देशो मे उससे प्राय चार गुना अधिक लोग कृषि मे लगे होते है। साधारणतया 65 से 85 प्रतिशत तक लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि और उससे सम्बन्धित उद्योगो पर आश्रित रहते है। हम भारत को ही ले तो यहाँ लगभग 70 प्रतिशत लोग आज भी कृषि पर आश्रित है। अर्द्ध-विकसित देशो मे राष्ट्रीय आय का लगभग आधा या इससे भी अधिक भाग कृषि से प्राप्त होता है। प्रमुख उत्पादन खाद्य-

सामग्री और कच्चा माल रहता है। कृषि मे इतना अधिक सकेन्द्रण वस्तुत पिछड़ेपन और दरिद्रता का चिह्न है। प्रमुख व्यवसाय के रूप मे भी कृषि अधिकतर अनुत्पादक है क्योकि कृषि पुराने ढग से और उत्पादन के अप्रचलित और पिछड़े हुए तरीको से की जाती है जिससे पैदावार अनिश्चित रूप से कम रहती है और किसान प्राय. गुजारे के स्तर पर जीवित रहते हैं। कृषि पर अत्यधिक भार होने से भूमि के पट्टे, उप-विभाजन, उपखण्डन, अनार्थिक जोत, भूमिहीन ग्रामीण आदि की समस्याएँ उपस्थित रहती है। कृषि-साख की कमी रहने से कृषक प्राय ऋण-ग्रस्त होते हैं। अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि को "मानसून का जुआ" कहा जाता है। अम्र्वारट, हन्ट एव किन्टर के शब्दो मे—"इन देशो मे कृषि का मानसून पर अत्यधिक निर्भर होने से आज के राजकुमार कल के भिखारी और आज के भिखारी कल के राजकुमार बन जाते है।"

अर्द्ध-विकसित देशो मे भूमि की उत्पादकता अत्यन्त कम रहने अर्थात् कृषि का लाभदायक व्यवसाय न बन पाने का अनुमान हम कतिपय विकसित देशो के मुकाबले भारत की स्थिति की तुलना द्वारा सरलता से लगा सकते हैं—

विभिन्न देशो मे भूमि उत्पादिता, 1966–67

फसल	देश	प्रति हैक्टर भूमि उत्पादिता (00 किलोग्राम)
चावल (धान)	जापान	50 90
	अमरिका	48 50
	सोवियत सघ	28 70
	भारत	12 90
कपास	सोवियत सघ	8 30
	स० अ० गणराज्य	5 90
	अमेरिका	5 40
	भारत	1 10
गेहूँ	इग्लैण्ड	38 40
	फ्रांस	28 30
	इटली	22·00
	भारत	8 90

यदि कुल राष्ट्रीय आय मे कृषि से प्राप्त आय का प्रतिशत लें तो स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

देश	वर्ष	कुल राष्ट्रीय आय मे कृषि से प्राप्त आय का प्रतिशत
1. कनाडा	1960	7 0
2. अमेरिका	1960	4 0
3. इग्लैड	1960	4 0
4. भारत	1964	47 0

कृषि-उत्पादन की माना कम होने का एक बडा कुप्रभाव यह होता है कि बडी मात्रा मे छिपी बेरोज़गारी बनी रहती है।

3 **औद्योगीकरण का अभाव (Lack of Industrialisation)**—इन अर्द्ध-विकसित देशो का एक प्रमुख लक्षण यह है कि इनमे आधुनिक ढग के बड़े पैमाने के उद्योगो का अभाव रहता है। यद्यपि इन देशो मे उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग तो यत्र तत्र स्थापित होने लगते हैं, किन्तु आधारभूत उद्योगो जैसे मशीन, यन्त्र, स्पात आदि उद्योगों का लगभग अभाव रहता है और शेष उद्योगो के लिए भी ये मशीन आदि के लिए आयात पर निर्भर होते है। विकसित देशो मे जब कि आधुनिक उद्योगो की बडे पैमाने पर स्थापना होती है वहाँ ये देश मुख्यत प्राथमिक उत्पादन मे ही लगे रहते है। कुछ अर्द्ध-विकसित देशो मे इन प्राथमिक व्यवसायो का उदाहरण खान खोदना है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व विश्व मे टिन उत्पादन मे महत्त्व के क्रम मे मलाया, इण्डोनेशिया, बोलेविया, श्याम और चीन थे और ये सभी देश अर्द्ध-विकसित देश है। एशिया और दक्षिणी अमेरिका महाद्वीपो मे विश्व के 58% टगस्टन और 44% ताँबे का उत्पादन होता है। एशिया और अफ्रीका मे विश्व का 52% मैंगनीज और 61% क्रोमाइट का उत्पादन होता है। एशिया महाद्वीप से विश्व के पेट्रोल का एक तिहाई भाग और दक्षिणी अमेरिका से 16% प्राप्त होता है। इस प्रकार इन अर्द्ध-विकसित देशो मे प्राथमिक व्यवसायो मे ही अधिकांश जनसख्या नियोजित रहती है और औद्योगिक उत्पादन का अभाव रहता है। अग्रांकित तालिका से आर्थिक विकास और औद्योगीकरण का धनात्मक सह-सम्बन्ध स्पष्ट होता है—

राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान[1]

प्रति व्यक्ति आय वर्ग	कुल राष्ट्रीय धन का प्रतिशत			
	प्राथमिक उत्पादन	उद्योग	सेवायें	कुल
125 डॉलर से कम आय वाले देश	47	19	33	100
125 से 249 डॉलर आय वाले देश	40	25	35	100
250 से 374 डॉलर आय वाले देश	30	26	45	100
375 या अधिक डॉलर वाले देश	27	28	46	100
अधिक आय वाले विकसित देश	13	49	30	100

आधुनिक युग में किसी देश के औद्योगीकरण में शक्ति के साधनों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और प्रति व्यक्ति विद्युत शक्ति के उपयोग से भी किसी देश के औद्योगिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। अर्द्ध-विकसित देशों में प्रति व्यक्ति विद्युत शक्ति का उपयोग बहुत कम होता है जो इन देशों में औद्योगीकरण के अभाव का प्रतीक है।

4. प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low level of Per Capita Income)—अर्द्ध-विकसित अथवा विकासमान देशों का एक प्रमुख लक्षण इनकी *निर्धनता अथवा सामान्य दरिद्रता है जो प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर में झलकती* है। इस दृष्टि से विकसित और अर्द्ध-विकसित देशों में जमीन-आसमान का अन्तर है। विकसित देशों में जहाँ समृद्धि इठलाती है वहाँ अर्द्ध-विकसित देशों में निर्धनता *का नग्न नृत्य होता है।*

संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकड़ों के अनुसार सातवें दशक के शुरू में विकसित पूँजीवादी राज्यों में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 1,037 डॉलर और नवोदित स्वाधीन देशों में 83 डॉलर थी। इन आँकड़ों की तुलना करने से प्रकट होता है कि भूतपूर्व उपनिवेश और अर्द्ध-उपनिवेश अपने आर्थिक विकास में 12 गुना (1,037 83) पीछे है।[2] 1964 में जेनेवा में वाणिज्य तथा विकास सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मेलन में भाषण देते हुए कीनिया के प्रतिनिधि, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री जे० जी० कियानो ने संकेत किया था कि "सैद्धान्तिक रिपोर्टों और

1 Source *U. N World Economic Survey 1961*

2 यू० जूकोव व अन्य : तीसरी दुनिया, पृ 112

अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों में विकासमान देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 30 डॉलर, 60 डॉलर, यहाँ तक कि 100 डॉलर बताई जाती है, परन्तु विकासमान देशों के लाखों लोग वस्तुत जिन विषम परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं वे इन आँकडों से प्रकट नहीं होतीं। उनमें बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी कोई आय नहीं है। वे नहीं जानते कि कल उन्हें खाना नसीब होगा या नहीं, अथवा रात में वे कहाँ सोएँगे। पाठ्यपुस्तकों में उद्धृत प्रति व्यक्ति आय में उनका कोई हिस्सा नहीं होता है।'[1] वक्ता ने यथार्थ का बिलकुल सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें वास्तविक विषमता की ओर ध्यान आकृष्ट होता है और जिस पर औसत आय सम्बन्धी आँकडे आवरण डालते हैं।[2] विश्व बैंक के 1968 के एक सर्वेक्षण के अनुसार उस समय भारत का GNP 100 डॉलर था।

निम्न जीवन-स्तर और निम्न जीवन-आयु-स्तर (Low Standard of Living and Low Level of Life-age)—आर्थिक विषमता की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करने वाले अन्य आँकडों को लें तो भी पूँजीवादी दुनिया के अति-विकसित औद्योगिक राज्यों से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के पिछडे देशों की भिन्नता स्पष्ट प्रकट होती है। यह पता चलता है कि अर्द्ध-विकसित अथवा नवोदित स्वाधीन देशों में मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता भी भली प्रकार पूरी नहीं हो पाती। "एक मनुष्य की दैनिक आहार आवश्यकता 2,500 से 4,000 कैलोरी तक होती है, जो इस पर निर्भर करता है कि वह किस तरह का काम करता है। औसत आवश्यकता 3,000 कैलोरी निश्चित की जा सकती है। आगे दी गई तालिका पर विचार करते समय इसे ध्यान में रखना होगा। आप देखेंगे कि भूतपूर्व उपनिवेशों तथा अर्द्ध-उपनिवेशों से सम्बन्धित आँकडे हमेशा ही औसत आँकडों से और कई अवस्थाओं में तो 2,200 कैलोरी की न्यूनतम सीमा से भी कम है, जो अपर्याप्त पोषण अर्थात् भुखमरी के द्योतक हैं।"

"इन आँकडों से केवल एक ही निचोड निकाला जा सकता है, वह यह कि भूतपूर्व उपनिवेशों और अर्द्ध-उपनिवेशों के निवासी अपौष्टिक भोजन ग्रहण करते हैं जिसका परिणाम उनके बीच व्याप्त कुपोषण तथा ऊँची मृत्यु-दर है। बेरीबेरी, सूखे का रोग, स्कर्वी, पिलैग्रा, क्वाशिओर्कोर आदि अनेक रोग सीधे अपौष्टिक भोजन तथा पौष्टिकता की कमी के फलस्वरूप होते हैं। मिसाल के लिए, मध्य पूर्व में पाँच साल तक के बच्चों में से एक तिहाई इन्हीं रोगों के शिकार होकर मरते हैं। अफ्रीका में 6 महीने से 6 साल तक की उम्र के 96 प्रतिशत बच्चों को प्रोटीन की कमी से पैदा होने वाली क्वाशिओर्कोर नामक बीमारी हो जाती है।"

1 Proceedings of the United Nations Conference on Trade and Development, Geneva, March 23—June 16, 1964, Vol. II, Policy Statements, p 251 ('तीसरी दुनिया' से उद्धृत)

2. यू० जूकोव एवं अन्य : तीसरी दुनिया, पृ. 112.

सारांश रूप मे प्रति व्यक्ति निम्न आय लोगो के निम्न जीवन स्तर की सूचक है। अर्द्ध-विकसित देशो मे खाद्य पदार्थ उपभोग की प्रमुख वस्तु है जिस पर लोगो की आय का 65 से 70 प्रतिशत तक खर्च होता है जबकि उन्नत देशो मे लगभग 20 प्रतिशत। अर्द्ध-विकसित देशो की अधिकांश जनसख्या के भोजन मे मांस, अण्डा, मछली, दूध, मक्खन आदि पोषक खाद्य पदार्थ बिलकुल नही होते। लोग बडी अस्वास्थ्यप्रद परिस्थितियो मे रहते हैं और समुचित चिकित्सा सुविधाएँ भी उपलब्ध नही होती। वास्तव मे निर्धनता अर्द्ध-विकसित देशो का एक ऐसा रोग है जो उन्हे विभिन्न सकटो मे उलझाए रखता है। प्रो० कैरनक्रास ने ठीक ही लिखा है कि अर्द्ध-विकसित देश विश्व अर्थ-व्यवस्था की गदी बस्तियाँ है। प्रति व्यक्ति आय कम होने से ही अन्ततोगत्वा लोगो की कार्य-क्षमता पर विपरीत प्रभाव पडता है।

खाद्य खपत और जीवन-अवधि के दो महत्त्वपूर्ण सूचको को लेकर विकसित पूँजीवादी राज्यो और पिछड़े देशो के बीच जो भारी अन्तर है, उसे सोवियत सघ की विज्ञान अकादमी के सदस्य यू० ज़ूकोव एव उनके सहलेखको ने नीचे दी गई दो तालिकाओ के आँकडो से बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है—

सातवें दशक में कुछ देशों मे खाद्य-खपत

(देश मे उत्पादित + आयातित खाद्य-पदार्थ प्रति दिन प्रति व्यक्ति)

	कैलोरी	देश	प्रोटीन (ग्राम)
	3,510	न्यूजीलैण्ड	109
	3,270	ग्रेट ब्रिटेन	89
	3,140	आस्ट्रेलिया	90
	3,100	सयुक्त राज्य अमेरिका	92
	3,100	कनाडा	94
	3,000	जर्मन सघात्मक गणराज्य	80
औसत आवश्यकता— 3,000 कैलोरी			औसत आवश्यकता— 80 ग्राम
	2,690	ब्राजील	65
	2,620	सयुक्त अरब गणराज्य	77
निम्नतम निरापद— 2,500 कैलोरी			
	2,490	वेनिजुएला	66
	2,330	सीरिया	78

2,200 कैलोरी— इससे नीचे अपर्याप्त पोषण की कैलोरी स्थिति आती है	देश	प्रोटीन (ग्राम)
2,100	लीबिया	53
2,050	पेरू	51
2,040	भारत	53
1,980	पाकिस्तान	44
1,830	फिलिपाइन	43

सातवें दशक मे विकसित पूंजीवादी राज्यों और नवोदित स्वाधीन राज्यों मे तुलनात्मक (प्रति एक हजार आबादी के हिसाब से)

विकसित पूंजीवादी राज्य	
पश्चिमी यूरोप	7 8—12 5
उत्तरी अमेरिका	7 7—8 4
जापान	7 3
आस्ट्रेलिया	8 6
स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेश और अर्द्ध-उपनिवेश	
एशिया	19—24
अफ्रीका	25 6—33 3
लैटिन अमेरिका	6·7—17 0

सातवें दशक मे कुछ इलाकों मे औसत जीवन-अवधि	
उत्तरी अमेरिका	70-73
आस्ट्रेलिया	70-73
पश्चिमी यूरोप	68-70
लैटिन अमेरिका	50-55
एशिया	40-50
अफ्रीका	30-40

नोट . कुछ अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी देशो मे औसत जीवन-आयु उसी स्तर पर है, जिसपर प्राचीन रोम के समय मे थी—30 वर्ष।"[1]

1. यू० जूकोव एव अन्य : तीसरी दुनिया, पेज 114-115.

5 पूँजी की कमी (Deficiency of Capital)—अर्द्ध-विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्थाएँ पूँजी मे निर्धन (Capital Poor) और कम बचत और विनियोग करने वाली (Low Saving and low investing) होती है । देश के साधनो के उचित उपयोग नही होने और साधनो के अविकसित होने के कारण पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन के साधनो का सृजन नही हो पाता और साथ ही इसी कारण वहाँ की पूँजी की मात्रा वर्तमान तकनीकी ज्ञान के स्तर पर साधनो के उपयोग और आर्थिक विकास की आवश्यकताओ से बहुत कम होती है । किन्तु इन देशो मे न केवल पूँजी की ही कमी होती है अपितु पूँजी निर्माण की दर (Rate of Capital Formation) भी बहुत निम्न होती है । इन अर्द्ध-विकसित देशो मे आय का स्तर बहुत नीचा होता है अत बचत की मात्रा भी कम होती है । स्वाभाविक रूप से बचत की मात्रा कम होने का परिणाम कम विनियोग और कम पूँजी निर्माण होना है । इन अर्द्ध-विकसित देशो मे उपभोग की प्रवृत्ति (Propencity to Consume) अधिक होती है और आर्थिक विकास के प्रयत्नो के फलस्वरूप आय मे जो वृद्धि होती है उसका अधिकाँश भाग उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है । बढी हुई आय मे से बचत की मात्रा नहीं बढने का एक कारण जैसा कि श्री नर्कसे ने बतलाया है प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration effect) है जिसके अनुसार व्यक्ति अपने समृद्धशाली पडोसी के जीवन स्तर को अपनाने का प्रयास करते हैं । इसके साथ ही इन देशो मे जनसख्या मे वृद्धि होती रहती है । इन सब कारणो से उत्पादन के लिए उपलब्ध घरेलू बचतें बहुत कम होती हैं । डॉ ओन की गणना के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्रो की 90% जनसख्या के पास व्यय के ऊपर आय का कोई आधिक्य नही होता ।

इस प्रकार अर्द्ध विकसित देशो मे बचत की दर कम होती है जिससे विनियोग के लिए पूंजी प्राप्त नही होती । जो कुछ थोडी बहुत बचत होती है वह उच्च आय वाले वर्गो मे होती है जो इन्हे विदेशी प्रतिभूतियो मे विनियोजित करना चाहते हैं जिनमे जोखिम कम होती है । अर्द्ध-विकसित देशो की विनियोग की आवश्यकताओ की इस कमी को विदेशी पूंजी के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया जाता है, किन्तु इन देशो की साख, भुगतान की योग्यता और राजनैतिक स्थिति इस दृष्टि से बहुत उत्साहवर्द्धक नही होती । अत अर्द्ध-विकसित देशो मे पूंजी निर्माण की दर 5–6% होती है । इसके विपरीत विकसित देशो मे कुल राष्ट्रीय आय के 15 से 20% तक कुल विनियोग होता है । श्री कालिन क्लार्क के कुछ वर्षों पूर्व के एक अध्ययन के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और पश्चिमी यूरोप के देशो मे पूंजी निर्माण की दर 15 से 18%, स्वेडन मे 17%, नार्वे मे 25% थी जबकि यह भारत मे केवल 6% ही थी ।

(6) निर्यातो पर निर्भरता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रतिकूलता—अर्द्ध-विकसित देशो का एक प्रमुख लक्षण निर्यातो पर उनकी अत्यधिक निर्भरता है ।

अधिकांश पिछड़े देशों से कच्चा माल भारी मात्रा में निर्यात किया जाता है। यू. जूकोव के अनुसार, "अधिकांश देश विश्व-मण्डियों में अपनी कृषि उपज बेचते हैं और औद्योगिक माल खरीदते हैं।" सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के सदस्य यू. जूकोव और उनके सह-लेखकों ने अग्रिम तालिका में 24 देशों के नाम सम्मिलित किए हैं जो उपनिवेश अथवा अर्द्ध-उपनिवेश रह चुके हैं पर आज स्वाधीन हैं अर्थात् जो अर्द्ध-विकसित देशों की पंक्तियों में हैं। इनमें से प्रत्येक के सामने ऐसी वस्तु का उत्पादन सम्बन्धी आंकड़ा प्रस्तुत किया गया है, जिसका उसकी अर्थ-व्यवस्था में विशेष महत्त्व है। देश के निर्यात तथा राष्ट्रीय आय में भी उसका हिस्सा दिखाया गया है। इन आंकड़ों से यह पुष्टि होती है कि इन देशों का आर्थिक ढांचा अधिकांशतः एक ही फसल पैदा करने वाला एकांगी है। साथ ही इन आंकड़ों से तीसरी दुनिया के अर्द्ध-विकसित देशों तथा औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध विकसित पूंजीवादी देशों के बीच वर्तमान सम्बन्धों के आर्थिक ढांचे के एक पहलू पर भी प्रकाश पड़ता है और हमें पता चलता है कि दोनों को पृथक् करने वाली आर्थिक खाई चौड़ी होती जा रही है।

विकासमान देशों की अर्थव्यवस्था और निर्यात का एकांगी विशेषीकरण[1]

देश	मुख्य पैदावार और निर्यात	निर्यात से प्राप्ति, प्रतिशत में	
		कुल निर्यात से हुई प्राप्ति का भाग	कुल राष्ट्रीय आय का भाग
कुवैत	खनिज तेल	99	97
इराक	खनिज तेल	99	40
सेनेगाल	मूंगफली	92	—
वेनिजुएला	खनिज तेल	91	55
सऊदी अरब	खनिज तेल	90	83
नाइजीरिया	मूंगफली	87	—
ईरान	खनिज तेल	85	33
कोलम्बिया	कॉफी	74	29
बर्मा	चावल	74	26
हैटी	कॉफी	77	25
साल्वेडोर	कॉफी	73	—
ग्वाटेमाला	कॉफी	73	25
मिस्र	कपास	70	18
पनामा	केला	67	12

1 यू. जूकोव एवं अन्य तीसरी दुनिया, पृष्ठ 120-121

देश	मुख्य पैदावार और निर्यात	निर्यात से प्राप्ति, प्रतिशत मे कुल निर्यात से हुई प्राप्ति की माँग	कुल राष्ट्रीय आय का भाग
श्रीलका	चाय	66	41
घाना	कोकोआ	66	40
चिली	ताम्बा	63	20
मलाया	रबड	62	40
लाइबेरिया	रबड	62	—
ब्राजील	कॉफी	62	12
पाकिस्तान	जूट	58	9
उरूग्वे	ऊन	58	9
बोलीविया	टीन	57	29
इक्वेडोर	केला	56	25

जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सवाल है, गैर-समाजवादी दुनिया के विदेश व्यापार मे विकासमान देशो का हिस्सा 1953 के 28 प्रतिशत से गिरकर 1966 मे 21 प्रतिशत रह गया था। इस बीच इनका कर्ज बढता जा रहा है और उनकी स्वर्ण तथा मुद्रानिधि कम होती जा रही है।

यू. जूकोव ने अपने अध्ययन मे आगे लिखा है—"1964 मे जेनेवा मे हुए वाणिज्य एव विकास सम्बन्धी सयुक्त राष्ट्र सघ के सम्मेलन ने 1970 के पूर्वानुमान सहित कुछ दस्तावेजे प्रचारित की थी। अन्य बातो के साथ-साथ उनमे यह चेतावनी भी दी गई थी कि 1970 तक विकासमान देशो के निर्यात का मूल्य आयात के मूल्य की अपेक्षा 9 अरब से 13 अरब डॉलर कम होगा। इसके अलावा उन्हे ऋण को निबटाने, कर्ज का ब्याज चुकाने तथा विदेशी कम्पनियो को प्राप्त होने वाले मुनाफे तथा लाभांश की रकम को अदा करने के लिए करीब 8 अरब डॉलर की और जरूरत पडेगी। इस हिसाब को लगाने वालो ने सुझाव दिया था कि तीसरी दुनिया के बकाये मे जो भारी कमी है, उसकी पूर्ति अशत नूतन विदेशी पूँजी-निवेश और सरकारी ऋणो से की जा सकती है। यह आशा प्रकट करते हुए वे स्पष्टत काफी आशावादी थे, क्योंकि उनके अनुसार इन साधनो से होने वाली प्राप्तियाँ 12 अरब डॉलर तक पहुँच सकती है। यदि उनका तखमीना ठीक साबित हो, तो भी 5 अरब से 9 अरब डॉलर तक की कमी बनी रहेगी। परन्तु इससे भी अधिक निराशाजनक पूर्वानुमान लगाया गया है, सयुक्त राष्ट्र सघ के कुछ विशेषज्ञो के मतानुसार 1975 तक विकासमान देशो को केवल अपने आयात के भुगतान के लिए शायद दसियो अरब डालर की कमी का सामना करना पड सकता है।"[1]

1. Ibid, p 121-122

स्तर नीचा होता है। जिससे बचत दर और परिणामस्वरूप विनियोग दर कम होती है। फलस्वरूप उत्पादकता भी कम होती है और इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

9 बाजार की अपूर्णताएँ (Imperfections of the Market)—डॉ डी एस नाग के अनुसार, "आर्थिक गत्यात्मकता मे साधनो के अनुकूलतम आवटन और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे अधिकतम उत्पादक क्षमता प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है ......किन्तु स्थिर अर्थव्यवस्था मे कई बाजार की अपूर्णताएँ इसे 'उत्पादन सीमा' (Production Frontier) की ओर बढन से रोकती है।" निर्धन देश इस दृष्टिकोण से स्थिर अर्थव्यवस्था वाले होते हैं। जाति, धर्म, स्वभाव, प्रवृत्तियो की भिन्नता, *निर्धनता, अशिक्षा, यातायात के साधनो का अभाव आदि श्रम की गतिशीलता मे* बाधा पहुँचाते है। इसी प्रकार पूँजी की गतिशीलता भी कम होती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे साधनो की इस गतिहीनता के अतिरिक्त एकाधिकारिक प्रवृत्तियाँ, देश-विदेश के बाजारो का ज्ञान नही होना, बेलोच आर्थिक ढाँचा, विशिष्टीकरण का अभाव, पिछडी हुई समाज व्यवस्था आदि के कारण साधनो का सतुलित और उचित आवटन नही हो पाता है। अर्थव्यवस्था गतिहीन होती है जिससे इसके विभिन्न क्षेत्र के मूल्य आय के प्रति सवेदनशील नही होते। इस प्रकार साधनो का असन्तुलित सयोग, अर्द्ध-विकसित देशो के अर्द्ध-विकास का कारण होता है।

10 आर्थिक विषमता (Economic Disparities)—अर्द्ध-विकसित देशो मे व्यापक रूप मे धन और आय की विषमता तथा उन्नति के अवसरो की असमानता पाई जाती है। देश की अधिकाँश सम्पत्ति, आय और उत्पत्ति के साधनो पर एक छोटे से समृद्ध वर्ग का अधिकार होता है जबकि देश के बहुत बडे निर्धन वर्ग को आय का थोडा सा भाग प्राप्त होता है। इसी प्रकार प्रगति के अवसर भी योग्यता की अपेक्षा जाति और आर्थिक क्षमता पर निर्भर करते है। धनिक वर्ग मे बचत क्षमता अधिक होती है जिसके द्वारा और अधिक धन कमाने के साधन इनके हाथ मे आते जाते हैं। निर्धन वर्ग को लाभ पहुँचाने वाले कार्यों जैसे, सामाजिक सुरक्षा, समाज सेवाओ, श्रम-सघो, प्रगतिशील करारोपण आदि सस्थाएँ अधिक विकसित नही होती हैं। परिणामस्वरूप, इन निर्धन देशो मे धनी देशो की अपेक्षा व्यापक आर्थिक विषमता पाई जाती है। प्रो. साइमन कुजनेट्स के अग्रांकित अनुमान इस तथ्य के परिचायक है—

देश	सम्पूर्ण आय का जनसख्या के 20% धनिक वर्ग को प्राप्त होने वाला प्रतिशत	सम्पूर्ण आय का जनसख्या के 70% निर्धन वर्ग को प्राप्त होने वाला प्रतिशत
विकसित देश		
स. रा. अमेरिका	44	34
ब्रिटेन	45	35
अर्द्ध विकसित देश		
भारत	55	28
श्रीलका	50	30

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विकसित देशों की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक असमानता अधिक है। प्रो महालनवीस रिपोर्ट के अनुसार सन् 1955-56 में देश के 5% लोगों के पास देश की कुल आय का 23% भाग था और इसमें भी सर्वोच्च वर्ग के 1% व्यक्तियों को 11% आय प्राप्त होती थी। इसके विपरीत सबसे निम्न वर्ग के 25% लोगों को समस्त आय का केवल 10% भाग प्राप्त होता था।

(ब) जनसंख्या सम्बन्धी लक्षण
(Demographic Characteristics)

समस्त अर्द्ध विकसित देशों में जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ समान नहीं पाई जाती। ये देश जनसंख्या के घनत्व, आयु संरचना और जनसंख्या में परिवर्तन की दर में भी भिन्नता रखते हैं। बावर एवं यामे के अनुसार भारत और पाकिस्तान में सन् 1800 के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि की दर कई पश्चिमी देशों की जनसंख्या वृद्धि की दरों से भिन्न नहीं रही है। इसके अतिरिक्त अधिक जनसंख्या वाले देशों की जनसंख्या वृद्धि की दर ही सर्वाधिक हो, ऐसी बात नहीं है। फिर भी अर्द्ध विकसित देशों की जनसंख्या सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1 जनसंख्या की अधिकता (Over Population)—कई अर्द्ध-विकसित देशों की जनसंख्या अधिक होती है। यद्यपि इन अधिक जनसंख्या वाले देशों के लिए भी निरपेक्ष (Absolute) रूप में अधिक आबादी वाले देश कहना उचित नहीं है, क्योंकि जनसंख्या की अधिकता या न्यूनता (Over population or under population) को उस देश के प्राकृतिक साधनों के सन्दर्भ में देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी अर्द्ध विकसित देश जनसंख्या की समस्या से ग्रसित नहीं हैं। लेटिन अमेरिका और आस्ट्रेलिया कम जनसंख्या (Under Population) वाले देश हैं। अफ्रीका महाद्वीप भी तकनीकी ज्ञान के वर्तमान स्तर पर कम जनसंख्या वाला क्षेत्र ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार भारत आदि कुछ देशों में अधिक जनसंख्या हो सकती है किन्तु समस्त अर्द्ध-विकसित देश अधिक जनसंख्या के भार से ग्रस्त नहीं हैं।

2 जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर (High rate of population growth)—अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर भी अधिक है। इकाफे क्षेत्र के 17 देशों में से 8 देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर 2% और 3% के मध्य है और कुछ देशों की इससे भी अधिक है। लेटिन अमेरिका में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसके विपरीत विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर कम है। अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की उच्च दरों का कारण जन्म-दर का ऊँची होना और मृत्यु दर का कम होना है।

3 जीवनावधि की अल्पता (Low life Longevity)—जीवनावधि का आशय देशवासियों की औसत आयु है। अर्द्ध-विकसित देशों में आय की कमी के कारण जीवन स्तर नीचा होता है और निर्धनता तथा आर्थिक विषमताओं की अधिकता के कारण औसत आयु कम होती है। वस्तुतः प्रति व्यक्ति आय और

जीवनावधि मे सकारात्मक सह सम्बध होता है यही कारण है कि जहाँ विकसित देशो मे लोग अधिक समय तक जीवित रहते हैं, वहाँ अर्द्ध विकसित देशो मे औसत आयु बहुत कम होती है। अर्द्ध विकसित देशो मे जीवनावधि कम होने का परिणाम है—धनी देशो की अपेक्षा इन देशो मे अधिक व्यक्ति छोटी आयु मे मर जाते हैं एव इस प्रकार कार्य करने की अवधि भी कम ही होती है।

4 आयु वितरण (Age distribution)—अर्द्ध विकसित देशो की जनसख्या मे कम उम्र वाले लोगो का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है और इनमे बालको की सख्या अधिक होती है। एशिया अफ्रीका और लेटिन अमेरिकी देशो मे जो अर्द्ध-विकसित क्षेत्र हैं 15 वर्ष से कम आयु वाली सख्या कुल जनसख्या का 40% है जबकि सयुक्तराज्य अमेरिका और इग्लैण्ड आदि मे यह अनुपात केवल 23 से 25% तक है। इस प्रकार इन देशो मे अनुत्पादक उपभोक्ताओ का भाग अधिक होता है।

5 सक्रिय जनसख्या का भाग कम होना (Less active population)—अर्द्ध विकसित देशो की जनसख्या मे बालको का अनुपात अधिक होने के कारण सक्रिय जनसख्या का भाग कम होता है। यहा कार्य न करने वाले प्राणियो का भाग अधिक होता है। बालको और अनुत्पादक व्यक्तियो का अनुपात अधिक होने के कारण उनके जन्म पालन पोषण आदि पर अधिक व्यय होता है और अर्थ-व्यवस्था पर बोझ बढ जाता है। भारत मे सन् 1961 मे 14 वर्ष तक का आयु-वर्ग जनसख्या का 41% था जबकि जर्मनी मे 21% और फ्रास मे 24 7% था।

6 ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता (Pre dominance of Rural Sector)—अर्द्ध विकसित देशो मे ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता रहती है। इन देशो की अधिकांश जनता ग्रामो मे निवास करती है और ग्रामीण व्यवसायो जैसे कृषि, वन मत्स्य पालन आदि मे जीविका निर्वाह करती है। आर्थिक विकास के साथ साथ इस स्थिति मे परिवर्तन होता है। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के अनुपात मे खाद्यान्नो की माँग मे वृद्धि नही होती और दूसरी ओर कृषि मे पूजी के अधिक उपयोग के कारण गहन और विस्तृत दोनो प्रकार की कृषि प्रणालियो द्वारा कृषि उत्पादन बढता है। परिणामस्वरूप कृषि एव ग्रामीण व्यवसायो मे जनसख्या का अनुपात कम होता जाता है और दूसरी ओर औद्योगीकरण के कारण बड़े बड़े नगरो का विकास होता है और शहरी जनसख्या का प्रतिशत बढता जाता है।

(स) सामाजिक विशेषताएँ (Social Characteristics)

अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे आर्थिक विकास की दृष्टि से पाए जाने वाली मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1 अर्द्ध विकसित मानव पूँजी (Under-developed human capital)—आर्थिक विकास म मानव पूँजी का निर्धारक महत्व है। विकसित मानवीय पूँजी अर्थात् स्वस्थ शिक्षित कुशल एव नैतिकता सम्पन्न अग्रगामी आर्थिक विकास म बहुत सहायक होते हैं किन्तु दुर्भाग्यवश अर्द्ध विकसित देशो म यह मानव पूँजी भी अर्द्ध विकसित ही होती है। देश म वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का तथा कुशल श्रमिको

का अभाव होता है । स्वास्थ्य का स्तर भी प्राय नीचा होता है । लोगो मे विवेकपूर्ण विचारधारा का भी अभाव होता है। इसके अतिरिक्त धनाभाव के कारण लोगो के विकास के लिए अधिक पूंजी लगाना सम्भव नही होता । उदाहरणार्थ, भारत मे जहाँ वैज्ञानिक अनुसधान पर प्रति व्यक्ति लगभग 15 पैसे वार्षिक व्यय किया जाता है वहाँ अमेरिका और रूस मे यह व्यय राशि क्रमश लगभग 154 रुपये और 110 रुपये है ।

2 अन्य सामाजिक विशेषताएँ–अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाएँ अनेक सामाजिक दोषो से ग्रस्त होती हैं । प्राय समाज विभिन्न वर्गों मे विभाजित होता है और ये वर्ग अपने अपने रूढिगत परम्पराओ पर आचरण करते हैं तथा नवीन प्रयत्नो को सरलता से एव प्रसन्नतापूर्वक अपनाने को तैयार नही होते। समाज मे गहनो का प्रयोग लोकप्रियता के लिए होता है । स्त्रियो के अतिरिक्त पुरुष भी गहन पहिनना पसन्द करते हैं । रीति रिवाज बहुत महँगे होते हैं जिन्हे निभाने मे आय का बडा अश व्यय करना पडता है । फलस्वरूप बचत की मात्रा कम हो जाती है और पूँजी का निर्माण नही हो पाता । स्त्रियो को पुरुषो की अपेक्षा गौण स्थान प्राप्त होता है । उनकी जाति पर तरह तरह के अकुश होते हैं । आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पराधीनता की बेडियो मे जकडे रहने के कारण स्त्रियाँ समाज के उत्थान मे सहायक नही हो पाती । सामाजिक स्तर (Status) का भी विशेष महत्त्व होता है । मजदूरी आदि के निर्धारण मे सविदा की अपेक्षा परम्पराओ का प्रभाव अधिक पडता है । इन सब बातो का कुल मिला कर यह प्रभाव होता है कि अर्द्ध विकसित देश की अर्थव्यवस्था तेजी से आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर नही हो पाती ।

(द) तकनीकी विशेषताएँ (Technological Characteristics)

अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे उत्पादन की प्राचीन परम्परागत विधि का उपयोग किया जाता है । फलस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन विकसित राष्ट्रो की अपेक्षा बहुत कम रहता है । तकनीकी और सामान्य दोनो ही प्रकार की शिक्षा का अभाव होने के कारण अर्द्ध विकसित देशो मे विकसित देशो की अपेक्षा उत्पादन मे बहुत अधिक पिछडापन रहता है । परिवहन और सचार साधनो का अभाव भी अर्थव्यवस्था को पीछे धकेलता रहता है । प्राविधिक ज्ञान के अभाव के कारण अकुशल श्रमिको की सख्या अधिक होती है और इसलिए आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील अर्द्ध-विकसित देशो को तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के लिए विकसित देशो का मुँह देखना पडता है । वास्तव मे प्राविधिक प्रगति और आर्थिक विकास एक दूसरे के कारण और परिणाम है । अर्द्ध विकसित देशो मे जहाँ तकनीकी प्रगति के कारण द्रुत आर्थिक विकास नही हो पाता वहाँ अपर्याप्त आर्थिक साधनो के कारण तकनीकी प्रगति के लिए अधिक प्रयास करना भी सम्भव नही हो पाता ।

(इ) राजनीतिक विशेषताएँ (Political Features)

राजनीतिक क्षेत्र मे अर्द्ध विकसित राष्ट्रो की स्थिति प्राय बडी दयनीय होती है । ये राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से प्राय कमजोर होते हैं और उन पर अन्य देशो के

दबाव अथवा आक्रमण का सदैव भय बना रहता है। समुचित साधन उपलब्ध न होने के कारण देश की रक्षार्थ आधुनिक शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित सैनिक शक्ति का अभाव भी बहुत कष्टप्रद होता है। जनता गरीब होने के कारण अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मे ही लगी रहती है और राजनीतिक अधिकारो के प्रति विशेष सजग नही होती। अधिकाँश व्यक्तियो मे यथार्थ रूप मे राजनीतिक अधिकारो के बारे मे अज्ञानता ही पाई जाती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रथम तो मध्यम वर्ग का अभाव पाया जाता है और यदि यह वर्ग होता भी है तो सामान्यत बहुत निर्बल होता है। प्राय विकसित अर्थ व्यवस्थाओ मे मध्यम वर्ग के इस अभाव की समस्या नहीं होती। आर्थिक विकास की दृष्टि से यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि अधिकाँशत मध्यम वर्ग से ही साहसी, कुशल प्रशासक और योग्य व्यक्ति प्राप्त होते हैं।

(ई) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics)

अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ की अन्य उल्लेखनीय विशेषताओ मे हम योग्य प्रशासन के अभाव, उत्पत्ति के साधनो मे असमानता स्थिर व्यावसायिक ढांचे दोषपूर्ण प्राशुल्किक व मौद्रिक सगठन आदि को ले सकते है। इन देशो मे जो प्रशासनिक यन्त्र होता है वह प्राय कुशल और योग्य नही होता। अधिकारीगण व्यक्तिगत स्वार्थो को ऊँचा स्थान देते हैं। ईमानदार अधिकारियो के अभाव मे आर्थिक विकास के साधनो का दुरुपयोग होता है और राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध होती है।

उत्पत्ति के साधनो मे असमानता होने से आशानुकूल उत्पादन सम्भव नहीं होता। विकासशील अर्थव्यवस्थाओ के विपरीत अर्द्ध विकसित देशो मे उत्पत्ति के साधनो मे वांछित गतिशीलता नही पाई जाती। फलस्वरूप राष्ट्र की अर्थव्यवस्था मे अधिकतम उत्पादन सम्भव नही हो पाता। अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ का व्यावसायिक ढांचा प्राय स्थिर रहता है। इस कारण भी उत्पत्ति के साधनो मे गतिशीलता नही पाई जाती। परिणामत न तो उद्योगो मे विशिष्टीकरण ही हो पाता है और न देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

ऐसी अर्थव्यवस्थाओ मे प्राशुल्किक और मौद्रिक सगठन प्राय दोषपूर्ण होता है। राजस्व प्राय अप्रत्यक्ष करो के माध्यम से प्राप्त होता है जिनकी प्रकृति अधोगामी (Regressive) होती है। प्राय के साधन के रूप मे प्रत्यक्ष करो का महत्त्व कम होता है। प्रगतिशील कर प्राय नही पाए जाते। कर-सग्रह विधि मितव्ययी नही होती और कर अपवचन भी बहुत कम होता है। मुद्रा बाजार प्राय अविकसित होते है। सरकारी मौद्रिक नीति परिस्थितिवश प्राय इतनी दुर्बल होती है कि देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढग से नियन्त्रित नही कर पाती।

निष्कर्षत हम यही कह सकते हैं कि प्राय उपरोक्त सभी विशेषताएँ अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे न्यूनाधिक मात्रा मे पाई जाती हैं। विश्व के समस्त अर्द्ध-विकसित देशो की सम्मिलित ढग से एक प्रकार की विशेषताएँ बतलाना बहुत कठिन है क्योंकि विभिन्न देशो की आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी अवस्थाएँ व प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि इन देशो मे विकास की पद्धतियाँ, गतियाँ

जनसंख्या की विशेषताएँ और आन्तरिक परिस्थितियाँ भी भिन्न भिन्न हैं तथापि इन भिन्नताओं के बावजूद अधिकांश परिस्थितियों में एक बड़ी मात्रा तक उनकी विशेषताओं में एकता व समानता पाई जाती है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर हम अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं को, विकसित अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न करके भली प्रकार पहिचान पाते हैं।

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याएँ
(Problems of Under-Developed Countries)

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याएँ निम्नलिखित वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—

(1) आर्थिक समस्याएँ
(2) सामाजिक समस्याएँ
(3) प्रशासनिक समस्याएँ,
(4) राजनीतिक समस्याएँ,
(5) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ,

आर्थिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देश अनेक आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हैं, जैसे—

(1) बचत एवं पूँजी-निर्माण की समस्या, (2) निर्धनता का विषैला कुचक्र, (3) उपभोग और घरेलू बाजार की अपर्याप्तता, (4) समुचित आर्थिक रचना का न होना, (5) कृषि एवं भूमि से सम्बन्धित बाधाएँ तथा (6) बेरोजगारी।

अर्द्ध विकसित देशों में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, अतः बचत नहीं हो पाती। बचत न होने से पूँजी का वांछित निर्माण नहीं होता फलस्वरूप आर्थिक विकास के क्रिया कलाप गति नहीं पाते। प्रति व्यक्ति आय कम होने से देश में उपभोग की मात्रा कम होती है, परिणामतः घरेलू बाजार का क्षेत्र सीमित रहता है अन्ततोगत्वा देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आय कम होने से बचत और पूँजी निर्माण को आघात पहुँचता है और माँग व उपभोग के कम होने से पूँजी विनियोग के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह पाता। लघु पैमाने पर उत्पादन कार्य होने से बड़े उत्पादन की बचत सम्भव नहीं हो पाती। समुचित आर्थिक रचना का अभाव इन समस्याओं को और भी विषम बना देता है। आर्थिक संरचना में रेलों सड़कों परिवहन के अन्य साधनों, चिकित्सालयों, स्कूलों, बिजली, पानी, पुलों, आदि को सम्मिलित किया जाता है। यदि इन साधनों की समुचित व्यवस्था नहीं होती तो आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। कृषि एवं भूमि से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ अर्द्ध विकसित देशों को ग्रस्त किए रहती हैं। प्रायः यह देखा गया है कि अर्द्ध-विकसित देश कृषि पर अधिक दबाव, कृषि जोतों के उप-विभाजन व उप-खण्डन, कृषि ऋण, अधिक लगान, सिंचाई साधनों के अभाव, कृषि विपणन की असुविधा, प्रति इकाई कम उपज, सुख सुविधाओं की कमी आदि विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त रहती हैं। आर्थिक विकास अवरुद्ध होने से देश में बेरोजगारी की समस्या खड़ी हो जाती है। अर्द्ध-विकसित देशों में बेरोजगारी के अतिरिक्त अर्द्ध बेरोजगारी (Under-employment) अथवा अदृश्य बेरोजगारी (Disguised un employment) की समस्या भी विशेष रूप से गम्भीर होती है।

सामाजिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देश विभिन्न सामाजिक समस्याओं से ग्रसित रहते है। आर्थिक विकास की दृष्टि से इन देशों की मूलभूत सामाजिक समस्याएँ निम्नलिखित होती हैं—(1) जनसख्या मे वृद्धि और जनसख्या का निम्न गुण स्तर होना, (2) सामाजिक और सस्थागत बाधाएँ व रूढियाँ, एव (3) कुशल साहसियों का अभाव।

अर्द्ध-विकसित देशो की प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्या जनसख्या की तीव्र वृद्धि है। एक ओर तो आय और पूँजी का अभाव होता है तथा दूसरी ओर जनसख्या की तीव्र वृद्धि आर्थिक विकास के प्रयत्नो को विफल बनाती है। इन देशों की आर्थिक स्थिति ऐसी नही होती कि जनसख्या-वृद्धि के भार को वहन कर सकें एव रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध करा सकें। सामाजिक और सस्थागत रूढियाँ व कुरीतियाँ भी देश को आगे बढने से रोकती हैं। इनके कारण जनता नवीन परिवर्तनो और परिस्थितियो को अपनाने से यथासम्भव बचना चाहती है, फलस्वरूप देश मे तकनीकी और वैज्ञानिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त नही हो पाता। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे साहसी वर्ग का भी अभाव पाया जाता है जबकि यही वर्ग मूलत उत्पत्ति के विभिन्न साधनो को जुटाने और सक्रियता देने का उत्तरदायित्व वहन करता है। अव्यवस्थित सामाजिक राजनीतिक-आर्थिक ढांचे के कारण अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक वातावरण ऐसा नही होता जो साहसी वर्ग को आगे लाए। परिणामत देश की प्रगति धीरे-धीरे होती है।

राजनीतिक समस्याएँ

अर्द्ध-विकसित देशो की प्रमुख राजनीतिक समस्याओं मे हम राजनीतिक अस्थिरता, नियोजन के प्रति उदासीनता, श्रमिको के शोषण व बन्धन आदि को ले सकते हैं। राजनीतिक जागरुकता का अभाव होने से प्राय दीर्घजीवी राजनीतिक गुट या दल नही पनप पाते और शासन-सत्ता मे स्थायित्व नही आ पाता। यह राजनीतिक अस्थिरता एक ओर तो आर्थिक विकास के लिए दृढ और स्थाई नीतियो को अवरुद्ध करती है, दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रतिरक्षा को निर्बल बनाती है। अशिक्षित और रूढिवादी जनता नियोजन के महत्व को स्वीकार नही करती। राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर सरकारें जनता मे नियोजन कार्यक्रमो के प्रति विश्वास पैदा नही कर पाती। फलस्वरूप देश को नियोजन के लाभ नही मिल पाते। अर्द्ध-विकसित देश विभिन्न श्रमिक समस्याओं से भी ग्रस्त रहते है। प्राय स्थायी श्रमिक वर्ग की कमी बनी रहती है। रूढिवादिता और सामाजिक बन्धनो के कारण श्रम की गतिशीलता नही पाई जाती। राजनीतिक जागरुकता के अभाव के कारण श्रमिको मे श्रम-सघो जैसी सस्थाएँ समुचित ढग से नही पनप पाती। जब देश का श्रमिक वर्ग ही अकुशल, अजागरुक और अशिक्षित हो तो देश के आर्थिक विकास को स्वभावत. गति नही मिल सकती।

प्रशासनिक समस्याएँ

अर्द्ध विकसित देश प्रशासनिक दृष्टि से बहुत अकुशल, अवैज्ञानिक और पिछड़े हुए होते हैं। देश की गरीबी और अशिक्षा जनता में चारित्रिक स्तर को ऊँचा नहीं उठने देती, फलस्वरूप कुशल और ईमानदार प्रशासनिक अधिकारियों की सदा कमी बनी रहती है और राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा निजी हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भ्रष्टाचार का दानव देश के आर्थिक विकास का गला घोटता रहता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिकता की समस्या भी बनी रहती है। अर्द्ध विकसित देश सभी क्षेत्रों मे पिछड़े होते हैं और इन सभी क्षेत्रों का समुचित रूप मे विकास करना आवश्यक होता है, लेकिन पूँजी और उत्पत्ति के आवश्यक साधनों के अभाव के कारण यह सम्भव नहीं हो पाता कि सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास किया जा सके। फलस्वरूप प्राथमिकता की समस्या निरन्तर विद्यमान रहती है। देश के सन्तुलित विकास के लिए विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता का क्रम देना पड़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ

'गरीब की जोरू सब की भाभी' वाली कहावत अर्द्ध-विकसित देशों पर पूरी तरह लागू होती है। ये देश आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से तो परेशान ही हैं लेकिन विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ भी इन्हे दबाए रहती हैं। विकसित राष्ट्र इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर देते हैं जिनका अविकसित देश प्राय समुचित ढग से सामना नहीं कर पाते और उन्हे अनेक रूपों मे विकसित राष्ट्रों का आश्रय स्वीकार करना पड़ता है।

अन्य समस्याएँ

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अर्द्ध विकसित देश और भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहते है। अर्द्ध विकसित देशों मे आर्थिक विकास के साथ साथ मूल्य भी बढते हैं। यदि यह बढ़ोत्तरी मौद्रिक आय की अपेक्षा कम होती है तब तो कोई समस्या पैदा नहीं होती, किन्तु यदि यह वृद्धि मौद्रिक आय की अपेक्षा अधिक हो जाती है तो समाज मुद्रा स्फीति के सकट मे फँसने लगता है। दूसरी गम्भीर समस्या विदेशी मुद्रा की होती है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अनेक साधनों को विदेशों से आयात करना होता है जिसके लिए वाँछित विदेशी मुद्रा नहीं मिल पाती। विदेशी मुद्रा के अभाव मे आवश्यक साधनों के आयात को रोकने से आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होने का खतरा रहता है, इसलिए अर्द्ध-विकसित देशों को सहायता व ऋण के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह निर्भरता पूँजी व यान्त्रिक ज्ञान दोनों क्षेत्रों मे होती है।

अर्द्ध-विकसित देशों की इन विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न उपायों के अतिरिक्त एक प्रभावशाली और अनुशासित राजकोषीय नीति का महत्त्व सर्वोपरि है। राजकोषीय नीति का अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था मे सबसे महत्त्वपूर्ण यह होना चाहिए कि वह पूँजी निर्माण और पूँजी की गति को बढाने मे सहायक बने ताकि यहाँ स्थाई वृद्धि की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिले। इस उद्देश्य की पूर्ति मे

प्रभावशाली कर-नीति, सार्वजनिक व्यय-नीति, सार्वजनिक ऋण-नीति और हीनार्थ प्रबन्ध की नीति, बड़ी सहायक हो सकती है जिन्हें आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किया जाना चाहिए। प्रभावशाली राजकोषीय नीति अर्थव्यवस्था की उन्नति में निर्णायक योगदान कर सकती है।

अर्द्ध-विकसित देशों की एक कठिन समस्या विदेशी मुद्रा से सम्बन्धित है। इन राष्ट्रों को कृषि, यन्त्रों, खाद्यान्नों, सिंचाई साधनों, खाद, बीज आदि की पूर्ति के लिए बहुत कुछ विदेशों पर निर्भर करना पड़ता है। इन साधनों की उपलब्धि तभी सम्भव है जब या तो निर्यात किया जाए अथवा भुगतान हेतु पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाए। विदेशी मुद्रा के अभाव में आर्थिक विकास अवरुद्ध न हो इसके लिए अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों से समय-समय पर पूँजी व तकनीकी ज्ञान दोनों रूपों में सहायता माँगनी पड़ती है। कभी-कभी यह सहायता ऋणों के रूप में भी मिलती है। आयात नियन्त्रण व निर्यात प्रोत्साहन के द्वारा भी विदेशी विनिमय की समस्या को हल करने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी अवमूल्यन का सहारा भी लिया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ विदेशी मुद्रा सम्बन्धी सहायता विभिन्न शर्तों पर प्रदान करती हैं।

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की सामान्य आवश्यकताएँ (General Requisites for Development of Under-developed Countries)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए केवल समस्याओं को दूर करना ही काफी नहीं है और न ही पूंजी-निर्माण अथवा नवीन खोजों से ही समस्या का पूर्ण समाधान सम्भव है बल्कि आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित सामान्य आवश्यकताओं का होना भी आवश्यक है—

1. स्वदेशी शक्तियाँ (Indeginious Forces)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्वदेशी शक्तियों पर आधारित होनी चाहिए। बाह्य शक्तियाँ केवल स्वदेशी शक्तियों को प्रोत्साहन दे सकती है, किन्तु उनका प्रतिस्थापन (Substitute) नहीं बन सकती। यदि केवल विदेशी सहायता के बल पर ही किसी योजना को प्रारम्भ किया गया और लोगों की विकास-सम्बन्धी चेतना को जागरूक न बनाया गया तो आर्थिक विकास क्षणिक होगा। विदेशी सहायता पर पूर्ण रूप से निर्भरता के परिणामस्वरूप देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग भले ही हो जाए, लेकिन श्रमिकों की कार्यकुशलता नहीं बढ़ सकेगी। अतः आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता को केवल सीमान्त रूप में ही हितकर मानते हुए अन्तिम रूप से उसे स्वदेशी शक्तियों पर ही आधारित करना चाहिए। विदेशी सहायता अल्पकालीन रूप में ही हितकारी सिद्ध हो सकती है, स्थायी रूप से नहीं। मेयर और बाल्डविन के अनुसार "यदि विकास की प्रक्रिया संचयी और दीर्घकालीन (Cumulative and long-lasting) हो तो विकास की शक्तियाँ विकासशील राष्ट्र के अन्तर्गत ही होनी चाहिए।"

2. पूंजी-संचय मे वृद्धि (Increase in Capital Accumulation)— अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो के लिए वास्तविक पूँजी का सचय अत्यावश्यक है। पूंजी-सचय मुख्यत तीन बातो पर निर्भर करता है—(i) वास्तविक बचतो की मात्रा मे वृद्धि हो (ii) देश मे पर्याप्त मात्रा मे वित्त एव साख सुविधाएँ हो, तथा (iii) पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए विनियोग कार्य हो। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे पूँजी निर्माण आन्तरिक और बाह्य दोनो ही साधनो द्वारा किया जा सकता है। घरेलू साधनो मे वृद्धि तभी सम्भव है जब कि बचत की मात्रा मे वृद्धि, श्रम-शक्ति और प्राकृति साधनो का उपयोग उपभोग पर रोक गतिशीलता एव उचित निर्देशन आदि हो। घरेलू पूँजी का निर्माण सम्भव न होने पर बाह्य साधनो से अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय साधनो से पूँजी-निर्माण किया जा सकता है। इन साधनो मे प्रत्यक्ष वास्तविक विनियोग विदेशी अनुदान, सहायता व ऋण आदि सम्मिलित हैं। पूँजी-सचय की वृद्धि के साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसके उपभोग या विनियोग करने की समुचित व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त प्राविधिक और सगठन सम्बन्धी विकास भी उच्च स्तर का होना चाहिए।

3 बाजार पूर्णता (Perfectness of the Market)—बाजार की अपूर्णताओ को दूर करने के लिए सामाजिक एव आर्थिक सगठनो के वैकल्पि स्वरूपो का होना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिए वर्तमान साधनो का अधिकतम उपयोग किया जाना जरूरी है। यह आवश्यक है कि बाजार मे एकाधिकारी प्रवृत्तियो को दूर या कम कर पूँजी और साख का पूर्ण रूप से विस्तार करने, उत्पादन की सीमाओ को पर्याप्त रूप से बढाने उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि करने, कृषि पर *निर्भरता को कम करने जरूरतमन्द लोगो को साख सुविधाएँ समय पर उपलब्ध* कराने आदि के लिए प्रभावशाली और सफल प्रयत्न करना आवश्यक है। मेयर और बाल्डविन के अनुसार "देश की राष्ट्रीय आय को तीव्र गति से बढाने के लिए नवीन आवश्यकताओ नवीन विचारधाराओ, उत्पत्ति के नए ढगो और नई सस्थाओ की आवश्यकता है। आधुनिक आर्थिक विकास मे धार्मिक रुकावटें आदि होने से या तो *प्रगति कम गति से होगी या उसके स्वभाव को ही बदलना होगा।"*

4 पूँजी सचय की शक्ति (Capital Absorption)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे पूँजी-निर्माण की *मन्द गति प्राविधिक ज्ञान की कमी कुशल श्रमिको के अभाव* आदि के कारण पूँजी सोखने या विनियोग करने की शक्ति प्राय सीमित होती है। इन देशो मे एक बार विकास आरम्भ हो जाने पर पूँजी सोखने या विनियोग करने की शक्ति बढने लगती है, यद्यपि प्रारम्भ मे मुद्रास्फीति (Inflation) का भय सदा बना रहता है। इसके अतिरिक्त यदि इन राष्ट्रो मे पूँजी सचय उनकी सोखने की *शक्ति से अधिक हो जाता है तो वहाँ भुगतान-सन्तुलन सम्बन्धी कठिनाइयाँ उठ खडी* होती हैं अर्थात् अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी निर्माण की मात्रा के अनुरूप ही पूँजी-विनियोग करने की शक्ति बढनी चाहिए।

5 मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ (Sociological and Psychological Requirements)—अर्द्ध विकसित देशो मे आर्थिक विकास के लिए मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओ का भी महत्त्व है। राष्ट्र की विनियोग-नीति पर सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-धार्मिक-आर्थिक मूल्यो और प्रेरणाओ का संयुक्त प्रभाव पडता है। देश के नागरिको द्वारा नवीन विचारो और विवेक का आश्रय लेने पर तथा धार्मिक और रूढ़िगत अन्धविश्वासो और परम्पराओ से उन्मुक्त रहने पर वहाँ आर्थिक विकास तीव्र गति से होना सम्भव है। अर्द्ध-विकसित देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर हो, इसके लिए आवश्यक है कि देशवासियो मे भौतिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ पैदा की जाएँ और यह भावना जाग्रत की जाए कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी है। यह भी उपयोगी है कि संयुक्त परिवार-प्रथा के स्थान पर एकाकी परिवार प्रथा को स्थान दिया जाए। अर्द्ध विकसित देशो के निवासियो मे प्राय साहस की भारी कमी रहती है। इसकी पूर्ति मुख्यत तीन बातो पर निर्भर करती है—योग्यता, प्रेरक शक्ति एव सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण। योग्यता मे दूरदर्शिता, बाजार-अवसरो को पहचानने की क्षमता, कार्य की वैकल्पिक सम्भावनाओ को पहचानने का विवेक, व्यक्तिगत योग्यता आदि बातें सम्मिलित रहती हैं। प्रेरक शक्ति मे मौद्रिक लाभ, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि को सम्मिलित किया जाता है जिससे कि व्यक्ति को प्रेरणा प्राप्त हो। आर्थिक सामाजिक वातावरण मे आन्तरिक शान्ति, सुरक्षा आर्थिक स्थिरता आदि बातें सम्मिलित की जाती हैं। आर्थिक विकास मे नेतृत्व का भी बहुत महत्त्व है। बारबारा वार्ड का यह कथन बिलकुल ठीक है कि "आर्थिक विकास की प्रभावशाली नीति के लिए यह विचारधारा आवश्यक है कि अपेक्षित पूँजी व सचालन के लिए योग्यता एव कुशल व्यक्ति हो। भ्रष्टाचार और स्वार्थ से उन्नति नही हो सकती।"

6 विनियोग का आधार (Investment Criteria)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास के लिए विनियोग का सर्वोत्तम आवटन करना कठिन कार्य है। इसके लिए कोई निश्चित मापदण्ड निर्धारित करना भी सुगम नही है क्योकि उद्योगो का उत्पादन विभिन्न ढगो से प्रभावित होना है। फिर भी अर्थशास्त्रियो ने विनियोग का आधार निर्धारित करने के लिए कुछ बातें आवश्यक ठहराई है। प्रो मौरिस डाब (Maurice Dobb) के अनुसार अर्द्ध-विकसित देशो को अपनी विनियोग नीति (Investment Policy) के सम्बन्ध मे निम्नांकित बातो का ध्यान रखना चाहिए—

(i) विनियोग राशि का कुल आय से अनुपात,

(ii) विनियोग की जाने वाली राशि का विभिन्न क्षेत्रो मे वितरण, एव

(iii) उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपनाई जाने वाली तकनीक का चुनाव।

इनके अतिरिक्त अनेक अर्थ-शास्त्रियो ने विनियोग के अन्य मापदण्ड भी बताए हैं जैसे—

(i) न्यूनतम पूँजी उत्पादन-अनुपात (Minimum Capital Output Ratio),

(ii) अधिकतम रोजगार एवं
(iii) अधिकतम बचत की जाने वाली राशि की मात्रा जिसका पुन विनियोजन किया जा सके।

व्यावहारिक रूप मे उपर्युक्त मापदण्डो का उपयोग नही किया जाता क्योंकि इनका क्रियान्वयन अत्यन्त कठिन है तथा ये मापदण्ड प्राय परस्पर सगत (Consistent) नही होते। यद्यपि विनियोग के लिए प्रस्तावित साधनो का सर्वोत्तम आवटन 'सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' (Marginal Productivity Theory) द्वारा किया जाना चाहिए लेकिन इस सिद्धान्त के व्यावहारिक क्रियान्वयन मे भी अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं जिनके कारण यह मापदण्ड भी प्राय अव्यावहारिक बन जाता है तथापि इसके द्वारा विविध योजनाओ को चुनने या रद्द करने के औचित्य को तो जांचा ही जा सकता है। वर्तमान मे राष्ट्रीय आय को अधिकतम करने के लिए कम-पूँजी-उत्पादन-अनुपात (Low capital output ratio) की नीति अपनाना श्रेयस्कर है, किन्तु जब ध्येय भविष्य मे प्रति व्यक्ति उपज को अधिकतम करना हो तो पूँजी-प्रधान तकनीक को अपनाना अधिक अच्छा है। प्रो हार्वेलिबेंस्टिन की मान्यता है कि विकसित देशो के नीति निर्माताओ को चाहिए कि वे विविध उद्योगो मे सीमान्त प्रति व्यक्ति पुनर्विनियोग अश (Margina per Capita re-investment Quotient) की चिन्ता करें, न कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बराबर करने की।

पश्चिमी देशो का अर्थशास्त्र पिछड़े देशो के लिए अनुपयुक्त

पश्चिमी देशो का अर्थशास्त्र नवोदित और पिछड़े देशो के शासको को सम्मोहित किए जा रहा है। यह एक विशेष मनोवृत्ति की उपज है। औपचारिक रूप से साम्राज्यो का अन्त भले ही हो गया हो, लेकिन आर्थिक साम्राज्य अब भी कायम हैं, और वे पुरानी तर्क पद्धति को ही नए तरीके से पोषित करते हैं। यद्यपि तीसरी दुनियाँ के देशो ने अंकटाड सयुक्तराष्ट्र सघ, निर्गुट देश सम्मेलन आदि मचो से सामूहिक स्वर से इस तर्क पद्धति का विरोध करना शुरू कर दिया है। स्वीडन के विख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर गुन्नार मिर्डल ने अपने 'एशियन ड्रामा' मे सकलित तथ्यो के आधार पर पश्चिम के असन्तुलित अर्थशास्त्र का मायाजाल ध्वस्त करने मे उल्लेखनीय भूमिका निभाई और उसमे जो कमी रह गई उसे उन्होने अपनी पुस्तक 'द चैलेन्ज ऑफ वर्ल्ड पावरटी' मे पूरा कर दिया है। इस पुस्तक मे गुन्नार मिर्डल ने यद्यपि इस बात का विवेचन विस्तार से नही किया है कि अल्प विकसित देशो के विकास को सम्भव बनाने और तीव्र करने के लिए विकसित तथा अविकसित देशो को क्या प्रमुख नीतियाँ अपनानी चाहिए, तथापि उन्होने पश्चिमी देशो के दृष्टिकोण की कमियो को बताते हुए नीति-निर्धारको के लिए सोचने-विचारने की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत की है।

गुन्नार मिर्डल ने प्रथम अध्याय मे ही पश्चिमी देशो के दृष्टिकोण की कमियाँ बताते हुए कहा है कि "उन देशो मे अनुसधान भी प्रायः राजनयिक होता है और अनुसधान का समारम्भ विश्लेषणात्मक पूर्वसकल्पनाओ अथवा मान्यताओ के आधार

पर होता है।" उनकी मान्यता है कि विकसित देशो मे शुद्ध आर्थिक दृष्टि से किया गया विश्लेषण अल्प-विकसित देशो पर इसलिए लागू नही होता क्योकि उनकी सकल्पनाएँ नमूने और सिद्धान्त विकसित देशो के यथार्थ के अनुरूप होते है।

इस अनुसधान मे बुनियादी कमी है कि यह दृष्टिकोण प्रवृत्तियो और सस्थाओ से प्रेरित होता है। विकसित देशो मे ये या तो इस दृष्टि से सगत बन गए हैं कि वे विकास के उत्साह का मार्ग प्रशस्त करते हैं अथवा तीव्रता से और बिना किसी व्यवधान के व्यवस्थित होकर विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं, लेकिन यह मान्यता कम विकसित देशो के बारे मे सही नही हो सकती। इनकी प्रवृत्तियाँ अथवा रुझान सस्थाएँ ऐसी हैं कि वे बाजारो के सन्दर्भ मे विश्लेषण को अव्यावहारिक बना देती हैं।

विकसित तथा अल्पविकसित देशो के वैज्ञानिक अध्ययन के बारे मे उनका निष्कर्ष है कि "इस समय यह कार्य जिस रूप मे हो रहा है, साधारणतया उनमे अल्पविकसित देशो की उन परिस्थितियो को छिपाने का प्रयास किया जाता है जो आमूल और दूरगामी सुधारो की आवश्यकता को सर्वाधिक प्रमाणित करते हैं। इसने अर्थशास्त्र के एक प्राचीन पूर्वाग्रह का भी अनुसरण किया है। यह कार्य सीधे ढग से यह मानकर किया गया है कि समानतावादी सुधार आर्थिक विकास के विपरीत हैं जबकि स्थिति यह है कि ये सुधार आर्थिक विकास को प्रेरणा देते है और इसकी गति तीव्र बनाते है।"

एक अन्य प्रसग मे पश्चिम के व्यापारियो के बारे मे उनका विचार है कि "जन समुदाय की प्राय यन्त्रवत् निष्क्रियता और अल्प-विकसित देशो मे सुधारो के प्रयास का अभाव पश्चिम के उन व्यापारिक हितो को अच्छा लगता है जो अल्प विकसित देशो मे अपनी पूंजी लगाना और अपने उद्योग चालू रखना चाहते हैं। सत्तारूढ समूह इन कम्पनियो के स्वाभाविक सहयोगी हाते हैं। यह उपनिवेशी नीति को उसी रूप मे जारी रखने का प्रमाण है और इससे इस आरोप का औचित्य सिद्ध होता है जो पश्चिम के व्यापारियो पर उन्हे 'नव पूँजीवादी' कहकर लगाया जाता है।"

भूमि सुधार और खेती—अल्प विकसित देशो मे भूमि की उत्पादकता का प्रश्न भूमि-वितरण, खेती के तरीको सामाजिक विषमता आदि अनेक परिस्थितियो से सम्बद्ध होता है, जिसका कोई उचित समाधान नही है। काफी छानबीन और विश्लेषण के पश्चात् अध्येता मिर्डल आग्रह करते हैं कि विकासशील देशो मे "नई कृषि विधियाँ तथा टेक्नोलॉजी ऐसी हो जिसमे श्रम का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सकता हो, यह इस कारण भी जरूरी है कि खेती मे लगी श्रम-शक्ति का इस समय कम उपयोग हो रहा है और अधिकांश अल्प विकसित देशो मे म अनेक दशको तक कृषि मे लगी श्रम शक्ति मे निरन्तर तेजी से वृद्धि होत रहेगी।" लेकिन किसी नई व्यवस्था के लिए जरूरी है कि खेतिहर का भूमि से लगाव हो: "बटाई पर खेती करने की व्यापक प्रणाली न तो टेक्नोलॉजी सम्बन्धी परिवर्तन के उपयोग की दृष्टि से लाभदायक है और न ही श्रम और धन के रूप मे विनियोग

की दृष्टि से।" गुनार मिर्डल की दृष्टि में यह एक ऐसा बुनियादी कार्य है जिसे किए बिना जो कुछ भी किया जाएगा उसका लाभ केवल ऊँचे स्तर के लोग उठाते रहेंगे और असमानता में वृद्धि होती रहेगी।

मिर्डल की दृष्टि में, अल्प-विकसित देशों में अनाज की पूर्ति बढ़ाने के लिए उनका दाम उचित स्तर से ऊँचा बनाए रखने का तर्क भी, अमीर किसानों के ही हित में होगा, क्योंकि बटाईदार या छोटा किसान मुश्किल से जरूरत भर का अनाज पैदा करता है—यदि कटाई के समय उसे कर्ज की अदायगी या अन्य आवश्यकताओं के लिए गल्ला बेचना पड़ा तो बाद में अपना पेट भरने के लिए और महँगे दामों में खरीदना पड़ता है।

यही स्थिति उन्नत बीज, उर्वरक आदि के कारण उपजे, 'अतिशय तकनीकी आशावाद के सन्दर्भ में पाई जाती है ....' नए बीजों के उपलब्ध होने की बात *का इस्तेमाल करके बड़े पैमाने पर भू-स्वामित्व और दस्तकारी प्रणाली के सुधारों* की बात को पीछे डाल दिया गया है। इन सुधारों के अभाव में नए बीज का उपलब्ध होना *उन अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियों से गठजोड़ करेगा जो इस समय अन्य विकसित* देशों में ग्रामीण जनसंख्या और असमानता बढ़ाने में सहायक बन रही है।

शिक्षा—वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने जो उपनिवेशकालीन प्रणाली का मात्र विस्तार है, समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है, और न ही वह कर सकती है क्योंकि इस प्रणाली में प्रशासकों अध्यापकों विद्यार्थियों और सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च वर्ग के परिवारों के शक्तिशाली स्वार्थ निहित हैं। यदि दक्षिण-पूर्वी एशिया में साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा के सन्दर्भ में यह वाक्य खास दिलचस्प है—' *जब वयस्कों को शिक्षा देने के प्रयासों को एक ओर उठा कर रख दिया गया* तो साक्षरता के लक्ष्य को प्राइमरी स्कूलों में बच्चों की भर्ती की संख्या में तेजी से वृद्धि के कार्यक्रम में बदल दिया गया।"

नरम राज्य—अन्य पश्चिमी लेखकों की तरह मिर्डल का भी यह मत है कि विभिन्न सीमाओं तक सभी अल्प विकसित देश नरम राज्य हैं लेकिन उनकी यह भी मान्यता है कि विकसित देशों में भी नरम राज्य के लक्षण पाए जाते हैं—अमेरिका के लोग, अल्पविकसित देशों के लोगों के समान, लेकिन उत्तर-पश्चिम यूरोप के देशों के लोगों के विपरीत, अपने कानूनों में ऐसे आदर्शों को स्थान देते हैं, *जिन्हें संयुक्तराज्य अमेरिका में कभी भी प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किया गया।* यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रशासन कभी भी बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रहा *तथापि इस देश ने बहुत तेजी से आर्थिक उन्नति की। यह उन अनेक परिस्थितियों* के कारण सम्भव हुआ, जो आज गरीबी से ग्रस्त अल्पविकसित देशों से बहुत भिन्न थी। *विकासशील देशों में होता यह है कि राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ* ऐसे कानून नहीं बनने देती जो लोगों के ऊपर अधिक उत्तरदायित्व डालते हों। जब *कभी कानून बन जाते हैं तो उनका पालन नहीं होता और इन्हें लागू करना भी आसान* नहीं होता। इसका मूल कारण यह है कि स्वाधीनता के प्रारम्भिक दौर में सत्तारूढ़

राजनीतिक दृष्टि से विशिष्ट लोगों ने ये नए कानूनी अधिकार (वयस्क मताधिकार आदि) लोगों को दिए लेकिन वे लोग इन अधिकारों को वास्तविकता के आधार पर स्थापित करने के लिए उत्सुक नहीं थे। इस कार्य से बच निकलना भी आसान था, क्योंकि नीचे से कोई दबाव नहीं था। ऐसी स्थिति में यदि सरकार बदलती है और सख्त सरकार (जैसे पाकिस्तान में जब अय्यूब की तानाशाही आई) बागडोर सभालती है तो भी वह नरम ही रहती है क्योंकि (1) वह उपयोगी सांस्थानिक परिवर्तन नहीं करा पाती और (2) सरकार मे परिवर्तन समाज के सर्वोच्च वर्ग के लोगो के आपसी झगडे के परिणामस्वरूप होते है ये परिवर्तन कही भी गरीब जन समुदाय द्वारा अपने उत्पीडन के विरुद्ध विद्रोह के परिणामस्वरूप नही आए।[1]

पश्चिमी देशो के आर्थिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीसरी दुनियाँ की रणनीति

तीसरी दुनियाँ के राष्ट्र, जो पाश्चात्य आर्थिक साम्राज्यवाद के दीर्घकाल तक शिकार रहे हैं और आज भी हैं अब एक नए अर्थतन्त्र और नए समाज की रचना के लिए प्रयत्नशील है। पश्चिम के आर्थिक साम्राज्यवाद के प्रति उनकी रणनीति बदल रही है जो पिछले कुछ अर्से में सम्पन्न हुए विभिन्न सम्मेलनो में प्रकट हुई हैं।

तीसरी दुनियाँ के देश जिन्हे औपनिवेशिक जुआ उतार फैंकने के बाद आशा थी कि सयुक्तराष्ट्र सघ के माध्यम से या सीधे पश्चिमी देशो की आर्थिक सहायता (अनुदान और मुख्यत ऋण) उनकी औद्योगिकी और उनसे व्यापारिक लेनदेन नया अर्थतन्त्र और नए समाज की रचना का मौका देगा समझ गए है कि उन्नत देशों के सामन्तीतन्त्र को उनसे सहानुभूति नही है। यही नही उन्होने यह भी महसूस कर लिया है कि सभी क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मचो पर पश्चिमी देशो के विरुद्ध जेहाद (धर्म युद्ध) छेडा जाना चाहिए। इसका स्वर दिल्ली में 'एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए आर्थिक सामाजिक आयोग के वार्षिक अधिवेशन (26 फरवरी से 7 मार्च 1975) मे ही नही बल्कि तेल उत्पादक देशों के अल्जियर्स सम्मेलन (मार्च, 1975) मे भी सुनाई पडा।" लीमा मे सयुक्तराष्ट्र उद्योग विकास सगठन के दूसरे सम्मेलन और हवाना मे तटस्थ देशो के सम्मेलन मे यही स्वर मुखर हुआ है। इसका लक्ष्य औद्योगिक देशो से अधिक साधन और सुविधाएँ प्राप्त करना तो है ही साथ ही विकासशील देशो को एकता के सूत्र मे बाँधना तीसरी दुनियाँ के साधनो का उपयोग करना और आपसी लेनदेन बढाना ताकि स्वावलम्बन के मार्ग पर बढा जा सके। तेल उत्पादक देशो द्वारा मूल्य बढाने से उसे एक नई शक्ति मिली है—विश्व के उत्पादन मे विकासशील देशो के वर्तमान 7 प्रतिशत योग को सन् 2000 तक बढाकर 25 फीसदी करने का नारा हाल के अल्जियर्स सम्मेलन मे ही दिया गया था—मगर उतना नही जितना होना चाहिए था क्योंकि तेल उत्पादक देशो मे पश्चिम से जुडने का मोह पैदा हो गया है।[2]

1 दिनमान, 25-31 जुलाई 1976, पृष्ठ 9-10
2 दिनमान, मार्च, 1965

"लीमा मे भारत के उद्योग और नागरिक पूर्ति मन्त्री श्री टी ए पै ने संयुक्तराष्ट्र उद्योग विकास संगठन के दूसरे सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सामती प्रर्थतन्त्र की खासी बखिया उधेडी। श्री पै ने कहा कि विकासशील देशो के प्रयत्नो के बावजूद विकसित और विकासशील देशो मे औद्योगिक अन्तर बढता जा रहा है, क्योंकि अमीर देश पूँजी निवेश की मात्रा बढ़ने मे समर्थ हैं। यही नही, वे अन्य उन्नत देशो से ही व्यापार करना पसद करते हैं। उन्होने अपने बाजार और लाभ सुरक्षित रखने के लिए तरह तरह के प्रतिबन्ध ईजाद कर रखे हैं। धनिक देशो की मुनाफाखोरी और शोषण की प्रवृत्ति का उदाहरण देते हुए भारतीय उद्योग मन्त्री ने बताया कि विकासशील देशो को विवश किया जाता है कि वे बिना धुला कपडा (Gray cloth) निर्यात करें। यह कपडा धनिक देशो मे रासायनिक तथा अन्य विधियो द्वारा साफ होकर ऊँचे दामो मे बिकता है। इसी प्रकार, उन्होंने पूछा, क्या वजह है कि हमारी चाय सिर्फ पेटियो मे ही खरीदी जाती है ? क्या इसलिए कि फिर उसे आकर्षक डिब्बो मे भरकर मुनाफा कमाया जा सके ? विकासशील देशो को कच्चा माल मुहैया करने वाला क्षेत्र ही माना जाता है। विकासशील देश जो जिसे निर्यात करते हैं उसका भाव भी विकसित देशो के ग्राहक इस तरह नियन्त्रित करते हैं कि तीसरी दुनियाँ के देशो की आमदनी मे उतनी बढोत्तरी नही होती जितनी कि आयात करने वाले माल के—मशीन, उर्वरक आदि के— भाव मे हो जाती है। श्री पै ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि पश्चिमी देशो के माल—इस्पात तैयार माल, मशीन आदि सबके मूल्य तेल का भाव बढने के पहले से चढने लगे थे।"

"आयात निर्यात सहायता श्रम बहुत औद्योगिकी आदि के अलावा विकास शील देशो की लीमा मे कोशिश यह रही कि इस उद्योग संगठन को संयुक्त राष्ट्र का स्थायी और स्वतन्त्र संगठन बना दिया जाए। लेकिन पश्चिमी देश इसके पक्ष मे नही थे। ब्रितानी प्रतिनिधि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—हमे सदेह है कि इससे आप लोगो को कोई लाभ होगा। स्विटजरलैण्ड के प्रतिनिधि ने औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 25 / निर्धारित करने का विरोध किया—यह व्यावहारिक नही है।"

3

आर्थिक विकास के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन : उत्पादन, उपभोग, रोजगार, निवेश और व्यापार के संगठन मे परिवर्तन

(Structural Changes under Development : Changes in the Composition of Production, Consumption, Employment, Investment and Trade)

आर्थिक विकास के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes under Development)

किसी देश के औद्योगिक उत्पादन मे दीर्घकालीन और सतत् वृद्धि को प्रायः आर्थिक विकास कहा जाता है। पैरीक्लीज युग का यूनान, ऑगस्टकालीन रोम, मध्ययुगीन फ्रांस, आधुनिक अमेरिका और भारत तथा मिस्र के कुछ युग इस परिभाषा की परिधि मे आते हैं।[1] सरचनात्मक परिवर्तनो की ओर सकेत करते हुए साइमन कुजनेट्स ने लिखा है—"आधुनिक युग मे, मुख्य सरचनात्मक परिवर्तनो का लक्ष्य कृषि मदो के स्थान पर औद्योगिक मदो का उत्पादन (औद्योगीकरण की प्रक्रिया), ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रो मे जनसख्या वितरण (शहरीकरण की प्रक्रिया), लोगो की सापेक्ष आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन (रोजगार की स्थिति तथा आय स्तर आदि के द्वारा) और माँग के अनुरूप वस्तुओ एव सेवाओ का वितरण रहा है।"[2]

एक अन्य स्थल पर साइमन कुजनेट्स ने लिखा है—' आधुनिक आर्थिक विकास सारभूत रूप मे औद्योगिक व्यवस्था को लागू करना अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के बढते हुए प्रयोग पर आधारित उत्पादन की एक व्यवस्था को लागू करना है, किन्तु इसका अर्थ सरचनात्मक परिवर्तनो से ही है, क्योकि महत्त्व की दृष्टि से नए उद्योग स्थान लेते हैं और विकसित होते हैं जबकि पुराने उद्योग लुप्त होते जाते है—यह प्रक्रिया बदले मे समाज की उस क्षमता की माँग करती है जो ऐसे परिवर्तनो को

1 *Simon Kuznets* Six Lectures on Economic Growth, p 13
2 *Simon Kuznets* Modern Economic Growth, p 1

ग्रहण कर सके । एक समाज को इतना समर्थ और योग्य होना चाहिए कि वह प्रति व्यक्ति उत्पादन मे अभिवृद्धि करने वाले उत्तरोत्तर नव-प्रवर्तनो को ग्रहण कर सके और स्वय उनके अनुकूल ढाल सके । इस प्रकार प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसमे सरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक रूप से सन्निहित हैं और ये परिवर्तन प्राविधिक नव-प्रवर्तनो तथा समाज की बढती हुई मांगो और परिवर्तनो के अनुकूल समाज के ढलने की क्षमताओ के फलस्वरूप होते जाते हैं ।"[1]

नियमित आर्थिक विकास के दो मूल स्रोत हैं—(1) प्राविधिक ज्ञान (Technology) एव (2) सामाजिक परिवर्तन (Social Change) । इन दोनो की अन्त क्रिया का परिणाम ही आर्थिक विकास होता है । इस सम्बन्ध मे साइमन कुजनेट्स के मतानुसार 'किसी भी युग मे आर्थिक वृद्धि अर्थव्यवस्था मे मात्र प्राविधिक ज्ञान अथवा सामाजिक परिवर्तनो के कारण ही नही होती बल्कि यह कृषि उद्योग और सेवा क्षेत्रो मे विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले कतिपय सरचनात्मक परिवर्तनो के कारण होती है ।"[2] पुराने उद्योगो का नवीनीकरण होने लगता है तथा नए उद्योग अस्तित्व मे आते हैं । आय के वितरण की स्थिति परिवर्तित होने लगती है । उत्पादन, उपभोग, रोजगार, विनियोजन, व्यापार आदि के ढांचो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगने है, ।

सरचनात्मक परिवर्तनो को निम्नलिखित कुछ मुख्य शीर्षको के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है जैसे—

(1) औद्योगिक ढांचे मे परिवर्तन,
(2) औद्योगिक क्षेत्र के आन्तरिक ढांचे मे परिवर्तन,
(3) आय के वितरण मे परिवर्तन, एव
(4) जनसख्या के विकास की प्रवृत्तियाँ।

1 औद्योगिक ढांचे मे मुख्यत दो परिवर्तन होते है । प्रथम, उत्पादन मे कृषि क्षेत्र का अश कम हो जाता है तथा द्वितीय, उद्योग और सेवा क्षेत्रो का उत्पादन प्रतिशत अधिक हो जाता है । कुजनेट्स के अनुसार, सामान्यत विकास से पूर्व की स्थिति मे कृषि क्षेत्र के उत्पादन मे औसतन योग लगभग 50/ था, और कुछ देशो मे तो यह अनुपात दो तिहाई से भी अधिक था । विकास की एक लम्बी अवधि के पश्चात् कृषि उत्पादन का भाग घटकर 20% और कुछ देशो मे 10%से भी कम हो गया । आस्ट्रेलिया की स्थिति इस दृष्टि से अपवाद रही । उद्योग का अश जो विकास *से पूर्व इन देशो मे कुल उत्पादन का 20 से 30% था, वह दी हुई अवधि मे बढकर* 40 से 50% हो गया ।[3]

2 औद्योगिक क्षेत्र के आन्तरिक ढांचे के परिवर्तन तकनीकी (Technology) तथा अन्तिम मांग (Final Demand) से सम्बन्धित होते हैं । इन परिवर्तनो के अन्तर्गत अग्राकित परिणाम आते हैं ।

1 *Simon Kuznets* Six Lectures on Economic Growth, p 15
2 *Simon Kuznets* Modern Economic Growth p 13
3 Ibid, p 47, Tab 3 1

(i) उत्पादन वस्तुओं का अनुपात अधिक हो जाता है ।

(ii) खाद्य और वस्तुओं के उपभोग मे कमी होती है, किन्तु कागज, धातु तथा रासायनिक पदार्थों का उपभोग बढ जाता है ।

(iii) उत्पादक इकाइयो का आकार बढ जाता है ।

(iv) शहरीकरण की प्रवृत्ति अधिक बढ जाती है ।

(v) निजी व्यवसाय मे रहने की प्रवृत्ति के स्थान पर वेतनभोगी व्यवसायो के प्रति आकर्षण बढता है ।

(vi) श्वेत-पोषी व्यवसायो के प्रति लोग अधिकाधिक आकर्षित होते हैं ।

3. सरचनात्मक-परिवर्तन आय के वितरण से सम्बन्धित होते हैं । इन परिवर्तनो के *अन्तर्गत परिवारो की आय का राष्ट्रीय आय मे प्रतिशत घट जाता है ।* प्रसगान्तर अध्ययन के अनुसार यह 90% से घटकर लगभग 75% रह जाता है । सरकार की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है और निगमो का महत्त्व भी बढ जाता है । सरकारी अनुदानो की राशि और हस्तान्तरण आय (Transfer incomes) से भाग मे वृद्धि होती है । इनके अतिरिक्त सम्पत्ति से प्राप्त आय (Property Income) का भाग 20–40% से घटकर केवल 20% या इससे भी कम हो जाता है । निजी व्यवसाय मे सलग्न व्यक्तियो के स्थान पर वेतनभोगियो की सख्या बढने लगती है । व्यक्तिगत आय की विषमताएँ कम हो जाती है । उत्पादन साधनो को मिलने वाली आय और व्यक्तिगत आय के वितरण (Distribution of the Factoral and Personal Income) मे परिवर्तन आने लगता है ।

4. अर्थ व्यवस्थाओ मे कुछ सरचनात्मक परिवर्तन जनसख्या के ढाँचे से सम्बन्धित होते हैं । आर्थिक वृद्धि की स्थिति मे जनसख्या भी तीव्र गति से बढती है । *पश्चिमी यूरोप के अनेक देशो मे जहाँ पूँजी प्रचुर और श्रम दुर्लभ था, वहाँ जनसख्या* की वृद्धि का आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण योग रहा है । किन्तु ऐसे अल्प विकसित देशो मे जहाँ पूँजी दुर्लभ और श्रम प्रचुर होता है, जनसख्या वृद्धि का प्रभाव विपरीत होता है । आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप प्राय शैशनकालीन मृत्यु दर कम हो जाती है । शैशवकालीन मृत्यु-दर मे कमी के कारण उत्पादक आयु का अनुत्पादक आयु मे अनुपात बढ जाता है । श्रमिको मे स्त्रियो का अनुपात कम हो जाता है, किन्तु सेवा क्षेत्र मे शिक्षित स्त्रियों की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि होती है ।

प्राय पूर्व विकास की स्थिति मे कुल जनसख्या का अधिकतम अनुपात 15 वर्ष की आयु तक होता है । भारत मे जनसख्या का 50 प्रतिशत से भी अधिक भाग 14 वर्ष की आयु से कम वाला है । आर्थिक विकास के कारण मृत्यु-दर मे कमी आती है, परिणामस्वरूप उत्पादकीय वर्ग का अनुपात बदल जाता है ।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया विदेशी व्यापार के अनुपातो को भी प्रभावित करती है । विदेशी व्यापार के औसत अनुपात विकसित देशो मे लगभग 31% तथा अविकसित देशो मे 20% से भी कम रहे हैं । अविकसित देशो के लिए विदेशी व्यापार का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी उत्पादन की आधुनिक तकनीकी के

अभाव मे, विकसित देशो की प्रतिस्पर्द्धा मे नही टिक पाते । आर्थिक विकास की गति के साथ साथ एक ओर जहाँ उत्पादन मे पूँजी निर्माण का अनुपात बढने लगता है तथा कुछ उपभोग -व्यय मे भोजन तथा आवास सम्बन्धी व्यय का अनुपात घटने लगता है, वही दूसरी ओर विदेशी व्यापार की मात्रा, स्वरूप तथा दिशा मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं ।

आर्थिक विकास के कारण न केवल आर्थिक ढाँचे मे ही परिवर्तन होते हैं, वरन् गैर-आर्थिक ढाँचे मे भी अनेक ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन होते है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से देश की आर्थिक संरचना को प्रभावित करते है। प्रायः अविकसित देशो मे राजनीतिक अस्थिरता, राष्ट्रीय हित के विषयो पर भी राजनीतिक दलो मे मतैक्य का अभाव प्रभावहीन सरकार आदि इन देशो के आर्थिक विकास तथा आर्थिक स्थायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं । सांस्कृतिक मूल्यो के अन्तर्गत एकता, सहयोग तथा सामूहिक रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति आदि वे मूल्य लिए जाते है जो प्रत्यक्ष रूप मे श्रम विभाजन व बाजार सम्बन्धी को प्रभावित करते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप से उस राजनीतिक संगठन को प्रभावित करते हैं जो देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने व नीति-निर्धारण की शक्ति रखते हैं ।

संक्षेप मे, आर्थिक विकास के कारण सभी प्रकार के आर्थिक कार्यों (Economic Functions) की संरचना मे परिवर्तन आते हैं । उत्पादन-कार्यों (Production Functions) मे तकनीकी भूमिका प्रमुख हो जाती है । बचत के अन्तर्गत विकास की स्थिति मे व्यक्तिगत बचत (Personal Savings) का अनुपात कम हो जाता है । सरकारी बचत का अनुपात प्राय बहुत कम होता है । अविकसित देशो मे व्यक्तिगत बचत का अनुपात बहुत अधिक होता है । बचत की यह स्थिति आर्थिक संगठन की ओर संकेत करती है अर्थात् अविकसित देशो मे असंगठित क्षेत्रो से बचतें प्राप्त होती हैं जबकि विकसित देशो मे संगठित क्षेत्र का कुल बचतो मे अनुपात सर्वाधिक होता है । विदेशी व्यापार की स्थिति मे भी अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं ।

उत्पादन की संरचना, उपयोग व प्रवृत्तियाँ
(Structure, Use & Trends of Output)

कृषि, उद्योग, आदि क्षेत्र मिलकर राष्ट्रीय उत्पादन करते हैं । उत्पादन का उपभोग तीन मदो पर होता है—(i) उपभोग, (ii) पूँजी निर्माण, तथा (iii) निर्यात ।

(i) उपभोग दो प्रकार के है—(a) निजी उपभोग, एव (b) सरकारी उपभोग । निजी उपभोग की मद मे भूमि व आवासीय भवनो के सभी प्रकार के उपभोग पदार्थों के क्रय सम्मिलित हैं । यह तीनो उपभोगो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । विकसित देशो मे उत्पादन का लगभग 64 प्रतिशत निजी उपभोग पर व्यय होता है । सरकारी उपभोग के अन्तर्गत वस्तुओ व सेवाओ की खरीद आती है । इसमे से उन वस्तुओ व सेवाओ की मात्रा को घटा दिया जाता है जिसकी पुन बिक्री की जाती

है। राजकीय व्यावसायिक प्रतिष्ठानों व निगमों द्वारा क्रय को सरकारी उपभोग में सम्मिलित नहीं किया जाता, किन्तु सुरक्षा व्यय को इस मद के अन्तर्गत लिया जाता है। "इस प्रकार परिभाषित सरकारी व्यय राष्ट्रीय उत्पादन के लगभग 14 प्रतिशत से कुछ अधिक भाग के लिए उत्तरदायी रहा है।"[1]

(ii) पूंजी निर्माण वस्तुओं के उस मूल्य को प्रकट करता है जिससे देश के पूंजी-सचय में वृद्धि होती है। विशुद्ध पूंजी-निर्माण में पूंजी के उपभोग व ह्रास पर विचार भी किया जाता है। कुजनेट्स के अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 20 से 25 प्रतिशत भाग सकल पूंजी-निर्माण हेतु काम आता है। विशुद्ध पूंजी-निर्माण में राष्ट्रीय उत्पादन का 15 प्रतिशत भाग होता है। देश की बचत राष्ट्रीय पूंजी निर्माण को प्रकट करती हैं तथा देश के पूंजी-सचय में होने वाली वृद्धि घरेलू पूंजी-निर्माण कहलाती है। अधिकांश देशों में सकल पूंजी निर्माण में यह अनुपात 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ गया। विकास में वृद्धि के साथ-साथ यह अनुपात 10 से 20% तक बढ़ जाता है। किन्तु इंग्लैण्ड एव अमेरिका में 19वीं शताब्दी के मध्य से यह अनुपात स्थिर चला आ रहा है। उल्लेखनीय है कि एक शताब्दी की दीर्घ अवधि के उपरान्त भी कुल बचतों का अनुपात इन दो देशों में स्थिर बना रहा जबकि प्रति व्यक्ति उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई।

इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में पूंजी-निर्माण का भाग या तो स्थिर रहा अथवा कुछ बढ़ा किन्तु सरकारी उपभोग व्यय के अनुपात में वृद्धि के साथ, कुल राष्ट्रीय उत्पादन में निजी उपभोग व्यय के अनुपात में निश्चित रूप से गिरावट आई। विश्व युद्ध से पूर्व यह अनुपात 80 प्रतिशत था जो युद्ध से दो दशाब्दी बाद की अवधि में गिरकर 60 प्रतिशत रह गया। अर्थात् कुल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि दर की अपेक्षा कुल घरेलू उपभोग की वृद्धि-दर बहुत कम रही।

इस सन्दर्भ में सोवियत रूस के आंकड़े अधिक दिलचस्प हैं, क्योंकि स्वतन्त्र बाजार वाले देशों की भांति वहाँ भी विकास के परिणामस्वरूप घरेलू उपभोग का अनुपात कम तथा सरकारी उपभोग व कुल पूंजी का राष्ट्रीय उत्पादन में अनुपात अधिक हुआ किन्तु इन परिणामों की प्राप्ति रूस ने स्वतन्त्र उद्यम वाली अर्थ-व्यवस्थाओं की तुलना में केवल ½ अवधि में ही कर ली।

देश की स्थायी सम्पत्ति में पूंजी निर्माण की वृद्धि के रूप को देखते हुए दो महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं—प्रथम स्थायी सम्पत्ति में वृद्धि, तथा द्वितीय, वस्तुओं की सचित मात्रा में कमी। इस कमी की पृष्ठभूमि में यातायात व सचार के साधनों में सुधार कृषि क्षेत्र के अंश में कमी तथा मांग में अल्पकालीन परिवर्तनों की पूर्ति के लिए वस्तुओं की सचित-मात्रा के स्थान पर बढ़ी हुई उत्पादन-क्षमता का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त स्थायी सम्पत्ति व कुल पूंजी-निर्माण में भवन-निर्माण के अनुपात में गिरावट आती है, किन्तु उत्पादक साज सामान (Producer's Equipment) के अनुपात में वृद्धि होती है। उत्पादन-वृद्धि का कारण विकास

1 Ibid., p 110

के परिणामस्वरूप जनसख्या की वृद्धि-दर मे कमी तथा औद्योगिक सयत्रो का विस्तार होना है।

कुजनेट्स ने कुछ देशो की पूँजी प्रदा अनुपातों (Capital Output Ratios) की गणना की है। इनके अनुसार, "इटली के राष्ट्रीय उत्पादन की दर न, पूँजी-प्रदा अनुपातो मे कमी के कारण, पर्याप्त वृद्धि प्रदर्शित की। नार्वे मे पूँजी-प्रदा अनुपातो मे गिरावट बहुत कम रही। किन्तु इग्लैण्ड, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, अमेरिका, कनाडा आस्ट्रेलिया, जापान आदि देशो मे सकल सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपातो (Gross Incremental Capital-output Ratios) ने वृद्धि प्रदर्शित की—प्रारम्भिक अवधि मे वृद्धि 3 व 4 5 के मध्य थी तथा वर्तमान अवधि मे 4 व 6 के बीच रही।"[1]

सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपातो मे इस वृद्धि का कारण न तो सकल घरेलू पूँजी-निर्माण की सरचना म परिवर्तन रहे है, और न ही कृषि, खान व निर्माण आदि उद्योगो द्वारा पूँजी-निर्माण मे उत्पन्न सरचनात्मक परिवर्तन। श्रम साधन मे हुए परिवर्तनो के कारण भी इन अनुपातो मे होने वाली वृद्धि प्रमाणित नहीं होती। यह स्थिति इस सिद्धान्त को असत्य प्रमाणित करती है कि जब श्रम-शक्ति म वृद्धि की दर घटती है तब पूँजी-प्रदा अनुपात बढते हैं। इन अनुपातो मे वृद्धि के कारण तथा विभिन्न देशो मे पाए जाने वाले इन अनुपातो के स्तर मे अन्तर उन अनेक अवस्थाओ मे अन्तर्निहित हैं जो भौतिक पूँजी की माँग को प्रभावित करती हैं तथा जिनके कारण उत्पादन की एक ही मात्रा श्रम व पूँजी के विभिन्न सयोगो द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

इग्लैण्ड व अमेरिका के अतिरिक्त अधिकांश देशो मे पूँजी-निर्माण का उत्पादन अधिक हुआ। यदि पूँजी-निर्माण का भाग अधिक होना है तो सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात उसी स्थिति मे स्थिर रहते हैं जब राष्ट्रीय उत्पादन मे सानुपातिक वृद्धि होती है।'[2] इस स्थिति को कुजनेटस् न एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है। मान लीजिए कुल घरेलू उत्पादन=$ 1000, सकल घरेलू पूँजी-निर्माण=$ 150, वास्तविक वृद्धि दर=50 प्रतिशत तथा सीमान्त सकल पूँजी-प्रदा अनुपात=3 0 है। यदि कुल उत्पादन म पूँजी-निर्माण का अनुपात $\frac{150}{1000}$से बढकर $\frac{210}{1000}$(40% की वृद्धि) हो जाता है, तब सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात उसी स्थिति मे 3 0 रहेगा जब उत्पादन की वृद्धि दर 5 से बढकर 7 (अथवा 40% की वृद्धि) हो जाती है।

उत्पादन की सरचना मे जनसख्या का वृद्धि-दरो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। "यदि जनसख्या घटती हुई दर से बढती है, जैसाकि अनेक विकसित देशो मे होता है, तो कुल उत्पादन मे स्थिर दर से भी वृद्धि होने पर, प्रति व्यक्ति उत्पादन बढती हुई दर से बढता है। पूँजी-निर्माण के भाग मे निरन्तर वृद्धि होती रहने की

1. Ibid, p 122
2 Ibid, p 123

स्थिति मे यदि पूँजी-प्रदा अनुपात को स्थिर रखना है और कुल उत्पादन की वृद्धि मे तीव्र से तीव्रतर गति बनाए रखनी है तो प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि की दर कुल उत्पादन की वृद्धि-दर से भी कहीं अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार, प्रति व्यक्ति उत्पादन की उत्तरोत्तर बढती हुई दरो के कारण अधिक बचतें होती है। अधिक बचत के परिणामस्वरूप पूँजी-निर्माण का भाग भी बढता है—जिसका आशय यह है कि यदि सीमान्त पूँजी प्रदा अनुपात को बढती हुई स्थिति मे रखना है तो कुल उत्पादन व प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि दर और भी अधिक तीव्र की जानी चाहिए।"[1]

उपभोग में संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes in the Composition of Consumption)

उपभोग की सरचना की विवेचना व्यक्तिगत बचत व उपभोग्य आय (Disposable Income) के अनुपातो की दीर्घकालीन प्रवृत्तियो के आधार पर की जा सकती है। व्यक्तिगत करो (आयकर आदि) के भुगतान के पश्चात् जो आय परिवारो के पास शेष रहती है, उसे उपभोग्य आय कहते हैं। यह वह आय होती है जिसे लोग अपनी रुचि के अनुसार खर्च कर सकते है अथवा बचा सकते हैं। इस आय का वह भाग जिसे वे वस्तुओ व सेवाओ पर व्यय नही करते, व्यक्तिगत बचत की श्रेणी मे आता है।

विगत वर्षों मे, विशुद्ध बचत का लगभग 48 से 49% भाग परिवारो से प्राप्त हुआ है। विशुद्ध बचत कुल बचतो का 60 प्रतिशत व कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 23 प्रतिशत रही। इस प्रकार परिवारो की विशुद्ध बचत का भाग कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे 6 7 प्रतिशत रहा। उपभोग आय कुल उत्पदन का 70 3 प्रतिशत रही। अत विशुद्ध बचत, उपभोग आय का औसतन $\frac{6\ 7}{70{\cdot}3}$ अथवा 9 5% रही।[2]

कुजनेट्स के अध्ययनानुसार गत एक शताब्दी की अवधि मे प्रति व्यक्ति उपभोग्य आय की वृद्धि-दर अवधि के अन्त मे अपने प्रारम्भिक मूल्य का 4 5 गुना हो गई। उपभोग्य आय मे इतनी अधिक वृद्धि के बावजूद, बचत का अनुपात बहुत कम रहा, क्योकि उपभोग्य आय का बडा भाग उपभोग व्यय के रूप मे काम आया। उपभोग प्रवृत्ति के अधिक रहने के मुख्यत दो कारण है—आधुनिक आर्थिक उत्पादन के शहरी ढांचे के कारण जीवन-लागत मे अतिरिक्त वृद्धि तथा शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए मानव पर अधिकाधिक विनियोजन।[3]

सारणी 5 2 मे कुजनेट्स ने उपभोग के ढांचे मे परिवर्तनो को पांच श्रेणियो मे प्रस्तुत किया है—भोजन, पेय, वस्त्र, आवास तथा अन्य। इन मदो मे सरकार द्वारा प्रदत्त शिक्षा स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएँ सम्मिलित नही हैं।

1 Ibid, p 124
2 Ibid, p 125
3 Ibid, p 128, Table 5.2

उपभोग (वर्तमान मूल्यो पर)
(Current Prices)

	भोजन (1)	पेय पदार्थ व तम्बाकू (2)	वस्त्र (3)	आवास (4)	अन्य (5)
इग्लैण्ड					
1880–99	34 2	13 8	—	10 7	41 3
1950–1959	31 3	14 1	11 7	12 8	30 1
इटली					
1861–80	52 0	17 2	—	5 8	25 0
1950–1959	46 6	10 7	11 5	5·2	26 0
नार्वे					
1865–1875	45 2	7 0	10 9	19 8	17 1
1950–59	30 3	8 1	16 7	10 1	34 7
कनाडा					
1870–1890	32 2	5 7	16·9	26 7	18 5
1950–59	23 7	8 3	10 2	21·2	36 6

निष्कर्षत. कुल उपभोग मे भोजन व्यय का भाग कम हुआ वस्त्रो के व्यय का भाग अधिक हुआ। आवासीय भवनो पर किए गए व्यय की स्थिति स्पष्ट नही है। 'अन्य' मदो के अन्तर्गत घर के फर्नीचर व साज सामान, वाहन, चिकित्सा-सुविधा, मनोरजन आदि को जो भार दिया गया है उसस यह निष्कर्ष निकलता है कि जैसे जैसे प्रति व्यक्ति उपभोग वस्तुओ के क्रय मे वृद्धि होती है उक्त वस्तुओ के भाग मे वृद्धि होगी।

वस्त्र वाली मद मे पाए जाने वाले अन्तर और भी अधिक उल्लेखनीय हैं। जर्मनी, नार्वे व स्वीडन मे वस्त्रो की मद वाले भाग मे पर्याप्त वृद्धि होती है किन्तु इग्लैण्ड मे वस्त्रो का अनुपात वर्तमान कीमतो पर स्थिर रहता है, स्थिर कीमतो पर यह अनुपात गिरता है।

कुल उपभोग म आवासीय व्यय के अनुपात मे उक्त मदो की अपेक्षा अधिक अन्तर पाए गए हैं। किन्तु कुजनेट्स द्वारा प्रस्तुत अनुमानो के अनुसार नार्वे स्वीडन व इग्लैण्ड मे आवासीय भवनो के अनुपात मे गिरावट रही। अमेरिका व कनाडा म इस मद की प्रवृत्ति स्थिरता की रही—विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व की अवधि मे प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी मे इस मद म वृद्धि की प्रवृत्ति रही। उक्त निष्कर्षों से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम, आधुनिक आर्थिक वृद्धि के दौरान, उपभोग वस्तुओ की क्रय के स्तर व ढांचे का यदि विश्लेषण किया जाता है तो उपभोग प्रवृत्ति की सीमा का अधिक रहना निश्चित है, किन्तु दूसरी ओर उपभोग की मदो के उपवर्गों

की प्रवृत्तियो मे स्वाभाविक अनुमानो के विपरीत अनेक असगतियाँ सम्भव हैं। भोजन की किसी विशेष मद पर व्यय की प्रवृत्ति गिरने के स्थान पर बढने की हो सकती है और इसी प्रकार वस्त्रो के किसी मद पर व्यय की प्रवृत्ति बढने के स्थान पर घटने की हो सकती है।

उपभोग की उक्त समस्त मदो के निष्कर्षों के कारणो को तीन श्रेणियो मे रखा जा सकता है--(1) आधुनिक अर्थव्यवस्था के बदलते हुए उत्पादन—ढाँचे मे परिवर्तनो के कारण जीवन की अवस्थाएँ भिन्न हो गई है; जिन्होने उपभोग की सरचना व स्तर मे अनेक बडे परिवर्तन ला दिए हैं, (2) प्रायोगिक परिवर्तन (Technological Changes)—विशेषकर उपभोग-वस्तुओ के क्षेत्र मे तथा (3) क्रियाशील जनसख्या के व्यावसायिक वितरण व आय-वितरण के विभिन्न पहलुओ मे परिवर्तन। इन तत्वो के कारण उपभोग प्रवृत्ति प्रभावित होती है तथा कुल उपभोग मे अनेक उपवर्गों का अनुपात परिवर्तित होता रहता है। यद्यपि ये तत्व परस्पर एक दूसरे के पूरक है, किन्तु पृथक् रूप से इनका विश्लेषण श्रेष्ठ हो सकता है।

रहन-सहन की अवस्थाओ मे परिवर्तनो के अन्तर्गत सबसे प्रमुख प्रवृत्ति शहरीकरण की है। श्रम-विभाजन व विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति मे वृद्धि होती है, परिवारो की क्रियाएँ बाजारोन्मुख (Shifts from non-market activities to market activities) होने लगती हैं।

यह क्रिया पूँजी-निर्माण के अनुपात मे उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन को निश्चित रूप से बढाती हो, यह आवश्यक नही है, क्योकि अतीत मे भी विशिष्टीकरण व श्रम-विभाजन की स्थिति से पूर्व पूँजीगत वस्तुओ का उत्पादन सापेक्ष रूप से इतना अधिक होता रहा है जितना कि उपभोग्य वस्तुओ का। किन्तु इस परिवर्तन का प्रभाव उपभोग्य वस्तुओ के क्रय के ढाँचे की प्रवृत्तियो पर अवश्य होता है।

द्वितीय, शहरीकरण से जीवन-लागत बढ जाती है। जीवन-लागत की इस वृद्धि का उपभोग्य वस्तुओ के क्रय पर प्रभाव पडता है। बचत व पूँजी-निर्माण भी प्रभावित होते हैं। इस स्थिति का विभिन्न उपभोग्य वस्तुओ पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, शहरी आबादी की खरीदो का शहरो मे उत्पादित उन वस्तुओ की अपेक्षा जिनका ग्रामीण क्षेत्रो मे उपभोग होता है, कृषि-पदार्थों पर कही अधिक प्रभाव पडता है।

शहरी जीवन 'प्रदर्शनकारी प्रभाव' (Demonstration Effect) से प्रभावित होता है। प्रदर्शनकारी प्रभाव के कारण उपभोग का स्तर बढ जाता है। नए उपभोग्य पदार्थों के प्रति आकर्षण मे वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप सापेक्ष रूप से बचत व पूँजी-निर्माण की अपेक्षा उपभोग-व्यय की प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट रूप से प्रभावित होती हैं।

उपभोग के ढाँचे को प्रभावित करने वाले अन्य परिवर्तन प्रायोगिक परिवर्तन (Technological Changes) हैं। ये परिवर्तन ही आधुनिक आर्थिक वृद्धि के

मूल स्रोत हैं। इन परिवर्तनो के कारण नई प्रकार की उपभोग्य वस्तुएँ अस्तित्व मे आती हैं और पुरानी वस्तुओ मे अनेक सुधार होते हैं। खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत भी रेफ्रीजरेशन, केनिंग (Refrigeration and Canning) आदि नवीन प्रक्रियाओ के कारण भोजन की कुल माँग और विभिन्न वर्गों मे इसके वितरण पर प्रभाव पडता है। मानव निर्मित वस्त्रो, विद्युत प्रसाधनो, रेडियो, टेलीविजन, मोटरगाडियाँ, हवाई यातायात आदि नई उपभोग्य वस्तुओ का बढता हुआ उपभोग इसी प्रकार के परिवर्तनो के कारण होता है। यद्यपि तकनीकी परिवर्तनो के पूँजीगत वस्तुओ व उपभोग वस्तुओ पर सापेक्ष प्रभाव की माप कठिन है, तथापि आज के विकसित देशो मे अनेक प्रकार के नए से नए उपभोग पदार्थों के बढते हुए उपभोग मे प्रायोगिक परिवर्तनो का प्रभाव उपभोग की सरचना पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

प्रायोगिक प्रगति के कारण उपभोक्ता के अधिमानो मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आते हैं। उदाहरणार्थ, पोषण तत्त्वो के सम्बन्ध मे अधिक ज्ञान-वृद्धि के कारण भोजन की वस्तुओ के प्रति उपभोक्ताओ की रुचि मे अन्तर आ जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रायोगिक प्रगति के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय का स्तर काफी अधिक बढा है तथा समाज के विभिन्न वर्गों मे उपभोग्य वस्तुओ के वितरण की स्थिति मे मौलिक भिन्नता आ गई है।

उपभोग प्रभावित करने वाले तीसरे प्रकार के परिवर्तन आय वितरण से सम्बन्धित होते हैं। जब क्रियाशील श्रमिक निजी व्यवसाय से हटकर सेवा क्षेत्र के प्रति आकर्षित होते हैं तब वेतनभोगी श्रमिको का कुल श्रम शक्ति मे अनुपात अधिक हो जाता है। परिणामस्वरूप, उपभोग्य वस्तुओ का वितरण व बचतें प्रभावित होती हैं। *अप्रशिक्षित व्यवसायो से हटकर श्रमिको का श्वेतपोशी व्यवसायो की ओर उन्मुख* होना भी उपभोग के ढाँचे मे बडा परिवर्तन लाता है। निजी अव्यवसायियो की अपेक्षा श्वेतपोशी व्यवसायो मे कार्यरत वेतनभोगी-वर्ग जीवन का न्यूनतम स्तर अधिक ऊँचा रहता है। उनकी इस प्रवृत्ति का उपभोग की सरचना पर विशेष प्रभाव होता है।

"आय वितरण सम्बन्धी परिवर्तनो के कारण व्यक्तियो का जीवन-स्तर इस प्रकार प्रभावित होता है कि उपभोग व्यय का उन वस्तुओ पर अनुपात बढ जाता है जिनकी आय लोच इकाई से कम होती है तथा जिन वस्तुओ की आय लोच इकाई से अधिक होती है, उन पर उपभोग व्यय का अनुपात कम हो जाता है। इसी कारण भोजन की मद का व्यय आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप कम हो जाता है क्योकि विकसित देशो मे इस मद की आय लोच सामान्यतः ·5 तथा निर्धन देशो मे 7 पाई जाती है। दूसरी ओर वस्त्रो के मद की आय लोच इकाई से अधिक प्राय 1 7 के लगभग होती है। कुछ देशो मे मोटर आदि ओटोमोबाइल्स की आय लोच 1 8 तथा शराब आदि मादक पदार्थों के लिए आय लोच 1·94 पाई जाती है। अत आय मे वृद्धि के कारण इकाई से अधिक आय लोच वाली वस्तुओ—वस्त्र, ओटोमोबाइल्स,

मादक पदार्थ आदि पर उपभोग व्यय का अनुपात आय मे वृद्धि से अधिक हो जाता है।'[1]

उपभोग की सरचना मे परिवर्तनो के लिए उत्तरदायी उक्त तत्वो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जिनमे प्रमुख जीवन के मूल्यो से सम्बन्धित होते है। यदि आज का व्यक्ति वर्तमान मे उपभोग को अधिक महत्त्व देता है, भौतिक आवश्यकताओं की तुष्टि के प्रति अधिक व्यग्र रहता है अपेक्षाकृत भविष्य के लिए बचत की राशि मे वृद्धि करने के, तो ऐसी स्थिति मे उपभोग का अनुपात, उपभोग्य आय मे, बचत व पूँजी निर्माण की अपेक्षा कही अधिक बढ जाता है।

सामान्यत उपभोग के लिए राष्ट्रीय आय का 85 से 100 प्रतिशत उपयोग किया जाता है। अत पूँजी निर्माण मे राष्ट्रीय आय का भाग प्राय. शून्य से 15 प्रतिशत तक रहता है। अल्पकाल मे अथवा किसी व्यापार चक्रीय अवधि के कालान्तर मे उपभोग व पूँजी निर्माण मे राष्ट्रीय आय के अनुपात उक्त अनुपातो की तुलना मे कुछ कम अथवा अधिक हो सकते है। किन्तु हम उपभोग के विश्लेषण को दीघकाल से सम्बन्धित रखते हुए यह मान्यता लेकर चलते हैं कि दीर्घकाल मे राष्ट्रीय आय का उपभोग पर अनुपात 82 से 98 प्रतिशत की सीमाओ मे रहता है। विकसित देशो मे यह प्रतिशत यदि 82 तथा अर्द्ध-विकसित देशो मे 98 रहता है तो अर्द्ध विकसित क्षेत्रो की प्रति व्यक्ति आय जो विकसित क्षेत्रो की प्रति व्यक्ति आय का लगभग 17वाँ भाग होती है उपभोग पर इस प्रकार व्यय होती है कि अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो म प्रति व्यक्ति उपभोग का स्तर विकसित क्षेत्रो की अपेक्षा 1/13 रहता है।[2]

व्यापार मे सरचनात्मक परिवर्तन
(Structural Changes in the Composition of Trade)

आर्थिक विकास के कारण उपभोग व उत्पादन की सरचना मे होने वाले परिवर्तन आय के स्तर पर निर्भर करते है। किन्तु विकास की अवस्था विदेशी व्यापार की सरचना के लिए सापेक्ष रूप से कम उत्तरदायी है। विदेशी व्यापार के अनुपात (Foreign Trade Proportions) मुख्यत देश के आकार द्वारा निर्धारित होते हैं। देश के आकार व विदेशी व्यापार के अनुपातो मे विपरीत सम्बन्ध होता है। *छोटे देश के विदेशी व्यापार-अनुपात प्राय बडे तथा बडे देश के व्यापार अनुपात* छोटे होते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं—(1) प्राकृतिक साधनो की विविधता क्षेत्रफल के आकार पर निर्भर करती है। इसीलिए छोटे आकार वाले देश के आर्थिक *ढाँचे म कम विविधता पाई जाती है,* (ii) *छोटे देश आधुनिक स्तर के औद्योगिक* सयत्र के अनुकूलतम पैमाने (Optimum Scale of Plant) के सचालन की क्षमता नही रखते हैं। अत विदेशी बाजारो पर निर्भर रहना पडता है। इसके अतिरिक्त कुछ छोटे राष्ट्र कतिपय प्राकृतिक ससाधनो की दृष्टि से एक विशेष लाभ की स्थिति

1 Ibid, p 135
2 *Simon Kuznets*, Economic Growth and Structure, p 149

मे हो सकते हैं । अरब राष्ट्रो का उदाहरण लिया जा सकता है । तेल के क्षेत्र मे इन्हे विशेष लाभ प्राप्त है । इस विशेष स्थिति के कारण विश्व के सभी बाजार इन छोटे राष्ट्रो को अपने व्यापार के लिए उपलब्ध होते है । अत विशेष लाभ की स्थिति वाला छोटा देश अपने साधनो को एक बडे अनुपात मे एक अथवा कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे केन्द्रित कर सकता है । दूसरी ओर एक बडा राष्ट्र तुलनात्मक लाभ की दृष्टि से अपने साधनो को अनेक क्षेत्रो मे लगाने की स्थिति मे होता है ।

व्यापार की सरचना से सम्बन्धित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य मांग ढांचा (Structure of Demand) अथवा उपभोग व पूंजी-निर्माण मे वस्तुओ का प्रवाह है । दोनो प्रकार के देशो मे मांग के ढांचे मे विविधता पाई जाती है क्योंकि प्रति व्यक्ति आय का स्तर बढा हुआ होने पर एक छोटे देश मे भी उन वस्तुओ की मांग होगी, जिनका वहां उत्पादन नही होता है ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि घरेलू उत्पादन के केन्द्रित ढांचे व अन्तिम मांग के विविधतापूर्ण ढांचे मे अन्तर की सीमा बडे राष्ट्रो की अपेक्षा छोटे राष्ट्रो मे अधिक होगी । घरेलू उत्पादन के केन्द्रित ढांचे व अन्तिम मांग के विविधतापूर्ण ढांचे की यह विषमता (Disparity) विदेशी व्यापार के कारण ही सम्भव हो सकी है ।

एक देश की विविधतापूर्ण मांग की पूर्ति आयातो द्वारा की जा सकती है । छोटे राष्ट्रो के बाजारो मे बडे राष्ट्रो की अपेक्षा विदेशी प्रतियोगिता अधिक होती है । प्रत्येक देश के विदेशी व्यापार-अनुपात की गणना वस्तुओ के निर्यात व आयातो के योग को राष्ट्रीय आय तथा आयातो के योग से विभाजित करके की गई है ।

यह अनुपात चरम स्थितियो मे शून्य व इकाई हो सकता है । यह अनुपात शून्य तब होता है जब किसी देश मे आयात निर्यात शून्य होते है तथा यह अनुपात इकाई तब होता है जब देश मे घरेलू उत्पादन बिलकुल नही होता है तथा सम्पूर्ण मांग की पूर्ति केवल आयातो से की जाती है व आयातो का भुगतान पुनः निर्यातो (Re exports) से किया जाता है । यदि आयात घरेलू उत्पादन के बराबर होते हैं और निर्यात व आयात परस्पर समान होते है तब भी यह अनुपात 1 होता है । आयातो के बराबर निर्यातो के होने पर, 2 अनुपात यह प्रदर्शित करता है कि आयात राष्ट्रीय उत्पादन के दसवे भाग से कुछ अधिक होते है तथा 4 अनुपात का अर्थ यह होता है कि राष्ट्रीय उत्पादन मे आयातो का भाग 25 है ।

समान आकार वाले विभिन्न देशो को यदि विभिन्न समूहो मे रखा जाए तब भी देश के आकार व विदेशी व्यापार-अनुपात मे विपरीत सम्बन्ध मिलेगा । प्रति व्यक्ति आय की अपेक्षा प्रस्तुत स्थिति मे देश का आकार विदेशी व्यापार के अनुपात को प्रभावित करने वाला अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । जनसख्या के आकार की उपेक्षा करते हुए प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जब देशो को विभिन्न समूहो मे रखा जाता है, तब आय के पैमाने पर नीचे की ओर आने पर विदेशी व्यापार के अनुपात मे कोई क्रमिक परिवर्तन नही पाया जाता है ।

Relation Between Foreign Commodity Trade, Size of Country and Level of Income per Capita

(1938-39 and 1950-54)

Groups of Countries		Number of Countries	1938-39 Average Population (Millions) or Average Income per Capita (S)	Average Foreign Trade Ratio	Number of Countries	1950-54 Average Population (Millions) or Average Income per Capita (S)	Average Foreign Trade Ratio
		1	2	3	4	5	6
A. Countries Arrayed in Descending Order of *Population* Size							
1.	I	10	135 4	0 17	10	103·9	0·21
2	II	10	16·2	0 24	10	22 0	0 24
3.	III	10	7 3	0 31	10	10 4	0 41
4.	IV	10	3·7	0·38	10	5 3	0 41
5	V	12	1·5	0 38	10	2 7	0 41
6	VI				7	0 8	0 41
B. Countries Arrayed in Descending Order of Income per Capita							
7.	I	10	429	0 29	10	1,021	0·35
8	II	10	214	0·32	10	514	0 41
9.	III	10	106	0·19	10	291	0 40
10.	IV	10	66	0 36	10	200	0 24
11.	V	12	40	0·24	10	115	0·38
12	VI				7	67	0 26

Source : *Simon Kuznets* : Six Lectures on Economic Growth, p. 96

छोटे देशो के विदेशी व्यापार की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ होती हैं। प्रथम, इन देशो के निर्यात एक अथवा दो वस्तुओ से केन्द्रित रहते हैं। तेल, काफी, टिन आदि कुछ इसी प्रकार की मदें हैं जिनकी निर्यात माँग विश्व मे बहुत अधिक पाई जाती है। निर्यातो का यह केन्द्रीकरण बडे अविकसित देशो मे पाया जाता है जिनमे निम्न-स्तरीय उत्पादन तकनीकी प्रयोग मे ली जाती है। निम्न-स्तरीय तकनीकी के कारण ऐसे देशो मे कुछ ही वस्तुओ मे तुलनात्मक लाभ की स्थिति पाई जाती है। द्वितीय, छोटे देशो के आयात व निर्यातो का सीधा सम्बन्ध किसी एक बडे राष्ट्र से होता है, किन्तु बडे आकार वाले देशो का आयात-निर्यात व्यापार अनेक देशो के साथ होता है।

विदेशी व्यापार बडे देशो की अपेक्षा छोटे देशो के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इन देशो मे घरेलू उत्पादन कुछ ही क्षेत्रो मे केन्द्रित रहता है। अत घरेलू उत्पादन का क्षेत्र सीमित होने के कारण अन्तिम माँग के एक बडे भाग की पूर्ति विदेशी व्यापार द्वारा ही सभव है किन्तु छोटे देशो के व्यापार की भी सीमाएँ होती हैं। इन सभी सीमाओ को विदेशी व्यापार द्वारा दूर कर पाना सभव नही है। सरकारी हस्तक्षेप व अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षों के कारण विदेशी व्यापार मे अवरोध उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ आवश्यक वस्तुओ के निर्यात का अर्थ बहुत बडी लागत चुकाना होता है।

जनसख्या के आकार मे कमी के साथ-साथ एक विशेष बिन्दु तक ही विदेशी व्यापार का औसत अनुपात बढता है। उस बिन्दु के पश्चात अनुपात का बढना रुक जाता है। उदाहरणार्थ, उक्त सारणी मे 1938-1939 के वर्ष मे समूह iv मे यह अनुपात ·38 तक पहुँचता है आगे वाले समूह मे जनसख्या मे 1 5 मिलियन की कमी होने पर भी यह अनुपात ·38 ही बना रहता है। 1950-54 मे अनुपात की उच्चतम सीमा सम्बन्धी तथ्य की अधिक पुष्टि होती है। समूह iii मे 10 5 मिलियन जनसख्या की स्थिति मे भी यह अनुपात 41 का अधिकतम स्तर प्राप्त कर लेता है और इस स्तर के बाद एक मिलियन से कम वाले समूह मे भी इस अनुपात मे कोई वृद्धि नही होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समय विशेष मे वर्तमान राजनीतिक सस्थागत व आर्थिक परिस्थितियो मे कुल उत्पादन के उस भाग की जो व्यापार के लिए उपलब्ध होता है एक उच्चतम सीमा होती है।

विदेशी व्यापार पर बडे देशो की तुलना मे छोटे देशो की निर्भरता अधिक होती है। "विदेशी व्यापार का प्रति व्यक्ति आय के स्तर के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। अत बडे देश अपेक्षाकृत वही छोटे विदेशी व्यापार के अनुपातो से 'आर्थिक वृद्धि' करने की स्थिति मे होते है। आर्थिक वृद्धि की क्रिया व राष्ट्रीय उत्पादन की एक महत्वपूर्ण दिशा (विदेशी व्यापार) मे छोटे व बडे देशो की स्थिति मे अन्तर पाया जाता है अर्थात् विभिन्न घरेलू व विदेशी क्षेत्रो के योगदानो के अनुपातो की दृष्टि से छोटे व बडे देशो की स्थिति भिन्न होती है।'[1]

1 *Simon Kuznets* Quantitative Aspects of the Economic Growth of Nations

विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे अविकसित देशो की राष्ट्रीय आय व निर्यातो का अनुपात प्राय 10% होता है जबकि समृद्ध अथवा विकसित देशो के लिए प्राय 20 से 25% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अविकसित देश मुख्यत कच्चे माल के निर्यातक होते हैं, जबकि विकसित देश निर्मित वस्तुओ के निर्यातक होते हैं।

GATT के अनुसार अल्प-विकसित देश निर्मित वस्तुओं के कुल उपभोग का केवल एक-तिहाई भाग का ही आयात करते हैं और यह अनुपात उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है।[1]

आर्थिक पिछड़ेपन की स्थिति (Under development) विदेशी व्यापार के अनुपातो पर दो विपरीत तरीको से प्रभाव डालती है। प्रथम, यह स्थिति कुल उत्पादन के आकार को सीमित करती है, परिणामत विदेशी व्यापार के अनुपात मे वृद्धि होती है तथा आर्थिक हीनता की स्थिति निम्नस्तरीय तकनीकी को प्रकट करती है।

विनियोग के स्वरूप मे परिवर्तन
(Changes in the Composition of Investment)

अविकसित देशो की मुख्य समस्या उत्पादकता मे कमी होना है और यही इनकी दरिद्रता के लिए उत्तरदायी है। उत्पादकता मे वृद्धि पूँजी-सचय की वृद्धि पर तथा पूँजी-सचय की वृद्धि विनियोग की मात्रा पर निर्भर करती है अर्थात् आर्थिक विकास के कार्यक्रमो के प्रारम्भ तथा इनकी गति को तीव्र करने के लिए अधिक से अधिक विनियोगो की आवश्यकता है। किन्तु विनियोग नीति किस प्रकार की होनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे दो दृष्टिकोण हैं—(i) क्रमिक विकास का दृष्टिकोण (Gradual Approach) तथा (ii) विनियोग की विशाल योजना का दृष्टिकोण (Big Push Approach)। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार विनियोगों का प्रयोग प्रारम्भ मे कृषि विकास, सामाजिक ऊपरी पूँजी निर्माण (Social Overhead Capital) तथा लघु उद्योगो के विकास के लिए होना चाहिए। फिर जैसे जैसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो, शनै -शनै क्रमिक रूप से भी उद्योगो मे विनियोग किया जाना चाहिए। लेटिन अमेरिका, अफ्रीका के पूर्वी भाग तथा दक्षिणी एशिया के कुछ भागो मे यही नीति अपनाई गई है।

दूसरा दृष्टिकोण विनियोग की विशाल योजना का समर्थन करता है। यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि जब तक सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे विकास कार्यक्रमो मे विशाल पैमाने पर परिवर्तन नही होते तब तक विकास प्रक्रिया स्वत सचालित व सचई गति प्राप्त नहीं कर सकती। इस मत के समर्थको मे लिबिन्स्टीन (Leibenstein) व नैलसन (Nelson) उल्लेखनीय हैं। लिबिन्स्टीन का 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास का विचार' (Critical Minimum Effort Thesis) तथा नैलसन का 'निम्नस्तरीय सतुलन जाल' (The low level Equilibrium Trap) का सिद्धान्त इस दृष्टिकोण की श्रेणी म आते हैं। इन सिद्धान्तो के अनुसार

1 International Trade 1951, GATT, 1900 Kuznets-MEG, p 202

भारी विनियोगो की आवश्यकता होती है ताकि उत्पादन मे वृद्धि की दर जनसख्या की विकास दर से अधिक हो सके ।

विनियोग बचत पर निर्भर करते है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे बचत-दर बहुत कम है । इन देशो मे बचत-दर जहां 4 व 5 प्रतिशत के बीच है, वहां विकसित देशो मे यह दर 15 प्रतिशत व इससे भी अधिक है । आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति देने के लिए बचत की निरन्तर बढती हुई दर आवश्यक होती है और विनियोग के स्तर को 5 प्रतिशत बढाकर राष्ट्रीय आय के 15 से 18 प्रतिशत तक करना आवश्यक हो जाता है ।

"1870-1913 की अवधि मे ब्रिटेन के जो तथ्य उपलब्ध है, वे यह प्रमाणित करते हैं कि इस अवधि मे वहां विनियोग की औसत दर 10 प्रतिशत थी तथा समृद्ध वर्षों मे यह 15 प्रतिशत भी रही । अमेरिका मे 1867-1913 की अवधि मे शुद्ध विनियोग दर 13 से 16 प्रतिशत रही, जबकि कुल विनियोग 21 से 24 प्रतिशत के मध्य रहा । जापान मे *1900-1901* मे *12* प्रतिशत तथा आगे की दशाब्दियो मे इसके 17 प्रतिशत तक बढने का अनुमान है ।'[1] इसके विपरीत भारत मे पूंजी-निर्माण की दर बहुत कम है, परिणामस्वरूप विनियोग-दर यथेष्ठ विकास दर प्राप्त करने के लिए अपर्याप्त है । *अर्द्ध-विकसित देशो मे पूंजी-निर्माण की निम्न* दर निम्नलिखित सारणी मे प्रस्तुत की गई है—

कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे पूंजी निर्माण का अनुपात[2]

विकसित देश	वर्ष	कुल पूंजी-निर्माण	अर्द्ध विकसित देश	वर्ष	कुल पूंजी निर्माण
नार्वे	1959	29%	बर्मा	1960	17%
आस्ट्रिया	1960	24%	पुर्तगाल	1959	17%
नीदरलैंड	1960	24%	श्रीलका	1960	13%
कनाडा	1960	23%	आयरलैंड	1959	13%
स्विट्जरलैंड	1959	23%	चिली	1959	11%
स्वीडन	1960	22%	फिलीपाइन्स	1959	8%
ब्रिटेन	1960	16%	भारत	1959	8%
अमेरिका	1960	16%			

इसके अतिरिक्त साइमन कुजनेट्स ने भी विकसित व अविकसित देशो मे पूंजी-निर्माण की औसत दर के अन्तर को अग्रलिखित प्रकार प्रस्तुत किया है ।

1 Planning Commission-The First Five Year Plan, p 13
2 U. N Statistical Year Book, 1961

प्रति व्यक्ति आय स्तर व पूंजी निर्माण की दर[1]

देशो के समूह	कुल उत्पादन मे कुल पूंजी निर्माण की दर
1	21 3%
2	23 3%
3	17 2%
4	15 7%
5	18 2%
6	13 3%
7	17 1%

प्रथम व द्वितीय समूह की औसत पूंजी निर्माण दर 22 2% तथा तृतीय, चतुर्थ व पचम समूहो की औसत दर 16 3% तथा 5 6 और 7 मे इसका औसत 15 2% प्रतिशत है। इस प्रकार धनी देशो मे निम्न आय वाले देशो की अपेक्षा पूंजी-निर्माण की दर काफी कम है। अत स्पष्ट है कि अधिक पूंजी निर्माण वाले देशो मे प्रति व्यक्ति पूंजी का उपभोग दर कम आय वाले देशो की अपेक्षा बहुत कम है। इस विषमता को निम्नलिखित सारणी मे प्रस्तुत किया गया है—

कुछ उद्योगो मे प्रतिव्यक्ति नियोजित पूंजी[2]

उद्योग	अमेरिका	मैक्सिको	भारत
ब्रेड और बेकरी उद्योग	5 0	1 7	3 5
वस्त्र उद्योग	8 7	2 1	1 8
इस्पात उद्योग	32 1	10 8	5 7
चीनी उद्योग	26 8	8 2	2 6
कागज, लुग्दी व कागज के सामान से सम्बन्धित उद्योग	10 2	8 9	6 6

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्व विनियोगो का दिया जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केंज के अनुसार रोजगार का स्तर प्रभावपूर्ण मांग (Effective Demand) पर निर्भर करता है। प्रभावपूर्ण मांग के दो अनुभाग होते हैं—(i) उपभोग मांग व (ii) विनियोग मांग। अल्पकाल मे उपभोग के प्रति अधिमानो मे परिवर्तन लाना कठिन होता है। विनियोगो का वर्गीकरण निजी विनियोग, सार्वजनिक विनियोग व वित्तीय विनियोगो के रूप मे किया जा सकता है। व्यापारिक प्रतिष्ठानो व परिवारो द्वारा किए गए ऐसे व्यय जो पूंजी सचय मे वृद्धि करते हैं, निजी विनियोग कहलाते हैं। राजकीय प्रतिष्ठानों द्वारा पूंजी निर्माण के लिए व्यय सार्वजनिक विनियोग की श्रेणी मे आता है। एक व्यक्ति अथवा प्रतिष्ठान जब अन्य व्यक्ति या प्रतिष्ठान से केवल परिसम्पत्ति

1 *Simon Kuznets* Six Lectures on Economic Growth pp 72 & 73
2. *Tinbergen* The Design of Development 1958, p 73

का क्रय विक्रय करना है, जिससे किसी नई परिसम्पत्ति का निर्माण नही होता है, वित्तीय विनियोग कहलाता है।

विकासोन्मुख देशो मे जहाँ विकास दर को अधिक से अधिक बढाने का लक्ष्य होता है, विनियोग का स्वरूप निर्धारित करने से पूर्व विनियोग नीति के लक्ष्य निश्चित करना अनिवार्य है। इन देशो मे विनियोग के लक्ष्य रोजगार को अधिकतम करना, निर्यातो को अधिकतम करना, सन्तुलित विकास, आय व पूँजी का न्यायोचित वितरण आदि हो सकते हैं। यदि अल्पकाल मे अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य रखा जाता है तो कृषि तथा उपभोग वस्तुओ के उद्योगो मे विनियोग किया जाता है, क्योकि इन उद्योगो की परिपक्वता अवधि (Gestation Period) कम होती है। यदि उत्पादन मे दीर्घकालीन एव सतत् वृद्धि आवश्यक समझी जाती है तो पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगो (Capital Goods Industries) म विनियोग वाँछनीय होता है। अर्थात् विनियोगो की सरचना का निर्धारण आर्थिक विकास के लक्ष्यो पर निर्भर करता है। अत सभी अविकसित देशो के लिए समान विनियोग नीति सभव नही है।

सामान्यत आर्थिक विकास के दौरान ऐसे उद्योगो मे विनियोगो को प्राथमिकता दी जाती है, जिनम (i) वर्तमान उत्पादन व विनियोग का अनुपात (Ratio of Current Output to Investment), (ii) श्रम व विनियोग का अनुपात (Ratio of Labour to Investment) तथा (iii) निर्यात वस्तुओ व विनियोग का अनुपात (Ratio of Export Goods to Investment) अधिकतम होना सभव हो।

पूँजी के उचित वितरण तथा आय की विषमताओ को दूर करने की दृष्टि से कृषि व लघु उद्योगो मे विनियोग आवश्यक होता है। विकासोन्मुख देशो मे आय की विषमताएँ बहुत अधिक पाई जाती है, अतः विकास के दौरान प्राय कृषि व लघु उद्योगो मे विनियोग की मात्रा बढाने पर बल दिया जाता है, किन्तु दीर्घकालिक व स्थाई विकास की दृष्टि से भारी उद्योगो मे विनियोग भी आवश्यक होता है। अत आर्थिक विकास के दौरान इन दोनो लक्ष्यो म सतुलन (Balance) रखा जाता है।

आर्थिक विकास की दीर्घकालिक अवधि मे सरकारी प्रतिष्ठानो मे विनियोग का अनुपात बढता जाता है तथा निजी विनियोग के अनुपात मे कमी की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है। अल्प-विकसित देशो मे विकास के लिए अर्द्ध-सरचना (Infra structure) जैसे रेलो, सडको, नहरो, शक्ति परियोजनाओ तथा अन्य प्रकार की आर्थिक और सामाजिक ऊपरी पूँजी (Economic and Social Overheads) आवश्यक होती है। निजी विनियोगो द्वारा इन कार्यों के लिए पूँजी-सचय सभव नही होता है। यद्यपि निजी विनियोगो की तुलना मे सार्वजनिक विनियोग दर प्राय कम होती है, तथापि सार्वजनिक क्षेत्र का आर्थिक विकास के साथ-साथ अधिक से अधिक विस्तार किया जाता है, क्योकि सार्वजनिक विनियोगो का मुख्य उद्देश्य प्रतिफल की दर की अधिकता न होकर, सामाजिक उत्पादकता (Social

Productivity) को अधिक से अधिक बढाना एव निजी विनियोगो के आकर्षण के लिए वाह्य बचत (External Economies) को उत्पन्न करना होना है।

इटली मे राजकीय प्रतिष्ठानो की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश उद्योग सरकारी क्षेत्र मे आते हैं। इनमे से अनेक उद्योगो मे लाभ-दर काफी ऊँची है। किन्तु वी. लुत्ज के अनुसार, "रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए अनेक हानिकारक उद्योगो मे भी विनियोग किया गया है।"[1] सार्वजनिक विनियोग व निजी विनियोग का अनुपात लगभग 60 40 है।

विनियोग के क्षेत्र मे सरकार की दूसरी भूमिका अनुदान, सहायता आदि देने की होती है। सरकारी अनुदान व सहायता के माध्यम से नए स्थानो पर उद्योग विकसित करने के प्रयत्न होते हैं। इगलैण्ड व फ्रांस न लन्दन व पैरिस से कारखानो को अन्यत्र स्थापित करने मे सरकारी अनुदानो का प्रयोग किया है। नार्वे ने जनसख्या का उत्तर से स्थानान्तरण रोकने का प्रयत्न किया है।

सरकार निजी क्षेत्र के विनियोगो पर भी अपना नियन्त्रण रखती है। अब प्रश्न उठता है कि विनियोग नियोजन (Investment Planning) मे सरकार की बढती हुई भूमिका आवश्यक है अथवा अहितकर। सभी देशो के लिए इस प्रश्न का एक उत्तर सभव नही है। इस प्रश्न का उत्तर निजी व्यवसाय के प्रतिस्पर्द्धा, सरकारी अधिकारी तथा व्यापारियो की सापेक्ष कुशलता व योग्यता पर निर्भर करता है। फ्रांस की नियोजन पद्धति मे सरकार व निजी व्यवसाय की दोहरे सहयोग से विनियोग निर्णयो मे पर्याप्त सुधार हुए है। परिणामत फ्रांस विनियोगो से विकास की बढती हुई दर प्राप्त करने मे समर्थ रहा है।

पूँजी-प्रदा अनुपात (Capital Out-put Ratio)

किसी भी देश के लिए पूंजी की आवश्यकता के अनुमान पूँजी-प्रदा अनुपात (Capital Out put Ratio) की धारणा पर निर्भर करते हैं। अर्थ-व्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे पूँजी-प्रदा अनुपात भिन्न होता है। अर्द्ध-विकसित देशो के कृषि क्षेत्र मे यह अनुपात कम होना है तथा औद्योगिक क्षेत्र मे अधिक रहता है। सार्वजनिक कल्याण के उद्योगो (Public Utilities) मे यह अनुपात और भी अधिक होता है। अतः विनियोग की सरचना मे पूंजी-प्रदा अनुपात की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

तकनीकी (Technology)

विनियोगो पर तकनीकी स्तर का भी प्रभाव पडता है। अर्द्ध-विकसित देशो मे तकनीकी स्तर निम्न होने के कारण पूँजी की उत्पादकता कम होती है और इसलिए पूँजी-प्रदा अनुपात अधिक रहता है। किन्तु जब कोई नई तकनीकी किसी अर्द्ध-विकसित देश मे प्रयोग मे ली जाती है तो आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होते हैं। यदि अधिक पिछडे हुए देशो म पूँजी का विनियोजन शिक्षा, प्रशिक्षण आदि पर

1 *Vera Lutz* Italy, A study in Economic Development, pp 276-284

किया जाता है तो विकसित देशो की अपेक्षा कही अधिक तेजी से विकास की बढती हुई दरो को प्राप्त किया जा सकता है।[1]

सक्षेप मे, विनियोग की सरचना बचत-दर, आर्थिक लक्ष्य, पूंजी-प्रदा अनुपात, तकनीकी आदि के स्तर पर निर्भर करती है। सभी अर्द्धविकसित देशो के लिए कोई एक विनियोग नीति उपयुक्त नही हो सकती।

रोजगार के ढांचे में परिवर्तन (Structural Changes in Employment)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान रोजगार की दिशा, स्तर व सरचना के परिवर्तनो को मुख्यत निम्न वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(1) कार्यारम्भ की आयु व कार्य-मुक्ति की आयु मे परिवर्तन
(2) क्रियाशील श्रम-शक्ति का व्यावसायिक वितरण
(3) कार्यशील श्रम शक्ति मे स्त्री व पुरुष का अनुपात
(4) कुशल व अकुशल श्रम के अनुपात
(5) निजी व्यवसायकर्त्ता व कर्मचारी वर्ग का अनुपात।

सामान्यत, आर्थिक विकास के कारण विकसित देशो मे कार्यारम्भ करने की आयु मे जहाँ एक ओर उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, वहाँ साथ ही कार्य मुक्ति की आयु मे कमी की गई है।

साइमन कुजनेट्स के अध्ययन के अनुसार प्रारम्भ मे कर्मचारियो का कुल राष्ट्रीय आय मे जो अनुपात 40 प्रतिशत था, वह बढकर वर्तमान वर्षों मे 60 और 71 प्रतिशत हो गया है। इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण श्रम-शक्ति मे कर्मचारी वर्ग की सख्या मे वृद्धि रहा है। साहसी व निजी उद्यमकर्त्ताओ का प्रतिशत 35 से घटकर केवल 20 रह गया। दूसरी ओर कर्मचारियो का प्रतिशत 65 से बढकर 80 हो गया। इस प्रवृत्ति के लिए औद्योगिक ढांचे के परिवर्तन उत्तरदायी हैं।

आज भी अर्द्ध-विकसित देशो के कृषि क्षेत्र मे लगी कुल श्रम-शक्ति मे उद्यमियो का अनुपात, उद्योग व सेवा क्षेत्रो की अपेक्षा बहुत अधिक है। यह अनुपात क्रमश 66, 31 और 35 प्रतिशत है जबकि विकसित देशो मे यह अनुपात क्रमश 61, 11 व 17 प्रतिशत पाया जाता है। आर्थिक विकास के कारण कृषि मे श्रम का अनुपात कम होने लगता है, परिणामस्वरूप, साहसियो व निजी उद्यमकर्त्ताओ का कुल श्रम शक्ति मे अनुपात भी बहुत कम रह जाता है। उद्योग व सेवा क्षेत्र के आकार मे वृद्धि तथा इनके असगठित से सगठित स्वरूप मे परिवर्तन के कारण भी साहसियो व निजी व्यावसायियो की कुल श्रम-शक्ति का अनुपात गिर जाता है।

छोटे किसान, व्यवसायी, आदि का अपने निजी व्यवसायो से हट कर कर्मचारी वर्ग की ओर आकर्षित होना, देश के आर्थिक-जीवन व योजना के आधार मे एक मूलभूत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यावसायिक स्तर मे इस अन्तर का कई

1 *W. A Lewis* Theory of Economic Growth, p 204

दिशाओ मे प्रभाव होता है—परिवार व बच्चो के प्रति सुख मे परिवर्तन, उपभोग के स्तर मे भिन्नता, बचत करने की अपेक्षा शिक्षा व प्रशिक्षण मे विनियोजन की प्रवृत्ति आदि।

कुजनेट्स ने कर्मचारियो के व्यावसायिक ढाँचे मे परिवर्तन निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किए हैं—

कर्मचारियो का व्यावसायिक ढांचा (1900-1960)

	व्यावसायिक समूहो का अनुपात (%)		स्त्रियो का व्यावसायिक अनुपात (%)	
	1900	1960	1900	1960
1. कुल श्रम शक्ति मे कर्मचारियो का अनुपात (%)	74 9	93 0	22 7	34 3
व्यावसायिक समूह				
2 व्यवसायी तकनीसियन	5 7	12 2	35 2	38 1
3 प्रबन्धक व अधिकारी	8	5 8	17 4	36 4
4 दफ्तरी बाबू	4 0	16 0	24 2	67 6
5 बिक्री अभिकर्त्ता	6 0	8 0	17 4	36 4
6 श्वेतपोशी कर्मचारी	16·6	42 0	24 5	45 6
7 क्राफ्टमैन, फोरमैन आदि	14 1	15 4	2 5	2 9
8 कारीगर एव ऐसे ही अन्य लोग	17 1	15 4	34 0	28 1
9 खेत व खानो के अतिरिक्त श्रमिक	16 6	5 9	3 8	3 5
10 खेत पर काम करने वाले श्रमिक तथा फोरमैन	23 6	2 6	13 6	17 3
11 Manual Workers	71 4	45 4	14 0	15 7
12 भृत्य वर्ग	4·8	9 6	34 3	52 4
13 घरेलू श्रमिक	7 3	3 0	96 6	96 4

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि—

(1) शारीरिक श्रम का अनुपात 1900 की तुलना मे 1960 मे बहुत अधिक गिरा है। श्वेतपोशी बाबुओ की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि हुई है परन्तु अकुशल श्रम के स्थान पर कुशल श्रम का अनुपात अधिक हुआ है।

(2) ये परिवर्तन सेवा क्षेत्र मे श्रम-शक्ति के अनुपात मे वृद्धि तथा कृषि क्षेत्र मे गिरावट को प्रदर्शित करते हैं।

(3) व्यावसायियो (Professionals), तकनीकी कर्मचारी, प्रबन्धक, अधिकारी बाबू आदि की माँग मे वृद्धि हुई है।

(4) अधिक कुशलता की माँग मे वृद्धि हुई है तथा अकुशल श्रम के अवसर कम हुए हैं।

सामान्यत लोगो का झुकाव मजदूरी के कार्यों से हटकर वेतनभोगी व्यवसायो की ओर रहा है। औद्योगिक क्षेत्र मे इन दोनो प्रकार के श्रमिको के अनुपात मे भारी अन्तर पाया जाता है—कृषि मे वेतनभोगी कर्मचारियो का अनुपात 4 से 13 प्रतिशत, उद्योग मे 11 से 18 प्रतिशत तथा सर्वाधिक सेवा क्षेत्र मे 42 से 83 प्रतिशत रहा है।

60 वर्ष की अध्ययन अवधि मे स्त्रियो का अनुपात 23 से 34% तक बढा है। इसका कारण, आर्थिक विकास के कारण स्त्रियोचित कार्यों की सुविधाओ म वृद्धि होना है।

अधिक जनसख्या वाले देशो मे आर्थिक विकास से पूर्व की स्थिति मे गुप्त बेरोजगारी (Disguised Un employment) की स्थिति पाई जाती है। तकनीकी व उत्पादन साधनों के दिए हुए होने पर, कृषि मे श्रम की सीमान्त उत्पादकता का शून्य पाया जाना गुप्त बेरोजगारी की स्थिति को प्रकट करना है। बेरोजगारी की यह स्थिति प्राय उस स्थिति मे पाई जाती है, जब रोजगार के विकल्प कम होने के कारण अधिकाँश श्रम कृषि मे लगा हुआ होता है। आर्थिक विकास के कारण उद्योग व सेवा क्षेत्रो का विस्तार होता है। वैकल्पिक रोजगारो के अवसरो मे वृद्धि होती है परिणामत गुप्त बेरोजगारी विलुप्त होने लगती है। विकसित देशो मे गुप्त बेरोजगारी नही पाई जाती।

आर्थिक विकास के प्रमुख तत्त्व एवं डेनिसन का अध्ययन

(Major Growth Factors, Denison's Estimate of the Contribution of Different Factors to Growth Rate)

आर्थिक विकास के प्रमुख तत्त्व (Major Growth Factors)

विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास के आधार के रूप मे विभिन्न तत्त्वो का उल्लेख किया है। इस प्रकार के तत्त्व जो विकास का प्रारम्भ करते हैं 'प्राथमिक तत्त्व' या 'प्रधान चालक' (Prime-mover) या 'उपक्रमक' (Initiator) कहलाते हैं। जब विकास की गति प्रारम्भ हो जाती है तो कई अन्य ऐसे तत्त्व जो इस विकास को तीव्रता प्रदान करते है, 'गौण तत्त्व' या 'प्रभावक' या 'पूरक तत्त्व' कहलाते हैं। उक्त तत्त्वो का वर्गीकरण आर्थिक और अनार्थिक तत्त्वो (Economic and Non-economic Factors) के रूप मे भी किया जाता है। विभिन्न राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे भिन्न-भिन्न तत्त्व महत्वपूर्ण रहे हैं। आर्थिक विकास के मुख्य कारक या घटक निम्नलिखित है—

1 प्राकृतिक साधन (Natural Resources)
2 मानवीय साधन (Human Resources)
3. पूंजी (Capital)
4 तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge)
5 साहसी एव नव प्रवृत्तन (Entrepreneur and Innovation)
6. सगठन (Organisation)
7. राज्य की नीति (State Policy)
8. सस्थाएं (Institutions)
9 अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां (International Circumstances)

1 प्राकृतिक साधन (Natural Resources)—प्राकृतिक साधनों का आशय उन भौतिक साधनो से है जो प्रकृतिप्रदत्त हैं। एक देश मे उपलब्ध भूमि, पानी, खनिज सम्पदा, वन, वर्षा, जलवायु आदि उस देश के प्राकृतिक साधन कहलाते हैं। किसी भी

देश के आर्थिक विकास मे इन प्राकृतिक साधनों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी देश के प्राकृतिक साधन जितने अधिक होगे वहाँ उतना ही आर्थिक विकास अधिक होगा। एक अर्थव्यवस्था मे उत्पादन की मात्रा अत्यधिक सीमा तक इसकी मिट्टी और उसका स्थानीय वन सपदा--कोयला, लोहा, खनिज तेल एव अन्य कई पदार्थों पर निर्भर करता है। जैसाकि रिचार्ड टी गिल ने लिखा है, 'जनसख्या एव श्रम की पूर्ति के समान प्राकृतिक साधन भी एक देश के आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। उर्वर भूमि और जल के अभाव के कारण कृषि का विकास नही हो पाएगा। लोहा, कोयला आदि खनिज सपदा के अभाव मे औद्योगीकरण द्रुतगति नही ले पाएगा। प्रतिकूल जलवायु आदि भौगोलिक परिस्थितियो के कारण आर्थिक क्रियाओ के विस्तार मे बाधा पहुँचेगी। अत प्राकृतिक साधनो का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने मे निर्णायक महत्त्व होता है। आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँचे हुए अमेरिका, कनाडा आदि देश प्राकृतिक साधनो मे भी सम्पन्न हैं।"

आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनो की बहुलता ही पर्याप्त नही है बल्कि उनका सुविचारित उपयोग देश की आर्थिक प्रगति के लिए होना चाहिए। इन साधनो का विदोहन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे देश को अधिकतम लाभ प्राप्त हो और देश की आर्थिक स्थिरता मे सहायता मिल सके। इनका देश की आवश्यकताओ के लिए इस प्रकार योजनाबद्ध उपयोग होना चाहिए जिनसे इनका न्यूनतम अपव्यय हो और भविष्य के लिए भी अधिक समय तक उपयोग मे आते रहे। तभी दीर्घकालीन आर्थिक विकास म सहायता मिल पाएगी। यदि इनके वर्तमान को ध्यान मे रखकर ही उपयोग किया गया तो यद्यपि वर्तमान काल मे आर्थिक प्रगति कुछ अधिक सम्भव है किन्तु इनके शीघ्र समाप्त हो जाने या कम प्रभावपूर्ण रह जाने के कारण भावी आर्थिक विकास कुठित हो जाएगा। आर्थिक विकास के लिए न केवल वर्तमान साधनो अपितु सम्भावित (Potential) साधनो का भी महत्त्व है। अत नए प्राकृतिक साधनो की खोज तथा वर्तमान प्राकृतिक साधनो के नए नए उपयोग भी खोजे जाने चाहिएँ। अमेरिका, कनाडा आदि विकसित देशो मे उनका विकास प्रारम्भ होने के पूर्व भी सम्पन्न प्राकृतिक साधन थे, किन्तु उनका उचित विकास और विदोहन (Exploitation) नही किया गया था। इस प्रकार किसी देश के प्राकृतिक साधनो की अधिकता और उनका उचित उपयोग आर्थिक विकास मे बहुत सहायक होते हैं। प्राकृतिक साधनो की अपर्याप्तता मे भी अन्य तत्त्वो द्वारा द्रुत आर्थिक विकास किया जा सकता है। स्विट्जरलैण्ड और जापान प्राकृतिक साधनो मे अपेक्षाकृत कम सम्पन्न हैं, किन्तु फिर भी विकास अन्य तत्त्वो के द्वारा इन्होने अपनी अर्थव्यवस्थाओ को अत्यधिक विकसित किया है।

2. मानवीय साधन (Human Resources)—मानवीय साधन का आशय उस देश मे निवास करने वाली जनसख्या से है। यद्यपि केवल कार्यशील जनसख्या (Working Population) ही, जो कुल जनसख्या का एक भाग होती है, आर्थिक

विकास को प्रत्यक्ष रूप से अधिक प्रभावित करती है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से समस्त जनसख्या का ही आर्थिक विकास पर प्रभाव पडता है। वस्तुत देश की जनसख्या, उसका आकार (Size), कार्यक्षमता (Efficiency), सरचना (Composition), वृद्धि दर (Growth rate), विभिन्न व्यवसायो मे वर्गीकरण आदि उस देश के आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते है। आर्थिक विकास का आशय उत्पादन मे वृद्धि है और श्रम, या जनशक्ति (Man-Power) उत्पादन का एक प्रमुख, सक्रिय (Active) और अत्याज्य (Indispensable) साधन है। अत देश का आर्थिक विकास उस देश के मानवीय साधनो पर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि किसी देश मे विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप जनसख्या है, यदि उस देश के निवासी स्वस्थ, परिश्रमी, शिक्षित, कुशल, उच्च चरित्र और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण वाले है तो अन्य बातें समान होने पर उस देश का आर्थिक विकास भी अधिक होगा। जैसा कि श्री रिचार्ड टी गिल का कथन है, "आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया नही है.... अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है एव अन्य मानवीय उपक्रमो के समान इसका परिणाम अन्तिम रूप से इसको सचालित करने वाले मनुष्यो की कुशलता, गुण और प्रवृत्तियो पर निर्भर करता है।"

किन्तु जनसख्या और आर्थिक विकास का सम्बन्ध दिलचस्प और जटिल है। मनुष्य आर्थिक क्रियाओ का साधन और साध्य दोनो ही है। साथ ही जनसख्या मे वृद्धि जहाँ एक ओर उत्पादन के आधारभूत साधन श्रम की पूर्ति मे वृद्धि करके उत्पादन वृद्धि मे सहायक होती है दूसरी ओर यह उन व्यक्तियो की सख्या मे भी वृद्धि कर देती है जिनमे उत्पादन का वितरण होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास मे बाधक सिद्ध होती है। किन्तु ऐसा केवल उन अर्द्ध विकसित देशो के बारे म ही कहा जा सकता है जहाँ जनसख्या और श्रम-शक्ति का बाहुल्य है। शेष अर्द्ध-विकसित देशो मे जहाँ जनसख्या की अधिकता नही है जैसे लेटिन अमेरिकी देशो मे तथा अन्य विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि अब भी आर्थिक विकास मे सहायक है। वस्तुत इतिहास के प्राचीन काल से आधुनिक समय तक जनसख्या मे वृद्धि विश्व मे उत्पादन वृद्धि का एक बडा साधन (Major source) रहा है।

अत बढती हुई जनसख्या विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशो के विकास म सहायक होती है क्योकि इससे उत्पादन और आर्थिक क्रियाओ के विस्तार के लिए आवश्यक श्रम प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वृद्धिमान जनसख्या से वस्तुओ और सेवाओ की माँग म वृद्धि होती है बाजार का विस्तार होता है और उत्पादन मे वृद्धि होती है। किन्तु अर्द्ध विकसित देशो मे जनसख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त तेजी से बढती हुई जनसख्या के भोजन, वस्त्र, आवास एव अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु देश के बहुत से साधन प्रयुक्त हो जाते है और विकास की गति धीमी हो जाती है। इस प्रकार इन अर्द्ध-विकसित देशो मे अतिरिक्त मानव शक्ति (Surplus Man Power) विकास म बाधक बन जाती है। किन्तु कुछ लोगो के मतानुसार इन अर्द्ध-विकसित देशो म इस अप्रयुक्त,

अतिरिक्त अर्द्ध-नियोजित और अनियोजित (Un employed) मानव शक्ति मे ही पूंजी-निर्माण की सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। लार्ड कीन्स के अनुसार छिपी हुई बचत की सम्भावनाएँ (Concealed saving potential) है। प्रो ए बी माउन्टजोय के अनुसार, 'कुछ परिस्थितियो मे अनेक अर्द्ध-विकसित देशो मे पाई जाने वाली अपार श्रम-शक्ति एक महान् आर्थिक सम्पत्ति है जिसका पूरा पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। मानव शक्ति पूंजी का उपयोग करने के साथ साथ पूंजी निर्माण (कार्य द्वारा) भी करती है।" इस प्रकार विकास के प्रयत्नो मे सलग्न अर्द्ध-विकसित देशो म भी अधिक जनसख्या विकास मे सहायक बन सकती है। यदि उसका उचित नियोजन द्वारा उपयोग (Proper Planning) किया जाए। अत स्पष्ट है कि आर्थिक विकास मे विकसित मानवीय साधन एक महत्त्वपूर्ण कारक है। आर्थिक विकास के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण अनुभव, प्रेरणा, सगठन आदि द्वारा मानवीय साधनो का विकास किया जाना चाहिए। डा. वी के आर वी राव के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया म मानवीय साधन (Human Factor) की कुशलता मानव सम्बन्धी चार तत्वो (अ) शारीरिक (Physical), (ब) मानसिक (Mental), (स) मनोवैज्ञानिक (Psychological) और (द) सगठनात्मक (Organizational) पर निर्भर करती है।

3. पूंजी (Capital)—वास्तव म पूंजी आधुनिक आर्थिक विकास की कुंजी है। एक देश की पूंजी उत्पादित या मानव-कृत उत्पादन के साधनो जैसे भवन, कारखाने, मशीनें यन्त्र उपस्कर रेलें आदि होती हैं। इन पूंजीगत वस्तुओ के अभाव मे आर्थिक विकास सम्भव नही है। जिस देश क पास पूंजीगत साधनो (Capital Goods) की अपर्याप्तता होगी वह देश अपेक्षाकृत अधिक निर्धन हो पाएगा। अत आर्थिक विकास की मुख्य समस्या इन पूंजीगत वस्तुओ मे वृद्धि या पूंजी के सचय अथवा पूंजी निर्माण (Capital formation) की है। आर्थिक विकास हेतु साधनो मे वृद्धि आवश्यक है और यह वृद्धि पूंजी सचय से ही हो सकती है। पूंजी सचय (Capital accumulation) यन्त्र, औजार भवन आदि म वृद्धि करने की प्रक्रिया है। यदि पूंजीगत वस्तुओ की मात्रा वर्ष के आरम्भ की अपेक्षा अन्त म अधिक है तो देश म पूंजी-सचय हुआ है और इस अन्तर के बराबर देश म पूंजी की वृद्धि हुई है। इसे विनियोग भी कहते है। इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओ की वृद्धि का आशय है कि देश मे पहले से अधिक कारखाने बाँध नहर, रेलें सडकें यन्त्र उपस्कर, कच्चा माल ईंधन, इन्वेन्ट्रीज (Inventories) आदि है जिसका परिणाम अधिक उत्पादन और आर्थिक विकास के रूप मे प्रकट होता है। प्रो नर्क्से के शब्दो मे—'आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अर्थ भविष्य मे उपभोग की वस्तुओ का विस्तार करने के लिए वर्तमान समय मे समाज के उपलब्ध साधनो के कुछ भाग को पूंजीगत वस्तुओ के कोष मे वृद्धि के लिए लगाना है। आर्थिक विकास का आशय उत्पादन मे वृद्धि है और इसके लिए कृषि के क्षेत्र मे उवरक, यन्त्र और औषधियो की पूर्ति और सिंचाई योजनाओ का निर्माण, औद्योगिक उत्पादन म वृद्धि के लिए

विभिन्न कारखानो की स्थापना और समग्र उत्पादन मे वृद्धि के लिए विद्युत एव शक्ति तथा यातायात एव सचार साधनो का विकास करना आवश्यक है और इसके लिए पूँजी आवश्यक है। रिचार्ड टी गिल के अनुसार "पूँजी सचय वर्तमान युग मे निर्धन देशो को धनवान बनाने और औद्योगिक युग का प्रारम्भ करने वाले कारको मे से एक प्रमुख कारक है।'

अत पूँजी निर्माण के लिए वर्तमान उपभोग को कम करके बचत मे वृद्धि करना आवश्यक है। तत्पश्चात् बैक, बीमा कम्पनियो आदि वित्तीय सस्थाओ के द्वारा इस बचत को एकत्र करके विनियोग कर्त्ताओ के पास पहुँचाया जाता है। इसके बाद पूँजी-निर्माण के लिए आवश्यक है कि इस बचत को विनियोग करके नई पूँजीगत वस्तुओ का निर्माण किया जाए। अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी की अत्यन्त कमी रहती है और पूँजी का यह अभाव उसके विकास मे प्रमुख बाधक तत्त्व बन जाता है। अत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि इनमे पूँजी-निर्माण की दर बढाई जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की जाए, बढी हुई आय मे से अधिक बचत की जाए एव उसे विनियोजित किया जाए जैसा कि प्रो पाल अलबट ने लिखा है, "आर्थिक विकास की उच्चतम दरें आम तौर से उन्ही देशो मे पाई गई है जहाँ उत्पादन के विनियोग के लिए आवटित अनुपात अपेक्षाकृत ऊँचा रहा है।' किन्तु यदि घरेलू पूँजी निर्माण आवश्यकता से कम हो तो विदेशी पूँजी के द्वारा भी आर्थिक विकास मे योग लिया जा सकता है। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश अपनी बचत (Saving) और निवेश (Investment) की मात्रा बढाकर तथा निजी पूँजी (Domestic Capital) की कमी को विदेशी पूँजी (Foreign Capital) से पूरी करके आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

4 **तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge)**—विभिन्न देशो के आर्थिक विकास मे तकनीकी ज्ञान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। तकनीकी ज्ञान का अभाव एक अर्द्ध-विकसित देश के माग मे बडी बाधा उपस्थित करती है और तकनीकी ज्ञान का विस्तार और उत्पादन की नई-नई प्राविधियो की खोज उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि गुणो मे श्रेष्ठता और मूल्यो मे न्यूनता के द्वारा आर्थिक विकास मे प्रत्यक्ष सहायता करती है। डब्ल्यू ए एल्टिस के अनुसार, "तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नवीन ज्ञान के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुएँ कम लागत पर पैदा की जा सकें या नई वस्तुओ का उत्पादन हो सके।" इस प्रकार तकनीकी ज्ञान के द्वारा वस्तुओ का मूल्य कम किया जा सकता है, उनके गुणो मे विस्तार किया जा सकता है, विभिन्न प्रकार की नई वस्तुओ का उत्पादन किया जा सकता है, पदार्थों के विभिन्न उपयोग किए जा सकते हैं नवीन साधनो का पता लगाया जा सकता है। इसके कारण माँग मे वृद्धि, बाजार मे वृद्धि उत्पादन वृद्धि और अन्तत आर्थिक विकास होता है। उत्पादन की तकनीक मे सुधार करके या नवीन प्राविधियो का उपयोग करके ही अर्द्ध-विकसित देश अपने कृषि व्यवसाय का विकास कर सकते हैं। भारत मे 3/4 जनसख्या कृषि पर निर्भर होते हुए भी

खाद्यान्नो की कमी और कृषि की दशा शोचनीय है। इसका मुख्य कारण कृषि की परम्परागत विधियो का अनुसरण करना है। ऐसे देशो के आर्थिक विकास के लिए कृषि का विकास अत्यन्त आवश्यक है और वह उपलब्ध तकनीकी ज्ञान के पूर्ण उपयोग और उसमे वृद्धि करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अर्द्ध-विकसित देशो मे खनिज व्यवसाय, मत्स्य पालन, उद्योग-धन्धा आदि म भी परम्परागत तरीको का ही उपयोग किए जाने के कारण ये पिछडी हुई अवस्था मे रहते हैं। इनके विकास के लिए अध्ययन, अनुसधान द्वारा तकनीकी ज्ञान मे वृद्धि तथा उत्पादन मे उपयोग आवश्यक है।

केवल अर्द्ध-विकसित देशो के लिए ही तकनीकी ज्ञान का महत्त्व नही है, बल्कि विकसित देशो के विकास मे भी इसका उपयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन देशो ने नवीन प्राविधियो के सहारे अपने प्राकृतिक साधनो का पर्याप्त विदोहन करके तथा श्रमिको की कार्यक्षमता बढा कर द्रुत आर्थिक विकास किया है। इन विकसित देशो की भावी आर्थिक वृद्धि के लिए भी तकनीकी ज्ञान का विशेष महत्त्व है। डब्ल्यू ए एल्टिस के मतानुसार, 'इसकी (पूर्ण रोजगार वाले देश की) वृद्धि दर बुनियादी रूप से तकनीकी प्रगति और जनसख्या मे वृद्धि पर निर्भर करती है। कोई भी नीति जिससे तकनीकी प्रगति होती हैं, वृद्धि की दर को बढाती है।" इसी प्रकार रिचार्ड टी गिल का मत है—"आर्थिक विकास अपने लिए महत्त्वपूर्ण पौष्टिकता नवीन विचारो, आविष्कारो, विधियो और तकनीको के स्रोतो से प्राप्त करता है जिसके अभाव मे चाहे अन्य साधन कितने ही पक्ष मे हो, आधुनिक विकास अनिवार्य रूप से असम्भव था।"

आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे तकनीकी ज्ञान के विकास और उपभोग का जहाँ इतना अधिक महत्त्व है वहाँ दूसरी ओर ये देश इस क्षेत्र मे अत्यन्त पिछडे हुए हैं। यही नही, ये देश ज्ञान, विज्ञान और तकनीक के विकास के लिए अध्ययन, अनुसधान आदि पर अधिक धन व्यय नही कर पाते। किन्तु इनके समक्ष विकसित देशो द्वारा अपनाए गए तकनीकी ज्ञान का कोष होता है जिसे अपने देश की परिस्थितियो के अनुसार प्रयुक्त करके ये देश अपने यहाँ आर्थिक विकास कर सकते हैं। वस्तुत भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश, विकसित देशो मे अर्जित तकनीक और प्राविधियो मे अपनी परिस्थितियो के अनुसार समायोजन करके उत्पादन म वृद्धि करने मे सलग्न हैं।

डब्ल्यू ए एल्टिस के अनुसार तकनीकी ज्ञान मे वृद्धि दो प्रकार की होती है। जिस तकनीकी प्रगति का नई पूँजी के अभाव मे विदोहन नही किया जा सकता उसे 'Embodied' तकनीक प्रगति कहते है तथा दूसरी प्रकार की Disembodied' तकनीकी प्रगति कहलाती है जिसका बिना नवीन पूँजी के ही विदोहन किया जा सकता है।

अत आर्थिक विकास मे तकनीकी ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। एल्टिस के अनुसार "तकनीकी प्रगति सम्भवत आर्थिक विकास को सम्भव बनाने वाला महत्त्वपूर्ण साधन है।"

5 साहसी एवं नव-प्रवर्तन (Entrepreneur and Innovation)—नए आविष्कार और तकनीकी ज्ञान आर्थिक विकास मे, उपयोगी नही हो सकते जब तक कि इनका आर्थिक रूप से विदोहन नही किया जाए या उत्पादन मे उपयोग नही किया जाए। रिचार्ड टी गिल के अनुसार "तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टिकोण से प्रभावपूर्ण तभी होता है जबकि इसका नव-प्रवर्तन के रूप मे प्रयोग किया जाए जिसकी पहल समाज के साहसी या उद्यमकर्त्ता करते हैं।" श्री याले ब्राजन के मतानुसार, "न तो आविष्कार की योग्यता और न केवल आविष्कार ही आर्थिक विधि का उत्पादन करते हैं या उस विधि को कम मितव्ययतापूर्ण विधियो के स्थान पर प्रयुक्त करने को तैयार करते हैं।" किसी आविष्कार या उत्पादन की नवीन तकनीक की खोज के पश्चात् भी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो दूरदर्शी होता है, जिसमे आत्म-विश्वास होता है और जो इसे उत्पादन मे प्रयुक्त करता है जिससे उत्पादन मे वृद्धि या इसकी लागत मे कमी होती है। तत्पश्चात् यह तकनीकी ज्ञान या आविष्कार उपयोगी सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्ति को 'साहसी और उत्पादन मे उसके नवीन विधियो के प्रयोग को नव-प्रवर्तन' कहते हैं। शुम्पीटर के अनुसार, 'नव-प्रवर्तन का आशय किसी भी सृजनात्मक परिवतन (Creative Change) से है।" इसका सम्बन्ध आर्थिक क्रियाओ के किसी भी पहलू से हो सकता है। उत्पादन मे इसके उपयोग का परिणाम आर्थिक विकास होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास म नव प्रवर्त्तन और उद्यमी एक महत्त्वपूर्ण घटक प्रमाणित होते है। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री शुम्पीटर विश्वास था कि साधनो की वृद्धि से भी बढ कर ये ही वे घटक हैं जो आर्थिक विकास की कुञ्जी हैं क्योकि आर्थिक विकास वतमान साधनो को नवीन विधियो से प्रयुक्त करने म निहित है। प्रो याले ब्राजन के अनुसार भी "आर्थिक विकास उद्यम या साहस के साथ इस प्रकार सम्बद्ध है कि उद्यमी को उन व्यक्तियो के रूप मे परिभाषित किया गया है जो 'नवीन सयोगो' का सृजन करते है।' के ई. बोल्डिंग के अनुसार "आर्थिक प्रगति की समस्याओ मे से एक व्यक्तियो को 'नव-प्रवर्त्तक' बनने को प्रोत्साहन देने की है।'

क्लेरेन्स डानहोफ ने उद्यमियो को निम्न श्रेणियो मे विभाजित किया है—

1 नव प्रवर्त्तक उद्यमी (Innovating Entrepreneurs) जो आकर्षक सम्भावनाओ और प्रयोगो को सर्वप्रथम कार्य रूप म परिणत करते है।

2 अनुकरण करने वाले उद्यमी (Imitative Entrepreneurs) जो सफल नव-प्रवर्त्तनो को ग्रहण करने को प्रस्तुत रहते हैं।

3 'फेबियन' उद्यमी (Fabian Entrepreneurs) बडी सावधानी से उस समय ही नव प्रवर्त्तन को ग्रहण करते है जब यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा नही करने पर उन्हे हानि होगी।

4 ड्रान उद्यमी (Drone Entrepreneurs) जो अन्य समान उत्पादको की अपेक्षा अपनी आय कम होने पर भी उत्पादन मे परिवर्तन नही करते।

अत स्पष्ट है कि विभिन्न देशो के आर्थिक विकास मे उद्यमी और नव प्रवर्त्तन महत्त्वपूर्ण साधन है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो म इन उद्यमियो की कमी रहती है।

इन देशो मे विभिन्न उत्पादन क्रियाओ को अपनाए जाने के विस्तृत क्षेत्र रहते हैं जिनके विदोहन हेतु उद्यमियो की आवश्यकता होती है। स्वदेश मे योग्य साहसियो की कमी रहती है जिनकी पूर्ति विदेशो से उद्यम का आयात करके की जाती है। प्रजातान्त्रिक पद्धति वाले देशो मे अधिकांश निजी उद्यमी होते हैं जबकि समाजवादी देशो मे समस्त आर्थिक क्रियाएँ सरकार द्वारा सचालित की जाती हैं। अब स्वतन्त्र अर्थव्यवस्थाओ मे भी ये आर्थिक क्रियाएँ सरकार द्वारा सचालित की जाती है क्योंकि निजी उद्यमियो से वांछनीय आर्थिक विकास की आशा नही की जा सकती अत: सरकार आर्थिक क्रियाओ मे उद्यमी के रूप मे सम्मिलित हो रही है। भारत मे पचवर्षीय योजनाओ द्वारा देश के आर्थिक विकास मे निजी उद्यमियो के साथ-साथ सरकार ने भी कोई उद्योग व्यवसाय स्थापित किए हैं। विदेशी उपक्रमो का भी लाभ उठाया जा रहा है।

6 संगठन (Organisation)—आर्थिक विकास का एक प्रमुख तत्त्व उचित व्यवस्था या सगठन है। वांछनीय गति से आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक एव अन्य क्रियाएँ उचित ढग से सगठित की जाए। उत्पादन वृद्धि के लिए उत्पादन के साधनो मे वृद्धि आवश्यक है, किन्तु यदि समाज बिना उत्पादन की तकनीक और सगठन मे परिवर्तन किए केवल उत्पादन के साधनो मे वृद्धि करने पर ही पूर्णत निर्भर रहता तो पिछले दो सौ वर्षों मे हुए आर्थिक विकास का होना कठिन था। जिस किसी भी देश मे आर्थिक विकास हुआ है उसका यह एक प्रमुख लक्षण रहा है कि कुल उत्पादन वृद्धि उससे अधिक तीव्र गति से हुई है जो उत्पादन के साधनो मे हुई है अर्थात् इसका श्रेय उत्पादन के साधनो के उचित सगठन को है। बजर भूमि को कृषि योग्य बनाना उसमे सिंचाई की व्यवस्था करना, अच्छे खाद, बीज एव यन्त्रो का उपयोग करना, देश के खनिज, वन, जल एव शक्ति के साधनो तथा मानव शक्ति का उचित उपयोग और विकास करना, उद्योगो का उचित पैमाने तक विस्तार करना, विशिष्टीकरण आदि आर्थिक सगठन से सम्बन्धित ऐसे प्रश्न हैं जिनमे सुधार से आर्थिक विकास को गति मिलती है। प्रो पी आर पी डॉब के कथनानुसार "आर्थिक विकास की समस्या मुख्यत वित्तीय समस्या नही है बल्कि आर्थिक सगठन व व्यवस्था की समस्या है।"

इस प्रकार आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वो मे उत्पादन के साधनो के उपयोग के तरीको मे परिवर्तन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार का एक परिवर्तन या सगठन से सम्बन्धित एक तत्त्व उत्पादन के पैमाने और विशिष्टीकरण मे वृद्धि है। प्रो. रिचार्ड टी गिल न तो उत्पादन के पैमाने और विशिष्टीकरण वृद्धि को आर्थिक विकास का प्राकृतिक साधन, मानवीय साधन और पूँजी के सचय के समान एक अलग ही कारक माना है। वस्तुत: बडे पैमाने पर उत्पत्ति (Large Scale Production), श्रम विभाजन (Division of Labour) और विशिष्टीकरण (Specialization) आर्थिक विकास मे अत्यन्त सहायक है। बडे पैमाने के उत्पादन से आन्तरिक और वाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं जिसमे बडी मात्रा मे सस्ती

वस्तुओं का उत्पादन होता है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक कुछ विशाल सामग्री का निर्माण भी विस्तृत पैमाने के उत्पादन पर ही सम्भव है। श्रम-विभाजन उत्पादकता में वृद्धि करता है। अर्थ-शास्त्र के जनक स्वयं एडम स्मिथ के अनुसार, "श्रम की उत्पादक शक्तियों में सर्वाधिक सुधार श्रम-विभाजन के प्रभावों के परिणामस्वरूप हुआ प्रतीत होता है।" जैसा कि रिचार्ड टी. गिल ने बतलाया है, "अर्थव्यवस्था को व्यक्तिगत कुशलता या विशेष प्रादेशिक या भौगोलिक लाभों का उपयोग करने के योग्य बना कर, वृद्धिमान विशेषज्ञता का विकास करके, उत्पादन का अप्रमापीकरण और यन्त्रीकरण को सुविधाजनक बना कर, उद्योगों के सगठन में इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक विकास में शक्तिशाली योगदान देते हैं।"

अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए अनुकूल आर्थिक सगठन नहीं होता। उत्पादन छोटे पैमाने पर बहुधा कुटीर और लघु उद्योगों के द्वारा होता है। *श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण का अभाव होता है क्योंकि बाजारों का विस्तार* सीमित होता है और बहुधा उत्पादन जीवन-निर्वाह के लिए किया जाता है विनियम *के लिए नहीं। व्यवसायिक सगठन के विभिन्न विकसित रूपों जैसे सयुक्त पूँजी कम्पनी* सहकारिकता आदि का प्रभावपूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। अत ऐसे अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक सगठन में उचित परिवर्तन अपेक्षित है। भारत में भी इस ओर प्रयास किया जा रहा है। विस्तृत पैमाने पर उत्पादन, श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण आदि बढ रहे हैं। लघु उद्योगों का भी पुनर्गठन किया जा रहा है। सयुक्त पूँजी कम्पनियाँ, सार्वजनिक निगम (Public Corporations) और सहकारिता का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है।

7. राज्य की नीति (State Policy)—विभिन्न देशों के आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण तत्त्व उपयुक्त सरकारी नीति है। आर्थिक विकास के लिए सर्व-प्रथम आवश्यकता राजनीतिक स्थिरता, आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा तथा शान्ति है। बिना स्थिर सरकार के आर्थिक विकास असम्भव है। इसके साथ ही आर्थिक विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार आर्थिक विकास के उपयुक्त नीति अपनाए यद्यपि प्राचीन काल में राज्य का क्षेत्र सीमित था, किन्तु आधुनिक सरकारें ऐसे बहुत से आर्थिक कार्य सम्पन्न करती हैं जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास पर प्रभाव पडता है। *यदि किसी देश की सरकार ऐसी है जो आर्थिक विकास में* रुचि नहीं रखती और उसके लिए प्रयत्न नहीं करती तो उस देश के आर्थिक विकास की कोई सम्भावना नहीं है। इसके विपरीत यदि किसी देश की सरकार आर्थिक विकास के लिए रुचि रखती है और *प्रयत्न करती है तो अन्य बातें समान रहने पर* भी उस देश के आर्थिक विकास की गति अधिक होती है। प्रो. डब्ल्यू ए लेविस का कथन है कि कोई भी देश बुद्धिमान सरकार से सक्रिय प्रोत्साहन के अभाव में आर्थिक विकास नहीं कर सका है।

अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी, कुशल श्रम, तकनीकी ज्ञान का अभाव रहता है। इन देशों में विकास के लिए यातायात और सन्देशवाहन के साधन, शक्ति के साधन,

नवीन तकनीक आदि का विकास करना होता है तथा इस प्रकार की कर नीति, मूल्य नीति, मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति, विदेशी व्यापार नीति, औद्योगिक नीति, श्रम नीति अपनानी होती हैं जिससे विकास के लिए आवश्यक वित्तीय साधन उपलब्ध हो सकें, लोग पूँजी की बचत और विनियोजन को प्रोत्साहन दें, देश मे आवश्यक उद्योगो की स्थापना हो सके, विकास के लिए आवश्यक देशी और विदेशी कच्चा माल, यन्त्र उपकरण उपलब्ध हो सकें, विदेशो से आवश्यक साज-सज्जा मगाने के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सके, कुशल जनशक्ति का सृजन हो सके। यही नही अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोजन के कुछ क्षेत्र ऐसे होते है जहाँ निजी उद्यमी पूँजी विनियोजन नही करते या जो अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ऐसे क्षेत्रो मे सरकार को स्वय प्रत्यक्ष रूप से उद्यमी का कार्य करना पडता है। आर्थिक विकास का आशय देश वर्तमान और सम्भाव्य साधनो का इस प्रकार उपयोग करना है जिससे अधिकतम उत्पादन हो और अधिकतम लाभ हो। यही कारण है कि आज विश्व के समस्त अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास का कार्य सरकार द्वारा एक योजनाबद्ध तरीके से सचालित किया जाता है जिसमे सरकार का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशो मे सरकारी क्षेत्र (Public Sector) का विस्तार होता जाता है। अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे सरकारी नीति का महत्त्व भारत के उदाहरण से पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है जिसने सरकार द्वारा निर्मित पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा पर्याप्त आर्थिक विकास किया है।

8 सस्थाएँ (Institutions)—आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण भी आवश्यक है। इसके लिए न केवल आर्थिक सस्थाएँ ही अपितु राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और धार्मिक वातावरण, मान्यताएँ एव सस्थाएँ इस प्रकार की होनी चाहिए जो विकास को प्रोत्साहित करें। राष्ट्रसघ समिति रिपोर्ट के अनुसार, "उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति मे आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि मनुष्यो मे प्रगति की इच्छा हो और उनकी सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एव वैधानिक सस्थाएं इस इच्छा को क्रियान्वित करने मे सहायक हो।" प्रोफेसर पॉल अलबर्ट के मतानुसार, "किसी भी आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य शर्त इसकी सभ्यता मे लोच होने के साथ-साथ इसके समाज और अर्थव्यवस्था की सरचना परिवर्तन की सम्भावनाओ के लिए खुली हो। ..."आर्थिक विकास के लिए धनात्मक प्रेरणा एक ऐसी सभ्यता है जो अपने मूल्यो (Values) मे भौतिक समृद्धि को उच्च प्राथमिकता देती है।" इसी प्रकार के विचार हरमन फाइनर ने भी प्रकट किए है, "वर्तमान सदर्भ मे 'वातावरण' का क्या आशय हो सकता है? इसका अर्थ जीवन निर्वाह स्तर मे उच्चता की इच्छा की उपस्थिति है जो अन्य मूल्यो की अपेक्षा उच्च प्राथमिकता रखती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्थिक विकास मे जनता के जीवन स्तर को उच्च बनाने की इच्छा एक चालक शक्ति (Motive Power) है जो उस देश की सस्थाओ पर निर्भर रहती है। जहाँ भारत जैसी जमीदारी या जागीरदारी प्रथा प्रचलित होगी,

जिसके कारण कृषकों के परिश्रम द्वारा उत्पन्न कमाई का उपयोग शोषण द्वारा जमींदार और जागीरदार लोग करते हो, वहाँ कृषक की अधिक परिश्रम की प्रेरणा समाप्त होगी और कृषि का द्रुत आर्थिक विकास नहीं हो सकेगा। इसके विपरीत जहाँ लोगों को अपने प्रयत्नों का पूरा प्रतिफल मिलने की व्यवस्था होगी, वहाँ लोगों को अधिक परिश्रम की प्रेरणा मिलेगी और आर्थिक विकास होगा।

अर्द्ध-विकसित देशों में कई संस्थान ऐसे होते हैं जो आर्थिक विकास में बाधक होते हैं। भू धारण की प्रतिगामी प्रणालियाँ, संयुक्त-परिवार प्रथा, जाति-प्रथा, उत्तराधिकार के नियम, स्त्रियों की स्थिति, भूमि का मोह, संविदा (Contract) की अपेक्षा स्तर (*Status*) पर निर्भरता, अन्धविश्वास, परम्परागत रूढ़िग्रस्तता, सामाजिक अपव्यय, परिवर्तन के प्रति असहिष्णुता, आध्यात्मिक दृष्टिकोण कुछ धार्मिक भावनाएँ आदि आर्थिक विकास को हतोत्साहित करते हैं। ये संस्थाएँ आर्थिक विकास के लिए 'आवश्यक परिवर्तन को कठिन बनाकर आर्थिक विकास में बाधा उपस्थित करती है। अतः अर्द्ध-विकसित देशों में उन धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए और नवीन संस्थाओं का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे आर्थिक विकास में सहायता मिले। इन देशों की सामाजिक संस्थाओं में विकास के लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है जो वैधानिक तरीकों से या शिक्षा का प्रचार करके या उच्च जीवन की इच्छा जाग्रत करके की जानी चाहिए।

संक्षेप में किसी देश के आर्थिक विकास में उन संस्थाओं का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है जो देशवासियों में मितोपयोग की इच्छा, भौतिक समृद्धि की आकांक्षा, आर्थिक लाभ के अवसरों को प्राप्त करने की अभिलाषा जाग्रत करती हो।

9. अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ—आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ है। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय परस्पर निर्भरता के युग में दूसरे देशों के सहयोग के बिना आर्थिक विकास की तो बात ही क्या, कोई भी देश जीवित नहीं रह सकता। यदि कोई देश दीर्घकालीन युद्ध में संलग्न है तो उसका आर्थिक विकास असम्भव है। अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में तो अनुकूल बाह्य परिस्थितियों का भी महत्त्व होता है। इन देशों में पूँजी का अभाव होता है जिसे विदेशों से अनुदान, ऋण एवं प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जो निजी और सार्वजनिक दोनों प्रकार का हो सकता है। इन देशों में तकनीकी ज्ञान का भी अभाव होता है जिसे विकसित देशों में देशवासियों के प्रशिक्षण या विदेशियों की सहायता द्वारा पूरा किया जाता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि और औद्योगिक विकास आवश्यक है। कृषि के विकास के लिए उर्वरक, औषधियाँ, यन्त्रोपकरण तथा विशाल सिंचाई योजनाओं के लिए आवश्यक सामग्री विदेशों से प्राप्त करनी होती है। औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल मशीनों आदि का भारी मात्रा में आयात करना पड़ता है जिसका भुगतान निर्यातों में वृद्धि द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा के द्वारा करना होता है। यह कार्य तभी अच्छी प्रकार से सम्पन्न हो सकता है

जबकि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण सद्भावनापूर्ण हो, सम्बन्धित देश का विदेशो से अधिकाधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हो और वे उस देश के आर्थिक विकास मे पर्याप्त सहायता देते हो। यदि एक देश दीर्घकालीन युद्ध मे सलग्न हो तो उसके आर्थिक विकास की सम्भावनाएँ अत्यन्त क्षीण होगी। अत अनुकूल बाह्य परिस्थिति, आर्थिक विकास का एक प्रभावशाली तत्त्व है।

आर्थिक विकास के कारक और उनकी सापेक्षिक देन
(Relative Contribution of Growth Factors)

सब कारक परस्पर सम्बन्धित होते हैं और एक की वृद्धि से दूसरे का विकास होता है। उदाहरणार्थ, यदि प्राकृतिक साधन अधिक होगे तो उत्पादन अधिक होगा। पूँजी का निर्माण अधिक होगा जिसको विनियोजित करके आय मे वृद्धि की जा सकेगी। आय मे इस वृद्धि के कारण मानवीय साधनो का विकास होगा, अध्ययन एव अनुसधान पर अधिक धन व्यय करके तकनीकी ज्ञान का विकास किया जा सकेगा और सरकार भी आर्थिक विकास के उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार निर्वाह कर सकेगी। इसी प्रकार यदि देश मे स्थिर सरकार है जो आर्थिक विकास के अनुरूप नीतियो को अपनाती है तो देश के प्राकृतिक साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सकेगा। देश मे विकास के लिए आवश्यक सस्थाओ का सृजन किया जाएगा जिससे उत्पादन मे वृद्धि होगी और पूँजी-निर्माण की गति बढेगी। इसी प्रकार यदि देश मे विकसित जनशक्ति होगी तो अपनी योग्यता और परिश्रम से प्राकृतिक साधनो का अच्छा विदोहन कर सकेगी। यदि पूँजी की पर्याप्तता होगी तभी प्राकृतिक साधनो और नवीन तकनीकी ज्ञान का उचित उपयोग किया जा सकेगा। यदि सगठन या व्यवस्था अच्छी होगी तो उत्पादन के साधनो-श्रम, पूँजी, प्राकृतिक साधनो का उचित और लाभप्रद उपयोग किया जा सकेगा और उनकी उत्पादकता मे वृद्धि होगी। इसी प्रकार यदि देश मे स्थिर, ईमानदार और विकास-नीतियो को अपनाने वाली सरकार होगी और प्राकृतिक साधनो के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ होगी तो विदेशो से अधिकाधिक सहायता उपलब्ध हो सकेगी।

अत आर्थिक विकास के उपरोक्त समस्त कारक परस्पर सम्बन्धित हैं और समान रूप से आवश्यक हैं। एक के अभाव मे अन्य का महत्त्व कम हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि देश मे प्राकृतिक साधनो का अभाव है तो अन्य घटक कितने ही सशक्त हो आर्थिक विकास सीमित ही होगा। जापान, स्विट्जरलैंड आदि देशो के अतिरिक्त समस्त विकसित देशो मे प्राकृतिक साधनो का आर्थिक विकास मे अत्यधिक योगदान रहा है। भूतकाल मे आर्थिक विकास मे प्राकृतिक साधनो की देन कितनी महत्त्वपूर्ण रही है, इसके बारे मे प्रो. रिचार्ड टी गिल ने लिखा है, "पश्चिमी सभ्यता का अधिकांश इतिहास भूमि और साधनो के अधिग्रहण के सन्दर्भ मे लिखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विश्व के सर्वोच्च जीवन-स्तर वाले देश कनाडा और अमेरिका मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया तथा नवीन साधनों की खोज और उपयोग दोनो साथ साथ होते रहे।" इस प्रकार भूतकाल मे प्राकृतिक साधनो की

देन महत्त्वपूर्ण रही है, किन्तु इनका भविष्य मे क्या महत्त्व रहेगा, यह अनिश्चित है; क्योकि अब समस्त विश्व के दृष्टिकोण से साधनो मे धनी अछूते क्षेत्र कम ही है, यद्यपि मानव मे नवीन 'साधनो' के सृजन की क्षमता को भी नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार, आर्थिक विकास मे पूँजी की देन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पूँजी के बिना प्राकृतिक साधनो का विदोहन नही किया जा सकता, वर्तमान युगीन विशालकाय कारखानो की स्थापना नही हो सकती, श्रम की उत्पादकता नही बढाई जा सकती। सच तो यह है कि आर्थिक विकास मे पूँजी का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। प्रो डब्ल्यू ए लेविस ने पूँजी-निर्माण को आर्थिक विकास की एक केन्द्रीय समस्या बतलाते हुए लिखा है, "यह एक केन्द्रीय समस्या है क्योकि आर्थिक विकास का केन्द्रीय तथ्य (ज्ञान और कुशलता को सम्मिलित करते हुए) तीव्रता से पूँजी सचय है।" कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक विकास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व तकनीकी ज्ञान को मानते हैं। वस्तुत तकनीकी ज्ञान की इतनी अधिक प्रगति के बिना आर्थिक विकास इस सीमा तक असम्भव होता है। इसी प्रकार कुछ अर्थशास्त्री नव-प्रवर्तन (Innovation) और उद्यम (Enterprise) को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर के अनुसार उद्यमी और उनकी नव-प्रवर्तन की क्रियाओ को ही आर्थिक विकास का श्रेय है। किन्तु आर्थिक विकास मे उत्पादन के साधनो की उचित व्यवस्था अनुकूल वातावरण, विकास की इच्छा को प्रेरित करने वाली सामाजिक सस्थाओ का भी कम महत्त्व नही रहा है। इनके अभाव मे भौतिक मानवीय और वित्तीय साधनो की पर्याप्तता होने पर भी उनका सदुपयोग या दुरुपयोग नही होने पर आर्थिक विकास नही हो पाएगा। इसी प्रकार कुछ लोग राज्य की उचित नीति को आर्थिक विकास का मुख्य घटक बतलाते हैं। सोवियत रूस और अन्य समाजवादी देशो की उच्च आर्थिक प्रगति का बहुत बडा श्रेय वहाँ की विकास के लिए प्रयत्नशील सरकारो को ही है। किन्तु वस्तुतः इन सब मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक किसी देश की कुशल, विवेकपूर्ण दृष्टिकोण और दृढ सकल्प वाली जन शक्ति ही है। उत्पादन के अन्य कारको जैसे प्राकृतिक साधन, वित्तीय साधन, तकनीकी ज्ञान सगठन, वातावरण सस्थान, सरकार एव अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का निर्माण और विकास मनुष्यो के द्वारा ही किया जाता है। डॉ वी के आर वी राव ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि आर्थिक विकास सम्बन्धी अध्ययन से पता चलता है कि पूँजी सचय आर्थिक विकास की मात्रा और गति को निर्धारित करने वाले कारको मे से केवल एक है। नव-प्रवर्तन, प्राविधि और ज्ञान आदि भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने यन्त्र और औजार। किन्तु ये सब मानवीय तत्त्व से बहुत अधिक सम्बन्धित हैं और आर्थिक विकास के लिए अपना कार्य मानवीय प्रयत्नो की महत्ता और गुणो पर इनके प्रभाव द्वारा ही करते हैं।

इस प्रकार यद्यपि कई विचारको ने आर्थिक विकास के लिए भिन्न भिन्न कारकों को महत्त्व दिया है किन्तु वे सभी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं। विकसित

देशो के आर्थिक विकास का श्रेय किसी तत्व को नही दिया जा सकता यद्यपि भिन्न-भिन्न देशो मे विभिन्न कारको का कुछ अधिक महत्त्व हो सकता है। अमेरिका के आर्थिक विकास मे न केवल भौगोलिक दशाओ, किन्तु सामाजिक, राजनीतिक सभी परिस्थितियो ने योग दिया है। सोवियत रूस के आर्थिक विकास मे सरकार का योगदान सराहनीय है। डॉ नोल्स ने इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का श्रेय वहाँ के लोगो की साहस भावना को दिया है। जापान आदि म प्राकृतिक साधनो का योगदान कम रहा है। अत' आर्थिक विकास मे किस कारक का अधिक महत्त्व है यह विभिन्न देशो की परिस्थितियों, विकास की अवस्था और विकास की विचारधाराओ पर निर्भर करता है। ये सब कारक परस्पर सम्बन्धित हैं और उनके महत्त्व मे विभिन्न परिस्थितियो के सन्दर्भ मे अन्तर हो जाता है। अन्त मे हम बी. शेपर्ड से सहमत हैं जिनके अनुसार किसी एक कारक से नही अपितु विभिन्न महत्त्वपूर्ण कारको को उचित अनुपात मे मिलाने से आर्थिक विकास होता है। इस सम्बन्ध मे जोसफ एल फिशर का यह कथन उल्लेखनीय है कि "आर्थिक विकास के लिए किसी एक विशेष तत्त्व को पृथक् करना और इसे ऐसे आर्थिक विकास का प्रथम या प्राथमिक कारण बताना न तो ठीक ही है और न ही विशेष सहायक है। प्राकृतिक साधन, कुशल श्रम, मशीनें और उपकरण, वैज्ञानिक एव प्रबन्धात्मक साधन एव आर्थिक स्थानीयकरण सभी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उन्हे आर्थिक समृद्धि प्राप्त करनी है तो क्षेत्रो और राष्ट्रो को इन कारको को प्रभावपूर्ण ढग से मिलाना चाहिए।"

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Economic Growth)

विश्व के विभिन्न देशो मे आर्थिक विकास की गति और प्रक्रिया मे पर्याप्त अन्तर रहा है। अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम को विभिन्न अवस्थाओ मे विभक्त करने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध मे प्रो रोस्टो का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आर्थिक विकास की अवस्थाओ को निम्न श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(1) परम्परागत समाज की स्थिति (Stage of Traditional Society),
(2) स्वय स्फूर्त-विकास से पूर्व की स्थिति (Stage of Pre condition of take off),
(3) स्वय स्फूर्त की स्थिति (Stage of take off),
(4) परिपक्वता की स्थिति (Stage of Maturity), एव
(5) उच्च-स्तरीय उपभोग की अवस्था (Stage of Mass consumption).

1 परम्परागत समाज की स्थिति—प्रो रोस्टो के अनुसार, "परम्परागत समाज से आशय एक ऐसे समाज से है जिसका ढाँचा समिति उत्पादन कार्यो के अन्तर्गत विज्ञान, प्रविधि एव भौतिक विश्व की न्यूटन के पूर्व की स्थिति के आधार पर विकसित हुआ है।" परम्परागत समाज मे साधारणतः कृषि और उद्योगो मे परम्परागत तरीकों से कार्य किया जाता है। यन्त्रो, विशेषकर शक्ति-च...

सामान्यत उपयोग नही किया जाता। उद्योग अत्यन्त अविकसित अवस्था मे पाए जाते हैं और सीमित उत्पादन होने के कारण विनिमय व्यवस्था भी सीमित रहती है। परम्परागत समाज मे राजनीतिक सत्ता प्राय भू-स्वामियो मे हाथ मे केन्द्रित होती है। अपनी भूमि की उपज के बल पर ही यह वर्ग आर्थिक शक्ति हथिया कर समाज के अन्य वर्गों पर शासन करने लगता है। कहीं कहीं उद्योग और कृषि मे नवीन पद्धतियाँ दिखाई देनी हैं किन्तु मूलत सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था अविकसित और स्थिति पाई जाती है।

2. स्वय स्फूर्त विकास से पूर्व की स्थिति—रोस्टो ने इसे विकास की दूसरी अवस्था माना है। यह अवस्था वस्तुत स्वय स्फूर्त अवस्था (Stage of Take off) की भूमिका (Prelude) मात्र है। इससे एक ऐसे समाज का बोध होता है जिसमे परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं और समाज परम्परागत स्थिति से निकलकर द्वितीय अवस्था की ओर अग्रसर होने लगता है। समाज को इतनी सुविधाएँ मिलना शुरू हो जानी हैं कि वह आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियो को अपना सके नवीन तकनीकों का उपयोग कर सके तथा इनके आधार पर अपने विकास की गति मे तेजी ला सके। सारांश मे, जब परम्परागत समाज मे पुराने मूल्यो के स्थान पर नवीन वातावरण को प्रस्थापित करने के प्रयास होने लगते हैं तभी 'स्वय स्फूर्त विकास से पूर्व की स्थिति' उत्पन्न होती है। इस अवस्था मे बैंको बीमा कम्पनियो व्यावसायिक सस्थाओ आदि विभिन्न आर्थिक सस्थाओ का आविर्भाव होता है और सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था या इसके एक बडे भाग मे चेतना जागृत हो जाती है। परम्परागत समाज की सभी अथवा *अधिकांश परिस्थितियो मे मूलाधार परिवर्तन होने लगते हैं। उत्पादन प्रक्रिया मे वाष्प* अथवा किसी सीमा तक विद्युत् शक्ति का उपयोग होता है तथा वृहत् स्तर पर उत्पादन होने के कारण विनिमय का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। परिवहन को सुगम बनाने के लिए सामाजिक ऊपरी लागतो (Social overheads) का निर्माण होने लगता है, कृषि मे प्राविधिक क्रान्ति (Technological Revolution) आने लगती है तथा अधिक कुशल उत्पादन और प्राकृतिक साधनो के विक्रय से वित्त प्राप्त करके आयात मे वृद्धि की जान लगती है और जहाँ तक सम्भव हो पूँजी का आयात प्रोत्साहित होता है। इस अवस्था मे जो भी परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं उनमे विदेशी पूँजी और प्रविधि का योगदान मुख्य रहता है। फिर भी इस अवस्था मे आर्थिक विकास का एक समान्य क्रम नही बन पाता। इसके पश्चात् अर्थव्यवस्था स्वय स्फूर्त (Take-off) की ओर अग्रसर हो जाती है।

3 स्वय स्फूर्त अवस्था—आर्थिक विकास की तृतीय अवस्था को रोस्टो ने स्वय-स्फूर्त-अवस्था (Stage of Take-off) की सज्ञा दी है। इस अवस्था को परिभाषित करना कठिन है, रोस्टो के अनुसार स्वय-स्फूर्त एक ऐसी अवस्था जिसम विनियोग की दर बढती है और वास्तविक प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि हो जाती है तथा इस प्रारम्भिक परिवर्तन से उत्पादन-तकनीकी मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ जाते हैं और आय का प्रवाह इस तरह होने लगता है कि विनियोग द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन की प्रवृत्ति बढती रहती है।

स्वय स्फूर्त अवस्था मे आर्थिक विकास कुछ सीमित क्षेत्रो मे तीव्र गति से होने लगता है और आधुनिक औद्योगिक-तकनीकी का प्रयोग होता है। विकास सामान्य एव नियमित गति से होने लगता है तथा प्राविधि अथवा पूँजी के लिए देश पर निर्भर नही रहता। विकास मार्ग म आने वाली प्राचीन रूढियाँ एव बाधाएँ समाप्त हो जाती है तथा शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली होकर विकास मे सहयोग प्रदान करती हैं। नई प्राविधियो के माध्यम से उद्योगो और कृषि मे उत्पादन वृद्धि का क्रम स्वयमेव चलता रहता है। औद्योगिक विकास की गति कृषि की अपेक्षा सामान्यत अधिक तीव्र रहती है। देश की अर्थव्यवस्था बिना किसी बाहरी सहायता के विकास कर सकती है और उत्पादन को अधिकतम सीमा तक पहुँचाना सम्भव हो जाता है। विनियोग और बचत का राष्ट्रीय आय मे अनुपात 10 प्रतिशत या इससे अधिक रहता है। कल्याणकारी उद्योगो का तीव्र गति से विकास होना है और ऐसे सस्थागत ढाँचे का निर्माण होने लगता है जो घरेलू साधनो से विकास के लिए पूँजी एकत्रित करने की क्षमता रखता हो। रोस्टो के अनुसार विकास की इस अवस्था मे शिक्षा तथा प्राविधिक प्रशिक्षण के साथ-साथ रेलो सडको और सचार वाहन के साधनो का भी विकास हो जाता है। प्रो रोस्टो न कुछ प्रमुख देशो की स्वय स्फूर्त अवस्था की अवधियाँ भी दी हैं—

स्वय स्फूर्त अवस्था

देश	स्वय स्फूर्त अवस्था की अवधि	देश	स्वय स्फूर्त अवस्था की अवधि
ग्रेट ब्रिटेन	1783–1802	रूस	1870–1914
फ्रांस	1830–1860	कनाडा	1896–1914
बेल्जियम	1833–1860	अर्जेण्टाइना	1935
स रा. अमेरिका	1843–1860	टर्की	1937
जर्मनी	1850–1873	भारत	1952
स्वीडन	1868–1890	चीन	1952
जापान	1878–1900		

प्रो रोस्टो के अनुसार स्वय स्फूर्त अवस्था की अनेक आवश्यक शर्तों मे मुख्य ये हैं—राष्ट्रीय आय मे जनसख्या से अधिक वृद्धि निर्यात मे वृद्धि, मूल्यो मे स्थायित्व, यातायात एव शक्ति के साधनो का विस्तार, मानवीय साधनो का उपयोग, सहकारी सस्थापन पूँजीगत एव आधारभूत उद्योगो की स्थापना कृषि-क्षेत्र की उत्पादकता मे वृद्धि कुशल प्रबन्धक और साहसी वर्ग का उदय, सरकारी क्षेत्र मे व्यवसाय आदि।

4 **परिपक्वता की स्थिति**—चौथी अवस्था मे अर्थ-व्यवस्था परिपक्वता की ओर उन्मुख होती है। रोस्टो के शब्दो मे, 'आर्थिक परिपक्वता को परिभाषित करने की विविध पद्धतियाँ है, किन्तु इस उद्देश्य के लिए इसे काल के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जब समाज अपने अधिकाँश साधनो मे आधुनिक तकनीकी को प्रभावपूर्ण ढग से अपनाए हुए है।" परिपक्वता की स्थिति मे विनियोग और बचत की दर

20 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। विभिन्न नए उद्योगों की स्थापना हो जाती है और देश की अन्य देशों पर सामान्य निर्भरता समाप्त हो जाती है। आधुनिक प्राविधियों के इच्छित उपयोग द्वारा राष्ट्रीय आय की वृद्धि का क्रम जारी रहता है। जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा आय वृद्धि की दर अधिक हो जाती है। स्वयं-स्फूर्त-अवस्था के प्रमुख क्षेत्रों की सहायतार्थ नवीन क्षेत्रों को प्रोत्साहन मिलने लगता है। रोस्टो के अनुसार साधारणत स्वयं स्फूर्त अवस्था से परिपक्वता की स्थिति में पहुँचने में किसी देश को 60 वर्ष लग जाते हैं। परिपक्वता के लिए सभी राष्ट्रों में एक ही समान नियम, विशेषता और प्रकृति का होना जरूरी नहीं है। अमेरिका, ब्रिटेन, स्वीडन, जापान, रूस आदि देशों ने विभिन्न ढंगों से परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त किया है।

5 **उच्च स्तरीय उपभोग की अवस्था**—विकास की अन्तिम अवस्था उच्च स्तरीय उपभोग की अवस्था है। प्रथम तीन अवस्थाओं में जिन वस्तुओं के उपभोग को विलासिता माना जाता है, वही वस्तुएँ विकास की इस अन्तिम अवस्था में सामान्य बन जाती हैं और सर्व-साधारण जनता उनका उपयोग करने की स्थिति में आ जाती है। उच्च स्तरीय अथवा अधिक उपयोग की अवस्था (Stage of Mass Consumption) में औद्योगिक विकास अपनी चरम सीमा पर होने लगता है। अब समाज में रहने वाले पूर्ति की अपेक्षा माँग को अधिक महत्त्व देने लगते हैं। उत्पादन की समस्या से ध्यान हटा कर उपभोग की समस्या और कल्याण की ओर उन्मुख हो जाते हैं। उपभोग में वृद्धि, शक्ति-प्राप्ति के प्रयास, कल्याणकारी राष्ट्र की स्थापना के प्रयास, आदि के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र इस अवस्था में आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने में जुट जाता है। इससे पूर्व की अवस्थाओं में उत्पादन की वृद्धि को उपयोग की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता दी जाती है पर इस अवस्था में उपभोग की वस्तुओं की प्राप्ति साधारण मूल्यों पर होने लगती है। आर्थिक अवस्था के परिपक्व स्तर के बाद वास्तविक आय में सीमान्त ह्रास का उपयोगिता नियम लागू हो जाता है और अर्थव्यवस्था को इस स्थिति से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अर्थशास्त्रियों ने विकास दर का अनेक विधियों से विश्लेषण किया है। एडवर्ड डेनिसन ने जिस विधि से इटली, जर्मनी फ्रांस, डेनमार्क, नीदरलैण्ड्स नार्वे, बेल्जियम, इग्लैण्ड, संयुक्तराज्य अमेरिका आदि 9 पश्चिमी देशों की विकास दरों का विश्लेषण किया है, उसमें उत्पादन कारकों के परिवर्तनों के योगदान तथा उत्पादन में प्रति इकाई साधन के परिवर्तनों के योगदान का पृथक पृथक् विवेचन किया गया है। श्रम पूँजी, भूमि तथा इनके परिवर्तनों की माप के लिए सर्वप्रथम इन साधनों को सम्भव अनुभागों (Components) में विभक्त किया है, साधन के प्रत्येक अनुभाग की विकास दर में अंशदान की गणना की है तथा इसके पश्चात् सभी अनुभागों के अंशों के योग से प्रत्येक साधन की विकास दर पर होने वाले प्रभाव को पृथक् से ज्ञात किया गया है। अंत में प्रत्येक साधन की विकास दर को उस साधन के राष्ट्रीय आय के प्रतिफल से गुणा किया गया है। यह गुणनफल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर में उस साधन के अंश को प्रकट करता है। इस प्रकार सभी साधनों के सम्मिलित

योगदान की कुल साधनो की विकास दर(*Growth rate of total factor input*) की परिभाषा दी है।

इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम डेनिसन ने 1909 से 1957 की ग्रवधि मे ग्रमेरिका के ग्रन्तिम विकास के विश्लेषण के लिए किया। प्रस्तुत ग्रध्ययन म जिन 9 पश्चिमी देशो की ग्रार्थिक प्रगति का ग्रध्ययन किया गया है उनकी विकास दरें 1950–1962 की ग्रवधि मे निम्नाकित प्रकार से रही—

	(प्रतिशत बिन्दुग्रो मे)
पश्चिमी जर्मनी	7 3
इटली	6 0
फ्रांस	4 9
नीदरलैण्ड्स	4 7
डेनमार्क	3 5
नार्वे	3 5
सयुक्तराज्य ग्रमेरिका	*3 3*
बेल्जियम	3 2
यू के	2 3

किसी साधन का प्रति इकाई उत्पादन मे क्या योगदान रहता है, इसे देखने के लिए उत्पादन के प्रत्येक स्रोत के लिए एक भिन्न तकनीकी ग्रावश्यक समझी गई। इस सन्दर्भ मे डेनिसन ने प्रत्येक स्रोत के योगदान का निम्न तत्त्वो के ग्राधार पर विवेचन करने का प्रयास किया है—

(1) साधन ग्रावटन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन
(2) पैमाने की बचतें
(3) पूँजी की ग्रौसत जीवन ग्रवधि मे परिवर्तन
(4) पूँजी-सचय का प्रारम्भिक वर्षों मे सतुलन

इसके ग्रतिरिक्त प्रयुक्त साधनो(Employed Resources) पर माँग के दबाव का जिन ग्रवधियो मे उत्पादन पर विशेषकर कृषि उत्पादन पर प्रभाव रहा है, उन ग्रवधियो के ग्रन्तर को दृष्टि मे रखते हुए साधन का प्रति इकाई उत्पादन की विकास दर पर जो प्रभाव हुग्रा है उसको भी विवेचना करने का प्रयत्न किया गया है।

उक्त स्रोतो के ग्रतिरिक्त भी विकास दर को प्रभावित करने वाले कुछ स्रोत शेष रह जाते हैं—जैसे ज्ञान मे प्रगति (Advances in Knowledge), प्रौद्योगिक प्रगति (Technological Progress) मनुष्य किस सीमा तक कठिन परिश्रम करते हैं, विकास दर मे ग्रक्षतिपूरक क्षतियाँ (Non-compensating Errors in Growth rates) ग्रादि को डेनिसन ने ग्रवशिष्ट स्रोतो (Residuals) की सज्ञा दी है। सक्षेप मे जिन स्रोतो का पृथक् से स्पष्ट रूप से विवेचन व वर्गीकरण सभव नही हो सका उन स्रोतो को डेनिसन ने ग्रवशिष्ट स्रोतो की श्रेणी मे लिया है।

श्रम के योगदान की माप के लिए निम्नलिखित तत्त्वो का ग्रध्ययन किया है—

(1) रोजगार मे परिवर्तन

(2) रोजगार मे लगे हुए काम के वार्षिक घण्टो मे परिवर्तन
(3) आयु व लिंग के आधार पर वर्गीकृत श्रमिको मे मानव घण्टो (Man hours) का वितरण
(4) प्रत्येक श्रमिक की शिक्षा के स्तर के अनुसार प्रदत्त भारो (Weights) के आधार पर मानव घण्टो की सरचना मे परिवर्तन ।

1950–62 की अवधि मे रोजगार मे वृद्धि की दृष्टि से जर्मनी का प्रथम तथा अमेरिका का द्वितीय स्थान रहा । रोजगार की सरचना को स्थिर मानते हुए भी, रोजगार की मात्रा मे निरपेक्ष वृद्धि के परिणामस्वरूप विभिन्न देशो की विकास दर उनके सामने दिए हुए प्रतिशत बिन्दुओ से प्रभावित हुई—

जर्मनी	1 5
सयुक्तराज्य अमेरिका	9
नीदरलैण्ड, डेनमाक यू के , इटली व बेल्जियम	8 से ·4 तक
फ्रांस व नार्वे	1

पूरे समय काम करने वाले मजदूरो व वेतनभोगी गैर कृषि श्रमिको द्वारा किए गए काम के वार्षिक घण्टो मे गिरावट की प्रवृत्ति उक्त अवधि मे प्राय नगण्य रही । सयुक्तराज्य अमेरिका व फ्रांस की स्थिति मे तो इस सन्दभ मे कोई अन्तर नही आया किन्तु जमनी मे गिरावट का प्रतिशत 93 रहा । कुछ अन्य देशो मे स्थिति मध्यवर्ती रही । सयुक्त राज्य अमेरिका मे रोजगार की मात्रा मे वृद्धि का मूल कारण स्त्रियो व विद्यार्थियो द्वारा अपने अवकाश के समय कार्य करने की बढती हुई प्रवृत्ति रहा है । स्त्रियो व छात्रो द्वारा सप्ताह मे केवल कुछ घण्टो काम करने के कारण अमेरिका मे श्रमिको के घण्टो का औसत गिर गया । इटली मे इसके विपरीत रोजगार के अवसरो मे वृद्धि के कारण Involuntary Part time Employment कम हो गया । अन्यत्र आधे समय रोजगार (Part time Employment) की स्थिति मे बहुत कम परिवर्तन हुए ।

डेनिसन ने काम के पूरे घण्टो मे जिस वर्ष परिवर्तन हुए है उनके काम पर पडने वाले शुद्ध प्रभाव का अनुमान भी लगाया है । आंशिक उत्पादकता की क्षति की मान्यता लेते हुए अर्द्धकालीन रोजगार के महत्त्व मे परिवर्तनो पर भी विचार किया है । इन सबक परिणामस्वरूप अमेरिका की विकास दर मे 2 की कमी पाई और शेष 8 मे से 5 देशो मे कमी का यही स्तर रहा । जर्मनी मे सर्वाधिक कमी आई । फ्रांस मे कमी की स्थिति नगण्य रही किन्तु इटली मे यह कुछ धनात्मक रही ।

श्रम की औसत कुशलता पर आयु तथा लिंग की सरचना मे परिवर्तनो का क्या प्रभाव होता है, इसकी माप प्रति घण्टा प्राप्त आय भारों (Hourly earning rates) के आधार पर की गई । स्त्रियो के काम के घण्टो के अनुपात म अत्यधिक वृद्धि के परिणामस्वरूप सयुक्तराज्य अमेरिका मे उक्त परिवर्तन का प्रभाव सर्वाधिक प्रतिकूल रहा । इससे वहाँ की विकास दर म 1% की कमी आई, किन्तु अनेक देशो जैसे फ्रांस व इटली म लगभग 1% की वृद्धि हुई ।

शिक्षा मे विस्तार के कारण श्रमिको की कुशलता मे औसत वृद्धि के प्रतिशत विभिन्न देशो मे इस प्रकार रहे—

सयुक्तराज्य अमेरिका	·5
बेल्जियम	4
इटली	3
फ्रांस व यू के	2
नीदरलैण्ड, डेनमार्क व जर्मनी	·1

श्रम के उक्त चारो अनुभागो के सम्मिलित परिणामस्वरूप सयुक्तराज्य अमेरिका की विकास दर मे 1 1% की वृद्धि हुई। जर्मनी मे वृद्धि की मात्रा इससे भी अधिक रही।

इस अध्ययन मे पूँजी को चार वर्गों मे विभाजित किया गया है। विकास दर मे आवासीय भवनो के योगदान की माप राष्ट्रीय खातो मे आवासीय सेवाओ के शुद्ध मूल्य को देखकर प्रत्यक्ष रूप से की जा सकती है। इस मद के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका मे विकास दर की वृद्धि 25% तथा जर्मनी मे 14% रही। अन्तर्राष्ट्रीय परिसम्पत्तियो के योगदान को भी प्रत्यक्षत मापा जा सकता है। अमेरिका मे इसका योगदान ·05% तथा नीदरलैण्ड मे इससे कुछ अधिक रहा। गैर-आवासीय निर्माण इक्विपमेण्ट व वस्तु सूचियो के सग्रहो का अमेरिका मे योगदान 5% रहा और बेल्जियम को छोडकर यूरोप के अन्य देशो मे इस मद का विकास दर मे योग कम रहा, किन्तु जर्मनी मे सर्वाधिक वृद्धि इस स्रोत से 1 4% की हुई।

सभी प्रकार की पूँजी मे 1950-62 की अवधि मे विकास दर मे अमेरिका मे 8% की वृद्धि हुई तथा यूरोप के सभी देशो मे वृद्धि का यही स्तर रहा। नीदरलैण्ड व डेनमार्क मे यद्यपि अमेरिका की तुलना मे पूँजी के कारण विकास दर मे कुछ अधिक वृद्धि हुई, किन्तु बेल्जियम व यू के मे वृद्धि स्तर बहुत ही कम रहा।

उत्पादन कारको के विकास दर मे योगदान की दृष्टि से तथा यह मानते हुए कि सभी देशो मे पैमाने का स्थिर प्रतिफल नियम (Constant Returns to Scale) क्रियाशील है। 1950-62 की अवधि मे विभिन्न देशो मे विकास-दर की स्थिति निम्न प्रकार रही—

जर्मनी	2 8
डेनमार्क	1 6
सयुक्तराज्य अमेरिका	2 0
फ्रांस व बेल्जियम	1 2
नीदरलैण्ड	1·9
यू. के.	1 1
नार्वे	1 0

इस अवधि मे राष्ट्रीय आय एव उत्पादन साधनो की वृद्धि दर मे इतनी कम अनुरूपता देखी गई कि साधनो के आवटन की दृष्टि से इसके समाधान के लिए तीन पहलुओ का विश्लेषण किया गया है—(1) कृषि का सकुचन (Contraction of Agriculture),(2) गैर-कृषि निजी व्यवसाय का सकुचन (The contraction of non-farm self-employment), और (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिबन्धो की कमी (The reduction of barriers to International Trade)।

1950 मे, सभी देशो मे साधनो का एक बडा अनुपात, विशेषकर मानव-श्रम कृषि मे लगा हुआ था। 1950-62 की अवधि मे उक्त सभी 9 देशो मे कृषिगत रोजगार का प्रतिशत 30 से 47 तक कम हो गया। कृषि मे लगे हुए मानव श्रम की सभी देशो मे भारी कमी हुई, किन्तु कृषिगत रोजगार के महत्व और गैर-कृषि रोजगार पर इसके प्रभाव मे इन देशो मे भारी असमानता रही। 1950 मे यू के. मे कुल रोजगार मे कृषिगत रोजगार का प्रतिशत 5 था, बेल्जियम मे 11, अमेरिका मे 12, जर्मनी, डेनमार्क व फ्रांस मे 25 से 29 तथा इटली मे 43 /. था।

प्रति इकाई साघन (Input) से सामान्यत कृषि मे गैर-कृषि उद्योगो की तुलना मे राष्ट्रीय उत्पादन बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त एक दी हुई अवधि मे गैर-कृषि क्षेत्र की आय को साधनो की वृद्धि के अनुपात मे बढाया जा सकता है जबकि कृषि पहले से ही साधनो के भार से इतनी अधिक दबी हुई होती है कि कृषि क्षेत्र से यदि श्रम की सम्पूर्ण मात्रा को हटा भी लिया जाता है तो कृषि उत्पादन पर कोई विशेष प्रतिकूल प्रभाव नही हो सकता।

1950-62 मे कृषि-क्षेत्र से गैर-कृषि क्षेत्र के उद्योगो मे साधनो का स्थानान्तरण करने के परिणामस्वरूप विकास दर मे वृद्धि की स्थिति इस प्रकार रही—

यू. के	1 से कुछ कम
सयुक्त राज्य अमेरिका	2
बेल्जियम	7
फ्रांस	8
जर्मनी	10
इटली	10

गैर-कृषि निजी व्यवसाय (Non-farm self-employment) मे श्रम की अधिक मात्रा के लगे रहने का प्रभाव भी कृषि की भाँति श्रम की सीमान्त उत्पादकता का बहुत कम होने के रूप मे होना है। गैर-कृषि व्यवसायो पर स्वामित्व के अधिकार रखने वाले, बिना किसी पारिश्रमिक के कार्य करने वाले श्रमिक भिन्न-भिन्न देशो मे गैर-कृषि रोजगार के भिन्न-भिन्न अनुपातो को दर्शाते हैं। 9 मे से 5 देशो में यह अनुपात 1950-1962 की अवधि मे कम हुआ है। श्रमिको की एक बडी सख्या को इन क्षेत्रो से हटा कर वेतन व मजदूरी के रूप मे पारिश्रमिक देने वाले रोजगारो मे

लगाया गया। इन हटाए गए व्यक्तियो का कार्य या तो शेष श्रमिको द्वारा कर लिया गया और इस प्रकार उत्पादकता पर कोई प्रभाव नही हुआ अथवा हटाए गए श्रमिको की सख्या के अनुपात से बहुत कम अनुपात मे नए श्रमिक लगा कर उनके हिस्से के कार्य को करवा लिया गया। इस परिवर्तन के लाभों की स्थिति निम्न प्रकार रही—

अमेरिका व इगलैण्ड मे	04
इटली, फ्रांस, नार्वे व नीदरलैण्ड्स म	22 से 26 तक

अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिवन्धो को हटाने से लाभ इस प्रकार रहे—

अमेरिका	0
इगलैण्ड	2
वेल्जियम, नीदरलैण्ड्स, नार्वे और इटली	15 या 16

साधन आवंटनों के इन तीन पहलुओ के योग से 1950-1962 की अवधि मे विकास दरो पर जो सयुक्त प्रभाव हुआ, उसकी स्थिति निम्न प्रकार रही—

यू के	1
अमेरिका	3
वेल्जियम	5
नीदरलैण्ड्स	6
नार्वे	9
फ्रांस	1 0
जर्म ी	1 0
इटली	1 4

ये अन्तर सापेक्ष रूप से बहुत अधिक हैं।

1950 1962 की अवधि मे साधनो (Inputs) व साधन आवंटनो की विकास दरो मे सम्मिलित योगदान के आधार पर अध्ययनगत 9 देशो को एक श्रेणी क्रम (Ranking) दिया जाना सम्भव हो सका। किन्तु मांग के दबाव व मौसम के परिवर्तनो के कारण साधनो का प्रति इकाई उत्पादन पर जो प्रभाव हुआ, उसकी परस्पर तुलना सम्भव नही हो सकती थी। इस तथ्य का विवेचन अवशिष्ट साधनो (Residuals) के सन्दर्भ मे किया गया। अवशिष्ट साधनो के योगदान को डेनिसन ने विकास दर की कुल वृद्धि मे से स्पष्ट रूप से अनुमानित साधनो के *योगदान को घटाकर प्राप्त किया। अमेरिका मे अवशिष्टो (Residuals) का* योगदान 1950 55 व 1955-62 की अवधियो मे 76 रहा तथा कुछ मामूली समायोजनो के बाद 1920 से आगे तक की अवधि के परिणाम भी यही रहे हैं। *अवशिष्टा मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अमेरिका मे शिक्षा मे वृद्धि (Advances in Knowledge) की रही है।* 1955 1962 की अवधि मे 7 अन्य देशो मे अवशिष्ट साधनो का प्रभाव 75 से 97 के मध्य रहा। अमेरिका के अतिरिक्त ये देश बेल्जियम, डेनमार्क, नीदरलैंड्स, जमनी यू के व नार्वे थे। फ्रांस मे अवशिष्ट साधनो का योगदान 1 50 तथा इटली मे 1 30 रहा। इस प्रकार फ्रांस मे इस

स्रोत की वृद्धि अमेरिका से भी अधिक रही। फ्रांस मे इन साधनो के अन्तर्गत तकनीकी प्रगति, प्रबन्ध कुशलता मे सुधार, गैर कृषि मजदूरी व वेतन वाले रोजगार से अतिरिक्त श्रम को हटाना, साधनो के आबटन मे सुधार, प्रोत्साहन देने की कुछ श्रेष्ठ विधियाँ, अधिक कडा परिश्रम करने की प्रवृत्ति और इसी प्रकार के कुछ अन्य साधन अपनाए गए।

1950-1955 की अवधि मे जर्मनी मे अधिक तथा इटली मे कुछ कम अशो मे विकास दरो मे जो भारी वृद्धि हुई उसका मुख्य कारण युद्धकालीन विध्वसो (Distortions) की पुनर्रचना था।

सामान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि विकास दर की दृष्टि से देशो का श्रेणीकरण (1950-1962 की अवधि मे) कुल मिलाकर साधनो मे परिवर्तनो, श्रेष्ठ साधन आवटन, तकनीकी सुधार तथा युद्धकालीन विध्वसो की पुनर्रचना आदि द्वारा निर्धारित हुआ है।

विकास दर मे अन्तर मे वृद्धि का मूल कारण पैमाने की बचतें (Economics of Scale) भी रही है। कुछ सीमा तक यह इसलिए भी होता है, क्योकि पैमाने की बचत के लाभ बाजारो के आकार के विस्तार पर निर्भर करते हैं, इसलिए जहाँ एक ओर विकास दर मे अन्य कारणो से वृद्धि होती है, यह वृद्धि पैमाने की बचतो व बाजारो के विस्तार के कारण कही अधिक बढ जाती है।

यूरोपीयन कीमतो के स्थान पर यदि अमेरिकी कीमतो के भारो के आधार पर उपभोग की मदो को पुन मूल्यांकित किया जाए तो यूरोपीयन देशो की विकास दर और अधिक कम होगी। 1950 1962 मे कुल मिलाकर इस कमी की सीमा *बेल्जियम, नार्वे और यू. के मे 1, डेनमार्क व नीदरलैण्ड्स मे 2, फ्रांस मे 5, इटली* मे 6 तथा जर्मनी मे 9 रही। विकास दर मे उक्त कमी इसलिए भी होता है कि विभिन्न वस्तुओ का यूरोप मे उपभोग अमेरिका की तुलना मे कम रहता है, जबकि यूरोप की कीमते अमेरिका की कीमतो की तुलना मे अधिक ऊँची रही हैं तथा वस्तु की आय लाच भी अधिक है।

यूरोप के देशो मे प्रति इकाई उपभोग मे वृद्धि ऊँची आय लोच वाली वस्तुओ मे केन्द्रित रही है तथा जिन वस्तुओ की कीमते अमेरिका की तुलना मे अधिक थी, प्रति इकाई उपभोग मे जितनी अधिक वृद्धि हुई, विकास दरो का अन्तर उतना ही अधिक बढता गया। इन निष्कर्षों का परीक्षण उपभोग कीमतो के भारो के आधार पर किया जा सकता है। डेनिसन की यह मान्यता है कि सर्वाधिक उत्तरदायी तत्त्व पैमाने की बचतें हैं। विकसित देशो मे जैसे ही प्रति इकाई उपभोग मे वृद्धि हुई, *वृद्धि का केन्द्र वे वस्तुएँ अधिक रही, जिनका उत्पादन कम मात्रा मे हुआ और* विशेषकर वे वस्तुएँ जिनकी प्रति इकाई लागत अमेरिका की तुलना मे अधिक ऊँची रही। अमेरिका मे बडे पैमाने के उत्पादन की तकनीकी उपलब्ध थी और इसलिए जैसे ही बाजारो का विस्तार हुआ, इस तकनीकी का अपनाना सम्भव हो सका।

विकास दर के स्रोतो के अतिरिक्त डेनिसन ने रोजगार मे लगे हुए प्रति व्यक्ति के अनुसार राष्ट्रीय आय के स्तर सम्बन्धी अन्तरो के स्रोतो का भी पृथक् से

अध्ययन करने का प्रयास किया है। अमेरिका की कीमतो ने माप करने पर रोजगार मे लगे हुए प्रति व्यक्ति के अनुसार यूरोप के देशो की राष्ट्रीय आय, इटली को छोडकर 1960 मे अमेरिका की आय की लगभग 58 से 65 प्रतिशत थी। इटली मे यह 40 प्रतिशत थी।

विकास के स्रोतो व आय के अन्तरो की तुलना के आधार पर डेनिसन दो प्रकार के निष्कर्ष (Observation) प्रस्तुत करते हैं।

डेनिसन की प्रथम प्रत्यालोचना (Comment) का सम्बन्ध साधनो के आवटन से है। अमेरिका की तुलना मे फ्रांस व जर्मनी मे गैर-कृषि रोजगार की वृद्धि द्वारा तथा कृषिगत निजी स्वामित्व वाले रोजगार की कमी द्वारा राष्ट्रीय आय वृद्धि की अधिक सम्भावना (Potentiality) थी। यह तथ्य इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि साधन की प्रति इकाई से उत्पादन की मात्रा मे फ्रांस व जर्मनी मे अधिक वृद्धि क्यो हुई। फ्रांस व जर्मनी इस स्रोत का तेजी से विदोहन (Exploitation) कर रहे हैं *किन्तु राष्ट्रीय आय के अन्तर को अमेरिका की तुलना में विशेष कम नही कर पाएगा।*

साधनो का पुनर्आवटन भी इसकी बडे अशो मे पुष्टि करते हैं कि ब्रिटेन की विकास दर मे फ्रांस व जर्मनी की विकास दर अधिक क्यो रही? किन्तु प्रति श्रमिक राष्ट्रीय आय का स्तर 1960 मे इगलैण्ड मे भी उतना ही ऊँचा था जितना कि फ्रांस व जर्मनी मे। इसका कारण इगलैण्ड में साधनो के आवटन में असगतियो को कम किया जाना माना जाता है। गैर कृषि उद्योगो मे इग्लैण्ड का प्रति व्यक्ति उत्पादन इटली से भी कम था। साधनो के आवटन मे सुधार एक ओर इग्लैण्ड, फ्रांस एव जर्मनी मे आय के अन्तर का मार्ग खोल रहा है तथा दूसरी ओर यू के व इटली मे इस अन्तर को समाप्त कर रहा है।

कृषि व निजी व्यवसाय की प्रवृत्ति इटली की आय के स्तर को बहुत अधिक गिरा रही है। इटली मे यूरोप के अन्य देशो की तुलना मे आय के कम होने का यही मुख्य कारण है। शिक्षा व पूँजी की कमी के कारण भी अन्तर मे वृद्धि होती है।

डेनिसन की दूसरी प्रत्यालोचना (Comment) का सम्बन्ध अवशिष्ट साधनो की उत्पादकता (Residual Productivity) से है। डेनिसन का निष्कर्ष है कि यदि प्रति श्रमिक, मात्रा व कुशलता मे, भूमि व पूँजी के अनुपात मे, बाजारो के आकारो मे, साधनो के गलत आवटन की लागतो मे, साधनो पर माँग के दबाव आदि मे कोई अन्तर नही होते तो यूरोप के देशो मे अवशिष्ट उत्पादकता 1960 मे इटली के अतिरिक्त अमेरिका से 28 प्रतिशत कम होती। किसी भी प्रकार के सुधार किए जाएँ या अन्तर उत्पन्न किए जाएँ, यूरोप की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका के स्तर पर तब तक नही पहुँच सकती जब तक कि इस अवशिष्ट उत्पादकता के अन्तर को कम नही किया जाता। डेनिसन के अनुसार, 1962 तक फ्रांस के अतिरिक्त किसी भी देश मे यह अन्तर नही आ सका।

1925 मे इटली के अतिरिक्त अमेरिका का राष्ट्रीय आय का स्तर इतना

ऊपर पहुँच चुका था जितना कि यूरोप के देशो का 1960 मे था। 1960 मे अवशिष्ट उत्पादकता (Residual Productivity) यूरोप के देशो मे 1925 के अमेरिका से भी कम थी। अमेरिका की विकास दर मे इन 35 वर्षों में अधिक बढते रहने का कारण शिक्षा, तकनीकी व विज्ञान की प्रगति रहा है।

निष्कर्ष यह है कि महाद्वीपीय देश (Continental Countries) अमेरिका की तुलना मे विकास की अधिक दर प्राप्त करने में इसलिए असफल रहे कि उनका मुख्य लक्ष्य 1950 से 'ग्रार्थिक विकास' न होकर केवल 'ग्रार्थिक वृद्धि' रहा। *गुणात्मकता के स्थान पर परिमाणात्मकता पर उनका ध्यान केन्द्रित रहा।* अमेरिका में स्त्रियो को रोजगार में अधिक लगाया गया, श्रम शक्ति मे शिक्षण-प्रशिक्षण मे वृद्धि की गई। शक्ति, अन्वेषण व विकास कार्यक्रमो की ओर अधिक ध्यान लगाया गया। कृषि व्यवसाय को कम किया गया तथा लघु स्तरीय गैर-कृषि निजी व्यवसायो को निरुत्साहित करने की नीति अपनाई गई। पूँजी के सचय को भी सापेक्ष रूप से इतना नही बढ़ाया गया जितना कि यूरोप के अधिकांश देशो में हुआ। केवल जर्मनी ही ऐसा देश रहा जो अमेरिका की अपक्षा विकास की अधिक दर प्राप्त कर सका।[1]

---

1. 'Sources of Post war Growth n Nine Western Countries," American Economic Review, May 1967, p p 325 to 332.

5

आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारधाराएँ : लेविस, हैरड-डोमर, महालनोबिस तथा अन्य

(Approaches to the Theory of Development : Lewis, Harrod–Domar, Mahalnobis and others)

"आर्थिक विकास का सभी देशों के लिए सभी परिस्थितियों में सर्वमान्य कोई प्रामाणिक सूत्र नहीं हैं, अत आर्थिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त बताना अति कठिन हैं।" —प्रो फ्रीडमेन

आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कम आय वाली आर्थिक व्यवस्था का अधिक आय वाली व्यवस्था मे रूपान्तरण होता है। यदि आर्थिक विकास को इस रूप मे परिभाषित करें तो स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा होती है कि यह रूपान्तरण किस प्रकार और किन परिस्थितियो मे होता है। आर्थिक विकास के सिद्धान्त इस जिज्ञासा को बहुत कुछ शान्त करने मे सहायक होते हैं। उनसे पता चलता है कि अर्द्ध विकसित देश किस प्रकार दूषित चक्रो (Vicious Circles) को तोडकर सतत् विकास की शक्तियो का सृजन कर सकता है। आर्थिक विकास के सिद्धान्तो से ज्ञात होता है कि विश्व के कुछ राष्ट्र विकसित और दूसरे राष्ट्र अविकसित क्यो रह गए।

आर्थिक विकास का विचार नया नहीं है। समय-समय पर अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के कारको और सिद्धान्तो पर विचार प्रकट करते रहे हैं। कीन्स के 'सामान्य सिद्धान्त' के प्रकाशन के बाद आर्थिक विकास के आधुनिक मॉडलो (Models) का निर्माण किया जाने लगा। आर्थिक विकास से सम्बन्धित निम्नलिखित तीन विचारधाराएँ हैं—

(1) लेविस का आर्थिक विकास का सिद्धान्त,
(2) हैरड डोमर मॉडल,
(3) महालनोबिस मॉडल।

आर्थर लेविस का आर्थिक वृद्धि का सिद्धान्त
(W Arther Lewis' Theory of Economic Growth)

पृष्ठभूमि (Background)

'आर्थिक वृद्धि' के सिद्धान्त की रचना मे आर्थर लेविस ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) की परम्परा का ही अनुसरण किया है। स्मिथ से लेकर मार्क्स तक सभी अर्थशास्त्रियो ने इसी अभिमत की पुष्टि की

है कि अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे 'निर्वाह-मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध है।' इन अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक वृद्धि का कारण पूंजी सचय (Capital Accumulation) मे खोजने का प्रयत्न किया है। इसकी व्याख्या इन्होने आय-वितरण के विश्लेषण के रूप मे की है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के मॉडलो मे 'आय-वृद्धि' (Income-growth) व 'आय वितरण' (Income distribution) का विवेचन एक साथ हुआ है। लेविस भी इन अर्थशास्त्रियो की भांति आर्थिक वृद्धि के अपने मॉडल मे यही मान्यता लेकर चलते हैं कि 'अर्द्ध-विकसित देशो मे निर्वाह-मजदूरी पर असीमित मात्रा मे श्रम उपलब्ध है।' लेविस ने अपने मॉडल मे दो क्षेत्र लिए हैं—(1) पूंजीवादी क्षेत्र (Capitalist Sector) व (2) निर्वाह क्षेत्र (Subsistence Sector)।

परिकल्पना (Hypothesis)

मॉडल मे यह परिकल्पना की गई है कि आर्थिक वृद्धि पूंजी सचय का फलन है और पूंजी सचय तब होता है जब श्रम को निर्वाह क्षेत्र से स्थानान्तरित करके पूंजीवादी क्षेत्र मे प्रयुक्त किया जाता है। पूंजीवादी क्षेत्र पुन उत्पादित होने वाली पूंजी (Reproducible Capital) का प्रयोग करता है, जबकि निर्वाह क्षेत्र मे इस प्रकार की पूंजी प्रयुक्त नही होती तथा इस क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति प्रदा (Per Capita Output) पूंजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा कम होता है।

मॉडल की सैद्धान्तिक सरचना (Theoretical Frame-work of the Model)

लेविस के मॉडल का मुख्य केन्द्र-बिन्दु इस तथ्य की विवेचना करना है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मूल सैद्धान्तिक ढाचे मे रहते हुए, वितरण, सचय व विकास से सम्बन्धित समस्याओ का समाधान किस प्रकार सम्भव है। इन समस्याओ का विवेचन बन्द एव खुली दोनो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे किया गया है।

(i) बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy)—बन्द अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित मॉडल का प्रारम्भ लेविस इस मान्यता से करते हैं कि निर्वाह मजदूरी पर श्रम की पूर्ति पूर्णत लोचदार (Infinitely Elastic) होती है। वे इस कथन को विश्व के सभी भागो मे क्रियाशील मानकर नही चलते हैं। इस मान्यता की क्रियाशीलता को लेविस केवल उन देशो से ही सम्बद्ध करते हैं जो घनी आबादी वाले हैं तथा जहां पूंजी व प्राकृतिक साधनो की तुलना मे जनसख्या इतनी अधिक है कि उनकी अर्थव्यवस्थाओ मे अधिकांशत 'श्रम की सीमान्त उत्पादकता नगण्य, शून्य या ऋणात्मक पाई जाती है।' कुछ अर्थशास्त्रियो ने इस स्थिति को गुप्त बेरोजगारी (Disguised Unemployment) की सज्ञा दी है तथा मूलत कृषि-क्षेत्र को गुप्त बेरोजगारी के प्रति उत्तरदायी पाया है।

(ii) श्रम की सीमान्त-उत्पादकता शून्य है या नगण्य—लेविस अपने मॉडल मे इसे विशेष महत्वपूर्ण न मानते हुए, इस तथ्य पर अधिक बल देते हैं कि अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे श्रम का प्रति इकाई मूल्य निर्वाह-मजदूरी के स्तर पर

होता है। अतः जब तक इस मूल्य पर श्रम-पूर्ति माँग से अधिक बनी रहती है, तब तक श्रम-पूर्ति को असीमित कहा जाता है। श्रम-पूर्ति की इस स्थिति में मजदूरी के वर्तमान स्तर पर निर्वाह क्षेत्र से श्रम को पूँजीवादी क्षेत्र में स्थानान्तरित करते हुए एक बड़ी सीमा तक नए उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं तथा पुराने उद्योगों का विस्तार किया जा सकता है। श्रम की न्यूनता रोजगार के नए स्रोतों के निर्माण में किसी अवरोध (Constraint) का कार्य नहीं करती। कृषि, आकस्मिक श्रम, छोटे-मोटे व्यापारी, घरेलू सेवक, गृह-सेविकाएँ, जनसंख्या-वृद्धि आदि वे स्रोत हैं जिनसे निर्वाह मजदूरी पर श्रम, पूँजीवादी क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जा सकता है। किन्तु यह स्थिति अकुशल श्रम के लिए ही लागू होती है। जहाँ तक कुशल श्रम का प्रश्न है, समय विशेष पर किसी विशेष प्रकार के कुशल श्रम की पूँजीवादी क्षेत्र में कमी सम्भव है। कुशल श्रम के अन्तर्गत वस्तुकार, विद्युत कार्यकर्त्ता (Electricians), वैल्डर्स (Welders), जीव-विशेषज्ञ (Biologists), प्रशासक (Administrators) आदि आते हैं। लेविस के मतानुसार, कुशल श्रम का अभाव केवल आंशिक बाधा (Quasi-bottleneck) है। प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करके अकुशल श्रम की इस बाधा को दूर किया जा सकता है। विकास या विस्तार के मार्ग में वास्तविक बाधाएँ (Real bottlenecks) पूँजी और प्राकृतिक साधनों का अभाव हैं। अत लेविस के अनुसार जब तक पूँजी व प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं, आवश्यक कुशलताएँ (Necessary Skills) कुछ समयान्तर (Time lag) से प्राप्त की जा सकती हैं।

(iii) यदि श्रम असीमित पूर्ति मे उपलब्ध है और पूँजी दुर्लभ है तो पूँजी का श्रम के साथ उस बिन्दु तक प्रयोग किया जाना चाहिए जहाँ श्रम की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी के वर्तमान स्तर के समान रहती है। इसे चित्र 1 मे दर्शाया गया है[1]—

चित्र-1

1 *Agrawal & Singh (Eds)* Economics of Under-development, p 406
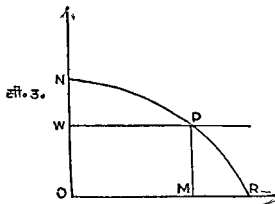
उक्त चित्र मे क्षितिजीय अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा लम्बवत् अक्ष पर सीमान्त उत्पादकता की माप की गई है । पूँजी की मात्रा स्थिर (Fixed) है । OW= वर्तमान मजदूरी, OM=पूँजीवादी क्षेत्र मे प्रयुक्त श्रम, MR=निर्वाह क्षेत्र मे प्रयुक्त श्रम, OR=कुल श्रम, $OWPM$=पूँजीवादी क्षेत्रो के श्रमिको की मजदूरी, WNP=पूँजीवादियो का अतिरेक (Capitalists Surplus) प्रकट करते हैं। यदि पूँजीवादी क्षेत्र से बाहर श्रम की सीमान्त उपयोगिता शून्य हो तो श्रम की OR मात्रा को रोजगार मे रखा जाना चाहिए था, किन्तु पूँजीवादी क्षेत्र मे श्रम की OM मात्रा को रोजगार देने पर ही लाभ कमाया जा सकता है। श्रम की इस मात्रा से पूँजीपति $OWPM$ के बराबर मजदूरी देकर $ONPM$ के बराबर आय अर्जित करते है, अतः दोनो का अन्तर ($ONPM$ $OWPM$) $=WNP$ पूँजीपतियो का अतिरेक दर्शाता है। M से आगे की श्रम-मात्रा निर्वाह-मजदूरी प्राप्त करती है।

(iv) पिछडी हुई अर्थव्यवस्थाओ मे पूँजीपतियो को कुछ विशेष प्रकार के विनियोगो का अधिक अनुभव होता है–विशेषकर व्यापार व कृषि सम्बन्धी विनियोगो का तथा निर्माण-उद्योगो का अनुभव कम अथवा नगण्य होता है। परिणामत ये अर्थव्यवस्थाएँ इस अर्थ में असन्तुलित (Lopsided) रहती हैं कि कुछ क्षेत्रो मे अनुकूलतम से अधिक (More than optimum) तथा कुछ अन्य क्षेत्रो मे अनुकूलतम से बहुत कम (Much less than optimum) विनियोग किया जाता है। कुछ कार्यों के लिए वित्तीय सस्थाएँ (Financial Institutions) अत्यधिक विकसित होती है, जबकि दूसरी ओर कुछ ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बच रहते हैं जिनको वित्तीय संस्थाओ का सहयोग नही मिल पाता है। व्यापार हेतु पूँजी सस्ती मिल सकती है, किन्तु गृह-निर्माण अथवा कृषि के लिए नहीं।

(v) लेविस के अनुसार निर्वाह-मजदूरी की तुलना मे पूँजीवादी-मजदूरी 30 प्रतिशत या अधिक होती है। इस अन्तर के प्रभाव को चित्र-2 मे प्रदर्शित किया गया है[1]—

चित्र-2

1. Ibid, p 411.
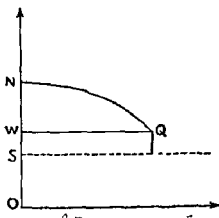
OS=निर्वाह क्षेत्र की प्रति इकाई आय

OW=पूँजीवादी क्षेत्र की प्रति इकाई आय (वास्तविक)

"समुद्र से उपमा लेते हुए यह कहा जा सकता है कि पूँजीपति-श्रम व निर्वाह-श्रम के मध्य प्रतिस्पर्धा की सीमान्त रेखा अब किनारे के रूप में नहीं, अपितु एक शिखर के रूप में प्रतीत होती है।"[1] (To borrow an analogy from the sea, the frontier of competition between capitalist and subsistence labour now appears not as a beach but as a cliff)

उपरोक्त अन्तर पर पूँजी-निर्माण निर्भर करता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्त्व इस तत्त्व का है कि पूँजीवादी अतिरेक का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। यदि इसका उपयोग नई पूँजी की उत्पत्ति के लिए होता है तो इसका परिणाम पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार होता है। निर्वाह क्षेत्र से हट कर अधिक संख्या में श्रमिक पूँजीवादी क्षेत्र की ओर आकर्षित होते हैं। इससे पूँजीवादी अतिरेक में और वृद्धि होती है तथा अतिरेक की अधिकता पूँजी-निर्माण की मात्रा को अधिक से अधिकतर करती जाती है। जब तक अतिरिक्त श्रम पूँजीवादी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक यह क्रम क्रियाशील रहता है। इस स्थिति को चित्र-3 में दर्शाया गया है[1]—

चित्र-3

श्रम की मात्रा
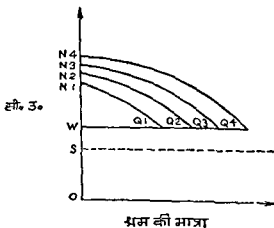
चित्र-2 के समान OS=निर्वाह-मजदूरी और OW=पूँजीवादी-मजदूरी। WN_1Q_1=प्रारम्भिक अतिरेक (Initial Surplus)। चूँकि इसका कुछ भाग पुन विनियोजित कर दिया जाता है, जिससे स्थायी पूँजी की मात्रा में वृद्धि होती है और इसलिए उसकी सीमान्त उत्पादकता N_2Q_2 स्तर तक बढ जाती है। इस दूसरी स्थिति में अतिरेक व पूँजीवादी रोजगार दोनों अधिक हो जाते हैं। यह क्रम N_2Q_2 से

1. Ibid, p 412.

N_3Q_3 तक तथा N_3Q_3 से N_4Q_4 तक और इसी प्रकार उस समय तक चलता रहता है, जब तक कि अतिरिक्त श्रम की स्थिति रहती है। तकनीकी

(vi) लेविस के मॉडल मे पूंजी, प्राद्योगिक प्रगति तथा उत्पादकता के सम्बन्धो की विवेचना की गई है। पूंजीवादी क्षेत्र के बाहर तकनीकी ज्ञान की प्रगति से मजदूरी का स्तर बढता है, परिणामस्वरूप पूंजीवादी अतिरेक की मात्रा घटती है। किन्तु लेविस की यह मान्यता है कि पूंजीवादी क्षेत्र मे ज्ञान-वृद्धि व पूंजी एक ही दिशा मे इस प्रकार कार्य करते हैं कि मजदूरी मे कोई वृद्धि नही होती है, बल्कि राष्ट्रीय आय मे लाभो का अनुपात अधिक हो जाता है। नए तकनीकी ज्ञान के व्यावहारिक उपयोग के लिए नया विनियोग आवश्यक है। नया तकनीकी ज्ञान चाहे पूंजी को बचाने वाला हो, चाहे श्रम को, इसस उपरोक्त चित्र मे प्रदर्शित स्थिति मे कोई अन्तर नही आता है। लेविस के मॉडल मे 'तकनीकी ज्ञान की वृद्धि और उत्पादक-पूंजी मे वृद्धि' एक ही तत्त्व के रूप मे मान गए हैं।

पूंजी-निर्माण (Capital Formation)

लेविस ने पूंजी-निर्माण के दो स्रोतो का विवेचन किया है—

(1) लाभो द्वारा पूंजी-निर्माण, और

(2) मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि द्वारा पूंजी-निर्माण।

बचत की बडी राशि लाभो से प्राप्त होती है। यदि किसी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय मे बचत का अनुपात बढ रहा है तो हम उस अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि वहाँ राष्ट्रीय आय मे लाभो का अश वृद्धि पर है। समान आय वाले दो देशो मे से जिस देश मे लगानो की तुलना मे लाभो का राष्ट्रीय आय मे अश अधिक होता है, वहाँ अपेक्षाकृत वितरण की विषमताएँ कम पाई जाएँगी तथा बचत की मात्रा अधिक होगी। आय की असमानता यदि लगान की तुलना मे लाभो का अश अधिक होने के कारण होती है तो यह स्थिति पूंजी-निर्माण के अधिक अनुकूल मानी जाती है।

नव प्रतिष्ठापित मॉडल (Neo-classical Model) मे पूंजी-निर्माण केवल उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन क्षेत्र से साधनो के स्थानान्तरण द्वारा ही सम्भव है किन्तु लेविस के मॉडल मे भूमि व पूंजी को वैकल्पिक उपभोगो मे से हटाए बिना ही श्रम द्वारा पूंजी-निर्माण सम्भव है तथा उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा को बिना कम किए ही पूंजी-निर्माण किया जा सकता है।

यदि किसी अर्थव्यवस्था मे पूंजी का अभाव है, किन्तु कुछ साधन अप्रयुक्त अवस्था मे हैं, जिनके प्रयोग से पूंजी-निर्माण किया जा सकता है तो यह अत्यन्त वाँछनीय है कि उनके प्रयोग के लिए अतिरिक्त मुद्रा का निर्माण भी आवश्यक हो तो किया जाना चाहिए। अतिरिक्त मुद्रा से किसी प्रकार की अन्य दूसरी वस्तुओ के उत्पादन मे कोई कमी नही आती है। जिस प्रकार लाभो द्वारा पूंजी-निर्माण से उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होती है, उसी प्रकार साख द्वारा वित्तीयकरण मे भी

रोजगार व उत्पादन के स्तर बढते हैं। लाभो द्वारा निर्मित पूँजी व साख द्वारा निर्मित पूँजी का अन्तर उत्पादन पर प्रभाव के रूप मे परिलक्षित नही होता किन्तु कीमतो व आय-वितरण पर इस अन्तर का तत्काल प्रभाव होता है।

लेविस के मॉडल मे, अतिरिक्त श्रम से पूँजी-निर्माण की स्थिति मे, विशेषकर जब श्रम का भुगतान अतिरिक्त मुद्रा से किया जाता है, मूल्य बढ जाते है, किन्तु उपभोग वस्तुओ का उत्पादन स्थिर रहता है। रोजगार मे कार्यरत एव श्रमिको के बीच उपभोग वस्तुओ का पुन वितरण (Redistribution) अवश्य होता है किन्तु इस प्रक्रिया का अर्थ 'बलपूर्वक बचत' (Forced Saving) के रूप मे नही लगाया जाना चाहिए। लेविस के मॉडल मे नव-प्रतिष्ठापित मॉडल की भाँति 'बलपूर्वक बचत' की स्थिति न होकर बलपूर्वक उपभोग वस्तुओ के पुन वितरण की स्थिति अवश्य विद्यमान है (There is a forced redistribution of consumption, but not forced saving)। जैसे ही विनियोग वस्तुओ के कारण उत्पादन बढने लगता है, उपभोग स्तर भी ऊँचा होने लगता है। लेविस के अनुसार मूल्यो मे प्रसार की स्थिति केवल अल्पावधि के लिए रहती है जब तक कि प्रारम्भिक अवस्था मे आय तो बढती है किन्तु उपभोग वस्तुओ का उत्पादन नही बढता, किन्तु थोडे समय बाद ज्यो ही पूँजीगत वस्तुएँ उपभोग वस्तुओ का उत्पादन प्रारम्भ कर देती हैं मूल्य गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं। लेविस का तो मत इस सम्बन्ध मे यह कि "पूँजी निर्माण के लिए मुद्रा प्रसार स्वय विनाशक होता है और इससे यह भी आशा की जा सकती है कि मूल्य चढकर उस स्तर से भी नीचे गिर सकते हैं जहाँ से उन्होने गिरना शुरू किया था।" इस प्रकार ज्यो ज्यो पूँजी-निर्माण होता है, उत्पादन और रोजगार मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है। परिणामस्वरूप लाभ बढते हैं, जिन्हें विनियोजित करके पुन पूँजी निर्माण को बढाया जा सकता है और आर्थिक विकास का यह क्रम जारी रहता है। किन्तु विकास की यह प्रक्रिया बन्द अर्थव्यवस्था मे अनिश्चित काल तक नही चल सकती। निम्नलिखित परिस्थितियो मे यह प्रक्रिया रुक जाती है—

(i) जब पूँजी निर्माण क परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम शेष नही रहता।

(ii) पूँजीवादी विस्तार की तीव्र गति के कारण निर्वाह क्षेत्र की जनसख्या इतनी कम हो जाती है कि पूँजीवादी व निर्वाह दोनो क्षेत्रो मे श्रम की सीमान्त उत्पादकता बढकर मजदूरी का स्तर ऊँचा कर देती है।

(iii) निर्वाह क्षेत्र की अपेक्षा पूँजीवादी क्षेत्र का तीव्र विस्तार, कृषिगत पदार्थों के मूल्यो मे इतनी अधिक वृद्धि कर देता है कि व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) पूँजीवादी क्षेत्र के प्रतिकूल हो जाती हैं, परिणामस्वरूप, श्रमिको को अधिक मजदूरी देनी पडती है।

(iv) निर्वाह क्षेत्र मे उत्पादन की नई तकनीकी के अपनाए जाने से पूँजीवादी क्षेत्र मे भी वास्तविक मजदूरी बढ जाती है।

(v) पूँजीवादी क्षेत्र मे यदि श्रम आन्दोलन ऊँची मजदूरी प्राप्त करने मे सफल हो जाता है।

उपरोक्त परिस्थितियो मे पूँजीवादी अतिरेक पर विपरीत प्रभाव होता है। यदि अन्य देशो मे अतिरिक्त श्रम की स्थिति विद्यमान हो तो पूँजीवादी अपने अतिरेक को विपरीत प्रभाव से निम्नलिखित किसी एक विधि से बचा सकते हैं—

जब देश मे श्रम की असीमित पूर्ति की स्थिति समाप्त हो जाती है तो पूँजीवादी असीमित श्रम वाले अन्य देशो से सम्बन्ध बनाते है। वे श्रमिको का बडे पैमाने पर आवास करते हैं या पूँजी का निर्यात करने लगते हैं—

(i) श्रमिको का बड़े पैमाने पर आवास (Mass Immigration)— सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सम्भव है कि कुशल श्रमिको का आवास (Immigration) देश के अकुशल श्रमिको की माँग को घटा सकता है, किन्तु व्यवहार मे अत्यन्त कठिन है। अधिक सम्भावना इस बात की है कि इस प्रकार के आवास से नए विनियोगो और नए उद्योगो की सम्भावनाएँ बढकर पूर्ति की तुलना मे सभी प्रकार के श्रम की माँग मे वृद्धि कर सकती है।

(ii) पूंजी का निर्यात करना (Exporting Capital)—दूसरा उपाय ऐसे देशो को पूँजी का निर्यात करना है जहाँ जीवन निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा मे श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूँजी निर्यातक देश मे श्रम की माँग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है यद्यपि इसके परिणामस्वरूप मजदूरी का जीवन स्तर और इस प्रकार वास्तविक मजदूरी बढ भी सकती है।

आलोचनात्मक समीक्षा—प्रो लेविस की उपरोक्त विचारधारा की निम्न आधारो पर आलोचना की जा सकती है—

(i) प्रो. लेविस के सिद्धान्त का आधार अर्द्ध-विकसित देशो मे असीमित मात्रा मे श्रम की पूर्ति पर आधारित है किन्तु दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशो मे ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित नही हैं। अत इस सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित है।

(ii) लेविस के सिद्धान्त का आधार अर्द्ध-विकसित देशो मे उपलब्ध पर्याप्त अकुशल श्रम शक्ति है। उनके विचार से कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थाई अवरोध उपस्थित करता है जिसे श्रमिको के प्रशिक्षण आदि के द्वारा दूर किया जा सकता है। किन्तु वस्तुतः पर्याप्त मात्रा मे श्रम शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि मे काफी समय लगता है और इस प्रकार कुशल श्रम शक्ति की कमी एक बडी कठिनाई उपस्थित करती है।

(iii) लेविस का उपरोक्त सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि इन अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजीपति वर्ग और उपक्रम (Enterprise) पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है किन्तु अधिकांश अर्द्ध विकसित देशो मे इसकी कमी होती है।

(iv) इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजीपति वर्ग द्वारा लाभो को विनियोजित करते रहने से पूँजी संचय होता है। इसका आशय है कि यहाँ 'विनियोग गुणक' (Investment Multiplier) क्रियाशील रहता है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो के बारे मे ऐसा नही कहा जा सकता।

(४) लेविस के विकास के इस द्वैध अर्थव्यवस्था वाले प्रारूप (Dual Economy Model) मे कुल मांग(Aggregate Demand) की समस्या पर ध्यान नही दिया गया है। इस सिद्धान्त मे यह माना गया है कि पूँजीवादी क्षेत्र मे जो कुछ उत्पादन किया जाता है उसका या तो इसी क्षेत्र मे उपभोग कर लिया जाता है या निर्यात कर दिया जाता है। किन्तु इससे निर्वाह क्षेत्र को बेचे जाने की सम्भावना है और यदि ऐसा होता है तो विकास की प्रक्रिया पहले ही रुक सकती है।

उपरोक्त दोषो के बावजूद भी लेविस के इस विकास-प्रारूप की यह विशेषता है कि इसमे विकास प्रक्रिया को स्पष्ट रूप मे समझाया गया है। इसमे स्पष्ट किया गया है कि पूँजी की कमी और श्रमिको की बहुलता वाले अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी-सचय किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के सदर्भ मे दिए गए 'साख प्रसार' (Credit Inflation) जनसख्या वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय तथा तकनीकी प्रगति सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन भी वास्तविकता लिए हुए है।

हैरड-डोमर मॉडल
(The Harrod-Domar Model)

हैरड और डोमर ने पूँजी-सचय (Capital Accumulation) को आर्थिक वृद्धि के अपने माडलो म निर्णायक चल (Crucial Variable) के रूप म लिया है। पूँजी सचय को वे विनियोग का फलन मानते हैं तथा विनियोग की दो भूमिकाओ की विवेचना करते हैं—(1) विनियोग आय का निमाण करता है, और (2) यह उत्पादन क्षमता (Productive Capacity) मे वृद्धि करता है। इन मॉडलो मे प्रमुख परिकल्पना यह है कि प्रारम्भ मे आय का सतुलित स्तर यदि पूर्ण रोजगार के बिन्दु पर है तो प्रति वर्ष सतुलन के इस स्थायित्व को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि विनियोग द्वारा उत्पन्न अतिरिक्त क्रय शक्ति की मात्रा इतनी होनी चाहिए जो विनियोग द्वारा बढाए गए उत्पादन को खपाने (Absorb) के लिए पर्याप्त हो। यदि वास्तविक आय बढती नही है, बल्कि स्थिर रहती है तो इस स्थिति के निम्नलिखित प्रभाव होगे—

(1) नई पूँजी अप्रयुक्त रहेगी।
(2) नई पूँजी का उपयोग पूर्व उत्पादित पूँजी की लागत पर होगा।
(3) नई पूँजी का श्रम के लिए प्रतिस्थापन किया जाएगा।

इस प्रकार यदि पूँजी सचय के साथ आय मे वृद्धि नही होती है तो इसका परिणाम यह होगा कि श्रम और पूँजी दोनो ही अप्रयुक्त (Unemployed) रहेगे। अत विनियोग वस्तुओ की अधिकता व बेरोजगार श्रम की स्थिति से अर्थव्यवस्था को मुक्त रखने के लिए आय मे स्थायी व निरन्तर वृद्धि आवश्यक है। दूसरे शब्दो मे जिस समस्या का इन मॉडलो मे अध्ययन किया गया है, वह यह है कि क्या कोई ऐसी स्थाई निरन्तर विकास-दर सम्भव है जो दोहरा पूर्ण रोजगार मापदण्ड(The double full employment criterion) की पूर्ति करती है अर्थात् जिसके कारण पूँजी व श्रम के लिए पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम रहती है। हैरड व डोमर के मॉडल

समान निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, अत इनका मॉडल सयुक्त रूप मे आधारभूत हैरड डोमर माडल (Basic Harrod Domar Model) के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल का सामान्य लक्ष्य, पूर्ण क्षमता सम्बन्धी स्टॉक की शर्तं (Full Capacity Stock Condition) तथा बचत/विनियोग सम्बन्धी बहाव की शर्तें (Flow Condition of Saving/Investment) के साथ वस्तु-बाजार (Product Market) मे सतुलन रखना तथा इसके साथ श्रम बाजार के सन्तुलन को सम्बद्ध करना है।

मान्यताएँ (Assumptions)

हैरड डोमर मॉडल की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं—

1. केवल एक प्रकार की वस्तु का उत्पादन होता है अर्थात् कुल आय अथवा उत्पादन एक समरूप प्रकृति अथवा आकृति का होता है (Total income is a homogeneous magnitude)।

2 पूँजी के स्टाक तथा आय मे एक निश्चित तकनीकी सम्बन्ध (a fixed technological relationship) होता है।

3 आय मे बचत का अनुपात स्थिर रहता है अर्थात् बचत की औसत प्रवृत्ति व सीमान्त प्रवृत्ति परस्पर समान होती है अर्थात् APS=MPS पूँजी गुणांक (Capital Coefficient) स्थिर रहता है।

4 विनियोग तथा उत्पादन क्षमता की उत्पत्ति के मध्य कोई विशेष समयान्तर (Significant time-lag) नही होता है।

5. राष्ट्रीय उत्पादन के केवल दो ही उपयोग होते हैं—
   (i) उपभोग (Consumption)
   (ii) विनियाग (Investment)

6 केवल एक ही उत्पादन-कारक पर विचार होता है अर्थात् केवल पूँजी का ही विवेचन किया जाता है।

7 पूँजी का ह्रास नही होता है अर्थात् पूँजी के स्टॉक की जीवनावधि अनन्त होती है।

8 श्रम शक्ति मे एक स्थिर दर (Constant rate) से वृद्धि होती है तथा इस बढी हुई श्रम शक्ति के लिए वस्तु बाजार मे पूर्ण माँग रहती है।

9 पूँजी व श्रम दोनो मे पूर्ण रोजगार की स्थिति रहती है।

10 विदेशी व्यापार नहीं होता है और न ही किसी प्रकार का राजकीय हस्तक्षेप होता है।

11 हैरड मॉडल मे बचत व विनियोग वास्तविक अथवा 'एक्सपोस्ट' (Expost) के अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं।

हैरड डोमर मॉडल को पूर्णत समझने के लिए हैरड व डोमर के मॉडलो का पृथक्-पृथक् विवेचन आवश्यक है।

हैरड-मॉडल (The Harrod Model)

हैरड मॉडल प्रतिष्ठापित सत्य $S=I$ (बचत=विनियोग) के साथ प्रारम्भ होता है। इसे हैरड निम्नलिखित समीकरण द्वारा व्यक्त करते हैं—

$$GC=S$$

उपरोक्त समीकरण इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि "विकास दर स्वरक और बचत की सीमान्त प्रवृत्ति का अनुपात होती है, अथवा वास्तविक बचत विनियोगो के बराबर होगी।" अत

एक्सपोस्ट (Expost) अर्थ मे वास्तविक विनियोग आवश्यक रूप से प्राप्त बचत (Realized Savings) के बराबर होता है : इस प्रकार

$$SY_t=C(Y_t-Y_{t-1}) \qquad (1)$$

प्राप्त विकास दर (Realized rate of growth) को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$G=Y_t-Y_{t-1} \qquad (2)$$

समीकरण (1) के दोनों पक्षों को CY_t से विभाजित करते हुए—

$$\frac{S}{C}=\frac{Y_t-Y_{t-1}}{Y_t}$$

और इससे हम निम्न Identity प्राप्त कर लेते हैं—

$$G=\frac{S}{C} \qquad \text{or} \qquad GC=S$$

हैरड की यह मान्यता है कि एक्सपोस्ट बचतें (Expost Saving) सदैव एक्सएन्टे पूर्ण रोजगार के स्तर (Exante full employment level) के बराबर होगी। किन्तु विनियोजित की जाने वाली राशि स्वय मे इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि प्राप्त विकास-दर के कारण न तो पूँजी का अवांछित सचय (Unintended accumulation) ही हो और न ही पूँजी के वर्तमान स्टॉक मे ही किसी प्रकार की कमी आए। यदि अवांछित सचय होता है तो वास्तविक आय अपेक्षाकृत कम होगी और बचत वांछित स्तर से नीचे गिर जाएँगी, क्योकि उत्पादन मे वृद्धि द्वारा समस्त वर्तमान विनियोग राशि का उपयोग नही हो सकेगा। पूँजी के अवांछित ह्रास की स्थिति मे, बचत वांछित स्तर से अधिक होगी और उत्पादक यह अनुभव करने लगेंगे कि उत्पादन मे वृद्धि के अनुपात मे, उन्होंने पर्याप्त विनियोजन नही किया है। किन्तु यदि हम यह मानते हैं कि $S_t=S_t^1$ तो उत्पादको द्वारा किया जाने वाला विनियोजन उत्पादन मे वृद्धि की दृष्टि से उचित प्रमाणित होगा। इस औचित्य के कारण वे स्वरक C_r के अनुरूप विनियोजन करना चाहेंगे, जो विनियोग की गत समानुपाती दर C (Past Proportional rate C) के बराबर होगा, क्योकि वे वास्तव मे प्राप्त विकास दर के बराबर भावी विकास दर को जारी रखना चाहते हैं। इसलिए भावी वास्तविक विकास दर आवश्यक विकास दर के रूप मे जारी रहेगी। इस प्रकार, जब तक $Cr=C$, तब तक प्राप्त विकास दर (G) वांछित विकास दर (G_w or Warranted Growth Rate) के बराबर होगी। इस सम्पूर्ण व्यवस्था

को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है, $C_r = C$, तब $G = G\omega$ तथा सभी अपेक्षाएँ इसमे पूरी होती हैं। अब

$$G = \frac{S}{C} = \frac{\gamma_t + \gamma_{t-1}}{\gamma_t} \text{ और } G\omega = \frac{S}{C_r} = \frac{\gamma_{t+1} - \gamma_t}{\gamma_{t+1}}$$

जब $G = G\omega$, तब $G_{t+1} = G_t$

$G = G\omega$ होने पर, व्यवस्था इस प्रकार के विकास पथ से बध जाती है जिससे उत्पादन मे परिवर्तन की वास्तविक दर के फलन के रूप मे विनियोग सदैव उत्पादन के वर्तमान स्तर पर प्राप्त बचतो के बराबर होगा।

सतुलन की आवश्यकताओ को पुन निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\Delta Y}{Y} \frac{\Delta K}{\Delta Y} = \frac{S}{Y}$$

$$\text{जो} \quad GC = S \text{ अथवा } \frac{\Delta K}{Y} = \frac{S}{Y} \text{ है}$$

अब चूँकि $\frac{\Delta K}{\Delta Y}$ वह पूँजी स्टॉक है, जो उत्पादन मे अपेक्षित वृद्धि के लिए आवश्यक है, अन्य शब्दो मे वांछित विनियोग की यह वह राशि है, जो वर्तमान बचत के बराबर होनी चाहिए। इसलिए इसे हम निम्न प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$\frac{\Delta K}{Y} = \frac{I}{Y} = \frac{S}{Y}$$

सन्तुलन मार्ग की सन्तुष्टि के लिए आवश्यक शर्तों से सम्बन्धित विभिन्न विधियो (Approaches) को निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट किया गया है।

सारणी–1 सन्तुलन शर्तें (Equilibrium Conditions)[1]

शर्त (Condition)	सरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters)			वांछित विकास दर (Required Growth Rate)		
	$\frac{S}{Y}$	$\frac{\Delta K}{\Delta Y}$	$\frac{\Delta Y}{Y}$	$\frac{S}{Y}$	$\frac{\Delta K}{\Delta Y}$	$\frac{\Delta Y}{Y}$
(1) $\frac{S}{Y} = \frac{\Delta Y}{Y} \frac{\Delta K}{Y} = \frac{\Delta K}{Y}$, $S = I$		4	0 05	0 20		
(2) $\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\frac{S}{Y}}{\frac{\Delta K}{\Delta Y}}$, $G = \frac{S}{C}$	0 20	4				0 05
(3) $\frac{\Delta K}{Y} = \frac{\frac{S}{Y}}{\frac{\Delta Y}{Y}}$, $C = \frac{S}{G}$	0 20		0 05		4	

1 *Stanley Bober* The Economics of Cycles and Growth, p 260

सारणी-1, पैनल 1 मे, विकास दर या आय वृद्धि=0 05 प्रति अवधि और सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात=4 होने पर, इस विकास दर को बनाए रखने के लिए, बचत और विनियोग आवश्यक होगे=20 / [$I=4(0\ 05)=0{\cdot}20=S$] यदि इस राशि से कम या अधिक बचत रहती हैं तो तद्नुरूप ही आय मे वृद्धि की दर 5 / से अधिक अथवा कम रहेगी, परिणामस्वरूप, विनियोगो का परिवर्तन अनिवार्य होगा और इस परिवर्तन के कारण विकास दर भी बदल जाएगी।

पैनल 2 के अनुसार, यदि सरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters) अर्थात् बचत $\left(\frac{S}{Y}\right)$ और सीमान्त पूँजी प्रदा अनुपात $\left(\frac{\Delta K}{\Delta Y}\right)$ दिए हुए होते हैं तो विकास दर ज्ञात हो जाती है (1 e $G=\frac{20}{4}=0\ 05$) । इस विकास दर का स्थायी बने रहना प्राचलो के स्थायित्व (Stability) पर निर्भर करता है।

पैनल 3 के अनुसार, यदि कोई भी दो चल (Variables) दिए हुए होते हैं, तो आवश्यक तीसरा चल ज्ञात किया जा सकता है। जैसे $\frac{S}{Y}$ अथवा I(विनियोग) $=20$ तथा विकास दर$\left(\frac{\Delta Y}{Y} \text{ or } G\right)=0\ 5$ दिए हुए हैं। इनकी सहायता से तीसरा चल सीमान्त पूँजी प्रदा अनुपात $\left(\frac{\Delta K}{\Delta G}\right)$ इस प्रकार ज्ञात किया गया है— $\frac{20}{05}=4$

उपरोक्त सन्तुलन-पथ की पूर्ण रोजगार-पथ के रूप मे विवेचना इसलिए नही की गई है क्योकि यह मान्यता आवश्यक नही है कि केवल पूर्ण रोजगार की अवस्थाओ के अन्तर्गत ही स्थायी व निरन्तर विकास दर की विशेषताओ (Properties) का स्वत सचालन सम्भव होता है। उदाहरणार्थ हिक्स की $E\ E$ रेखा (Hicksian $E\ E$ line) पूर्ण रोजगार से पूर्व-स्थिति मे भी स्थायी विकास (Steady growth) को दर्शाती है। पूर्ण रोजगार की मान्यता के लिए प्रारम्भिक शर्तें (Initial condition) के रूप मे यह मान कर चलना आवश्यक है कि G=पूर्ण रोजगार के है, अथवा हैरड की शब्दावली मे यह कहा जाना चाहिए कि $G=G_n$ G_n का आशय स्वाभाविक विकास दर (Natural Growth Rate) से है। यह वह दर (Rate of advance) है जिसकी अधिकतम सीमा जनसख्या की वृद्धि और तकनीकी सुधारो पर आधारित होती है। इसे एक अन्तिम उच्चतम विकास दर (Ceiling Growth Rate) के रूप मे भी परिभाषित किया जा सकता है जो G के अधिकतम औसत मूल्य की सीमा निर्धारित करती है। $G=G_w=G_n$ सन्तुलन मार्ग के निर्धारण के लिए हमको न केवल स्वतन्त्र रूप से निर्धारित S और C चलो के ही सयोग को लेना चाहिए बल्कि साथ ही यह भी निश्चित कर लेना चाहिए कि विकास की यह दर तथा वह दर जिससे श्रम शक्ति मे वृद्धि होती है,

परस्पर बराबर हैं। श्रम शक्ति की वृद्धि दर अधिकांशत उत्पादन की वृद्धि से स्वतन्त्र होती है। इसका निर्धारण डैमोग्राफिक शक्तियों द्वारा होता है।

ज्यामितीय विश्लेषण द्वारा इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र–4
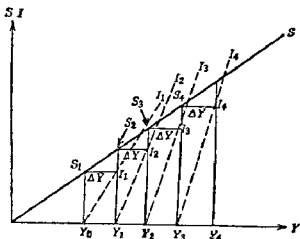
मॉडल का ज्यामितीय विश्लेषण
(Geometric Analysis of the Model)[1]

चित्र–4 मे Y_0 से Y_1 तक उत्पादन मे परिवतन ($\triangle Y$) प्रेरित (Induced) विनियोग की Y_1 पर वास्तविक राशि$=I_1=S_1\ (Y_1)$ होगी। विनियोग की इस राशि से उत्पादित आय$=Y_2$ होगी। पुन उत्पादन मे परिवतन i e $Y_2-Y_1=\triangle Y_2$ से प्रेरित विनियोग की राशि $I_2=S_2\ (Y_2)$ होगी। टूटी हुई विनियोग रेखा (Dashed Investment Line) तथा Y–अक्ष के समानान्तर ठोस रेखा का कटाव बिन्दु (Intersection point) उस आवश्यक विनियोग को प्रदर्शित करता है जो आय वृद्धि के कारण किया जा रहा है (i e, it indicates the required investment that is forthcoming)। "यदि हम विनियोग गुणाक (Investment coefficient) मे किसी परिवतन के न होने की मान्यता लेते हैं तो वचत का अनुपात जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक वृद्धि दर उत्पादन अथवा आय म होनी चाहिए जिससे सन्तुलन के लिए पर्याप्त विनियोग प्रेरित हो सके।[2] (The greater the proportion of savings the greater must the rate of increase in output be to induce sufficient investment to maintain Equilibrium, if we assume no change in the investment coefficient)

1 H Pilvin A Geometric Analysis of Recent Growth Models AER 42, Sept, 1952 pp 594 595

2 Ibid p 261

सारणी-2 में उन विभिन्न विकास दरों को दर्शाया गया है जो S और C (S=बचत की सीमान्त प्रवृत्ति और C=पूँजी-प्रदा अनुपात) के विभिन्न सयोगों (Different Combinations) पर *आवश्यक होती हैं।*

सारणी-2. भिन्न शर्तों के अन्तर्गत आवश्यक विकास दर[1]
(Required Growth Rate under Different Combinations)

S	C			
	½	1	4	10
0	0	0	0	0
0 10	0 20	0 10	0 025	0 01
0 20	0 40	0 20	0 05	0 02

यदि S= 10 और C=½ हो तो G= 20 होगी, किन्तु S=·20 होने पर G (i e = 20) को स्थिर रखने के लिए C को ½ से बढ़ाकर 1 किया जाना आवश्यक होगा। परन्तु यदि हमको सारणी का विश्लेषण उत्पादन मे आवश्यक वृद्धि-दर के रूप मे करना है, तो बचत का अनुपात= 10 के दिए हुए होने पर, पूँजी-प्रदा-अनुपात मे ½ की कमी, अर्थात् 1 से ½ होने की स्थिति मे, सन्तुलन *कायम रखने के लिए विकास दर मे 100 प्रतिशत वृद्धि आवश्यक होती है।* अर्थात् किसी दी हुई औसत बचत प्रवृत्ति (APS) का त्वरक गुणांक (Acceleration Coefficient) जितना कम होगा, उतना ही अधिक पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाए रखने के लिए पर्याप्त विनियोग को प्रेरित करने के उद्देश्य से विकास-दर को ऊँचा रखना होगा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि सारणी मे प्रदर्शित किया गया है, जितना ऊँचा गुणांक (C) होगा, उत्पादन मे वृद्धि दर उतनी कम होगी—*यथा* जब C=½, तब G= 40 है और जब C=10 है तब G= 02 है। उदाहरणार्थ, विनियोग फलन जितना अधिक लेटा हुआ (Flatter) है, उतना ही अन्तर Y के स्तरों मे *पाया जाता है, बशर्ते कि, S=I हो।*

डोमर मॉडल
(The Domar Model)

हैरड के मॉडल को सरलता से डोमर के मॉडल मे परिवर्तित किया जा सकता है। दोनों के ही मॉडल यह प्रतिपादित करते हैं कि पूर्ण रोजगार को बनाए रखने के लिए, पूर्ण रोजगार के स्तर वाली आय से प्राप्त वांछित बचत की राशि वांछित विनियोगों के बराबर होनी चाहिए। डोमर मॉडल का *मूल प्रश्न यह है* कि बढ़ते हुए पूँजी संचय से प्रतिफलित बढ़ती हुई उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के लिए किस दर से अर्थव्यवस्था का विकास किया जाना चाहिए? इसके विपरीत हैरड मॉडल मे अन्तर्निहित प्रश्न इस प्रकार है कि अर्थव्यवस्था मे किस दर

1 *Paul A Samuelson* 'Dynamic Process Analysis', Survey of Contemporary Economics, *H* S Ellis (Ed), AEA-Series, p 362

से वृद्धि होनी चाहिए कि विनियोजक विनियोजन की अपनी वर्तमान दर को जारी रखने मे औचित्य का अनुभव करें। डोमर जहाँ बदलती हुई उत्पादन-क्षमता के तकनीकी प्रभाव से सम्बन्ध रखते हैं, वहाँ हैरड अपने को मूलत विनियोग निर्णयो पर केन्द्रित रखते है।

मॉडल की विवेचना (Interpretation of the Model)

उक्त मॉडल मे—

σ=उत्पादन क्षमता मे वृद्धि + नए विनियोग की राशि। सामान्यत σ का मूल्य विनियोग के मूल्य से भिन्न होगा क्योकि नई उत्पादन-क्षमता के एक अश के लिए वर्तमान सुविधाएँ (Existing facilities) उत्तरदायी होती हैं। इस प्रकार—

$I\sigma$=*अर्थव्यवस्था की 'उत्पादन सम्भावना' (Productive Potential)*

I मे परिवर्तन से गुणक द्वारा कुल मांग (Aggregate demand) मे परिवर्तन होता है, जिसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\triangle Y = \frac{1}{S} \triangle I,$$

जहाँ $\frac{I}{S}$=गुणक, $\triangle I$=विनियोग मे परिवर्तन, $\triangle Y$=माँग मे वृद्धि,

S=बचत की सीमान्त प्रवृत्ति या *MPS* विनियोग मे परिवतन तथा साथ ही, उत्पादन-क्षमता मे भी वृद्धि उत्पन्न करता है, जिसे $I\sigma$ से दर्शाया जाता है। व्यवस्था मे *उत्पादन-क्षमता मे न आधिक्य की स्थिति रहे और न न्यूनता की, इसके लिए कुल* माँग व कुल पूर्ति की सापेक्ष वृद्धि दरें, स्थिर रहनी चाहिए। अत यह आवश्यक है कि—

$$\triangle I \ \frac{I}{S} -- \sigma I$$

उपरोक्त समीकरण के दोनों पक्षो को S से गुणा करते हुए और I से विभाजित करने पर प्राप्त परिणाम होगा—

$$\frac{\triangle I}{I} = \sigma S$$

इस समीकरण से स्पष्ट है कि पूर्ण क्षमता के उपयोग का सतुलन मार्ग तभी बना रह सकता है, जबकि विनियोग मे सापेक्ष परिवर्तन की दर विनियोग की उत्पादकता दर के बराबर रहती है। यदि यह दर कम है अर्थात् जब $\frac{\triangle Y}{Y} < \sigma S$ परिणाम अतिरिक्त क्षमता की उत्पत्ति होगा। आय का वर्तमान पर्याप्त स्तर कल और भी अधिक आय के स्तर की आवश्यकता पैदा करेगा। *अर्थव्यवस्था के निर्बाध गति से* चलने रहने के लिए विनियोग दर का तीव्र गति से निरतर बढते रहना आवश्यक होगा।

मॉडल का गणितीय उदाहरण
(Numerical Example of the Model)[1]

यदि हम यह मानते हैं कि $S=0{\cdot}25$ और $\sigma=0{\cdot}10$ तो \$ 10 के नए विनियोग से \$ 1 के बराबर नयी उत्पादन क्षमता का निर्माण होता है। निम्नलिखित सारणी मे $t=1$ अवधि से सतुलन की स्थिति प्रारम्भ करते हुए, हम देखते है कि यदि विनियोग मे $\sigma S=2{\cdot}5\%$ की वांछित दर से वृद्धि होती है तो प्रत्येक अवधि मे उत्पादन क्षमता की वृद्धि को पूर्ण उपयोग मे रखने के लिए, आय मे जो परिवर्तन होता है, वह पर्याप्त होगा। दूसरी अवधि मे पूँजी का स्टॉक $400(0{\cdot}025)=\$10$ से बढ़ता है, जिसके कारण उत्पादन क्षमता मे $10(0{\cdot}10)=1$ की वृद्धि होती है। $t=2$ अवधि मे 2.5% की दर से विनियोग बढ़कर 10·25 हो जाता है। इस विनियोग से वास्तविक माँग मे जो वृद्धि होगी, वह बढी हुई क्षमता के पूर्ण उपयोग के लिए आवश्यक है, किन्तु इस प्रक्रिया के क्रम मे $t=3$ अवधि मे पूँजी का स्टॉक बढ़कर 420.25 हो जाता है तथा उत्पादन-क्षमता 1·025 से बढ जाती है। इस बढी हुई उत्पादन-क्षमता के पूर्ण उपयोग के लिए विनियोग 2·5% की दर से बढ़कर 10·506 हो जाएगा। इस प्रकार जब तक विनियोग मे वांछित दर से वृद्धि जारी रहती है, *पूर्ण क्षमता वाला पथ सतुलित बना रहता है* (The full capacity path is maintained as long as investment keeps rising at the required rate).

सारणी के पैनल B मे विनियोग स्थिर रहता है। इस स्थिति में हम यह देखते हैं कि प्रत्येक अवधि मे उत्पादन क्षमता (Output Capacity) और वास्तविक माँग (Actual Demand) का अन्तर बढता जाता है। यह स्थिति डोमर के मूल दृष्टिकोण को इन शब्दो मे स्पष्ट करती है, '*जब प्रत्येक अवधि मे विनियोग और आय स्थिर रहते हैं*, तब क्षमता निरतर बढती जाती है। इस क्रम मे एक ऐसा बिन्दु आ पहुँचेगा जिम पर साहसियो की अपेक्षित प्रत्याशाओ (Anticipations) के पूरा न होने पर, विनियोग मे गिरावट की प्रवृत्ति प्रारम्भ होने लगती है। इस प्रकार *विकास क्रम की समाप्ति विनियोगो मे गिरावट लाने के लिए पर्याप्त है* (*Thus a cessation of growth is sufficient to cause a decline*)।"

पैनल C के अनुसार विनियोग मे वृद्धि की धीमी दर से उत्पादन क्षमता मे अतिरेक की स्थिति उत्पन्न होती है; पूर्ति और माँग मे अन्तर स्पष्ट होता जाता है, क्योकि विनियोग मे 2·5% के स्थान पर केवल 1% से ही वृद्धि होती है।

1. *Gardner Ackley* · Macro Economic Theory, p 516

डोमर मॉडल की स्थितियां (The Domar Model Conditions)[1]

t	पूंजी का स्टॉक (Capital Stock)	क्षमता-उत्पादन (Capacity Output) पूर्ति (Supply)	मांग (Demand)	उपभोग (Consumption)	विनियोग (Investment)
			पैनल A		
1	400	40	40	30	10
2	410	41	41	30 75	10 25
3	420·25	42 025	42 025	31 518	10 506
			पैनल B		
1	400	40	40	30	10
2	410	41	40	30	10
3	420	42	40	30	10
			पैनल C		
1	400	40	40	30	10
2	410	41	40 4	30·3	10 1
3	420 1	42 01	40 8	30 6	10 2

डोमर-मॉडल के सतुलन-मार्ग को निम्न चित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

चित्र 5
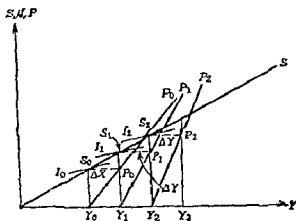
चित्र–5 मे I_0 और S_0 का कटाव बिन्दु (Intersection point) आय का पूर्ण क्षमता स्तर (Fule capacity level of income) प्रदर्शित करता है। इसके

1 *H Pilvin*, op cit, quoted from Stanley Bober, op cit, p 267

अतिरिक्त, टूटी हुई लम्बवत् रेखा (The vertical dashed line) I_0 विनियोग के परिणामस्वरूप S_0P_0 मात्रा से बढ़ी हुई उत्पादन-क्षमता को प्रदर्शित करती है। उत्पादन क्षमता मे इस वृद्धि के कारण आय मे भी इसी दर से वृद्धि आवश्यक हो जाती है। जब विनियोग I_0 से बढ़कर I_1 हो जाता है तब जिस दर से आय बढ़ती है, उससे $I_1 S_1$ पर नया सतुलन स्थापित हो जाता है। इस नए सतुलन पर आय वृद्धि की सीमा S_2P_2 हो जाती है तथा विनियोग राशि मे भी वांछित परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि—

1 क्षमता गुणांक (Capacity coefficient) जितना कम होता है अथवा क्षमता रेखा (Capacity Line) का ढाल जितना अधिक (Steeper) होता है, विनियोग मात्रा मे उतना ही कम परिवतन आवश्यक होता है।

2 किसी दिए हुए क्षमता गुणांक पर, बचत रेखा जितनी ढालू होगी जितनी अथवा जितनी अधिक बचत की सीमान्त प्रवृत्ति होगी, विनियोग राशि उतनी ही अधिक सतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक होगी।

3 जिस प्रकार हैरड मॉडल मे जब एक बार अर्थव्यवस्था सतुलन के मार्ग से हट जाती है तब बचत फलन और विनियोग फलन मे परिवतन के मध्य नीति-विकल्प (Policy Choices) रहते हैं, किन्तु डोमर मॉडल हमको σ तत्व के रूप म विनियोग के लिए तकनीकी आधार के प्रति सतर्क करता है।

दोनो मॉडल मे परस्पर सम्बन्ध
(Relation between two Models)

डोमर मॉडल मे

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \Delta I \left(\frac{I}{S}\right) = \text{Demand (मांग)}$$

$$\frac{\Delta I}{I} = \sigma I = \text{Supply (पूर्ति)}$$

$$\text{और} \quad \frac{\Delta Y}{Y} = \sigma I = G_r \quad \text{(Requied Growth Rate)}$$

इस प्रकार के सतुलन मार्ग मे $S=I$ होता है। यदि I से S अधिक या कम होता है तो इसके परिणामस्वरूप आवश्यक स्तर से कम अथवा अधिक उत्पादन क्षमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है अथवा विनियोग दर बहुत अधिक अथवा बहुत कम रहती है। डोमर साहसियो को कोई ऐसा व्यवहार करन का सुझाव प्रस्तुत नही करते हैं, जो उनके लिए विनियोग की मात्रा के उचित परिवर्तन की निश्चयात्मकता का आधार बनता हो। वे केवल उस राशि का उल्लेख करते हैं जिससे विनियोग की मात्रा मे वृद्धि होनी चाहिए।

हैरड मॉडल मे—

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \Delta I \left(\frac{I}{S}\right) = \text{Demand (मांग)}$$

$$\frac{\Delta I}{I} = \frac{S}{C} = \text{Supply (पूर्ति)}$$

और $$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{S}{C_r} = G_w \text{ (Warranted Rate of Growth)}$$

इस प्रकार के सतुलन मे $S = I = C_r$, यदि $I \gtrless S$ है तो साहसी अपने गत विनियोग निर्णयो पर असतुष्ट होते है इसलिए विनियोग को बढ़ाना या घटाना चाहते हैं। हैरड साहसियो के लिए इस प्रकार के आचरण अथवा कार्य करने की प्रेरणा प्रस्तुत करते हैं, जिसके करने पर विकास की उचित दर जारी रहती है और विकास की इस दर के फलस्वरूप विनियोग मे उचित परिवर्तन स्वत. प्रेरित होता है, जबकि डोमर मॉडल मे विनियोग की उचित राशि एक बाह्य चल या तत्व (Exogeneous Variable or Element) के रूप मे प्रयुक्त होती है।

दोनो के सतुलन मार्गों को परस्पर सम्बन्धित करते हुए हम यह पाते हैं कि डोमर-मॉडल की निरतर बदलती हुई उत्पादन-क्षमता, प्रेरित विनियोग की उचित राशि का परिणाम होती है, अर्थात्

$$\frac{\Delta I}{I} = \sigma I = \frac{S}{G_r}$$

और विकास की वह दर भी जो क्षमता को वहन करती है, साहसियों के गत निर्णयो के औचित्य को प्रमाणित करती है, अर्थात्

$$G_r = G_w = G.$$

मॉडल की अर्द्ध विकसित क्षेत्रो के लिए व्यावहारिकता (Applicability of the Models for UDCs)

प्रथम, मॉडल म 'अस्थायित्व' (Instability) की समस्या वास्तव मे अर्द्ध-विकसित देशो की नही बल्कि विकसित देशो की समस्या है। अर्द्ध-विकसित देशो की समस्या स्वय 'आर्थिक वृद्धि' (Growth) है।

द्वितीय, इस मॉडल मे 'सैक्यूलर स्टेगनेशन' (Secular Stagnation) की विवेचना की गई है, जो कम आय वाले देशों की विशेषताओ के अन्तर्गत नहीं आता है।

इसके अतिरिक्त ये प्रयुक्त चल अर्थव्यवस्था क समष्टि स्वरूप को दर्शाते हैं। समूहो (Aggregates) के आधार पर निर्मित मॉडल क्षेत्रो के मध्य अन्त सम्बन्धो को प्रदर्शित नही कर सकता है इसलिए अर्द्ध विकसित देशो की अर्थ व्यवस्थाओ मे विकासजन्य-सरचनात्मक परिवर्तनो को प्रस्तुत करने म अनुपयुक्त होता है।

अधिकाँशत ये मॉडल मान्यताओ एव Abstractions पर आधारित हैं, इसलिए यथार्थता से दूर है।

उत्पादन फलन को स्थिर माना गया है, इसलिए उत्पादन-कारको मे परस्पर प्रतिस्थापन के लिए इन मॉडलो मे कोई स्थान नहीं है।

यद्यपि अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए इन मॉडलों की व्यावहारिकता बहुत कम है, तथापि कुल मिलाकर आय, विनियोग और बचत के लक्ष्यों के सम्बन्ध में एक उचित जानकारी प्रदान करने में बड़े उपयोगी है। साथ ही इन लक्ष्यों की पारस्परिक अनुकूलता (Consistency) के परीक्षण हेतु भी ये मॉडल उपयुक्त समझे जाते हैं। कम आय वाले देश मुद्रा-प्रसार के प्रति बड़े Susceptible होते हैं, इस तथ्य की विवेचना भी इन मॉडलों में की गई है। इन देशों में विनियोग-दर में अल्प वृद्धि के परिणाम अथवा प्रभाव अत्यधिक तीव्र होते हैं, क्योंकि प्रारम्भिक विनियोग दर एव विकास-दर बहुत निम्न होती है। इस तथ्य का प्रतिपादन भी इन मॉडलों में समुचित रूप से किया गया है। इस प्रकार, मूलत विकसित अर्थव्यवस्थाओं से सम्बन्धित होते हुए भी हैरड डोमर मॉडल की अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के लिए उपयोगिता है।

हिक्स द्वारा हैरड-मॉडल की समालोचना (Hicks's Comments on Harrod Type Macro Dynamics)

प्रो हिक्स के शब्दों में, "किसी ऐसी अर्थव्यवस्था की क्रियाओं को, जिसमें सम्पूर्ण विनियोजन प्रेरित विनियोजन होता है, समझना एक दिलचस्प स्थिति है।" प्रो हिक्स ने हैरड डोमर मॉडलों की निम्नलिखित समालोचनाएँ प्रस्तुत की है—

1 पूँजी की समरूपता (Homogenity of Capital) की मान्यता अनावश्यक है। यदि हम इसे मान भी ले तब भी $K_t = K_t^*$ (K_t = पूँजी का प्रारम्भिक स्टॉक और K_t^* = पूँजी का वाञ्छित स्टॉक) स्टॉक सतुलन की पर्याप्त शर्त न होकर, केवल एक आवश्यक शर्त है, क्योंकि योग (Aggregates) समान हो सकते हैं, किन्तु कुछ पूँजियों के वास्तविक स्टॉक का कुछ अथवा सभी उद्योगों मे वाँछित स्तर से अधिक तथा कुछ अन्य उद्योगों मे वाँछित स्तर से कम होना सभव है।

2 प्रति अवधि म बचत गुणांक (S) को स्थिर मानना भी तर्क-युक्त नहीं है। मॉडल के बीजगणितीय स्वरूप मे यह अन्तर्निहित है कि अवधि के प्रारम्भ व अत मे पूँजी-प्रदा अनुपात वही रहता है, किन्तु सामान्यत वाँछित पूँजी-उत्पादन पर आश्रित रहना आवश्यक नहीं है।

3 हैरड की G_w (Warranted Rate of Growth) सतुलन-मार्ग के निर्धारण के लिए पर्याप्त नहीं है। $GC = S$ केवल एक बहाव शर्त (Flow Condition) है, क्योंकि हैरड मॉडल मे पूँजी का कोई ऐसा भाग नहीं है जो स्वत निर्धारित होता हो, इसलिए एक निर्णायक सतुलन-पथ के लिए कुछ अधिक सरलीकरण (Simplification) की आवश्यकता है।

4 हैरड मॉडल को अधिक अर्थयुक्त बनाने हेतु यह शर्त आवश्यक है कि $C^\circ > S$ (C° = पूँजी-प्रदा अनुपात और S = बचत गुणांक) यदि विचाराधीन अवधि केवल एक माह है, C° काफी बड़ा होना चाहिए, किन्तु यदि अवधि दीर्घ हो तो यह शर्त $C^\circ > S$ बहुत कम सन्तुष्ट हो सकेगी। परन्तु यह स्पष्ट है

कि $C'>S$ की शर्त मॉडल में आवश्यक है। यह महत्त्वपूर्ण विचार है, क्योंकि 'हैरड मॉडल की अस्थायित्वता (Instability) सम्बन्धी केन्द्रीय स्थिति' इसी पर निर्भर करती है।

5. आय के साथ-साथ बचत में वृद्धि की प्रवृत्ति को प्रकट करने का अन्य विकल्प उपभोग विलम्बनों (Consumption Lags) के माध्यम द्वारा हो सकता है। अतः यदि हम इस मान्यता को छोड़ दें कि वांछित पूँजीगत अवधि के उत्पादन पर निर्भर करती है तब भी 'अस्थायित्वता' (Instability) के प्रमाण पर कोई गहरा प्रभाव नहीं होगा।

6. हैरड ने G_n (Natural Growth Rate) की परिकल्पना विकास की ऐसी उच्च-दर के रूप में की है, जिसकी अधिकतम सीमा निर्धारण श्रम-पूर्ति की उच्चतम सीमा (Ceiling) करती है। हैरड के अनुसार श्रम-पूर्ति की इस सीमा के उपरान्त उत्पादन का विस्तार आगे नहीं हो सकेगा, बल्कि उत्पादन में कमी की प्रवृत्ति पैदा होगी, किन्तु यह आवश्यक नहीं है। वास्तव में, श्रम-पूर्ति की अधिकतम सीमा के आ जाने के पश्चात्, पूँजी-प्रदा अनुपात बढ़ने लगेगा और श्रम के रोजगार में वृद्धि न होने की स्थिति में भी उत्पादन का विस्तार जारी रह सकता है। श्रम-पूर्ति के स्थिर रहते हुए पूँजी की मात्रा में वृद्धि द्वारा उत्पादन का विस्तार किए जाने की सम्भावना पर नव-प्रतिष्ठापित अर्थशास्त्रियों (Neo-classical Economists) द्वारा विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में केलडोर (Kaldor) का नाम उल्लेखनीय है।

जॉन रॉबिनसन द्वारा समालोचना
(A Comment by John Robinson)[1]

1 जॉन रॉबिनसन का $G=\frac{S}{V}$ के सम्बन्ध में मत है कि पूँजी से प्राप्त लाभ (π) S और V को प्रभावित करता है। अतः विभिन्न लाभ-दरों की स्थिति में विकास-दर कोई एक न होकर अनेक हो सकती है।

एक विकास-दर के स्थान पर विभिन्न लाभ-दरों के अनुरूप अनेक विकास-दरों की सम्भावना का उत्तर देते हुए हैरड ने कहा है कि यद्यपि एक गतिशील सन्तुलन की अवस्था में (*In a State of Dynamic Equilibrium*) एक से अधिक लाभ-दरों की सम्भावना को अस्वीकारा नहीं जा सकता है, तथापि हैरड इसे एक असामान्य स्थिति मानते हैं।

2. जॉन रॉबिनसन के अनुसार पूरी अवधि के दौरान स्थिर रहने वाली विकास-दर अर्थात् $G=\frac{I}{K}$ होती है। हैरड के अनुसार इसका तात्पर्य है कि सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात, अर्थव्यवस्था में औसत पूँजी-प्रदा अनुपात के समान होता है किन्तु हैरड इस मान्यता को असगत मानते हुए, रॉबिनसन की विकास-दर

1 *John Robinson*: "Harrod After Twenty One Years". Sept. 1970, Vol LXXX, p 731

ie $G = \frac{I}{K}$ की अवधारणा को अस्वीकार करते हैं ।

3 तीसरी आलोचना है कि हैरड मॉडल मे यह मान्यता ली गई है कि 'सम्पूर्ण शुद्ध लाभ परिवारो मे वितरित होता है ।' किन्तु इस आलोचना का उत्तर देते हुए हैरड का मत है कि अपने मॉडल मे उन्होने इस प्रकार की मान्यता की कही भी किसी प्रकार से कल्पना नही की है ।

निष्कर्ष (Conclusion)

हैरड-डोमर मॉडल के विश्लेषण का सारांश निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. स्थायी व निरन्तर विकास की समस्या मे विनियोजन की भूमिका केन्द्रीय होती है ।

2. बढी हुई उत्पादन क्षमता के परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन अथवा अधिक बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । यह स्थिति आय के व्यवहार पर निर्भर करती है ।

3 आय के व्यवहार के लिए ऐसी शर्तों की कल्पना की जा सकती है, जिनके अन्तर्गत पूर्ण रोजगार की स्थिति को कायम रखा जाना सम्भव है ।

4 डोमर के अनुसार सन्तुलन-विकास-दर गुणक के आकार तथा नए विनियोग की उत्पादकता पर निर्भर करती है । यह बचत की प्रवृत्ति गुणा त्वरक के विलोम के बराबर होनी है । अत यदि पूर्ण रोजगार को बनाए रखना है तो सचय ब्याज-दर से आय मे वृद्धि होना आवश्यक है ।

5 व्यापार चक्रो को स्थायी आर्थिक वृद्धि के मार्ग मे एक विचलन के रूप मे विचारा गया है ।

महालनोबिस मॉडल
(The Mahalanobis Model)

महालनोबिस मॉडल विकास-नियोजन (Development-planning) का एक चार क्षेत्रीय अर्थमिति मॉडल (A four Sector Econometric Model) है । मॉडल का निर्माण अर्थमिति की सकाय प्रणाली (Operational-System) द्वारा किया गया है । मॉडल मे कुछ सीमा दशाओ (Boundary-Conditions) तथा सरचनात्मक प्राचल (Structural Parameters) व साथ ही कुछ साधन-चलो (Instrument-Variables) एव लक्ष्य-चलो (Target-Variables) के एक समूह का प्रयोग किया गया है । भारतीय अर्थव्यवस्था को चार क्षेत्रो मे विभाजित किया जा सकता है (1) विनियोग वस्तु क्षेत्र (The Investment Goods Sector), (2) फैक्टरी उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (The Factory Consumer Goods Sector), (3) लघु-इकाई उत्पादन क्षेत्र अथवा घरेलू उद्योग क्षेत्र (Small Unit Production Sector or House-hold Industries' Sector), तथा (4) सेवा उत्पादन क्षेत्र (The Sector Producing Services) । इन क्षेत्रो के लिए क्रमश $K, C_1, C_2\ C_3$

चिह्नों (Symbols) को प्रयोग मे लिया गया है । आय-निर्माण (Income Formation), रोजगार-वृद्धि (Employment Generation) तथा बचत व विनियोग की विधि (The Pattern of Saving and Investment) की दृ˝ मे इन क्षेत्रो मे परस्पर सरचनात्मक सम्बन्धो (Structural Relations) को देखा गया है। महालनोबिस के इस चार क्षेत्रीय अर्थमिति मॉडल का निर्माण सन् 1955 मे हुआ। इससे पूर्व 1952 में महालनोबिस ने एक क्षेत्रीय मॉडल तथा 1953 में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र वाले द्विक्षेत्रीय मॉडल की सरचना की थी।

परिकल्पना (Hypothesis)

प्रस्तुत मॉडल में देश में अनुमानित 5,600 करोड की धनराशि से द्वितीय पचवर्षीय योजना की अवधि में 5% वार्षिक विकास-दर (5% Annual Growth Rate) व 11 मिलियन व्यक्तियो के लिए अतिरिक्त रोजगार की उपलब्धि की ˈ रिकल्पना की गई है। अनुमानित धन-राशि को अर्थव्यवस्था के चारो क्षेत्रो में स प्रकार वितरित करने का प्रयास किया गया है कि प्रत्येक क्षेत्र में जन्य राष्ट्रीय ˈ ाय की वार्षिक वृद्धि तथा रोजगार वृद्धि का योग क्रमश 5% तथा 11 मिलियन तिरिक्त व्यक्ति हो सकें। इसीलिए इस मॉडल को आर्थिक विकास के मॉडल के ˈथान पर आय वितरण मॉडल (Allocation Model) की सज्ञा दी जाती है।

मॉडल का प्रारूप (Structure of the Model)

मॉडल मे लिए गए चारो क्षेत्रो—विनियोग वस्तु क्षेत्र, फैक्टरी उत्पादित उपभोग वस्तु क्षेत्र, लघु या गृह उद्योगो द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तु क्षेत्र, तथा सेवा उत्पादन क्षेत्र, के लिए चार उत्पादन-पूँजी अनुपात (Output Capital Ratios) अथवा उत्पादकता गुणांक (Productivity Coefficient) लिए गए हैं, जिनको β's(बीटाज)प्रकट करते हैं, पूँजी श्रम अनुपातो (Capital Labour Ratios) के लिए θ's (थीटाज्), वितरण प्राचलो (Allocation Parameters) के लिए λ's (लेम्बडाज्) का प्रयोग किया गया है, जो कुछ विनियोग का प्रत्येक क्षेत्र मे अनुपात प्रदर्शित करते हैं। मॉडल मे विभिन्न आर्थिक मात्राओ (Economic Magnitudes) के समाधान हेतु युगपद समीकरण प्रणाली (System of Simultaneous Equations) अपनाई गई है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कुल आय तथा कुल रोजगार के रूप मे लक्ष्य चलो की मान्यता लेते हुए, दिए हुए उत्पादकता गुणांको और पूँजी श्रम अनुपातो तथा कुल विनियोग की मात्रा की सहायता से युगपद समीकरणो द्वारा प्रत्येक क्षेत्र मे जनित रोजगार व आय के अनुभागो (Components) को ज्ञात किया गया है।

मॉडल मे निम्नलिखित तत्त्व अज्ञात (Unknown) हैं—

K	C_1	C_2	C_3
γk	Y_1	Y_2	Y_3
Nk	N_1	N_2	N_3
λk	λ_1	λ_2	λ_3

जिसमे γ's (गामाज) = क्षेत्रो मे जनित आय-वृद्धि,

Ns = रोजगार वृद्धि,

और λ's (लेम्बड्राज) = वितरण प्राचलो (Allocation Parameters) के लिए प्रयुक्त हुए है।

मॉडल मे आँकडो (Datas) के लिए निम्न चिह्न प्रयोग मे लिए गए हैं —

I			
βk	β_1	β_2	β_3
θk	θ_1	θ_2	θ_3

जिसम β's = उत्पादन पूँजी अनुपात, I = कुल विनियोग

θ's = पूँजी श्रम अनुपात

मॉडल के समीकरण (Equations of the Model)

मॉडल मे 11 समीकरण तथा 12वां अज्ञात तत्व हैं। समीकरण निम्न प्रकार हैं—

(1) $\gamma k+\gamma_1+\gamma_2+\gamma_3=\gamma$ (प्रथम कल्पित स्थिरांक—First Arbitrary Constant)

(2) $Nk+N_1+N_2+N_3=N$ (द्वितीय कल्पित स्थिरांक—Second Arbitrary Constant)

(3) $\lambda KI+\lambda_1 I+\lambda_2 I+\lambda_3 I=I$ (तृतीय स्थिरांक–Third Constant)

(4) $\gamma K=I\,\lambda K\,\beta K$

(5) $\gamma_1=I\lambda_1\ \beta_1$

(6) $\gamma_2=I\,\lambda_2\ \beta_2$

(7) $\gamma_3=I\,\lambda_3\ \beta_3$

(8) $NK=\frac{I\,\lambda K}{\theta K}$

(9) $N_1=\frac{I\,\lambda_1}{\theta_1}$

(10) $N_2=\frac{I\,\lambda_2}{\theta_2}$

(11) $N_3=\frac{I\,\lambda_3}{\theta_3}$

11 समीकरण तथा 12वां अज्ञात तत्त्व होने के कारण, समीकरणो की इस व्यवस्था मे एक अश की स्वतन्त्रता (One Degree of Freedom) है। महालनोबिस ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग निम्न समीकरण मे किया है—

(12) $\lambda K=\frac{1}{3}$ or 33

युगपद समीकरणो की उपरोक्त व्यवस्था मे

$$\begin{bmatrix} \gamma \\ N \\ I \end{bmatrix} =$$ काल्पनिक स्थिरांक, मॉडल की सीमा-दशाओ के प्रतीक हैं। ये कुल मिलाकर लक्ष्यो (Overall Targets) को भी प्रकट करते हैं।

$\begin{bmatrix} \theta's \\ \beta s \end{bmatrix}$ = प्राद्यौगिकी द्वारा दिए हुए सरचनात्मक प्राचल (Technologically given Structural Parameters), जिनको योजनावधि मे अपरिवर्तनशील (Unchanged) माना गया है।

$\lambda's$=वितरण प्राचल (Allocation Parameters), जिनको वास्तविक नियोजन प्राचल (Actual Planning Parameters) माना जा सकता है। ये प्राचल व्यवस्था मे दिए हुए नही होने, किन्तु व्यवस्था की प्रक्रिया मे से स्वय उभर कर प्रकट होते है तथा ये नियोजकों द्वारा की गई अपेक्षाओं की स्थिति को दिखाते हैं।

$\begin{bmatrix} \gamma s \\ N s \end{bmatrix}$ = प्रमुख क्षेत्रीय लक्ष्य चल (Vital Sectoral Target-variables तथा माडल के हल के रूप मे निर्धारित होते हैं।

उपयुक्त युगपद समीकरण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि वितरण प्राचलो को क्या मूल्य दिए जाने चाहिए अथवा विनियोजन के लिए उपलब्ध ससाधनों को अर्थव्यवस्था के विभिन्न चार क्षेत्रो मे किस प्रकार वितरित किया जाना चाहिए कि क्षत्रो मे जनित आय व रोजगार-वृद्धि का कुल योग निर्धारित लक्ष्यो के अनुरूप कुल आय तथा कुल रोजगार की पूर्ति कर सके। महालनोबिस के समक्ष द्वितीय पचवर्षीय योजना की अवधि म वार्षिक विकास दर का तथा 11 मिलियन व्यक्तियो के लिए रोजगार की उपलब्धि का प्रश्न था, जिसके समाधान हेतु उन्होंने देश क साधनो का अनुमान 5,600 करोड रुपये प्रथम बार लगाया इसक पश्चात् साख्यिकी विधियो स β s और θ s का मूल्य निर्धारित करते हुए, समीकरणों के हल द्वारा, अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के लिए विनियोग का वितरण निश्चित किया।

मॉडल का सख्यात्मक हल
(Numerical Solution of the Model)

प्रो महालनोबिस ने अपने माडल का निम्नलिखित सख्यात्मक हल प्रस्तुत किया है—

क्षत्र (Sectors)	प्राचल (Parameters) $\beta's$	$\theta's$
K	$\beta K = 20$	$\theta K = 20\,000$ रु
C_1	$\beta_1 = 35$	$\theta_1 = 8,750$
C_2	$\beta_2 = 1\ 25$	$\theta_2 = \ ,500$
C_3	$\beta_3 = 45$	$\theta_3 = 3\ 750$

$\beta's$ व $\theta's$ को तकनीकी की स्थिति (State of Technology) निर्धारित करती है। मॉडल मे विनियोग वस्तु क्षेत्र के लिए वितरण प्राचल अनुपात (λK) दिया हुआ होता है तथा शेष तीन क्षेत्रों के अनुपात λ_1, λ_2 व λ_3 उपरोक्त युगपद समीकरणो के हल द्वारा प्राप्त होते हैं।

चूंकि $\lambda K = \frac{1}{3}$ or 33 और I=5,600 करोड़ रु. दिया हुआ है, अत दिए गए आंकड़ो के आधार पर क्षेत्र (K) मे विनियोजन की मात्रा का निर्धारण निम्न प्रकार किया गया है—

$$\lambda K.I = 33 \times 5600 = \frac{33}{100} \times 5600 = 1850 \text{ करोड़ रु}$$

इस विनियोजन के परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि निम्न प्रकार होगी—

$$YK = I \ \lambda K \ \beta K$$

$$= \frac{1850 \times 20}{100}$$

i e. 370 करोड़ रु, जबकि क्षेत्र K मे रोजगार वृद्धि निम्न प्रकार होगी—

$$NK = \lambda K \, I / \theta K$$

$$= \frac{1850}{20,000} = 9 \text{ मिलियन या 9 लाख}$$

इसी प्रकार योजनावधि के 5 वर्षों म अन्य क्षेत्रो की आय-वृद्धि तथा रोजगार-वृद्धि को ज्ञात किया जा सकता है । सभी क्षेत्रो के सख्यात्मक हलो को निम्नलिखित सारणी मे प्रदर्शित किया गया है—

क्षेत्र (Sectors)	विनियोजन (I) (करोड़ रु)	आय-वृद्धि ΔY	रोजगार-वृद्धि (लाखो मे) ΔN
K	1850	370	9 0
C_1	980	340	11·0
C_2	1180	1470	47 0
C_3	1600	720	43 0
	5610	2900	110 0

आलोचनात्मक मूल्यांकन (A Critical Appraisal)

विकास नियोजन का महालनोबिस मॉडल 'आर्थिक वृद्धि' का एक स्पष्ट व सुनियोजित (Clear and well arranged) ऐसा मॉडल है, जिसमे एक अर्द्ध-विकसित देश की विकास-नीति के आवश्यक तत्व अन्तर्निहित हैं । मॉडल की सरचना मे भारतीय साँख्यिकी सस्थान (Indian Statistical Institute) द्वारा किए गए साँख्यिकी अन्वेषणो (Statistical Investigations) के निष्कर्षों का लाभ उठाया गया है । मॉडल का मौलिक स्वरूप अर्थमिति की सकाय प्रणाली पर आधारित है । इस मॉडल का उपयोग भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना मे किया गया । इस प्रकार मॉडल का व्यावहारिक स्वरूप (Operational Character) होते हुए भी, इसमे अनेक कमियाँ हैं । ये कमियाँ सक्षेप मे अग्रलिखित हैं—

1 अधिक सुनिश्चित नहीं (Not so Deterministic)—यह मॉडल अधिक सुनिश्चित नहीं है। किसी मॉडल की पूर्णता समीकरणों तथा अज्ञातों (Unknowns) की संख्याओं की समानता पर निर्भर करती है, किन्तु प्रस्तुत मॉडल में 11 समीकरण और 12वां अज्ञात हैं। परिणामस्वरूप, समीकरण-व्यवस्था के एक अज्ञात को काल्पनिक मूल्य दिया गया है (i e $\lambda K = \frac{1}{3}$ Assumed)। काल्पनिक मूल्य देने की स्वतन्त्रता की इस स्थिति में स्पष्ट है कि विभिन्न काल्पनिक मूल्यों के आधार पर भिन्न-भिन्न हल सम्भव होंगे। यह कमी मॉडल की पूर्णता अथवा

सुनिश्चितता को कम करती है किन्तु साथ ही यह विशेषता नियोजकों को अपनी निजी अवधारणाओं के प्रयोग की स्वतन्त्रता प्रदान करती है (This, however, introduces the element of choice into the model)।

2 कल्पित मूल्य के लिए केवल λK ही क्यों चुना गया, अन्य अज्ञात तत्त्व क्यों नहीं लिए गए ? इस प्रश्न का मॉडल में कोई उत्तर नहीं है।

3 एक अंश की स्वतन्त्रता वाले मॉडल में अनुकूलतम हल (Optimum Solution) के लिए पूर्वनिर्धारित सामाजिक कल्याण फलन (A Predetermined Social Function) का होना आवश्यक है, किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे नियोजकों के समक्ष, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय, इस प्रकार का कोई निश्चित कल्याण फलन (Welfare Function) नहीं था।

4 मॉडल में माँग-फलनों की उपेक्षा की गई है। नियोजकों की यह मान्यता है कि एक नियोजित अर्थव्यवस्था में जो कुछ उत्पादित किया जाता है, उसका उपभोग, उपभोक्ताओं के माँग अधिमानों (Demand Preferences) तथा विभिन्न मूल्यों के बावजूद निश्चित है। इस प्रकार की मान्यता ने मॉडल को से (Say) के नियम 'Supply has its own demand' जैसा यांत्रिक स्वरूप (Mechanistic Type) प्रदान कर दिया है।

5 एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में विकास नियोजन के दौरान बाजार तत्त्व, मनोवैज्ञानिक वातावरण, लोक-उत्साह, विशिष्ट दबाव बिन्दु (Specific Pressure Points) आदि से सम्बन्धित जो महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, उनकी महालनोबिस ने अपने मॉडल में, गणितीय सरलता के लिए, उपेक्षा की है।

6 मॉडल में, विनियोजन के एकल-समरूप-कोष (Single Homogeneous Fund) का संकेत है, जिसका समरूप विनियोजन वस्तुओं के लिए ही उपयोग किया जा सकता है, किन्तु विनियोजन वस्तुएँ प्रायः विजातीय (Heterogeneous) होती हैं, जिनके लिए विनियोजन-व्यूह (Investment Matrix) के प्रयोग की आवश्यकता है। इसलिए जहाँ व्यवस्था समरूप (Homogeneous) नहीं होती है, वहां इस मॉडल का प्रयोग, खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy) में सम्भव नहीं है।

7 कृषिगत पदार्थों तथा श्रम की पूर्ति भी पूर्णतः बेलोच नहीं होती है। इनकी पूर्ति को मॉडल में पूर्णतः बेलोच माना गया है।

8 मॉडल मे उत्पादन तक्नीकियो को स्थिर मानना भी त्रुटिपूर्ण है, क्योकि विकास-प्रक्रिया के क्रम मे उत्पादन-तकनीकियाँ, प्राय परिवर्तित होती रहती है।

9 सरचनात्मक प्राचलो को काल्पनिक मूल्य प्रदान किए गए हैं।

10 विनियोजन मे निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्रो के अनुपातो के सम्बन्ध मे मॉडल शान्त है।

सारांश—कुछ सरचनात्मक सम्बन्धो के समूह को लेकर सकाय प्रणाली द्वारा किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढांचे का इस प्रकार विश्लेषण करना कि नियोजन प्रक्रिया के दौरान उपलब्ध कुछ विनियोग-राशि का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे श्रेष्ठतम वितरण किया जा सके, मॉडल की मुख्य विशेषता है। किन्तु अन्य अर्थमिति मॉडलों के समान ही इस मॉडल की भी अनेक अव्यावहारिक व काल्पनिक मान्यताओ के कारण व्यावहारिक उपयोगिता बहुत कम हो गई है। प्रस्तुत मॉडल मे आंकड़ा से सम्बन्धित चलो (Data Variables i.e. β's and θ's) के लिए अनेक अव्यावहारिक मान्यताएँ ली गई हैं।

किन्तु फिर भी भारतीय परिस्थितियों मे, साहसपूर्ण द्वितीय पचवर्षीय योजना (Bold Second Five Year Plan) के निर्माण मे एक सरचनात्मक आधार विकसित करने हेतु महालनोबिस मॉडल ने रचनात्मक भूमिका सम्पादित की है। अपनी यान्त्रिक विधियो के बावजूद, अत्यधिक भ्रामक स्थिति वाले समय मे, यह मॉडल भारतीय नियोजन को एक साकार दिशा देने मे समर्थ हो सका है।

कुछ अन्य दृष्टिकोण
(Some Other Approaches)

आर्थिक विकास के सम्बन्ध मे निम्नलिखित अर्थशास्त्रियो के दृष्टिकोणो का अध्ययन भी उपयोगी है—

(1) नर्कसे (Nurkse)
(2) रोडन (Rodan)
(3) हर्षमैन (Hirschman)
(4) मिन्ट (Myint)
(5) लेबेन्स्टीन (Leibenstein)

नर्कसे का दृष्टिकोण (Approach of Nurkse)

प्रो रेगना नर्कसे ने अपनी पुस्तक 'Problems of Capital Formation in Under developed Countries' मे अर्द्ध विकसित देशो मे पूंजी के महत्त्व, पूंजी-निर्माण, सन्तुलित विकास आदि से सम्बन्धित विषयो एव छिपी हुई बेरोजगारी और उसके द्वारा पूंजी निर्माण के सम्बन्ध मे विचार प्रकट किए हैं।

प्रो नर्कसे के विकास सम्बन्धी विचारो का सारांश यह है कि अर्द्ध विकसित अथवा अल्प विकसित देश आर्थिक विषमता से ग्रस्त है, इस विषमता को दूर करने के लिए सन्तुलित विकास (Balanced Growth) आवश्यक है और यह सन्तुलित विकास तभी सम्भव है जब अतिरिक्त जन शक्ति का प्रयोग करके पूंजी प्राप्त की

जाए। प्रो नर्कसे के अनुसार "अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी की मात्रा बहुत कम होती है।" ये देश अपनी राष्ट्रीय आय का 5 से 8% तक ही बचा पाते हैं। इसके विपरीत विकसित देशों मे बचत की मात्रा कुल राष्ट्रीय आय की 10 से 30% तक होती है। अर्द्ध विकसित देशो मे इस शोचनीय स्थिति का मुख्य कारण है बचत की पूर्ति को भी कमी रहती है और बचत की माँग की भी कमी रहती है। बचत की पूर्ति की कमी इसलिए रहती है क्योंकि प्रायः उसकी माँग कम होती है। इस प्रकार माँग इसलिए कम होती है क्योंकि उसकी पूर्ति कम होती है। यह आर्थिक विषमता का चक्र (Vicious circle) निरन्तर चलता रहता है जो अर्द्ध-विकसित देशो को आर्थिक विकास की ओर अग्रसर नही होने देता। प्रो नर्कसे के अनुसार, "आर्थिक दुष्चक्र की प्रक्रिया मे कम पूँजी के कारण विनियोजन कम होता है। फलस्वरूप उत्पादकता कम होती है। कम उत्पादकता के कारण लाभ कम होता है परिणामस्वरूप, उत्पादन कम होता है। उपरोक्त उत्पादन से रोजगार के अवसर कम रहते हैं और इसीलिए आय कम होती है। परिणामत बचत कम होती है और पूँजी-निर्माण भी कम होता है।"

प्रो नर्कसे ने अर्द्ध-विकसित देशो की इस आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सन्तुलित विकास पर बहुत बल दिया है। उनका सबसे अधिक आग्रह कृषि-क्षेत्रो की अतिरिक्त जन-शक्ति (Surplus Man-power) को अन्य पूँजीगत परियोजनाओं मे नियोजित करके प्रभावपूर्ण बचत (Effective Saving) और पूँजी निर्माण की अभिवृद्धि पर है। नर्कसे के कथनानुसार कृषि करने की तकनीक को स्थिर रखते हुए भी कृषि उत्पादन मे कमी किए बिना, कृषि मे नियोजित जनसंख्या का बहुत बडा भाग कृषि क्षेत्र से हटाया जा सकता है। "वहाँ समान कृषि उत्पादन बिना तकनीक मे परिवर्तन किए हुए कम श्रम शक्ति से भी प्राप्त किया जा सकता है।" किन्तु नर्कसे की यह मान्यता है कि इस अनउत्पादक श्रम शक्ति को उत्पादक श्रम-शक्ति मे बदलने की समस्त प्रक्रिया की वित्त-व्यवस्था स्वय इसमे से ही की जानी चाहिए। ऐसा होने पर ही देश मे बचत और पूँजी निर्माण की मात्रा म वृद्धि हो सकेगी। इसीलिए नर्कसे ने ग्रामीण छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised Unemployment) को छिपी हुई बचत की सम्भावनाएँ (Disguised Saving Potential) माना है। इस प्रकार उन्होंने अर्द्ध-विकसित देशो की अप्रयुक्त जन-शक्ति के उपयोग द्वारा पूँजी-निर्माण पर बल देकर इन देशो मे आर्थिक विकास पर जोर दिया है।

सन्तुलित विकास का विचार
(Concept of Balanced Growth)

प्रो नर्कसे ने आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास पद्धति का प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार, "अर्द्ध-विकसित देशो मे निर्धनता का विषैला चक्र (Vicious circle) व्याप्त रहता है जो आर्थिक विकास को अवरुद्ध करता है। यदि इस दूषित चक्र को किसी प्रकार दूर कर दिया जाए, तो देश का आर्थिक विकास

सम्भव हो सकेगा। निर्धन देशो मे निधनता का यह चक्र मांग और पूर्ति दोनो ओर से क्रियाशील रहता है। पूर्ति पहलू से विचार करें तो *वास्तविक आय की कमी के* कारण बचाने की क्षमता कम होती है। *आय की कमी का कारण*, निम्न उत्पादकता और निम्न *उत्पादकता का कारण पूँजी की स्वल्पता होती है*। पूँजी की कमी बचत के नीचे स्तर का परिणाम होती है। यदि मांग पहलू से विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि आय की कमी के कारण क्रय की क्षमता भी सीमित होती है। इससे मांग कम होती है।" परिणामस्वरूप, उत्पादकों मे विनियोग करने का कम उत्साह होता है। अर्थव्यवस्था की उत्पादकता विनियोजित पूँजी पर निर्भर करती हैं। विनियोगो की कमी के कारण उत्पादन और आय का स्तर कम होता है। पुन वही चक्र प्रारम्भ होना है। इस प्रकार इन दूषित चक्रो के कारण, अर्द्ध-विकसित देशो के *विकास मे बाधाएँ उपस्थित होती है।*

आर्थिक विकास के लिए इस विषैले चक्र को दूर करना आवश्यक है। *विनियोग सम्बन्धी व्यक्तिगत निर्णयो द्वारा सीमित* क्षेत्रो मे अल्प माना मे किए गए विनियोग से समस्या का समाधान नही हो सकता है, प्रो नर्कसे के मतानुसार, "विषैले चक्रो को दूर करने के लिए विभिन्न उद्योग विस्तृत रूप से एक साथ आरम्भ किए जाने चाहिए जो एक दूसरे के लिए विस्तृत बाजारो की स्थापना करेंगे और एक दूसरे के पूरक होगे।" उनके अनुसार, समस्या का हल इस बात मे निहित है कि 'व्यापक क्षेत्र मे विभिन्न उद्योगो मे एक साथ पूँजी लगाई जाए और बहुत से उद्योगो को एक साथ विकसित किया जाए ताकि सभी एक दूसरे के ग्राहक बन सकें और *सभी का माल बिक सके।*" प्रो *नर्कसे रोजन्स्टेन रोडन* (Roseinstein Rodan) के जूते के प्रसिद्ध कारखाने का उदाहरण देकर सन्तुलित विकास की आवश्यकता पर बल देते हैं। मानलो एक जूते का कारखाना स्थापित किया जाता है। इससे इसमे काम करने वाले श्रमिको, पूँजीपतियो और नियोजको को आय प्राप्त होगी किन्तु वे समस्त आय जूतो को खरीदने के लिए ही तो नही व्यय करेंगे। वे अन्य वस्तुएँ भी क्रय करेंगे। इसी प्रकार साथ ही इस उद्योग के श्रमिक ही सारे जूते नही खरीद सकते। दूसरे उद्योगो के श्रमिक ही तो अतिरिक्त जूते खरीदेंगे। यदि *अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो या उद्योगो का विकास नही किया जाएगा तो यह कारखाना* असफल हो जाएगा। अन यह कठिनाइ एक साथ ही अनेक पूरक उद्योगो की स्थापना करने से हल हो सकती है। जो एक दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं। इस सम्बन्ध मे प्रो नकर्से ने लिखा है कि 'अधिकाँश उद्योग जो जन उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं इस अर्थ म पूरक होने हैं कि वे एक दूसरे के लिए बाजार की व्यवस्था करके परस्पर सहारा देते हैं।" उनके अनुसार शारीरिक विकास के लिए सन्तुलित आहार (Balanced diet) *जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास के* लिए सन्तुलित विकास (Balanced Growth) पद्धति आवश्यक है।

प्रो नर्कसे ने सन्तुलित विकास की धारणा का अकुर जे बी से (J B Say) के इस कथन से प्राप्त किया है कि पूर्ति अपनी मांग स्वय बना लेती है (Supply

creates its own demand)। उन्होने इस नियम सम्बन्धी जे. एस. मिल की व्याख्या को उद्धृत किया है कि "प्रत्येक प्रकार की उत्पादन वृद्धि यदि निजी हित द्वारा निर्देशित अनुपात मे सब प्रकार की उत्पत्ति मे गलत गणना के बिना विभाजित की जाए तो न केवल स्वय अपनी मांग का निर्माण कर लेती है, बल्कि उसे अपने साथ रखती है।" लेकिन किसी व्यक्तिगत उद्यमी द्वारा किसी विशिष्ट उद्योग मे बडी मात्रा मे लगाई गई पूँजी बाजार के छोटे आकार के कारण लाभहीन हो सकती है। किन्तु विभिन्न उद्योगो मे व्यापक क्षेत्र मे एक साथ सुव्यवस्थित रूप से पूँजी विनियोग से बाजारो के आकार का विस्तार होता है और इससे आर्थिक कुशलता के सामान्य स्तर मे सुधार होता है। अत विभिन्न उद्योग विस्तृत रूप से एक साथ आरम्भ किए जाने चाहिए और विभिन्न प्रकार के उद्योगो में पूँजी विनियोग की लहर (a wave of capital investments in a number of different industries) उठनी चाहिए। ऐसे होने पर उद्योग एक दूसरे के पूरक होंगे, जिससे विस्तृत बाजारो की स्थापना होगी और तीव्रता से आर्थिक विकास होगा। इसे ही नर्कसे ने 'सन्तुलित विकास' का नाम दिया है। अत 'सन्तुलित विकास' का आशय उत्पादन-क्रियाओ मे विभिन्न प्रकार के सन्तुलन से है। यह सन्तुलन दो प्रकार का हो सकता है—प्रथम सम्मुखी (Forward) एव द्वितीय विमुखी (Backward)। सम्मुखी सन्तुलन के अनुसार कृषि-उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ उन उद्योगो मे भी विस्तार आवश्यक है जो इसके अतिरिक्त उत्पादन को चाहेगे। विमुखी सन्तुलन के अनुसार यदि किसी उद्योग का विस्तार करना है तो इस उद्योग के सचालन के लिए आवश्यक कच्चा माल, ईंधन, यन्त्रपोकरण आदि से सम्बन्धित उद्योगो का भी विकास किया जाना चाहिए।

सन्तुलित विकास के प्रभाव—सन्तुलित विनियोग से आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पडता है। इसके साथ ही सन्तुलित विकास के कारण वाह्य मितव्ययिताओ (External economies) मे वृद्धि होती है। ये मितव्ययिताएँ दो प्रकार की होती हैं, प्रथम, क्षैतिजीय मितव्ययिताएँ (Horizontal economies) एव द्वितीय, उद्ग्रीय मितव्ययिताएँ (Vertical economies)। वस्तुत आकार प्रकार वाले विभिन्न उद्योगो मे बडे पैमाने पर पूँजी विनियोग से उद्योगो का उद्ग्रीय और क्षैतिग्रीय एकीकरण सम्भव होता है और इससे भी दोनो प्रकार की मितव्ययिताओ का निर्माण होता है। श्रम के अधिक अच्छे विभाजन, पूँजी, कच्चे माल और तकनीकी कुशलता का सामूहिक प्रयोग, बाजारो का विस्तार तथा आर्थिक और सामाजिक ऊपरी पूँजी (Economic and Social overhead capital) का अधिक अच्छा और सामूहिक उपयोग आदि के कारण भी उत्पादक इकाइयो को लाभ होता है।

सन्तुलन के क्षेत्र—प्रो नर्कसे द्वारा प्रतिपादित, सन्तुलित विकास का यह सिद्धान्त विकास प्रक्रिया मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे सन्तुलन की आवश्यकता पर बल देता है। कृषि और उद्योगो के विकास मे समुचित सन्तुलन रखा जाना

चाहिए, क्योंकि ये दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र (Domestic Sector) और विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector) मे भी सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिए। विकास की वित्त-व्यवस्था मे निर्यात-आय (Export earnings) महत्त्वपूर्ण है। अत घरेलू क्षेत्र के साथ साथ निर्यात क्षेत्र मे पूँजी-विनियोग किया जाना चाहिए। प्रो नर्कसे के अनुसार "सन्तुलित विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अच्छा आधार है।" उनके विचार से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढाने के लिए यातायात सुविधाओ मे सुधार, उनकी लागत मे कमी, व्यापार बाधाओ की समाप्ति और मुक्त व्यापार क्षेत्रो का विकास किया जाना चाहिए। इससे विकासशील देश परस्पर एक दूसरे के लिए बाजारो का कार्य करेंगे और उनका विकास होगा। कृषि और उद्योगो, घरेलू और निर्यात क्षेत्रो के सन्तुलित विकास के समान ही भौतिक-पूँजी और मानवीय-पूँजी मे साथ साथ विनियोग किया जाना चाहिए। दोनो के सन्तुलित विकास के प्रयत्न किए जाने चाहिए क्योकि 'भौतिक पूँजी' मे विनियोग तब तक व्यर्थ रहेगा जब तक कि उसके सचालन के लिए जनता शिक्षित और स्वस्थ न हो। इसी प्रकार प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाओ और आर्थिक तथा सामाजिक ऊपरी सुविधाओ मे भी सन्तुलित विनियोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार नर्कसे ने तीव्र आर्थिक विकास हेतु सन्तुलित विकास की शैली का प्रतिपादन किया है जिसके अनुसार "अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे तथा एक उद्योग का विकास करने के लिए उससे सम्बन्धित अन्य उद्योगो मे एक साथ विनियोग किया जाना चाहिए।" कुछ क्षेत्रो या उद्योगो पर ही ध्यान देने से अन्य उद्योग 'अल्प विकसित सन्तुलन' से ग्रस्त रहेगे और विकास मे बाधाएँ उपस्थित होगी। प्रो ए डब्ल्यू लेविस के अनुसार 'विकास कार्यक्रमो मे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो का एक साथ विकास होना चाहिए ताकि उद्योग और कृषि के मध्य तथा घरेलू उपभोग के लिए उत्पादन और निर्यात के लिए उत्पादन मे उचित सन्तुलन रखा जा सके।"

सरकार एव सन्तुलित विकास—अर्द्ध विकसित देशो मे निजी उपक्रम के द्वारा व्यापक क्षेत्र मे विभिन्न परियोजनाओ मे पूँजी-विनियोग की लहर का एक साथ सचार किया जाना दुष्कर कार्य है। इसलिए सन्तुलित विकास मे राज्य द्वारा विकास प्रक्रिया के आयोजन, निर्देशन एव समन्वय के लिए पर्याप्त स्थान है। सरकार से यह आशा की जाती है कि वह उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो मे एक साथ विनियोजन का आश्वासन दे। अत सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय नियोजन आवश्यक होना चाहिए। किन्तु नर्कसे के अनुसार "सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय आर्थिक नियोजन अनिवार्य नही है। सरकारी नियोजन के पक्ष मे कई महत्त्वपूर्ण कारण हैं लेकिन सन्तुलित विकास उनमे से कोई कारण नही है।"

नर्कसे की यह भी मान्यता है कि निजी उपक्रम द्वारा भी वांछनीय प्रभाव कुछ प्रेरणाओ और प्रोत्साहन से प्राप्त किए जा सकते है। उन्होने बतलाया है कि सामान्य मूल्य प्रेरणाओ द्वारा अल्प अश मे सन्तुलित विकास किया जा सकता है किन्तु बढती हुई जनसख्या की बढती हुई आवश्यकताओ के साथ सन्तुलित विकास

की नीची स्तर भी सह विस्तार को प्राप्त कर लेती है। प्रारम्भिक विनियोग के मौद्रिक एव अन्य प्रभावो के द्वारा विभिन्न उद्योगो मे पूँजी-विनियोग की नई लहर दौडाई जा सकती है। इस प्रकार प्रो नर्कसे का सन्तुलित-विकास का सिद्धान्त निजी उपक्रम वाली अर्थव्यवस्था मे लागू होता है। उनके सिद्धान्त मे बाजार विस्तार, बाह्य मितव्ययताओ और मूल्य प्रेरणाओ द्वारा ही सतुलित विकास पर बल दिया गया है। उनके मतानुसार, "आवश्यक विनियोग के लिए सार्वजनिक या निजी क्षेत्र का उपयोग प्रधानत प्रशासकीय कुशलता का प्रश्न है।"

नर्कसे के विचारो की आलोचना—नर्कसे के सन्तुलित विकास के विचारो की हर्षमैन, सिगर, कुरिहारा आदि ने निम्न आधारो पर आलोचनाएँ की हैं—

1 सन्तुलित विकास के अन्तर्गत बहुत सी उत्पादन इकाइयो या अनेक उद्योगो का एक साथ विकास करने के लिए बडी मात्रा मे पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्ध कुशलता आदि की आवश्यकता होगी। अर्द्ध-विकसित देशो मे एक साथ प्रयोग के लिए इन साधनो का अभाव होता है। ऐसी स्थिति मे, इन उत्पादन इकाइयो की स्थापना से, इनकी मौद्रिक और वास्तविक लागत मे वृद्धि होगी और उनका मितव्ययतापूर्वक सचालन कठिन हो जाएगा।

2 प्रो किन्डल बर्जर के अनुसार, नर्कसे के विकास प्राल्प (Model) मे नए उद्योगो की स्थापना की अपेक्षा वर्तमान उद्योगो म लागत कम करने की सम्भावनाओ पर ध्यान नही दिया गया है।

3 नर्कसे ने विभिन्न उद्योगो को परिपूरक माना है, किन्तु हस सिगर (Hans Singer) के अनुसार ये परिपूरक न होकर प्रतिस्पर्द्धी होते हैं। जैसा कि जे मारकस फ्लेमिग (J Marcus Flemming) ने लिखा है—"जहाँ सन्तुलित विकास के सिद्धान्त मे यह माना जाता है कि उद्योगो के मध्य अधिकाँश सम्बन्ध परिपूरक हैं साधनो की पूर्ति की सीमाएँ प्रकट करती हैं कि यह सम्बन्ध अधिकतर प्रतिस्पर्द्धात्मक है।"

हर्षमैन (Hirschman) के अनुसार "सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकास सिद्धान्त के रूप मे असफल है।" विकास का आशय, एक प्रकार की अर्थव्यवस्था से अन्य प्रकार की और उन्नत अर्थव्यवस्था मे परिवर्तन की प्रक्रिया से है, किन्तु 'सन्तुलित विकास' का आशय एक पूर्णरूप से नई और स्वय सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की ऊपर से स्थापना से है। हर्षमैन के मतानुसार, यह विकास नही है, यह तो किसी पुरानी वस्तु पर नई वस्तु की कलम लगाना भी नही हैं। यह तो आर्थिक विकास का पूर्णरूप से द्वैध तरीका है।"

4 अर्द्ध-विकसित देशो मे उत्पादन के साधन अनुपात मे नही होते। कुछ देशो मे श्रम अत्यधिक है तथा पूँजी एव साहसी कुशलता की कमी है। कुछ देशो मे श्रम और पूँजी दोनो की कमी है किन्तु अन्य साधन पर्याप्त मात्रा मे हैं। सन्तुलित विकास की धारणा को व्यावहारिक रूप देने मे ऐसी स्थिति बडी बाधक है।

5. सन्तुलित विकास का सिद्धान्त इस मान्यता के आधार पर चलता है कि

अर्द्ध-विकसित देश बहुत ही प्रारम्भिक स्थिति से विकास आरम्भ करते है। किन्तु वस्तुत ऐसा नही होता। वास्तव मे प्रत्येक अर्द्ध-विकसित राष्ट्र एक ऐसी अवस्था से विकास की शुरुआत करता है जहाँ पूर्व-विनियोग या पूर्व विकास की छाया विद्यमान रहती है। ऐसी स्थिति मे विनियोग के कुछ ऐसे वांछित कार्यक्रम होते हैं जो स्वय सन्तुलित नही होते, किन्तु जो वर्तमान असन्तुलन के पूरक के रूप मे असन्तुलित विनियोग का स्वरूप ग्रहण करते हैं।

6 कुरिहारा के अनुसार "सन्तुलित विकास निजी उपक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए वांछनीय नहीं है किन्तु जहाँ तक अर्द्ध-विकसित देशो का सम्बन्ध है, यह स्वय इसके लिए ही वांछनीय है। नर्कसे की अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था के सीमित बाजार और निम्न वास्तविक आय द्वारा निजी व्यक्तियो की विनियोग की प्रेरणा को बाधा पहुँचाने की शिकायत अनावश्यक होगी यदि क्षमता–विस्तारक और आय उत्पादक प्रकृति के स्वशासी सार्वजनिक विनियोग को महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने दी जाएगी।'

7 सन्तुलित विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोग के लिए बडी मात्रा मे साधन होने चाहिए। किन्तु अर्द्ध विकसित देशो के साधन सीमित होते है यदि इन थोडे से साधनो को ही विभिन्न और अधिक क्षेत्रो मे फैलाया जाएगा, तो उनमे वांछनीय गति नही आ पाएगी और सम्भव है कि किसी भी क्षेत्र मे प्रगति नहीं हो पाए तथा साधनो का अपव्यय हो। अत सन्तुलित विकास का सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है'—एक सौ पुष्प भी उस भूमि पर उग सकते हैं जहाँ पोषक तत्वो के अभाव मे एक पौधा भी मुर्झा सकता है।' डॉ. हस सिंगर के अनुसार, 'सन्तुलित विकास की नीति को अपनाने के लिए जिन साधनो की आवश्यकता होती है उनकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि उनको जुटाने वाले देश वास्तव मे अर्द्ध-विकसित नही हो सकते।" इसीलिए उन्होने इन देशों के लिए 'Think Big' को तो उचित बतलाया है, किन्तु 'Act Big' के सुझाव को अबुद्धिमत्तापूर्ण बतलाया है।

8 सन्तुलित विकास के लिए केन्द्रीय नियोजन, निर्देशन आदि आवश्यक है जिसका अर्द्ध विकसित देशो के विकास मे पर्याप्त महत्त्व है। नर्कसे ने सन्तुलित विकास के लिए इस बात को पूर्णरूप से नही स्वीकारा है।

9 नर्कसे का सन्तुलित विकास का सिद्धान्त वस्तुतः विकसित देशो के अवसाद साम्य (Slump Equilibrium) की स्थिति की ही व्याख्या करता है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो म अर्द्ध-विकास साम्य की स्थिति होती है और यह उसकी व्याख्या नही करता है।

वस्तुत सन्तुलित विकास का सिद्धान्त कीन्स के व्यापार चक्र के सिद्धान्त का ही परिवर्तित रूप है। कीन्स के इस सिद्धान्त के अनुसार "एक साथ बहुमुखी विनियोग से आर्थिक क्रियाओ मे सन्तुलित पुनरुत्थान (Balanced Recovery) लाया जा सकता है क्योंकि वहाँ उद्योग, मशीनें, प्रबन्धक, श्रमिक तथा उपभोग की

अ दतें आदि सब कुछ प्रभावपूर्ण माँग की कमी के कारण अस्थायी रूप से स्थगित कार्यों को पुन सचालित करने की प्रतीक्षा मे विद्यमान होते हैं।" किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे समस्या माँग की कमी की नही, साधनो के अभाव की होती है, जिसके कारण व्यापक विनियोग दुष्कर होता है।

10 विभिन्न देशो के आर्थिक विकास का इतिहास भी यही स्पष्ट करता है कि इनमे आर्थिक विकास का स्वरूप असन्तुलित ही रहा है। इगलैण्ड मे सर्वप्रथम, वस्त्र उद्योग, अमेरिका मे रेलो और जापान मे लोहा एव इस्पात उद्योगो का विकास हुआ, जिससे अन्य उद्योगो के विकास को दम मिला। जे. आर टी हेग के अनुसार *"सन्तुलित विकास अन्तिम परिणाम था, जो नवीन क्रियाओ के नवीन उत्थान पतन* तथा परिवर्तनीय साधनो के सयोग द्वारा उ पादित तथा घोषित हुआ। यह एक ऐसी घटना नही है जो परस्पर पोषक क्षेत्रो (Mutually Supporting Sectors) के एक साथ बहुमुखी विस्तार के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हो।"

रोजेन्स्टीन रोडान की विचारधाराएँ
(Approach of Roseinstein Rodan)

रोजेन्स्टीन रोडान ने भी सन्तुलित विकास का समर्थन किया है, परन्तु वे चाहते हैं कि यह सन्तुलित विकास-पद्धति बड धक्के' (Big Push) के रूप मे अपनाई जाए। 'बडे धक्के के सिद्धान्त' (Theory of Big Push) के अनुसार स्थिर अर्थव्यवस्था (Stagnant Economy) की प्रारम्भिक जडता को समाप्त करने के लिए और इसे उत्पादन तथा आय के उच्च स्तरो की ओर बढने के लिए न्यूनतम *प्रयत्न या 'बडे धक्के' (Big Push) की आवश्यकता है। यह बडा धक्का तब होता है,* जब एक साथ ही विभिन्न प्रकार की कोई पूरक परियोजनाओ को प्रारम्भ किया जाए।

रोडान के मतानुसार, "अर्द्ध-विकसित अथवा अल्प विकसित देशो में आर्थिक व सामाजिक ऊपरी सुविधाओ (Social and Economic overheads) की नितान्त कमी होती है जिनकी पूर्ति करने की न तो निजी साहसियो मे क्षमता होती है और न ही इच्छा।' अत राज्य को चाहिए कि वह इन ऊपरी सुविधाओं (Social and Economic overheads) अर्थात्, यातायात, सचार, शक्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंक, ट्रेनिंग आदि मे अधिक मात्रा मे धन लगाए और इस प्रकार निजी विनियोजको तथा औद्योगीकरण के इच्छुक लोगो को उद्योग खोलने की प्रेरणाएँ *और सुविधाएँ प्रदान करे।* प्रो रोडान के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देशो मे धीरे-धीरे विकास करने की पद्धति अपनानी ठीक नही है। इन देशो मे वास्तविक विकास तो केवल 'बडे धक्के' (Big Push) से ही सम्भव है क्योंकि तभी हम 'उत्पादन की बाह्य मितव्ययता' अथवा उत्पत्ति वृद्धि के नियम के लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

"यदि विकास की किसी भी आयोजना मे सफल होना है तो इसके लिए एक न्यूनतम मात्रा मे विनियोजन आवश्यक होगा। किसी देश को स्वय स्फूर्त विकास की स्थिति मे पहुँचने के लिए प्रयत्न करना भूमि से हवाई जहाज के उडने के सम न है। हवाई जहाज को नभ मे उड़ान के लिए एक *निश्चित गति पकडना आवश्यक*

है। धीरे धीरे बढ़ने से काम नहीं चल सकता। इसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने और अर्थव्यवस्था को स्वयं स्फूर्त दशा में पहुँचने के लिए बड़े धक्के के रूप में एक निश्चित मात्रा में समस्त क्षेत्रों में विनियोजन अनिवार्य है।"

'विकास की बाधाओं को लांघने के लिए बड़ा धक्का ही आवश्यक है। एक निश्चित न्यूनतम मात्रा से कम मात्रा में उत्साह और कार्य से काम नहीं चल सकता। छोटे-छोटे और यदा कदा किए जाने वाले प्रयत्नों से विकास सम्भव नहीं हो सकता। विकास का वातावरण तभी उत्पन्न होता है जब एक न्यूनतम मात्रा का विनियोजन एक न्यूनतम गति से किया जाय।"

प्रो रोडान के 'बड़े धक्के के सिद्धान्त' के पक्ष में प्रमुख तर्क अर्द्ध-विकसित देशों में बाह्य मितव्ययताओं के अभाव पर आधारित है। बाह्य मितव्ययताओं का आशय उन लाभों से है जो समस्त अर्थव्यवस्था या कुछ क्रियाओं या उपक्रमों को मिलते हैं किन्तु जो विनियोक्ता इकाइयों को प्रत्यक्ष रूप में कोई प्रत्याय (Returns) नहीं देते हैं। पूर्ति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बाह्य मितव्ययताएँ यातायात, शक्ति आदि के रूप में सामाजिक ऊपरी सुविधाएँ (Social overhead facilities) हैं जो अन्य क्षेत्रों में भी विनियोग के अवसर बढ़ाते हैं। रोजेन्स्टीन रोडान ने निम्नलिखित तीन प्रकार से बाह्य मितव्ययताओं और अविभाज्यताओं (*Indivisibilities*) में भेद किया है—

(i) उत्पादन-कार्य में विशेष रूप से सामाजिक ऊपरी पूँजी की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibility of production function, specially in the supply of social overhead capital)

(ii) माँग की अविभाज्यता या माँग की पूरक प्रकृति (Indivisibility of demand or the complementary character of demand)

(iii) *बचत की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibility in the supply* of savings)

सामाजिक ऊपरी पूँजी की पूर्ति की अविभाज्यता स्वाभाविक है, क्योंकि इसका न्यूनतम आकार आवश्यक रूप से ही बड़ा (necessarily large minimum size) होता है। उदाहरणार्थ, आधी रेल लाइन निर्माण से कोई लाभ नहीं होगा, अत पूरी रेल लाइन के निर्माण के लिए आवश्यक मात्रा में विनियोग करना अनिवार्य है। साथ ही, इस प्रकार का विनियोग प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के पूर्व होना चाहिए। निर्यात के लिए कृषि क्षेत्र के विकास के लिए विनियोग तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि खेतों से बन्दरगाहों पर कृषि-उपज को पहुँचाने के लिए सड़क का निर्माण नहीं कर दिया जाता। रोजेन्स्टीन रोडान का माँग की अविभाज्यता का विचार इस तथ्य पर आधारित है कि एकाकी विनियोग परियोजना को बाजार की कमी की भारी जोखिम को उठाना पड़ सकता है। इसके विपरीत, यदि कई पूरक परियोजनाओं को एक साथ प्रारम्भ किया जाता है तो वे एक दूसरे के लिए बाजार प्रस्तुत कर देते हैं और उनके असफल होने की सम्भावना नहीं रहती है। रोजेन्स्टीन रोडान इस बात को एक जूते के कारखाने के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते

हैं। मानलो कि एक स्थैतिक और बंद अर्थव्यवस्था मे एक जूतो का कारखाना स्थापित किया जाता है जिसमे 100 श्रमिको को जो पहले अर्द्ध-नियोजित थे काम पर लगाया जाता है। उनको दी जाने वाली मजदूरी उनकी आय होगी किन्तु इसका बहुत थोडा भाग ही जूतो को खरीदने मे व्यय किया जाएगा। ऐसी अर्थव्यवस्था मे क्योंकि *अतिरिक्त क्रय-शक्ति का कोई साधन नही है और निर्यात की भी कोई* सम्भावना नही है, बाकी बचे हुए जूतों की बिक्री नही हो पाएगी और कारखाना असफल हो जाएगा। किन्तु स्थिति उस समय एकदम भिन्न और अधिक अच्छी होगी यदि एक नही अपितु 10 000 पहले के अर्द्ध-नियोजित श्रमिको को काम पर लगाने वाले 100 कृषि और औद्योगिक उपक्रम स्थापित किए जाएँ जिनमे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र की तुलना मे उत्पादकता के उच्च स्तर पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न की जाएँ। ऐसी स्थिति मे उत्पन्न की गई अतिरिक्त आय अतिरिक्त उत्पादन को खरीदने के काम मे लाई जा सकेगी और कुल विनियोगो की सफलता सुनिश्चित हो जाएगी।

'बडे धक्के के सिद्धान्त के सन्दर्भ मे तीसरी अर्थात् 'बचत की पूर्ति' की अविभाज्यता की धारणा का उदय इस बात से होता है कि विशाल न्यूनतम विनियोग कार्यक्रमो की वित्त व्यवस्था के लिए ऊँची न्यूनतम बचत अनिवार्य है। रोजेन्स्टीन रोडान के मतानुसार 'आय के नीचे स्तर वाली अर्द्ध विकसित अवस्थाओ मे बचत की ऊँची दरो को प्राप्त करने का एक मात्र तरीका विनियोगो मे वृद्धि ही है जिसे इन देशो मे यहाँ के अविकसित और अप्रयुक्त जन शक्ति तथा अन्य साधनो को गतिशील बना कर ही प्राप्त किया जा सकता है।"

इस प्रकार उपरोक्त अविभाज्यताओ का पूरा लाभ उठाने और बाह्य-मितव्ययताओ से लाभान्वित होने के लिए विशाल मात्रा मे विभिन्न क्षेत्रो मे पूँजी विनियोग करना चाहिए, अर्थात् अर्थव्यवस्था को बडा धक्का' विकास की ओर लगाना चाहिए। प्रो नर्कसे ने भी रोजेन्स्टीन रोडान की उपरोक्त अविभाज्यताओ के *आधार पर ही सतुलित विकास की पद्धति का समर्थन किया है।* बडे धक्के के सिद्धान्त मे सस्थागत परिवर्तन पर भी जोर दिया गया है। किन्तु इस सिद्धान्त को भी पूर्ण नहीं माना गया है। अर्द्ध विकसित देशो के औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के कार्यक्रम मे 'बडा धक्का' (Big push) लगाना बडा कठिन है क्योंकि, इन देशो के साधन अत्यल्प होते हैं। इसके अतिरिक्त सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के विरुद्ध जो आलोचनाएँ की जाती हैं वे सामान्यतया इस सिद्धान्त पर भी लागू होती हैं।

हर्षमैन की विचारधारा (Approach of Hirschman)

असतुलित विकास की शैली—नर्कसे की सतुलित विकास की शैली के विपरीत, ए ओ हर्षमैन (A O. Hirschman) ने *आर्थिक विकास के लिए* असतुलित विकास की शैली को अपनाने का सुझाव दिया है। हर्षमैन के 'असतुलित विकास के सिद्धान्त' के अनुसार, "अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे विनियोजन नही

करके कुछ ऐसे चुने हुए क्षेत्रों मे सीमित साधनो का उपयोग किया जाता है जिससे उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रो पर भी पड़ता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा शृखलाबद्ध विधि द्वारा आर्थिक विकास होता है। अर्द्ध-विकसित देशो म साधनो का अभाव रहता है और यह सम्भव नही होता कि बहुमुखी विकास के लिए सभी क्षेत्रो मे विशाल मात्रा मे इन साधनो का विनियोजन कर सकें। इसके अतिरिक्त इन सीमित साधनो को सभी क्षेत्रो मे फैला दिया जाए तो उनका उतना प्रभाव भी नही पडेगा। अत हर्षमैन ने यह मत व्यक्त किया है कि अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रो या उद्योगो मे विनियोजन करने से, विनियोग के नए अवसर उत्पन्न होगे और इससे आगे आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त होगा। उन्होने लिखा है कि 'विकास इसी प्रकार आगे बढा है जिसके अनुसार आर्थिक वृद्धि अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो से दूसरे क्षेत्रो से दूसरे क्षेत्रो मे, एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे और एक फर्म से दूसरी फर्म म पहुँचाई गई है।' वह विकास को असतुलनो की एक शृखला (Chain of dis-equilibria) मानते हैं, जिन्हे समाप्त करने की अपेक्षा बनाए रखा जाना चाहिए। हर्षमैन के मतानुसार पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था मे जानबूझ कर असतुलन उत्पन्न करना, अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास को प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि है।

हर्षमैन के अनुसार विश्व के किसी भी देश में असतुलित विकास नही हुआ है। आधुनिक विकसित देश भी विकास के वर्तमान स्तर पर सतुलित विकास शैली द्वारा नही पहुँचे हैं। सयुक्तराज्य अमेरिका की सन् 1950 की अर्थव्यवस्था की, सन् 1850 की अर्थव्यवस्था से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उसके कई क्षेत्र विकसित हुए हैं किन्तु पूरी शताब्दी मे सभी क्षेत्र एक ही दर से विकसित नही हुए हैं। अत अर्द्ध-विकसित देशो के विकास के लिए भी असतुलित विकास की पद्धति उपयोगी है। हर्षमैन की यह भी मान्यता है कि 'यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढते रहना है तो विकास की नीति का उद्देश्य तनाव (Tension), असनुपात (Dispro-portions) और असाम्य बनाए रखें। आदर्श स्थिति वह है, जबकि एक असाम्य विकास के प्रयत्नो के लिए प्रेरित करें जिससे पुन इसी प्रकार का असाम्य उत्पन्न हो और इसी प्रकार चलता रहे।"

उनके अनुसार नई परियोजनाएँ पूर्व निर्धारित परियोजनाओ द्वारा सृजित बाह्य मितव्ययताओ को हस्तगत (Appropriate) कर लेती हैं और बाद वाली परियोजनाओ के उपयोग के लिए कुछ बाह्य मितव्ययताओ का स्वय भी सृजन करती हैं। किन्तु कुछ परियोजनाएँ ऐसी होती हैं, जो स्वय सृजित मितव्ययताओ से अधिक का शोषण करती है। इस प्रकार की परियोजनाओ मे लगाई गई पूँजी को 'प्रेरित विनियोग (Induced investment) कहा जाता है क्योंकि उनसे बाह्य मितव्ययताओ को कुल मिलाकर कोई लाभ नही होता है। इसके विपरीत कुछ परियोजनाएँ ऐसी होती हैं जो उपयोग मे लाई गई बाह्य मितव्ययताओ से अधिक मितव्ययताओ का सृजन करती हैं। अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से दूसरे प्रकार की

परियोजनाओं में निजी लाभदायकता (Private profitability) की अपेक्षा अधिक सामाजिक वांछनीयता (Social desirability) होती है। अत विकास-नीति का उद्देश्य प्रथम प्रकार के विनियोगों को रोकना और दूसरे प्रकार के विनियोगों को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार, विकास की आदर्श सरचना एक ऐसा अनुक्रम (Sequence) है, जो साम्य से दूर ले जाता है और इस अनुक्रम में प्रत्येक प्रयत्न पूर्व असाम्य से प्रेरित होता है और जो अपने बारे में नया असतुलन उत्पन्न करता है। इसके लिए पुन प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। पाल एलपर्ट (Paul Alpert) के अनुसार 'अ' उद्योग का विस्तार ऐसी मितव्ययताओं को जन्म देता है जो 'अ' के लिए बाह्य होती है लेकिन जो 'ब' उद्योग को लाभ पहुँचाती हैं। अत 'ब' उद्योग अधिक लाभ में रहता है और इसका विस्तार होता है। 'ब' उद्योग का विस्तार भी अपने साथ मितव्ययताएँ लाता है जिससे उद्योग 'अ' 'स' और 'द' लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक कदम पर एक उद्योग, दूसरे उद्योगों के पूर्वविस्तार द्वारा सृजित बाह्य मितव्ययताओं का लाभ उठाता है और साथ ही दूसरे उद्योगों के लाभ के लिए बाह्य मितव्ययताओं का सृजन करता है। ऐसा बहुधा हुआ है कि रेलवे निर्माण ने विदेशी बाजारों तक पहुँच (Accessibility) उत्पादन करके निर्यात के लिए कपास के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया है। सस्ते घरेलू कपास की उपलब्धि ने सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना में योग दिया है। रेलें वस्त्र उद्योग, निर्यात के लिए कृषि के विकास ने मरम्मत करने वालों और अन्त में मशीनों यन्त्रों के निर्माण के लिए माँग तैयार की है। इसके विस्तार से धीरे-धीरे स्वदेश में इस्पात उद्योगों को जन्म मिला है और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। एक उद्योग द्वारा प्रस्तुत बाह्य मितव्ययताओं के द्वारा दूसरे उद्योगों की स्थापना का क्रम कई अर्द्ध-विकसित देशों में चला है। भारत और ब्राजील का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

असंतुलन की विधि—हर्शमैन के विचारानुसार अर्द्ध विकसित देशों में बुनियादी कमी समाधनों की होती है। पूँजी का भी उतना अभाव नहीं होता, जितना कि उन उद्यमियों का, जो जोखिम सम्बन्धी निर्णय लेकर इन ससाधनों का उपयोग करते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु अधिकाधिक उद्यमियों को विनियोग के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कुछ सीमा तक पूर्व विकास के द्वारा ऐसी परिस्थितियों का सृजन किया जाना चाहिए जिससे नवीन विनियोग लाभदायक और उचित प्रतीत होता हो और वे उसके लिए विवश हो जाएँ। हर्शमैन ने विनियोग के लिए अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है और उनमें से किसी एक के भी द्वारा असतुलन उत्पन्न किया जा सकता है। ये दो क्षेत्र सामाजिक ऊपरी पूँजी (Social Overhead Capital S O C) और प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाएँ (Directly Productive Activities) हैं।

सामाजिक ऊपरी पूँजी द्वारा असंतुलन (Unbalancing with S O C)—सामाजिक ऊपरी पूँजी के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सचार, पानी, विद्युत,

प्रकाश तथा सिंचाई आदि जनोपयोगी सेवाएँ आती हैं। इनमे विनियोग करने से इनका विकास होगा जिससे प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाओ मे भी निजी विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। उदाहरणार्थ, सस्ती बिजली से लघु और कुटीर उद्योगो का विकास होगा। सिंचाई की सुविधाओ से कृषि उद्योग का उचित विकास होगा। सामाजिक *ऊपरी पूँजी मे किए गए विनियोग कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के आदानो* (Inputs) को सस्ता करके इसकी प्रत्यक्ष सहायता करेंगे। जब तक पर्याप्त विनियोगो द्वारा सामाजिक पूँजी सम्बन्धी सस्ती और श्रेष्ठ सेवाओ की उपलब्धि नही होगी, प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे निजी विनियोग को प्रोत्साहन नही मिलेगा। सस्ते यातायात के साधनो और सस्ती विद्युत शक्ति की पर्याप्त उपलब्धि से ही *विभिन्न प्रकार के उद्योग स्थापित हो सकेंगे।* अत सामाजिक ऊपरी पूँजी मे विनियोग द्वारा एक बार अर्थव्यवस्था को असतुलित किया जाए ताकि, उसके सद्‌प्रभावो के कारण बाद मे प्रत्यक्ष उत्पादक-क्रियाओ मे भी विनियोग अधिकाधिक हो और अर्थव्यवस्था का विकास हो। जैसा कि प्रो हर्षमैन ने लिखा है—"सामाजिक ऊपरी पूँजी मे विनियोगो का समर्थन अन्तिम उत्पादन पर इसके प्रत्यक्ष लाभो के *कारण नही किया जाता, अपितु, इसलिए किया जाता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष उत्पादक* क्रियाओं को आने की इजाजत देते है। इस प्रकार प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ(DPA) मे विनियोग की पूर्व आवश्यकता है।"

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ द्वारा असंतुलन (Unbalancing with DPA)—*अर्थव्यवस्था मे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ (DPA) के द्वारा भी असतुलन उत्पन्न किया जा सकता है और उसके द्वारा अर्थ व्यवस्था के विकास का भी प्रयत्न किया* जा सकता है। यदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे प्रारम्भिक विनियोग बढाया जाएगा तो सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C) पर दबाव पडेगा तथा उसकी कमी अनुभव की जाने लगेगी। पर्याप्त सामाजिक ऊपरी पूँजी निर्माण के अभाव मे यदि प्रत्यक्ष-उत्पादक-क्रियाएँ आरम्भ की गई तो उत्पादन लागत बढ जाएगी। इन सब कारणो *से स्वाभाविक रूप से सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C) का भी विस्तार होगा।* इसी प्रकार प्रत्यक्ष उत्पादक-क्रियाओ के प्रारम्भ से होने वाली आय मे वृद्धि और राजनीतिक दबाव से भी सामाजिक ऊपरी पूँजी पर विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

विकास का पथ (Path to Development)—सामाजिक ऊपरी पूँजी (S O C.) से *प्रत्यक्ष उत्पादन-क्रिया* (SOC to DPA) के *प्रथम अनुक्रम* (Sequence) को *हर्षमैन ने सा ऊ पू की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास* (Development via excess capacity of S O C.) और प्र. उ. कि से सा. ऊ पू (From DPA to SOC) के द्वितीय अनुक्रम को सा. ऊ पू की स्वल्पता द्वारा विकास (Development via shortage of SOC) कहा है। प्रथम प्रकार के विकास पथ मे विनियोग अनुक्रम लाभ की आशाओ से और द्वितीय प्रकार के राजनीतिक दबाओ से *होता है, क्योंकि सा. ऊ पू और प्र उ. क्रि. दोनो का ही एक साथ विस्तार नही किया जा सकता।* अत. विकास के लिए किसी एक पथ को चुनना पडता है। दोनो

मार्गों मे से किस मार्ग का अनुसरण किया जाए ? इस सम्बन्ध मे हर्षमैन सा ऊ पू. की स्वल्पता (Development via shortage of SOC) को पसन्द करते है ।[1]

अगली और पिछली श्रृंखलाएँ (Forward and Backward Linkage)— आर्थिक विकास के लिए असतुलन का महत्त्व समझ लेने के पश्चात् अगली समस्या इस बात को ज्ञात करने की है कि किस प्रकार का असतुलन विकास के लिए अधिक प्रभावशाली है । अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्र इतने महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होते हैं कि उनके विकसित होने पर अन्य क्षेत्र स्वयमेव प्रगति करने लग जाते हैं । उदाहरणार्थ, इस्पात कारखानो की स्थापना से पिछली श्रृंखला के प्रभावो (Backward linkage effects) के कारण, कच्चा लोहा, कोयला, अन्य धातु-निर्माण-उद्योग, सीमेन्ट आदि की माँग बढने के कारण इन उद्योगो का विकास होता है । इसी प्रकार आगे की श्रृंखलाओ के प्रभाव (Forward linkage effects) के कारण मशीन निर्माण उद्योग, इजीनियरिंग उद्योग यन्त्र उद्योग तथा सेवाओ को प्रोत्साहन मिलता है । इस प्रकार इस्पात उद्योग की स्थापना से अर्थव्यवस्था को एक गति मिलती है । उत्पादन की पूर्व और बाद वाली अवस्थाओ मे विनियोग बढने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । अत विकास-प्रक्रिया का उद्देश्य ऐसी परियोजनाओ को ज्ञात करना है जिनका अधिकाधिक श्रृंखला-सम्बन्ध प्रभाव हो । पिछली और अगली श्रृंखलाओ का प्रभाव आदान प्रदान (Input-output) सारणियो द्वारा मापा जा सकता है यद्यपि इनके बारे मे अर्द्ध-विकसित देशो मे विश्वसनीय जानकारी नही होती है । ऐसी परियोजनाएँ जिनका श्रृंखला प्रभाव अधिक हो, विभिन्न देशो और विभिन्न समयो मे भिन्न भिन्न होती हैं । लोहा और इस्पात उद्योग इसी प्रकार की एक परियोजना है । हर्षमैन के अनुसार "सर्वोच्च श्रृंखला प्रभाव वाला उद्योग लोहा तथा इस्पात है (The industry with the highest combined linkage score is iron and steel)" किन्तु अधिकतम श्रृंखला प्रभाव वाले लोहे और इस्पात उद्योग से ही औद्योगिक विकास का प्रारम्भ नही हो सकता है क्योंकि, अर्द्ध विकसित देशो मे अन्तर्निर्भरता और श्रृंखला प्रभावो की कमी होती है । इन देशो मे कृषि आदि प्राथमिक उत्पादन उद्योग होते हैं जिनके दोनो प्रकार के प्रभाव निर्बल होते है परिणामस्वरूप, रोजगार या कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे अर्थव्यवस्था पर इनके विकास के प्रभाव बहुत कम होते हैं ।

इसीलिए हर्षमैन 'अन्तिम उद्योग पहले' (Last industries first) की बात का समर्थन करते हैं । इन उद्योगो को 'Import Inclave Industries' भी कहते हैं, जो पिछली श्रृंखला के व्यापक और गम्भीर प्रभाव उत्पन्न करते हैं । वस्तुत पिछली श्रृंखलाओ के प्रभाव जो कई अन्तिम अवस्था वाले उद्योगो (Last stage Industries) के सयुक्त परिणाम होते हैं, अधिक महत्त्व वाले होते हैं । पिछली श्रृंखलाएँ माँग मे वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है । प्रारम्भ मे 'Import Inclave industries' मे

1 *Paul Alpert* : Economic Development-Objectives and Methods, p. 179.

विदेशों से किसी वस्तु के हिस्से मंगाकर देश मे उनको सम्मिलित (Assemble) करने के रूप मे अन्तिम उद्योग स्थापित किए जाने चाहिए। पिछली श्रृंखलाओं के द्वारा बाद मे इनकी माँग मे वृद्धि होने पर इन हिस्सो के उद्योग भी स्वदेश मे ही स्थापित किए जाने चाहिए और इन आयात प्रतिस्थापन करने वाले उद्योगो को संरक्षण या अनुदान (Subsidy) आदि के रूप मे सहायता दी जानी चाहिए।

सक्षेप मे, प्रो. हर्षमैन की 'आर्थिक विकास की असतुलित शैली' को उन्ही के शब्दो मे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—"आर्थिक विकास असमान वृद्धि के मार्ग का अनुसरण करता है कि दबावो, प्रेरणाओं और अनिवार्यताओं के परिणामस्वरूप सतुलन की स्थापना की जाती है कि आर्थिक विकास का कुशलतापूर्ण मार्ग अव्यवस्थित होता है और कठिनाइयो और कुशलताओं, सुविधाओं, सेवाओं और उत्पादो की कमियो तथा कठिनाइयो से युक्त होता है; कि औद्योगिक विकास अधिकांश मे पिछली श्रृंखलाओं के द्वारा आगे बढ़ेगा अर्थात् यह अपना मार्ग अन्तिम स्पर्श (Last touches) से मध्यवर्ती और आधारभूत उद्योगो की ओर लेगा।"

हर्षमैन के दृष्टिकोण का मूल्यांकन (Critical Appraisal of Hirschman's Approach)—हर्षमैन द्वारा प्रतिपादित 'असतुलित विकास का सिद्धान्त' अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक विकास की गति मे तीव्रता लाने का एक उपयोगी उपाय है। विकास के लिए प्रेरणाओं और उसके मार्ग मे आने वाली बाधाओं आदि का इस सिद्धान्त मे उचित रूप से विवेचन किया गया है। पिछली और अगली श्रृंखलाओं के प्रभावों और अन्तिम अवस्था उद्योग (Import Inclave Industries) का विवेचन भी उपादेय है। अर्द्ध-विकसित देशो के लिए अत्यधिक वांछनीय निर्यात सवर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन तथा प्रारम्भिक अवस्थाओं मे उद्योगो को सरक्षण और सहायता पर भी इस सिद्धान्त मे उचित बल दिया गया है। हर्षमैन के इस सिद्धान्त मे न तो रूस जैसी पूर्ण केन्द्रीकृत-नियोजन-पद्धति का समर्थन किया गया है, न ही पूर्णरूप से निजी उपक्रम द्वारा विकास की समर्थता को असदिग्ध माना गया है। सामाजिक ऊपरी पूँजी के विकास मे वह सार्वजनिक उत्तरदायित्व पर बल देता है क्योंकि, निजी-उपक्रम द्वारा इनका वांछित विकास असम्भव है और इसके अभाव मे प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाएँ प्रोत्साहित नही हो सकती। इस प्रकार, हर्षमैन मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष मे प्रतीत होते हैं। जो अर्द्ध-विकसित देशो के सदर्भ मे पूर्ण उपयुक्त विचार हैं।

आलोचना—हर्षमैन के सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई हैं—

1. पाल स्ट्रीटन (Paul Streeten) ने हर्षमैन के उक्त सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है कि "महत्त्वपूर्ण प्रश्न असतुलन उत्पन्न करने का नहीं है बल्कि विकास को गति देने के लिए असतुलन का अनुकूलतम अश क्या हो, कितना और कहाँ असतुलन पैदा किया जाए, महत्त्वपूर्ण बिन्दु (Growing Points) क्या हैं?" इस प्रकार इस सिद्धान्त मे असतुलन की सरचना, दिशा और समय पर पर्याप्त ध्यान केन्द्रित नही हुआ है।

2. *पॉल स्ट्रीटन के अनुसार इस सिद्धान्त मे विस्तार की प्रेरणाओ पर ही* ध्यान दिया गया है तथा असतुलन द्वारा उत्पन्न अवरोधो की अवहेलना की गई है।

3 असतुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रो मे ही विनियोग किया जाता है। इससे प्रारम्भिक अवस्था मे जब तक परिपूरक उद्योगो का विकास नही हो, साधन अप्रयुक्त और निष्क्रय रहते हैं। इस प्रकार आधिक्य क्षमता (Excess Capacity) के कारण एक ओर काफी अपव्यय होता है जब कि दूसरी ओर साधनो के अभाव मे उद्योग स्थापित नही होते।

4 इस सिद्धान्त के अनुसार, एक क्षेत्र मे विनियोगो को केन्द्रित किया जाता है जिससे अर्थव्यवस्था मे असतुलन दबाव और तनाव उत्पन्न हो जाते है। इन्हे दूर करने के लिए दूसरे क्षेत्रो मे विनियोग किया जाता है और इस प्रकार आर्थिक विकास होता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे ये दबाव और तनाव आर्थिक विकास को अवरुद्ध करने की सीमा तक गम्भीर हो सकते हैं।

5 कुछ आलोचको के अनुसार तकनीकी अविभाज्यताओ गणना और अनुमान की त्रुटियो एव माँग तथा पूर्ति की सारणियो के बेलोच स्वभाव के कारण, अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे स्वाभाविक रूप से ही असतुलन उत्पन्न होते रहते है। अत अर्थशास्त्रियो द्वारा नीति के रूप मे यह बताया जाना आवश्यक नही है।

6 इस सिद्धान्त का समाजवादी अर्थव्यवस्थाओ के लिए सीमित महत्त्व है क्योकि वहाँ विनियोग सम्बन्धी निश्चय, बाजार-तन्त्र और प्रेरणाओ द्वारा नही अपितु राज्य द्वारा किए जाते हैं।

7 असतुलित विकास के लिए आवश्यक प्रेरणा तान्त्रिकता (Inducement mechanism) का उपयोग वही व्यावहारिक हो सकता है, जहाँ साधनो मे आन्तरिक लोच और गतिशीलता हो, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे साधनो का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र *मे स्थानान्तरण कठिन होता है।*

8 असतुलित विकास के सिद्धान्त के विरुद्ध सबसे बडा तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि इससे अर्थव्यवस्था मे मुद्रा प्रसारक प्रवृत्तियो को जन्म मिलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे बडी मात्रा मे विनियोग किया जाता है जिससे आय मे वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओ की माँग और मूल्य अपेक्षाकृत बढ जाते हैं। अर्द्ध-विकसित देशो मे इन्हे रोकने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय उपाय भी प्रभावपूर्ण नही हो पाते। इस प्रकार, मुद्रा प्रसारक प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगती हैं।

9 हर्षमैन द्वारा उल्लिखित 'श्रृखला प्रभाव' (Linkage effects) भी अर्द्ध-विकसित देशो मे इतने सक्रिय और प्रभावपूर्ण नही सिद्ध होते।

उपरोक्त सीमाओ के होते हुए भी असन्तुलित विकास की तक्नीक अर्द्ध-विकसित देशो के द्रुत विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है और कई अर्द्ध-विकसित देशो ने विकास के लिए इस युक्ति को अपनाया है। सोवियत रूस ने इस पद्धति को अपना कर अपना द्रुत विकास किया है। *भारतीय योजनाओ मे भी विशेष रूप से*

दूसरी योजना मे इस शैली को अपनाया गया है। योजना मे विशेषरूप से भारी और आधारभूत उद्योगो के विकास को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। सार्वजनिक विनियोगो मे उद्योगो का भाग प्रथम योजना मे केवल 5% से भी कम था। किन्तु द्वितीय योजना मे यह अनुपात बढ कर 19% और तृतीय योजना मे 24 2% हो गया था।

प्रो. मिन्ट की विचारधारा
(Approach of Prof Myint)

प्रो मिन्ट (Myint) के अनुसार विदेशी उद्यमियो द्वारा उपनिवेशो मे अपनाई गई दुर्भाग्यपूर्ण नीतियो ने इन देशो मे विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भ को रोका है। इन देशो मे सचालित खनन और बागान (Mining and Plantation ventures) व्यवसायो मे इनके प्रबन्धको का यह दृष्टिकोण था कि स्थानीय श्रमिको मे विकास क्षमता नही है। अत न्यून आय वाले देशो के श्रमिकों मे प्रचलित आय के स्तर के लगभग बराबर ही मजदूरी दी गई। मजदूरी की यह न्यून दरें जहां पर्याप्त मात्रा मे श्रमिको को आकर्षित नही कर सकी, वहां पर श्रमिको का भारत, चीन आदि कम आय वाले देशो से आयात किया। इस सन्दर्भ मे प्रो मिन्ट ने एल सी. नोवल्स (L C Knowles) के इस कथन का उद्धरण दिया है कि ब्रिटिश उपनिवेश की तीन मातृभूमियां थी—ब्रिटेन, भारत और चीन। इस प्रकार इन उपनिवेशो मे मजदूरी बहुत कम दी गई। प्रो मिन्ट ने सुझाव दिया है कि यदि नियोजको ने इन्हे ऊँची मजदूरी दी होती और स्थानीय श्रमिको की उत्पादकता मे उस स्तर तक वृद्धि के लिए प्रयत्न किए होते जिस स्तर ने इस मजदूरी नीति को लाभदायक बनाया होता, तो सम्भवत उन्होने विकास की गतिविधियो को प्रेरणा दी होती।

प्रो. मिन्ट के विचारानुसार यदि गाँवो मे नई और आकर्षक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुएँ बिक्री के लिए पहुँचाई जाती हैं और अर्थव्यवस्था मे मुद्रा का प्रचलन किया जाता है तो निर्वाह अर्थव्यवस्था (Subsistence Economy) को भी विकास की उत्तेजना मिलती है। नई उपभोक्ता वस्तुओ के परिचय द्वारा विकास की उत्तेजना का विचार मिन्ट के पूर्व भी बतलाया गया था। ये विचार नई आवश्यकताओ के मानव व्यवहार पर प्रभाव के साधारण मनोविज्ञान पर आधारित हैं।

लेबेन्स्टीन की विचारधारा
(Leibenstein's Approach)

प्रो हार्वे लेबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक 'Critical Minimum Effort Thesis' मे आर्थिक विकास से सम्बन्धित बहुत महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए है। अपने इस ग्रन्थ मे लेबेन्स्टेन ने भारत, चीन, इन्डोनेशिया आदि उन अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित देशो की समस्याओ का अध्ययन किया है, जिनमें जनसख्या का घनत्व अधिक है। यद्यपि उनका लक्ष्य इन देशो की समस्याओ को समझाना है, उनका समाधान प्रस्तुत करना नहीं तथापि उन्होने समस्याओ के समाधानार्थ कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय अवश्य सुझाए हैं। लेबेन्स्टेन ने अपनी पुस्तक मे यह अध्ययन किया

है कि अर्द्ध-विकसित देशो के पिछड़ेपन से किस प्रकार मुक्ति पाई जा सकती है। उन्होने अपने ग्रन्थ मे विकास के समस्त घटको और नीतियो को अपनी अध्ययन सामग्री नही बनाया है वरन् उनका मुख्य लक्ष्य उनके 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' (Critical Minimum Effort) के वाद या मत (Thesis) को समझाना रहा है।

लेबेन्स्टेन के मतानुसार दीर्घकालीन स्थाई और स्वय स्फूर्त विकास के लिए यह आवश्यक हैं कि अर्थव्यवस्था मे जो विनियोजन किया जाए वह इतनी मात्रा मे हो, जिससे पर्याप्त स्फूर्ति मिल सके। लबेन्स्टीन के अनुसार मात्र इसी उपाय से अर्द्ध-विकसित देश अपने आर्थिक दुष्चक्र से मुक्ति पा सकते हैं।

लेबेन्स्टीन के कथनानुसार अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित देशो मे पाए जाने वाले दुष्चक्र उन्हे प्रति व्यक्ति आय के निम्न साम्य की स्थिति मे रखते हैं। यद्यपि ऐसे देशो मे श्रम और पूँजी की मात्रा मे परिवर्तन होते हैं किन्तु उनके प्रभाव के कारण प्रति व्यक्ति आय के स्तर मे नगण्य परिवर्तन होते है। इस स्थिति से निकलने के लिए कुछ न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' (Critical Minimum Efforts) की आवश्यकता है, जो प्रति व्यक्ति आय को ऐसे स्तर तक बढा दे जहाँ से सतत् विकास-प्रक्रिया जारी रह सके। उन्होने बताया है कि पिछड़ेपन से हम निरन्तर दीर्घकालीन विकास की आशा कर सकें, यह आवश्यक (यद्यपि सदा पर्याप्त नही) शर्त है कि किसी बिन्दु पर या कुछ अवधि मे अर्थव्यवस्था को विकास के लिए ऐसी उत्तेजना (Stimulus) मिले जो निश्चित न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो से अधिक हो। लेबेन्स्टीन के मतानुसार प्रत्येक अर्थव्यवस्था मे दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं। एक ओर कुछ उत्तेजक' (Stimulants) तत्त्व होते हैं जिनका प्रभाव प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि करने वाला होता है। दूसरी ओर कुछ पीछे धकेलने वाले (Shocks) तत्त्व होते हैं *जो प्रति व्यक्ति आय को घटाने का प्रभाव रखते है। अर्द्ध विकसित देशो मे प्रथम* प्रकार के तत्त्व कम और द्वितीय प्रकार के तत्त्व अधिक प्रभावशील होते हैं। अत आय घटाने वाले तत्त्वो से कही अधिक आय मे वृद्धि करने वाले तत्त्वो को उत्तेजित करने पर ही अर्थव्यवस्था विकास के पथ पर अग्रसर हो पाएगी और ऐसा तभी सम्भव होगा, जबकि न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) किए जाएँगे।

प्रति व्यक्ति आय और जनसख्या-वृद्धि का सम्बन्ध—लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त इस अनुभव पर आधारित है कि जनसख्या वृद्धि की दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का फलन (Function) है और यह विकास की विभिन्न अवस्थाओ से सम्बन्धित है। आय के *जीवन निर्वाह साम्य स्तर (Subsistence level of income level)* पर जन्म और मृत्यु दरें अधिकतम होती हैं। आय के इस स्तर से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर मृत्यु-दरे गिरना प्रारम्भ होती है, यद्यपि प्रारम्भ मे जन्म दरें कम नही होती है परिणामस्वरूप, जनसख्या वृद्धि की दर बढ जाती हैं। इस प्रकार, प्रारम्भ में प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि, जनसख्या वृद्धि की दर को बढाती है किन्तु ऐसा एक सीमा तक ही होता है और उसके पश्चात् प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने से

जन्म-दर गिरने लगती है, क्योंकि ड्यूमॉण्ट (Dumont) की 'Social Capillarity की धारणा के अनुसार, प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के साथ-साथ बच्चो की सख्या मे वृद्धि द्वारा माता पिताओ की आय मे वृद्धि करने की इच्छा कम होती जाती है। इसके अतिरिक्त विशिष्टीकरण सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता तथा नौकरी व्यवस्था आदि म प्रतिस्पर्द्धा म वृद्धि आदि कारणो से बडे परिवार का पालन पोषण कठिन और व्ययसाध्य हो जाता है । अत आय की वृद्धि के साथ पहले जन्म दरें स्थिर होती हैं तत्पश्चात् गिरना प्रारम्भ कर देती है। इस प्रकार ज्यो-ज्यो अर्थ-व्यवस्था विकास की ओर बढती जाती है जनसख्या वृद्धि की दर त्यो-त्यो कम होती जाती है। जापान और कई पश्चिमी यूरोपीय देशो म इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते है। लेबेन्स्टीन के मतानुसार, जीव विज्ञान की दृष्टि से जनसख्या की अधिकतम वृद्धि की दर 3% से 4% के बीच मे होती है । जनसख्या की इस ऊँची वृद्धि की दर पर काबू पाने और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करके जनसख्या वृद्धि की दर को घटाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो की आवश्यकता है। इसे निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है—

चित्र-6
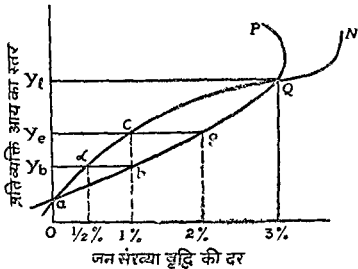
उपरोक्त चित्र मे N और P वक्र आय मे वृद्धि दर और जनसख्या मे वृद्धि-दर को निर्माण करने वाली प्रति व्यक्ति आय के स्तर को प्रदर्शित करते है। a बिन्दु पर जो कि निर्वाह साम्य का बिन्दु है, आय वृद्धि और जनसख्या वृद्धि की दर समान है। यदि प्रति व्यक्ति आय मे थोडी वृद्धि होती है, मानलो यह OY_b हो जाती है, तो जनसख्या-वृद्धि की दर और आय वृद्धि की दर दोनो बढती है, किन्तु आय-वृद्धि की अपेक्षा जनसख्या मे वृद्धि तेजी से होती है । प्रति व्यक्ति आय के इससे भी उच्च स्तर OY_e पर जनसख्या वृद्धि की दर 2% है जबकि आय-वृद्धि की दर केवल 1% है। चित्र मे $Y_e g$ जनसख्या वृद्धि की दर $Y_e c$ आय वृद्धि की दर से अधिक है। इस

समस्या के समाधान के लिए प्रति व्यक्ति आय की दर इतनी बढानी चाहिए, जिससे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की दर जनसख्या वृद्धि की दर को पीछे छोड दे। ऐसा प्रति व्यक्ति आय के स्तर के Y_e से अधिक होने पर ही हो सकता है। यहाँ से जनसख्या-वृद्धि की दर गिरना शुरू हो जाती है अत निरन्तर आर्थिक विकास की स्थिति को लाने के लिए Y_e न्यूनतम आवश्यक प्रति व्यक्ति आय का स्तर है और इसे प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न किए जाने चाहिए।

प्रति व्यक्ति आय का स्तर आय मे वृद्धि करने वाला तत्त्व है और इसके *द्वारा प्रेरित जनसख्या मे वृद्धि, आय घटाने वाला तत्त्व है। अत निरन्तर आर्थिक* विकास की स्थिति मे अर्थव्यवस्था को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक पूँजी-निवेश ही निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक हो जो स्वय उद्भूत या प्रेरित आय घटाने वाली शक्तियो पर काबू पाने योग्य प्रति व्यक्ति आय का उच्च स्तर प्रदान करे।

अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसख्या-वृद्धि के अतिरिक्त भी उत्पादन साधनो की अविभाज्यता के कारण होने वाली आन्तरिक अमितव्ययताएँ, बाह्य-परस्पर निर्भरता के कारण होने वाली बाह्य अमितव्ययताएँ सांस्कृतिक, सामाजिक और सस्थागत *बाधाओ* की उपस्थिति तथा उन्हे दूर करने *की आवश्यकता* भी इन देशो मे बडी मात्रा मे आवश्यक न्यूनतम प्रयत्नो की अनिवार्यता सिद्ध करती है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे *आय केवल जीवन निर्वाह स्तर योग्य* होती है और इसका समस्त व्यय प्रचलित उपभोग के लिए ही होता है। बहुत थोडी राशि ही मानव और भौतिक पूँजी निर्माण के लिए व्यय की जा सकती है। अत सतत् आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) आय के जीवन-निर्वाह से अधिक ऊँचे स्तर पर होन चाहिए।

विकास-अभिकर्त्ता (Growth Agents)—लेबेन्स्टीन ने अपने सिद्धान्त को इस तर्क पर आधारित किया है कि अर्थव्यवस्था मे विकास के लिए उपयुक्त कुछ *आर्थिक दशाएँ* उपस्थित रहती हैं जो आय-वृद्धि की शक्तियो की आय मे कमी करने वाली शक्तियो की अपेक्षा अधिक तेजी से बढाती हैं। 'विकास अभिकर्त्ता' (Growth Agents) इन *दशाओ को जन्म* देते हैं। *'विकास अभिकर्त्ता'* वे होते है, जो *विकास* मे योग देने वाली क्रियाओ (Growth Contributing Activities) को सचालित करते हैं। उद्यमी (*Entrepreneur*), विनियोजक (*Investor*), बचत करने वाले (Saver) एव नव प्रवर्त्तक (Innovator) आदि उल्लेखनीय विकास अभिकर्त्ता' हैं। विकास साधको का इस विकास मे योगदान देने वाली क्रियाओ के कारण पूँजी और बचत की दर श्रम-शक्ति की कुशलता, ज्ञान और जोखिम की मात्रा मे वृद्धि होती है। लेबेन्स्टीन के अनुसार 'विकास साधको का विस्तार होगा या नही यह इन क्रियाओ के सम्भावित और वास्तविक परिणाम तथा सम्भावनाओ, क्रियाओ और परिणामो की अन्त क्रिया द्वारा उत्पन्न आगे विस्तार (Expansion) और सकुचन (Contraction) के लिए प्रेरणाओ पर निर्भर करते हैं। य प्रेरणाएं दो प्रकार की होती हैं।

(i) शून्य-राशि प्रेरणाएं (Zero sum Incentives)—इनसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि नही होती है, इनका केवल वितरणात्मक प्रभाव होता है।

(ii) धनात्मक राशि-प्रेरणाएं (Positive sum Incentives)—जो राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करती हैं केवल दूसरे प्रकार की प्रेरणाओ द्वारा ही आर्थिक विकास हो सकता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रथम प्रकार की क्रियाओ मे ही व्यक्ति सलग्न रहते हैं और दूसरे प्रकार की क्रियाएँ अत्यल्प मात्रा मे सचालित की जाती हैं। जो कुछ इस प्रकार की क्रियाएँ की जाती है वे अर्थव्यवस्था मे विशुद्ध विकास की अनुपस्थिति के कारण प्रभावहीन ही रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय पर विपरीत प्रभाव डालने वाली निम्नलिखित प्रवृत्तियां भी क्रियाशील रहती हैं—

(i) सम्भावित वृद्धिमान आर्थिक अवसरो में कटौती और रोक द्वारा वर्तमान आर्थिक रियायतो (Privileges) को बनाए रखने वाली (Zero-sum Activities) शून्य राशि प्रेरणाएँ।

(ii) परिवर्तन के प्रतिरोध मे की गई सगठित और असगठित श्रम द्वारा की जाने वाली अनुदार कार्यवाहियाँ।

(iii) नवीन ज्ञान और विचारो का अवरोध।

(iv) निजी और सार्वजनिक सस्थाओ द्वारा अनुत्पादक प्रकृति के व्यय मे वृद्धि।

(v) जनसख्या-वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाली श्रम-शक्ति मे वृद्धि जिसके कारण प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूँजी की मात्रा कम हो जाती है।

आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव डालने वाले उपरोक्त तत्त्वो को प्रभावहीन करने के *लिए पर्याप्त मात्रा मे न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न* (Sufficiently large critical minimum efforts) किए जाने चाहिए, जो धनात्मक-राशि क्रियाओ को उत्तेजित करें। ऐसा होने से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होगी जिसके कारण बचत और विनियोग की मात्रा बढेगी। परिणामस्वरूप, 'विकास अभिकर्त्ताओ' (Growth Agents) का विस्तार होगा, विकास मे उनका योगदान बढेगा, विकास मे बाधक तत्त्वो की प्रभावहीनता बढेगी, सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता को बढाने वाले सामाजिक वातावरण का निर्माण होगा, विशिष्टीकरण बढेगा और द्वितीयात्मक और तृतीयात्मक उद्योगो का विस्तार होगा। इन सबके कारण सामाजिक वातावरण मे ऐसे परिवर्तनो का मार्ग साफ होगा जिससे जन्म-दर और जनसख्या वृद्धि की दरें गिर जाएँगी। प्रो लेबेन्स्टीन ने अर्द्ध-विकसित देशो के लिए इस न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नो की मात्रा का भी अनुमान लगाया है।

समीक्षा—प्रो लेबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक के प्राक्कथन मे लिखा है कि उनका उद्देश्य स्पष्टीकरण और व्याख्या करना है, न कि कोई नुस्खा बताना है। किन्तु उनके इस सिद्धान्त ने कई अर्थशास्त्रियो और नियोजको को आकर्षित किया है और यह अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने का एक उपाय माना जाने लगा है। इसका एक कारण तो यह है कि उसका यह विचार अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो द्वारा अपनाई गई जनतान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning)

पद्धति से मेल खाता है। इसके साथ ही यह रोजेन्स्टीन रोडान (Rosenstein Rodan) के 'बड़े धक्के' (Big Push) के सिद्धान्त की अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट है, क्योंकि, अर्द्ध विकसित देशो के औद्योगीकरण के लिए एक बार ही 'बडा धक्का' देना कठिन होता है, जबकि लेबेन्स्टीन के 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों' को छोटे प्रयत्नो के रूप मे टुकडो-टुकडो मे विभाजित करके प्रयोग मे लाया जा सकता है।

किन्तु यह सिद्धान्त भी आलोचना मुक्त नही कहा जा सकता। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर एक बिन्दु तक जनसख्या-वृद्धि की दर बढती जाती है और उसके पश्चात् उसमे गिरावट आने लगती है। किन्तु वस्तुतः यह प्रथम प्रक्रिया, अर्थात्, जनसख्या-वृद्धि की दर बढने का कारण प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि नही, अपितु चिकित्सा तथा जन-स्वास्थ्य सुविधाओ मे वृद्धि के कारण घटने वाली मृत्यु-दर है। उदाहरणार्थ, भारत मे 1911–21 मे मृत्यु-दर 48 6 प्रति हजार से घट कर 1951–61 मे 22 8 प्रति हजार रह जाने के कारण प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि नही, अपितु रोगो पर नियन्त्रण और चिकित्सा व जन-स्वास्थ्य का अधिक ज्ञान और इन सुविधाओ मे वृद्धि हुई है। इसी प्रकार इस बिन्दु के पश्चात् जन्म-दर मे कमी का श्रेय न्यूनतम आवश्यक स्तर पर प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि को नहीं है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की जन्म दर को नही घटा सकती है। जापान एव अन्य प्रगतिशील देशो मे जिनके आधार पर लेबेन्स्टीन ने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है, यह सत्य हो सकता है। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों मे जन्म-दर को घटाने के लिए लोगो के दृष्टिकोण समक्ष सामाजिक सस्थाओ आदि मे परिवर्तन और शिक्षा प्रचार की आवश्यकता है। वस्तुत जन्म दर मे कमी करने के लिए प्रति व्यक्ति आय मे न्यूनतम आवश्यक स्तर से अधिक वृद्धि होने तक कोई भी अर्द्ध-विकसित देश प्रतीक्षा नही कर सकता है। ऐसी स्थिति मे जनसख्या की स्थिति विस्फोटक दशा ग्रहण कर सकती है।

आर्थिक विकास के लिए नियोजन

(Planning for Economic Growth)

"आयोजन का अर्थ केवल कार्य-सूची बना लेने से नहीं होता और न ही यह एक राजनीतिक आदर्शवाद है। आयोजन एक बुद्धिमत्तापूर्ण, विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक पद्धति है जिसके अनुसार हम अपने आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं व प्राप्त कर सकते हैं।" —जवाहरलाल नेहरू

नियोजित अर्थ-व्यवस्था आधुनिक काल की एक नवीन प्रवृत्ति है। 19वी शताब्दी मे पूँजीवाद, व्यक्तिवाद और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का बोल बाला रहा तथा अधिकांश देश स्वतन्त्र व्यापार-नीति और आर्थिक स्वतन्त्रता के समर्थक रहे। लेकिन पिछली अर्द्ध-शताब्दी मे रूस की क्रान्ति, सन् 1929-32 की विश्व-व्यापी आर्थिक-मन्दी, दो भीषण महायुद्धों व उपनिवेशवाद की समाप्ति, लोक-वित्त, तकनीकी प्रगति, एव सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रवृत्तियाँ आदि के कारण आर्थिक नियोजन का महत्त्व स्थापित हो चुका है और आज प्रत्येक देश मे किसी न किसी अश मे नियोजन का मार्ग अपनाया जा रहा है। ससार के लगभग सभी देश अपने आर्थिक विकास और उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन मे जुटे हुए हैं।

आर्थिक नियोजन इतना महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुआ है कि अमेरिका, ब्रिटेन आदि स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था वाले देश भी व्यापक अर्थ मे नियोजन का सहारा लेने लगे है। अर्द्ध-विकसित देशो मे तो नियोजन अत्यधिक लाभदायक है ही क्योंकि इसके द्वारा शीघ्र पूंजी-निर्माण की प्रक्रिया को गति देकर द्रुत आर्थिक विकास किया जाना सम्भव है। अर्द्ध विकसित देशो की मूल समस्या कीमत स्थायित्व के साथ आर्थिक वृद्धि करना है। आर्थिक वृद्धि की उच्च दर, आर्थिक नियोजन पर निर्भर करती है। नियोजित अर्थ व्यवस्था मे ही एक अभीष्ट सीमा तक पूर्ण रोजगार, समानता, स्थायित्व आत्म-निर्भरता आदि आर्थिक लक्ष्यो की प्राप्ति सम्भव है। अनियोजित अथवा निजी उद्यम वाली स्वचालित अर्थ व्यवस्था मे सतुलन की स्थिति तो सम्भव है, किन्तु आर्थिक विकास की उच्च दर के लिए स्वचालित अर्थ-व्यवस्था के निम्न स्तरीय सतुलन को नष्ट करना आवश्यक है। कीन्स के अर्थशास्त्र मे स्पष्ट सकेत

मिलता है कि स्वत प्राप्त पूर्ण रोजगार जैसी कोई स्थिति नही होती है (There is no automatic full employment)। 'परेटो उत्तमावस्था' (Pareto-optimality) का सिद्धान्त भी यह स्पष्ट करता है कि सम्पत्ति व आय का वितरण इस सिद्धान्त की मुख्य शर्तों के अन्तर्गत नही आता अर्थात् विकास, समानता, स्थायित्व, आत्म-निर्भरता, पूर्ण रोजगार आदि आर्थिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए आर्थिक नियोजन आवश्यक है। इसीलिए अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक वृद्धि की उच्च दर प्राप्त करने के लिए नियोजन क मार्ग अपनाया जाता है।

नियोजित और अनियोजित अर्थ-व्यवस्था को तुलना
(Comparison of Planned and Un-planned Economies)

जो देश आर्थिक विकास तथा अन्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिए आर्थिक नियोजन की पद्धति को अपनाते है, उस देश की अर्थ-व्यवस्था को नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy) कहते हैं। 'नियोजित अर्थ-व्यवस्था' मे केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा सचेत रूप से निर्धारित आर्थिक लक्ष्यो की पूर्ति के लिए आर्थिक क्रियाओ का सचालन किया जाता है जिन पर सरकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियत्रण होता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के विपरीत अनियोजित अर्थव्यवस्था वह होती है जो आर्थिक नियोजन को नही अपनाती है। नियोजित और अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे होने वाले निम्नलिखित प्रमुख अन्तर हैं—

नियोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy)	अनियोजित अर्थ-व्यवस्था (Un planned Economy)
1 इसमे समस्त अर्थ-व्यवस्था को एक इकाई मान कर सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र के लिए योजना बनाई जाती है।	1 इसमे व्यक्तिगत माँग के अनुसार व्यक्तिगत उत्पादक इकाई के लिए योजना बनाई जाती है।
2. आर्थिक क्रियाओ के निर्देशन के लिए केन्द्रीय नियोजन अधिकारी होता है।	2 इसमे ऐसा नही होता है।
3 सार्वजनिक हित सर्वोपरि होता है।	3. निजी लाभ अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।
4. आर्थिक क्रियाओ पर राज्य नियन्त्रण होता है।	4. आर्थिक क्रियाएँ राज्य-नियन्त्रण और हस्तक्षेप से मुक्त होती हैं।
5 उत्पादन राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुसार किया जाता है।	5. उत्पादन माँग के अनुसार किया जाता है।
6 मूल्य-तान्त्रिकता महत्त्वहीन होती है।	6. मूल्य तान्त्रिकता महत्त्वपूर्ण होती है।
7. यह नियमित अर्थ-व्यवस्था होती है।	7 यह स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित होती है।

नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned Economy)	अनियोजित अर्थ व्यवस्था (Un-planned Economy)
8 इसमे समस्त राष्ट्र क दृष्टिकोण से उद्देश्य निश्चित होते है।	8. बहुधा समस्त राष्ट्र के दृष्टिकोण से उद्देश्य निश्चित नही किए जाते ।
9. उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एक निश्चित अवधि होती है।	9. इसमे कोई निश्चित अवधि नही होती ।
10 यह समाजवाद के अधिक निकट है।	10. यह पूँजीवाद से सम्बन्धित है।
11. यह एक विवेकपूर्ण अर्थ व्यवस्था है।	11. यह आकस्मिक अर्थ व्यवस्था है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था की श्रेष्ठता (Superiority of Planned Economy)

नियोजित अर्थ व्यवस्था की उपयोगिता का आभास हमे पूर्वत्तर विवरण से मिल चुका है। आज विश्व के लगभग सभी देश किसी न किसी रूप मे आर्थिक नियोजन को अपनाए हुए हैं और इसका कारण नियोजन से होने वाले अतिशय लाभ ही है। ये लाभ इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि कोई भी आधुनिक राष्ट्र इनकी उपेक्षा नही कर सकता। अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो ने द्रुत आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन की तकनीक अपनाकर अपने यहाँ नियोजित अर्थ-व्यवस्था स्थापित करके उसके सुन्दर फलो को चखा है और हम भी आर्थिक विकास की ओर तेजी से बढने लगे हैं। कई देशो मे पूर्ण रूप से नियोजित अर्थ व्यवस्था (Planned Economies) है। आर्थिक नियोजन के सहारे ही सोवियत रूस ने इतनी आश्चर्यजनक प्रगति की है कि प्रो एस. ई. हेरिस के इस मत से कोई मतभेद नही हो सकता कि 'विश्व के अन्य किसी भी देश ने इतनी द्रुतगति से एक पिछड़े हुए कृषि-प्रधान देश से अत्यधिक औद्योगिक, औद्योगिक शक्ति सम्पन्न देश मे परिवर्तित होने का अनुभव नही किया है।" लेकिन अनेक व्यक्ति आर्थिक नियोजन के मार्ग के कटु आलोचक हैं। प्रो हेयक (Prof Hayek) नियोजन को दासता का मार्ग मानते है। हमारे लिए इन विरोधी विचारो का मूल्यांकन करने के लिए यह उपयुक्त होगा कि हम आर्थिक नियोजन के पक्ष और विपक्ष, दोनो पहलुओ को देख लें।

नियोजन के पक्ष मे तर्क (Arguments for Planning)

आर्थिक नियोजन की श्रेष्ठता के पक्ष मे निम्नलिखित प्रमुख तर्क दिए जाते हैं-

1. **तीव्र आर्थिक विकास सम्भव**—आर्थिक नियोजन की पद्धति को अपना कर ही तीव्र आर्थिक विकास किया जा सकता है। वैसे तो अमेरिका, इग्लैण्ड, फ्रांस आदि पश्चिमी देश आर्थिक नियोजन के बिना ही आर्थिक प्रगति के उच्च स्तर पर पहुँच गए है। किन्तु इनमे इन्हे पर्याप्त समय लगा है और इनकी प्रगति अपेक्षाकृत

कम भी रही है, जबकि, रूस, चीन आदि देशों ने नियोजन का सहारा लेकर अत्यल्प समय मे ही द्रुत आर्थिक विकास किया है। आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों के लिए भी तेजी से आर्थिक विकास उनके जीवन मरण का प्रश्न बन गया है। अत उनके लिए नियोजन-पद्धति अपनाना अधिक वांछनीय है। आर्थिक नियोजन से इन देशों का द्रुत आर्थिक विकास तो होगा ही, साथ ही, ऐसा इन देशों की अर्थ व्यवस्था के समस्त क्षेत्रों मे होगा। आर्थिक नियोजन मे कृषि, उद्योग शक्ति सिंचाई, यातायात, सचार, सेवाओं आदि सभी क्षेत्रों मे विवेकपूर्ण और सतुलित कार्यक्रम सचालित किए जाते है। अतः नियोजन पद्धति अपनाने पर इन देशों मे उत्पादन, राष्ट्रीय आय आदि मे वृद्धि होगी जिससे देशवासियों का जीवन-स्तर उच्च होगा और जनता की सुखी एव परिपूर्ण जीवन बिता पाने की आकांक्षाएँ मूर्त रूप ग्रहण कर पाएँगी।

2 निर्णयों एव कार्यों मे समन्वय—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की सबसे बडी कमी यह है कि इसमे असख्य उद्योगपति व्यापारी उत्पादक आदि अलग अलग आर्थिक और उत्पादक क्रियाओं मे सलग्न रहते हैं और उनके निर्णयों एव कार्यों मे समन्वय करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। वे अपनी इच्छानुसार मनमाने निर्णयों के अनुसार उत्पादन करते हैं और उनमे कोई ताल मेल नहीं होता। प्रो. लर्नर (Prof Lerner) के अनुसार ऐसी अर्थ व्यवस्था उस मोटर के समान है जो चालक रहित है किन्तु जिसके सब यात्री इसके स्टियरिंग व्हील के पास इसे अपनी इच्छानुसार घुमाने के लिए पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके विपरीत नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे एक केन्द्रीय नियोजन अधिकारी की देख रेख मे देश की आवश्यकताओं और साधनों के अनुसार उत्पादन सम्बन्धी निर्णय किए जाते हैं, जिन्हे पूर्ण करने के लिए एक समन्वित कार्यक्रम बनाया जाता है। इससे अर्थ-व्यवस्था मे गडबडी नहीं होती।

3 दूरदर्शितापूर्ण अर्थ व्यवस्था—एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था, अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा अधिक दूरदर्शितापूर्ण होती है। इसीलिए, इसे 'खुले हुए नेत्र वाली अर्थ-व्यवस्था' (An economy with open eyes) कहते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे नियोजन-सत्ता अर्थ व्यवस्था मे बहुत ही धीरे धीरे होने वाले और सूक्ष्म-परिवर्तनों पर भी विचार कर लेती है, जिनके बारे म अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के व्यक्तिगत उत्पादक को बिल्कुल जानकारी भी नहीं हो पाती। एक केन्द्रीय अधिकारी इस बात का पता लगा सकता है कि कच्चे माल का तेजी से शोषण तो नहीं हो रहा है, साधनों का अपव्यय तो नहीं हो रहा है, मानवीय शक्ति का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है या जनसख्या तेजी से तो नहीं बढ रही है। यदि ऐसा हो तो इनकी रोकथाम के लिए तुरन्त कदम उठाए जा सकते हैं। इस प्रकार, नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे साधनों का भी दूरदर्शितापूर्ण उपयोग होता है।

4 व्यापार चक्रों से मुक्ति—व्यापार-चक्र अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं की सबसे बडी दुर्बलता है। इन अर्थ-व्यवस्थाओं मे आर्थिक तेजी और मदी के चक्र नियमित रूप से आते रहते हैं, जिनके लिए पूँजीवाद की कुछ विशेषताएँ जैसे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा, लाभ-उद्देश्य (Profit Motive) एव अनियन्त्रित निजी उपक्रम आदि

उत्तरदायी हैं। व्यापार-चक्र अर्थ व्यवस्था मे अस्थिरता और अनिश्चितता पैदा करके भारी आर्थिक बुराइयो को जन्म देते हैं। नियोजन रहित अर्थ-व्यवस्था मे व्यक्तिगत उत्पादक, अपनी इच्छानुसार, उत्पादन करते हैं और इससे उत्पादन कभी माँग से कम और कभी अधिक होने की सब सम्भावनाएँ रहती है। यही कारण है कि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे समय-समय पर आर्थिक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, जबकि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्राय ऐसा नही होता। सन् 1930 की विश्वव्यापी मदी से अमेरिका, इग्लैण्ड आदि बहुत बुरी तरह ग्रस्त थे।

5. **उत्पत्ति के साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग**—अर्द्ध-विकसित देशो मे उत्पत्ति के साधनो की बडी कमी होती है इसलिए देश के अधिकतम लाभ और सामाजिक कल्याण की दृष्टि से इन सीमित साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है। किन्तु अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे आवश्यक और अनावश्यक पदार्थों के उत्पादन के बीच साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग नही हो पाता, क्योकि व्यक्तिगत उत्पादक उन्ही वस्तुओ का उत्पादन करता है जो उसे अधिकाधिक लाभ दे, न कि उन वस्तुओ का, जो सामाजिक दृष्टि से आवश्यक हो। यदि अनाज के उत्पादन की अपेक्षा मादक पदार्थों के उत्पादन मे विनियोगो से उसे अधिक लाभ होगा तो वह अनाज के स्थान पर इन मादक पदार्थों का ही उत्पादन करेगा। इस प्रकार, अनियोजित अर्थ व्यवस्था मे साधन अनावश्यक कार्यों मे भी लगा दिए जाते हैं जबकि, आवश्यक परियोजनाएँ साधनो के अभाव मे शुरू नही हो पाती। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सामाजिक आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखते हुए साधनो का विवेकपूर्ण आवटन होता है।

6 **प्रतिस्पर्द्धाजनित दोषो से मुक्ति**—प्रतिस्पर्द्धा के कारण, जो अनियोजित पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की एक प्रमुख सस्था है, बहुमूल्य साधनो का अपव्यय होता है। सम्भावित ग्राहको को आकर्षित करने और अपनी बिक्री बढा कर लाभ कमाने के लिए विभिन्न प्रतिस्पर्द्धी फर्मे विज्ञापन, विक्रय कला आदि पर विपुल धन-राशि व्यय करती हैं। कभी-कभी गलघोटू प्रतियोगिता (Cut-throat Competition) के कारण कई फर्मे बरबाद हो जाती है। प्रतिस्पर्द्धा के कारण प्रतिस्पर्द्धी फर्मों मे कर्मचारियो और औद्योगिक उपस्करो का दुहराव भी होता है। प्रो डर्बिन (Durbin) के अनुसार 'प्रतिस्पर्द्धा की सस्था आर्थिक जीवन को बुद्धिमत्तापूर्ण दशा मे नही ले जाती है।" नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा को अत्यन्त सीमित कर दिया जाता है। अत यहाँ इन दोषो से मुक्ति मिल जाती है।

7 **आर्थिक समानता की स्थापना**—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की कुछ सस्थाओ जैसे निजी-सम्पत्ति, उत्तराधिकार और मूल्य-प्रक्रिया आदि के कारण इसमे भारी आर्थिक विषमता पायी जाती है, जिसे किसी भी प्रकार उचित नही कहा जा सकता है। इन सस्थाओ के कारण आय की विषमता, धन की विषमता और अवसरो की विषमता उत्पन्न होती है, जिससे एक ओर समाज के कतिपय व्यक्तियो के पास समाज का धन केन्द्रित हो जाता है तो दूसरी ओर अधिकाश जनता की बुनियादी आवश्यकताएँ भी पूरी नही हो पाती है। प्रो. डर्बिन के अनुसार, "अनियोजित

अर्थ-व्यवस्था में सामाजिक समानता नहीं हो सकती है।" ऐसी स्थिति में सामाजिक कटुता उत्पन्न होती है और वर्ग-संघर्ष बढ़ता है। यही नहीं, ऐसी स्थिति में, समाज कुछ योग्य व्यक्तियों की सेवा से भी वंचित हो जाता है। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं में, अनियोजित अर्थ-व्यवस्थाओं की अपेक्षा बहुत कम आर्थिक समानता की ओर बढ़ना है इसलिए इन देशों के लिए नियोजित अर्थ व्यवस्था उपयुक्त है।

8. शोषण की समाप्ति—अनियोजित पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में एक अन्य बुराई सामाजिक परोपजीविता (Social Parasitism) भी पाई जाती है। अनेक व्यक्ति बिना श्रम किए ही अनाजित आय (Unearned Income) के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। कई व्यक्तियों को उत्तराधिकार में भारी सम्पत्ति मिल जाती है। कई व्यक्ति लगान, ब्याज लाभ, के रूप में भारी मात्रा में आय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे बिना श्रम किए ही इस प्रकार की आय प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार के शोषण और परोपजीविका को समाप्त किया जाता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था विशाल जनसमुदाय को आय और रोजगार की सुरक्षा प्रदान करने में भी असफल रहती है। किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था में कार्य और आवश्यकता के अनुसार पारिश्रमिक दिए जाने की व्यवस्था की जाती है और जनता की अधिक सामाजिक सुरक्षा (Social Security) का प्रबन्ध किया जाता है।

9 कृत्रिम अभावों के सृजन का भय नहीं—अनियोजित अर्थव्यवस्थाओं में वस्तुओं के कृत्रिम अभावों का सृजन किया जाता है ताकि उपभोक्ताओं से ऊँचे मूल्य लेकर अधिकाधिक लाभ कमाया जा सके। इसके साथ ही एकाधिकार और आर्थिक सघबदी के द्वारा भी मूल्य-वृद्धि करके उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है। किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन के साधनों, व्यवसाय आदि पर बहुधा सरकारी स्वामित्व रहता है या उद्योगपतियों, व्यापारियों आदि पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। अत इस प्रकार शोषण सम्भव नहीं है।

10. अनियोजित अर्थव्यवस्था में सामाजिक लागतों की बचत—संचालन के परिणामस्वरूप उद्योगों के निजी-उपक्रम द्वारा समाज को कुछ हानिकारक परिणाम भुगताने पड़ते हैं जिन्हें सामाजिक लागतें (Social Costs or Un-compensated Disservices) कहा जाता है। ये लागतें प्रौद्योगिक बीमारियों, चक्रीय बेकारी, औद्योगिक बेकारी, गन्दी बस्तियों का निर्माण, धुआँपूर्ण वातावरण आदि के रूप में होती हैं। इनका भार निजी उद्योगपतियों को नहीं अपितु, समाज को उठाना पड़ता है। निजी उपक्रमियों द्वारा लागू की गई तकनीकी प्रगति से भी कुछ स्थितियों में मशीनों और श्रमिकों की अप्रयुक्तता बढ़ती है किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की समस्याओं से बचना सम्भव है क्योंकि इन समस्याओं के समाधान की पूर्व व्यवस्था कर ली जाती है।

11. जन-कल्याण के ध्येय की प्रमुखता—अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक क्रियाएँ और उत्पादन-कार्य निजी उद्योगपतियों द्वारा निजी लाभ के लिए किया जाता है। वहाँ सामाजिक-कल्याण पर ध्यान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि

अनियोजित पूंजीवादी व्यवस्था मे वस्तुओ के गुणो मे गिरावट, खराब वस्तुओ की मिलावट और मूल्य वृद्धि द्वारा उपभोक्ताओ का शोषण किया जाता है। कम मजदूरी देकर या अधिक समय काम करा करके श्रमिको का भी शोषण किया जाता है। इस प्रकार अनियोजित अर्थव्यवस्था मे निजी-लाभ को प्रमुखता दी जाती है। इसके विपरीत, नियोजित अर्थव्यवस्था मे एक व्यक्ति के लाभ के लिए नही अपितु अधिकाधिक जनता के अधिकतम कल्याण के लिए आर्थिक क्रियाएँ संचालित की जाती हैं।

12. जनता का विशेष रूप से श्रमिक वर्ग को सहयोग मिलना—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सरकार को जनता का अधिकाधिक सहयोग उपलब्ध होता है क्योकि उनका विश्वास होता है कि नियोजन के लाभ एक व्यक्ति या एक वर्ग को नही अपितु समस्त जनता को मिलने वाले हैं। ऐसी व्यवस्था मे श्रमिको का भी अधिकाधिक सहयोग मिलता है क्योकि उनके हितो की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत, अनियोजित अर्थव्यवस्था म निजी-उत्पादको को श्रमिको का पूर्ण सहयोग नही मिल पाता है और उनके सहयोग के अभाव मे उत्पादन मे अधिक प्रगति नही की जा सकती है। श्रम-सघो द्वार अपनाई जाने वाली 'धीरे चलो' (Go slow) नीति का उत्पादन और आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पडता है।

13. पूंजी निर्माण की ऊंची दर—नियोजित अर्थव्यवस्था मे एक विवेकपूर्ण योजना के अनुसार कार्य किया जाता है। साथ ही इसमे वर्तमान के साथ भावी प्रगति पर भी ध्यान दिया जाता है। इसलिए उपभोग को कम करके बचत-विनियोग और पूंजी निर्माण की दर तेजी से बढाई जा सकती है। सार्वजनिक उपक्रमो का विस्तार होता है और उसके लाभो का भी पुनर्विनियोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस मे विगत कुछ वर्षों मे पूंजी-सचय की दर सब पूंजीवादी अनियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशो से अधिक रही है। अर्द्ध-विकसित देशो की एक बडी समस्या पूंजी का अभाव है, जिसका आर्थिक विकास मे बहुत महत्त्व है। अत. ये देश नियोजित पद्धति द्वारा पूंजी निर्माण दर मे तेजी से वृद्धि करके ही तेजी से आर्थिक विकास कर सकते हैं।

14 अधिकतम तकनीकी कुशलता (Maximum Technical Efficiency)—अधिकतम तकनीकी कुशलता के सिद्धान्त के अनुसार एक नियोजित अर्थव्यवस्था मे उत्पादन ससाधनो को सगठित करके कई प्रकार की मितव्ययताएँ प्राप्त की जा सकती है। एफ. ज्विग (F Zweig) के अनुसार नियोजित अर्थव्यवस्था मे उत्पादक साधनो के सगठन के पैमाने मे विस्तार, निजी-स्वत्वो और इच्छाओ पर ध्यान दिए बिना उनके पुनर्प्रबन्ध की सम्भावनाए, एक ओर यन्त्र और श्रम के विशिष्टीकरण के नए अवसर प्रदान करेगी वही दूसरी ओर ससाधन का केन्द्रीकरण करेगी। परिणामस्वरूप उद्योगो का अधिक लाभदायक स्थानो मे हस्तान्तरण, उत्पादन को अच्छे सगठित कारखानो का आवटन और औद्योगिक इकाइयो का विलीनीकरण या परस्पर अधिक सहयोग सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त अनियोजित अर्थव्यवस्था मे ससाधनो का पूर्ण उपयोग सम्भव नही होता। ऐसी स्थिति मे विशाल

मात्रा मे प्राकृतिक और मानवीय साधन अप्रयुक्त रहते हैं। अर्द्ध-विकसित देशो मे पूजी की अपेक्षा प्राकृतिक और मानवीय साधन ही अधिक रहते हैं और ये देश एक निश्चित योजनानुसार इनका दुरुपयोग करके तेजी से आर्थिक विकास कर सकते हैं।

15 राष्ट्रीय सकट के समय सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्था—अनियोजित अर्थव्यवस्था युद्ध या सकटकालीन स्थिति मे सर्वथा अयोग्य होती है। ऐसे सकटो से मुक्ति के लिए अर्थव्यवस्था पर विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण लगाए जाते हैं। यहाँ तक कि पूजीवाद का गढ कहलाने वाले सयुक्तराज्य अमेरिका ने भी द्वितीय महायुद्ध मे विजय पाने के लिए बडी सीमा तक आर्थिक नियोजन को अपनाया था। इस प्रकार ऐसे समय अनियोजित अर्थव्यवस्था भी नियोजित अर्थव्यवस्थाओ मे परिवर्तित हो जाती है।

नियोजित व्यवस्था के विपक्ष मे तर्क
(Arguments against Planned Economy)

नियोजित अर्थव्यवस्था म कमियाँ भी है जिनके कारण कुछ लोगो ने इसके विपक्ष मे अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं। नियोजित अर्थव्यवस्था के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

1 अस्त व्यस्त (Muddled) अर्थव्यवस्था—नियोजित अर्थव्यवस्था मे बाजार और मूल्य तान्त्रिकता (Market and Price Mechanism) पर आधारित स्वय सचालकता (Automaticity) समाप्त हो जाती है। अत आर्थिक क्रियाओ मे विवेकशीलता नही रहती क्योकि योजना अधिकारी द्वारा किए गए मनमाने निर्णयो के आधार पर उत्पादन का कार्यक्रम बनाया जाता है। इसीलिए नियोजित अर्थव्यवस्था को अधेरे मे छलाँग (Leap in the dark) कहा जाता है। किन्तु इसका आशय यह नही है कि नियोजित अर्थव्यवस्था से मूल्य प्रक्रिया बिलकुल समाप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ, सोवियत रूस मे नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित कीमतो (Assigned Prices) की नीति को अपनाया जाता है। वहाँ न केवल पदार्थों के मूल्य अपितु उत्पादन के साधनो की कीमतें भी नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित की जाती है।[1]

2 अकुशलता में वृद्धि—पूर्णरूप से नियोजित अर्थव्यवस्था मे समस्त उत्पादन कार्य सरकार द्वारा किया जाता है और उत्पादन मे सलग्न अधिकांश कर्मचारी सरकारी कर्मचारी हो जाते हैं। सरकारी कर्मचारी स्वाभाविक रूप से ही निजी कर्मचारियो की अपेक्षा कम रुचि लेते हैं। उनकी कार्य दशाएँ (Service Conditions), वेतन, ग्रेड, उन्नति के अवसर आदि पूर्व-निर्धारित होते हैं अत उनमे अधिक कुशलता से कार्य करने की प्रेरणा तथा पहल की भावना समाप्त हो जाती है। पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है तथा सतर्कता, कुशलता, मितव्ययता, नव प्रवर्त्तन आदि प्रतिस्पर्द्धाजनित लाभो से समाज वचित रह जाता है।

1 *M L. Seth* Theory and Practice of Economic Planning p 39

3 **तानाशाही और लाल फीताशाही का भय**—आलोचकों का यह कथन है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे तानाशाही और लाल फीताशाही का पोषण होता है। समस्त देशवासी केवल मजदूर बन जाते है तथा प्रशासनिक अधिकारियो द्वारा ही सब निर्णय लिए जाते है। ऐसी परिस्थितियो मे व्यक्ति को कोई महत्त्व नही दिया जाता और सरकार ही सर्वशक्तिमान बन जाती है। बहुधा यह कहा जाता है कि तानाशाही के बिना नियोजन असम्भव है किन्तु वस्तुत ऐसा नही है। विगत कुछ वर्षो मे सोवियत रूस मे भी तत्कालीन प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने सरकारी मशीनरी के विकेन्द्रीकरण की योजना बनाई थी। इसके अतिरिक्त जनतान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning) म तो यह समस्या उदय ही नही होती। प्रो लास्की और श्रीमती बारबरा ऊटन के अनुसार नियोजन से मानवीय स्वतन्त्रता बढती है।

4. **भ्रष्टाचार और अनियमितताएँ**—आलोचको का मत है कि नियोजित व्यवस्था मे राज्य कर्मचारियो मे भ्रष्टाचार बढता है। सरकारी कर्मचारियो के पास व्यापक अधिकार होते हैं और वे इनका उपयोग अपने हित के लिए कर सकते हैं। इस प्रकार की शका निराधार नहीं है पर साथ ही यह भी है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे निजी सम्पत्ति और उत्तराधिकार जैसी सस्थाओ की समाप्ति पर सरकारी कर्मचारियो मे भ्रष्टाचार स्वयमेव समाप्त हो जाने की प्रबल सम्भावना रहती है।

5 **विशाल मानव-शक्ति की आवश्यकता**—प्राय यह भी कहा जाता है कि योजनाओ के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए बडी मात्रा मे जनशक्ति की आवश्यकता पडती है। प्रो लेविस (A W Lewis) ने इस सन्दर्भ मे कहा है कि नियोजन की सफलता के लिए पर्याप्त मात्रा मे कुशल, योग्य और अनुभव प्राप्त अधिकारियो की आवश्यकता होती है और अर्द्ध-विकसित देशो मे इतनी बडी मात्रा मे कुशल व्यक्तियो का मिलना असम्भव होता है।[1] किन्तु क्या स्वतन्त्र और अनियोजित अर्थव्यवस्था मे विशाल जनशक्ति की आवश्यकता नही पडती। वहाँ भी मध्यस्थ, विज्ञापक, वितरक, सेलसमैन आदि के रूप मे काफी व्यक्तियो की आवश्यकता होती है।

6 **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता का अन्त**—आलोचको के अनुसार नियोजित अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता अपनी प्रभुसत्ता को खो देता है। अनियोजित अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता को सम्राट समझा जाता है क्योकि, उसकी इच्छाओ और माँगो के अनुसार ही उत्पादन किया जाता है, किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता को उसी वस्तु का उपभोग करना पडता है, जो राज्य उसे देता है। इसके उत्तर मे नियोजन के समर्थको का कहना है कि क्या अनियोजित अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता वस्तुत. सम्राट् होता है ? क्या मुद्राविहीन उपभोक्ता को जो कुछ भी खरीदने योग्य न हो, सम्राट् बताना हास्यास्पद नही है। उपभोक्ता की पसन्द की नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अवहेलना नही की जा सकती। सोवियत-सघ मे भी राज्य उपक्रमो द्वारा उत्पादन योजनाओ को बनाते समय उपभोक्ताओ की पसन्दगियो पर ध्यान दिया जाता

1 *W A Lewis* Principles of Economic Planning, p 19

है। मारिस डाब के अनुसार वहाँ उपभोक्ताओं के अधिमानों को जानने के लिए प्रदर्शनियो आदि मे जनता के चयन (Choice) को अंकित किया जाता है।

7. श्रमिकों के व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता की समाप्ति—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे श्रमिको को स्वेच्छा से व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नहीं रहती और उन्हे विभिन्न कार्यों मे आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार लगाया जाता है। नियोजको के मतानुसार अनियोजित अर्थव्यवस्था मे भी श्रमिकों को इच्छानुसार व्यवसाय चुनने की सुविधा और सामर्थ्य कहाँ होती है। वहाँ भी जनता द्वारा अपनाए जाने वाले व्यवसाय, अभिभावकों की सम्पत्ति, हैसियत, सामाजिक प्रभाव और सिफारिश पर निर्भर करते हैं। इसके अतिरिक्त नियोजित अर्थव्यवस्था मे भी श्रमिकों को उनकी योग्यता, इच्छा, झुकाव के अनुसार ही कार्य देने का अधिकाधिक प्रयत्न किया जाता है। श्रीमती बारबरा ऊटन के अनुसार, नियोजन के बिना रोजगार का स्वतन्त्रतापूर्वक चयन नही हो सकता, जबकि नियोजन मे ऐसा सम्भव है।

8 संक्रमण-काल मे अव्यवस्था की संभावना—प्रायः यह भी कहा जाता है कि अनियोजित से नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे संक्रमण-काल में पर्याप्त मात्रा मे अव्यवस्था और गडबडी हो जाती है जिससे उत्पादन और राष्ट्रीय आय पर विपरीत प्रभाव पडता है; किन्तु ऐसा किसी आधारभूत परिवर्तन के समय होता है। अत देश के दीर्घकालीन और द्रुत आर्थिक विकास के लिए इस प्रकार की अस्थाई गडबडी वहन करनी ही पडती है।

9 अत्यधिक गोपनीयता—नियोजन के विरुद्ध एक तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि नियोजित अर्थव्यवस्थाएँ गुप्त रूप से संचालित की जाती हैं और इनमे गोपनीयता को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है जिससे जनता का अपेक्षित सहयोग नही मिल पाता है। किन्तु यह तर्क भी निराधार है। साम्यवादी रूस मे भी नियोजन नीचे से प्रारम्भ किया जाता है जिसके निर्माण में कारखानो के श्रमिको और सामूहिक कृषकों का हाथ होता है। इसके अतिरिक्त योजनाएँ सदा ही विचार-विमर्श, वाद-विवाद आदि के लिए जनता के समक्ष रखी जाती है और उन पर सुझाव आमन्त्रित किए जाते हैं। जनतान्त्रिक नियोजन मे तो नियोजन के सभी स्तरो पर जनता को सम्बन्धित किया जाता है और उसे अधिकाधिक जानकारी दी जाती है।

10. राजनीतिक कारणों से अस्थिरता का भय—नियोजित *अर्थव्यवस्था* राजनीतिक कारणों से भी अस्थिर होती है। जो राजनीतिक दल इसे चाहता है, इसके सत्ता से अलग होते ही नियोजन का त्याग किए जाने की सम्भावना हो सकती है क्योंकि नई सरकार नियोजन के पक्ष मे न हो। इस परिवर्तन के कारण *अर्थव्यवस्था* को हानि उठानी पडती है। प्रो जेक्स (Jewkes) के अनुसार राजनीतिक अस्थिरता के ऐसे वातावरण मे दीर्घकालीन औद्योगिक परियोजनाएँ नही पनप सकती हैं। किन्तु आर्थिक नियोजन एक अच्छी चीज है और *कोई भी अच्छी चीज़ को हर राजनीतिक* दल मानता है। हां, नियोजन को लागू किए जाने के तरीके में अन्तर हो सकता है।

11 सदैव किसी न किसी प्रकार के आर्थिक संकट की उपस्थिति—आलोचकों के अनुसार नियोजित अर्थव्यवस्था मे सदैव किसी न किसी प्रकार का सकट विद्यमान रहता है, किन्तु अनियोजित अर्थव्यवस्था कौनसी आर्थिक प्रवृत्ति के सकटो से मुक्त रहती है। इसमे सदैव मुद्रा-स्फीति, मुद्रा-सकुचन, बेकारी, व्यापार चक्र, पदार्थो का अभाव, वर्ग-सघर्ष आदि सकट बने ही रहते हैं। क्या यह एक तथ्य नही है कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था मे युद्धोत्तर-काल मे अनेक व्यापारिक उतार-चढ़ाव आए। यह भी एक तथ्य है कि वहाँ इस प्रकार के सकटो से अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए प्रशासनिक व्यय सघ सगठन का निर्माण किया गया है। वस्तुत नियोजित की अपेक्षा अनियोजित अर्थव्यवस्था अधिक सकट ग्रस्त रहती है।

12. बहु-वर्षीय नियोजन अनुचित है—इस परिवर्तनशील ससार मे परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। साथ ही, भविष्य भी अनिश्चित होता है। किन्तु योजना मे बहुधा बहु-वर्षीय उदाहरणार्थ पाँच या सात इसी प्रकार कई वर्षो के लिए बनाई जाती हैं। इस बीच परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ बदल जाती हैं। परिणामस्वरूप, नियोजन न केवल निरर्थक अपितु हानिप्रद भी हो सकता है किन्तु इस आलोचना मे कोई सार नही है, क्योकि बहुधा योजनाएँ लचीली होती हैं और उनमे परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता है।

13 अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष की संभावना—व्यक्तिगत राष्ट्रो द्वारा अपनाए गए राष्ट्रीय नियोजन से अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य और सघर्ष उत्पन्न हो सकता है। प्रो रॉबिन्स (Prof Robins) के अनुसार राष्ट्रीय नियोजन का विश्व अर्थव्यवस्था पर बहुत गम्भीर अस्तव्यस्त प्रभाव पडता है। वस्तुत अधिकांश देशो द्वारा राष्ट्रीय नियोजन अपनाने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे सकुचन श्रमिको की अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता मे बाधाएँ, पूँजी के विमुक्त प्रवाह पर अवरोध बढते हैं जिससे अन्त मे, राष्ट्रो मे पारस्परिक तनाव और वैमनस्य का वातावरण पनपता है किन्तु वस्तुत यह आलोचना निराधार है। अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष राष्ट्रीय नियोजन से नही, उग्र राष्ट्रवाद से उत्पन्न होता है जो अनियोजित अर्थव्यवस्था मे भी हो सकता है। वास्तव मे नियोजन के परिणामस्वरूप पारस्परिक सहयोग बढता है। अच्छी योजनाएँ प्रस्तुत करने और नियोजित पद्धति को अपनाने के कारण ही भारत को विकसित देशो, विश्व बैंक तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय-सस्थाओ से सहायता प्राप्त हुई है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के पक्ष और विपक्ष मे उक्त तर्कों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि नियोजन का पक्ष प्रबल है और जो कुछ तर्क इसके विरुद्ध प्रस्तुत किए गए है वे अधिक सशक्त नही है। अनियोजित अर्थ व्यवस्था के पक्ष मे प्रस्तुत किए जाने वाले तर्क जैसे अर्थव्यवस्था की स्वय सचालकता, उपभोक्ता की सार्वभौमिकता और बाजार तान्त्रिकता का मुक्त कार्यवाहन आदि बातें भी सीमित मात्रा मे ही सही हैं। अनियोजित अर्थ व्यवस्था मे असमानता, अस्थिरता असुरक्षा और एकाधिकार आदि कई बुराइयाँ होती हैं जिन्हे केवल उपचार से ही दूर नही किया जा सकता है अत इन बुराइयो की जड अनियोजित अर्थ व्यवस्था का ही समाप्त कर नियोजित अर्थ व्यवस्था की स्थापना ही श्रेयस्कर है।

नियोजन के लिए निर्धारित की जाने वाली बात (Tasks of Planning)

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार के नियोजन मे अधिकतम आर्थिक वृद्धि सम्भव है—केन्द्रित नियोजन म अथवा विकेन्द्रित नियोजन मे ? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। केन्द्रित नियोजन (Centralised Planning) मे, समस्त आर्थिक निर्णय केन्द्रीय सरकार द्वारा लिए जाते हैं, जबकि विकेन्द्रित नियोजन मे, निर्णय लेने की सत्ता व्यक्तिगत इकाइयो मे निहित होती है। पूर्ण केन्द्रित नियोजन अथवा पूर्ण विकेन्द्रित नियोजन असामान्य स्थितियाँ हैं। वास्तव मे, आर्थिक नियोजन राज्य व निजी उद्यम दोनो का सयुक्त फलन है। किसी देश से सम्बन्धित आर्थिक निर्णयो मे सरकार व निजी उद्यम का पृथक्-पृथक् तथा दोनो का सयुक्त अनुपात कितना रहता है ? यह राजनीति का प्रश्न है तथा प्रत्येक देश मे इस सम्बन्ध मे भिन्नता पाई जाती है। इसी प्रकार उत्पादन के कुछ साधनो का स्वामित्व सरकार तथा कुछ का निजी उद्यम के हाथो मे पाया जाता है। आर्थिक नियोजन किसी भी प्रकार का हो, सभी मे निम्नलिखित पाँच बातें निर्धारित की जाती है—

(1) वृद्धि के लक्ष्यो का निर्धारण (Fixing of the Growth Targets)
(2) अन्तिम माँग व अन्तः उद्योग माँग का निर्धारण (Determination of Final and Inter industry Demand)
(3) विनियोग लक्ष्यो का निर्धारण (Determination of Investment Targets)
(4) योजना के लिए साधनो का सग्रह (Mobilisation of Resources for the Plan)
(5) परियोजनाओ का चुनाव (Project Selection)

1 वृद्धि के लक्ष्यो का निर्धारण (Fixing of the Growth Targets)—आय-वृद्धि, रोजगार-वृद्धि, उत्पादन-वृद्धि आदि लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु आर्थिक आयोजन किया जाता है। किसी देश की आर्थिक योजना के आय, रोजगार, उत्पादन आदि से सम्बन्धित उद्देश्यो को एक सुनिश्चित व अर्थ युक्त दिशा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इन उद्देश्यो को सख्यात्मक लक्ष्यो म (Quantified Targets) परिवर्तित किया जाए। योजना के उद्देश्य जब सख्यात्मक रूप मे परिवर्तित कर दिए जाते हैं, तब वे योजना के लक्ष्य कहे जाते हैं (Targets are quantified objectives)।

एक योजना के अन्तर्गत लक्ष्यो का निर्धारण, उत्पादन, विनियोग, रोजगार, निर्यात, आयात आदि से सम्बन्धित हो सकता है। योजना के लक्ष्य पूरे देश के स्तर पर क्षेत्रानुसार या विशेष औद्योगिक इकाइयो अथवा परियोजनाओ के लिए निर्धारित किए जा सकते हैं। लक्ष्यो का निर्धारण, उत्पादन अथवा उत्पादन कारको की भौतिक इकाइयो के या मूल्य-इकाइयो के रूप मे किया जाता है। लक्ष्यो का निर्धारण कच्चे माल की मात्रा, श्रम-शक्ति, प्रशिक्षण सुविधाएँ, घरेलू तथा विदेशी मुद्रा मे उपलब्ध

वित्तीय कोष व अन्य साधनो की मात्रा को निश्चित करने मे सहायक होते हैं। निर्धारित लक्ष्यो के अनुसार ही इन साधनो का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे आवटन किया जाता है।

कुछ योजनाएँ कतिपय सामूहिक लक्ष्यों (Aggregative Targets) तक सीमित होती हैं जबकि कुछ अन्य योजनाओ के अन्तर्गत लक्ष्यो की एक लम्बी सूची तैयार की जाती है। उदाहरणार्थ युगोस्लाविया की पचवर्षीय योजनाओ मे लगभग 600 वस्तु-समूहो से सम्बन्धित लक्ष्यो को असामान्य रूप से विस्तृत विवरण के साथ निर्धारित किया गया है। किन्तु लक्ष्यो की सख्या अधिक बडी नही होनी चाहिए, क्योकि बडी सख्या मे निर्धारित विस्तृत ब्यौरे वाले लक्ष्यो को प्राप्त करना अनेक कठिनाइयो से पूर्ण होना है। लेविस के मतानुसार 'लक्ष्यो की एक लम्बी सूची बनाना और इसे प्रकाशित करना अधिक से अधिक अच्छे रूप मे मात्र एक अनुमान या भावी परिकल्पना (Forecast or a Projection) हो सकता है तथा अपने निकृष्टतम रूप मे केवल एक गणितीय परम्परा-मात्र रह जाता है जिसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही होता है।"[1]

2 अन्तिम माँग व अन्त उद्योग माँग का निर्धारण (Determination of Final and Inter industry Demand)—वृद्धि के लक्ष्यो को निर्धारित करने के बाद विकास-दर निश्चित की जाती है। विकास-दर के निर्धारण के पश्चात् सेवाओ की माँग म वृद्धि व वस्तुओ की माँग मे वृद्धि को पृथक् रूप से ज्ञात किया जाता है तथा राष्ट्रीय विकास-दर को क्षेत्रीय विकास दरो मे विभक्त किया जाता है। इस कार्य मे दो तकनीकी प्रक्रियाएँ की जाती है—

(1) अन्तिम उत्पादन का निर्धारण

(2) अन्त क्षेत्रीय माँग का निर्धारण

उपभोक्ताओ द्वारा अन्तिम माँग व अन्त क्षेत्रीय माँग का योग वस्तु की कुल माँग को प्रकट करता है। अत कुल माँग के भावी अनुमानो के लिए उपभोक्ता की माँग तथा अन्त क्षेत्रीय माँग के अनुमान लगाना आवश्यक है। कुल माँग के अनुमान माँग की आय-लोच की सहायता से लगाए जा सकते हैं। मान लीजिए भोजन व वस्त्र की आय-लोच—क्रमश 6 व 1 5 दी हुई हैं। इस स्थिति म प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 10% होती है तो भोजन की माँग मे वृद्धि $6 \times 10 = 6\%$ तथा इसी प्रकार वस्त्र की माँग मे $1 \cdot 5 \times 10 = 15\%$ वृद्धि होगी। जब इस तरह प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि तथा आय की लोचें दी हुई हो तो प्रत्येक वस्तु की माँग को ज्ञात किया जा सकता है। सब वस्तुओ की माँग का योगफल कुल माँग होती है। कल माँग को ज्ञात करने की इस विधि मे दो बडे दोष हैं—(1) यह कीमत के परिवर्तनो पर विचार नही करती है। (2) इसमे आय की लोच को योजनावधि के लिए स्थिर माना जाता है।

1 *W Arther Lewis* Principles of E onomic Planning pp 108 109

अन्त उद्योग माँग के अनुमानो के लिए आदा प्रदा प्रणाली (*Input output* System) अपनाई जाती है। इस प्रणाली मे आदा प्रदा के अनुपात स्थिर माने जाते हैं। आदा प्रदा के इन अनुपातो को तकनीकी गुणांक (Technical Coefficients) *कहा जाता है। मैट्रिक्स की भाषा मे इन गुणांको को 'Aij' मे प्रगट किया जाता है।* इन तकनीकी गुणांकों के आधार पर अन्त-उद्योग माँग की सगणना की जाती है। तकनीकी गुणांको के प्रयोग का एक बडा दोष यह है कि इन गुणांको को स्थिर *माना जाता है। यह एक दोषपूर्ण मान्यता है क्योंकि साधन बदलते हैं, तकनीकी* बदलनी है अत गुणांको का परिवर्तित होना स्वाभाविक है।

3 विनियोग लक्ष्यों का निर्धारण (Determination of Investment Targets)—*माँग-निवारण के पश्चात् दूसरा प्रश्न भौतिक लक्ष्यों को विनियोग* लक्ष्यो मे परिवर्तित करने का है। इस कार्य के लिए पूँजी-गुणांक अथवा पूँजी-उत्पादन अनुपातो की आवश्यकता होती है। इन अनुपातो के योग द्वारा हम कुल *विनियोग-राशि का अनुमान लगा सकते हैं। पूँजी उत्पादन अनुपात, पूँजी की वह* इकाई है जिनकी उत्पादन की एक इकाई उत्पन्न करने के लिए आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि 8 लाख रुपय की पूँजी विनियोग से 2 लाख रु का माल *तैयार होता है या 2 लाख रु का माल तैयार करने के लिए 8 लाख रु की पूँजी* विनियोजित करनी पडनी है तो पूँजी उत्पादन अनुपात इस स्थिति मे 4 1 होगा।

जब कृषि, उद्योग, सेवा आदि क्षेत्रो के भी तक लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं तथा इन क्षेत्रो के लिए पूँजी-*उत्पादन अनुपात निश्चित हो जाते हैं तब सरलता* से प्रत्येक क्षत्र के लिए आवश्यक विनियोग की मात्रा निकाली जा सकती है। प्रो महालनोबिस ने अपने चार क्षेत्रीय विकास माडल मे इसी प्रकार वित्तीय आवटन करने का प्रयास किया है। प्रो महालनोबिस माडल के आधार पर ही द्वितीय *पचवर्षीय योजना मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विनियोग की राशि* निर्धारित की गई है।

4 योजना के लिए साधनो का सग्रह (Mobilisation of Resources for the Plan) —*कुल विनियोग-राशि का अनुमान लगाने के पश्चात् यह देखा* जाता है कि विनियोगो की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार सम्भव हो सकेगी। यह योजना का भाग कहलाता है। आर्थिक नियोजन द्वारा विकास करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और बडी मात्रा मे परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इन कार्यक्रमो को सचालित करने और परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए बडी मात्रा मे साधनो की आवश्यकता होती है। विकास की इन विभिन्न योजनाओ और परियोजनाओ के सचालन के लिए आवश्यक साधनो की व्यवस्था एव उनकी गतिशीलता आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया मे महत्त्वपूर्ण समस्या है। डा राज के अनुसार, 'एक योजना *रद्दी के बराबर है यदि इसमे निर्धारित विकास का कार्यक्रम साधनो के एकत्रित करने* के कार्यक्रम पर आधारित और समन्वित नहीं किया हो।"

आर्थिक विकास के लिए राजकीय, मानवीय और वित्तीय साधनो की

आवश्यकता होती है। इन साधनो का अनुमान और उनको गतिशील बनाना मुख्यत निम्नलिखित बातो पर निर्भर करता है—(i) राजवित्त की मशीनरी, (ii) उद्देश्यो की प्रकृति, (iii) योजनावधि, (iv) श्रम और पूंजी की स्थिति, (v) शिक्षा एव राष्ट्रीय चेतना, (vi) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, (vii) मूल्यस्तर और जनता की आर्थिक दशा, (viii) विदेशी विनिमय कोष, (ix) सरकार की आर्थिक स्थिति, एव (x) आर्थिक विषमता की मात्रा।

5 परियोजनाओ का चुनाव (Project Selection)—वित्तीय व्यवस्था के पश्चात् विनियोग-परियोजनाओ (Investment Projects) का चुनाव किया जाता है। विनियोग परियोजनाएँ विनियोगो के उत्पादन से जोड़ने वाली शृंखला का कार्य करती है। किन्तु परियोजना-चुनाव एक तकनीकी कार्य है जिसमे परियोजना के लिए स्थान का चुनाव, तकनीकी का चुनाव, बाजारो का चुनाव आदि तकनीकी निर्णय सम्मिलित हैं। परियोजनाओ का चुनाव योजना-निर्माण का पाँचवाँ बडा कार्य है।

प्राय किसी योजना की मूलभूत कमजोरी परियोजनाओ के चयन को लेकर होती है। ठोस व लाभदायक परियोजनाओ के अभाव मे योजना असफल रहती है। पाकिस्तान योजना आयोग के अधिकारी डॉ महबूब उल हक के अनुसार 'पहली और दूसरी योजनाओ की कमजोरी यह रहती है कि आयोजन का निर्माण गहराइयो मे नही है। एक ओर जहाँ विभिन्न क्षेत्रो मे ताल-मेल रखते हुए एक समष्टि योजना (Aggregative Plan) का प्रारूप निर्मित करने मे पूरे प्रयत्न किए गए किन्तु दूसरी ओर योजना के विभिन्न क्षेत्रो के प्रारूपो को सुविचारित व सुनियोजित परियोजनाओ से परिपूरित करने के प्रयत्न नहीं हुए।"

ग्वाटेमाला ने सन् 1960 मे एक सार्वजनिक विनियोग कार्यक्रम का उद्घाटन किया, किन्तु एक वर्ष बाद ही अमेरिकी राज्यो के सगठन ने यह प्रतिवेदित किया कि "विभिन्न मत्रालयो के लिए पूर्ण विकसित परियोजनाओ को पर्याप्त सख्या मे ज्ञात करना कठिन हो रहा है।"

परियोजनाओ का चयन करने की अनेक विधियाँ हैं। सामान्यत परियोजनाओ का चयन वर्तमान मूल्य-विधि अथवा लागत-लाभ विश्लेषण विधि द्वारा किया जाता है।

6 योजना की क्रियान्विति—योजना के क्रियान्वयन का यह कार्य सरकारी विभागो, सरकारी और गैर-सरकारी एजेन्सियो द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमो का सचालन सरकार या उसकी एजेन्सियो द्वारा तथा निजी-क्षेत्र के कार्यक्रम निजी उपक्रमियो द्वारा पूर्ण किए जाते हैं। सरकार भी इन्हे निर्धारित नियमानुसार सहायता देती है। इस प्रकार योजना की सफलता बहुत कुछ इसी अवस्था पर निर्भर होती है। अनेक देशो मे योजना-निर्माण पर अधिक एव क्रियान्वयन पर कम ध्यान दिया जाता है। अत योजना की सफलता के लिए इस स्तर पर कोई निष्क्रियता एव शिथिलता नही बरती जानी चाहिए।

योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समय समय पर उसके सचालन और उसकी प्रगति का मूल्यांकन किया जाता रहे। अत समय समय पर इस बात का लेखा-जोखा लिया जाता है कि योजना मे लक्ष्यो के अनुपात मे कितनी प्राप्ति हुई और उसमे कमियाँ कहाँ और क्यो है ? इसके लिए उत्पादन की प्रत्येक शाखा की तांत्रिक और आर्थिक दोनो दृष्टियो से समालोचना की जानी चाहिए। भारत मे योजना के मूल्यांकन का कार्यक्रम 'मूल्यांकन सगठन' (Programme Evaluation Organisation) द्वारा किया जाता है।

नियोजन की सफलता की शर्तें
(Conditions for Success of Planning)

आर्थिक विकास के लिए आधुनिक युग मे नियोजन कई अर्द्ध-विकसित देशो मे अपनाया जा रहा है। किन्तु नियोजन कोई ऐसी प्रणाली नही है जिसके द्वारा स्वयमेव ही आर्थिक विकास हो जाए। योजनाओ की सफलताओ के लिए कुछ शर्तों का होना आवश्यक है। सफलता की ये शर्तें विभिन्न देशो और परिस्थितियो के अनुसार भिन्न भिन्न होती हैं। किन्तु सामान्य रूप से ये शर्तें सर्वत्र आवश्यक हैं—

1 पर्याप्त एव सही आँकडे और सूचनाएँ—नियोजको को योजना निर्माण और क्रियान्वयन के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओ का, वर्तमान परिस्थितियो का तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओ का ज्ञान होना चाहिए। वर्तमान स्थिति क्या है और इसमे कितना सुधार किया जाना चाहिए ? यह सुधार किस प्रकार किया जा सकता है और इसके लिए कौन से साधनो की कितनी मात्रा मे आवश्यकता है। इन सब बातो का निर्णय विश्वसनीय और पर्याप्त आँकडो के आधार पर ही किया जा सकता है अत नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन, उपभोग, आय, व्यय, बचत, विनियोग, उपलब्ध कच्चे माल, शक्ति के साधनो की मात्रा, बाजार की माँग, आयात निर्यात मूल्य स्तर, जनसख्या आदि के बारे मे विश्वसनीय और पर्याप्त आँकडो का सकलन किया जाए। असत्य तथ्यो और सूचनाओ के आधार पर बनाई गई योजनाएँ असफल हो सकती हैं। अतः सांख्यिकीय स्थिति ऐसी होनी चाहिए जो नियमित रूप से निरन्तर सूचना प्रदान करती रहे ताकि परिस्थितियो मे परिवर्तन आने पर योजनाओ म भी यथासमय समायोजन किया जा सके।

2. सुनिश्चित और स्पष्ट उद्देश्यो का होना—नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सुनिश्चित और सुस्पष्ट उद्देश्य निश्चित किए जाएँ जो देश की आवश्यकताओ के अनुरूप हो। परिस्थितियो के अनुरूप उद्देश्यो और लक्ष्यो का निर्धारण नही करने से पूर्ण रूप से वे परिपूर्ण नही हो पाते। इसी प्रकार, यदि लक्ष्य सुनिश्चित और स्पष्ट नही हुए तो वांछनीय दिशा मे तत्परता के साथ प्रयत्न नही किए जाएँगे। परिणामस्वरूप लक्ष्यो की पूर्ति अधूरी होगी तथा नियोजन असफल हो जाएगा। अत परिस्थितियो के उपयुक्त तथा सुनिश्चित उद्देश्य होने चाहिए। साथ ही परिस्थितियो मे परिवर्तन की गुंजाइश होनी चाहिए।

3 **नियोजन माँग विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए**—आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे विभिन्न उत्पादक इकाइयो का विस्तार होता है और उत्पादन मे वृद्धि होती है। अत विकास उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे विनियोग, कच्चे माल का उपयोग और रोजगार की मात्रा मे वृद्धि होती है जिससे उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ मौद्रिक आय बढती है। किन्तु ऐसी स्थिति मे आय उपार्जित करने वाले विभिन्न वर्गों के आय-वितरण की प्रकृति मे भी परिवर्तन होता है, क्योकि इस प्रक्रिया के विभिन्न क्षेत्र या उत्पादक इकाइयो का विकास विभिन्न मात्रा मे हो सकता है यहाँ तक कि कुछ के सकुचन की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अत इस विकास प्रक्रिया की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की उत्पादित की गई इन वस्तुओ और सेवाओ की माँग और पूर्ति के मध्य सन्तुलन रखा जाए।

4 **प्राथमिकताओं का निर्धारण (Fixing of Priorities)**—आर्थिक नियोजन को अपनाने वाले कार्यक्रम और आवश्यकताएँ अनन्त होते हैं किन्तु भौतिक और वित्तीय साधन अपेक्षाकृत सीमित होते हैं अत वैज्ञानिक नियोजन की एक *महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि इन विभिन्न कार्यक्रमों* मे देश की आवश्यकताओ और परिस्थितियो के अनुसार प्राथमिकताएँ निर्धारित कर ली जाएँ। नियोजन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि करना है, इस हेतु देश की समाधन स्थिति, आवश्यकताएँ और विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उद्योगो के विकास को प्राथमिकता और महत्त्व दिया जाना चाहिए। योजना मे ऐसी परियोजनाओ को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनसे राष्ट्रीय कल्याण में अधिकतम योग प्राप्त हो सके। योजना मे यह निश्चय कर लिया जाना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रो मे से किस क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए जैसे उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जाए अथवा कृषि को इन विभिन्न क्षेत्रो (Sectors) मे से भी यह निर्णय किया जाना चाहिए कि इनके किस पहलू पर अधिक बल दिया जाए और किन परियोजनाओ पर पहले ध्यान दिया जाए। इस प्रकार साधनो, विदेशी विनिमय की उपलब्धि राष्ट्रीय महत्त्व के सदर्भ मे विवेकपूर्ण निर्णय के आधार पर प्राथमिकताएँ निर्धारित की जानी चाहिए और साधनो का आवटन भी इसी के अनुसार किया जाना चाहिए। प्राथमिकताओ का निर्धारण जितना उपयुक्त होगा, योजना की सफलता उतनी ही अधिक होगी।

5. **साधनो की उपलब्धि (Availability of Resources)**—योजना मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। इनकी सफलता पर ही योजना की सफलता निर्भर होती है। योजना के इन कार्यक्रमो और विभिन्न परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे भौतिक (Physical) और वित्तीय (Financial) साधनो की आवश्यकता होती है। योजना की सफलता के लिए बडी मात्रा मे भौतिक साधन जैसे कच्चा माल, मशीनें, यन्त्र, औजार, रसायन, इस्पात, सीमेंट, तकनीकी जानकारी आदि की आवश्यकता होती है जिसे

देश और विदेश से उपलब्ध किया जाना चाहिए। इसी प्रकार वित्तीय साधनो की आवश्यकतानुसार उपलब्धि भी बहुत महत्त्वपूर्ण है जो आन्तरिक या बाह्य स्रोतो से प्राप्त की जानी चाहिए। वित्तीय साधनो की व्यवस्था बडा दुष्कर कार्य होता है क्योकि इसमे सफलता कई बातो पर निर्भर करती है जैसे राष्ट्रीय आय की मात्रा, पूंजी-उत्पादन का अनुपात (Capital-output ratio), आन्तरिक बचत और विनियोग-दर, भुगतान सन्तुलन की मात्रा, जनता की कर-देय क्षमता, सरकार की कर एकत्रीकरण की क्षमता, योजनाओ मे जनता का विश्वास, सरकार की आर्थिक स्थिति, घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमा, विदेशी सहायता आदि। अत योजनाओ की सफलता इन भौतिक और वित्तीय साधनो की उपलब्धि पर अधिक निर्भर करती है। कई बार साधनो के अभाव मे योजना के कार्यक्रमो मे कटौती करनी पडती है।

6. विभिन्न क्षेत्रो मे सन्तुलन बनाए रखना (Maintaining Balance Between Different Sectors)—योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो और उद्योगो का सन्तुलित विकास किया जाए। अर्थव्यवस्था मे एक उद्योग और यहाँ तक कि उत्पादक की एक इकाई भी मांग और पूर्ति के द्वारा अन्य से परस्पर सम्बन्धित होती है। अत उद्योग का विकास तब तक असम्भव है जब तक कि अन्य के उत्पादन मे भी वृद्धि न हो। एक उद्योग का द्रुतगति से विकास करने और अन्य उद्योगो की अवहेलना करने से अर्थव्यवस्था मे कई प्रकार की जटिलताएँ और अवरोध उत्पन्न हो जाते है। अत नियोजन की सफलता के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, विद्युत्, सामाजिक सेवाओ आदि का सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए। इसी प्रकार देश के समस्त प्रदेशो या भागो का भी सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए। वास्तव म नियोजन की सफलता इसी बात मे निहित है।

7 उचित आर्थिक सगठन (Suitable Economic Organisation)—उचित आर्थिक सगठन की उपस्थिति मे ही नियोजन सफल हो सकता है। अत नियोजन की सफलता के लिए उचित आर्थिक ही नही, अपितु सामाजिक सगठन का भी निर्माण किया जाना चाहिए। अर्द्ध विकसित देशो मे इस दृष्टि से वर्तमान सामाजिक आर्थिक सगठन और सरचना के पुनर्गठन की आवश्यकता है। उपयुक्त वातावरण के अभाव मे आर्थिक प्रगति असम्भव है। इसलिए, विकासार्थ नियोजन की सफलता के लिए वर्तमान आर्थिक सगठन मे इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए और नवीन आर्थिक सस्थाओ का सृजन करना चाहिए जिससे योजनाएँ सफल और आर्थिक विकास तीव्रता से हो सके। इस सम्बन्ध मे अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण मे वृद्धि, सहकारिता का विकास, भूमि सुधार कार्यक्रमो की क्रियान्विति, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, विदेशी व्यापार का पुनर्गठन आदि कदम अधिकाश अर्द्ध विकसित देशो के लिए आवश्यक हैं।

8 योजना के क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था (Proper Machinery for Plan Implementation)—योजना निर्माण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण क्रियान्वयन

की ग्रवश्यता है। ग्रत इसको क्रियान्वित करने ग्रौर निर्धारित कार्यक्रमो पर पूर्ण रूप से ग्रमल कराने के लिए सरकारी ग्रौर निजी दोनो क्षेत्रो मे कुशल सगठनो का निर्माण ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। योजना की सफलता उन व्यक्तियो पर निर्भर करती है जो इसे कायरूप मे परिणत करने मे सलग्न होते है। ग्रत यह कार्य ऐसे व्यक्तियो को सुपुर्द किया जाना चाहिए जो योजना के उद्देश्यो को समझते हो उनम ग्रास्था रखते हो ग्रौर जिनमे योजना के कार्यक्रमो को सम्पन्न करने के लिए ग्रावश्यक कुशलता, ग्रनुभव, ईमानदारी ग्रौर कत्तव्यपरायणता हो। योजना के सचालन का मुख्य कार्य सरकार का होता है ग्रौर इसके लिए 'दृढ सशक्त ग्रौर भ्रष्टाचार रहित प्रशासन' की ग्रावश्यकता है। ग्रर्द्ध विकसित देशो म बहुधा निर्बल सरकार होती है, ग्रान्तरिक ग्रशान्ति होती है ग्रौर कभी कभी विदेशी सरकार उनकी योजनाग्रो मे हस्तक्षेप करती है ग्रौर उनम ग्रपनी इच्छानुसार परिवर्तन पर बल देती है। नियोजन की सफलता के लिए इन परिस्थितियो की समाप्ति ग्रावश्यक है। नियोजन की सफलता के लिए यह भी वांछनीय है कि वहाँ की केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारो की ग्रपेक्षा शक्तिशाली हो ग्रौर उसे विशेष ग्रधिकार मिले हो जिनसे वह ग्रपनी राजनीतिक इकाइयो मे भी योजनाग्रो को लागू करने मे सफल हो सके।

9. जनता का सहयोग (Public Co operation Forthcoming)—योजनाग्रो की सफलता के लिए यह ग्रावश्यक है कि उसे पूरा जन समर्थन ग्रौर जन सहयोग मिले। प्रजातान्त्रिक नियोजन मे तो इसका विशेष महत्त्व है, क्योकि वहाँ सरकार को भी शक्ति जनता द्वारा प्राप्त होती है। प्रो ग्रार्थर लविस के ग्रनुसार 'जन उत्साह ग्रार्थिक विकास के लिए स्निग्धता प्रदान करने वाला तेल ग्रौर पैट्रोल दोनो ही है। यह एक ऐसी गतिमान शक्ति है जो लगभग समस्त बातो को सम्भव बनाती है।" योजनाग्रो मे जनता द्वारा ग्रधिकाधिक सहयोग तब प्राप्त होता है जब वह योजनाग्रो म ग्रपने ग्रापको भागीदार (Participant) समझे। वह यह समझे कि "यह योजना हमारी है, हमारे लिए है, हमारे द्वारा है तथा इससे जनता को ही समान रूप से लाभ मिलने वाला है।" साथ ही, उन्हे यह भी विश्वास होना चाहिए कि योजनाएँ उपयुक्त है ग्रौर योजनाग्रो मे धन का दुरुपयोग नही किया जा रहा है। ऐसा तभी हो सकता है, जबकि योजना निर्माण ग्रौर क्रियान्वयन मे जनता का सहयोग हो। भारतीय योजनाग्रो मे जन-प्रतिनिधि सस्थाग्रो के रूप मे विभिन्न स्तरो पर ग्रामपचायतो, पचायत समितियो जिला परिपदो तथा राज्य ग्रौर केन्द्रीय विधान मण्डलो को सम्बन्धित किया जाता है। जनता का समर्थन ग्रौर लोक सहयोग प्राप्त करने का एक तरीका यह भी है कि योजनाग्रो का ग्रधिकाधिक प्रचार किया जाए जिससे जनता 'योजनाग्रो की सिद्धि मे ग्रपनी समृद्धि' समझे।

10 उच्च राष्ट्रीय चरित्र (High National Character)—राष्ट्रीय चरित्र की उच्चता लगभग सभी बातो को सम्भव बनाती है। योजना की सफलता के लिए भी यह तत्त्व ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि देश मे परिश्रमशील, कर्त्तव्य-परायण, ईमानदार ग्रौर राष्ट्रीयता की भावना से युक्त उच्च चरित्र वाले व्यक्ति होगे तो

योजनाओं की सफलता की अधिक सम्भावनाएँ होंगी किन्तु, अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में उच्च राष्ट्रीय चरित्र का अभाव होता है। वहाँ स्वदेश से अधिक स्व-उदर को समझा जाता है। ऐसी स्थिति में योजनाओं में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। वस्तुत: निर्धनता के दयनीय निम्न-स्तर पर उच्च-नैतिकता की बात करना व्यावहारिकता की उपेक्षा करना है, किन्तु इस मध्यावधि में भी शिक्षा, प्रचार आदि के द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है।

11. राजनीतिक एवं प्राकृतिक अनुकूलता (Favourable Political and Natural Conditions)—आर्थिक विकास के लिए अपनाए गए नियोजन के लिए राजनीतिक परिस्थितियों का अनुकूल होना आवश्यक है। विदेशों से विशेष रूप से विकसित देशों से अच्छे सम्बन्ध होने पर अधिक विदेशी सहायता और सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। अर्द्ध-विकसित देशों के लिए इसका बहुत महत्त्व है। किन्तु यदि किसी देश को अन्य देशों के आक्रमण का मुकाबला करना पड रहा हो या इस प्रकार की आशंका हो तो उसके साधन आर्थिक विकास की अपेक्षा सुरक्षा प्रयत्नों पर व्यय किए जाते हैं। परिणामस्वरूप, आर्थिक नियोजन की सफलता सदिग्ध हो जाती है। तृतीय योजना की सफलता पर भारत पर चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों का विपरीत प्रभाव पडा। इसी प्रकार बाढ, भूकम्प, अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप भी अच्छी से अच्छी योजनाओं को असफल बना देते हैं। अर्द्ध-विकसित देशों में तो इन प्राकृतिक प्रकोपों का विशेष कुपरिणाम होता है, क्योंकि ऐसी अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में प्रकृति का प्रभाव अधिक होता है। भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की कम सफलता का एक प्रमुख कारण सूखा, बाढ और मौसम की खराबी रही है। गत वर्षों में अर्थव्यवस्था में सुधार के जो लक्षण प्रकट हुए हैं, उसका बडा श्रेय भी प्रकृति की अनुकम्पा को ही है।

अन्य शर्तें—नियोजन सफलता के लिए अपर्याप्त शर्तों के अतिरिक्त निम्न-लिखित अन्य शर्तों का होना भी आवश्यक है—

1. योजना के प्रभावशाली क्रियान्वयन की व्यवस्था और इसके लिए सरकारी व निजी दोनों ही क्षेत्रों में कुशल सगठन का निर्माण।

2. योजना-पूर्ति के समस्त साधनों का उचित मूल्यांकन किया जाए और उत्पादन के लक्ष्यों का निर्धारण उचित व सन्तुलित ढग से हो।

3 दीर्घकालीन और अल्पकालीन नियम यथासम्भव साथ-साथ चलें, अर्थात्, दीर्घकालीन योजना के साथ-साथ वार्षिक योजना भी बनाई जाए, ताकि योजना के विभिन्न वर्षों में साधनों का समान उपयोग हो और समान रूप से प्रगति की जा सके।

4 योजना की उपलब्धियों का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाए, ताकि, कमियों का पता लगा कर उन्हें दूर किया जा सके।

5. विकेन्द्रित नियोजन किया जाए अर्थात्, योजनाएँ स्थानीय स्तर पर बनाई जाएँ और राज्य-स्तर व केन्द्रीय स्तर पर उनका समन्वय किया जाए।

6 योजना के उद्देश्यो, लक्ष्यो, प्राथमिक्ताओ, साधनो आदि का जनता में पर्याप्त प्रचार और विज्ञापन किया जाए तथा लोगो में योजना के प्रति चेतना, जागृति व रुचि उत्पन्न की जाए।

7 नियोजन राष्ट्र के लिए हो, न कि किसी वर्ग विशेष या दल विशेष के लिए।

उपरोक्त आवश्यकताओ (अपेक्षाओ) के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जनसख्या वृद्धि पर उचित नियन्त्रण रखा जाए। जनसख्या का विस्फोट अच्छे से अच्छे नियोजन को असफल बना सकता है। पुनश्च यह भी जरूरी है कि नियोजन को एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया के रूप में ग्रहण किया जाए। एक योजना की सफलता दूसरी एव दूसरी योजना की सफलता तीसरी योजना की सफलता के लिए सीढी तैयार करती है और इस प्रकार उन सीढियो का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है क्योंकि आर्थिक विकास की कोई सीमा नही होती।

7 बचत-दर एवं विकास-दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(Factors Affecting the Saving Rate and the overall Growth Rate)

आर्थिक विकास पूँजी निर्माण दर पर निर्भर करता है। पूँजी निर्माण-दर विनियोग दर द्वारा निर्धारित होती है तथा विनियोग-दर घरेलू बचत और विदेशी सहायता पर निर्भर करती है। विदेशी ऋण देश की अर्थव्यवस्था में ब्याज व मूलधन के भुगतान के रूप में भार स्वरूप समझे जाते हैं। अतः घरेलू बचत ही पूँजी निर्माण का मुख्य स्रोत होती हैं। बचत में वृद्धि आन्तरिक व बाह्य स्रोतों द्वारा की जा सकती है। आन्तरिक स्रोतों के अन्तर्गत बचत में वृद्धि ऐच्छिक रूप में उपभोग में कटौती द्वारा की जा सकती है तथा अनिवार्य रूप से बचत में वृद्धि अतिरिक्त करों तथा सरकार के लिए ऋण देकर की जाती है। अर्द्ध बेरोजगार श्रम को उत्पादन में लगाकर तथा मुद्रा-स्फीति के माध्यम द्वारा भी बचत में वृद्धि सम्भव है। बाह्य स्रोतों के अन्तर्गत आर्थिक विकास की वित्तीय व्यवस्था विदेशी पूँजी के विनियोग, उपभोग वस्तुओं के आयातों में कटौती तथा देश की व्यापार-शर्तों में सुधार द्वारा की जा सकती है।

बचत-दर को प्रभावित करने वाले तत्त्व

1 घरेलू बचत (Domestic Savings)—घरेलू बचत उत्पादन में वृद्धि अथवा उपभोग में कटौती या दोनों प्रकार से बढ़ायी जा सकती है। अर्द्ध-विकसित देश में, देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग, निर्वाह स्तर पर जीवनयापन करता है। इसलिए ऐच्छिक बचत की मात्रा बहुत कम होती है। किन्तु इन देशों में उच्च आय वाले भूस्वामियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों का एक छोटा वर्ग भी होता है, जो प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous Consumption) पर एक बड़ी राशि व्यय करता है। इस प्रकार के उपभोग को प्रतिबन्धित करके बचत में वृद्धि की जा सकती है।

इन देशों में मजदूरी व वेतनभोगी वर्ग के व्यक्तियों की प्रवृत्ति बचत करने की अपेक्षा व्यय करने की अधिक होती है। यह वर्ग भी प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रभावित होता है; फलस्वरूप इस वर्ग की बचत और भी कम हो जाती है।

भूस्वामियो की लगान-आय इन देशो मे उत्तरोत्तर वृद्धि द्वारा हो सकती है किन्तु समाज का यह वर्ग अपनी बचत को उत्पादक-विनियोगो के रूप मे प्रयुक्त नही करता है। विकसित देशो मे लगान भी उत्पादक विनियोगो के लिए बचत का एक स्रोत है।

इस अर्थव्यवस्था मे वितरित व अवितरित दोनो प्रकार के लाभ, बचत के महत्त्वपूर्ण माध्यम होते हैं। "यदि लाभो को बचतो का मुख्य स्रोत माना जाता है तो एक ऐसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय मे, जिसमे बचत दर 5 प्रतिशत से बढकर 12 प्रतिशत हो जाती है, लाभो के अनुपात मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि परिलक्षित होनी चाहिए।"[1]

बचत आय स्तर पर निर्भर करती है। आय के निम्न स्तरो पर बचतें प्राय नगण्य होती हैं। जैसे जैसे आय बढती है, बचत दर मे भी वृद्धि होती है। किन्तु प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से बचत म वृद्धि आवश्यक नही है। बचत आय के वितरण पर निभर करती हैं। लाभ-अर्जित करने वाले साहसियो के वग के उदय के कारण बचत दर मे वृद्धि होती है। यह वग अपने लाभो का पुन विनियोजन करता है। लेविस के अनुसार, "राष्ट्रीय आय मे बचत का अनुपात कवल आय की असमानता का ही फलन नही है, बल्कि अधिक सूक्ष्म रूप मे यह राष्ट्रीय आय मे लाभो के अनुपात का फलन है।"[2]

2 करारोपण (Taxation)—अथव्यवस्था मे अनिवार्य बचत की उत्पत्ति के लिए करो का प्रयोग किया जा सकता है। यदि कर लाभो पर लगाए जाते हैं तो बचत दर कम होती है तथा विनियोगो पर इनका विपरीत प्रभाव होता है। यद्यपि लोगो की बचत को कर कम करते हैं किन्तु सरकार के विनियोग व्यय मे वृद्धि करते हैं, तो ऐसे करो से पूँजी निर्माण दर कम नही होती है। 'जब सरकार लाभो पर भारी दर से कर लगाती है, परिणामस्वरूप, निजी बचत दर कम होती है, तब कुल बचत-दर को गिरने से रोकने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि सरकारी बचत मे वृद्धि की जाए।"[3]

3 सरकार को अनिवार्य ऋण देना (Compulsory Lending to Government)—करो का एक विकल्प सरकार को अनिवार्य ऋण देने की योजना है। एक निश्चित राशि से अधिक उपार्जित करने वाले व्यक्तियो से सरकार उनकी आय का एक भाग, अनिवार्य रूप से ऋण के रूप मे ले सकती है। बचत दर मे वृद्धि का एक साधन यह भी है, किन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सरकारी प्रतिभूतियाँ इस प्रकार की हो जो सम्भावित बचत कर्त्ताओ (Potential Savers) को आकर्षित कर सकें।

1 *W A Lewis* Theory of Economic Growth, p 233
2 *W A Lewis* Ibid, p 227
3 *W A Lewis* Ibid, p 242

4 उपभोग आयातो पर प्रतिबन्ध (Restriction of Consumption Imports)—आयातित-वस्तुओ के उपभोग मे कटौती द्वारा भी बचत दर को बढाया जा सकता है। उपभोग वस्तुओं के आयातो मे कटौती द्वारा विदेशी विनिमय की बचत होगी, पूँजीगत-वस्तुओ के आयात पर व्यय किया जा सकता है। उपभोग-वस्तुओ के स्थान पर, पूँजीगत वस्तुओ के आयातो से आर्थिक विकास दर बढती है। एक ओर जहाँ आयातित उपभोग-वस्तुओ मे कटौती की जाती है, वहाँ दूसरी ओर उपभोग वस्तुओ का घरेलू उत्पादन नही बढने दिया जाना चाहिए अन्यथा बचत दर मे इस तत्त्व से वृद्धि नही हो पाएगी।

5 मुद्रा स्फीति (Inflation)—मुद्रा-स्फीति भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जब मूल्यो मे वृद्धि होती है तब लोग उपभोग मे कटौती करते हैं। परिणामस्वरूप, उपभोग-वस्तुओ का उत्पादन कम होता है। अत उपभोग वस्तुओ के क्षेत्र से साधन-मुक्त होकर पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन के लिए उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार की बचत अनैच्छिक बचतें (Forced Savings) कहलाती हैं।

6 गुप्त-बेरोजगारी को समाप्ति करना (To Remove Disguised Unemployment)—अतिरिक्त-श्रम को निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी-क्षेत्र में स्थानान्तरित करके पूँजी-निर्माण किया जा सकता है। जिन श्रमिको की सीमान्त-उत्पादकता कृषि मे शून्य है, उनको कृषि से हटाकर पूँजी-परियोजनाओ पर लगाया जा सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण निर्वाह-कोष (Subsistence Fund) को पूँजीगत परियोजनाओ में प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु इस प्रक्रिया मे कुछ बाधाएँ आती हैं। प्रथम, गैर-कृषि क्षेत्र मे स्थानान्तरित श्रमिक पूर्वापेक्षा भोजन की अधिक मात्रा की माँग करते हैं। द्वितीय, कृषि क्षेत्र मे बचे हुए श्रमिक भी भोजन के उपभोग मे वृद्धि करना चाहते हैं। तृतीय, कृषि क्षेत्र से पूँजीगत परियोजनाओ तक भोजन सामग्री ले जाने की यातायात लागत भी निर्वाह कोष को कम करती है। यदि निर्वाह कोष के इन छिद्रो (Leakages) की पूर्ति गैर-कृषि क्षेत्र से साधनो के सग्रह द्वारा की जा सकती है तो यह व्यवस्था पूँजी-निर्माण का एक श्रेष्ठ स्रोत हो सकती है।

7 विदेशी ऋण (Foreign Borrowing)—विदेशी ऋण दो विधियों द्वारा पूँजी निर्माण करते हैं—(1) विदेशी ऋणो का प्रयोग पूँजीगत सामग्री के आयात के लिए किया जा सकता है, (2) जिस सीमा तक विदेशी ऋणों की सहायता से एक देश अपने आयातो की वृद्धि करता है, उस सीमा तक आयात स्थानापन्नो का उत्पादन तथा देश के निर्यात, घटाए जा सकते हैं। इन उद्योगो के उत्पादन मे गिरावट के कारण जो साधन-मुक्त होते हैं, उनको पूँजीगत-वस्तुओ के क्षेत्र म लगाया जा सकता है। इस प्रकार विदेशी ऋण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पूँजी निर्माण की दर को बढाने मे सहायक होते हैं।

8. विदेशी व्यापार (Foreign Trade)—विदेशी व्यापार भी पूँजी निर्माण की दर को बढाने मे सहायक होता है। यदि निर्यातो के मूल्यो मे वृद्धि होती है तो देश की आयात क्षमता मे भी वृद्धि होती है। यदि आयात-क्षमता मे वृद्धि को

जीवन-वस्तुओं के आयात हेतु प्रयुक्त किया जाता है, तो इससे पूँजी-निर्माण की दर में वृद्धि होती है।

अत. पूँजी-निर्माण को तथा फलत. बचत-दर को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हो सकते हैं—

(1) उत्पादन म वृद्धि अथवा उपयोग मे कटौती, (2) प्रदर्शन प्रभाव, (3) लगान-आय मे वृद्धि, (4) लाभो मे वृद्धि, (5) करारोपण, (6) सरकार को दिया जाने वाला अनिवार्य ऋण, (7) उपभोग आयातो पर प्रतिबन्ध, (8) मुद्रा-स्फीति, (9) गुप्त बेरोजगारी की समाप्ति, (10) विदेशी ऋण तथा, (11) विदेशी व्यापार।

विकास-दर और उसे प्रभावित करने वाले तत्त्व

देश की विकास-दर के निर्धारक तत्त्वों मे बचत भी महत्त्वपूर्ण है। विकास-दर के अन्य निर्धारक-तत्त्वो की विवेचना से पूर्व विकास-दर का सामान्य अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्यत विकास-दर का निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जाता है—

$$\text{विकास-दर} = \frac{\text{बचत}}{\text{पूँजी-गुणांक}}$$

पूँजी-गुणांक अथवा पूँजी-प्रदा अनुपात का आशय पूँजी की उस मात्रा से है, जो उत्पादन की एक इकाई के लिए आवश्यक होती है। पूँजी-उत्पादन अनुपात दो प्रकार के होते हैं—(क) औसत पूँजी-प्रदा अनुपात और (ख) सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात। औसत पूँजी-प्रदा अनुपात का अर्थ देश के कुल पूँजी-सचय तथा वार्षिक उत्पादन के अनुपात म लगाया जाता है। सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात से आशय पूँजी-सचय मे वृद्धि तथा उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि के अनुपात से है।

(क) औसत पूँजी-प्रदा अनुपात के निर्धारक तत्त्व (Factors Determining the Average Capital Output Ratio)—किसी अर्थव्यवस्था मे औसत पूँजी-प्रदा अनुपात विभिन्न तत्त्वो पर निर्भर करता है, जो उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। ये मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1 तकनीकी सुधार (Technological Improvements)—तकनीकी सुधारो द्वारा पूँजी की उत्पादकता म वृद्धि होती है। इससे पूँजी-प्रदा अनुपात घटता है।

2. श्रम-उत्पादकता (Labour Productivity)—यदि श्रम उत्पादकता मे वृद्धि होती है, तो पूँजी की पूर्व-मात्रा से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। इस स्थिति मे पूँजी-प्रदा अनुपात घटता है।

3. विभिन्न क्षेत्रो के सापेक्ष महत्त्व मे परिवर्तन (Shift in the Relative Importance of Different Sectors)—औसत पूँजी-प्रदा अनुपात, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के पूँजी-प्रदा अनुपातो पर निर्भर करता है। यदि किसी देश मे

औद्योगिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है तो औद्योगिक क्षेत्र के सापेक्ष महत्त्व में वृद्धि होगी परिणामस्वरूप पूँजी प्रदा अनुपात बढ़ जाएगा।

4 विनियोग का ढंग (Pattern of Investment)—यदि विनियोग-योजना में सार्वजनिक-उपयोग तथा पूँजीगत-वस्तुओं के औद्योगिक विकास पर बल है तो औसत पूँजी-प्रदा अनुपात अधिक होगा। इसके विपरीत, यदि घरेलू उद्योगों तथा कृषि विकास को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो पूँजी प्रदा अनुपात घटेगा।

5 तकनीकी का चुनाव (Choice of Technique)—श्रम-गहन तकनीकी में पूँजी प्रदा अनुपात कम तथा पूँजी-गहन तकनीकी में यह अनुपात अधिक होता है।

(ख) सीमान्त पूँजी-प्रदा अनुपात (Marginal Capital Output Ratio)—कुछ अर्थशास्त्रियों के मतानुसार अर्द्ध-विकसित देशों में यह अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है। अर्थशास्त्री विपरीत मत रखते हैं। इस अनुपात के अधिक होने के निम्नलिखित कारण हैं—

1 पूँजी का दुरुपयोग (Waste of Capital)—अर्द्ध-विकसित देशों में श्रम अकुशल होता है, इसलिए मशीनों का उपयोग कुशलता से नहीं होता है। परिणामस्वरूप उत्पादन कम होता है। इस कारण विकसित अर्थ व्यवस्थाओं की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में यह अनुपात अधिक पाया जाता है।

2 तकनीकी (Technology)—अर्द्ध विकसित देशों में पूँजी उत्पादकता कम होती है। इसका कारण निम्नस्तरीय तकनीकी है। इस कारण उत्पादन की एक इकाई के लिए अधिक पूँजी आवश्यक होती है। इस स्थिति में यह अनुपात बढ़ जाता है।

3 सामाजिक ऊपरी पूंजी (Social Overhead Capital)—अर्द्ध-विकसित देशों में सामाजिक ऊपरी पूंजी के लिए बड़े विनियोग किए जाते हैं। ये विनियोग पूँजी-गहन होते हैं, परिणामस्वरूप पूँजी-प्रदा अनुपात अधिक रहता है। विकसित देशों में भी निर्माण-उद्योगों की अपेक्षा सार्वजनिक उपयोग के उद्योगों में यह अनुपात अधिक होता है। अर्द्ध-विकसित देशों में यह अनुपात और भी अधिक ऊँचा रहता है।

यदि भारी उद्योगों में विनियोग किया जाता है तो पूंजी प्रदा अनुपात अधिक होगा।

निम्नलिखित अवस्थाओं में पूंजी प्रदा अनुपात अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नीचा रहता है—

(i) यदि देश की विकास नीति ऐसी है कि कृषि व लघु उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है तो ऐसी स्थिति में सीमान्त पूंजी प्रदा अनुपात कम रहेगा।

(ii) आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में पूँजी की अल्प राशि के विनियोजन से भी अप्रयुक्त उत्पादन-क्षमता का पूरा उपयोग किया जा सकता है।

परिणामस्वरूप उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होती है । उत्पादन मे इस प्रकार की वृद्धि से पू जी प्रदा अनुपात कम रहेगा ।

(iii) निम्नस्तरीय तकनीकी के कारण अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे प्राय पू जी प्रदा अनुपात अधिक रहता है । किन्तु कभी-कभी जब नई तकनीकी प्रयोग मे आती है तो आश्चर्यजनक लाभ परिलक्षित होते हैं । इसीलिए अधिक पिछडे हुए देशो मे पू जी विनियोजित की जाती है । साथ ही, शिक्षा व प्रशिक्षण पर आवश्यक व्यय किया जाता है, ताकि विकसित देशो की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशो मे अधिक ऊँची विकास दरें प्राप्त की जा सकें । इस मत की पुष्टि मे अर्थशास्त्रियो द्वारा सोवियत रूस व जापान के उदाहरण दिए जाते हैं ।[1]

(iv) जब पू जी का प्रयोग नए प्राकृतिक साधनो के विदोहन (Exploitation) हेतु किया जाता है तो उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप, पू जी-प्रदा अनुपात कम रहता है ।

अत स्पष्ट है कि विकास-दर के दो मूल घटक होते हैं—(1) बचत तथा (2) पू जी-गुणांक । इन घटकों को जो तत्त्व प्रभावित करते हैं, उनसे विकास दर प्रभावित होती है । बचत व पू जी-गुणांक को प्रभावित करने वाले तत्त्वो को ही विकास-दर के निर्धारक तत्त्व कहा जाता है ।

---

1 *W A Lewis* · Ibid, p. 204

वित्तीय-साधनों की गतिशीलता

(Mobilisation of Financial-Resources)

आर्थिक-नियोजन द्वारा विकास करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और विशाल मात्रा मे परियोजनाएं प्रारम्भ की जाती है। इन कार्यक्रमो को सचालित करने एव परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए बडी मात्रा मे साधनो की आवश्यकता होती है। विकास की इन विभिन्न योजनाओ और परियोजनाओ के सचालन के लिए आवश्यक साधनो की व्यवस्था एव उनकी गतिमयता आर्थिक-नियोजन की प्रक्रिया मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इन साधनो के विकास के लिए विकास-दर गतिमयता पर ही निर्भर करती है। यदि ये साधन आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा मे होगे तो विकास की अधिक सम्भावना होगी। इसी प्रकार, इन्हे जितना अधिक योजनाओ के *लिए गतिशील बनाया जा सकेगा, विकास की गति उतनी ही तीव्र होगी।* साधनो की उपलब्धि और उनको गतिशील बनाने की क्षमता की तुलना मे यदि विकास के कार्यक्रम और गति अधिक रखी गई, तो ऐसी योजना की सफलता सदिग्ध रहेगी। डॉ राज *के अनुसार "एक योजना नही के बराबर है, यदि इसमे निर्धारित विकास का कार्यक्रम* साधनो के एकत्रित करने के कार्यक्रम पर आधारित और समन्वित नही किया गया हो।"

साधनो के प्रकार
(Types of Resources)

आर्थिक-विकास के लिए मुख्य रूप से भौतिक साधन, मानवीय साधन और *वित्तीय साधनो की आवश्यकता होती है। 'भौतिक साधन' देश मे स्थित प्राकृतिक* साधनों पर निर्भर करते हैं। एक देश प्राकृतिक साधनो मे जितना सम्पन्न होगा, भौतिक साधनो की उतनी ही प्रचुरता होगी। यद्यपि अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश प्राकृतिक साधनो मे सम्पन्न हैं, तथापि उनका उचित विदोहन नही किया गया है और उनके विकास की व्यापक सम्भावनाएं हैं।

इसी प्रकार, अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे मानवीय साधन भी पर्याप्त मात्रा मे होते हैं। अत योजनाओ का विस्तार, उनकी सफलता और विकास की

गति उनके लिए उपलब्ध वित्तीय साधनो, उनकी गतिमयता, उनके उचित आवटन तथा उपयोग पर निर्भर करती है।

'वित्तीय साधनो का महत्त्व देश के आर्थिक विकास मे बहुत है। आर्थिक योजना के लिए वित्तीय साधन और उनको एकत्रित करने का तरीका योजना सिद्धि हेतु प्रमुख स्थान रखता है। वित्त एक देश के ससाधनो को गतिशील बनाता है चाहे वे भौतिक साधन हो या वित्तीय अथवा आन्तरिक साधन हो या बाह्य।

गतिशीलता को निर्धारित करने वाले कारक (Factors Determining Mobilisation)

साधनो का अनुमान और उनको गतिशील बनाना मुख्यत निम्नलिखित बातो पर निर्भर करता है।[1]

(i) राज वित्त की यन्त्र प्रणाली (Machinery of Public Finance)—यदि देश की अर्थव्यवस्था सुसगठित हो जिसमे विकास हेतु उपयुक्त और कुशल राजकोषीय नीति को अपनाया गया हो तो आन्तरिक साधनो को अधिक सफलतापूर्वक गतिशील बनाया जा सकता है। इसके विपरीत यदि सार्वजनिक वित्त की यन्त्र प्रणाली अकुशल होगी तो अपेक्षाकृत कम साधन जुटाए जा सकेंगे।

(ii) उद्देश्यो की प्रकृति (Nature of Objectives)—उद्देश्य की प्रकृति पर भी साधनो की गतिशीलता निर्भर करती है। यदि योजना का उद्देश्य युद्ध लडना है तो बाह्य साधन कम प्राप्त हो सकेंगे। किन्तु यदि इसका उद्देश्य द्रुत गति से आर्थिक विकास करना हो तो विदेशी साधन भी अधिक गतिशील हो सकेंगे। यदि योजना के लक्ष्य बहुत महत्त्वाकांक्षी होगे तो कुल एकत्रित साधन अधिक होगे और जनता पर भार भी अधिक होगा।

(iii) योजना की अवधि (Period of Plan)—यदि योजना एक वर्षीय है तो कम मात्रा मे कोषो की आवश्यकता होगी और इससे देश के आन्तरिक साधनो पर अधिक दबाव नही पडेगा। किन्तु यदि योजनाओ की अवधि लम्बी होगी तो बडी मात्रा मे साधनो को गतिशील बनाने की आवश्यकता होगी।

(iv) श्रम और पूंजी की स्थिति (Situation with regard to Labour and Capital)—यदि देश मे श्रम शक्ति की बहुलता है तो साधनो को गतिशील बनाने मे श्रम प्रधान तरीके (Labour intensive) उपयुक्त होगे। इसके विपरीत यदि देश म पूजी की विपुलता है और अतिरिक्त श्रम शक्ति नही है तो साधनो को गतिशील बनाने मे अधिक पूजी गहन (Capital intensive) तकनीकी अपनाई जाएगी।

(v) शिक्षा एव राष्ट्रीय चेतना (Education and National Consciousness)—वित्तीय साधनो को योजना की वित्त व्यवस्था के लिए गतिशील बनाने में देशवासियो की शिक्षा और राष्ट्रीय भावना का भी बडा प्रभाव पडता है। यदि

1 *B C Tondon* Economic Planning pp 274 276

देशवासी शिक्षित हैं, उनमे राष्ट्रीय भावना है और वे अपने उत्तरदायित्व को समझने वाले हैं तो योजना के लिए अधिक वित्त जुटाया जा सकेगा। अल्प बचत, बाजार ऋण यहाँ तक कि करो से भी अधिक साधन, एकत्रित किए जा सकेंगे।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (International Situation)—यदि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण शान्ति और सहयोगपूर्ण है और विश्व मे तनाव कम हैं तो बाह्य साधनो से अधिक वित्त उपलब्ध हो सकेगा। इसके अतिरिक्त, यदि योजना को अपनाने वाले देश के अन्य धनी देशो से अच्छे सम्बन्ध हैं या वह युद्ध, सुरक्षा अथवा आक्रमण के लिए नही, अपितु आर्थिक विकास के लिए नियोजन को अपना रहा है तो इन विकसित देशो से तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ मे अधिक मात्रा मे योजनाओ के सचालन के लिए वित्त उपलब्ध हो सकेगा। ऐसी स्थिति मे, योजनाओ की वित्त-व्यवस्था में बाह्य साधनो का महत्त्व बढ जाएगा।

(vii) मूल्य-स्तर और जनता की आर्थिक स्थिति (Price level and Economic condition of the people)—यदि मूल्य बढ रहे होगे और इसके कारण जीवन स्तर-व्यय बढ रहा होगा तो लागो के पास बचत कम होगी। साथ ही, जनता भी सरकार के इस साधन को गतिशील बनाने के कार्यक्रम मे अधिक सहयोग नही करगी। परिणामस्वरूप, आन्तरिक साधन कम जुटाए जा सकेंगे।

(viii) विदेशी विनिमय कोष (Foreign Exchange Reserves)—यदि एक देश के पास पर्याप्त विदेशी विनिमय कोष है तो साधनो को गतिमय बनाना सुगम होगा। ऐसी स्थिति मे, 'हीनार्थ प्रबन्धन' भी वित्त का एक स्रोत बन सकता है और उसमे अन्य स्रोतो पर कम भार होगा। राजस्व, बाजार, बचत आदि वित्त के कम महत्त्वपूर्ण साधन हो जाएँगे। इसके विपरीत, यदि विदेशी विनिमय कोष छोटा है तो 'हीनार्थ प्रबन्धन' (Deficit Financing) भी कम होगा और वित्त के अन्य स्रोतो पर कर भार बढ जाएगा।

(ix) सरकार की आर्थिक नीति (Economic policy of the Government)—यदि देश की अर्थव्यवस्था सोवियत रूस की तरह पूर्णत केन्द्रित हो तो साधनो को अधिक मात्रा मे सरलतापूर्वक गतिशील बनाया जा सकता। किन्तु यदि देश मे जनतान्त्रिक शासन प्रणाली और निर्हस्तक्षप पूर्ण अर्थव्यवस्था हो तो अपेक्षाकृत कम मात्रा मे साधन गतिशील बनाए जा सकेंगे।

(x) आर्थिक विषमता की मात्रा (Degree of Economic Inequality)-यदि देश मे आर्थिक विषमता तथा आय की असमानता कम होगी और उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व का विस्तार हो रहा होगा ऐसी स्थिति मे सार्वजनिक उपक्रमो की आय के रूप मे साधनो की अधिक वृद्धि होगी। वितरण की न्यायोचित प्रणाली और उत्पादन के सामूहिक स्वामित्व से राष्ट्रीय आय मे भी वृद्धि होगी और विकास को गतिशील बनाने के लिए साधन अधिक उपलब्ध हो सकेंगे। किन्तु यदि समाज मे आर्थिक विषमता है और उत्पादन निजी-क्षेत्र म ही सचालित किया जाता है तो योजनाओ की वित्त-व्यवस्था के मुख्य साधन कर, ऋण, बचत आदि होगे।

साधनों का निर्धारण
(Determination of Resources)

एक देश के द्वारा बनाई जाने वाली योजना के कार्यक्रमो के निर्धारण हेतु साधनो का अनुमान लगाना पडता है । अनुमानित साधनो पर ही योजना का आकार और कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है । इसीलिए उपलब्ध या गतिशील बनाए जा सकने वाले साधनो की मात्रा का अनुमान लगाना आवश्यक होता है । इसके लिए यह आवश्यक है कि देश और उसके बाहर ऐसे क्रियाशील घटको पर विचार किया जाए जो योजनाओ की वित्त व्यवस्था को प्रभावित करने वाले हो । सर्वप्रथम विदेशी सहायता और बाह्य साधनो का अनुमान लगाया जा सकता है । यद्यपि सोवियत रूस ने अपनी योजना को आन्तरिक साधनो से ही सचालित किया था, किन्तु ऐसी स्थिति मे देशवासियो को भारी त्याग करना पडता है और कष्ट उठाना पडता है । आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशों के लिए अपने देशवासियो से इस मात्रा मे भारी त्याग और कष्टो का वहन कराना वांछनीय नही है साथ ही इतना आसान भी नही है । अत इन देशो की योजनाओ की वित्त-व्यवस्था मे बाह्य साधनो का पर्याप्त महत्त्व है । इन्हे यथासम्भव आन्तरिक साधनो को अधिकतम मात्रा मे गतिशील बनाना चाहिए । किन्तु ऐसा जनता पर बिना विशेष कष्ट दिए हुए होना चाहिए और इन आन्तरिक साधनों की कमी की पूर्ति बाह्य साधनो द्वारा की जानी चाहिए । यद्यपि, किसी देश को विकास के लिए बाह्य साधनो पर ही पूर्णरूप से निर्भर नही होना चाहिए किन्तु अर्द्ध विकसित देश बिना बाह्य साधनो के वांछित दर से प्रगति भी नही कर सकते । अत दोनो स्रोतो का ही उचित उपयोग किया जाना चाहिए । कोलम्बो योजना मे भी इस विचार को स्वीकार किया गया है कि इन दशो को विशाल मात्रा मे विदेशी विनियोगो के रूप मे प्रारम्भिक उत्तेजक (Initial Stimulus) की आवश्यकता है । कई दशो की योजनाओ मे लगभग 50% तक वित्तीय साधनो के लिए बाह्य स्रोतो पर निर्भरता रखी गई है ।

योजना के लिए वित्तीय साधनो की गतिशीलता
(Mobilisation of Financial Resources)

वित्तीय साधनो की गतिशीलता का तात्पर्य, योजना की वित्त व्यवस्था के लिए इनके एकत्रीकरण से है । योजनाओ की वित्त-व्यवस्था करने के प्रमुख रूप से निम्नलिखित दो स्रोत हैं—

(अ) बाह्य साधन (External Resources) तथा

(ब) आन्तरिक साधन (Internal Resources)

बाह्य साधन (External Resources)

अर्द्ध विकसित देशो मे न केवल पूँजी की उपलब्ध मात्रा ही कम होती है अपितु चालू बचत दर भी निम्न स्तर पर होती है । एक अनुमान के अनुसार लेटिन अमेरिका, मध्य पूर्व अफ्रीका, दक्षिण मध्य एशिया और सुदूर-पूर्व के निर्धन देशो की घरेलू बचत दर 5% से भी कम रही है । ऐसी स्थिति मे ये देश स्वय स्फूर्त अर्थव्यवस्था

मे पहुँचने और इन आर्थिक विकास हेतु आवश्यक बड़ी मात्रा मे विनियोग नही कर सकते हैं। वांछनीय विनियोग और उपलब्ध बचत के मध्य के इस अन्तर को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता अपेक्षित है। बाह्य साधनों का योजना की वित्त व्यवस्था म इसलिए भी महत्त्व है क्योंकि इन देशो की जनता निर्धन होती है और अधिक करारोपण द्वारा अधिक धन-संग्रह भी नहीं किया जा सकता है। निर्धनता और कम आय के कारण ऋणों द्वारा भी अधिक अर्थ संग्रह नही किया जा सकता। हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit financing) का भी असीमित मात्रा मे आश्रय नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इसमे मुद्रा प्रसारित प्रवृत्तियों को जन्म मिलता है। इसीलिए योजनाओं की आवश्यकताओ और आन्तरिक साधनो मे जो अन्तर रह जाता है उसकी पूर्ति हेतु बाह्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। पहले यह धारणा थी कि केवल परियोजनाओ की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओ तक ही बाह्य सहायता सीमित रहनी चाहिए किन्तु अब यह माना जाने लगा है कि न केवल विदेशी विनिमय की आवश्यकता के समान अपितु, घरेलू आवश्यकताओ के लिए भी विदेशी सहायता आवश्यक है।

इस प्रकार योजनाओ की वित्तीय आवश्यकताएँ और आन्तरिक साधनो का अन्तर विदेशी सहायता की मात्रा का निर्धारण करता है। जितनी विदेशी सहायता इस अन्तर के बराबर होगी उतना ही देश का द्रुत आर्थिक विकास होगा। किन्तु अथक् प्रयत्नो के बावजूद भी बाह्य साधनों से इतना वित्त उपलब्ध हो जाए यह आवश्यक नहीं है क्योंकि बाह्य सहायता की उपलब्धता कई आर्थिक और सामाजिक बातों पर निर्भर करती है जिनमे से कुछ निम्नलिखित हैं—

(i) विदेशी व्यापार की स्थिति (ii) विदेशी विनिमय का अर्जन (iii) घरेलू और विदेशी वस्तुओ के मूल्य म होने वाले परिवर्तन (iv) बाह्य विश्व मे स्थायित्व की मात्रा (v) स्वदेश और विदेशो मे मुद्रा-प्रसार या मुद्रा-संकुचन की मात्रा (vi) विनियोग के अनुत्पादक रहने की अवधि (vii) विनियोगो की उत्पादकता अर्थात् पूँजी उत्पाद अनुपात (viii) आन्तरिक स्थायित्व (ix) अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण (x) विकसित देशो द्वारा सहायता की इच्छा (xi) उचित योजना निर्माण। विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से विदेशी सहायता का मापदण्ड सहायता प्राप्त करने वाले देश के चलने की साख, का उद्देश्य और चुकाने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए किन्तु आधुनिक विश्व मे विदेशी सहायता म राजनीतिक दृष्टिकोण को ही प्रमुखता दी जाती है। इस सम्बन्ध में श्री यूजीन आर. ब्लेक (Eugene R. Black) (भूतपूर्व अध्यक्ष विश्व-बैंक) न लिखा है कि विदेशी सहायता कभी-कभी केवल कूटनीतिक सैनिक मित्रों को क्रय के लिए ही दी जाती है।" ऐसी स्थिति मे तटस्थता की नीति मे विश्वास करने वाले और गुटबन्दी से दूर रहने वाले अर्द्ध-विकसित देश, विदेशी सहायता प्राप्त करने म कठिनाई अनुभव करते हैं, किन्तु इसके बावजूद भी इन अर्द्ध-विकसित देशो को अपनी योजनाओ की वित्त-व्यवस्था हेतु बाह्य साधनों से पर्याप्त सहायता मिलती रही है।

बाह्य साधनों के रूप (Forms of External Resources)—बाह्य साधन प्रमुख रूप से निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं—

(i) निजी पूँजी (Private Capital)—बाह्य साधन विदेशों मे स्थित निजी व्यक्तियो और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध होने हैं। निजी पूँजी को मुख्यत प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा ही गतिशील बनाया जा सकता है, किन्तु आजकल नियोजित अर्थव्यवस्था मे इसके लिए सीमित क्षेत्र होता जा रहा है क्योंकि नियोजित अर्थव्यवस्था मे निजी-उपक्रम के लिए सीमित क्षेत्र होता है। साथ ही विदेशी विनियोगकर्त्ता को सरकार अधिक लाभ नहीं लेने देती। बहुधा इन देशो की सरकारों द्वारा विदेशी पूँजी पर अनेक नियन्त्रण और ऐसी शर्तें लगाई जाती है, जिन्हे विदेशी विनियोगकर्त्ता स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त इन अर्द्ध-विकसित देशो मे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व का अभाव रहता है। अनेक बार सरकारें बदलती रहती हैं, जिनकी इन विदेशी विनियोगो के बारे म विरोधी नीति हो सकती है। राष्ट्रीयकरण तथा विनिमय नियन्त्रण द्वारा भविष्य मे इस विदेशी पूँजी और इस पर लाभ के स्वदेश म हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध का भय भी विकसित देशो से, अर्द्ध-विकसित देशो मे निजी पूँजी-प्रवाह मे कमी लाता है।

भारत म निजी-पूँजी विदेशी निजी अभिकरणो (Private Agencies) द्वारा *विनियोगो और भारतीय कम्पनियो द्वारा विश्व बैंक से लिए गए ऋणो के रूप* मे पर्याप्त मात्रा मे विदेशी निजी पूँजी का आर्थिक विकास मे योगदान रहा है किन्तु गत वर्षों मे विश्व बैंक के ऋणो का महत्त्व बढ गया है। भारत की कुल निजी पूँजी मे से विदेशियो द्वारा नियन्त्रित उपक्रमो या प्रत्यक्ष विदेशी विनियोगो का भाग अधिक है। सन् 1957 म यह भाग 90% था जिसम विगत वर्षों म निरन्तर कमी होती रही है।

(ii) सार्वजनिक विदेशी विनियोग (Public Foreign Investments)—अर्द्ध-विकसित देशो की योजना विनियोगो का बहुत महत्त्व है। विदेशी सरकारो द्वारा दिए गए ऋण, अनुदान या प्रत्यक्ष विनियोगो द्वारा इन पिछड़े हुए देशो मे अनेक महत्वपूर्ण परियोजनाएँ प्रारम्भ और पूर्ण की गई है। विकसित देशो की सरकारें, अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे उनके उत्तरदायित्व को पूर्वापेक्षा अधिक समझने लगी हैं, इसीलिए ये इन विकासशील देशो को अधिक सहायता देने लगी हैं। किन्तु सार्वजनिक विदेशी विनियोगो द्वारा सहायक देश की सरकारें सहायता के इच्छुक देश को राजनीतिक रूप से प्रभावित करना चाहती है और अपनी शर्तें सहायता के साथ लगा देती है। भारत मे सरकारी क्षेत्र के बोकारो मे स्थापित होने वाले चौथे इस्पात कारखाने मे अमेरिका ने सहायता देना इसलिए स्वीकार नहीं किया था क्योंकि यह सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित किया जा रहा था। इसी प्रकार अन्य शर्तें भी जोड दी जाती हैं और स्वतन्त्र तथा तटस्थ-नीति को अपनाने वाले या स्वाभिमानी राष्ट्र इस प्रकार की विदेशी वित्तीय सहायता आवश्यकतानुसार प्राप्त करने मे समर्थ नहीं होते हैं। फिर भी विकसित देशो की सरकारो से कई

आन्तरिक वित्त के साधन—आन्तरिक वित्त के निम्नलिखित प्रमुख साधन हैं—

(i) चालू राजस्व से बचत (Surplus from Current Revenues)
(ii) सार्वजनिक उपक्रमों से लाभ (Profit from Public Enterprises)
(iii) जनता से ऋण (Public Borrowings)
(iv) हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)
(v) प्राविधिक जमा-निधि (*Provident Fund etc.*)

(i) चालू राजस्व से बचत (Surplus from Current Revenues)—योजनाओं की वित्त-व्यवस्था का चालू राजस्व से बचत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। चालू राजस्व से अधिक बचत हो इस हेतु करो का लगाना और पुराने करो की दर मे वृद्धि करना होता है। करारोपण, आंतरिक साधनो मे एक प्रमुख है, क्योकि इससे कुछ बचत मे वृद्धि होती है। यह एक प्रकार की विवशतापूर्ण बचत है। कर व्यवस्था इस प्रकार से सगठित की जानी चाहिए जिससे न्यूनतम सामाजिक त्याग से अधिकतम कर राशि एकत्रित की जा सके। इसके लिए अधिकाधिक जनसख्या को कर परिधि मे लाया जाय। करो की चोरी रोकी जाए और प्रगतिशील करारोपण लागू किया जाए जिससे प्राप्त कर-राशि का अधिकांश भार उन व्यक्तियो पर पडे जो इस बोझ को वहन करने मे सक्षम हो, साथ ही इससे आर्थिक विषमता कम हो। किन्तु साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि करो के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव नही पडे तथा बचत, विनियोग और कार्य करने की इच्छा हतोत्साहित न हो। विकासार्थ, अपनाए गए नियोजन के प्रारम्भिक काल मे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है, क्योकि इस समय भारी मात्रा मे पूँजी विनियोग होता है। ऐसा उस समय अधिक होता है जबकि लम्बे समय मे फल देने वाली योजनाएँ होती है। करो द्वारा जनता से अतिरिक्त क्रय शक्ति लेकर मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो का दमन करने मे भी सहायता मिलती है और इन प्रवृत्तियो का दमन योजनाओ की सफलता के लिए अतिआवश्यक है। अत कर-नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कम से कम कुपरिणाम हो और अधिक से अधिक वित्तीय-साधन गतिशील बनाए जा सके।

अधिकांश अर्द्ध विकसित देशो मे जनता की आय अति न्यून होने के कारण वित्त-व्यवस्था के साधन के रूप मे करारोपण का महत्त्व विकसित देशो की अपेक्षा कम होता है। वहाँ जीवन-स्तर उच्च बनाने की आवश्यकता होती है और इसलिए किसी भी सीमा तक कर बढाते जाना वाँछनीय नही होता है। अर्द्ध-विकसित देशो मे करदान क्षमता (Taxable Capacity) कम होती है और राष्ट्रीय आय का अल्प भाग ही कर सग्रह मे प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, गत वर्ष पूर्व भारत म कुल करो से प्राप्त-आय, कुल राष्ट्रीय आय की केवल 9% ही थी जबकि यह इगलैण्ड, सयुक्तराज्य अमेरिका, जापान, न्यूजीलैण्ड, कनाडा और लका मे क्रमश 35%, 23%, 23%, 27%, 19% और 20% थी।

भारतीय विकास योजनाओं में विकास के हेतु विशाल कार्यक्रम सम्मिलित किए गए और समस्त स्रोतों से वित्तीय साधनों को गतिशील बनाने का प्रयत्न किया गया। कर साधनों का पूर्ण उपयोग किया गया। करों की दर में वृद्धि की गई और नवीन कर लगाए गए। प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश के अपने साधनों (mainly through own resources) से 740 करोड़ रु. की वित्त-व्यवस्था का अनुमान लगाया गया जबकि वास्तविक प्राप्ति 725 करोड़ रु. (कुल वित्त-व्यवस्था का 38.4 प्रतिशत) हुई। इसमें कराधान की योजना पूर्व दरों पर चालू राजस्व से बचत 382 करोड़ रु. थी। द्वितीय *पंचवर्षीय योजना में देश के अपने साधनों से वास्तविक प्राप्ति 1,230 करोड़ रु.* (कुल वित्त-व्यवस्था का 26.3 प्रतिशत) हुई जिसमें कराधान की योजना पूर्व दरों पर चालू राजस्व से बचत 11 करोड़ रु. थी। तृतीय योजना में देश के अपने साधनों से 2,908 करोड़ रु. (कुल वित्त व्यवस्था का 33.9 प्रतिशत) प्राप्त हुए जिसमें कराधान की योजना पूर्व दरों पर चालू राजस्व से बचत (—) 419 करोड़ रु. की थी। चतुर्थ योजना में अन्तिम उपलब्धि अनुमानों के अनुसार देश के अपने साधनों से 5,475 करोड़ रु. (कुल वित्त-व्यवस्था का 33.9 प्रतिशत) प्राप्त हुए जिसमें कराधान की योजना पूर्व दरों पर चालू राजस्व से बचत (—) 236 करोड़ रु. थी।[1] पाँचवी योजना में सरकारी क्षेत्र में देशीय बचत 15,075 करोड़ रु. और गैर-सरकारी क्षेत्र में देशीय बचत 30,055 करोड़ रु. अनुमानित की गई है।[2]

(ii) सार्वजनिक उपक्रमों से लाभ (Profit from Public Enterprises)—पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन का लगभग समस्त कार्य सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन रहता है। किन्तु अन्य प्रकार की नियोजित अर्थ व्यवस्थाओं में भी *सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन उत्पादक इकाइयों की संख्या में वृद्धि होती रहती है* और सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार होता है। इस कारण वित्तीय साधनों में राजस्व का भाग घटकर, सार्वजनिक उपक्रमों के लाभों का भाग बढ़ता जाता है। उदाहरणार्थ सोवियत रूस में जनता आय का केवल लगभग 13% भाग ही कर के रूप में देती है। सरकारी आय का प्रमुख साधन सार्वजनिक उद्योगों का आधिक्य ही होता है। सार्वजनिक उपक्रम केवल अपने लाभ-आधिक्य के द्वारा ही योजनाओं की वित्त-व्यवस्था के लिए धन उपलब्ध नहीं कराते, अपितु इन उपक्रमों में कई प्रकार के कोष होते हैं जिनसे सरकारें समय-समय पर अपने वित्तीय उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ मुख्यतः उन देशों में एक बड़ा वित्तीय साधन के *रूप में प्रकट होता है जहाँ पूर्णरूप से नियोजित अर्थ व्यवस्था हो और समस्त* उत्पादन कार्य सरकार द्वारा ही किया जाता हो, किन्तु अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में इस प्रकार की पूर्ण-नियोजित अर्थ व्यवस्था और सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार नहीं

1 इण्डिया 1976, पृष्ठ 173.
2 योजना, 22 दिसम्बर, 1973, पृष्ठ 7.

होता है, वहाँ उत्पादन क्षेत्र मे निजी-उद्यम भी क्रियाशील रहता है। इसलिए, वहाँ सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या और स्वभावत: उनके लाभ की मात्रा भी न्यून होती है। इन देशो मे जो कुछ सार्वजनिक उपक्रम हैं वे हाल ही स्थापित किए गए हैं और उन्होने अभी पर्याप्त मात्रा मे लाभ कमाना आरम्भ नहीं किया है। अनुभव अभाव के कारण इनकी सफलता का स्तर बहुत नीचा है। इन सब कारणों से इन देशो मे नियोजन हेतु, वित्तीय साधनो को गतिशील बनाने मे स्रोत से अधिक अपेक्षा नही की जा सकती। साथ ही, यह प्रश्न भी विवादास्पद हुआ है कि इन सार्वजनिक उपक्रमो को लाभ के उद्देश्य (Profit Motive) पर सचालित किया जाय या इन्हे लाभ का साधन नही बनाया जाए। यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि निजी-उपक्रम मे मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे कर सहित उत्पादन लागत निकलने के पश्चात् इतना लाभ प्राप्त हो जिससे पूँजी और उपक्रम इस ओर आकर्षित हो सकें। किन्तु सरकारी उपक्रमो के समक्ष व्यावसायिक और आर्थिक दृष्टिकोण की अपेक्षा जन-कल्याण का ध्येय प्रमुख होता है। इसी कारण बहुधा सार्वजनिक उपक्रमो की स्थिति एकाधिकारिक होते हुए भी इनके मूल्य कम हो सकते हैं। किन्तु अब यह माना जाने लगा है कि सार्वजनिक उपक्रम लाभ नीति के आधार पर सचालित किए जाने चाहिए जिससे सरकार को आत्म निर्भर बनने मे मदद मिलेगी। उसके पास योजनाओ की वित्त-व्यवस्था के लिए सुगमतापूर्वक साधन उपलब्ध हो सकेंगे और साथ ही मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो को रोकने मे भी सहायता मिलेगी।

भारत मे योजनाबद्ध आर्थिक विकास का मार्ग अपनाने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार निरन्तर होता गया। गत 25 वर्षो म औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रमो का केन्द्रीय सरकार का निवेश 29 करोड रुपये से बढकर अब 6 000करोड रुपये से भी अधिक हो गया है। जहाँ 25 वर्ष पहले अर्थात् प्रथम पचवर्षीय योजना शुरू होत समय केवल पाँच उपक्रम थे, वहाँ अ ज देश के चारो कोनो मे ऐसे लगभग 200 उपक्रम चल रहे हैं। देश की योजनाओ ने सार्वजनिक क्षेत्र से निरन्तर बढती हुई मात्रा मे वित्त उपलब्ध होने की आशा की गयी है। पर रेलो के योगदान के अतिरिक्त अन्य उद्योगो से वित्त की उपलब्धि का चित्र अधिकांशत निराशाजनक ही रहा है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे रेलो से 115 करोड रुपये और द्वितीय योजना मे 167 करोड रुपये, तृतीय योजना मे केवल 62 करोड रुपये रहा। चौथी योजना मे स्थिति तेजी से बिगडी,जहाँ प्रारम्भिक अनुमान 265 करोड रुपये की प्राप्ति का था, वहाँ अन्तिम उपलब्ध अनुमान (−) 165 करोड रुपया का रहा। अन्य सार्वजनिक प्रतिष्ठानो से प्रथम और द्वितीय योजना मे उपलब्धि नगण्य रही जबकि, तृतीय योजना मे वास्तविक प्राप्ति 373 करोड रुपये की रही। चौथी योजना मे अन्तिम उपलब्ध अनुमानों के अनुसार यह प्राप्ति 1 300 करोड़रु की रही। प्रारम्भिक अनुमान 1,764 करोड रुपये था। भारत मे सार्वजनिक उपक्रम अपेक्षित पूर्ति-स्तर से अभी बहुत दूर हैं और इस स्थिति के लिए इन उद्योगो की निम्न कार्यकुशलता, इन उद्योगो

अशान्ति, अमितव्ययितापूर्ण योजनाओं का निर्माण आदि तत्त्व उत्तरदायी है। भारतीय योजनाओं के लिए इस स्रोत से अधिक वित्तीय साधन अधिक गतिशील बनाए जाएँ, इसके लिए आवश्यक है कि इनकी कुशलता का स्तर ऊँचा हो, ये अपने पैरों पर खड़े हो और योजनाओं के लिए दुर्बल साधन जुटाने की दृष्टि से इन्हें उचित लाभ प्राप्त हो। यह उत्साहवर्द्धक बात है कि पिछले कुछ समय से सरकार सार्वजनिक उपक्रमों के प्रति विशेष रूप से जागरूक हो गई है। केन्द्रीय सरकार के वाणिज्यिक उपक्रमों द्वारा अधिक लाभ कमाया जाने लगा है। आर्थिक समीक्षा 1975-76 के अनुसार, 1974-75 में कुल 121 चालू उपक्रमों के प्रवर्तन सम्बन्धी परिणामों से कुल मिलाकर 312 करोड़ रुपये के कर की अदायगी से पूर्व निबल लाभ हुआ है। यह लाभ 1973 74 में 114 चालू उपक्रमों द्वारा प्राप्त 148 7 करोड़ रुपये के लाभ की रकम से दुगुनी रकम से भी अधिक है। लाभ कमाने वाले उपक्रमों की संख्या 82 थी। उन्होंने कुल मिलाकर 451 करोड़ रुपये का वास्तविक लाभ कमाया, घाटे में चलने वाले उपक्रमों की संख्या 39 थी और उनको हुए कुल घाटे की रकम 139 करोड़ रुपये थी।

(iii) जनता से ऋण (Public Borrowings)—करों से प्राप्त आय और सार्वजनिक उपक्रमों के आधिक्य से आर्थिक विकास के लिए बनाई गई योजनाओं के संचालन के लिए आवश्यक राशि प्राप्त नहीं होने पर जनता से ऋण प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार, योजनाओं की वित्त व्यवस्था में जनता से प्राप्त ऋणों की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु योजनाओं की वित्त व्यवस्था हेतु ऋणों का उपयोग अत्यन्त सोच विचार करके करना चाहिए, क्योंकि इनकी प्राप्ति के साथ ही इनकी ब्याज सहित अदायगी का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। इसके साथ ही अर्द्ध-विकसित देशों में आय और जीवन स्तर की निम्नता के कारण इस साधन द्वारा योजनाओं के लिए पूँजी-संचय की बहुत अधिक सम्भावना नहीं होती, क्योंकि निर्धनता के कारण बचत का अवसर कम होता है और बढ़ी हुई आय में भी उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण बचत कम होती है। धनिक वर्ग भी प्रतिष्ठा सम्बन्धी उपभोग पर काफी व्यय करता है। साथ ही, आय तथा अवसर की समानता में वृद्धि करने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। इससे विकासार्थ पर्याप्त बचत उपलब्ध नहीं होती है। प्रो लेविस के अनुसार, "विकास सम्बन्धी विनियोजन के लिए उन्हीं अर्थव्यवस्थाओं में ऐच्छिक बचत उपलब्ध होती है जहाँ उद्यमियों का राष्ट्रीय आय में अधिक भाग होता है और धन तथा आय की समानता के प्रयत्नों से यह भाग घटता जाता है। इन सभी कारणों से पिछड़े हुए देशों में जनता से प्राप्त ऋण या ऐच्छिक बचत आर्थिक नियोजन हेतु वित्त प्रदान करने में अधिक सहायक नहीं होती है।" किन्तु जनता को अधिकाधिक मात्रा में बचत करने को प्रोत्साहित करके इस साधन को, विशेष रूप से, अल्प बचतों को गतिशील बनाया जाना चाहिए। मुद्रा-प्रसारिक मूल्यों में वृद्धि को रोकने की दृष्टि से यह उपभोग को प्रतिबन्धित करने का भी अच्छा

उपाय है । इसीलिए, बैंक, जीवन-बीमा विभाग, डाक-विभाग, सहकारी सस्थाओ का विस्तार करके ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो मे बचत की आदत को बढाना चाहिए और इस बचत को ऋणो के रूप मे प्राप्त कर लेना चाहिए । ये सार्वजनिक ऋण दो प्रकार के होते हैं प्रथम, अल्प बचत (Small Savings) और द्वितीय, बाजार-ऋण (Market Loans) । विकासार्थ नियोजन की वित्त-व्यवस्था हेतु इन दोनो *ही साधनो को गतिशील बनाया जाना चाहिए ।*

भारत मे योजनाओ के साधनो को गतिशील बनाने मे सार्वजनिक ऋण के साधन का भी उपयोग किया गया है । देश के भीतर और विदेशो से लिए गए सार्वजनिक ऋण की राशियाँ इस प्रकार है—

भारत सरकार का सार्वजनिक ऋण[1]

(करोड रु मे)

विवरण	1950-51	1960-61	1965 66	1974-75 (सशोधित)	1975-76 (बजट)
1 देश के भीतर ऋण					
(क) स्थाई ऋण					
(1) चालू ऋण	1,438 46	2,555 72	3,417 28	6,434 96	6,759 81
(2) प्रतिभूति बाण्ड	—	—	—	83 80	83 80
(3) इनामी बाण्ड	—	+15 63	11 35	1 04	0 94
(4) 15 वर्षीय बचत-पत्र	—	3 45	3 78	1 40	1 00
(5) अदायगी के दौरान के ऋण	*6 49*	*22 73*	*33·72*	*54 19*	*54 19*
योग —स्थानीय ऋण	1,444 95	2 597 53	3,466 13	6,575 39	6 899 74
(ख) चल ऋण					
(1) सरकारी हुण्डियाँ	358 02	1,106 29	1,611 82	4,709 43	5,165 51
(2) विशेष चल ऋण	212 60	274 18	340 70	733 36	732 36
(3) कोष जमा प्राप्तियाँ एव अन्य चल ऋण	6 73	—	—	—	—
योग चल ऋण	577 35	1,380 47	1 952 52	5 442 79	5 897 87
योग देश के भीतर ऋण	2,022 30	3 978 00	5,418 65	1,2018 18	1,2797 61
2 विदेशी ऋण	3 2 0	760 96	2 590 62	6 419 26	7 031 95
योग सावजनिक ऋण	2 054 33	4 738 96	8 009 27	1 8437 44	1 9829 56

1 India 1976, p 155.

(iv) हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)—योजना की वित्त-व्यवस्था के लिए जब उपरोक्त स्रोतों से पर्याप्त साधन गतिशील नहीं बनाए जा सकें तो सरकारें 'हीनार्थ-प्रबन्धन' का सहारा लेती है। सरकार के बजट में जब व्यय की जाने वाली राशि, आन्तरिक ऋण तथा विदेशी सहायता से प्राप्त राशि से कम हो जाती है, तो इस अन्तर की पूर्ति मुद्रा विस्तार करके अर्थात् नोट छाप के की जाती है। इसे 'हीनार्थ-प्रबन्धन' या 'घाटे की अर्थ-व्यवस्था' कहते हैं। जब सरकार के बजट में घाटा होने पर वह केन्द्रीय बैंक के अधिकारियों से ऋण ले जो इसकी पूर्ति चलन में वृद्धि अर्थात् पत्र-मुद्रा छाप करके करे तो यह 'हीनार्थ प्रबन्धन' कहलाता है। डॉ॰ वी. के. आर. वी राव के अनुसार, "जब सरकार जान-बूझ कर किसी उद्देश्य से अपनी आय से अधिक व्यय करे जिससे देश में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो जाए, तो उसे 'घाटे की *अर्थ-व्यवस्था' कहना चाहिए।*" भूतकाल में *'हीनार्थ प्रबन्धन' का उपयोग युद्ध-काल में* वित्तीय साधन जुटाने या मन्दी-काल में इसके उपचार-स्वरूप किया जाता था किन्तु आधुनिक युग में विकासार्थ नियोजन की वित्त-व्यवस्था हेतु इस प्रकार की निर्मित मुद्राओं का उपयोग किया जाता है। विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों की वित्तीय आवश्यकताएँ अधिक होती हैं। इन देशों में आन्तरिक बचत, कर, आय और विदेशी सहायता से प्राप्त साधन बहुधा एक ओर कम पड जाते हैं और घाटे की पूर्ति हीनार्थ-प्रबन्धन द्वारा की जाती है। इससे जहाँ मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है। वहाँ दूसरी ओर साधनों को पूँजीगत वस्तुओं में लगाया जाता है जिससे सामान्यतः *मूल्य-वृद्धि होती है और जनता अनुपात से कम उपभोग कर पाती है। घाटे की* अर्थ-व्यवस्था बहुधा अल्पकाल में मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म देती है। अतः साधन का सहारा एक निश्चित सीमा तक ही किया जाना चाहिए, अन्यथा इससे मूल्य-वृद्धि होगी, जिससे योजनाओं की वित्त-व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप, मुद्रा स्फीति तब होती है, जबकि हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा उत्पादन और बचतों में तीव्र वृद्धि हो। साथ ही, इसके लिए विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण लगाए जाएँ। इसीलिए भारतीय योजना-आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि "नियन्त्रणों के बारे में दृढ़ और स्पष्ट नीति के अभाव में, और साथ ही, समय की एक निश्चित अवधि में इस नीति के जारी रहने के आश्वासन बिना न केवल हीनार्थ-प्रबन्धन का क्षेत्र ही सीमित हो जाता है, अपितु सापेक्षिक रूप से बजट के अल्प घाटे से भी मुद्रा-प्रसारिक दबावों के उत्पन्न होने का निरन्तर खतरा बना रहता है।"

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार हीनार्थ-प्रबन्धन *या उसमें निहित साख विस्तार नीति तथा नियोजन परस्पर सम्बन्धित हैं। जब कभी मुद्रा या साख का विस्तार* होता है तो इसके लिए न केवल मुद्रा-चलन, मूल्य-मजदूरी आदि पर ही केन्द्रीय नियन्त्रण होता है, बल्कि अन्य कई पहलुओं जैसे—उपभोग उत्पादन, प्रतिभूति-बाजार, बैंक-बैलेंस आदि पर भी नियन्त्रण रखा जाता है। इसकी सफलता के लिए नियोजित पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। इसी प्रकार नियोजन में कुछ सीमा तक मुद्रा और साख विस्तार का अवलम्बन अनिवार्य-सा है क्योंकि विकास की विभिन्न परियोजनाओं की

वित्त व्यवस्था अकेले अन्य साधनो से नही हो पाती, इसके लिए कुशल प्रशासनिक यन्त्र प्रणाली, विशेषज्ञो और ईमानदार व्यक्तियो द्वारा नियोजन तथा उचित नियोजन और नियन्त्रण आवश्यक हैं। यदि चलन यन्त्र की विस्तारवादी युक्ति को बुद्धिमत्ता, कुशलता तथा सीमाओ मे और आर्थिक पगुपन को दूर करने या सर्वांगीण विस्तारवादी अर्थव्यवस्था की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने लिए सचालित किया जाए, न कि अनुत्पादक सैनिक या सामाजिक व्यय पर नष्ट किया जाए तो परिणाम लाभदायक होंगे अन्यथा इसके हानिकारक परिणाम हो सकते हैं।

भारतीय विकास योजनाओ मे वित्त-व्यवस्था के लिए हीनार्थ-प्रबन्धन के साधनो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे हीनार्थ प्रबन्धन से प्राप्त वास्तविक वित्त व्यवस्था क्रमश 333 करोड रुपये, 954 करोड रुपये, और 1,133 करोड रुपये की रही। चतुर्थ योजना मे हीनार्थ-प्रबन्धन की वित्त-राशि अन्तिम उपलब्ध अनुमानो के अनुसार, 2,060 करोड रुपये रही। चतुर्थ योजना मे प्रारम्भ मे 850 करोड रुपये की हीनार्थ-प्रबन्धन-राशि अनुमानित की गई थी, लेकिन यह 2,060 करोड रुपये तक इसलिए बढी, क्योकि बगलादेश के स्वतन्त्रता-सग्राम मे भारत को सक्रिय योगदान देना पडा। सन् 1971 मे भारत-पाक युद्ध हुआ, 1971-72 और 1972-73 मे कृषि-उत्पादन निराशाजनक रहा, तेल के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यो मे भारी वृद्धि हो गई। पाँचवीं पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष मे बजट घाटा 295 करोड रुपये का रहा, 1975 76 का सशोधित अनुमान 490 करोड रुपये रहा, जबकि बजट अनुमान 247 करोड रुपये का ही था, और अब 1976-77 के बजट मे कुल घाटा 320 करोड रुपये का अनुमानित किया गया है। विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था मे हीनार्थ-प्रबन्धन के साधन का सयमपूर्वक आश्रय लिया जाना चाहिए। मुद्रा-पूर्ति उत्पादन-वृद्धि के अनुसार समायोजित होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश भारत मे ऐसा सम्भव नही हो सका है और हीनार्थ प्रबन्धन के फलस्वरूप मूल्यो मे भारी वृद्धि हुई। विकासोन्मुख मे अर्थ व्यवस्था मे हीनार्थ-प्रबन्धन का अपना महत्त्व है किन्तु इसका आश्रय सीमित मात्रा मे उचित नियन्त्रणो के साथ लिया जाना चाहिए। देश मे व्याप्त मुद्रा-प्रसारित प्रवृत्तियो को दबाने के लिए हीनार्थ प्रबन्धन को न्यूनतम रखने के प्रयास अभी तक अधिकांशत असफल ही रहे है। भारत मे, गत वर्षो के हीनार्थ-प्रबन्धन के दुष्परिणामो को देखते हुए अब इस व्यवस्था का आगामी वर्षो मे कोई क्षेत्र नही है, लेकिन यह भी स्वीकार करना होगा कि हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था मे योजना के लिए साधनो की प्राप्ति की दृष्टि से और अर्थव्यवस्था को सक्रिय बनाने के लिए अभी हीनार्थ-प्रबन्धन के साधन से तुरन्त बच निकलना सम्भव नही है। यदि घाटे के वित्त-प्रबन्धन मे अचानक ही भारी कटौती कर दी गई तो आशका है कि अर्थव्यवस्था मे कुल माँग के घट जाने से निष्क्रियता की स्थिति (Recessionary Situation) पैदा हो जाएगी। यदि सरकार बहुत सावधानी और सयम के साथ उपयुक्त समय पर, उपयुक्त मात्रा मे हीनार्थ-प्रबन्धन का आश्रय कुछ समय तक लेती रहे तो साधनो को गतिशील बनाने की दृष्टि से यह उपाय कारगर सिद्ध हो सकता है। वाँछित उद्देश्यो को आघात न

लगे और जनता मूल्य वृद्धि से परेशान न हो, इसीलिए ऐसे समुचित प्रशासनिक और आर्थिक कदम उठाने होंगे जिससे कृत्रिम मूल्य-वृद्धि न हो सके और स्फीतिजनक दबाव कम हो जाए। निष्कर्षतः "जितना शीघ्र घाटे की अर्थ व्यवस्था और मूल्य वृद्धि चक्र रोका जाएगा, उतना ही हमारे स्वस्थ आर्थिक विकास के लिए कल्याणकारी होगा।"

बचत और विकास : भारत मे राष्ट्रीय बचत आन्दोलन

बचत से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। बचत पूँजी-निर्माण का सर्वोत्तम साधन है, जिससे देश प्रगति के पथ पर तीव्रता से बढ़ता है और जन-साधारण का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। बचत द्वारा हम विकासशील अर्थ-व्यवस्था से उत्पन्न महँगाई पर अकुश लगा सकते हैं। बचत भी एक खर्च है, जिसे सरकार, व्यापारी तथा अन्य कोई व्यक्ति करता है। बचत की धनराशि किसी कार्य विशेष के लिए व्यय की जाती है। व्यक्ति और व्यापारी समुदाय जो बचाते हैं, वही सरकार की बचत है। सरकार के बचत विभागो द्वारा बचाई गई रकम भी इसी श्रेणी मे आती है। भारत मे सरकार ने बचत प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के प्रचुर प्रयास किए है, इसी कारण देश मे राष्ट्रीय बचत आन्दोलन सफलता के साथ आगे बढा है।

एक अध्ययन के अनुसार भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे बचत दर 8 6% थी, जो द्वितीय योजना मे बढकर 9 9% हो गई। किन्तु तृतीय योजना में यह घटकर 8% रह गई और चतुर्थ योजना मे बढकर फिर 10% हो गई। इस समय बचत दर 11% है। गत 20 वर्षों मे औसत, व्यक्तिगत और सरकारी बचत 13 6% थी।[1] वस्तुत, चतुर्थ योजना मे राष्ट्रीय बचत जुटाने के कार्य को उल्लेखनीय सफलता मिली। चतुर्थ योजना के दौरान राष्ट्रीय बचत मे 1,385 करोड रुपये जुटाए गए जबकि लक्ष्य केवल 1,000 करोड रुपये के एकत्रित करने का था। राष्ट्रीय बचत की दिशा मे यह बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि कुल बचत मे व्यक्तिगत बचत का योग, जो 1972 73 मे 49% था, 1973-74 मे 56% और 1974 75 मे 62% हो गया।[2]

देश मे आपात्-स्थिति और समाज के कमजोर वर्गों की स्थिति सुधारने के लिए आर्थिक विकास के 20 सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के बाद एक नया वातावरण बना है, जो अल्प बचत द्वारा देश के आन्तरिक साधन जुटाने हेतु अत्यन्त अनुकूल है।

अल्प बचत करने वालो के लिए योजनाएँ

भारत सरकार ने अल्प बचत योजनाएँ प्रमुख रूप से अल्प बचत करने वाले लोगो—जैसे छोटे किसानो, कारखाना मजदूरो, सामान्य परिवारो की गृहणियो और ऐसे ही अन्य लोगो के लिए बनाई है। राष्ट्रीय बचत सगठन, जो विभिन्न बचत योजनाओ का सचालन करता है, आम आदमी को बचत का सचय करता है और

1. योजना 7 व 22 दिसम्बर 1975, पृष्ठ 26
2. भारत सरकार. राष्ट्रीय बचत, नवम्बर 1975

उन्हे 1,16,800 डाकघरो के माध्यम से, जिनमे 90% देहाती क्षेत्रो मे है, इकट्ठा करता है।

ये बचत योजनाएँ समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगो की आवश्यकताएँ पूरी करती है। इनमे सर्वप्रथम डाकघर बचत योजना है, जो सन् 1834 मे सरकारी बचत बैंक के रूप मे शुरू हुई थी। इन वर्षों के दौरान बचत बैंक की जमा मे निरन्तर वृद्धि होती है और इस समय बचत बैंक मे जमा-राशि 1,274 करोड रु है तथापि वास्तव मे वह जनता का बैंक है, क्योंकि यहाँ 5 रु की अल्प-राशि से बैंक खाता खोला जा सकता है और बाद मे 1 रु तक की राशि नकद जमा कराई जा सकती है।

परम्परा से ही डाकघर-बचत बैंक का ब्याज आयकर से मुक्त है। कर-दाताओ को अल्प बचत मे धन लगाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन देने के लिए अधिक ब्याज देने वाली (10 25% प्रति वर्ष) कर-योग्य सिक्युरिटियाँ हैं। इन सभी बचत योजनाओ पर वाणिज्य बैंको द्वारा दी जाने वाली दरो पर ब्याज दिया जाता है। लेकिन इन पर कुछ अतिरिक्त रियायतें दी जाती हैं। जैसे—कर-मुक्त ब्याज, आर्थिक कर से मुक्ति, आय कर से मुक्ति और सामाजिक सुरक्षा।

इस समय डाकघर बचत बैंक के अतिरिक्त अल्प बचत करने वालो के लिए दस और योजनाएँ हैं। इनमे से उन लोगो के लिए है जो एक साथ राशि जमा करना चाहते हैं, और 1, 2, 3, 4, 5 और 7 वर्ष बाद उसकी वापसी चाहते है। दो योजनाएँ मासिक बचत करने वालो के लिए है, जो प्रत्येक महीने नियत राशि जमा कराते हैं और निश्चित अवधि के पश्चात् आकर्षक ब्याज राशि वापस पाते है। इसके अतिरिक्त एक लोक भविष्य निधि योजना भी है। यह योजना स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के माध्यम से चलाई जाती है। यह योजना अपना स्वतन्त्र कारोबार करने वाले लोगो, जैसे—डाक्टरो, वकीलो और छोटे व्यापारियो के लिए है। 1975 के अन्त से वार्षिकी बचत पत्रो की एक अन्य योजना शुरू की गई है। यह योजना उन लोगो के लिए है, जो इस समय एकमुश्त राशि जमा कराना चाहते हैं और कुछ वर्षों के पश्चात् मासिक भुगतान चाहते है।

बचत वृद्धि

योजना आयोग ने यह अनुभव करके कि, अल्प बचत द्वारा काफी साधन जुटाए जा सकते हैं, प्रथम योजना मे अल्प बचत के लिए 255 करोड रु का लक्ष्य निर्धारित किया गया। अल्प बचत सचित करने के लिए अनेक कदम उठाए गए—जैसे नए बचत-पत्रो की बिक्री, राज्यवार लक्ष्य निर्धारित करना, एजेन्सी सिस्टम की पुन शुरुआत आदि। प्रथम योजनावधि मे कुल मिलाकर 242 करोड रु अल्प बचत मे एकत्र किए गए, जबकि लक्ष्य 225 करोड रु का था। यह राशि अल्प बचत मे प्रथम योजनावधि मे जमा कुल राशि मे से इसी अवधि मे निकाली गई राशि घटाकर

निकलती है। द्वितीय योजना में अल्प बचत में 400 करोड़ रु, तृतीय योजना में 575 करोड़ रु और चतुर्थ योजना में 1 385 करोड़ रु एकत्र किए गए, जबकि द्वितीय योजना में 500 करोड़ रु तृतीय में 600 करोड़ रु और चतुर्थ योजना में 1,000 करोड़ रु एकत्र करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

अल्प बचत में 31 मार्च, 1975 को कुल मिलाकर लगभग 3,600 करोड़ रु जमा थे। यह राशि वर्तमान सरकारी (भारत सरकार के) बाजार ऋण में, 6,435 करोड़ रु के आधे से अधिक है और भारत सरकार के भविष्य निधि खाते में जमा 1,291 करोड़ रु की लगभग तीन गुनी है।

कुछ नई योजनाएँ

अल्प बचत आन्दोलन की एक सामाजिक-आर्थिक विचारधारा है। इस आन्दोलन ने सर्वथा जनता का समर्थन पाने पर जोर दिया गया है और इसके लिए जनता को हमेशा यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि निजी और राष्ट्रीय दोनों दृष्टिकोण से बचत से क्या लाभ है, इस बात को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय बचत संगठन ने अनेक नई योजनाएँ आरम्भ की हैं और अल्प बचत में पूँजी लगाने वालों को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया है। प्रमुख योजनाओं के नाम निम्नलिखित हैं—वेतन द्वारा बचत योजना, महिला प्रधान बचत योजना, सचयिका, ग्रामीण डाकघरों के ब्रांच पोस्टमास्टर एवं यूनिट ट्रस्ट। *राष्ट्रीय बचत योजनाओं को अधिक आकर्षक बनाने और सामाजिक सुरक्षा के साथ सम्बद्ध करने हेतु दो नई योजनाएँ शुरू की गई हैं। प्रथम, सरक्षित बचत-योजना इसके अधीन पाँच वर्षीय आवर्ती जमा खाते में* जमा की गई 20 रुपय प्रति महीने तक की राशि सरक्षित है। यदि इस खाते में पैसा जमा करने वाला व्यक्ति दो वर्ष तक बिना पैसा निकाले अपनी जमा देता रहता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो उसके परिवार को तुरन्त ही खाते का कुल परिपक्व मूल्य दे दिया जाएगा। दूसरी योजना उन खातेदारों के लिए है, जो अपने बचत-बैंक खाते में कम से कम छ महीने तक 200 रुपये लगातार जमा रखते है। यह ड्रा योजना है।

राज्य सरकारों के सहयोग से किसानों से सम्पर्क स्थापित करने हेतु विशेष अभियान चलाए गए हैं। किसानों के पास फसल के दौरान अतिरिक्त पैसा होता है और अभियान द्वारा उन्हें अपना यह पैसा आकर्षक अल्प बचत योजनाओं में लगाने के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया जाता है। गन्ना, कपास आदि का विक्रय करने वाली सरकारी समितियों के साथ यह व्यवस्था की गई है कि वे किसानों को दी जाने वाली राशि में से अल्प बचत के लिए उनके हिस्से की राशि काट लें। राष्ट्रीय बचत सगठन इस बात का भी प्रयत्न करता है कि कारखाना मजदूर अपने बोनस की राशि अथवा बकाया वेतन की राशि का कुछ हिस्सा अल्प बचत में लगाएँ।

अल्प बचत योजनाओं के अधीन जमा की गई राशि का अधिकांश हिस्सा राज्य सरकारों को विकास योजनाओं को लागू करने के लिए दीर्घावधि ऋण के रूप

में दिया जाता है। राज्यों को अल्प बचत में अधिक धन जुटाने के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन भी दिए जाते हैं।

पांचवी योजना के दौरान राष्ट्रीय बचत संगठन, बचत करने वाले व्यक्तियों की संख्या, जनसंख्या के 7% से बढ़ाकर 15% करने का प्रयत्न करेगा। साथ ही वेतन से बचत करने वाले समूहों की संख्या भी रोजगार प्राप्त व्यक्तियों के 20% से बढ़ाकर 40% करने का प्रयत्न किया जाएगा। महिला बचत योजना कार्यक्रमों की संख्या 4 हजार से बढ़ाकर 10,000 कर दी जाएगी। साथ ही, देश के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले एक तिहाई छात्रों को सचयिका बचत बैंक योजना के अधीन ले लिया जाएगा।

बचत आन्दोलन की सफलता जनता के समर्थन पर निर्भर करती है। पिछले कार्य को देखते हुए उपर्युक्त भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करना और पांचवी योजना के लिए निश्चित 1,850 करोड़ रु. जुटाना पूर्वरूप से सम्भव प्रतीत होता है।

---

9 उपभोग-वस्तुओं और मध्यवर्ती-वस्तुओं के लिए माँग के अनुमान, आदा-प्रदा गुणांकों का उपयोग

(Demand Projections for Consumption Goods and Intermediate Goods, the Use of Input-Output Co-efficients)

किसी भी देश की आर्थिक विकास योजना के लिए उस देश के साधनो तथा उपभोक्ता-वस्तुओ की वर्तमान तथा भावी स्थिति की जानकारी आवश्यक है। इसीलिए योजना-निर्माण से पूर्व साधनो तथा उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग की सगणना की जाती है। उपभोक्ता वस्तुओ की माँग को 'अन्तिम माँग' (Final Demand) तथा साधनो की माँग को 'व्युत्पन्न-माँग' (Derived Demand) कहा जाता है। जो वस्तुएँ अन्य वस्तुओ के उत्पादन मे प्रयुक्त होती हैं उनको मध्यवर्ती वस्तुएँ (Intermediate Goods) तथा जिनका अन्तिम प्रयोग (Final use) उत्पादन के लिए न होकर उपभोग के रूप मे होता है, उनको उपभोक्ता वस्तुएँ (Consumer Goods) कहा जाता है।

मध्यवर्ती वस्तुओ से सम्बन्धित मध्यवर्ती माँग को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(1) प्रारम्भिक आदान (Primary input) अथवा श्रम की माँग तथा (2) अन्तिम उत्पादन मे प्रयुक्त वस्तुओ की माँग। उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग का अनुमान आय लोच के आधार पर लगाया जाता है तथा श्रम की माँग व मध्यवर्ती वस्तुओ की माँग की सगणना आदा-प्रदा तकनीकी (Input-Output Technique) द्वारा की जाती है।

आय-लोच द्वारा उपभोक्ता वस्तुओ की माँग के अनुमान (Demand Projections of Consumer Goods)

आय लोच की सहायता से कुल माँग के अनुमान अग्रांकित से प्रकार लगाए जाते हैं—

मान लीजिए भोजन और वस्त्र की आय लोच क्रमशः ·6 व 1·5 दी हुई है। यदि प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि-दर 10% हो तो, आय-लोच के आधार पर भोजन की माँग मे $\cdot 6 \times 10 = 6\%$ तथा वस्त्र की माँग मे, $1 \cdot 5 \times 10 = 15\%$ वृद्धि होगी।

इस प्रकार, प्रति व्यक्ति आय-वृद्धि तथा आय-लोच दी हुई हो तो, प्रत्येक वस्तु की माँग को आँका जा सकता है तथा सब वस्तुओ के माँग के योग द्वारा कुल माँग की सगणना की जा सकती है ।

आॅर्थर लेविस ने एक दस वर्षीय कल्पित आर्थिक योजना का उदाहरण लेते हुए माँग के अनुमानो की समष्टि सगणना (Macro Exercise) प्रस्तुत की है । इन्होने माँग के अनुमानो के लिए मुख्यत तीन तत्त्वो का उल्लेख किया है—(1) जनसख्या, (2) उपभोग व्यय मे प्रति व्यक्ति वृद्धि का तत्त्व तथा (3) उपभोक्ता की रुचि मे परिवर्तन का तत्त्व । इनके अनुसार सर्वप्रथम माँग के अनुमानो के लिए प्रारम्भिक वर्ष (Year 0) के उपभोग को जनसख्या वाले वृद्धि तत्त्व से गुणा करना चाहिए और इसके पश्चात् गुणनफल को प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि वाले तत्त्व से और अन्त मे उपभोक्ता की रुचि मे होने वाले परिवर्तन सम्बन्धी तत्त्व से गुणा करना चाहिए । इसे निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किया गया है[1]—

	Year 0	आय-लोच	Year 10
खाद्य वस्तुएँ	200	·5	266
पशुओ से प्राप्त वस्तुएँ	100	1 2	144
स्थानीय निर्मित वस्तुएँ	30	1 1	43
निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुएँ	70	1 2	101
अन्य निर्मित वस्तुएँ	48	1·5	71

(a) जनसख्या वृद्धि-दर 2 3% प्रति वर्ष है । इसीलिए पूरे 10 वर्ष के लिए जनसख्या तत्त्व 1 256 है ।

इसे निम्न सूत्र द्वारा निकाला गया है—

$P_{10}=P_0(1+r)^{10}$ अथवा $P_{10}=P_0\ (1+023)^{10}$

$$P_{10}=P_0\times 1\ 256$$

(b) उपभोग-व्यय मे प्रति व्यक्ति वृद्धि 11·9% होती है । इस तत्त्व मे प्रत्येक वस्तु की आय-लोच का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

(c) रुचि मे परिवर्तन तीसरा गुणक तत्त्व है जो जनसख्या वृद्धि अथवा माँग प्रवृत्ति से प्रभावित नही होता । केवल रुचि मे परिवर्तन के कारण नई वस्तुएँ, पुरानी वस्तुओ का स्थान लेने लगती हैं ।

उक्त तीनो गुणक तत्त्वो का प्रयोग करते हुए 10वें वर्ष मे खाद्य-सामग्री की माँग होगी, जबकि प्रारम्भिक माँग 200 है—

$$(200)\ (1\ 256)\ (1\ 0+119\times{\cdot}5)=266$$

इसी प्रकार उक्त सारणी मे प्रदर्शित अन्य वस्तुओ की माँग को निम्न प्रकार ज्ञात किया जा सकता है—

पशुओ द्वारा प्राप्त वस्तुओ की माँग—

$$(100)\ (1\ 256)\ (1{\cdot}0+119\times 1\ 2)=144$$

1. *W. Arther Lewis* . Development Planning, p. 180

स्थानीय निर्मित वस्तुओं की माँग—

$$(30)\ (1\ 256)\ (1\ 0+119\times1{\cdot}1)=43$$

निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुओं की माँग—

$$(70)\ (1\ 256)\ (1\ 0+119\times1\ 2)=101$$

अन्य निर्मित वस्तुओं की माँग—

$$(48)\ (1\ 256)\ (1\ 0+119\times1\ 5)=71$$

मध्यवर्ती वस्तुओं (Intermediate Goods) तथा श्रम की माँग व कुल उत्पादन की सगणना व आदा-प्रदा तकनीकी के आधार पर की जाती है।

आदा-प्रदा तकनीकी
(Input-Output Technique)

आदा प्रदा तकनीकी उत्पादन का एक रेखीय स्थायी गुणांक मॉडल (A Linear Fixed Coefficient Model) है। इस मॉडल के प्रवर्तक प्रो लियनटिफ थे।

इस्पात उद्योग का उत्पादन अनेक उद्योगो म आदा (*Input*) के रूप मे प्रयुक्त होता है। इसलिए उत्पादन का सही स्तर तभी मालूम हो सकेगा, जबकि सभी *n* उद्योगो के लिए आवश्यक आदा (Inputs) की आवश्यक मात्राएँ ज्ञात हो। अनेक अन्य औद्योगिक उत्पादन भी स्वय इस्पात उद्योग के लिए आदा के रूप मे प्रयुक्त होगा। परिणामत अन्य वस्तु के उत्पादन के उचित स्तर आंशिक रूप से इस्पात उद्योग की आदा सम्बन्धी आवश्यकताओ पर निर्भर करेगा। अन्त उद्योग निर्भरता की दृष्टि से *n* उद्योगो के उत्पादन का उचित स्तर वह होता है जो अर्थ व्यवस्था की समस्त आदा आवश्यकताओ (Input Requirements) के अनुकूल (Consistent) हो।

अत स्पष्ट है कि उत्पादन नियोजन मे आदा प्रदा विश्लेषण का प्रमुख स्थान है। किसी भी देश के आर्थिक विकास की योजना अथवा राष्ट्रीय सुरक्षा के कार्यक्रमो मे इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

यदि विशिष्ट रूप से देखा जाए तो इस पद्धति को सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का प्रकार नही कहा जा सकता। यद्यपि इस मॉडल मे विभिन्न उद्योगो की पारस्परिक अन्त निर्भरता पर बल दिया जाता है तथापि तकनीकी भाषा मे उत्पादन के सही स्तर वे होते हैं जो बाजार सन्तुलन की शर्तों को पूरा करने की अपेक्षा तकनीकी आदा-प्रदा सम्बन्धो को सन्तुष्ट करते है।

आदा-प्रदा मॉडल का ढाँचा[1]

इस प्रणाली मे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे *n* उद्योगो की कल्पना की जाती है। प्रत्येक उत्पादक इकाई एक ही वस्तु का उत्पादन करती है। उस वस्तु के उत्पादक की j^{th} इकाई के लिए आदा की एक निश्चित मात्रा प्रयोग मे आती है, जिसे 'a_{ij}' द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। चूंकि मॉडल एक रेखीय है इसलिए j^{th} उत्पादन की x_j मात्रा के लिए i^{th} आदा की $a_{ij}\ x_j$ मात्रा आवश्यक होगी।

1 *A. C Chiang* Fundamental Methods of Mathematical Economics, p 120

इस मॉडल मे उत्पादन के स्थिर गुणांक होते हैं इसलिए आदाओ के मध्य कोई प्रतिस्थापन नही होता अत. xj उत्पादन के लिए सदैव $aij\ xj$ मात्रा i^{th} आदा की मात्रा आवश्यक होगी तथा k^{th} आदा की $akj\ xj$ मात्रा आवश्यक होगी। इस प्रकार के मॉडल को ही आदा-प्रदा मॉडल कहते हैं। aij^s को आदा-गुणांक (Input Coefficient) कहते हैं तथा $[aij]$ मैट्रिक्स (Matrix) को आदा-मैट्रिक्स कहते हैं। आदा-प्रदा के निम्नलिखित दो मॉडल होते हैं—

(1) बन्द मॉडल (Closed Model)

(2) खुला मॉडल (Open Model)

यदि आदा-प्रदा के मॉडल मे आदा वस्तुओ का समूह पूर्ण प्रणाली मे केवल एक बार ही प्रकट होता है तथा जिसे अन्य ऐसी वस्तुओं के समूह से जाना जाता है, जो *अन्तिम उत्पादन के रूप मे भी एक ही बार प्रकट होते हैं* और वर्तमान उत्पादन के अतिरिक्त आदाओ का कोई अन्य स्रोत नही होता और अन्तिम उत्पादन का भी आदाओ के अतिरिक्त कोई अन्य उपयोग नही होता, तो इन विशेषताओ वाले मॉडल को बन्द मॉडल (Closed Model) कहते हैं।

खुला मॉडल (Open Model) सम्पूर्ण *अर्थव्यवस्था का* मॉडल होता है जिसमे निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) n वस्तुओ का उत्पादन-क्षेत्र जहाँ एक ओर अन्तिम वस्तुओ के उत्पादन को प्रकट करता है, साथ ही उत्पादन-क्षेत्र के लिए आवश्यक आदाओ का भी प्रतीक होता है (Production Sector of n output which are also inputs within the Sector)।

(ii) एक ऐसा अतिरिक्त आदा जो किसी भी उत्पादन-क्रिया जिसका उत्पादन क्षेत्र से सम्बन्ध होता है, प्रयोग मे नही लिया जाता।

(iii) अन्तिम वस्तुओ की माँग आदाओ की आवश्यकताओ की पूर्ति के पश्चात् भी बनी रहती है।

उत्पादन-क्षेत्र $n \times n$ आदा-मैट्रिक्स का होता है। मैट्रिक्स की यह प्रणाली अर्द्ध-धनात्मक (Semi-positive) होती है तथा जिसका विघटन (Decomposition) सम्भव नही माना जाता है। ऐसी मैट्रिक्स के लिए A का प्रयोग किया जाएगा। X को भौतिक उत्पादन का वैक्टर (Vector) मानने पर AX आदा की आवश्यकताओ का वैक्टर (Vector) होगा तथा $X - AX = (I - A)X$ शुद्ध उत्पादन का वैक्टर कहलाएगा अर्थात् यह वैक्टर वस्तुओ की उन मात्राओ को प्रकट करेगा जो उत्पादन-क्षेत्र के बाहर विक्रय हेतु उपलब्ध होती हैं। यह वैक्टर Value added की मात्रा को प्रकट करता है।

मान्यताएँ (Assumptions)

इस मॉडल की निम्नलिखित प्रमुख मान्यताएँ हैं—

(1) प्रत्येक उद्योग एक समरूप (Homogeneous) वस्तु का उत्पादन करता है।

(2) आदा अनुपात (Input Ratio) स्थिर रहता है।
(3) पैमाने के स्थिर प्रतिफल क्रियाशील रहते हैं।
(4) यह उत्पादन-फलन एकरेखीय (Linear) है।
(5) उत्पादित वस्तुओं का सयोग स्थिर (Fixed Product Mix) रहता है।

तथ्य की आदा (Inputs) एक निश्चित अनुपात मे प्रयुक्त होते हैं, यह निम्नलिखित समीकरण द्वारा स्पष्ट होता है—

$$\frac{a_{ij}}{a_{kj}} = \frac{X_{ij}}{X_{kj}}$$

उक्त समीकरण मे आदा-प्रदा अनुपातो को रखने से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होता है—

$$X_i = \sum_{j=1}^{n} a_{ij}X_j + F_i \quad (i=1, 2, \ldots n)$$

जो एकरेखीय समीकरणो के मॉडल को प्रकट करता है जिसमे स्थिर गुणांक होते हैं तथा जो n उत्पादन प्रभावो के साथ एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं एव अन्तिम मांग से भी सम्बन्धित होते हैं ($F_1 \ldots\ldots F_n$)।

एक n उद्योग वाली अर्थव्यवस्था के लिए आदा गुणांकों को A मैट्रिक्स के रूप मे $A = [a_{ij}]$ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

Output (अन्तिम उत्पादन)

		I	II	III	...	N
आदा (input)	I	a_{11}	a_{12}	a_{13}	....	a_{1n}
	II	a_{21}	a_{22}	a_{23}	....	a_{2n}
	III	a_{31}	a_{32}	a_{33}	....	a_{3n}
	⋮	⋮				
	N	a_{n1}	a_{n2}	a_{n3}	....	a_{nn}

यदि कोई उद्योग अपने द्वारा उत्पादित वस्तु को आदा के रूप मे प्रयुक्त नहीं करता है, तो मैट्रिक्स के मुख्य करण (Diagonal) पर आने वाले सभी तत्त्व (Elements) शून्य होते है।

आदा-प्रदा गुणांकों के उपयोग (Uses of Input-Output Coefficient)

इन गुणांकों की सहायता से, यदि अन्तिम मांग का वैक्टर (Vector) दिया हुआ हो तो प्रत्येक क्षेत्र का कुल उत्पादन और कुल मूल्य-वृद्धि ज्ञात की जा सकती है।

कुल उत्पादन की सगणना (Calculation of Gross Output)

आदा-प्रदा तकनीकी के आधार पर कुल उत्पादन की सगणना को निम्न प्रकार उदाहरण द्वारा समझाया गया है—दो उत्पादन क्षेत्र दिए हुए हैं—

$$A = \begin{bmatrix} \cdot 2 & \cdot 4 \\ \cdot 1 & \cdot 5 \end{bmatrix}$$

दिया हुआ माँग वैक्टर $D=\begin{bmatrix}60\\40\end{bmatrix}$ है । उक्त सूचनाओं से कुल उत्पादन निम्न प्रकार मैट्रिक्स इनवर्स (*Inverse*) करके ज्ञात किया गया है—

$$I=\begin{bmatrix}1 & 0\\0 & 1\end{bmatrix}\ (I-A)=\begin{bmatrix}8 & -4\\-1 & 5\end{bmatrix}$$

Co factor Matrix

$$8\ (5)-(-4)\ (-1)$$
$$-(-1)\ (-4)+5\ (8)$$

$$\begin{bmatrix}5 & 1\\4 & 8\end{bmatrix}$$

Adj A=Transpose of Co Factor Matrix—

$$Adj\ A\begin{bmatrix}5 & 4\\1 & 8\end{bmatrix}$$

Inverse of Matrix

$$\frac{Adj}{D}=\frac{1}{36}\begin{bmatrix}5 & 4\\1 & 8\end{bmatrix}$$

$$\text{अथवा}\begin{bmatrix}\frac{50}{36} & \frac{40}{36}\\\frac{10}{36} & \frac{80}{36}\end{bmatrix}$$

$$\therefore\ \begin{bmatrix}X_1\\X_2\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}\frac{50}{36} & \frac{40}{36}\\\frac{10}{36} & \frac{80}{36}\end{bmatrix}\begin{bmatrix}60\\40\end{bmatrix}$$

$$\begin{bmatrix}X_1\\X_2\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}\frac{50\times 6}{36} & \frac{40\times 41}{36}\\\frac{10\times 60}{36} & \frac{80\times 40}{36}\end{bmatrix}=\begin{matrix}\frac{250}{3}+\frac{400}{9}=\frac{1150}{9}\\\frac{50}{3}+\frac{800}{9}=\frac{950}{9}\end{matrix}$$

इस प्रकार X_1 का कुल उत्पादन $=\frac{1150}{9}$ तथा X_2 का कुल उत्पाद $\frac{950}{9}$ होगा X_1 कृषि क्षेत्र का उत्पादन प्रकट करता है तथा X_2 गैर कृषि-क्षेत्र का उत्पादन प्रकट करता है।

मध्यवर्ती वस्तुओं की सगणना

(Calculation of Intermediate Goods)

मध्यवर्ती वस्तुओं की सगणना निम्न प्रकार की जाती है—

$$\begin{bmatrix}a_{11} & X_1\\a_{21} & X_2\end{bmatrix}=\text{क्षेत्र I की मध्यवर्ती वस्तुएँ ।}$$

$$\begin{pmatrix}a_{12} & X_2\\a_{22} & X_2\end{pmatrix}=\text{क्षेत्र II की मध्यवर्ती वस्तुएँ ।}$$

अथवा $\cdot 2 \times \frac{1150}{9} = \frac{230 0}{9}$

$$\cdot 1 \times \frac{1150}{9} = \frac{115 0}{9}$$

$$\frac{230 0}{9} + \frac{115 0}{9} = \frac{345}{9}$$

=क्षेत्र I की मध्यवर्ती वस्तुओं का कुल मूल्य

$$4 \times \frac{950}{9} = \frac{380 0}{9}$$

$$5 \times \frac{950}{9} = \frac{475 0}{9}$$

$$\frac{380 0}{9} + \frac{475}{9} = \frac{855}{9}$$

=क्षेत्र II की मध्यवर्ती वस्तुओं का कुल मूल्य।

मध्यवर्ती वस्तुओं की सगणना करने के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र की शुद्ध मूल्य वृद्धि (Value added) ज्ञात की जा सकती है। इस वृद्धि को ज्ञात करने के लिए कृषि क्षेत्र कुल उत्पादन मे से मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य घटा दिया जाता है। उपरोक्त उदाहरण के क्षेत्र I व II की मूल्य-वृद्धि निम्नलिखित प्रकार निकाली जा सकती है—

$\because$ क्षेत्र I का कुल उत्पादन $= \frac{1150}{9}$

$\because$ I की मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य $= \frac{345}{9}$

$\therefore$ क्षेत्र I की शुद्ध मूल्य वृद्धि $= \frac{1150}{9} - \frac{345}{9} = \frac{805}{9}$

इसी प्रकार क्षेत्र II की शुद्ध मूल्य वृद्धि $= \frac{950}{9} - \frac{855}{9} = \frac{95}{9}$ ज्ञात की जा सकती है।

प्राथमिक आदा (*Primary Input*) या श्रम की मात्रा ज्ञात करना खुले मॉडल वाले क्षेत्र मे आदा गुणांको के प्रत्येक खाने मे तत्त्वो (Elements) का योग एक से लागत (Partial Input Cost) प्रदर्शित करता है, जिसमे प्राथमिक आदा (Primary Input) का मूल्य शामिल नही होता। अत यदि योग एक से अधिक या एक के बराबर होना है, तो आर्थिक दृष्टि से उत्पादन लाभदायक नही माना जाता है। इस तथ्य को निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

$$\sum_{i=1}^{n} a_{ij} < 1 \qquad (j=1, 2, \ldots\ldots\ldots\ldots n)$$

चूंकि आदा की एक रुपये लागत उत्पादन के समस्त साधनो के भुगतान करने मे समाप्त हो जानी चाहिए, इसलिए कालम का योग एक रुपये से जितना कम होता है, वह प्राथमिक आदा के मूल्य को प्रकट करता है। j^{th} वस्तु की एक इकाई के उत्पादन मे लगने वाला प्राथमिक आदा का मूल्य निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

$$1 - \sum_{i=1}^{n} a_{ij}$$

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा इसे ज्ञात किया जा सकता है—

$$A = \begin{bmatrix} 2 & 3 & 2 \\ 4 & 1 & 2 \\ 1 & 3 & 2 \end{bmatrix}^4$$

इस मैट्रिक्स से उक्त विधि के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र का कुल उत्पादन ज्ञात किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है, X_1 अथवा क्षेत्र I का कुल उत्पादन=24 84, X_2 अथवा क्षेत्र II का कुल उत्पादन=20 68 तथा क्षेत्र III का कुल उत्पादन=18 36 होगा। इसके पश्चात् मैट्रिक्स के कॉलमो का योग किया जाता है तथा योग को एक मे से घटाकर प्राथमिक आदा का गुणांक ज्ञात कर लिया जाता है। इस गुणांक से क्षेत्रीय उत्पादन को जब गुणा किया जाता है तो प्राथमिक आदा का मूल्य ज्ञात हो जाता है। उक्त मैट्रिक्स के अनुसार प्राथमिक आदा के गुणांक होंगे—

$$1 - \sum_{i=1}^{n} a_{ij} = 3 \quad 3 \quad 4$$

[प्रथम कॉलम का योग 2+·4+1=7 जिसे एक मे से घटाने पर 3 शेष रहता है। इसी प्रकार, कॉलम दो व कॉलम तीन के अक 3 व 4 निकाले गए हैं।]

क्षेत्र I= 3×24 84=7 452 का प्राथमिक आदा मूल्य,

क्षेत्र II= 3×20 68=6 204 का प्राथमिक आदा मूल्य,

क्षेत्र III= 4×18 36=7 344 का प्राथमिक आदा मूल्य,

कुल प्राथमिक आदा मूल्य =7 452+6 204+7 344=21 000 होगा।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्पादन योजना मे इस मॉडल का बहुत महत्त्व है। इसकी सहायता से अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक उत्पादन-क्षेत्र का कुल उत्पादन कुल मूल्य-वृद्धि व प्राथमिक आदा का मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मध्यवर्ती वस्तुओ के मूल्य भी ज्ञात किए जा सकते हैं।

10 उत्पादन-लक्ष्यों का निर्धारण

(Determination of Output Targets)

अर्द्ध-विकसित देशो मे विकासार्थ नियोजन की सफलता के लिए कुछ पूर्व आवश्यकताओ की पूर्ति आवश्यक है। इसमे एक महत्त्वपूर्ण शर्त विश्वसनीय और पर्याप्त आँकडो के आधार पर उचित उत्पादन-लक्ष्यो का निर्धारण है। लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य बहुत कुछ देश की आधारभूत नीतियो पर आधारित होता है। सर्वप्रथम, नियोजन-सम्बन्धी व्यापक नीतियाँ निर्धारित कर ली जाती हैं। इन व्यापक नीतियो के अनुरूप नियोजन के उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। ये उद्देश्य, देश विशेष की परिस्थितियो, आवश्यकताओ, विचारधाराओ, साधनो आदि को दृष्टि मे रखते हुए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सरचना के सन्दर्भ मे निश्चित किए जाते हैं। विकास योजना के लिए निर्धारित इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए प्राथमिकताओ का निर्धारण किया जाता है और विभिन्न क्षेत्रो के लिए उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किए जाते है।

लक्ष्य-निर्धारण का महत्त्व—आर्थिक नियोजन का लक्ष्य दी हुई अवधि मे देश के साधनो का अनुकूलतम उपयोग करके अधिकाधिक उत्पादन वृद्धि करना और देशवासियो के जीवन-स्तर को उच्च बनाना है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रो मे सर्वतोमुखी विकास की आवश्यकता होती है किन्तु किसी भी देश के साधन, विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशो मे, सीमित होते हैं। अत इन साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है। इनके अभाव मे अधिकतम उत्पादन और अधिकतम सामाजिक लाभ सम्भव न होगा। वस्तुत, साधनो के विवेकपूर्ण उपयोग को ही 'आर्थिक नियोजन' कहते हैं। अत यह आवश्यक है कि उन कार्यक्रमो को पहले पूरा किया जाए जो देश की सुरक्षा के लिए जरूरी हैं या जो अन्य प्रकार से आवश्यक है या जिनसे आगे द्रुत आर्थिक विकास करने मे बहुत योगदान मिल सकता है। इसीलिए, आर्थिक नियोजन मे पहले प्राथमिकताओ (Priorities) का निर्धारण कर लिया जाता है तत्पश्चात् इन प्राथमिकताओ के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पादन लक्ष्य (Targets of Output) निर्धारित किए जाते हैं। लक्ष्य निर्धारित करने पर ही

उन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। यही कारण है कि योजनाओ मे वस्तुओ और सेवाओ के उत्पादन—लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ही, नियोजन मे प्रयत्न किए जाते है और नियोजन की सफलता भी इन लक्ष्यो की पूर्ति से ही आंकी जाती है। नियोजन के लक्ष्य व्यापक और विषयगत होते हैं। इन लक्ष्यो की पूर्ति के आधार पर नियोजन की सफलता का मूल्यांकन भी पूर्ण नही हो सकता। किन्तु नियोजन के लक्ष्य भौतिक रूप मे निर्धारित किए जाते हैं जिनके पूर्ण होने या न होने का अपेक्षाकृत सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

लक्ष्य-निर्धारण की विधि—अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के लिए लक्ष्य-निर्धारण का कार्य विभिन्न मन्त्रालयो और सगठनो से लिए गए विशेषज्ञो के कार्यशील समूहो (*Working Groups*) *द्वारा किया जाता है। लक्ष्य-निर्धारण समग्र नियोजन* के व्यापक उद्देश्यो और प्राथमिकताओ को ध्यान मे रखकर किया जाता है। इन लक्ष्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक साधनो की उपलब्धि को भी ध्यान मे रखा जाता है। लक्ष्यो के निर्धारण मे इन कार्यशील दलो को योजना आयोग के द्वारा समय-समय पर पथ प्रदर्शन और निर्देशन भी मिलता रहता है। लक्ष्य-निर्धारण मे सगठित जनमत Organised Public Opinion) पर भी ध्यान दिया जाता है और उसे भी इसमे भागीदार और उत्तरदायी बनाया जाता है। निर्धारित लक्ष्यो पर आधारित योजना को, असगति (Inconsistency) से बचाने के लिए योजना आयोग, विभिन्न प्रकार से जाँच करता है। इसके पश्चात् ही योजना को अपनाया जाता है। असगति होने पर अर्थव्यवस्थाओ मे अन्त क्षेत्रीय असन्तुलन (Inter-Sectoral Embalances) उत्पन्न हो सकते हैं। उत्पादन के ये लक्ष्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र, प्रत्येक उद्योग, प्रत्येक परियोजना एव उत्पादन इकाई के लिए निश्चित किए जा सकते है।

विभिन्न विश्लेषणों पर आधारित—लक्ष्य-निर्धारण मे मात्रात्मक दृष्टिकोण से विभिन्न लक्ष्य सम्मिलित होते हैं उदाहरणार्थ, इतने अधिक मिलियन टन खाद्यान्न, इस्पात, उर्वरक, ईंधन, सीमेन्ट आदि का उत्पादन अमुक मात्रा मे किलोवाट बिजली की नवीन क्षमता का सृजन, इतनी अधिक मील लम्बी रेलवे लाइनो और सडको का निर्माण, इतनी अधिक प्रशिक्षण और शिक्षण सस्थाओ की स्थापना, राष्ट्रीय आय मे अमुक मात्रा मे वृद्धि आदि। श्री के घोष के अनुसार—"इस प्रकार के लक्ष्य न केवल सरकारी उपक्रमो के लिए ही निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है, बल्कि कम से कम बडी निजी फर्मों के लिए भी निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि कम पूर्ति वाले पदार्थ वांछित उद्देश्यो के लिए ही उपयोग मे लाए जा सकें।"[1]

डब्ल्यू ए. लेविस के अनुसार, निजी-क्षेत्र के लिए लक्ष्य-निर्धारण मे "बाजार और मूल्यो का उन्ही हिसाब और सांख्यिकीय तकनीको से विश्लेषण किया जाना चाहिए, जिनको इस उद्देश्य से निजी फर्में अपनाती है। इसके अतिरिक्त जहाँ

1. *O. K Ghosh*: Problems of Economic Planning in India, p. 61.

कही अर्थव्यवस्था को समग्र रूप से लाभ या हानि, निजी फर्मों की अपेक्षा अधिक या कम होने की सम्भावना हो, वहाँ आवश्यक समायोजन किया जाना चाहिए।" प्रत्येक उद्योग के सम्बन्ध मे अलग-अलग ऐसा किया जाना चाहिए और जाँच की जानी चाहिए कि प्रत्येक उद्योग के लिए लगाए गए अनुमान परस्पर और समग्र अर्थव्यवस्था के लिए लगाए अनुमान से सगत तो है। प्रत्येक उद्योग अन्य घरेलू उद्योगो से कुछ क्रय करता है। वह कुछ आयातित वस्तुएँ भी क्रय करता है। यह अन्य उद्योगो को अपनी वस्तुएँ बेचता भी है। इसके उत्पादन (Products) उपभोक्ताओ को बेचे भी जाते हैं और कुछ का निर्यात भी किया जा सकता है। यह उद्योग बचत भी करता है, कर भी चुकाता है और विनियोग भी करता है। प्रत्येक उद्योग के लिए निर्धारित उत्पत्ति का योग कुल निर्धारित उत्पत्ति के बराबर होना चाहिए। इसी प्रकार की स्थिति प्रत्येक उद्योग के विनियोग, इसके उत्पादन का उपभोग, निर्यात और इसी प्रकार कई बातो के लिए होना चाहिए। आर्थर लेविस के अनुसार, "लक्ष्यो की सगति की जाँच का एकमात्र तरीका प्रत्येक उद्योग के लिए और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए 'Set of Inter-locking tables' का निर्माण करना है। इसके लिए राष्ट्रीय आय और आदा-प्रदा (Input-Output) विधियो को काम मे लाया जाता है।"

लक्ष्य निर्धारण मे ध्यान देने योग्य बातें—योजना के विभिन्न लक्ष्य इस प्रकार से निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि राष्ट्र के लिए उपलब्ध सभी साधनो का सर्वोतम उपयोग सम्भव हो सके। योजना के लिए ये लक्ष्य निश्चित व्यापक उद्देश्यो और प्राथमिकताओ के अनुसार निर्धारित किए जाने चाहिए। वे परस्पर सम्बन्धित और सन्तुलित होने चाहिए। विभिन्न अनुपातों की गणना की जानी चाहिए एव इन अनुपातो को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ में बनाए रहना चाहिए। इन्हे 'समष्टि आर्थिक (Macro-Economic) अनुपात कहते हैं। अर्थव्यवस्था की इन विभिन्न शाखाओ में भी प्रत्येक पहलू के अधिक विस्तृत अनुपातो को बनाए रखना चाहिए। इन्हे व्यष्टि आर्थिक (Micro Economic) अनुपात कहते हैं। योजना के लक्ष्य समस्त अर्थव्यवस्था को एक इकाई मान कर निर्धारित किए जाने चाहिए। उत्पादन-लक्ष्य, न केवल वर्तमान आवश्यकताओ को, अपितु भावी और सम्भावित आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए।

अर्थव्यवस्था में सन्तुलन बनाए रखने के लिए आडी सन्तुलन-प्रणाली (Cross-wise balances) द्वारा कुल उत्पादन-लक्ष्यो तथा कुल उपलब्ध साधनो जैसे जनशक्ति, खनिज पदार्थ, यातायात, शक्ति आदि के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिए। एक सन्तुलन उत्पादन-लक्ष्यो तथा उपलब्ध जनशक्ति के मध्य होना चाहिए। उपलब्ध श्रम शक्ति को नियोजित करने से जितना उत्पादन किया जा सकता है, यदि उत्पादन-लक्ष्य इससे कम निर्धारित किए जाएँगे, तो जनशक्ति का पूर्ण उपयोग नही किया जा सकेगा और बेरोजगारी फैलेगी। इसी प्रकार, यदि किसी वस्तु के उत्पादन लक्ष्य बहुत कम या अधिक निर्धारित किए गए, तो उस वस्तु के

उत्पादन में प्रयुक्त कच्चे माल आदि का या तो पूरा उपयोग नही हो पाएगा या उनकी कमी पड जाएगी। उत्पादन-लक्ष्यो के निर्धारण मे स्थानीयकरण सन्तुलन (Location Balance) और वित्तीय सन्तुलन (Financial Balance) भी स्थापित किए जाने चाहिए। वित्तीय साधनो की अपेक्षा भौतिक लक्ष्य अधिक ऊँचे निर्धारित किए गए तो वित्तीय साधनो के अभाव मे अप्रयुक्त भौतिक साधन एकत्रित हो जाएँगे और अर्थव्यवस्था मे बाधाएँ उपस्थित हो जाएँगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादन-लक्ष्यो की अपेक्षाकृत वित्तीय साधनो को अधिक गतिशील बनाया गया तो मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो को जन्म मिलेगा। इसके अतिरिक्त, अधोगामी-सन्तुलन (Backward Balances) भी स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार का सन्तुलन अन्तिम उत्पादनो (Finished Products) तथा इस वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक विभिन्न वस्तुओ (Components) के मध्य सम्बन्धो को प्रकट करता है। यदि नियोजन की अवधि मे कुछ प्रतिशत से ट्रैक्टरो का उत्पादन बढाने का लक्ष्य निश्चित करते हैं, तो ट्रैक्टरो के निर्माण के लिए आवश्यक आदा (Input) जैसे, लोहा एव इस्पात, इँधन, शक्ति एव अन्य पदार्थो का उत्पादन भी बढाना होगा।

साथ ही, योजना के लक्ष्य यथार्थवादी होने चाहिए। वे इतने कम भी नही होने चाहिए जिनकी प्राप्ति बहुत आसानी से हो जाए और जिनके लिए कोई विशेष प्रयत्न नही करना पडे। यदि ऐसा होगा तो राष्ट्रीय शक्तियाँ विकासोन्मुख नही हो पाएँगी। इसके अतिरिक्त लक्ष्य नीचे रखने से देश का आर्थिक-विकास तीव्रता से नही हो पाएगा और जनता का जीवन-स्तर ऊँचा नही हो पाएगा। इसलिए आर्थिक नियोजन के लक्ष्य बहुत अधिक नीचे नही रखने चाहिए, अपितु, ये कम महत्त्वाकांक्षी होने चाहिए। ऐसा होने पर ही देश के साधन और शक्तियाँ विकास के लिए प्रेरित होगी तथा द्रुत आर्थिक विकास होगा। देश को स्वय-स्फूर्त अर्थव्यवस्था मे पहुँचने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न (Critical Minimum Efforts) करने होगे। इसीलिए, उत्पादन-लक्ष्य ऊँचे रखे जाने चाहिए किन्तु वे इतने ऊँचे भी नही होने चाहिए, जो प्राप्त होने मे कठिन हो या जिन्हे प्राप्त करने मे जनता को बहुत त्याग करना पडे अथवा कठिनाइयाँ उठानी पडें। ये लक्ष्य न बहुत नीचे और न बहुत ऊँचे होने चाहिए। इनके निर्धारण मे व्यावहारिक पहलू पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। निर्धारित किए गए लक्ष्य बेलोच नही होने चाहिए और इनमे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार, परिवर्तन किए जाने की गुँजाइश होनी चाहिए।

भारतीय नियोजन में लक्ष्य-निर्धारण

भारत मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे लक्ष्य-निर्धारण का कार्य विभिन्न कार्यशील समूहो द्वारा किया जाता है। इन कार्यशील समूहो (Working Groups) के सदस्य विभिन्न मन्त्रालयो और विशिष्ट सगठनो से लिए गए विशेषज्ञ होते है। ये दल योजना आयोग द्वारा भेजे गए सुझावो, निर्देशो आदि के अनुसार लक्ष्य-निर्धारित करते हैं। इस कार्य मे सगठित जनमत पर भी ध्यान दिया जाता है। लक्ष्यो को

अन्तिम रूप से स्वीकार करने के पूर्व इनकी सगति (Consistency) की विभिन्न प्रकार से जाँच की जाती है।

कृषि-क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण—कृषि क्षेत्र के लिए उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित करते समय मुख्यत दो बातो का ध्यान रखा जाता है—

(i) योजनावधि मे भोजन, औद्योगिक कच्चे माल और निर्यातों के लिए अनुमानित आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके।
(ii) जिन्हे प्राप्त करना व्यावहारिक रूप से सम्भव हो।

कृषि क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारण के कुछ प्रमुख तत्त्व हैं, जैसे—प्रशासनिक, तकनीकी तथा समुदाय स्तर पर सगठन, साख, विशेष रूप से मध्यम और दीर्घकालीन तथा उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यन्त्र आदि के लिए विदेशी विनिमय आदि पर विचार किया जाता है। इन तत्त्वो की उपलब्धि के अनुसार ही कृषि क्षेत्र मे लक्ष्य-निर्धारित किए जाते हैं और इन तत्त्वो की कमी ही लक्ष्यो की सीमाएँ निर्धारित करती है। कृषि क्षेत्र के ये लक्ष्य कृषि सम्बन्धी विभिन्न कार्यों जैसे सिंचित क्षेत्रफल, भूमि को कृषि योग्य बनाना, भूमि मे भू सरक्षण कार्यक्रमो का सचालन करना, सुधरे हुए बीजो का उपयोग, खाद और उर्वरको का उत्पादन एव उपयोग, सुधरे हुए यन्त्रो और उपकरणो का उपयोग आदि के बारे मे निर्धारित किए जाते हैं। कृषि के इन आदानो के अतिरिक्त कृषि क्षेत्र के उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य भी निर्धारित किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, अमुक मात्रा मे गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास, जूट, तिलहन, खाद्यान्न, दालें आदि का उत्पादन किया जावेगा। समस्त देश के बारे मे इन लक्ष्यो को स्थानीय, प्रादेशिक और राज्य योजनाओ के लक्ष्यो के आधार पर निश्चित किया जाता है।

औद्योगिक क्षेत्र मे लक्ष्य निर्धारण—उद्योगो से सम्बन्धित लक्ष्य-निर्धारण मे सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो से उद्योगो के अनुपात पर विचार किया जाता है। साथ ही, आधारभूत वस्तुओ, जैसे स्पात, सीमेन्ट, कोयला, रसायन आदि की माँग का अनुमान लगाया जाता है। प्रत्येक स्थिति मे वर्तमान स्थिति पर विचार किया जाता है। इसमे देश मे उत्पादन, आयात, पूँजीगत लागतें, कच्चे माल की उपलब्धि, विदेशी-विनिमय की आवश्यकता आदि पर विचार किया जाता है। आधारभूत उद्योगो के बारे मे ही नही अपितु, अन्य उद्योगो के बारे मे भी इसी प्रकार की बातो को ध्यान मे रख कर लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। निजी-क्षेत्र मे सचालित उद्योगों के लिए योजना आयोग मुख्य उत्पादक इकाइयो, उद्योग के प्रतिनिधियों या प्रतिनिधि सस्थाओ से विचार-विमर्श करता है। इस प्रकार, व्यक्तिगत उद्योग और अन्य सभी उद्योगो के अस्थाई लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं। तत्पश्चात् इनमे पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Inter relationship) और मुख्य उद्योगो के आदा-प्रदा (Input-output) के आधार पर समायोजन कर लिया जाता है। कई छोटे उपभोक्ता उद्योगो के लिए इस प्रकार के विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित नही किए जाते,

अपितु अधिकांश उद्योगो के बारे मे उत्पादन या स्थापित क्षमता के स्तर के बारे मे योजना मे जानकारी दे दी जाती है।

शक्ति एवं यातायात—शक्ति एव यातायात के लक्ष्यो को कृषि और उद्योगो के विकास तथा उत्पादन के अनुमानो के आधार पर निश्चित किया जाता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि कृषि और उद्योगो का कितना विकास होगा और इनके लिए तथा उपभोग आदि के लिए कितनी शक्ति की आवश्यकता होगी। साथ ही, कृषि-उपज मण्डियो, उपभोक्ताओ तथा बन्दरगाहो तक पहुँचने के लिए कृषि आदानो (Agricultural inputs) को कृषको तक पहुँचाने के लिए तथा उद्योगो के लिए कच्चे माल को कारखानो मे पहुँचाने, कारखानों से निर्मित माल बाजारो, उपभोक्ताओ तथा बन्दरगाहो तक पहुँचाने के लिए किस मात्रा मे यातायात के साधनो की आवश्यकता होगी। इन अनुमानो के अनुसार योजना मे यातायात के साधनो के विकास के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। शक्ति और यातायात के साधन सम्बन्धी लक्ष्यो को निर्धारित करने मे एक कठिनाई यह होती है कि इन सुविधाओ की व्यवस्था इनकी आवश्यकता के पूर्व ही की जानी चाहिए, क्योंकि इनको भी पूरे होने मे समय लगता है। किन्तु कृषि और उद्योगो के लक्ष्य योजना प्रक्रिया मे बहुत बाद मे अन्तिम रूप ग्रहण करते हैं। अत. कृषि और उद्योगो के विकास की दीर्घकालीन योजना पूर्व ही तैयार होनी चाहिए जिसके आधार पर शक्ति और यातायात के लक्ष्य समय पर निर्धारित किए जा सके। भारत मे इस प्रकार के दीर्घकालीन नियोजन के कारण ही भूतकाल मे शक्ति और यातायात के लक्ष्य उनकी माँग से पिछड गए हैं। इस कमी की पूर्ति के लिए भारतीय नियोजन मे प्रयास किए गए हैं।

शिक्षा क्षेत्र मे लक्ष्य निर्धारण—तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के प्रशिक्षण मे अधिक समय लगता है। किसी अभियन्ता या चिकित्सक या कृषि विशेषज्ञ आदि को तैयार करने मे कई वर्ष लग जाते हैं। अत आगे आने वाली योजना के लिए वर्तमान योजना के प्रारम्भ मे ही लक्ष्यो को निश्चित कर लिया जाता है। आगामी योजना मे कितने कुशल श्रमिको या तकनीकी कर्मचारियो अथवा विशेषज्ञो की आवश्यकता पडेगी। इन अनुमानो के अनुसार व्यक्तियो को तैयार करने के लिए वर्तमान योजना मे लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते हैं। इसलिए भारत मे योजना-आयोग कई वर्षों स जन शक्ति के दीर्घकालीन प्रशिक्षण के कार्यक्रम बनाता रहा है। *मानव शक्ति पर अध्ययन अनुसधान के लिए व्यावहारिक जन-शक्ति अनुसधान* सस्थान की दिल्ली म स्थापना की गई है। विभिन्न प्रकार की जन-शक्ति की आवश्यकताओ के अनुमान लगाए जाते है और तद्नुसार प्रशिक्षण, शिक्षा आदि के कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं।

सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी लक्ष्य निर्धारण मे भारतीय सविधान और उसमे वर्णित नीति-निर्देशक तत्वो (*Directives of State Policy*) तथा उसमे समय-समय पर हुए सशोधनो को ध्यान मे रखा जाता रहा है। इस सम्बन्ध मे योजनाओ में लक्ष्यो का निर्धारण 6 से 11 वर्ष की आयु के समस्त बालको को नि शुल्क और

अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था तृतीय योजना के अन्त तक और 14 वर्ष तक की आयु के समस्त बालको को अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था चौथी या पाँचवी योजना के अन्त तक करने के ध्येय और व्यापक निर्देशो के आधार पर किया जाता रहा है। इस व्यापक लक्ष्य के अनुरूप प्रत्येक योजना मे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय खोलने का अध्यापको को नियुक्त करने और शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर छात्रो को प्रविष्ट कराने के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

स्वास्थ्य, आवास, सामाजिक कल्याण के लक्ष्य निर्धारण, इन सुविधाओ के लक्ष्य दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विकसित की जाने वाली सुविधाओ पर विचार-विनिमय के पश्चात् निर्धारित किए जाते हैं। भारत इन क्षेत्रो मे बहुत पिछड़ा है और इन सुविधाओ मे तेजी से वृद्धि की आवश्यकता है। किन्तु इन कार्यक्रमो को उनकी आवश्यकताओ की अपेक्षा बहुत कम राशि आवंटित की जाती है। परिणाम-स्वरूप इनके लक्ष्य कम ही निर्धारित होते रहे हैं।

अन्तिम लक्ष्य निर्धारण—इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के अलग अलग उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं जिन्हे मिलाकर समग्र योजना का निर्माण किया जाता है। इन लक्ष्यो के आधार पर सम्पूर्ण योजना के लिए स्थिर और स्थिर पूँजी तथा विदेशी विनिमय आवश्यकताओ का अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् इस बात पर विचार किया जाता है कि आन्तरिक और बाह्य स्रोतो से ये किस मात्रा मे साधनो को गतिशील बनाना सम्भव है और कितने पूँजीगत साधन और विदेशी विनिमय योजना के लिए उपलब्ध हो सकेंगे। इनकी उपलब्धि के सन्दर्भ समस्त योजना या किसी विशेष क्षेत्र के लक्ष्यो के कम करने या बढाने की गुंजायश पर विचार किया जाता है। लक्ष्यों को अन्तिम रूप देने मे रोजगार वृद्धि के अवसरो और आधारभूत कच्चे माल की उपलब्धि पर भी विचार किया जाता है। इन सब बातो पर विचार करने के पश्चात् योजना के लक्ष्य निर्धारण को अन्तिम रूप दिया जाता है।

लक्ष्य निर्धारण प्रक्रिया की कमियाँ—भारतीय योजनाओ के लिए लक्ष्य-निर्धारण प्रक्रिया मे कई कमियाँ हैं। कई अर्थशास्त्रियो ने लक्ष्य-निर्धारण मे और विभिन्न वित्तीय-गणनाओ की दूसरी योजनाओ की तकनीक और आधारो की आलोचना की है। योजना आयोग ने बड़े-बड़े लक्ष्यो के बारे मे तो विचार किया किन्तु विनियोग व्यय के प्राकृतिक विश्लेषण पर तनिक भी ध्यान नही दिया। इन लक्ष्यो का निर्धारण कई गलत और अपूर्ण मान्यताओ के आधार पर किया। लक्ष्य-निर्धारण मे, यथार्थ पूँजी-उत्पादन अनुपात का उपयोग नही किया गया। एम एल सेठ (M L Seth) ने भारत मे लक्ष्य-निर्धारण-प्रक्रिया मे निम्नलिखित कमियाँ बतलाई हैं—

(1) योजना के अन्तिम वर्ष के लिए लक्ष्य-निर्धारित करने मे बहुत ध्यान दिया जाता है किन्तु इन लक्ष्यो को योजनावधि के सभी वर्षों के लिए विभाजित नही किया जाता।

(ii) अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रो जैसे-उद्योग, शक्ति, सिचाई, यातायात आदि की परियोजनाओ मे जहाँ भारी मात्रा मे विनियोग हो और जिनके पूर्ण होने की अवधि अधिक लम्बी हो।

इन परियोजनाओ के आर्थिक, तकनीकी, वित्तीय और अन्य परिणामो पर पूरा विचार नही किया जाता। इसी कारण, परियोजना की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्ति और आवश्यक सगठन उपलब्ध नही हो पाते।

(iii) किसी परियोजना के निर्माण की स्थिति में बाद मे, जाकर अप्रत्याशित तत्वो के कारण विभिन्न परिवर्तन और समायोजन करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए योजना उससे प्राप्त होने वाले लाभो, लागत अनुमानो और वित्तीय साधनो के दृष्टिकोण से लचीली होनी चाहिए। भारतीय नियोजन के लक्ष्य-निर्धारण मे इस ओर अधिक प्रयत्नो की आवश्यकता है।

11 उत्पादन-क्षेत्रों में विनियोगों का आवंटन

(Allocation of Investment between Production Sectors)

आर्थिक विकास और योजना-कार्यक्रमो की सफलता के लिए भारी मात्रा मे पूँजी का विनियोग आवश्यक होता है। अधिक बचत का सृजन करके इन्हे बाजार तान्त्रिकता तथा वित्तीय संस्थाओ द्वारा गतिशील बना कर, उत्पादक आदेयो मे रूपान्तरित करके विनियोगो की मात्रा मे वृद्धि की जा सकती है। अर्थव्यवस्था मे विनियोगो की यह मात्रा उपलब्ध बचत की मात्रा और अर्थव्यवस्था की पूँजी-शोषण-क्षमता (Absorptive Capacity) पर निर्भर करती है। पूँजी शोषण क्षमता का आशय समाज और व्यक्तियो मे उपलब्ध पूँजीगत आदेयो के उपभोग करने की योग्यता से है।

आर्थिक विकास के लिए विशाल मात्रा मे पूँजी का विनियोजन ही पर्याप्त नही है अपितु पूँजी का विनियोग सुविचारित और युक्ति-युक्त होना चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोजित किए जाने वाले साधनो की अत्यन्त स्वल्पता होती है। साथ ही उनकी माँग और उपयोगो मे वृद्धि भी होती रहती है। अत इन विनियोजित किए जाने वाले साधनो के विभिन्न वैकल्पिक उपयोगो मे से चयन करना पड़ता है। अत यह समस्या पैदा होती है कि विभिन्न क्षेत्रो मे अर्थात् कृषि उद्योग या सेवाओ मे, निजी या सार्वजनिक उद्योगो मे, पूँजीगत या उपभोग वस्तुओं के उत्पादन मे और देश के विभिन्न क्षेत्रो मे से किस मे अधिक मात्रा मे विनियोग किया जाए और इन सभी क्षेत्रो के सभी भागों मे किस प्रकार विनियोगो का आवटन किया जाए। सामान्यत. इन विभिन्न क्षेत्रो और उनके भागो मे विनियोग के लिए वास्तविक साधनो का प्रवाह आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक तत्वो से प्रभावित होता है। किन्तु यह आर्थिक विकास मे तीव्रता लाने के लिए केवल विनियोगो की अधिकता के साथ-साथ उनका विवेकपूर्ण आवटन भी आवश्यक है।

विनियोग विकल्प की आवश्यकता
(Need for Investment Choice)

सैद्धान्तिक रूप से आदर्श अवस्था मे पूर्ण और स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है और उत्पादन के साधनो एव विनियोगो के विभिन्न उपयोगो मे अनुकूलतम वितरण की आशा की जाती है। यहाँ मजदूरी और ब्याज दरें माँग और पूर्ति की शक्तियो के

द्वारा निर्धारित होती हैं और प्रत्येक साधन का उपयोग सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार उस बिन्दु तक किया जाता है, जिस पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति उसके लिए चुकाई जाने वाली कीमत के बराबर होती है। श्रम, पूँजी आदि किसी साधन की पूर्ति मे वृद्धि होने पर इसका मूल्य घटने लगेगा और इससे इस साधन के अधिक प्रयुक्त किए जाने को प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत किसी साधन की पूर्ति में कमी आने पर उसके मूल्य मे वृद्धि होती है और उसका उपयोग हतोत्साहित होता है। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम अर्थव्यवस्था मे मूल्य-प्रक्रिया और बाजार-तान्त्रिकता के द्वारा न केवल साधनो का पूर्ण नियोजन हो जाता है, अपितु उनका सर्वाधिक प्रभावपूर्ण और अनुकूलतम उपयोग भी होता है।

किन्तु व्यवहार मे ऐसा नही हो पाता है। एक तो स्वय पूर्ण प्रतियोगिता का होना असम्भव है और दूसरे उत्पादन मे बाह्य मितव्ययताओ का प्रादुर्भाव और उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तन के साथ लागतो का बढना या घटना साधनों के आदर्श वितरण मे बाधाएँ उपस्थित कर देते है। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम मे साधनो और विनियोगो का अनुकूलतम आवटन सदिग्ध होता है। इसके अतिरिक्त, उत्पादन की आधुनिक तकनीकी दशाएँ किसी भी दीर्घकालीन उत्पादन-प्रक्रिया मे सीमान्त उत्पादन और लागत के समायोजन को कठिन बना देती है, क्योकि जब एक बार उत्पादन की किसी तकनीक को ग्रहण कर लिया जाता है, तो तदनुरूप साधनो के अनुपात को भी स्वीकार करना पडता है। निजी उद्यमियो का विनियोग सम्बन्धी निर्णय तकनीकी ज्ञान का स्तर, श्रम पूर्ति, मजदूरी, ब्याज और मूल्य स्तर, उपयोग के लिए उपलब्ध कोषो की मात्रा और पूँजी और श्रम के तकनीकी सम्बन्ध आदि के ज्ञात या अज्ञात सूचनाओ के अनुसार निर्णय लेने पडते हैं।

अनियन्त्रित मुक्त उपक्रम प्रणाली मे विनियोग के आवटन मे अन्य कमियाँ भी होती हैं। निजी उद्यमियो का उद्देश्य निजी-लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके आगे वे सामाजिक-कल्याण की उपेक्षा कर जाते हैं। साथ ही उनकी दूरदर्शिता की शक्ति भी सीमित होती है। विनियोग की किसी विशेष परियोजना की अर्थ-व्यवस्था पर और किसी विशेष नए उद्योगो की स्थापना या पुराने उद्योगो के विस्तार का, अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो या आय के वितरण और उसकी सरचना, उत्पादन के साधनो की पूर्ति और लागत पर क्या प्रभाव पडता है, इस बात को विचारने की चिन्ता निजी उद्यमकर्त्ता नहीं करते और न हो वे इस कार्य के लिए सक्षम होते हैं परिणाम-स्वरूप अर्थव्यवस्था मे होने वाले समग्र प्रभावो का ज्ञान एक ऐसे अभिकरण द्वारा ही हो सकता है जिसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के व्यवहार और प्रतिक्रिया का विस्तृत और पर्याप्त ज्ञान हो। निजी-उद्यमियो द्वारा लिए गए विनियोजन सम्बन्धी उपरोक्त कमियो के कारण ही सरकार द्वारा विनियोग कार्यक्रमो मे भागीदार बनने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। निजी-उपक्रम व्यवस्था मे साधनो का अनुकूलतम आवटन नहीं हो पाता है। आवश्यक कार्यों के लिए पूँजी उपलब्ध नही हो पाती, जबकि सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से अनावश्यक परियोजनाओं पर बहुत अधिक

साधन विनियोजित किए जाते हैं। अत सरकार को प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा या निजी उद्यमियो द्वारा किए जा रहे विनियोगो को नियन्त्रित करके विभिन्न क्षेत्रो, उद्योगो और प्रदेशो मे विनियोगो का अनुकूलतम आवटन करना चाहिए। वस्तुत सरकार विनियोगो के आवटन और उनकी तकनीक सम्बन्धी समस्याओ के बारे मे दीर्घकालीन और अच्छी जानकारी रखने और उन्हे हल करने की स्थिति मे होती है। उसके साधन भी अपरिमित होते हैं। वह देश के उपलब्ध और सम्भावित साधनो और विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताओ सम्बन्धी सूचनाओ से भी सम्पन्न होते हैं। सरकार निजी उपक्रमियो की अपेक्षा विनियोगो की मात्रा मे होने वाले परिवर्तनो के परिणामस्वरूप, विभिन्न क्षेत्रो और समूची अर्थव्यवस्था पर पडने वाले प्रभावो का अधिक अच्छा अनुमान लगा सकती है। अत राज्य आर्थिक क्रियाओ मे भाग लेकर और विनियोग नीति द्वारा वित्तीय साधनो का उपयुक्त वितरण करने मे समर्थ हो सकती है। विशेषत वह यातायात के साधनो, सिंचाई और विद्युत योजनाओ द्वारा बडी मात्रा मे बाह्य मितव्ययताओ का सृजन करके आर्थिक विकास को तीव्रगति प्रदान कर सकती है। वह निजी उद्यमियो द्वारा उपेक्षित क्षेत्रो मे स्वय पूँजी विनियोजन कर सकती है। इस प्रकार एक उद्योग या क्षेत्र का विस्तार दूसरे उद्योग या क्षेत्र मे होता है।

अर्द्ध-विकसित देशो की विनियोजन सम्बन्धी विशिष्ट समस्याएँ (Special Investment Problems in Underdeveloped Countries)

अर्द्ध विकसित देशो की विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक विशेषताओ के कारण इन देशो मे विनियोगो के आवटन की समस्या, विकसित देशो की अपेक्षा अधिक जटिल होती है। साधनो की अपर्याप्त उपलब्धि और साधनो के तकनीकी प्रतिस्थापन के सीमित अवसर उचित विनियोग नीति अपनाने मे बाधाएँ उपस्थित करते हैं। प्रो किडलवर्जर (Prof Kindleberger) के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देशो मे 'साधन स्तर पर सरचनात्मक असाम्य' (Structural disequilibrium at the factor level) होता है। यहाँ पूँजी स्वल्पता और श्रम शक्ति की बहुलता होती है। परिणामस्वरूप ये देश पर्याप्त मात्रा मे बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी से ग्रस्त रहते है। श्रम की सीमान्त-उत्पादकता शून्य या शून्य के लगभग होती है, किन्तु मजदूरी की वास्तविक दर उससे भिन्न होती है जो श्रम की माँग और पूर्ति की शक्तियो के निर्धारण द्वारा होती है। इसका प्रमुख कारण इन देशो की अर्थव्यवस्था मे सगठित और असगठित दो भिन्न भिन्न क्षेत्रो की उपस्थिति है। सगठित क्षेत्र मे श्रम सगठनो, सामाजिक सुरक्षा-सन्नियमो और सरकार की श्रम कल्याणवादी नीति के कारण मजदूरी की दरें असगठित क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक होती है। अत उत्पादन की तकनीक अधिक पूँजी गहन होती है और ऐसी परियोजनाओ मे पूँजी विनियोजित की जाती है किन्तु दूसरी ओर पूँजी का अभाव अपनी स्वय की कठिनाइयाँ उपस्थित करती है। पूँजी के अभाव के अतिरिक्त सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियाँ भी

उत्पादन की आधुनिक और कुशल प्रणालियो के ग्रहण करने मे बाधाएँ उपस्थित करता है। उदाहरणार्थ, छोटे खेतो को बडी कृषि सम्पत्तियो मे परिवर्तित करने के कृषि विनियोग कार्यक्रम (Agricultural Investment Programme) का ऐसे देश मे विरोध किया जाता है, जहाँ अधिक भूमि का स्वामित्व सामाजिक सम्मान का होना है। डी ब्राइटसिंह (D Bright Singh) के अनुसार "आवश्यक पूँजी उपलब्ध होने पर भी भारी उद्योगो मे पूँजी विनियोग दृढ औद्योगिक आधार का निर्माण करने और आर्थिक विकास को गति देने मे तभी सफल हो सकता है जबकि समाज आर्थिक-विस्तार के उपयुक्त सामाजिक मूल्यो को ग्रहण करे।" अत इन अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोग कार्यक्रम का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो विकास कार्यक्रम और परियोजनाएँ अपनाई जाएँ, वे यथासम्भव वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सस्थाओ और मूल्यो मे कम से कम हस्तक्षेप करें। साथ ही इन सस्थाओ और मूल्यो मे भी शनै-शनै परिवर्तन किया जाना चाहिए। अर्द्ध विकसित देशो द्वारा इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वे विकसित देशो का अन्धानुकरण करके ही विनियोग के लिए परियोजनाओ का चयन नही करें अपितु देश की साधन-पूर्ति (Factor supply) की स्थिति के अनुसार उन्हे समायोजित भी करें।

अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि की प्रधानता होती है। कृषि वहाँ के अधिकांश व्यक्तियो को रोजगार प्रदान करती है, राष्ट्रीय आय का बडा भाग उत्पन्न करती है और विदेशी विनिमय के अर्जन मे भी कृषि का महत्त्व होता है। किन्तु कृषि व्यवसाय अत्यन्त पिछडी अवस्था मे होता है। अत यहाँ कृषि विकास कार्यक्रमो पर विशाल पूँजी विनियोजन की आवश्यकता होती है, किन्तु इन देशो मे औद्योगिक विकास की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती क्योकि कृषि के विकास के लिए औद्योगिक विकास आवश्यक है। अत औद्योगिक परियोजनाओ पर भी भारी मात्रा मे पूँजी-विनियोग आवश्यक होता है। अत. अर्द्ध विकसित देशों मे उद्योग कृषि सेवाओ आदि मे उचित विनियोग नीति अपनाने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, अर्द्ध-विकसित देशो मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को बहुत समर्थन मिलता है।

विनियोग मानदण्ड
(Investment Criteria)

आर्थिक विकास के लिए नियोजन हेतु वित्तीय साधनो को गतिशील बनाना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही विनियोग की प्रकृति का निर्धारण करना है। इन देशो को न केवल विनियोग-दर के बारे मे ही निर्णय करना पडता है, अपितु विनियोग सरचना के बारे मे भी उचित निर्णय करना पडता है। सरकार का यह कर्त्तव्य होता है कि इस प्रकार के विनियोग कार्यक्रम अपनाए, जो समाज और राष्ट्र के लिए सर्वाधिक लाभप्रद हो। अत विभिन्न क्षेत्रो, परियोजनाओ, उद्योगो और प्रदेशो मे विनियोग कार्यक्रम को निर्धारित करते समय अत्यधिक सोच-विचार की आवश्यकता है। गत वर्षों मे, अर्थ शास्त्रियो द्वारा द्रुत आर्थिक विकास के उद्देश्य से

विनियोगो पर विचार करने के लिए कई मानदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. समान सीमान्त-उत्पादकता का मानदण्ड
(Criteria of Equal Marginal Productivity)

इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग और उत्पादन के साधनो का सर्वोत्तम आवटन तब होता है कि जब विभिन उपयोगो में इसके परिणामस्वरूप सीमान्त विनियोग सर्वाधिक लाभप्रद नहीं होगे, क्योकि उनको एक क्षेत्र मे स्थानातरित करके कुल लाभ में वृद्धि करने की गु जायश रहेगी। अतः विभिन्न क्षेत्रो, उद्योगो और प्रदेशो में विनियोगो का इस प्रकार वितरण किया जाना चाहिए जिससे उनकी सीमान्त-उत्पादकता समान हो। अर्द्ध-विकसित देशो मे श्रम की बहुलता और पूंजी की सीमितता होती है। अत विनियोग नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमे, कम मात्रा में पूंजी से ही अधिक मात्रा में श्रम को नियोजित किया जा सके। अन्य शब्दो में विनियोग नीति देश में उपलब्ध श्रम और पूंजीगत साधनो का पूर्ण उपयोग करने में समर्थ होनी चाहिए। यदि देश में पूंजी का अभाव और श्रम की बहुलता है, जैसा कि अर्द्ध-विकसित देशो के बारे में सत्य है, तो यह देश निम्न पूंजी श्रम अनुपात वाली परियोजनाओ को अपनाकर अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार, विनियोग कार्यक्रमो को निर्धारित करते समय हेक्सर-ओहलिन (Hekscher Ohlin) के तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त' (Doctrine of Comparative Cost) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यद्यपि पूंजी की सीमित उपलब्धता की स्थिति में श्रम-शक्ति के पूर्ण उपयोग से श्रम की प्रत्येक इकाई की सीमान्त उत्पादकता में कमी आती है तथापि अधिक श्रमिको के नियोजित हो जाने के कारण कुल उत्पत्ति मे वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार विनियोग अधिकतम लाभप्रद हो जाते है। यह सिद्धान्त साधन उपलब्धता (Factor Endowment) पर आधारित है, जिसमे श्रम और पूंजी आदि उपलब्ध साधनो के पूर्ण उपयोग पर बल दिया गया है। अत अर्द्ध-विकसित देशो मे जहां पूंजी का अभाव और श्रम की बहुलता है, श्रम-प्रधान और पूंजी विरल विनियोगो को अपनाना चाहिए। सीमान्त-उत्पादकता को समान करने का सिद्धान्त केवल स्थैतिक दशाओ के अन्तर्गत अल्पकाल मे ही विनियोगो का कुशल आवटन करने मे सक्षम होता है। मारिस डॉब (Maurice Dobb) के अनुसार ससाधन स्थिति के अनुसार, पूंजी-विरल परियोजनाओ को अपनाना एक प्रकार से प्रगति या परिवर्तन की आकांक्षा के बिना वर्तमान निम्न दशा को ही स्वीकार करना है। जबकि द्रुत आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के सगठन, सरचना और तकनीको मे परिवर्तन आवश्यक है। इसी प्रकार इन देशो मे पूंजी-गहन परियोजनाओ से सर्वथा बचा नहीं जा सकता। यहां पर्याप्त मात्रा मे जल, खनिज आदि प्राकृतिक साधन अशोषित हैं जिसको विकसित करने के लिए प्रारम्भ मे भारी विनियोगो की आवश्यकता होती है। इस्पात कारखाने, तेल-शोधक शालाएँ, यातायात सचार, बन्दरगाह आदि आर्थिक

विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं और इन सभी मे बडी मात्रा मे पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है।

2. सामाजिक सीमान्त उत्पादकता का मानदण्ड (Criteria of Social Marginal Productivity)

विनियोगो का एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड सामाजिक 'सीमान्त उत्पादकता' है जो एक प्रकार से, 'समान सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त' का सशोधित रूप है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1951 में ए. ई काहन (A E Kahn) ने किया जिसे बाद मे हालिस बी चेनेरी (Hollis B Chanery) ने विकसित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, यदि विनियोगो द्वारा आर्थिक विकास को गति देना है, तो पूँजी ऐसे कार्यक्रमो म विनियोजित की जानी चाहिए, जो सर्वाधिक उत्पादक हो अर्थात् जिनकी सीमान्त सामाजिक उत्पादकता सर्वाधिक हो। सीमान्त सामाजिक उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार, विनियोग की अतिरिक्त इकाई के लाभ का अनुमान इस आधार पर नही लगाया जाता है कि इससे निजी उत्पादक को क्या मिलता है किन्तु इस बात से लगाया जाता है कि इस सीमान्त इकाई का राष्ट्रीय उत्पादन म कितना योगदान रहा है। इसके लिए न केवल आर्थिक, अपितु सामाजिक लागतो और सामाजिक लाभो पर भी ध्यान दिया जाता है ए ई काहन (A E Kahn) के अनुसार सीमित साधनो से अधिकतम आय प्राप्त करने का उपयुक्त मापदण्ड 'सीमान्त सामाजिक उत्पादकता' है जिसमे सीमान्त इकाई के राष्ट्रीय उत्पत्ति के कुल योगदान पर ध्यान दिया जाना चाहिए, न कि केवल इस योगदान (या इसकी लागतो) के उस भाग पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए जो निजी विनियोगकर्त्ता को प्राप्त हो।" इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न क्षेत्रो में विनियोगो की सीमान्त सामाजिक उत्पादकता समान होनी चाहिए। भारत जैसे अर्द्धविकसित देशो के सन्दर्भ मे विकासार्थ नियोजन मे किए जाने वाली सीमान्त सामाजिक उत्पादकता की उच्चता वाले विनियोग निम्नलिखित हैं—

(i) जो सर्वाधिक उत्पादकता वाले उपयोगो मे लगाए जाए, ताकि विनियोगो से प्रचलित उत्पादन का अनुपात अधिकतम हो या पूँजी उत्पादन अनुपात न्यूनतम हो। अन्य शब्दो मे पूँजी उन क्षेत्रो, उद्योगो, परियोजनाओ और प्रदेशो म विनियोजित की जानी चाहिए, जिनमे लगी हुई पूँजी से अपेक्षाकृत अधिक उत्पत्ति हो।

(ii) जिनमे श्रम विनियोग अनुपात (Labour Investment Ratio) अधिकतम हो अर्थात् जो पूँजी से श्रम के अनुपात मे वृद्धि करे। अन्य शब्दो मे, पूँजी ऐसे क्षेत्रो, उद्योगो, परियोजनाओ और भौगोलिक क्षेत्रो मे विनियोजित की जानी चाहिए, जिनम लगी हुई पूँजी से अधिक श्रमिको को नियोजित किया जा सके।

(iii) जो ऐसी परियोजनाओ मे लगाए जाएँ, जो व्यक्तियो की बुनियादी आवश्यकताओ की वस्तुओ का उत्पादन करें और बाह्य मितव्ययताओ मे वृद्धि करें।

(iv) जो पूँजी के अनुपात मे निर्यात पदार्थों मे वृद्धि करें, अर्थात् जो निर्यात संवर्द्धन या आयात प्रतिस्थापन में योगदान दे।

(v) जो अधिकतर घरेलू कच्चा-माल तथा अन्य साधनो का अधिकाधिक उपयोग करें।

(vi) जो शीघ्र फलदायी हो, ताकि मुद्रा प्रसार, विरोधी शक्ति के रूप में कार्य कर सके।

सीमान्त सामाजिक उत्पादकता के मानदण्ड की श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि इसमें किसी विनियोग कार्यक्रम की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर पडने वाले समग्र प्रभावों पर ध्यान दिया जाता है। अत यह सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक अच्छा है किन्तु इसकी अपनी भी सीमाएँ हैं। आर्थिक विकास के दौरान न केवल सामाजिक आर्थिक तत्वो, अपितु जनसख्या की मात्रा, गुण, स्वभाव और उत्पादन तकनीक आदि में भी परिवर्तन आता है। अत इस मानदण्ड का उपयोग एक अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण गत्यात्मक परिस्थितियो के सदर्भ मे करना चाहिए। कुछ सामाजिक उद्देश्य परस्पर विरोधी हो सकते है। अत विभिन्न उद्देश्यो मे से कुछ का चयन करना एक कठिन कार्य होता है। इसमे नैतिक निर्णयो की भी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार विनियोगो की दिशा और उनके अन्तिम परिणामो के बारे मे भी विचारो मे अन्तर हो सकता है। उदाहरणार्थ, किसी विशिष्ट परियोजना मे पूँजी का विनियोग करने से राष्ट्रीय आय मे तो वृद्धि हो, किन्तु उससे आय वितरण असम न हो। इसी प्रकार कुछ परियोजनाओ मे विनियोग से राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति उपभोग निकट भविष्य मे ही बढ सकता है, जबकि किन्ही अन्य परियोजनाओ से ऐसा दीर्घकाल मे हो सकता है। अत: सामाजिक उद्देश्यो के निर्धारित किए बिना विनियोगो की दिशा, सरचना और प्रगति के बारे मे निर्णय लेना बहुत कठिन है।

इसके अतिरिक्त, सीमान्त सामाजिक-उत्पादकता की यह धारणा अवास्तविक है। यह निजी-लाभ से मानदण्ड की अपेक्षा कम निश्चित है। बाजार मूल्य, सामाजिक मूल्यो (Social Values) को ठीक प्रकार से प्रकट नही करते। अतः विनियोगो मे निहित सामाजिक लाभो और सामाजिक लागतो का सख्यात्मक माप असम्भव है। मानदण्ड की सबसे बडी कमी यह है कि, इसमे विनियोगो के एक बार के प्रभावो पर ही ध्यान दिया जाता है। वस्तुत हमे किसी विनियोग से प्राप्त तत्काल लाभो पर ही ध्यान नही देना चाहिए, अपितु भावी लाभों एव पूँजी सचय पर भी विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनियोग के अप्रत्यक्ष प्रभाव जैसी भावी बचत, उपभोग सरचना, जनसख्या वृद्धि आदि पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

3. तीव्र विकास विनियोग मानदण्ड
(Criteria of Investment to Accelerate Growth)

गेलेन्सन और लीबेन्स्टीन (*Galenson and Liebenstein*) ने अर्द्ध-विकसित देशो मे विनियोग के मापदण्ड के लिए सीमान्त प्रति व्यक्ति पुर्नविनियोग लब्धि

(Marginal per Capitare Investment Quotient) की धारणा का समर्थन किया है। किसी अर्थव्यवस्था के उत्पादन की पुर्नविनियोग क्षमता एक ओर प्रति श्रमिक उपलब्ध पूँजी से प्रति श्रमिक उत्पादन की मात्रा और दूसरी ओर जनसख्या का उपयोग और पूँजीगत साधनो के प्रतिस्थापन आदि का अन्तर है। प्रति श्रमिक पूँजी से इस आधिक्य का अनुपात पुर्नविनियोग लब्धि (Re-investment Quotient) कहलाता है। उचित विनियोग नीति वह होती है, जिसके द्वारा साधन उपभोगो की अपेक्षा अधिक अनुपात मे पूँजी-कार्यों की ओर बढें। देश की पूँजी मे इस दृष्टि से मानव पूँजी को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। लीबेन्स्टीन के अनुसार, पूँजीगत-पदार्थों और मानव-पूँजी के रूप मे कुल पूँजी निर्माण प्रतिवर्ष सामान्य पुर्नविनियोग और जनसख्या के आकार मे वृद्धि पर निर्भर करता है। यदि पुर्नविनियोग वर्ष प्रति वर्ष बढना है तो राष्ट्रीय आय मे लाभो का भाग बढाना पडेगा। पुर्नविनियोग लब्धि मानदण्ड के अनुसार, दीर्घकालीन पूँजीगत वस्तुओ (Long-lived Capital Goods) मे पूँजी विनियोजित की जानी चाहिए। अर्द्ध-विकसित देशो को यदि सफलतापूर्वक तेजी से विकास करना है तो उत्पादन मे वृद्धि के लिए विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ मे ही बडे पैमाने पर प्रयत्नों की आवश्यकता है, जिसे लीबेन्स्टीन ने न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न कहा है। अन्य शब्दो मे विनियोग आवटन (Investment Allocation) इस प्रकार का होना चाहिए जिससे विकास-प्रक्रिया की प्रारम्भिक अवस्था मे ही तेजी से पूँजी निर्माण हो।

पुर्नविनियोग लब्धि मे उक्त मानदण्ड की भी आलोचनाएँ की गई है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि लाभो की अधिकता के कारण पुर्नविनियोग भी अधिक होगे, उचित नही मानी गई है। ए के सेन (A K Sen) के मतानुसार पूँजी की प्रति इकाई पर ऊँची दर से पुर्नविनियोग योग्य आधिक्य देने वाले विनियोगो से ही विकास दर मे तेजी नही लाई जा सकती। यह आधिक्य अधिक हो सकता है किन्तु इस उत्पादन कार्य मे लगे व्यक्तियो की उपभोग की प्रवृत्ति मे वृद्धि हो जाए तो पुर्नविनियोग योग्य आधिक्य पर विपरीत प्रभाव पडेगा। इसके अतिरिक्त, इस मानदण्ड मे सामाजिक कल्याण के आदर्शों की उपेक्षा की गई है। पूँजी-गहन विनियोगो और तकनीको के अपनाने से श्रमिकों का विस्थापन (Displacement) होगा। साथ ही इस मानदण्ड मे वर्तमान की अपेक्षा भविष्य पर अधिक ध्यान दिया गया है।

4. विशिष्ट समस्याओ को नियन्त्रित करने का मानदण्ड (Investment criteria which aim at controlling specific problems)

इस मानदण्ड का उद्देश्य विकास प्रक्रिया में उत्पन्न विशिष्ट समस्याओ को नियन्त्रित करके स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास करना है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता और मुद्रा प्रसारिक दबावो के कारण विकास में अस्थायित्व आ सकता है। अर्द्ध-विकसित देशों को बड़ी मात्रा में पूँजीगत

सामग्री और कच्चा माल आदि मँगाना पड़ता है। औद्योगीकरण और विनियोगो के कारण मौद्रिक आय बढ़ती है जिससे उपभोग वस्तुओं का आयात भी बढ़ जाता है। इससे विदेशी मुद्रा की कमी एक बड़ी कठिनाई बन जाती है। इसी प्रकार लोगो की मौद्रिक आय बढ़ने के कारण वस्तुओ की मांग बढ़ जाती है और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियां जन्म लेने लगती हैं। अतः ऐसे क्षेत्रो में विनियोग किया जाना चाहिए जिससे निर्यात वृद्धि और आयात-प्रतिस्थापन द्वारा देश की विदेशी विनिमय सम्बन्धी स्थिति सुदृढ हो और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो का भी प्रादुर्भाव नहीं हो सके। जे जे पोलक (J J Polak) ने भुगतान सन्तुलन पर पड़ने वाले प्रभावो के दृष्टिकोण से विनियोगो को निम्नलिखित तीन प्रकार से विभाजित किया है—

(i) ऐसे विनियोग, जो निर्यात वृद्धि करने या आयात-प्रतिस्थापन करने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करें। परिणामस्वरूप निर्यात आधिक्य उत्पन्न होगा।

(ii) ऐसे विनियोग जो ऐसी वस्तुओ का उत्पादन करे जो पहले देश में ही बेचने वाली वस्तुओ या निर्यात की जाने वाली वस्तुओ का प्रतिस्थापन करे। इस स्थिति में भुगतान सन्तुलन की स्थिति में विनियोगो का प्रभाव तटस्थ होगा।

(iii) ऐसे विनियोग जिनके कारण जो स्वदेश में ही बेची जाने वाली वस्तुओं की मात्रा में माँग से भी अधिक वृद्धि हो। वहाँ भुगतान सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव होगा।

अतः विनियोगो के परिणामस्वरूप किसी भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर पड़ने वाले बुरे प्रभावों को न्यूनतम करने के लिए उपरोक्त वर्णित प्रथम श्रेणी के उत्पादक कार्यों पर विनियोगो को केन्द्रित करना चाहिए और तृतीय श्रेणी को बिल्कुल छोड देना चाहिए। द्वितीय श्रेणी के विनियोगो को बड़ी सावधानी के पश्चात् भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर उनके विपरीत प्रभावों और अर्थव्यवस्था पर उनके लाभो की पारस्परिक तुलना के पश्चात् चुनना चाहिए।

किन्तु पोलक (Polak) के उपरोक्त मत की भी सीमाएं हैं। ए. ई. काहन (A E Kahn) के अनुसार कुछ विनियोगो से मौद्रिक आय मे वृद्धि हुए बिना ही वास्तविक आय मे वृद्धि हो और जिसे आयातो पर व्यय किया जाए। यहाँ तक कि विनियोगो के परिणामस्वरूप वास्तविक आय मे वृद्धि के साथ-साथ जब मौद्रिक आय मे वृद्धि हो तो ऐसी स्थिति मे आयातों का बढ़ना अनिवार्य नही है। वस्तुत अर्द्ध-विकसित देशो मे बड़ी मात्रा मे आयातो के लिए इन देशो के उत्पादन की अल्पमूल्यी प्रवृत्ति ही बहुत सीमा तक उत्तरदायी है और ज्यो-ज्यो अर्थव्यवस्था का विकास होता रहता है तथा विभिन्न उद्योगों की स्थापना होती है। त्यो-त्यो देश के घरेलू उपभोग के लिए वस्तुओ की पूर्ति बढ़ जाती है और आयात की प्रवृत्ति (Propensity to Import) कम होने लग जाती है। साथ ही निर्यातो-मुख उद्योगो मे विनियोगो को केन्द्रित करना ही आर्थिक विकास की गारण्टी नही है। उदाहरणार्थ, भारत तथा अन्य उपनिवेशो मे प्रथम युद्ध के पूर्व बागानो और निस्सारक (Extractive) उद्योगो

मे बडी मात्रा मे पूँजी विनियोजित की गई थी, जिनसे निय त-पदार्थों का उत्पादन होता था, किन्तु फिर भी इन विनियोगो का देश मे आय और रोजगार बढान तथा आर्थिक विकास को गति देने मे योगदान अत्यल्प था। वास्तव मे किसी भी *विनियोग कार्यक्रम के भुगतान सन्तुलन पर पडने वाले प्रभावो का* बिना समस्त विकास कार्यक्रम पर विचार किए हुए बिल्कुल अलग से कोई अनुमान लगाया जाना सम्भव नही है।

जिस प्रकार आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे भुगतान सन्तुलन की विपक्षता की समस्या उत्पन्न होती है उसी प्रकार मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो की समस्या भी बहुधा सामने आ खडी होती है जो आन्तरिक असाम्य का सकेत है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बडी बडी परियोजनाओ पर विशाल राशि व्यय की जाती है। बहुधा ये परियोजनाएँ दीर्घकाल में ही फल देने लगती हैं, अर्थात् इनका 'Gestation Period अधिक होता है। इन कारणो से मौद्रिक आय बहुत बढ जाती है, किन्तु उस अनुपात में उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन नही बढ़ पाता। परिणामस्वरूप मूल्य बढने लग जाते है। कुछ देश बडी मात्रा मे प्राथमिक वस्तुओ का निर्यात करते है और इन देशो में कभी कभी आर्थिक स्थिरता आयातक देश में *आने वाली तेजी और मन्दी के कारण इन पदार्थों के उतार-चढाव के कारण उत्पन्न* हो जाती है अत विभिन्न क्षेत्रो में विनियोगो का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे उपरोक्त दोनो प्रकार की आर्थिक स्थिरता या तो उत्पन्न ही नही या शीघ्र ही समाप्त हो जाए। यदि मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो का जन्म सामाजिक ऊपरी लागतो (Social Overhead Costs–SOC) में अत्यधिक विनियोग के कारण हुआ है तो कृषि उद्योग आदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ (*Direct Productive* Activities–DPA) में अधिक विनियोग किया जाना चाहिए। यदि वह विशाल पूँजी-गहन-परियोजनाओ में भारी पूँजी विनियोग के कारण हुआ है तो ऐसे उपभोक्ता उद्योगो और कम पूँजी-गहन-परियोजनाओ में विनियोगो का आवटन किया जाना चाहिए, जो शीघ्र फलदायी हो। इसी प्रकार विदेशी व्यापार के कारण *उत्पन्न होने वाली आन्तरिक स्थिरता को दूर करने के लिए उत्पादन का विविधीकरण* करना चाहिए, अर्थात् विनियोगो को थोड से निर्यात के लिए उत्पादन करन वाले क्षेत्रो मे ही केन्द्रित नही करना चाहिए अपितु कई विभिन्न क्षेत्रो और उद्योगो में लगा कर अर्थव्यवस्था को लोचपूर्ण बनाना चाहिए। कृषि-व्यवस्था मे अस्थिरता निवारण हेतु सिंचाई की व्यवस्था और मिश्रित खेती की जानी चाहिए।

5. काल श्रेणी का मानदण्ड
(The Time Factor Criteria)

किसी विनियोग कार्यक्रम पर विचार करते समय न केवल विनियोग की कुल राशि पर ही विचार करना चाहिए अपितु इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि उक्त परियोजना से कितने समय पश्चात् प्रतिफल मिलने लगेगा। इस विषय पर विचार करना इसलिए आवश्यक है क्योकि अर्द्ध-विकसित देश सामाजिक

राजनीतिक और आर्थिक कारणों से विनियोगों के फलों से लाभान्वित होने के लिए दीर्घकाल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। अतः विनियोग-निर्धारण में काल श्रेणी का भी बहुत महत्त्व है। इसलिए ए. के. सेन ने काल श्रेणी का मानदण्ड प्रस्तुत किया है। इस दण्ड में एक निश्चित अवधि में उत्पादन अधिक प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। यदि पूँजी और उत्पादन के अनुपात और बचत दर समान बनी रहे, तो पूँजी प्रधान और श्रम-प्रधान तकनीकों के मार्ग की रेखा खींची जा सकती है और यह ज्ञात किया जा सकता है कि दोनों में से किससे अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा।

6. अन्य विचारणीय बातें

(i) आय वितरण—*विभिन्न विकास कार्यक्रमों का आय के वितरण पर* भी भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। अतः नवीन विनियोग इस प्रकार के होने चाहिए जो आय और धन की असमानता को बढ़ाने की अपेक्षा कम करें। आर्थिक समानता और उत्पादकता के उद्देश्यों में लाभदायक समन्वय की आवश्यकता है।[1]

(ii) मात्रा के साथ मूल्य और माँग पर भी ध्यान—विनियोग कार्यक्रम निर्धारित करते समय इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि उत्पादित वस्तु का मूल्य क्या है? केवल भौतिक मात्रा में अधिक उत्पत्ति करने वाला विनियोग अच्छा नहीं कहलाया जा सकता, यदि उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का न कोई मूल्य हो और न माँग ही हो। उदाहरणार्थ, अपेक्षाकृत कम पूँजी से जूतों की अधिक मात्रा उत्पादित की जा सकती है, किन्तु यदि इन जूतों की माँग और इनके लिए बाजार *नहीं है, तो ऐसे विनियोग और उत्पादन से अर्थ व्यवस्था लाभान्वित नहीं होगी।*

(iii) विदेशी-विनिमय—भारत जैसे विकासशील देशों के लिए विदेशी *विनिमय की भारी समस्या है। विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं और क्षेत्रों में पूँजी* विनियोग विदेशी-विनिमय की स्थिति को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। एक कारखाना दूसरे की अपेक्षा अधिक निर्यात की वस्तुएँ तैयार करने वाला हो सकता है। इसी प्रकार एक उद्योग दूसरे उद्योग की अपेक्षा आयातित वस्तुओं का अधिक उपयोग करने वाला हो सकता है। अतः ऐसे कार्यक्रमों क्षेत्रों, उद्योगों और परियोजनाओं में पूँजी विनियोजित की जानी चाहिए, जो निर्यात की क्षमता में वृद्धि करें और आयात की आवश्यकता को कम करें।

(iv) सन्तुलित विकास—इसके अतिरिक्त विनियोगों द्वारा अर्थ-व्यवस्था के सन्तुलित विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पूँजी विनियोग के परिणाम-स्वरूप *कृषि, उद्योग, यातायात तथा सन्देश-वाहन, सिंचाई, विद्युत और सामाजिक* सेवाओं का समानान्तर विकास किया जाना आवश्यक है। ये सब एक दूसरे के पूरक हैं।

1. जी एल गुप्ता आर्थिक समीक्षा, दिसम्बर, 1968, पृष्ठ 27

विनियोगो के आवटन मे न केवल अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रो के सन्तुलित विकास को ध्यान मे रखा जाना चाहिए, अपितु देश के भौगोलिक क्षेत्रो के सन्तुलित विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पिछडे हुए प्रदेशो मे अपेक्षाकृत अधिक विनियोग किए जाने चाहिए।

अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र
(Sectors of Economy)

अर्थ-व्यवस्था को निम्नलिखित तीन क्षेत्रो मे विभाजित किया जा सकता है–

(क) **कृषि-क्षेत्र (Agricultural Sector)**—अर्थ-व्यवस्था के इस क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि और तत्सम्बन्धी कार्यक्रम, जैसे सिंचाई, पशुपालन, मत्स्य-पालन, बागान, सामुदायिक विकास, वनारोपण, सहकारिता, भू-सरक्षण आदि कार्यक्रम सम्मिलित है। कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत, उन्नत और अच्छे खाद, बीज, यन्त्र और औजारो की व्यवस्था, कीट और रोगनाशक औषधियो की उपलब्धता, उचित-दर पर पर्याप्त मात्रा मे साख सुविधाओ की उपलब्धि आदि कार्यक्रम सम्मिलित किए जाते हैं। मुख्यत: अर्द्ध-विकसित देश कृषि प्रधान होते हैं अत उनकी अर्थ-व्यवस्था मे कृषि-क्षेत्र का बहुत महत्त्व है।

(ख) **उद्योग क्षेत्र (Industrial Sector)**—इस क्षेत्र के अन्तर्गत निर्माण-उद्योग (Manufacturing Industries) तथा खनिज-व्यवसाय आते हैं। अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देशो मे, उद्योग-धन्धे कम विकसित होते हैं तथा वहाँ आर्थिक विकास को तीव्रगति देने और अर्थ-व्यवस्था का विविधीकरण करने के लिए तेजी से औद्योगीकरण की आवश्यकता होती है। अत नियोजन मे इस क्षेत्र को भी पर्याप्त मात्रा मे विनियोगो का आवटन किए जाने की आवश्यकता है।

(ग) **सेवा क्षेत्र (Service Sector)**—सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत व्यवसाय प्रमुख रूप से, यातायात एव सन्देश वाहन के साधन आते हैं, इसके अतिरिक्त, वित्तीय सस्थाएँ, प्रशासनिक सेवाएँ, शिक्षा, चिकित्सा, श्रमिक और पिछडे वर्गो का कल्याण आदि कार्यक्रम भी इसी क्षेत्र म सम्मिलित किए जा सकते है। विकासार्थ नियोजन के परिणामस्वरूप कृषि और उद्योगो की प्रगति के लिए यातायात और अन्य सामाजिक ऊपरी पूंजी तथा जन-शक्ति के विकास के लिए सेवा-क्षेत्र पर ध्यान दिया जाना भी अत्यावश्यक है।

किस क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए?
(Problem of Priority)

इस सम्बन्ध मे विभिन्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं। विवाद का मुख्य विषय यह है कि विनियोग कार्यक्रमो मे कृषि को प्राथमिकता दी जाए या उद्योगो को। नियोजित आर्थिक विकास विनियोग कार्यक्रमो में कुछ लोग कृषि को महत्त्व अधिक देने का आग्रह करते हैं तो कुछ विचारक औद्योगीकरण के लिए अधिक मात्रा मे विनियोगो को आवण्टित किए जाने पर बल देते हैं। कृषि क्षेत्र मे विशाल मात्रा मे विनियोजन का समर्थन करने वाले इग्लैण्ड आदि विकसित देशो का उदाहरण देते

हुए कहते हैं कि औद्योगीकरण के लिए कृषि का विकास एक आवश्यक शर्त है। यहाँ तक कि ब्रिटेन में भी 18वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में हुई कृषि की उल्लेखनीय प्रगति ने ही वहाँ होने वाली औद्योगिक क्रान्ति के लिए आधार तैयार किया। फिर *अर्द्ध विकसित देशों में तो, जिनकी अर्थ-व्यवस्था* प्रमुख रूप से *कृषि-प्रधान है*, जब तक इनके कृषि आदि प्राथमिक क्षेत्रों को विकसित नहीं किया जाता, तब तक इनकी आर्थिक प्रगति नहीं हो सकती। प्रोफेसर थियोडोर शुल्ज (Prof Theodore Schultz) के अनुसार "उच्च खाद्य बहाव वाली अर्थ-व्यवस्था में जहाँ समाज की *अधिकांश आय का खाद्य पदार्थ प्रतिनिधित्व* करते हैं *कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों* में नई और अधिक अच्छी उत्पादन सम्भावनाओं की बहुत थोड़ी गुंजाइश होती है, क्योंकि खाद्यान्नों के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादक प्रयत्न ही कुल का बहुत बड़ा भाग होते हैं।"

इसके विपरीत दूसरे समुदाय के विचारकों का दृढ़ मत है कि अर्द्ध-विकसित *अर्थ-व्यवस्थाओं में कृषि उत्पादकता बहुत कम होती है। साथ ही, जनसंख्या का* भारी दबाव होता है। अतः इन देशों की मुख्य समस्या आय में तेजी से वृद्धि करने और बढ़ती हुई जनसंख्या को गैर कृषि-क्षेत्रों में स्थानान्तरित करने की है। अतः इन देशों में कृषि पर ही विनियोगों को केन्द्रित करने से कार्य नहीं चलेगा। यह *बुद्धिमत्तापूर्ण भी नहीं होगा अतः इन परिस्थितियों में कृषि की अपेक्षा उद्योगों में* विनियोगों को अधिक केन्द्रित करने की आवश्यकता है। अप्रैल 1957 में टोकियो में हुई आर्थिक विकास की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस (International Conference on Economic Growth) में प्रो कुरिहारा (Prof Kurihara) ने अर्द्ध-विकसित देशों के विकास के लिए *कृषि आधारित विकास की नीति को निम्नलिखित कारणों* से अनुपयुक्त बतलाया—

(i) *उद्योगों की अपेक्षा कृषि की सीमान्त-उत्पादकता कम होती है। अतः* इन देशों के सीमित साधनों को कृषि पर विनियोजित करना अमितव्ययितापूर्ण होगा।

(ii) कृषि क्षेत्र में उद्योगों की अपेक्षा बचत की प्रवृत्ति (Propensity to Save) कम होती है क्योंकि धनिक कृषकों में प्रदर्शन उपभोग (Conspicuous Consumption) की प्रवृत्ति होती है।

(iii) बहुधा व्यापार की शर्तें कृषि पदार्थों के प्रतिकूल ही रहती हैं, अतः, कृषि के विकास को महत्त्व देने और औद्योगिक विकास की उपेक्षा करने से इन देशों की भुगतान सन्तुलन की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

अतः प्रो कुरिहारा के मतानुसार '*कृषि और औद्योगिक उत्पादन में सतुलित वृद्धि एक विलासिता है*, जिसे केवल पर्याप्त वास्तविक पूँजी वाली उन्नत अर्थ व्यवस्था ही सुगमतापूर्वक अपना सकती है, किन्तु जिसे पूँजी वाले देश कठिनाई से ही सह सकते हैं। एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था के लिए जहाँ सीमित बचत होती है और पूँजी को प्रयुक्त करने वाली विभिन्न परियोजनाएँ जिन्हें प्राप्त करने के लिए परस्पर

प्रतिस्पर्द्धा करती हैं, यह उपयुक्त होगा कि वे अपने प्रयत्नो को औद्योगिक क्षेत्र के द्रुत विकास के लिए ही केन्द्रित करें और कृषि-क्षेत्र को प्रतिक्रिया एव प्रभावो द्वारा ही विकसित होने दें।"[1]

इसी प्रकार, कुछ विचारक सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) के रूप मे यातायात एव सचार, विद्युत, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी आदि जनोपयोगी सेवाओ को महत्त्व देते हैं। उनका विश्वास है कि इन कार्यक्रमो मे पूजी का विनियोजन किया जाए जिससे कृषि और उद्योग आदि प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ के लिए आधार का निर्माण हो और ये तेजी से विकसित हो सकें।

कृषि में विनियोग क्यों ?
(Why Investment in Agriculture ?)

अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान है और उनकी अर्थ व्यवस्था मे कृषि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन देशो मे कृषि, देशवासियो के रोजगार, राष्ट्रीय आय के उत्पादन, जनता की खाद्य सामग्री की आवश्यकताओ की पूर्ति, उद्योगो के लिए कच्चा माल, निर्यातो द्वारा विदेशी-विनिमय के अर्जन आदि का एक मुख्य साधन है। अत देश के आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम मे इस क्षेत्र के विकास की तनिक भी उपेक्षा नही की जा सकती। वास्तव मे इन देशो मे योजनाओ की सिद्धि बहुत बडी मात्रा मे कृषि-क्षेत्र मे विनियोगो के केन्द्रित करने पर ही निर्भर है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1 **कृषि-विकास से औद्योगिक विकास के लिए साधन उपलब्ध होना**—कृषि विकास न केवल स्वय अपने लिए, अपितु औद्योगिक विकास के लिए भी आवश्यक होता है। आज के प्रमुख उद्योग, विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे समृद्ध और विकासमान कृषि ने ही निर्माणी उद्योगो के विकास के लिए आधारशिला प्रस्तुत की थी। कृषि-विकास से इसकी उत्पादकता और कुल उत्पादन मे वृद्धि होती है, जिससे कृषि क्षेत्र मे आय मे वृद्धि होती है। इससे इस क्षेत्र मे बचत की सम्भावनाएँ बढती हैं, जिसको ऐच्छिक या बाधित रूप से कर या कृषि पदार्थों के अनिवार्य भुगतान आदि के द्वारा एकत्रित करके गैर-कृषि-क्षेत्रो मे विकास के लिए साधन जुटाए जा सकते है। जापान ने अपने आर्थिक विकास मे इस पद्धति का बडा उपयोग किया। सन् 1885 से 1915 तक की द्रुत आर्थिक विकास की अवधि मे कृषको की उत्पादकता अच्छी कृषि पद्धतियो के कारण दुगुनी से भी अधिक हो गई। कृषक जनसख्या की इस बढी हुई आय का अधिकांश भाग भूमि पर भारी कर लगाकर ले लिया गया और इसका उपयोग गैर-कृषि-क्षेत्रो मे प्रमुख रूप से उद्योगो के विकास मे विनियोजित किया गया। वहाँ कृषि-क्षेत्र से इतनी अधिक आय प्राप्त की गई कि उस समय वहाँ की केन्द्रीय सरकार की कुल कर आय का 93 3% भाग भूमि पर करारोपण द्वारा प्राप्त किया जाता था। सोवियत रूस ने कृषि की उत्पादकता को

1 *K K Kurihara*, Indian Journal of Economics, Oct, 1950

तेजी से बढ़ाया और कृषि क्षेत्र के आधिक्य को द्रुत औद्योगीकरण की वित्त-व्यवस्था करने के उपयोग मे लिया। इसी प्रकार चीन मे 1953 और 1957 के बीच कृषि से प्राप्त कर आय का 40% से भी अधिक भाग गैर-कृषि-क्षेत्रो मे विकास के लिए प्रयुक्त किया गया। गोल्डकोस्ट, बर्मा, युगांडा आदि भी कृषि आय के बहुत बड़े भाग को अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे विकास कार्यक्रमो की वित्त-व्यवस्था के लिए उपयोग कर रहे है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र का विकास बचत मे वृद्धि करके विनियोजित किए जाने वाले कोषो मे वृद्धि करता है, जिनका उद्योग आदि अन्य क्षेत्रो म उपयोग करके समग्र आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।

2. वृद्धिमान जनसंख्या को भोजन की उपलब्धि—अर्द्ध-विकसित देशो मे वृद्धिमान जनसख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने और उनके भोजन तथा उपभोग स्तर का ऊँचा उठाने के लिए भी कृषि-कार्यक्रमो को बड़े पैमाने पर सचालित किया जाना आवश्यक है। कई अर्द्ध-विकसित देशो मे जनसख्या अधिक है और इसमे तेजी से वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त भारत जैसे देश मे बढ़ती हुई जनसख्या की तो बात ही क्या, वर्तमान जनसख्या के लिए भी खाद्यान्न उत्पादन नही कर पा रहे हैं? एक अनुमान के अनुसार एशिया और अफ्रीका के निर्धन देशो की बढ़ती हुई जनसख्या के लिए ही इन देशो मे खाद्यान्न उत्पादन को 1 5% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ाने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश मे तो यह जनसख्या वृद्धि-दर 2 5% वार्षिक है, अत इस दृष्टि से ही खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि होनी चाहिए। साथ ही इन देशो मे गुण और मात्रा दोनो ही दृष्टिकोणो से भोजन का स्तर निम्न है, जिसका इनकी कार्यक्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। श्रीलका, भारत और फिलीपीन्स मे भोजन का वास्तविक उपभोग न्यूनतम आवश्यकता से भी 12 से 18% कम है। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप ज्यो-ज्यो इन देशो की राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होगी, त्यो-त्यो प्रतिव्यक्ति भोजन पर व्यय मे वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप, शहरी जनसख्या मे वृद्धि होगी तथा गैर-कृषि व्यवसायो मे नियोजित व्यक्तियो के अनुपात म वृद्धि होगी। उद्योग-धन्धो और अन्य व्यवसायो में लगे इन व्यक्तियो के खिलाने के लिए भी खाद्यान्नो की आवश्यकता होगी। इन सब कारणो से देश मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि की आवश्यकता है जिसे कृषि के विकास द्वारा ही पूरा किया जा सकता है, अन्यथा भारत की तरह करोडो रुपयो का अन्न विदेशो से आयात करना पडेगा और दुर्लभ विदेशी-मुद्रा को व्यय करना होगा।

3. औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल की उपलब्धि—किसी भी देश के औद्योगिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन में भी वृद्धि हो। बहुत से उद्योगो मे कृषि-जन्य कच्चे माल का ही उपयोग किया जाता है। कई अन्य उपभोक्ता उद्योगो के लिए वन्य उपज की आवश्यकता होती है। अत. जब तक पर्याप्त मात्रा मे अच्छे किस्म के सस्ते कच्चे माल की उपलब्धि नही

हो सकती, तब तक औद्योगिक विकास नही हो सकता और न इन उद्योगो की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति-बढ सकती है। अत. उद्योगो के लिए औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि के लिए भी कृषि का विकास आवश्यक है।

4 विदेशी विनिमय की समस्या के समाधान मे सहायक—यदि आर्थिक विकास कार्यक्रमो मे कृषि विकास को महत्त्व नही दिया गया, तो देश मे खाद्यान्नो और औद्योगिक कच्चे माल की कमी पड सकती है, और इन्हे विदेशो से आयात करने के लिए बडी मात्रा मे विदेशी मुद्रा व्यय करनी पडेगी। वैसे भी किसी विकासमान अर्थव्यवस्था की विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे विदेशो से बडी मात्रा मे मशीनें और अन्य पूँजीगत सामग्री का आयात करना पडता है। इसका भुगतान कृषि जन्य और अन्य कच्चे माल के निर्यात द्वारा ही किया जा सकता है। अत कृषि मे प्रतिस्पर्द्धा लागत पर उत्पादन वृद्धि आवश्यक है। नियोजन मे विशाल परियोजनाओ पर बडी मात्रा मे धनराशि व्यय की जाती है। इससे लोगो की मौद्रिक आय बढ जाती है। साथ ही वस्तु और सेवा उत्पादन म शीघ्र वृद्धि नही होती। अत अर्थ-व्यवस्था मे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ बढने लगती हैं जिनका दमन वस्तुओ और सेवाओ की पूर्ति मे वृद्धि से ही किया जा सकता है। इसके लिए भी या तो बहुत सीमा तक कृषि-उत्पादन मे वृद्धि करनी पडेगी या विदेशो से आयात करना पडेगा जिनके लिए पुन विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी। अत इस समस्या के समाधान की विधि निर्यात योग्य पदार्थों की उत्पादन वृद्धि है जो अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देशो मे प्राथमिक पदार्थ है। यद्यपि आर्थिक विकास क साथ-साथ देश म अन्य निर्यात योग्य पदार्थों का उत्पादन भी बढ जाता है किन्तु जब तक अर्थ व्यवस्था इस स्थिति मे नही पहुँचती, तब तक ऐस देशो की विदेशी विनिमय स्थिति बहुत अधिक सीमा तक कृषि-पदार्थों के उत्पादन और निर्यात पर ही निर्भर करेगी। अत इन देशो मे निर्यातो द्वारा अधिक विदेशी मुद्रा का अर्जन करने या अपने कृषि जन्य पदार्थो के आयात मे कमी करने के लिए भी कृषि विकास को महत्त्व दिया जाना चाहिए।

5. औद्योगिक-क्षेत्र के लिए बाजार प्रस्तुत करना—विकासार्थ नियोजन मे कृषि विकास, औद्योगिक क्षेत्र मे उत्पादित वस्तुओ के लिए बाजार प्रस्तुत करता है। ऐसे औद्योगिक विकास मे, जिसमे उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुओ की माँग नही हो कोई लाभ नही हो सकता। यदि केवल औद्योगिक विकास की ओर ही ध्यान दिया गया, तो अन्य क्षेत्रो की आय मे वृद्धि नही होगी जिससे औद्योगिक वस्तुओ की माँग नही बढ पाएगी। किन्तु, यदि पूँजी विनियोजन के परिणामस्वरूप कृषि-उत्पादन मे वृद्धि होती है तो कृषि मे सलग्न व्यक्तियो की आय मे वृद्धि होगी, जिसको औद्योगिक-वस्तुओ के क्रय पर व्यय किया जाएगा। ऐसा भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश के लिए तो और भी आवश्यक है, जहाँ की अधिकाँश जनता कृषि व्यवसाय मे सलग्न है।

6. उद्योगो के लिए श्रमिको की पूर्ति—कृषि-विकास, औद्योगिक-क्षेत्र के लिए आवश्यक श्रम की पूर्ति सम्भव बनाता है। कृषि विकास के कार्यक्रमो से कृषि उत्पादन और कृषक की उत्पादकता मे वृद्धि होती है और देश की जनसख्या के लिए आवश्यक

कृषि उत्पादन हेतु कृषि व्यवसाय के संचालन के लिए कम व्यक्तियो की ही आवश्यकता रह जाती है, शेष व्यक्तियो मे से औद्योगिक क्षेत्र अपने विकास के लिए श्रमिको को प्राप्त कर सकता है।

7. कम पूँजी से बेरोजगारी की समस्या के समाधान मे सहायता—अर्द्ध विकसित देश व्यापक बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी और छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त हैं। वहाँ जन-शक्ति के एक बहुत बडे भाग को रोजगार के साधन उपलब्ध नही हो पाते है। इन देशो की विकास-योजनाओ का उद्देश्य, समस्त देशवासियो के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना भी है। दूसरी ओर इन देशो मे पूँजी की अत्यन्त कमी है। उद्योगो की स्थापना हेतु अपेक्षाकृत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, किन्तु कृषि-व्यवसाय मे कम पूँजी से अधिक व्यक्तियो को रोजगार दिया जा सकता है।

उद्योगो मे विनियोग
(Investment in Industries)

योजना विनियोग मे कृषि-क्षेत्र को उच्च प्राथमिकता देने का आशय यह नही है कि उद्योग एव सेवाओ को कम महत्त्व दिया जाए। इनका विकास भी कृषि विकास के लिए आवश्यक है। आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम मे इनकी प्रगति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए जाने चाहिए। कुछ व्यक्ति आर्थिक विकास का अर्थ औद्योगीकरण से लगाते है। आर्थिक विकास प्रक्रिया मे औद्योगीकरण का महत्त्व निम्नलिखित कारणो से है—

1 औद्योगिक विकास से कृषि-पदार्थों की माँग मे वृद्धि—औद्योगिक-विकास द्वारा कृषि जन्य एव अन्य प्राथमिक पदार्थों की माँग बढती है। औद्योगिक-विकास के कारण, अधिक मात्रा मे कृषि जन्य कच्चे माल की आवश्यकता होती है। औद्योगीकरण के कारण औद्योगिक-क्षेत्र मे श्रमिको की आय बढती है, जिसका एक भाग भोजन पर व्यय किए जाने से भी कृषि पदार्थों की माँग बढती है। इस प्रकार, औद्योगिक विकास, कृषि विकास को प्रभावित करता है। जिस प्रकार से कृषि क्षेत्र की बढी हुई आय गैर कृषि क्षेत्र के निर्मित माल की खपत बढाने मे सहायक होती है उसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र मे होने वाली आय मे वृद्धि कृषि पदार्थों की माँग म वृद्धि करके उसके विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।

2 अप्रयुक्त जन-शक्ति को रोजगार देने हेतु आवश्यक—निर्धन देशो मे जनसख्या की अधिकता और बढती हुई जनसख्या के कारण कृषि पर जनसख्या का भार अधिक है। वैकल्पिक उद्योगो के अभाव के कारण अधिकाश जनता जीविका-निर्वाह हेतु कृषि का अवलम्बन लेती है। किन्तु परम्परागत उत्पादन विधियो और कृषि व्यवसाय के अत्यन्त पिछडे होने के कारण श्रमिको की एक बहुत बडी सख्या या तो बेरोजगार रहती है या अर्द्ध-बेरोजगारी की शिकार रहती है। कृषि-व्यवसाय मे यह अदृश्य बेरोजगारी अधिक व्याप्त रहती है। अनेक अनुमानो के अनुसार, कृषि-क्षेत्र की $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{3}$ जनसख्या कृषि व्यवसाय की आवश्यकताओ से अधिक होती

है। औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप, देश की इस अप्रयुक्त जन-शक्ति को रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकेंगे। इससे कृषि पर जनसख्या का भार भी कम होगा और कृषि क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति उत्पादकता मे वृद्धि होगी।

3 अर्थ-व्यवस्था को बहुमुखी बनाने के लिए आवश्यक—केवल कृषि या प्राथमिक व्यवसायो पर ही विनियोगो को केन्द्रित करने से अर्थ-व्यवस्था एकाकी हो जाती है। निर्धन देशो मे जनसख्या का एक बडा भाग कृषि-व्यवसाय मे लगा रहता है। निर्धन देशो की कृषि-क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता एकांगी तथा असन्तुलित अर्थ-व्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करती है। अर्थ व्यवस्था को बहुमुखी बनाने के लिए इन देशो मे द्रुत औद्योगीकरण आवश्यक है। वैसे भी कृषि आदि व्यवसाय प्रकृति पर निर्भर होते है, जिनसे इस व्यवसाय मे स्थिरता और निश्चितता नही आ पाती। अत अर्थ-व्यवस्था का विविधीकरण आवश्यक है और इसके लिए द्रुत औद्योगीकरण किया जाना चाहिए।

4 कृषि के लिए आवश्यक आदानों (Inputs) की उपलब्धि—कृषि-विकास की योजनाओ मे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक औषधियाँ, ट्रैक्टर एव अन्य कृषि यन्त्र तथा औजार, सिंचाई के लिए पम्प, रहट आदि की आवश्यकता होती है। अत इन वस्तुओ का उत्पादन और इनसे सम्बन्धित औद्योगिक विकास आवश्यक है। औद्योगीकरण मुख्यत कृषि-उन्मुख उद्योगो (Agro-industries) से कृषि विकास को प्रत्यक्ष सहायता मिलती है और कृषि-विकास के किसी भी कार्यक्रम मे उक्त उद्योगों की कभी उपेक्षा नही की जा सकती।

5 गैर कृषि पदार्थों की मांग पूर्ति—आर्थिक विकास के कारण जनता की आय मे वृद्धि होती है और कृषि पदार्थों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के गैर-कृषि पदार्थों की माँग मे भी वृद्धि होती है। ऐसा नागरिक जनसख्या के अनुपात मे वृद्धि के कारण भी होता है जो सुख-सुविधा की नई नई चीजो का उपयोग करना चाहती है। गैर कृषि पदार्थों की बढती हुई इस माँग की पूर्ति हेतु उद्योगो मे भी पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है।

6 उद्योगो मे श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता की अधिकता—कृषि मे, उद्योगो की अपेक्षा, श्रम का सीमान्त उत्पादन-मूल्य कम होता है। औद्योगिक विकास से श्रमिको का कृषि से उद्योगो मे हस्तान्तरण होता है, जिसका आशय गैर-कृषि क्षेत्र को अपेक्षाकृत कम मूल्य पर श्रम पूर्ति से होता है। इससे अर्थ-व्यवस्था मे श्रम ससाधनो के वितरण म कुशलता बढती है और श्रम एव पूँजी विकास मे अच्छा सन्तुलन स्थापित होने की अधिक सम्भावना रहती है।

7. सामाजिक एव अन्य लाभ—ग्रामीण-समाज बहुधा आर्थिक, सामाजिक और साँस्कृतिक दृष्टि से पिछडे हुए होते हैं। औद्योगीकरण से मानवीय कुशलताओ मे वृद्धि होती है, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है तथा इससे सामाजिक सरचना अधिक प्रगतिशील और गतिशील (Dynamic) होती है। औद्योगीकरण द्वारा नागरिक जनसख्या का अनुपात बढता है, जो अधिक विवेकपूर्ण व तर्कशील

होती है। इससे व्यक्तिवादी और भौतिकवादी दृष्टिकोण का भी विकास होता है जो *आर्थिक विकास के लिए अधिक उपयुक्त है। औद्योगिक विकास से शहरी बाजारों का* विस्तार होता है, जिससे यातायात और सचार-साधनों का विकास होता है। साथ ही, इससे कृषि व्यापारीकरण भी होता है और कृषि क्षेत्र मे नवीन प्रवृत्तियों को जन्म मिलता है।

सेवा-क्षेत्र मे विनियोग
(Investment in Services)

कृषि और उद्योग आदि की प्रत्यक्ष उत्पादक-क्रियाओं के अतिरिक्त, आर्थिक विकास के लिए सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) का निर्माण आवश्यक है। इसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सचार तथा पानी, विद्युत प्रकाश आदि जनोपयोगी सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। अर्थ-व्यवस्था के इस सेवा क्षेत्र म पूँजी-विनियोग करने से इनका विकास होगा, जिससे प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं म भी निजी-विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। साथ ही, ये सेवाएँ, प्रत्यक्ष रूप से कृषि और औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार के लिए भी अनिवार्य हैं। कृषि उत्पादन को खेतों से मण्डियों, नगरों, बन्दरगाहों और विदेशों तक पहुँचाने के लिए सडकों, रेलो बन्दरगाहों और जहाजरानी का विकास अनिवार्य है। इसी प्रकार, कारखानों और नगरों से *कृषि के लिए आवश्यक आदानों जैसे—खाद, बीज, कृषि औजार, कीट नाशक,* तकनीकी ज्ञान आदि खेतों तक पहुँचाने के लिए भी यातायात और सचार के साधन आवश्यक हैं। विभिन्न स्थानों से कारखानों तक कच्चे माल, ईंधन आदि को पहुँचाने और उद्योगों के निर्मित माल को बाजारों तक पहुँचा कर, औद्योगिक विकास मे सहायता देने के लिए भी यातायात एव सचार साधनों का महत्त्व कम नहीं है। वास्तव मे यातायात और सन्देशवाहन किसी भी अर्थ-व्यवस्था के स्नायु तन्तु हैं और अर्थ-व्यवस्था रूपी शरीर के सुचारु सचालन के लिए यातायात और सन्देशवाहन के साधनों का विकसित होना अत्यन्त आवश्यक है। इनकी उपेक्षा करने पर कृषि और औद्योगिक विकास में भी निश्चित रूप से अवरोध (Bottle Necks) उपस्थित हो सकते हैं।

इसी प्रकार, सस्ती और पर्याप्त मात्रा में विद्युत उपलब्धि भी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। सस्ती बिजली द्वारा लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के बडी सहायता मिल सकती है। सिंचाई क लिए लघु और मध्यम सिंचाई *योजनाओं में क्रियान्वयन में भी बिजली द्वारा बहुत सहायता मिलती है। बिजली* द्वारा छोटे-छोटे पम्पिंग सेट और ट्यूब वल चलाकर खेतों को सिंचित किया जा सकता है। बडे उद्योगों के लिए सस्ती और पर्याप्त मात्रा में विद्युत उपलब्धि बहुत सहायक है। इस प्रकार विद्युत विकास द्वारा कृषि और औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। *शिक्षा, प्रशिक्षण तथा चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं का* विकास देश की जन-शक्ति क विकास म सहायक होता है। श्रम, कल्याण और पिछडी जाति के कल्याण-कार्यक्रम इन वर्गों के विकास के लिए आवश्यक हैं। इन

समस्त सेवाओ द्वारा देश की जन-शक्ति की कार्य-कुशलता बढती है और मानव-पूँजी का निर्माण होता है। देश के आर्थिक विकास के लिए मानवीय-पूँजी निर्माण मे साधनो को विनियोजित करना भी आवश्यक है।

इस प्रकार, सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) और सेवा-क्षेत्र मे किए गए विनियोग कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के आदानो को सस्ता करके इनकी प्रत्यक्ष सहायता करते है। जब तक पर्याप्त विनियोगो द्वारा सस्ती और श्रेष्ठ सेवाओ की उपलब्धि नही होगी, तब तक प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ मे विनियोगो को प्रोत्साहन नही मिलेगा और न ही ये लाभप्रद होंगे। अत अर्थ-व्यवस्था के इस क्षेत्र मे भी पर्याप्त मात्रा मे विनियोगो को आवटित किया जाना चाहिए, जिससे सद्प्रभावो के कारण, बाद मे, प्रत्यक्ष-उत्पादक-क्रियाओ मे विनियोग अधिकाधिक किए जाएँगे और अर्थ-व्यवस्था विकास पथ पर अग्रसर होगी। प्रो हर्षमैन (Prof Hirschmann) के मतानुसार सामाजिक ऊपरी पूँजी (SOC) का निर्माण प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओ को आने का आमन्त्रण देता है।

तीनों क्षेत्रो में समानान्तर व सन्तुलित विकास की आवश्यकता (Need of Balanced Growth in all the Three Sectors)

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजन प्रक्रिया मे अर्थ-व्यवस्था के इन तीनो क्षेत्रो का अपना-अपना महत्त्व है और इन तीनो के समानान्तर और सन्तुलित विकास की आवश्यकता है। इसके अभाव मे एक क्षेत्र का कम विकास, दूसरे क्षेत्र के विस्तार के लिए बाधा बन सकता है। उदाहरणार्थ यदि औद्योगिक उत्पादन का विस्तार होता है, किन्तु कृषि-क्षेत्र मे कोई प्रगति नही होती, तो औद्योगिक-क्षेत्र की अतिरिक्त आय प्राथमिक क्षेत्र की सीमित पूर्ति पर दबाव डालेगी और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो का उदय होगा या बाह्य साधनो पर कुप्रभाव पडेगा। इसी प्रकार यदि गैर-कृषि-क्षेत्रो मे वृद्धि हुए बिना कृषि उत्पादन मे वृद्धि होती है तो कृषि, पदार्थों की माँग पूर्ति की अपेक्षा कम हो जाएगी। परिणामस्वरूप, मूल्य कम होंगे, आय भी कम होगी और विकास में बाधाएँ पहुँचेगी। अत सभी क्षेत्रो का समानान्तर और सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए।

किन्तु सतुलित विकास का आशय सभी क्षेत्रो मे समान दर से आर्थिक विकास नही है। बहुधा आय-वृद्धि के साथ साथ आय का भाग अधिक अनुपात मे, निर्मित-वस्तुओ पर व्यय किया जाता है। साथ ही, औद्योगिक विकास की गति बहुधा धीमी रही है, उसे तीव्र करने की आवश्यकता है। इसलिए विनियोग कार्यक्रमो मे औद्योगिक-क्षेत्र का अपेक्षाकृत तीव्रता से विस्तार होना चाहिए, किन्तु, एक क्षेत्र या क्षेत्रो की उपेक्षा करके अन्य क्षेत्र या क्षेत्रो मे विनियोगो को, केन्द्रित करना बुद्धिमत्तापूर्ण-नीति नही है। रोम मे हुई विश्व जन-सख्या कान्फ्रेंस (World Population Conference, 1954) के प्रतिवेदन के अनुसार विगत वर्षो मे ओशनिया और लेटिन अमेरिका के कम आबादी वाले देशो मे पूँजी और साधनो को कृषि क्षेत्र से उद्योगो की ओर प्रवृत्त करने से, न केवल कृषि विकास को ही प्रभावित किया, अपितु सामान्य अर्थ-व्यवस्था

मे भी वांछनीय दबाव उत्पन्न कर दिए । वस्तुत अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि-क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और विनियोग कार्यक्रमो का निर्धारण करते समय अधिकांश राशि कृषि-विकास-कार्यक्रमो हेतु आवटित की जानी चाहिए । आर्थिक इतिहास के अनुसार औद्योगीकरण और पूँजी निर्माण के किसी भी कार्यक्रम की सफलता इस बात मे निहित है कि उसके साथ शीघ्र फलदायक कृषि विकास परियोजनाएँ भी साथ-साथ प्रारम्भ की जाएँ। डी एस नाग के मतानुसार "कृषि-क्षेत्र मे विनियोग कृषि उत्पादकता और कृषि पर अत्यन्त उल्लेखनीय प्रभाव पैदा कर सकते है । इसे अन्य क्षेत्रो के लिए माँग का सृजन करने और विशाल मात्रा मे पूँजी-निर्माण मे योगदान देने हेतु पहलकर्ता के रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है ।"[1] जहाँ कहीं भी कृषि की उपेक्षा की गई है वहाँ या तो अर्थ-व्यवस्थाएँ स्थिर हो गई हैं या उनकी विकास-दरें गिर गई है । इगलैण्ड और चीन की अपेक्षा फ्रांस की अर्थ-व्यवस्था की सापेक्षिक स्थिरता का कारण, वहाँ कृषि-क्षेत्र की धीमी प्रगति है ।

अत विनियोग कार्यक्रमो मे कृषि, उद्योग सेवाओ को यथोचित महत्त्व दिया जाना चाहिए । इन तीनो क्षेत्रो को प्रतिस्पर्द्धा नही वरन् पूरक समझना चाहिए । ये तीनो क्षेत्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और परस्पर निर्भर है । साथ ही, एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्र को विकास की प्रेरणा देता है ।

***विनियोग आवटन सम्बन्धी कुछ नीतियाँ* (Some Policies of Allocation of Investment)**—समस्त देशो मे एक सी परिस्थितियाँ विद्यमान नही रहती । अत इस सम्बन्ध मे कोई सामान्य सिद्धान्त नही बनाया जा सकता । अर्द्ध-विकसित देशो को आज के विकसित देशो मे अपनाई गई प्राथमिकताओ को भी उसी रूप मे नही ग्रहण कर लेना चाहिए क्योंकि उनकी परिस्थितियाँ भिन्न थी । अत प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितिनुसार विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोगो का आवटन करना चाहिए । इस सम्बन्ध मे अग्र पृष्ठ पर कुछ नीति सकेत दिए हुए हैं जिन्हे स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार सशोधित करके अर्द्ध-विकसित देश अपना सकते हैं—

(i) *किसी एक क्षेत्र के उद्योग अथवा आर्थिक क्रिया को दूसरी से अधिक* महत्त्वपूर्ण नही माना जाना चाहिए । इस प्रकार, एक क्षेत्र की उपेक्षा करके अन्य क्षेत्र मे विनियोगो को केन्द्रित नही करना चाहिए । प्राथमिकताओ के निर्धारण मे 'सीमान्त सामाजिक उत्पादकता के सिद्धान्त' का अनुसरण किया जाना चाहिए ।

(ii) विनियोग-आवटन पर विचार करते समय, स्थानीय परिस्थितियो जैसे—साधनो की स्थिति, आर्थिक विकास का स्तर, तकनीकी स्तर, सस्थागत घटको एव इसी प्रकार के अन्य तत्त्वो पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

(iii) अन्य विकसित और अर्द्ध-विकसित देशो के अनुभव द्वारा भी लाभ उठाना चाहिए ।

1. *D. S. Nag :* Problems of Under developed Economy, p 273-274

(iv) ऐसे देशो मे जहाँ अतिरिक्त श्रम-शक्ति और सीमित पूँजी हो विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे कृषि, सिंचाई, यातायात एव अन्य जनोपयोगी सेवाओ पर पूँजी विनियोजन अधिक लाभप्रद रहता है। इन क्षेत्रो मे अल्प पूँजी से ही अधिक व्यक्तियो को रोजगार दिया जा सकता है, साथ ही, निर्माणी उद्योगो को भी विकसित किया जाना चाहिए।

(v) विकासमान अर्थ व्यवस्था मे यह सम्भव नही होता कि अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्र पूर्ण-सतुलित रूप से समान-दर से प्रगति करें। आर्थिक विकास अवधि मे कही आधिक्य और कही कमी का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किन्तु इस सम्बन्ध मे अधिकाधिक सूचनाएँ तथा आँकडे एकत्रित करके सीमित साधनो को उन क्षेत्रो मे प्रयुक्त करना चाहिए, जहाँ उनका सर्वोत्तम उपयोग हो।

12 विभिन्न क्षेत्रों मे विनियोगों का आवंटन

(Allocation of Investment between Different Regions)

आर्थिक विकास की दृष्टि से नियोजन को अपनाने वाले, अर्द्ध-विकसित देशो के पास मुख्यत साधनो तथा पूंजी का अभाव होता है । इसके विपरीत, पूजी विनियोग के लिए क्षेत्रो, परियोजनाओ और उद्योगो की बहुलता होती है । इनमे से प्रत्येक मे पूजी का समुचित विनियोग करने पर ही आर्थिक विकास को गति दी जा सकती है । अतः इन देशो की प्रमुख समस्या यह होती है कि इन विनियोगो का उचित और विवेकपूर्ण आवटन किस प्रकार हो, पिछले अध्यायो मे हम विभिन्न उत्पादन क्षेत्रो मे विनियोगो के आवटन पर विचार कर चुके है । इस अध्याय मे हम विशेषत भौगोलिक क्षेत्रो या प्रदेशो म विनियोगो के आवटन पर विचार करेंगे ।

विभिन्न क्षेत्रो में विनियोगो का आवटन
(Allocation of Investment Between Different Regions)

विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो मे विनियोगो के आवटन के सम्बन्ध मे कई विकल्प हो सकते है । एक विकल्प यह है कि देश के आर्थिक दृष्टि से पिछडे क्षेत्रो मे अधिक विनियोग किया जाए । अन्य विकल्प यह हो सकता है कि विकास की अधिक सभावना वाले क्षेत्रो मे, अधिक राशि विनियोजित की जाए । एक और विकल्प यह हो सकता है कि सब क्षेत्रो मे समान रूप से विनियोगो का आवटन किया जाए ।

1 पिछडे क्षेत्रो मे अधिक आवटन- किसी देश के स्थायित्व और समृद्धि के लिए न केवल द्रुत गति से आर्थिक विकास आवश्यक है अपितु यह भी आवश्यक है कि उस देश के सभी क्षेत्रो का तीव्रता से और सतुलित आर्थिक विकास हो । सभी क्षेत्र और सारी जनता उस विकास और समृद्धि म भागीदार बनें । यह तभी सम्भव है, जबकि देश के आर्थिक दृष्टि से पिछडे क्षेत्रो मे अधिक पूंजी का विनियोजन किया जाए । अधिकांश विकासशील देश न केवल अर्द्ध-विकसित ही हैं, अपितु इनके विभिन्न क्षेत्रो की आर्थिक प्रगति और समृद्धि मे भी भारी अन्तर है । विभिन्न क्षेत्रो की प्रति व्यक्ति आय मे बडी विषमता है । उदाहरणार्थ, भारत मे तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त मे, अर्थात् 1965 66 मे, बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय केवल

212 91 रु थी। इसके विपरीत, पश्चिमी बगाल की प्रति व्यक्ति आय उक्त वर्ष मे 433 43 रु थी, जो बिहार राज्य की प्रति व्यक्ति आय की दुगुनी से भी अधिक थी। असतुलित विकास के कारण ही देश के कुछ राज्य अन्य राज्यो से बहुत पिछडे हुए हैं। विभिन्न क्षेत्र वासियो के जीवन स्तर मे भारी अन्तर है। यह बात कदापि उचित नही है। किसी एक क्षेत्र की निर्धनता से अन्य समृद्ध क्षेत्र के लिए भी कभी-कभी खतरा पैदा हो सकता है। फिर आर्थिक-नियोजन का उद्देश्य देश की राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करना है। राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि तब तक सम्भव नही है जब तक इन क्षेत्रो की आय मे वृद्धि नही हो और यह तभी सम्भव है जबकि इन पिछडे हुए क्षेत्रो मे पर्याप्त पूँजी विनियोजन किया जाए। देश के सभी क्षेत्रो मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि करने के लिए भी इन प्रदेशो मे अधिक पूँजी विनियोग और उद्योग-धन्धो की स्थापना आवश्यक है, क्योंकि यहाँ विकास हेतु आवश्यक सामाजिक और आर्थिक ऊपरी सुविधाओ, रेलो, सडको, विद्युत सिंचाई की सुविधाओ, शिक्षा तथा चिकित्सा आदि की सुविधाओ का अभाव होता है। इन क्षेत्रो मे आर्थिक विकास को गति देने के लिए तथा कृषि और उद्योगो के विकास हेतु इन आधारभूत सुविधाओ के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता होती है और इनमे भारी पूजी-विनियोग की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यदि देश के समस्त भागो मे प्रति व्यक्ति आय मे समान दर से वृद्धि करना चाहे तब भी पिछडे क्षेत्रो मे अधिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए। किन्तु आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से केवल यही आवश्यक नही है कि देश के सभी क्षेत्र समान-दर से विकसित हो अपितु यह भी अनिवार्य है कि पिछडे क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक गति से विकास करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के इन पिछडे और निर्धन क्षेत्रो मे विनियोगो का अधिकाधिक भाग आवटित किया जाए। सार्वजनिक-क्षेत्र के उद्योगो की स्थापना के समय इस सन्तुलित क्षेत्रीय-विकास की विचारधारा को अधिक ध्यान मे रखा जाए। सतुलित क्षेत्रीय विकास के उद्देश्य की प्राप्ति अल्पकाल मे नहीं हो सकती। यह एक दीर्घकालीन उद्देश्य है जिसकी पूर्ति करने के लिए पिछडे हुए क्षेत्रो मे सामाजिक और आर्थिक ऊपरी लागतो पर बडे पैमाने पर पूजी-विनियोग की आवश्यकता है।

2 **विकास की सम्भावना वाले क्षेत्रो मे विनियोग**—वस्तुत पिछडे क्षेत्रो मे अधिक विनियोग किए जाने का तर्क आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक कारणो पर अधिक आधारित है। अत विकास कार्य अथवा कार्यक्रम वहाँ सचालित किए जाने चाहिए, जहाँ उनकी सफलता की अधिक सम्भावना हो। इन अर्द्ध विकसित देशो मे विनियोग योग्य साधनो का अत्यन्त अभाव होता है। अत इनका उपयोग उन स्थानो एव परियोजनाओ मे किया जाना उपयुक्त है जहाँ इनकी उत्पादकता अधिक हो और देश को अधिकतम लाभ हो। प्रत्येक देश में सब क्षेत्र द्रुत विकास के लिए विशेष रूप से समग्र अर्थ-व्यवस्था के दृष्टिकोण से, समान रूप से उपयुक्त नही होते, क्योंकि सब स्थानो और क्षेत्रो की भौगोलिक स्थितियाँ समान नही होती। कुछ क्षेत्रो मे भौगोलिक परिस्थितियाँ विकास के अधिक अनुकूल होती है तो कुछ क्षेत्रो मे विकास मे बाधक

तत्त्व अधिक प्रबल होते है। इसलिए सब क्षेत्रो मे सतुलित विकास और विनियोगों के समान आवटन की नीति वांछनीय नही हो सकती। अत्यधिक रेगिस्तानी क्षेत्रो या पर्वतीय क्षेत्रो मे अधिक पूजी-विनियोग करना उत्पादन-वृद्धि की दृष्टि से अधिक लाभप्रद नही होगा। इसके विपरीत यदि यही विनियोग विशाल कृषि-क्षेत्रो मे कृषि-विकास के व्यापक कार्यक्रमो और गहन-कृषि के लिए किए गए, खनिज सपदा मे समृद्ध क्षेत्रो मे किए गए, किसी विशाल नदी घाटी परियोजना के सचालन के लिए किए गए तो ऐसा न केवल उस क्षेत्र के लिए अपितु समग्र अर्थ-व्यवस्था के लिए हितकर होगा। प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था मे कुछ वृद्धिमान बिन्दु (Growing Points) होते हैं। उसी प्रकार, कुछ क्षेत्रो मे विकास की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं और विनियोगो द्वारा इन्ही सम्भावनाओ का विदोहन करना चाहिए। स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक साधनो मे धनी क्षेत्रो मे विनियोग आवटन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3 **सभी क्षेत्रों मे समान-रूप से विनियोग आवंटन**—विनियोग आवटन के लिए देश के सभी क्षेत्रो मे समान रूप से विनियोगो का आवटन किया जाना चाहिए. यह सिद्धान्त न्यायपूर्ण है और समानता के सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु अधिक व्यावहारिक नही है। सब क्षेत्रो की भौगोलिक परिस्थितियां और प्राकृतिक साधन भिन्न-भिन्न होते हैं। इन विभिन्न क्षेत्रो की विकास क्षमताएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। जनसख्या और क्षेत्रफल मे अन्तर होता है साथ ही विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अत सब क्षेत्रो के लिए समान विनियोगो की नीति अव्यावहारिक है।

उचित विनियोग-नीति—उचित विनियोग-नीति मे उपरोक्त तीनो सिद्धान्तो, मुख्य रूप से प्रथम दो दृष्टिकोणो पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। वस्तुत किसी दीर्घकालीन नियोजन मे न केवल समस्त देश के विकास के प्रयत्न किए जाने चाहिएँ, अपितु पिछडे हुए क्षेत्रो को भी अन्य क्षेत्रो के समान-स्तर पर लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से विनियोग-आवटन मे पिछडे हुए क्षेत्रो को कुछ रियायत दी जानी चाहिए। किन्तु फिर उन प्रदेशो और क्षेत्रो को अधिक राशि आवटित की जानी चाहिए, जिनमे विकास की सम्भावनाएँ (Growth Potential) अधिक हो। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे इस प्रकार की नीति और भी आवश्यक है, क्योकि सीमित साधन होने के कारण आर्थिक विकास के कार्यक्रमो को ऐसे केन्द्रो पर स्थापित किया जाना चाहिए, जहाँ विनियोजन के अनुकूल फल प्राप्त होते हैं। बाद की अवस्थाओ मे सतुलित प्रादेशिक विकास की दृष्टि से विनियोगो का आवटन किए जाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

भारतीय-नियोजन और संतुलित प्रादेशिक-विकास

भारत के विभिन्न क्षेत्रो के आर्थिक विकास के स्तर मे पर्याप्त भिन्नता है। देश के विभिन्न राज्यो मे ही नही, अपितु एक राज्य के अन्दर भी विभिन्न क्षेत्रों में

आर्थिक प्रगति के स्तर मे पर्याप्त अन्तर है। भारतीय नियोजन मे देश के सन्तुलित विकास के प्रयत्न किए गए हैं। पिछडे हुए क्षेत्रो को उन्नत करने के लिए विशेष कार्यक्रम अपनाए गए है, किन्तु विकास की दृष्टि से अधिक सूक्ष्म क्षेत्रो मे विनियोगो की ओर ध्यान दिया गया है। इस प्रकार, विनियोग-नीति का आधार जहाँ समस्त अर्थ व्यवस्था और देश की दृष्टि से आर्थिक विकास को गति देने वाले क्षेत्रो मे अधिक विनियोग करना रहा है, वहाँ सन्तुलित प्रादेशिक विकास की दृष्टि से भी विनियोग कार्यक्रम सचालित किए गए है। देश की प्रति व्यक्ति आय और आर्थिक प्रगति की दृष्टि मे क्षेत्रीय विषमताओ को कम करने और क्षेत्रीय सतुलन स्थापित करने की ओर भी, योजना-निर्माताओ का ध्यान गया है। यद्यपि, प्रथम पचवर्षीय योजना मे इस दिशा मे विशेष उपाय प्रयाग मे नही लाए जा सके, किन्तु द्वितीय एव तृतीय विकास योजनाओ मे क्षेत्रीय-विषमताओ को दूर करने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया और इस उद्देश्य से कुछ कार्यक्रम आरम्भ किए गए है।

सरकार ने अपनी लाइसेंस आदि नीतियो द्वारा सतुलित विनियोगो को प्रभावित किया है। मोटरगाडियाँ रसायन उद्योग, कागज उद्योग आदि के लिए दिए गए ला सेन्सो से पता चलता है कि इनमे पिछडे क्षेत्रो का अनुपात बढ गया है। सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक-परियोजनाओ के बारे मे जो निश्चय किए गए, उनसे स्पष्ट होता है कि वे दूर-दूर है एव उनसे विभिन्न प्रदेशो मे औद्योगिक विकास होगा। उडीसा मे रुरकेला इस्पात कारखाना और उर्वरक कारखाने का विस्तार, असम मे नूनमाटी तेलशोधन कारखाना व उर्वरक कारखाना और प्राकृतिक गैस का उपयोग एव वितरण, केरल मे फाइटो रासायनिक कारखाना, उर्वरक कारखाने की क्षमता का विस्तार तथा एक जहाजी यॉर्ड का निर्माण, आन्ध्र प्रदेश मे रासायनिक औषध कारखाना, विशाखापट्टनम् की सूखी गोदी, हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड का विस्तार प्राग टूल्स और आन्ध्र पेपर मिल्स का विस्तार, मध्य प्रदेश मे नोटो के कागज का कारखाना, बुनियादी ऊष्म सह कारखाना परियोजना, नेपा पेपर मिल्स का विस्तार, भिलाई इस्पात कारखाना और बिजली के भारी सामान की परियोजना, उत्तर-प्रदेश मे कीटाणुनाशक औषधियो का उत्पादन, उर्वरक कारखाना, ऊष्म सह कारखाना तथा यन्त्रो के कारखाने का विस्तार, राजस्थान मे तांबे तथा जस्ते की खानो का विस्तार एव परिद्रावको की स्थापना, सूक्ष्म-यन्त्र-कारखाना, पजाब मे मशीनी औजारो का कारखाना, मद्रास मे शल्य उपकरणो, निवेली लिग्नाइट उच्च ताप कार्बनीकरण कारखाना, टैलीप्रिन्टर कारखाना और इस्पात ढलाई कारखाना, गुजरात मे तेल-शोधक कारखाना और जम्मू कश्मीर मे सीमेन्ट के कारखानो आदि की स्थापना से पिछडे क्षेत्रो को विकसित होने का अवसर मिलेगा। विकास योजना मे निजी-क्षेत्र मे कारखानो की स्थापना पर किया गया पूँजी-विनियोग भी सन्तुलित औद्योगिक विकास मे सहायक होगा। जैसे उत्तर-प्रदेश मे एल्यूमीनियम कारखाना, राजस्थान मे उर्वरक, नाइलोन, कास्टिक सोडा, पी. वी सी. आदि के कारखाने, असम मे नकली रबड, पोलिथिलीन तथा कार्बन ब्लेक की परियोजनाएँ और कागज की लुगदी तैयार करने

का कारखाना तथा केरल मे मोटरो के रबड-टायर तैयार करने के कारखाने देश में सन्तुलित औद्योगिक विकास मे सहायक होगे।

इसी प्रकार ग्रामीण कार्यक्रम (Rural Works Programme) के लिए क्षेत्रो का चुनाव करते समय उन क्षेत्रो को प्राथमिकता दी गई है, जहाँ जनसख्या का दबाव अधिक हो और प्राकृतिक साधन कम विकसित हो। तृतीय योजना मे तो पिछडे क्षेत्र मे 'औद्योगिक क्षेत्र' (Industrial Development Areas) की स्थापना का भी कार्यक्रम था। चतुर्थ योजना मे भी विनियोग आवटन मे पिछडे क्षेत्रो पर विशेष ध्यान दिया गया।

किन्तु इतना सब होते हुए भी भारतीय नियोजन मे 'विकासमान बिन्दुओ' (Growing Points) की उपेक्षा नही की गई है। ऐसी परियोजनाओ को, चाहे वे पिछडे क्षेत्रो मे हो या समृद्ध क्षेत्रो मे, विनियोगो के आवटन मे प्राथमिकता दी गई है।

निजी और सार्वजनिक-क्षेत्रों में विनियोगों का आवंटन

(Allocation of Investment Between Private and Public Sectors)

प्राचीन काल मे यह मत व्याप्त था कि राज्य को देश की आर्थिक क्रियाओ मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए और व्यक्तियो और सस्थाओ को आर्थिक क्रियाओ मे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे आर्थिक जगत मे परम्परावादी अर्थशास्त्रियो के निर्हस्तक्षेप के सिद्धान्त को मान्यता मिली हुई थी। न केवल आर्थिक क्षेत्र मे किन्तु अन्य क्षेत्रो मे भी सरकारी कार्यों को सीमित रखने पर ही बल दिया गया था। लोगो का विश्वास था कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो न्यूनतम शासन करे (The Government is best which governs the least)। इसके साथ ही लोगो का यह भी विचार था कि राज्य आर्थिक क्रियाओ का सचालन सुचारु रूप से मितव्ययितापूर्वक नही कर सकता है। अर्थशास्त्र के एडम स्मिथ (Adam Smith) का विश्वास था कि 'सम्राट् और व्यापारी से अधिक दो अन्य विरोधी चरित्र नही होते" (Not two characters are more inconsistant than those of a sovereign and the trader) किन्तु 19वी शताब्दी मे सरकारी-नियन्त्रण तथा नियमन का मार्ग प्रशस्त होने लगा। 20वी शताब्दी के आरम्भ मे स्वतन्त्र उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था के दोष स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे। राज्य हस्तक्षेप-मुक्त उपक्रम के कारण गलघोट्टू प्रतियोगिता (Cut throat Competition), आर्थिक शोषण, व्यापार-चक्र, आर्थिक-सकट एव अन्य सामाजिक कुरीतियो आदि का प्रादुर्भाव हुआ। स्वतन्त्र उपक्रम पर आधारित अर्थ-व्यवस्था के इन दोषो ने इसकी उपयुक्तता पर से विश्वास उठा दिया। अब यह स्वीकार किया जाने लगा कि आर्थिक क्रियाओ पर सरकारी नियमन एव नियन्त्रण-मात्र ही पर्याप्त नही हैं, अपितु अब सरकार को आर्थिक क्रियाओ मे प्रत्यक्ष रूप से भी भाग लेना चाहिए। इस प्रकार अब सरकारें भी, आर्थिक क्रियाओ को सचालित करने लगी और सार्वजनिक क्षेत्र का प्रादुर्भाव हुआ। आज लगभग सभी देशो मे किसी न किसी रूप मे सार्वजनिक-क्षेत्र पाया जाता है। इस प्रकार, कई देशों मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) का जन्म हुआ है।

सार्वजनिक और निजी-क्षेत्र का अर्थ
(Meaning of Public and Private Sector)

निजी क्षेत्र और निजी-उद्यम पर्यायवाची शब्द हैं। निजी-क्षेत्र का आशय उन समस्त उत्पादन इकाइयों से होता है जो किसी देश में निजी-व्यक्तियों के स्वामित्व, नियन्त्रण और प्रबन्ध में सरकार के सामान्य नियमों के अनुसार सचालित की जाती हैं। इस क्षेत्र में सभी प्रकार के निजी-उद्यम जैसे–घरेलू और विदेशी निजी-उद्योग तथा कम्पनी-क्षेत्र सम्मिलित होते है। निजी-क्षेत्र मे वे सभी व्यापारिक, औद्योगिक और व्यावसायिक कारोबार शामिल होते हैं, जो व्यक्तिगत पहल के परिणाम हैं। इसके विपरीत सार्वजनिक क्षेत्र का आशय समस्त राजकीय उपक्रमों से है। राजकीय-उपक्रम का अर्थ ऐसी व्यावसायिक सस्था से होता है, जिस पर राज्य का स्वामित्व हो अथवा जिसकी प्रबन्ध व्यवस्था राजकीय यन्त्र द्वारा की जाती हो या स्वामित्व और नियन्त्रण दोनो ही राज्य के अधीन हों। सार्वजनिक क्षेत्र मे मुख्यतः सरकारी कम्पनियाँ, राजकीय विभागों द्वारा सचालित उद्योग और सार्वजनिक निगम आते हैं। निजी-क्षेत्र का अधिकाँश भाग छोटे-छोटे असरय उत्पादकों एव कतिपय बड़े उद्योग-पतियों से मिलकर बनता है, जो देश मे सर्वत्र फैले हुए होते है। निजी-क्षेत्र मे मुख्यतः एकाकी व्यापारी, साझेदारी सगठन, प्राइवेट और पब्लिक लिमिटेड कम्पनियाँ आदि के रूप मे उत्पादक इकाइयाँ आती हैं।

भारत सरकार ने निजी और सार्वजनिक-क्षेत्र को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

सार्वजनिक-क्षेत्र—समस्त विभागीय उपक्रम, कम्पनियाँ और परियोजनाएँ, जो पूर्ण रूप से सरकार (केन्द्रीय या राज्य) के स्वामित्व और सचालन मे हों, समस्त विभागीय-उपक्रम, कम्पनियाँ या परियोजनाएँ, जिसमे सरकारी पूँजी का विनियोग 51% या इससे अधिक हो, समस्त विधान द्वारा स्थापित सस्थाएँ और निगम सार्वजनिक क्षेत्र मे माने जा सकते हैं।

निजी-क्षेत्र सस्थापित व्यापार और उद्योग मे सलग्न प्राइवेट पार्टियाँ और वे कम्पनियाँ एव उपक्रम, जिसमे सरकारी (केन्द्र अथवा राज्य) विनियोग 51% से कम है निजी-क्षेत्र मे मानी जा सकती है।

आर्थिक विकास में निजी-क्षेत्र का महत्त्व
(Importance of Private Sector in Economic Development)

1. आर्थिक विकास का आदि स्रोत—विश्व के आर्थिक इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उसकी इतनी अधिक आर्थिक प्रगति का श्रेय निजी-क्षेत्र को है। अमेरिका, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी आदि देशों ने निजी क्षेत्र द्वारा ही इतनी अधिक प्रगति की है। अमेरिका को तो निजी-उद्यम-पद्धति पर गर्व है। अमेरिका अपनी अर्थ-व्यवस्था मे निजी-उद्यम को प्रधानता देने के लिए वचनबद्ध है। वहाँ राष्ट्रीय सकट के समय भी सार्वजनिक पहल को दूसरा स्थान दिया जाता है। वस्तुत वह इतनी तीव्र गति से आर्थिक उन्नति करने मे निजी-उद्यम के द्वारा ही

सफल हुआ है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी मे भी अर्थ-व्यवस्था के प्रबन्ध मे राज-सत्ता का प्रयोग कम से कम करने की नीति अपनाई गई है। डॉ. इरार्हर्ड ने, जिनका दावा है कि युद्धोत्तरकाल मे जर्मनी प्रतियोगिता द्वारा समृद्ध होने मे सफल हुआ है सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध आवाज उठाई है। जापान की आर्थिक उन्नति मे निजी-क्षेत्र का विशेष योगदान रहा है। फ्रांस, नीदरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन और ब्रिटेन मे भी निजी-क्षेत्र का योग कुल राष्ट्रीय आय मे 75% से 80% के लगभग है। आधुनिक विश्व मे भी सोवियत सघ, पूर्वी यूरोप के देश, चीन, उत्तरी कोरिया और वियतनाम आदि साम्यवादी देशो को छोडकर अन्य देशो मे निजी-उपक्रम की प्रधानता है। यहाँ तक कि पूर्वी-यूरोपीय देशो मे भी, कृषि कुछ सीमा तक निजी क्षेत्र के व्यक्तियो के हाथ मे ही है।

आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशो में भी निजी-उपक्रम का बहुत महत्त्व है। इससे आर्थिक विकास मे सहायता मिलती है। लेबनान और उरुगोय मे स्वतन्त्र बाजार पद्धति के आधार पर अर्थ व्यवस्था कार्य कर रही है। पाकिस्तान, थाइलैण्ड, फारमोसा दक्षिणी कोरिया, मलेशिया, नाईजीरिया, अर्जेन्टाइना, ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, वेनेजुएला इत्यादि देशो मे सामान्यत मिश्रित अर्थ व्यवस्था है, जिसमे निजी-क्षेत्र की ओर अधिक झुकाव है। इन देशो की अर्थ-व्यवस्था म राज्य नियन्त्रण बहुधा केवल उन क्षेत्रो पर है जिनमे निजी उद्यम कार्य करने के लिए या तो तैयार नही है अथवा उसमे इनकी सामर्थ्य नही है, किन्तु मैक्सिको और भारत में सरकारी-क्षेत्र एक विशाल निजी क्षेत्र के साथ कार्य कर रहा है।

2 **जनतान्त्रिक विचारधारा**—विश्व के जनतान्त्रिक देश राजनीतिक स्वतन्त्रता के समान *आर्थिक स्वतन्त्रता के भी दृढ समर्थक हैं। प्रजातान्त्रिक शासन मे* नागरिको को कुछ सीमाओ के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। उन्हे निजी-सम्पत्ति का अधिकार होता है और उत्पादन साधनो को क्रय करने, अपनी सम्पत्ति का इच्छानुसार उपयोग करने, विक्रय आदि की स्वतन्त्रता होती है। ऐसी स्थिति मे, निजी-उपक्रम का होना स्वाभाविक ही है। निजी उपक्रम की पूर्ण समाप्ति केवल साम्यवादी देशो मे ही हो सकती है। अत विश्व का जो भी देश जनतान्त्रिक मूल्यो मे विश्वास करता है, वहाँ निजी-उपक्रम का आर्थिक विकास म योगदान महत्त्वपूर्ण होता है।

3 ***सरकार के पास उत्पादन साधनो की सीमितता***—*यदि ऐसे देश नियोजित* अर्थ व्यवस्था के सचालन हेतु समस्त उत्पत्ति के साधनो को सार्वजनिक-क्षेत्र मे लेना चाहें तो सरकार को उसके उपलब्ध साधनो का बहुत बडा भाग दीर्घकाल तक मुआवजे के रूप मे देना पडेगा। इससे अन्य क्षेत्रो के लिए सरकार के पास साधनो की कमी पडेगी और आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हो जाएगी। इसके अतिरिक्त, जब निजी-उपक्रमियो को राष्ट्रीयकरण करके क्षतिपूर्ति दी जाती है तो उनके पास अन्य उत्पादन के साधनो को क्रय करने और अन्य उपक्रमो को प्रारम्भ करने के लिए धन पहुँच जाता है, इस प्रकार निजी क्षेत्र का अस्तित्व बना रहता है। अर्द्ध-विकसित देशो मे वस्तुत उद्योग, *उत्पादन तथा उपक्रम के इतने अधिक क्षेत्र होते हैं कि सरकार अपने* समस्त साधनो

से भी इन्हे स्थापित नही कर सकती । ऐसी स्थिति मे, उचित नीति यही है कि निजी-क्षेत्र के व्यवसायो को कार्य करने दिया जाए और राज्य ऐसे नवीन व्यवसायो को प्रारम्भ एव विकसित करे जिनकी देश को अधिक आवश्यकता हो ।

4 **निजी-उपक्रम की क्षमता का लाभ**—निजी उपक्रम प्रणाली मे निजी सम्पत्ति (Private Property) और निजी लाभ की छूट होती है । पूँजीपतियो को लाभ कमाने और उसका उपयोग करने की स्वतन्त्रता होती है अत वे अधिक से अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न करते हैं । इसलिए वे उत्पादन कार्यों को अपेक्षाकृत *अधिक मितव्ययिता और कुशलतापूर्वक सचालन करते हैं* । इसके विपरीत, सार्वजनिक क्षेत्रो की कार्य-क्षमता इतनी अधिक नहीं होती क्योकि उनका प्रबन्ध आदि ऐसे व्यक्तियो द्वारा किया जाता है जिनका हित उनसे बहुत अधिक नही बधा होता । भारत के कई सार्वजनिक उपक्रम भारतीय अर्थ व्यवस्था पर भार बने हुए है । वास्तव मे सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र की कार्यक्षमता अधिक श्रेष्ठ होती है । *लाभ कमाने की छूट के कारण पूँजीपतियो मे उत्पादन प्रेरणा उत्पन्न होती है* और वे अधिक बचत और विनियोग करने को तत्पर होते हैं । निजी-क्षेत्र का अस्तित्व सामान्य जनता मे सरकार के प्रति विश्वास जाग्रत करता है और व्यक्तिगत अर्थ साधन राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमो के लिए उपलब्ध होते रहते हैं ।

5 **विदेशी पूँजी और वित्तीय साधनो की प्राप्ति**—योजनाओ के लिए *निर्धारित विशाल कार्यक्रमो की वित्त व्यवस्था केवल आन्तरिक साधनो से ही सम्भव* नही हो सकती । कुछ अपवादो को छोडकर प्रत्येक देश के आर्थिक विकास मे विदेशी पूँजी और वित्तीय साधनो से पर्याप्त सहायता मिली है । अर्द्ध विकसित राष्ट्रो को योजनाओ को पूर्ण करने के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता है किन्तु विदेशी पूँजीपति और उद्योगपति उन देशो मे ही पूँजी विनियोजित करने को प्रस्तुत होते हैं *जहां राष्ट्रीयकरण का भय न हो, जहाँ निजी उपक्रम विद्यमान हो और उसको उचित* सुविधाएँ तथा प्रेरणाएँ प्राप्त हो तथा जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र के साथ कडी प्रतियोगिता न करता हो । अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाएँ भी वित्तीय सहायता देते समय इस बात पर विचार करती हैं कि उनकी सहायता द्वारा स्थापित व्यवसायो से न केवल *उस देश के निवासी ही लाभान्वित हो अपितु अन्य देशो को भी उनसे लाभ मिल* सके । इस उद्देश्य पूर्ति हेतु उपक्रमों का स्वतन्त्र सचालन आवश्यक है ।

6 **कुछ व्यवसायो की प्रवृत्ति निजी उपक्रम के अनुकूल होना**—कुछ व्यवसायों की प्रकृति निजी उपक्रम के अधिक अनुकूल होती है और उनके कुशल सचालन के लिए व्यक्तिगत पहल की आवश्यकता होती है । इस वर्ग मे वे व्यवसाय सम्मिलित किए जा सकते हैं, जिनमे *उपभोक्ताओ की व्यक्तिगत रुचि की ओर ध्यान दिया जाना* आवश्यक होता है । ललितकलायें इसके उदाहरण हैं । कृषि भी एक ऐसा ही व्यवसाय है, जिसे निजी उपक्रम के लिए पूर्णतया छोडा जा सकता है ।

7 **निजी क्षेत्र की बुराइयो को दूर किया जाना सम्भव**—सार्वजनिक-क्षेत्र के समर्थको के अनुसार, निजी क्षेत्र मे शोषण तत्त्व की प्रधानता होती है । इनसे श्रमिकों

तथा उपभोक्ताओ के शोषण के साथ-साथ धन और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण होता है और सामाजिक तथा आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है; किन्तु यह तभी सम्भव है, जब इसे निरकुश रूप से कार्य करने का अवसर दिया जाए। नियोजित अर्थ व्यवस्था मे राज्य निजी-क्षेत्र को उचित नियन्त्रण और नियमन द्वारा कल्याण-कारी राष्ट्रीय नीतियो के अनुकूल चलने के लिए बाध्य कर सकता है। इस प्रकार, निजी-क्षेत्र का उपयोग आर्थिक विकास के लिए किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्व
(Importance of Public Sector in Economic Development)

वस्तुत: आधुनिक विश्व मे कोई भी ऐसा देश नही है, जहाँ पूर्णरूप मे निजी-उद्यम का अस्तित्व हो या जहाँ सार्वजनिक उपक्रम का किसी न किसी रूप मे अस्तित्व न हो। निजी-उपक्रम के प्रबल समर्थक सयुक्तराज्य अमेरिका मे भी अणु उत्पादन, रॉकेट-रिसर्च, सुरक्षा-उत्पादन आदि सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। पश्चिमी यूरोप कई देशो मे भी वायुयान-निर्माण-उद्योग और सार्वजनिक उपयोगिताएँ सरकारो के हाथो मे ही हैं। आधुनिक अर्द्ध-विकसित देशो मे, जिन्होने आर्थिक नियोजन को प्रारम्भ करके नियोजित आर्थिक विकास की पद्धति को अपनाया है, स्वय सरकार वृहत् पैमाने पर पूँजी लगाकर आर्थिक विकास प्रक्रिया को बल पहुँचाने की आवश्यक्ता है। इन अर्थ-व्यवस्थाओ मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार मुख्यत निम्नलिखित कारणो से आवश्यक है—

1. नियोजित अर्थ व्यवस्था की देन—नियोजित अर्थ-व्यवस्था का प्रारम्भ, सर्वप्रथम, सोवियत रूस मे हुआ था और वहाँ धीरे-धीरे समस्त अर्थव्यवस्था को सार्वजनिक-क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिया गया। अत अनेक व्यक्तियो का विचार है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था और उत्पादन साधनो का पूर्णरूप से सरकारी स्वामित्व और सचालन समानार्थक है, अर्थात्, नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे एकमात्र सार्वजनिक-क्षेत्र ही होता है। नियोजन सम्बन्धी यह मत उचित प्रतीत नही होता और प्रजातन्त्रवादी नियोजन मे निजी-क्षेत्र का अस्तित्व भी होता है, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे, सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्व बढ जाता है। नियोजन का अर्थ, देश के साधनो का सामाजिक हित मे अधिकाधिक विवेकपूर्ण उपयोग से है और ऐसा निजी-क्षेत्र द्वारा बिल्कुल सम्भव नही है। अत. नियोजन के इस उद्देश्य पूर्ति हेतु सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार नितान्त आवश्यक है। वस्तुत. सार्वजनिक-क्षेत्रविहीन नियोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

2 योजना के कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने के लिए—आर्थिक नियोजन मे विभिन्न क्षेत्रो के विकास हेतु विशाल कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमो को सम्पन्न करने और परियोजनाओ को पूर्ण करने के लिए विशाल मात्रा मे पूँजी-विनियोग की आवश्यकता है। इस समस्त पूँजी का प्रबन्ध केवल निजी-क्षेत्र द्वारा नही हो सकता। अत. विशाल योजनाओ के विशाल कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए सरकार को आगे आना ही पडता है।

3 बडी मात्रा मे पूँजी वाले उद्योगों की स्थापना—आधुनिक युग मे कई उद्योग बहुत बडे पैमाने पर सचालित किए जाते है और इनमे करोडो रुपयो की पूँजी की आवश्यकता होती है। लोहा एव इस्पात, खनिज-तेल और तेल-शोधन हवाई-जहाज, रेले, मोटरें, विद्युत-सामग्री, मशीनें आदि के उद्योग इसी प्रकार के होते है और नियोजन की सफलता के लिए इनमे से अधिकांश की स्थापना और विकास आवश्यक है। इसी प्रकार, योजनाओ मे विशाल नदी-घाटी परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं, जिनमे करोडो रुपयो की पूँजी लगाने की आवश्यकता होती है। निजी व्यक्तियो के लिए इतने बडे उद्योग और परियोजनाओ को हाथ मे लेना असम्भव-सा है—विशेष रूप से, भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश के लिए जहाँ आर्थिक और वित्तीय सस्थाएँ बहुत अल्प विकसित हैं इसी कारण, भारत मे लोहा और इस्पात उद्योग आदि की स्थापना के लिए सरकार को आगे आना पडा और सभी बहूद्देशीय नदी-घाटी योजनाएँ केन्द्रीय और राज्य सरकारो द्वारा प्रारम्भ की गई। बोकारो जैसी विपुल व्यय साध्य योजना के लिए निजी-क्षेत्र सक्षम नही होता। ऐसी परियोजनाओ मे सार्वजनिक-क्षेत्र द्वारा विनियोग अनिवार्य-सा है।

4 अधिक जोखिम वाली परियोजनाओं का प्रारम्भ—कुछ व्यवसायो मे न केवल अधिक मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है, अपितु जोखिम भी अधिक होती है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है। ऐसी स्थिति मे, निजी उद्यमी ऐसे क्षेत्रो और उद्योगो मे पूँजी नही लगाते, क्योकि देश मे पूँजी सीमित होती है और पूँजी-विनियोजन के अन्य कई लाभदायक क्षेत्र होते हैं। अत सरकार के लिए ऐसी परियोजनाओ मे पूँजी-विनियोजन करना अनिवार्य हो जाता है, जिनमे जोखिम अधिक होती हैं। सडकें विशाल नदी घाटी योजनाएँ, भू-सरक्षण तथा वनारोपण आदि इस प्रकार की योजनाएँ हैं।

5 लोकोपयोगी सेवाओ का सचालन—यातायात एव सदेशवाहन के साधन, डाक-तार, विद्युत तथा गैस आदि का उत्पादन तथा वितरण, पेयजल की पूर्ति आदि कई व्यवसाय एव सेवाएँ अत्यन्त आवश्यक और एकाधिकारिक प्रवृत्ति की होती हैं और उनको निजी क्षेत्र मे देने से उपभोक्ताओ का शोषण और निजी लाभ की दृष्टि से इनका सचालन होता है। वस्तुत ये आवश्यक सेवाएँ हैं और इनका सचालन व्यापक सामाजिक लाभ की दृष्टि से किया जाना चाहिए। वैसे भी निजी-एकाधिकार सरकारी एकाधिकार की अपेक्षा अच्छा नहीं समझा जाता। इन सेवाओ का योजना के लक्ष्यो को पूरा करने की दृष्टि से भी सरकार के नियन्त्रण मे होना आवश्यक है। इसीलिए इन व्यवसायो को सरकारी-क्षेत्र मे चलाना चाहिए और इनके लिए विनियोगो की पर्याप्त राशि आवटित की जानी चाहिए।

6 राजनीतिक तथा राष्ट्रीयकरण—कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिन्हे राजनीतिक और राष्ट्रीयकरण से, निजी-क्षेत्र के हाथ मे नही छोडा जा सकता। सुरक्षा और सैनिक महत्त्व के उद्योग, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही सुरक्षित रखे जाने चाहिए, अन्यथा इनकी गोपनीयता को सुरक्षित रखना कठिन होगा साथ ही अपेक्षित

कुशलता नही आ पाएगी। इसी प्रकार कुछ ऐसे उद्योग होने हैं, जिनका अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से सार्वजनिक-क्षेत्र मे सचालन करना आवश्यक होता है।

7 तकनीकी दृष्टिकोण—अर्द्ध-विकसित देशो मे तकनीकी ज्ञान का स्तर नीचा होता है। यह ज्ञान उन्हे विदेशो से प्राप्त करना है। कभी-कभी यह तकनीकी-ज्ञान विदेशियो द्वारा उनकी साझेदारी मे उद्योग स्थापित करने पर ही प्राप्त होता है किन्तु इन विदेशियो की कार्यवाही पर उचित नियन्त्रण आवश्यक है, जो निजी-क्षेत्रो की अपेक्षा उद्योगो के सार्वजनिक क्षेत्र मे होने पर अधिक प्रभावशाली होता है। इसके अतिरिक्त, रूस आदि समाजवादी देशो मे उत्थान और औद्योगिक अनुसधान सरकारी-क्षेत्र मे होता है। ऐसे देश बहुधा, तभी अन्य देशो को तकनीकी-ज्ञान तथा सहयोग दते है, जबकि ये परियोजनाएँ सम्बन्धित देश की सरकार द्वारा चलाई जाएँ। भारतीय योजनाओ मे इस्पात, विद्युत्-उपकरण, खनिज तेल की खोज और तेल शोधन सूक्ष्म एव जटिल उपकरण, भारी मशीन् निर्माण, मिग वायुयान निर्माण योजनाओ के सरकारी क्षेत्र म स्थापित किए जाने के कारण ही रूस, रूमानिया, चैकोस्लोवाकिया आदि देशो से तकनीकी-ज्ञान और सहयोग मिल सका।

8. योजना के समाजवादी लक्ष्यो की प्राप्ति—कई आधुनिक अर्द्ध विकसित देशो की योजनाओ का एक प्रमुख उद्देश्य समाजवाद या समाजवादी पद्धति का समाज स्थापित करना है। वे देश मे धन और उत्पादन के साधनो के केन्द्रीयकरण को कम करने और आर्थिक विषमता को कम करने को कृत सकल्प है। इन उद्देश्यो की पूर्ति मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार अत्यन्त सहायक होता है। उपक्रमो पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार नही होने से उस उपक्रम का लाभ किसी एक व्यक्ति की जेब मे नही जाकर, सार्वजनिक-हित मे प्रयुक्त किया जाता है। इससे व्यक्तिगत एकाधिकार, सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण कम होता है और आर्थिक समानता की स्थापना होती है।

9 योजना के लिए आर्थिक साधनो की प्राप्ति—सार्वजनिक क्षेत्र मे सचालित उपक्रमों का लाभ सरकार को प्राप्त होता है, जिससे सरकार की आर्थिक स्थिति सुधरती है और वह देश के आर्थिक विकास के लिए अधिक धन व्यय कर सकती है। अत योजना के सचालन के लिए वित्तीय साधनो की प्राप्ति की आशा से भी, कई सरकारी उपक्रम स्थापित किए जाते हैं। सार्वजनिक उपक्रमो मे श्रमिको को अधिक वेतन, कार्य की अच्छी दशाएँ, शिक्षा, आवास, चिकित्सा आदि की अधिक सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार इनका उपयोग समाज कल्याण के लिए किया जा सकता है।

10 द्रुत आर्थिक विकास के लिए—नियोजन मे द्रुत आर्थिक विकास के लिए भी सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है। उदाहरणार्थ सोवियत रूस ने पूर्णरूप से सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही गत अर्द्ध-शताब्दि मे अभूतपूर्व तथा आश्चर्यजनक

आर्थिक प्रगति की है। इसका यह आशय नहीं है कि निजी-क्षेत्र आर्थिक विकास के अनुपयुक्त है। इगलैण्ड, अमेरिका, जापान आदि मे निजी-क्षेत्र के अन्तर्गत ही आर्थिक विकास की उच्च दरें प्राप्त की हैं, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा आर्थिक विकास कम समय लेता है।

11. अच्छे प्रशासन के लिए—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अच्छे प्रशासन के लिए साधनो का अच्छा वितरण और उपयोग होना चाहिए। इसके लिए व्यवसायो के अच्छे प्रशासन की भी आवश्यकता है। सरकारी क्षेत्र के व्यवसाय इस दृष्टि से अच्छे होते हैं। इनसे कर-वसूली, मूल्य-नियम, पूंजीगत और उपभोक्ता वस्तुओ के वितरण आदि मे सुविधा होती है। सरकारी उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी नीतियो को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए भी सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है।

विनियोगों का आवटन
(Allocation of Investment)

अत स्पष्ट है कि निजी और सार्वजनिक दोनो क्षेत्रो की अपनी-अपनी उपयोगिताएँ और लाभ है। अत आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत दोनो की ही अच्छाइयो का लाभ उठाने के लिए दोनो ही क्षेत्रो से युक्त मिश्रित-अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) को अपनाना चाहिए। इससे पूर्णरूप से निजी उपक्रम वाली अर्थ-व्यवस्था और पूर्णरूप से सार्वजनिक उपक्रम अर्थ-व्यवस्था दोनो ही आपत्तियो से बचा जा सकेगा। जनतान्त्रिक मूल्यो मे विश्वास रखने वाले, अर्द्धविकसित देशो के लिए तो यही एकमात्र उपयुक्त मार्ग है। अत इन देशो के नियोजन मे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रो मे आर्थिक क्रियाओ का सचालन किया जाना चाहिए और दोनो क्षेत्रो के लिए ही विनियोगो का आवटन किया जाना चाहिए। किस अनुपात मे इन दोनो क्षेत्रो का स्थान दिया जाए या पूँजी विनियोगो का उत्तरदायित्व सौंपा जाए, इसके बारे मे कोई एक सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। विभिन्न देशो की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है। अत प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितियो के अनुसार, विनियोगो का निजी और सार्वजनिक-क्षेत्र मे वितरण करना चाहिए, किन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक-क्षेत्र का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक गति से होता है। इस सम्बन्ध मे भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कहा गया है कि "सरकारी-क्षेत्र का विस्तार तीव्रता से होना है। जिस क्षेत्र मे निजी-क्षेत्र प्रवेश करने को तत्पर न हों, राज्य को केवल ऐसे क्षेत्र मे विकास कार्य ही शुरू नहीं करना है बल्कि अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी-विनियोग के पैटर्न को रूप देने मे प्रधान भूमिका अदा करनी है। विकासशील अर्थ-व्यवस्था में, जिसमे विविधता उत्तरोत्तर उत्पन्न होने की गुंजाइश है, लेकिन यह आवश्यक है कि यदि विकास कार्य अपेक्षित गति से किया जाना है और वृहत् सामाजिक लक्ष्यो की प्राप्ति की दिशा मे प्रभावशाली ढग से योग देना है, तो सरकारी क्षेत्र मे वृद्धि समग्र रूप मे ही नहीं, अपितु निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए।"

तृतीय और चतुर्थ योजना मे यह तर्क और भी अधिक बल के साथ स्पष्ट रूप मे रखा गया और योजना मे कहा गया कि "समाजवादी समाज का उद्देश्य रखने वाले देश की अर्थ-व्यवस्था मे सरकारी क्षेत्र को उत्तरोत्तर प्रमुख स्थान ग्रहण करना है।" मनुभाई शाह का भारत के सम्बन्ध मे यह कथन समस्त अर्द्ध-विकसित देशो के लिए उपयुक्त है कि "हमारे गरीब देश म पूँजीवाद निरर्थक, निष्फल तथा उपयोगिताहीन है। ऐसे देश मे जहाँ पिछडापन गहरा पहुँच चुका है, जहाँ गरीबी भरी पडी हो, जहाँ करोडो बच्चो को शिक्षा उपलब्ध नही हो, वहाँ समाज का सचालन अधिक हिस्से मे शासन के पास ही रहना चाहिए।" भारत मे सार्वजनिक-क्षेत्र का महत्त्व निजी-क्षेत्र की अपक्षा अधिक बतलाते हुए एक बार भूतपूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन ने लिखा था कि "यदि सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र को प्रधानता दी जाती है, तो वह हमारे समाजवादी समाज के विकास के लिए घातक होगा।"[1]

अत नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का निरन्तर विस्तार होना चाहिए। किसी सीमा तक सार्वजनिक-क्षेत्र को विनियोगो का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है, यह सम्बन्धित देश की आर्थिक परिस्थितियो, आर्थिक औद्योगिक नीति, राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology), निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की अब तक की कुशलता और भविष्य के लिए क्षमता आदि बातो पर निर्भर करता है, किन्तु इस सम्बन्ध मे सिद्धान्तो की अपेक्षा व्यवहारिकता पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। कृषि, लघु एव ग्रामीण उद्योग, उपभोक्ता उद्योग, आन्तरिक व्यापार आदि मे पूँजी निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, किन्तु जनोपयोगी सेवाएँ, नदी घाटी योजनाएँ, वित्तीय सस्थाएँ, भारी और आधारभूत उद्योग तथा अन्य देश और अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे सार्वजनिक-क्षेत्र को ही पूजी-विनियोग करना चाहिए।

भारत मे निजी और सार्वजनिक-क्षेत्रो में विनियोग
(Investment in Private & Public Sector in India)

नियोजित विकास के पूर्व

स्वतन्त्रता के पूव भारत के आर्थिक एव औद्योगिक विकास का इतिहास देश मे निजी-क्षेत्र के विकास का इतिहास है। उस समय भारत मे सार्वजनिक-क्षेत्र नाम-मात्र को ही था। उस समय सरकारी क्षेत्र मे, रेलें, डाक तार, आकाशवाणी, पोर्ट-ट्रस्ट, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, ऑर्डिनन्स फैक्ट्रीज और कतिपय ऐयर-क्राफ्ट, नमक और कुनेन आदि के कारखाने ही थे। इनके अतिरिक्त, सारा व्यवसाय निजी उद्योगपतियो द्वारा सचालित किया जाता था। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने देश के औद्योगिक और आर्थिक विकास की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया और इस सदर्भ मे, सावजनिक उपक्रमो के महत्त्व को समझा। सन् 1947 से प्रथम योजना के प्रारम्भ होने तक सिन्दरी मे रासायनिक उर्वरक कारखाना, चितरजन में

1 *Dr. Jakir Husain* · Yojna, 18 May, 1969, p 3

रेल के इन्जिन बनाने का कारखाना, बगलौर मे यन्त्रोपकरण बनाने का कारखाना एव दामोदर घाटी विकास निगम आदि सरकारी उपक्रम प्रारम्भ किए गए। परिणामस्वरूप 1952 मे प्रकाशित प्रथम पचवर्षीय योजना के समय केन्द्रीय एव राज्य सरकारो का कार्यशील पूजी सहित कुल स्थिर आदेयो का पुस्त मूल्य (Book Value of Gross Fixed Assets) सन् 1947-48 के 875 करोड रु. से बढकर 1,272 करोड रु हो गया। इसके अतिरिक्त पोर्ट ट्रस्ट नगरपालिका में एव अन्य अर्द्ध-सार्वजनिक अभिकरणो की उत्पादक आदेय राशि 1,000 करोड रु थी। इसके विपरीत, निजी क्षेत्र की कुल उत्पादक आदेय राशि, कृषि, लघु-स्तरीय उद्योग, यातायात एव आवास भवनो के अतिरिक्त, सन् 1950 मे 1,474 करोड रु अनुमानित की गई थी।[1]

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे

प्रथम पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक नियाओ के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र विभाजन के मार्ग-प्रदर्शक के रूप मे, सन् 1948 की औद्योगिक नीति ने कार्य किया, जिसके अनुसार, कुछ उत्पादन-क्षेत्र तो पूर्णरूप से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही निर्धारित कर दिए गए थे और कई अन्य क्षेत्रो मे भी सरकारी क्षेत्र का विस्तार की चर्चा की गई थी। अत उद्योगो मे कई परियोजनाए सरकारी-क्षेत्र मे स्थापित की गई। साथ ही, अन्य क्षेत्रो मे भी, जैसे नदी-घाटी योजनाए, कृषि-विकास-कार्यक्रम, यातायात एव सचार आदि मे भी सरकारी क्षेत्र ने कार्यक्रम शुरू किए। परिणामस्वरूप योजनावधि मे, जहाँ निजी-क्षेत्र ने पर्याप्त प्रगति की, वहाँ सार्वजनिक-क्षेत्र का भी पर्याप्त विस्तार हुआ इस योजना मे अर्थ-व्यवस्था मे कुल पूजी-विनियोग 3,360 करोड रु हुआ, जिसमे से 1,560 करोड रु अर्थात् 46 4% विनियोग सरकारी क्षेत्र मे हुआ और शेष 1800 करोड रु अर्थात् कुल का 53 6% निजी-क्षेत्र मे हुआ। योजना के पूर्व अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक-क्षेत्र के भाग को देखते हुए पूजी-विनियोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार, इस योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र मे पूँजी निर्माण प्रति वर्ष बढता रहा। सार्वजनिक क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण सन् 1950-51 मे 267 करोड रु से बढकर 1955-56 में 537 करोड रु हो गया। इसी अवधि में निजी-क्षेत्र में पूँजी निर्माण 1,067 करोड रु से बढकर 1,367 करोड रु. हुआ।

प्रथम पचवर्षीय योजना—इस योजना मे 792 करोड रु औद्योगिक विकास हेतु निर्धारित किए गए थे, जिसमे से 179 करोड रु सार्वजनिक क्षेत्र मे, उद्योग और खनिज विकास पर, व्यय किए जाने थे। इसमे से 94 करोड रु का उद्योगो मे विनियोग के लिए प्रावधान था। किन्तु वास्तविक विनियोग 55 करोड रु ही हुआ। इस अवधि मे सार्वजनिक क्षेत्र मे, अनेक बडे कारखानो का निर्माण या विस्तार हुआ, जैसे—हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स फैक्ट्री, बगलौर, जलयान एव

1. *Nabha Gopal Das*. The Public Sector in India

वायुयान कारखाने, हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स, चितरजन का रेल इजिन कारखाना, बगलौर की टेलीफोन फैक्ट्री, कलकत्ता की केबिल फैक्ट्री आदि । राज्य सरकारो द्वारा भी सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए प्रयत्न किया गया, जिसमे प्रमुख है—मैसूर के भद्रावती वर्क्स मे इस्पात का निर्माण एव मध्यप्रदेश मे नेपा नगर मे अखबारी कागज का उत्पादन, उत्तर प्रदेश का सूक्ष्म यत्र कारखाना । इसके अतिरिक्त, बहूद्देशीय नदी-घाटी योजनाओ मे भी पर्याप्त पूँजी-विनियोग सरकारी-क्षेत्र मे किया गया ।

इस योजना के पाँच वर्षों मे निजी क्षेत्र का विनियोग 1,800 करोड रु. हुआ, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र मे यह 1,560 करोड रु ही था । इस प्रकार इस योजना मे निजी क्षेत्र मे विनियोग कुल मिलाकर सार्वजनिक-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक हुआ किन्तु सापेक्ष रूप से कम हुआ । इस योजना मे उद्योगो के सम्बन्ध मे निजी क्षेत्र द्वारा 707 करोड रु के कार्यक्रम बनाए गए थे जिनमें से 463 करोड रु उद्योगो के विस्तार, आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन एव चालू ह्रास पर और 150 करोड रु कार्यशील पूँजी पर विनियोग किए जाने थे । योजनाकाल मे निजी-क्षेत्र मे इन 463 करोड रु के विरुद्ध 340 करोड ही व्यय हुए । इस प्रकार, निजी-क्षेत्र मे भी विनियोग पिछड गया ।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—द्वितीय योजनाकाल मे दोनो क्षेत्र का कुल विनियोग 6 800 करोड रु हुआ । सार्वजनिक-क्षेत्र का विनियोजन 3,700 करोड रु और शेष 3 100 करोड रु निजी क्षेत्र का विनियोजन रहा । अत स्पष्ट है कि इस योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का विनियोजन निजी क्षेत्र के विनियोजन की अपेक्षा अधिक है, जबकि प्रथम योजना मे स्थिति ठीक इसके विपरीत थी । इसी प्रकार, इस योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण भी निरन्तर बढता ही गया । इस अवधि मे सार्वजनिक क्षेत्र मे पूँजी निर्माण 537 करोड रु से बढकर 912 करोड रु. हो गया । इसी अवधि मे निजी-क्षेत्र मे पूँजी-निर्माण 1,367 करोड रु से बढकर 1,789 करोड रु हो गया । द्वितीय योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र के विस्तार का एक मुख्य कारण सार्वजनिक क्षेत्र मे कई विशाल कारखानो की स्थापना किया जाना था । सार्वजनिक क्षेत्र मे औद्योगिक विकास के लिए, इस योजना मे 770 करोड रु व्यय किए गए थे जबकि मूल अनुमान 560 करोड रु का था । इस अवधि मे दुर्गापुर, रूरकेला एव भिलाई मे विशाल इस्पात कारखानो का निर्माण हुआ, इसके अतिरिक्त खनिज तेल की खोज के लिए इडिया आइल लिमिटेड तेल-शोधन के लिए इण्डियन रिफाइनरीज लिमिटेड और विशुद्ध तेल वितरण के लिए इण्डियन आयल लिमिटड की स्थापना की गई । अन्य कई कारखाने, जैसे-भोपाल का भारी बिजली का कारखाना, हिन्दुस्तान एटीबायोटिक्स, राष्ट्रीय कोयला विकास निगम, हैवी इन्जीनियरिंग कॉरपोरेशन, राँची फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया, नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स लिमिटेड आदि की स्थापना की गई जिनके अधीन कई औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की गई । उद्योगो से सम्बन्धित इन इकाइयो के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र मे कई अन्य व्यावसायिक सस्थाओ का भी निर्माण किया गया, जैसे—1958 मे में सेन्ट्रल वेयर हाउसिंग कॉरपोरेशन, 1959 में एक्सपोर्ट क्रेडिट एव गारटी

कारपोरेशन, 1956 में भारतीय जीवन बीमा निगम, 1957 मे नेशनल प्रोजेक्ट्स कन्स्ट्रक्शन कॉरपोरेशन, 1958 में उद्योग पुनर्वित्त निगम एव सन् 1956 में राज्य व्यापार निगम आदि। इन सब संस्थाओ मे करोडो रुपयो की पूँजी विनियोजित की गई। इसके अतिरिक्त, रेलो एव अन्य यातायात साधनो तथा नदी घाटी योजनाओ के विकास के लिए सार्वजनिक-क्षेत्र मे आयोजन किया गया। परिणामस्वरूप, द्वितीय योजना मे सार्वजनिक-क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ।

इस योजना मे कार्यक्रम, औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 के अनुसार, बनाए गए थे, जिसमें सार्वजनिक-क्षेत्र की पर्याप्त वृद्धि के लिए व्यवस्था की गई थी; किन्तु फिर भी इस योजना में निजी क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ। इस योजना मे निजी क्षेत्र मे कुल पूँजी-विनियोग 3,100 करोड रु, सार्वजनिक-क्षेत्र में होने वाले विनियोग की राशि से 700 करोड रु कम है। निजी-क्षेत्र द्वारा अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी निर्माण भी रहा। इस योजना मे औद्योगिक विकास के लिए निजी-क्षेत्र को केवल 620 करोड रु विनियोजित करना था, किन्तु वास्तविक विनियोजन 850 करोड रु का हुआ। इस योजना मे निजी-क्षेत्र मे इस्पात, सीमेंट, बडे और मध्यम इन्जीनियरिंग उद्योगो का पर्याप्त विकास हुआ। इसके अतिरिक्त, निजी-क्षेत्र मे औद्योगिक मशीने, जैसे—सूती वस्त्र-उद्योग, शक्कर-उद्योग, कागज एव सीमेंट-उद्योग की मशीनें तैयार करने वाले उद्योग और उपभोक्ता उद्योगो में पूँजी विनियोजित की गई।

अत स्पष्ट है कि इस योजना मे सरकारी-क्षेत्र और निजी-क्षेत्र दोनो का विकास हुआ, किन्तु सार्वजनिक-क्षेत्र का अपेक्षाकृत अधिक विकास हुआ। योजनावधि मे इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया और जीवन-बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण तथा राजकीय व्यापार निगम आदि संस्थाओ की स्थापना को मूर्त-रूप देने का प्रयत्न किया गया। द्वितीय योजना मे सार्वजनिक विनियोगो मे वृद्धि का कारण 1956 मे सरकार द्वारा औद्योगिक नीति का नवीनीकरण करना और उसमें अर्थ व्यवस्था एव उद्योगो के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो की सरकारी क्षेत्र मे सचालित किए जाने की व्यवस्था है। साथ ही, देश की तीव्र औद्योगीकरण की आकांक्षा तथा आर्थिक समानता और धन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित समाजवादी समाज की स्थापना की राष्ट्रीय उत्कठा के कारण भी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना मे आर्थिक क्रियाओ के, सरकार तथा व्यक्तियो में, विभाजन का आधार सन् 1956 की औद्योगिक नीति को ही माना गया। यद्यपि बाद में उत्पादन वृद्धि के दृष्टिकोण में इसमें निजी-क्षेत्र के पक्ष में थोडा समर्थन किया गया। परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की राष्ट्रीय सरकारी नीति के कारण इस योजना में भी सार्वजनिक क्षेत्र के लिए विनियोग-राशि अधिक आवटित की गई। निजी-क्षेत्र में भी विनियोगो की मात्रा मे वृद्धि हुई, क्योंकि, उसे भी निर्धारित क्षेत्रो में विकसित होते रहने के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिए जाने की नीति को जारी रखा गया। इस योजना के कुल विनियोग 12,767 करोड रु हुआ जिसमें से 7,129

करोड रु (1,448 करोड रु चालू व्यय सहित) सार्वजनिक क्षेत्र मे और 4,100 करोड रु निजी-क्षेत्र में व्यय हुआ। द्वितीय योजना में यह राशि क्रमश: 3,700 और 3,100 करोड रु थी अत स्पष्ट है कि सार्वजनिक-क्षेत्र का कुल विनियोग में भाग 60 6 / तक पहुँच गया था।

इन योजना में, द्वितीय योजना में प्रारम्भ किए गए उद्योगो को पूरा किया जाने एव भिलाई, दुर्गापुर, रुरकेला आदि कारखानो की स्थापित क्षमता में वृद्धि करने के अतिरिक्त अनेक नए कारखाने स्थापित किए गए जिनमे प्रमुख हैं—नियेली, ट्राम्बे, गोरखपुर मे उर्वरक के कारखाने, होशगाबाद (मध्य-प्रदेश) मे सेक्यूरिटी पेपर मिल, बगलौर में घडी बनाने का कारखाना, दुर्गापुर में खनिज मशीनो का कारखाना, कोयली (गुजरात) मे तेल-शोधक कारखाना, ऋषिकेश मे औषधियाँ निर्माण करने वाला कारखाना, रानीपुर तथा रामचन्द्रपुर में भारी बिजली के सामान बनाने का कारखाना, पिंजोर (पजाब) में मशीनी औजार बनाने का कारखाना आदि। तृतीय योजना में ही भारत पर चीनी आक्रमण हुआ और सरकारी क्षेत्र में प्रतिरक्षा उद्योगो पर विशाल मात्रा में पूँजी लगाई गई। राज्य सरकारो द्वारा भी मैसूर आइरन एण्ड स्टील वर्क्स आन्ध्र पेपर मिल्स आदि में पूँजी विनियोग किया गया।

सार्वजनिक-क्षेत्र मे स्थापित उपरोक्त औद्योगिक परियोजनाओ के अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओ के सचालन हेतु अनेक अन्य सस्थाओ का निर्माण किया गया, जैसे–1962 में शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया 1963 में भारतीय खनिज एव धातु व्यापार निगम और राष्ट्रीय बीज निगम 1964 मे भारतीय औद्योगिक विकास निगम आदि। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक विनियोगो में वृद्धि हुई।

इस योजना में निजी क्षेत्र में 4,190 करोड रु का विनियोग किया गया। किन्तु समस्त विनियोजित राशि में निजी-क्षेत्र का भाग निरतर घटता हुआ था, क्योंकि इस बीच सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोगो में वृद्धि होती रही। योजनावधि में सरकार ने औद्योगिक नीति को निजी-क्षेत्र के पक्ष मे थोडा सशोधित किया और उवरक उत्पादन में निजी-क्षेत्र का सहयोग लिया गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना—*आरम्भ में चतुर्थ योजना के लिए 24,882 करोड रु का प्रावधान रखा गया जिसमें सार्वजनिक-क्षेत्र के लिए 15,902 करोड रु और निजी-क्षेत्र के लिए 8,980 करोड रु की व्यवस्था थी। 1971 में योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया गया और सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय को बढाकर 16,201 करोड रु कर दिया गया। योजना का पुन मूल्यांकन किया गया और अब अन्तिम उपलब्ध अनुमानो के अनुसार, चतुर्थ योजना में सार्वजनिक-क्षेत्र में कुल व्यय 15,724* करोड रु. आँका गया है।[1] यदि सार्वजनिक उपक्रमो को ल, तो 31 मार्च, 1974 को केन्द्र सरकार के 122 उपक्रमो में कुल 6,237 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी। पचवर्षीय योजनाओ में सरकारी उपक्रमो में पूँजी निवेश का विस्तार अग्रलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट है[2]—

1 India 1976 p 172
2 Ibid, p 262

अवधि	उपक्रमो की सख्या	कुल पूंजी निवेश (करोड रु)	औसत वार्षिक विकास दर (प्रतिशत मे)
प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ में	5	29	—
द्वितीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे	21	81	36
तृतीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ में	48	953	133
तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त में (31 मार्च, 1966)	74	2,415	31
31 मार्च, 1970	91	4,301	10
31 मार्च, 1972	101	5,052	8
31 मार्च, 1973	113	5,571	10
1974 (चतुर्थ योजना के अत में)	122	6,237	12

14 विदेशी-विनिमय का आबंटन

(Allocation of Foreign-Exchange)

विदेशी-विनिमय का महत्त्व और आवश्यकता
(Importance and Necessity of Foreign Exchange)

आर्थिक नियोजन के लिए विशाल साधनो की आवश्यकता होती है। अर्द्ध-विकसित देश पूँजी, यन्त्रोपकरण, तकनीकी-ज्ञान आदि मे अभावग्रस्त होते है। इसलिए एक निर्धन देश केवल अपने साधनो द्वारा ही आधुनिक रूप मे विकसित नही हो सकता। अत उन्हे नियोजन कार्यक्रमो की सफलता के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री विदेशो से आयात करनी पडती है। नियोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओ में अत्यधिक मात्रा में पूँजीगत पदार्थों, मशीनो, कलपुर्जो उद्योग और कृषि के लिए आवश्यक उपस्कर,औद्योगिक कच्चा माल रासायनिक सामग्री और तकनीकी विशेषज्ञो का आयात करना पडता है। विद्युत् और सिंचाई की विशाल नदी घाटी योजनाओ के लिए विभिन्न प्रकार के यन्त्र, इस्पात तथा सीमेन्ट आदि का विदेशो से आयात करना पडता है। कृषि-विकास के लिए उर्वरक, कीटनाशक औषधियाँ और उन्नत यन्त्र आदि का भी विदेशो से आयात करना पडता है, क्योकि अर्द्ध-विकसित देशो मे इनका उत्पादन भी कम होता है और कृषि व्यवसाय पिछडा हुआ भी होता है। ये विकासोन्मुख देश जब योजनाएँ अपनाते हैं, तो विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे यातायात और सदेशवाहन के साधनो का भी द्रुत विकास करना चाहते हैं क्योकि विकास के लिए यह प्रथम आवश्यकता होती है। इनसे सम्बन्धित सामग्री का भी विदेशो से आयात करना पडता है। विभिन्न विकास योजनाओ मे औद्योगिक विकास को भी महत्त्व दिया जाता है और इस्पात, भारी रसायन, इजीनियरिंग, मशीन-निर्माण, खनिज-तेल, विद्युत् उपकरण आदि उद्योगो के विकास के लिए भारी मात्रा मे मशीनरी, कच्चा माल, मध्यवर्ती पदार्थ, ईंधन, रसायन और कलपुर्जो का आयात करना पडता है। इन सब परियोजनाओ के निर्माण और कुछ समय तक सचालन के लिए विदेशी तकनीकी विशेषज्ञो का भी आयात आवश्यक है। परिणामस्वरूप, देश की आय मे वृद्धि होती है। इस बढी हुई आय का बहुत बडा भाग आधुनिक जीवन

की नवीन वस्तुओ के उपभोग पर व्यय किया जाता है, जिनकी पूर्ति भी विदेशो से मँगाकर की जाती है। अनेक अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान होते हुए भी कृषि व्यवसाय और उत्पादन-पद्धतियो के अवनत होने के कारण देश की आवश्यकतानुसार खाद्यान्न और उद्योगो के लिए कृषि-जनित कच्चा माल भी उत्पन्न नही करते। अत. उन्हे खाद्यान्नो और ऐसे कच्चे माल का भी आयात करना पडता है। भारतीय योजनाओ मे ऐसा ही हुआ। अधिकाँश अर्द्ध-विकसित देश अधिक जनसख्या से ग्रसित होते है और इनकी जनसख्या-वृद्धि की दर भी अधिक होती है। इस बढती हुई जनसख्या के लिए अधिक मात्रा मे उपभोग सामग्री और उत्पादक वस्तुओ की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति के लिए आयातो का आश्रय लेना पडता है। कई अर्द्ध-विकसित देशो मे आयातो के बढने का यह भी एक कारण है। इस प्रकार, विकासार्थ नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों मे आयातो के बढने की प्रवृत्ति होती है। इन देशो को परिपोषक आयात (Maintenance Imports), विकासात्मक आयात (Developmental Imports) और *अस्फीतिकारी आयात* (Anti-inflationary Imports) करने पडते हैं। इन सब आयातो के भुगतान हेतु विदेशी-विनिमय की आवश्यकता होती है।

निर्यात और विदेशी-विनिमय का अर्जन—स्पष्ट है, कि विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था मे वृद्धिमान दर से आयात करने पडते हैं। विदेशो से इन पदार्थों का आयात करने के लिए इनका भुगतान विदेशी मुद्रा मे करना पडता है जिसे ये देश अपनी वस्तुओ का निर्यात करके प्राप्त कर सकते है। अधिक मात्रा मे वस्तुएँ आयात की जा सकें, इसके लिए यह आवश्यक है, कि ये देश अधिकाधिक मात्रा मे अपने देश से पदार्थों का निर्यात करके अधिकाधिक विदेशी मुद्रा या विदेशी-विनिमय अर्जित करें। इन *निर्यातो मे दृश्यगत और अदृश्य* (*Visible and Invisible Exports*) दोनो निर्यात सम्मिलित है। इस प्रकार, विकासोन्मुख देशो के लिए निर्यातो मे वृद्धि करना आवश्यक होता है। किन्तु, दुर्भाग्यवश, इन देशो मे नियोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे निर्यात क्षमता बहुत अधिक नही होती है। एक तो स्वय देश के विकास-कार्यक्रमो के लिए वस्तुओ की आवश्यकता होती है। दूसरे, आर्थिक विकास के कारण बढी हुई आय को भी जनता, उपभोग पर ही व्यय करना चाहती है, क्योकि इन देशो मे उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। अत निर्यात-योग्य आधिक्य (Exportable Surplus) कम बच पाता है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास म जो कुछ उत्पादन किया जाता है, वह उपभोग की बढती हुई आवश्यकता मे प्रयुक्त कर लिया जाता है। परिणामस्वरूप, इतनी अतिरिक्त निम्न-स्तरीय उत्पादकता और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो के कारण उत्पादन लागत अधिक होती है और विश्व के बाजारो मे वे प्रतिस्पर्द्धा मे प्रारम्भिक वर्षों मे नही टिक पाते; फलस्वरूप, व्यापार प्रतिकूल हो जाता है क्योकि, एक ओर आयातो मे वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर उनके भुगतान के लिए निर्यात अधिक नही बढ पाते। इस प्रकार विदेशी-विनिमय का सकट पैदा हो जाता है। किन्तु एक पूर्णत केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था मे विशेष-रूप से सोवियत रूस जैसी

अर्थ-व्यवस्था मे, विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे ऐसी कठिनाइयाँ कम पैदा होती हैं, परन्तु भारत जैसी आशिक रूप से नियोजित या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) मे विदेशी व्यापार मे इस प्रकार का भुगतान-असतुलन उत्पन्न होना सामान्य बात है।

विदेशी विनिमय के आवटन की आवश्यकता—स्पष्ट है कि विकासार्थ नियोजन मे विशाल मात्रा मे विविध प्रकार की सामग्री का आयात करना पडता है किन्तु उसका भुगतान करने के लिए निर्यातो से पर्याप्त मात्रा मे आवश्यकतानुसार विदेशी विनिमय उपलब्ध नही हो पाता। यद्यपि स्वदेश मे ही उत्पादन मे वृद्धि करके आयात प्रतिस्थापन के पर्याप्त प्रयत्न किए जाते हैं और निर्यातो मे वृद्धि के लिए भी अथक् प्रयास किए जाते हैं किन्तु विदेशी विनिमय की स्वल्पता ही रहती है इसीलिए, उपलब्ध विदेशी विनिमय के समुचित उपयोग की समस्या उदय होती है। यदि देश के लिए वांछनीय सभी पदार्थों के आयात के लिए पर्याप्त मात्रा मे विदेशी विनिमय उपलब्ध हो जाए तो फिर इस प्रकार की समस्या ही उत्पन्न न हो, किन्तु जिस प्रकार से अन्य आर्थिक क्षेत्रो मे वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनो से अनन्त उद्देश्यो की पूर्ति हेतु चयन (Choice) की समस्या उदय होती है उसी प्रकार, विभिन्न उद्योगो मे इन विदेशी मुद्रा कोषो के सीमित साधनो के उचित और विवेक-पूर्ण आवटन की समस्या उदय होती है, जिसके समुचित समाधान से नियोजन की सफलता का प्रश्न बढ जाता है।

विदेशी-विनिमय का आवटन
(Allocation of Foreign Exchange)

अत यह आवश्यक है कि योजनाओ मे आयात-कार्यक्रम, एक सुविचारित योजना के आधार पर सचालित किया जाए, जिससे दुर्लभ विदेशी मुद्रा का अधिकतम उपयोग हो सके।

इस सम्बन्ध मे तनिक सशोधन के साथ वही सिद्धान्त अपनाया जा सकता है जो देश मे विनियोगो के आवटन (Allocation of Investment) के लिए अपनाया जाता है। इस सदर्भ मे 'सीमान्त-सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (Principle of Marginal Social Benefit) बडा सहायक हो सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उद्योगो मे विदेशी मुद्रा का आवटन इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि इनसे प्राप्त सीमान्त लाभ समान हो। तभी इस विदेशी मुद्रा से देश को अधिकाधिक लाभ मिल सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि विदेशी मुद्रा के आवटन मे देश के लिए सर्वाधिक आवश्यक क्षेत्रो और परियोजनाओ को प्राथमिकता दी जाए। अर्द्ध-विकसित देशो के आयात को निम्नलिखित भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(अ) सुरक्षा सामग्री का आयात (Import of Defence Equipment)
(ब) निर्वाह सम्बन्धी आयात (Maintenance Imports)
(स) विकासात्मक आयात (Developmental Imports)
(द) अदृश्य आयात (*Invisible Imports*)

(अ) सुरक्षा सम्बन्धी आयात (Imports of Defence Equipment)—सुरक्षा, किसी भी देश की सर्वोपरि आवश्यकता होती है। कोई भी देश इस कार्य में उदासीनता नहीं बरत सकता। अत नियोजन में सुरक्षा सामग्री के आयातों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कई देशों के नियोजन का तो मुख्य उद्देश्य ही देश की रक्षा या आक्रमण (Defence or Offence) के लिए सुरक्षा को दृढ करना होता है। वैसे भी इनमें से अधिकांश अर्द्ध विकसित देश अभी गत कुछ वर्षों से ही स्वतन्त्र हुए हैं और सुरक्षा की दृष्टि से दुर्बल हैं। इन देशों के पडोसियों में सीमा सम्बन्धी झगड़े भी रहते हैं जिनके कारण, ये देश युद्ध की आशका से ग्रस्त रहते हैं और सुरक्षा के लिए आतुर रहते हैं। यहाँ तकनीकी ज्ञान का भी इतना अधिक विकास नहीं हुआ है, जिससे सारी सुरक्षात्मक सामग्री का उत्पादन वे स्वय कर सकें। अत इन्हें विदेशों से भारी मात्रा में अस्त्र शस्त्र, गोला-बारूद तथा सुरक्षा उद्योगों के लिए आवश्यक सामग्री का आयात करना आवश्यक होता है जिनके अभाव में इन देशों की सुरक्षा ही खतरे में पड सकती है। अत इस कार्य के लिए विदेशी-विनिमय के आवटन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। देश का अस्तित्व देश की सुरक्षा पर निर्भर करता है जो विकासवाद की एक वस्तु है। सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक सामग्री के आयात म उपेक्षा करन के दुष्परिणाम हो सकते हैं। अत सुरक्षा की दृष्टि से आयात की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णरूप से विदेशी विनिमय उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(ब) निर्वाह सम्बन्धी आयात (Maintenance Imports)—निर्वाह सम्बन्धी आयात या परिपोषक आयातों में आयात की जाने वाली उन वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं जो अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान स्तर पर सुचारु रूप से सचालन के लिए आवश्यक हैं। भारत जैसे अर्द्ध विकसित देशों के सदर्भ में इसमें निम्नलिखित वर्ग सम्मिलित किए जा सकते हैं—

(i) खाद्यान्न—अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश कृषि-प्रधान हैं, किन्तु कृषि की पिछड़ी हुई दशा और जनसख्या की अधिकता होने के कारण, वहाँ खाद्यान्नों का अभाव होता है और इसकी पूर्ति विदेशों से खाद्यान्नों का आयात करके की जाती है। खाद्यान्न किसी भी देश की बुनियादी आवश्यकता है और इसकी पूर्ति चाहे किसी भी स्रोत से हो, आवश्यक रूप से की जानी चाहिए। इन देशों का जीवन-स्तर पहले से ही अत्यन्त न्यूनतम स्तर पर है और उसमे कटौती किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। अत यद्यपि इन देशों में खाद्यान्नों के उत्पादन म तुरन्त वृद्धि के प्रयत्न किए जा सकते हैं जिसकी यहाँ बहुत बड़ी गुंजायश है, किन्तु यदि इसमें तुरन्त इतनी वृद्धि नहीं हो पाए जिससे देश की खाद्यान्नों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हों, तो निश्चित रूप से खाद्यान्नों का भी आवश्यक मात्रा में आयात किया जाना चाहिए और उसके लिए पर्याप्त मात्रा में विदेशी-विनिमय आवटित किया जाना चाहिए। भारत का उदाहरण इस सम्बन्ध में स्पष्ट है।

(ii) औद्योगिक कच्चा माल—इस वर्ग में कच्चा माल, *मुख्यतः कृषि-जन्य*

कच्चा माल, सम्मिलित किया जा सकता है। अनेक अर्द्ध-विकसित देशो मे, स्वय के उद्योगो के लिए, कच्चा माल उत्पन्न नही होता है अथवा कम मात्रा मे होता है, जिसकी पूर्ति विदेशो से इन पदार्थों का आयात करके की जाती है। उदाहरणार्थ, भारत कृषि-सम्बन्धी कच्चे माल मे, खालें, खोपरा, कच्ची रबड, कच्ची कपास, कच्चा जूट, अनिर्मित तम्बाकू आदि का आयात करता है। इन सभी वस्तुओ के आयात को देश मे ही उत्पादन मे वृद्धि करके कम किया जाना चाहिए। साथ ही, इस बात के भी प्रयास किए जाने चाहिए कि इन *आयातित वस्तुओ* के स्थान पर उपयुक्त देशी वस्तुओ का उत्पादन हो। अत इन वस्तुओ के लिए विदेशी-विनिमय कम उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस वर्ग की अधिकांश मे उन्ही वस्तुओ के लिए विदेशी मुद्रा आवटित की जानी चाहिए जो निर्यातित वस्तुओ के निर्माण मे सहायता दे तथा जिनके स्थान पर देश मे उत्पादित वस्तुओ का उपयोग नही हो सकता हो।

(iii) *खनिज तेल*—*अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे खनिज तेल का अभाव* है। उदाहरणार्थ, भारत मे खनिज तेल की आवश्यकता का कुछ भाग ही उत्पन्न होता है। शेष तेल विदेशो से आयात करना पडता है। वैसे भी खनिज तेल की आवश्यकता उद्योग-धन्धो और यातायात आदि की वृद्धि के साथ बढती जाती है। सुरक्षा के लिए भी इसका महत्त्व होता है। अत इस मद के आयात मे कटौती करना तब तक सभव नही है, जब तक देश मे नए खनिज भण्डारो का पता लगाकर उनसे अधिक तेल निकाला जाए या वर्तमान तेल भण्डारो से ही अधिक तेल निकाला जाए और उसके शोधन की उचित व्यवस्था की जा सके, किन्तु तेल की खोज करने और तेल-शोधन सस्थाएँ स्थापित करने के लिए भी विदेशो से मशीनें *अन्य सामग्री एव तकनीशियन* आयात करने पडते है जिनके लिए विदेशी मुद्रा चाहिए।

(iv) रासायनिक पदार्थ—प्रत्येक देश को रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है, किन्तु अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशो मे रासायनिक उद्योग अत्यन्त अविकसित होते हैं। कृषि-उद्योग आदि की प्रगति हेतु रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। सुरक्षा उद्योगो के लिए भी रासायनिक उद्योग आवश्यक हैं। इसलिए इस मद मे कटौती करना अनुचित है। अत. इस मद के लिए भी आवश्यक विदेशी-विनिमय आवटित किया जाना चाहिए।

(v) निर्मित वस्तुएँ—अर्थ व्यवस्था मे चालू उत्पादन को बनाए रखने के लिए भी कुछ निर्मित पदार्थ विदेशों से आयात करने पडते हैं उदाहरणार्थ, भारत मे इस वर्ग के प्रतिस्थापन और मरम्मत के लिए मशीनें कागज, अखबारी कागज, लोहा एव इस्पात, अलौह धातु आदि आते है। इन वस्तुओ का उत्पादन देश मे नही होता है तथा ये वस्तुएँ देश के वर्तमान उत्पादन के लिए आवश्यक है। अत इसके लिए भी पर्याप्त विदेश विनिमय का आवटन किया जाना चाहिए।

(स) विकास-सम्बन्धी आयात (Developmental Imports)—आर्थिक नियोजन और विकास की दृष्टि से इस प्रकार के आयात सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। योजनाओ में कई प्रकार की परियोजनाएँ और विशाल कार्यक्रम प्रारम्भ किए जाते

हैं। प्रत्येक देश की योजनाओं में विशाल नदी-घाटी योजनाएँ, इस्पात कारखाने, भारी विद्युत उपकरण, मशीन निर्माण, इन्जीनियरिंग, रासायनिक-उर्वरक, कृषि-उपकरण तथा विविध प्रकार के कच्चे, मध्यवर्ती और निर्मित माल की आवश्यकता होती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उक्त पदार्थों का भारी मात्रा में आयात करना पड़ता है। इस स्थिति में इन परियोजनाओं के प्रारम्भ और क्रियान्वयन के लिए विदेशों से विशेषज्ञों का भी आयात करना पड़ता है। अतः इसके लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है। अन्य बातें समान रहने पर विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में जितने अधिक इन पदार्थों का आयात सम्भव होगा और परियोजनाएँ पूरी की जाएँगी, उतना ही अधिक तीव्र गति से आर्थिक विकास सम्भव होगा। अनेक बार इन पदार्थों का आयात सम्भव नहीं हो पाने के कारण विकास में बाधाएँ उपस्थित होती हैं। भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना, विदेशों से सामग्री आयात करने के लिए विदेशी विनिमय की कठिनाई के कारण ही भँवर में पड़ गई थी। अतः विकास सम्बन्धी आयात भी आवश्यक हैं और इसके लिए पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा आवंटित की जानी चाहिए।

(द) **अन्य कार्य या अदृश्य आयात (Other Work or Invisible Imports)**—प्रत्यक्ष रूप से पदार्थों के आयात के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए भी विदेशी-विनिमय की आवश्यकता होती है। विदेशों से लिए हुए ऋण और उसकी अदायगी के लिए भी विदेशी मुद्रा चाहिए। इस प्रकार का भुगतान प्रत्येक राष्ट्र का नैतिक कर्त्तव्य है। साथ ही, इन अर्द्ध-विकसित देशों को भविष्य में भी विदेशों से ऋण लेना आवश्यक होता है। इसके लिए, इनकी साख और प्रतिष्ठा तभी बनी रह सकती है, जबकि ये पूर्व ऋणों का भुगतान कर दें। अतः अर्द्ध-विकसित देशों को विदेशों से लिए हुए ऋण और ऋण सेवाओं (*Debt and Debt Services*) के लिए भी विदेशी मुद्रा का प्रावधान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अर्द्ध-विकसित देशों के अनेक व्यक्ति विकसित देशों में शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुभव द्वारा विशेषज्ञता प्राप्त करने जाते हैं, जो वहाँ से लौटकर देश के आर्थिक विकास में योगदान देते हैं। चूँकि देश में विविध क्षेत्रों में तकनीशियनों और विशेषज्ञों की अत्यन्त दुर्लभता होती है अतः इन व्यक्तियों की, विदेशों में शिक्षा-दीक्षा के लिए भी पर्याप्त विदेशी मुद्रा का आवंटन किया जाना चाहिए, किन्तु इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि ये व्यक्ति उन विकसित देशों में विशेषज्ञ बनकर स्वदेश आएँ और देश हित में ही कार्य करें। कई बार यह होता है कि इनका स्वदेश के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है और ये वहीं बस जाते हैं। इससे देश की दुर्लभ मुद्रा द्वारा विकसित बुद्धि का बहाव (Intellectual drain) होता है, इसे रोका जाना चाहिए। विभिन्न देशों में आर्थिक सहयोग की सम्भावनाओं में वृद्धि तथा उद्योग, व्यापार, व्यवसाय आदि के लिए कई प्रतिनिधि मण्डल और अध्ययन दल विदेशों को भेजे जाते हैं। उदाहरणार्थ व्यापार-प्रतिनिधि-मण्डल, उद्योग-प्रतिनिधि-मण्डल, निर्यात-सम्भावना अध्ययन-दल आदि। इनके लिए भी विदेशी मुद्रा आवंटित की जानी चाहिए। किन्तु इसके गठन और इनकी

सख्या सावधानीपूर्वक निर्धारित की जानी चाहिए। इन दलो मे न्यूनतम आवश्यक व्यक्तियो को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही, सख्या भी कम होनी चाहिए तथा निश्चित लाभ होने की स्थितियो मे ही ऐसा किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, कई सांस्कृतिक-प्रतिनिधि मण्डल, सद्भावना-मण्डल, खेलकूद प्रतिनिधि मण्डल आदि विदेशो मे भेजे जाते हैं। यद्यपि, पारस्परिक सद्भावना और सूझ-बूझ पैदा करने के लिए इनका भी अपना महत्त्व है, किन्तु इन कार्यों के लिए विदेशी-विनिमय अत्यन्त सीमित मात्रा मे ही उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

आवटन मे प्राथमिकता—अत स्पष्ट है कि दुर्लभ विदेशी-विनिमय आवटन मे सर्वोच्च प्राथमिकता सुरक्षा और खाद्यान्नो को दी जानी चाहिए क्योंकि इनके साथ देश की जनता के जीवन-मरण का प्रश्न सम्बन्धित होता है। निर्वाह और विकास-सम्बन्धी कार्यों हेतु विदेशी मुद्रा, आवश्यक अपरिहार्य आयातो के लिए आवटित की जानी चाहिए। इनमे मुख्यत लोहा एव इस्पात, कोयला, रेलें, विशिष्ट शक्ति योजनाएँ, उर्वरक, मशीनें आदि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसी परियोजनाओ, जिनके कार्य मे काफी प्रगति हो चकी हो या जो पूर्णता के नजदीक हो, सर्वप्रथम, विदेशी-मुद्रा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। विदेशी-विनिमय के इस आवटन मे आवश्यकतानुसार केन्द्रित कार्यक्रमो (Core Projects) को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाना चाहिए। विशेषत उन वस्तुओ के आयात के लिए विदेशी-विनिमय प्रदान किया जाना चाहिए, जो ऐसी वस्तुओ के उत्पादन मे सहायक हो, जिनका या तो निर्यात किया जाए या जो आयातित वस्तुओ के स्थान पर काम आकर आयातो मे कमी करे। इस विदेशी-विनिमय के आवटन और आयातो की स्वीकृति का केन्द्रित उद्देश्य निर्यातो मे वृद्धि तथा आयात प्रतिस्थापन होना चाहिए। विदेशी मुद्रा का उपयोग अधिकतर उपभोक्ता उद्योगो के लिए नही अपितु पूँजीगत-पदार्थो के आयात हेतु किया जाना चाहिए। नियोजन मे वैसी ही परियोजनाएँ सम्मिलित की जानी चाहिए जो आवश्यक हो, जिनमे विदेशी-विनिमय की न्यूनतम आवश्यकता हो और विदेशी-विनिमय उत्पादन अनुपात कम हो। ऐसी परियोजनाओ के लिए ही विदेशी-विनिमय का आवटन किया जाना चाहिए जो झूठी प्रतिष्ठा वाली नही, अपितु देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हो।

भारतीय नियोजन मे विदेशी-विनिमय का आवटन
(Allocation of Foreign Exchange in Indian Planning)

अलक घोष के अनुसार, प्रथम पचवर्षीय योजना मे भारत की विदेशी व्यापार नीति के प्रमुख तत्त्व, निर्यातो को उच्च स्तर पर बनाए रखना और उन्ही वस्तुओ का आयात करना था जो राष्ट्र-हित मे आवश्यक हो या जो विकास और नियोजन की आवश्यकताओ को पूरी करें तथा देश के पास उपलब्ध विदेशी-विनिमय साधनो तक ही भुगतान के असतुलन को रखा जाय। अत इस योजना के प्रारम्भिक वर्ष मे आयात से सम्बन्धित प्रारम्भ मे नियन्त्रण नीति अपनाई गई, किन्तु बाद मे मशीनें एव अन्य आवश्यक उपभोग सामग्री के आयात मे फिर उदारता बरती गई। वर्ष

1953-54 मे खाद्यान्नो के आयात मे कमी हुई, कच्चे माल की आवश्यकताओ की पूर्ति भी स्वदेशी साधनो से करने की चेष्टा की गई। अत कपास और कच्चे जूट का आयात भी कम किया गया। किन्तु योजना के लिए आवश्यक मशीनो के लिए विदेशी विनिमय की स्वीकृति देने मे अनुदारता नही दिखाई गई। वर्ष 1954-55 मे औद्योगिक विकास मे सहायता करने हेतु अधिक उदार-आयात-नीति अपनाई गई। कच्चे माल, मशीने तथा उपभोक्ता वस्तुओ के आयात के लिए भी विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराई गई, किन्तु ऐसी वस्तुएँ, जो देश मे उत्पादित की जाती थी, उनके आयात मे कटौती की गई। 1955-56 मे योजनाओ के लिए आवश्यक मशीनो और लोहे एव इस्पात के लिए विदेशी-विनिमय अधिक आवटित किया गया। प्रथम योजनावधि मे वार्षिक औसत आयात 724 करोड रु रहा, जिसमे से उपभोग की औसत 235 करोड रु तथा कच्चे माल एव अर्द्ध-निर्मित वस्तुओ का औसत 364 करोड रु था।[1] पूँजीगत वस्तुओ का औसत 125 करोड रु प्रति वर्ष रहा।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे भारी एव आधारभूत औद्योगिक विकास पर काफी बल दिया गया। अत पूँजीगत-वस्तुओ के आयात मे वृद्धि हुई। प्रथम योजना के औसत वार्षिक आयात से द्वितीय योजना मे वार्षिक आयात 50% अधिक हो गया। इस योजना मे पूँजीगत वस्तुओ, कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओ एव कल-पुर्जो के आयात के लिए बहुत अधिक विदेशी मुद्रा व्यय की गइ। इस योजना मे पूँजी वस्तुओ के आयात के लिए प्रतिवर्ष 323 करोड रु की विदेशी मुद्रा व्यय की गई। *प्रथम योजनावधि मे आयातो के लिए व्यय किए गए कुल विदेशी-विनिमय मे* पूँजीगत-वस्तुओ पर व्यय का भाग 17% था, जो दूसरी योजनावधि मे बढकर 30 0% हो गया। प्रथम एव द्वितीय योजना मे व्यापारिक क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार *के पदार्थों पर निम्न प्रकार विदेशी-विनिमय व्यय हुआ—*

आयातित वस्तुओ की श्रेणी	प्रथम पचवर्षीय योजना वार्षिक औसत	द्वितीय पचवर्षीय योजना वार्षिक औसत
1. उपभोग वस्तुएँ	235 करोड रु.	247 करोड रु.
2. कच्चा एव अर्द्ध-निर्मित माल	364 करोड रु.	502 करोड रु.
3 पूंजीगत-वस्तुएँ	125 करोड रु.	323 करोड रु.
योग	724 करोड रु.	1,072 करोड रु.

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि द्वितीय योजना मे विदेशी-विनिमय की अधिक राशि, पूँजीगत-वस्तुओ को आवटित की गई। द्वितीय योजना मे प्रथम योजना की अपेक्षा उपभोग-वस्तुओ के आयात म केवल 12 करोड रु. की वृद्धि हुई जबकि पूँजीगत-वस्तुओ के आयात मे 198 करोड रु की वृद्धि हुई। द्वितीय योजना

1. Third Five Year Plan, p 133

के दौरान विदेशी-विनिमय की बड़ी कठिनाइयाँ महसूस हुईं, अत: जुलाई, 1957 से आयात मे कटौती की कठोर नीति को अपनाया गया, जिसके अनुसार विदेशी-विनिमय अत्यन्त आवश्यक कार्यों के लिए ही उपलब्ध कराया गया। साथ ही, अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन और रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक आयातों के लिए भी स्वीकृति दी गई।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी विशाल विनियोजन कार्यक्रम जारी रहे एव भारी और पूँजीगत उद्योगो को प्राथमिकता दी गई। इस योजना मे आयातो हेतु कुल 5,750 करोड रु. अनुमान लगाया गया। इसमे से 1,900 करोड रु तृतीय योजना की परियोजनाओ के लिए आवश्यक मशीनें एव साज-सज्जा के लिए आवटित किए गए। शेष 3,650 करोड रु. आयात प्रतिस्थापन की सम्भावनाओ को ध्यान मे रखने के पश्चात् भी आवश्यक कच्चे माल मध्यवर्ती उत्पादन, प्रतिस्थापन के लिए पूजीगत-वस्तुएँ एव आवश्यक उपभोग वस्तुओ के आयात के लिए आवटित किए गए। इस प्रकार इस योजना मे 1,900 करोड रु की विदेशी-मुद्रा, विकासात्मक आयातो के लिए और 3 650 करोड रु परिपोषक आयातो के लिए आवटित की गई। विदेशी-विनिमय के आवटन मे निर्यात-उद्योगो के लिए आवश्यक आयातो को प्राथमिकता दी गई किन्तु आयातो की वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाले विदेशी सकट से मुक्ति के लिए आयातो के लिए सीमित मात्रा मे विदेशी-विनिमय उपलब्ध कराने की नीति जारी रही। आयात-निर्यात नीति समिति के अनुसार आयात नियन्त्रण की कार्यवाही औद्योगिक-विकास, विदेशी-विनिमय के सरक्षण और निर्यात सवर्द्धन के साधन स्वरूप अपनाई गई।

चतुर्थ योजना इस प्रकार निर्मित की गई, ताकि द्रुत आर्थिक विकास हो। इसलिए, यह योजना गत योजनाओ से भी विशाल बनाई गई। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था के वर्तमान स्तर को बनाए रखने और इस योजना मे सम्मिलित की गई नई परियोजनाओ के क्रियान्वयन के लिए मशीनें और उपकरणो की भारी मात्रा मे आयात की आवश्यकता अनुभव की गई। विदेशी ऋण सेवाओ के भुगतान के लिए भी इस योजना मे अधिक व्यवस्था की गई।

---

15 मूल्य-नीति और वस्तु-नियन्त्रण

(Price-Policy and Commodity-Control)

नियोजित अर्थव्यवस्था के विपक्ष में एक प्रमुख तर्क यह है कि इसमें स्वतन्त्र और प्रतिस्पर्द्धापूर्ण मूल्य-प्रक्रिया के अभाव में साधनों का विवेकपूर्ण आवंटन नहीं होता। वस्तुतः पूर्णरूप से नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था में समान मूल्य-प्रक्रिया नहीं होती। वहाँ मूल्य स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में मूल्यों के प्रमुख कार्य-साधनों के आवंटन तथा माँग और पूर्ति के सन्तुलन का कार्य नहीं करते। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में मूल्य-पदार्थों और सेवाओं की माँग और पूर्ति में साम्य स्थापित करने का प्रमुख कार्य करते हैं। इस प्रकार, सन्तुलन न केवल पदार्थों और सेवाओं में, बल्कि उत्पादन के साधनों के बारे में भी स्थापित किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी मूल्य पर किसी वस्तु की माँग, उसकी पूर्ति से बढ़ जाती है तो मूल्यों में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप एक ओर तो माँग कम होने की ओर उन्मुख होती है और दूसरी ओर उस वस्तु के उत्पादन की अधिक प्रेरणा मिलने से उसकी पूर्ति बढ़ती है। इस प्रकार, माँग और पूर्ति में साम्य स्थापित हो जाता है। यह साम्य उस मूल्य पर हो सकता है, जो मूल्य, मूल्य-स्तर से कुछ ऊँचा हो, किन्तु यह निश्चित रूप से उस स्तर से नीचा होता है, जो नए सन्तुलन के पूर्व था। इस प्रकार, एक बार की मूल्य वृद्धि, आगे मूल्य-वृद्धि को रोकती है और ऐसा करने पर ही मूल्य अपने आर्थिक कार्य को सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र उपक्रम वाली अर्थव्यवस्था में मूल्य एक महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। नियोजित अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की मूल्य-तान्त्रिकता नहीं होती, न ही वहाँ मूल्य साधनों के आवंटन और माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन का कार्य करते हैं। वहाँ भी मूल्य-तान्त्रिकता का अस्तित्व तो हो सकता है, किन्तु वह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के समान 'स्वतन्त्र' और 'प्रतिस्पर्द्धापूर्ण' नहीं होती। वहाँ मूल्य-निर्धारण, बाजार की शक्तियों के द्वारा नहीं होता, क्योंकि समाजवादी नियोजित व्यवस्था में स्वतन्त्र बाजार भी नहीं होते। अतः वहाँ 'प्रदत्त मूल्य' (Assigned Prices) होते हैं जिनका निर्धारण केन्द्रीय नियोजन अधिकारी द्वारा किया जाता है। पदार्थों के मूल्य ही नहीं, अपितु उत्पादन साधनों के मूल्य भी केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित किए जाते हैं, क्योंकि सरकार ही वहाँ एकमात्र

एकाधिकारी होती है और उत्पादन साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण उसी मे ही निहित रहता है। इस प्रकार पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था मे अधिक से अधिक जानबूझ कर बनाई हुई मूल्य प्रणाली होती है।

मूल्य-नीति का महत्त्व
(Importance of Price-Policy)

विकासोन्मुख राष्ट्रो की नियोजित अर्थव्यवस्था मे उचित मूल्य नीति अत्यन्त आवश्यक होती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत तो इसका और भी अधिक महत्त्व होता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र के साथ साथ स्वतन्त्र बाजार सहित विशाल निजी क्षेत्र भी क्रियाशील रहता है। व्यवस्थाओ मे सरकारी नीति, पूंजी विनियोगकर्त्ताओ और उपभोक्ताओ के व्यवहार पर मूल्यो की घटा बढी निर्भर करती है। निजी उद्यमियो या पूंजी-विनियोजको का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। उनकी रुचि सदैव मूल्यो मे वृद्धि करने मे रहती है। ये वस्तुओ के कृत्रिम अभावो का सृजन करके भी ऐसा करते है। दूसरी ओर उपभोक्ताओ का प्रयत्न अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का रहता है। उक्त दोनो वर्ग इस समस्या से सम्बन्धित आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओ पर पर्याप्त ध्यान नही देते। ऐसी स्थिति मे योजना अधिकारी को बडी तत्परता से मूल्यो पर नियन्त्रण करके और तत्सम्बन्धी उचित नीति को अपनाना आवश्यक होता है। मूल्यो की अधिक वृद्धि से न केवल सामान्य जनता को ही कठिनाई का सामना करना पडता है अपितु योजना-लक्ष्य, आय व्यय सम्बन्धी अनुमान भी गलत सिद्ध हो जाते है और योजना को उसी रूप मे नियन्त्रित करना असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत मूल्यो मे अधिक गिरावट भी उचित नही कही जा सकती क्योकि इसमे उत्पादकों की उत्पादन प्रेरणा समाप्त हो जाती है। उत्पादन वृद्धि के लिए प्रेरणाप्रद मूल्य होना भी आवश्यक है। अत मिश्रित अर्थव्यवस्था मे उचित मूल्य-नीति को अपनाया जाना आवश्यक होता है। यही नही पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था मे भी नियोजन सत्ता द्वारा विभिन्न वर्गों की वस्तुओ के मूल्य, सावधानी और विचारपूर्वक निर्धारित किए जाते हैं।

मूल्य-नीति का उपयोग सरकार द्वारा एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र के रूप मे किया जाता है। राज्य की मूल्य-नीति द्वारा अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र, उद्योग फर्म या व्यक्तिगत उत्पादक का हित या अहित हो सकता है। यदि देश की मूल्य नीति मे कुछ त्रुटि हो, तो समग्र देश को इसका भारी मूल्य चुकाना पड सकता है। मूल्य-स्तर को घटा-बढा कर आय-वितरण को भी प्रभावित किया जा सकता है, क्योकि मूल्य वृद्धि की अवधि मे समस्त पदार्थों के मूल्य एक ही अनुपात मे नही बढते। व्यक्तिगत पदार्थों के मूल्यो मे परिवर्तन को प्रभावित करके इन पदार्थों के उत्पादन और उपभोग की मात्रा को भी घटाया बढाया जा सकता है। सार्वजनिक-क्षेत्र के व्यवसायो द्वारा उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ के मूल्यो को थोडा ऊँचा रख कर आर्थिक विकास हेतु पर्याप्त साधन जुटाए जा सकते हैं। इस प्रकार नियोजित

अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-नीति बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ वी. के आर वी राव[1] के अनुसार "साम्यवादी देशो मे भी आधुनिक चिन्तनधारा से माँग और पूर्ति मे वांछनीय परिवर्तन लाने के लिए विशेषत सरकार की शक्ति और प्रशासन पर निर्भर रहने की अपेक्षा कम से कम कुछ मीमा तक मूल्य-प्रक्रिया के उपयोग के महत्त्व का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार नियोजित अर्थव्यवस्था मे भी मूल्यो का धनात्मक योगदान होता है और एक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति मे व्यक्तिगत पदार्थों की माँग और पूर्ति मे इन परिवर्तनो को लाने के लिए, जो अर्द्ध-विकास से विकास मे हस्तान्तरण के लिए इतने आवश्यक है, मूल्य प्रक्रिया का उपयोग करना होता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व गवर्नर एच वी आर. आयंगर के अनुसार 17 वर्ष पूर्व आयोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करने मे भारत का मुख्य उद्देश्य था—अधिकांश लोगो के जीवन स्तर मे उल्लेखनीय वृद्धि करना और उनके लिए जीवनयापन के विविध और अधिक समृद्ध नए मार्ग खोलना। यदि आयोजित वृद्धि का फल जनसाधारण तक पहुँचाना है, तो हमे एक मूल्य-नीति निर्धारित करनी होगी और एक सुनियोजित मूल्य ढाँचा तैयार करना होगा। मूल्य नीति का सम्बन्ध केवल किसी एक वस्तु ही नही, अपितु वस्तुओ और सेवाओ के सामान्य और सापेक्षिक मूल्यो से भी है।

मूल्य-नीति का उद्देश्य
(Aims or Objectives of Price Policy)

विकासशील नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे, मूल्य नीति निम्नलिखित उद्देश्यो पर केन्द्रित होनी चाहिए—

(1) योजना की प्राथमिकताओ एव लक्ष्यो के अनुसार मूल्यो मे परिवर्तन होने देना।
(2) न्यून आय वाले उपभोक्ताओ द्वारा उपभोग-वस्तुओ के मूल्यो मे अधिक वृद्धि को रोकना।
(3) मूल्य-स्तर मे स्थिरता बनाए रखना।
(4) मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्तियो पर रोक लगाना और मुद्रा-स्फीति के दोषो को बढ़ने से रोकना।
(5) उत्पादको हेतु प्रेरणाप्रद मूल्यो को बनाए रखना।
(6) मुद्रा-प्रसार और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे उचित सम्बन्ध बनाए रखना।

मूल्य-नीति और आर्थिक विकास
(Price Policy and Economic Development)

मूल्य वृद्धि आवश्यक—सामान्यत यह माना जाता है कि आर्थिक विकास की अवधि मे मूल्य-वृद्धि न केवल अपरिहार्य है, अपितु अनिवार्य भी है। विकास के

1. *Dr V K R V Rao* Essays in Economic Development, p 145

मूल्यो मे ऊपर की ओर दबाव तो निहित ही है क्योंकि नियोजन हेतु भारी मात्रा मे पूँजी निवेश किया जाता है। इससे तुरन्त मौद्रिक आय बढ जाती है, किन्तु उसके अनुरूप वस्तु उत्पादन नही बढता, क्योंकि किसी परियोजना के प्रारम्भ करने के एक अवधि पश्चात् ही उससे उत्पादन आरम्भ होता है। अत मौद्रिक आय की अपेक्षा वस्तुओ एव सेवाओ का उत्पादन पिछड जाता है और मूल्य बढ जाते हैं। यह मूल्य-वृद्धि विनियोग मात्रा और परियोजनाओ के उत्पादन आरम्भ करने मे लगने वाले समय पर निर्भर करती है। अधिक मूल्यो से उत्पादको को भी प्रेरणा मिलती है। आर्थिक नियोजन का उद्देश्य जन साधारण का जीवन स्तर उच्च बनाना है। अत श्रमिको के जीवन स्तर को उच्च बनाने के लिए उनकी मजदूरी और अन्य सुविधाओ मे वृद्धि की जाती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे श्रम-प्रधान तकनीकें अपनाए जाने के कारण लागत मे मजदूरी का भाग अधिक होता है। अत मजदूरी बढ जाने से लागतो और मूल्यो का बढ जाना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार यह माना जाता है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से मूल्यो म थोडी वृद्धि हितकर ही नही, अनिवार्य भी है, क्योंकि अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास म एक बडी बाधा, बचत के अभाव के कारण उपस्थित होती है। विदेशो से पर्याप्त मात्रा म बचत की प्राप्ति नही होने पर देश मे ही 'विवशतापूर्वक बचत' (Forced Saving) के द्वारा साधन प्राप्त किए जाते है। ऐच्छिक बचत मात्रा न्यूनतम उपभोग स्तर और आय मे नकारात्मक अन्तर या स्वल्प अन्तर के कारण बहुत थोडी होती है। मूल्य-वृद्धि आय वितरण को उच्च आय वाले वर्ग के पक्ष मे पुनर्वितरण करके बचत वृद्धि करने मे सहायता करती है, क्योंकि इस वर्ग की बचत करने की सीमान्त-प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume) अधिक होती है। परिणामस्वरूप साधनो को विकास हेतु अधिक गतिशील बनाया जा सकता है।

मूल्य वृद्धि के पक्ष मे यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यह विनियोग के लिए उचित वातावरण का निर्माण करती है, किन्तु इस सम्बन्ध मे यह सब मुख्यत इस बात पर निर्भर करता है कि मूल्य-वृद्धि की गति क्या है? यदि मूल्य तीव्रता से बढ रहे हो और अति मुद्रा प्रसार का भय हो, तो विनियोक्ता हतोत्साहित होगे। कम से कम सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय परियोजनाएँ तो नही अपनाई जाएँगी; हाँ बहुत कम मूल्य-वृद्धि की आशा इस दृष्टि से विकास के लिए हितकर होगी।

मूल्य वृद्धि के पक्ष मे एक तर्क यह भी है कि मुद्रा-प्रसार उन मौद्रिक आय का सृजन करता है, जो पहले नही थी। इससे देश के सुषुप्त ससाधनो, विशेषत जन-शक्ति को गतिशील बनाने और इन्हे उत्पादक कार्यों मे नियोजित करने मे सहायता मिलती है। इससे आर्थिक विकास मे तीव्रता आती है।

मूल्य-वृद्धि आवश्यक नहीं—किन्तु अनेक विचारक, विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे विकास हेतु मूल्य-वृद्धि आवश्यक नही मानते। इस मत के समर्थन मे निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं—

(1) बचत पर विपरीत प्रभाव—मूल्य-वृद्धि से बचत पर विपरीत प्रभाव

पड़ना है। निरन्तर मूल्य वृद्धि अधिकांश व्यक्तियों की, बचत की इच्छा और योग्यता पर विपरीत प्रभाव डालती है। मूल्य-वृद्धि देश की मुद्रा और चलन में जनता के विश्वास को डगमगा देते हैं। देश की अधिकांश बचत करने वाले अपनी बचत को बैंक-जमा, बीमा-पॉलिसियों या सरकारी-प्रतिभूतियों (Government Securities) के रूप में रखते हैं। मूल्य वृद्धि अथवा मुद्रा-प्रसार के कारण, जब इन लोगों के इस रूप में रखी हुई मुद्रा मूल्य घटता जाता है तो व्यक्तियों में बचत के स्थान पर व्यय करने की इच्छा बलवती हो उठती है, या फिर वे अपनी बचत को सोना, जमीन-जायदाद या विदेशी-विनिमय क्रय करने में उपयोग में लाते हैं। इन दोनों ही स्थितियों में पूँजी निर्माण को धक्का लगता है। अधिकांश अपनी बचत को विदेशों में लगाते हैं।

मूल्य वृद्धि से जिस प्रकार बचाने की इच्छा पर बुरा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार बचाने की क्षमता भी कुप्रभावित होती है। मुद्रा प्रसार से कृषकों, औद्योगिक श्रमिकों छोटे व्यापारियों और मध्यवर्ग की वास्तविक आय में भारी कमी होती है और उनका व्यय आय से भी अधिक बढ़ जाता है। इसके विपरीत मूल्य स्थायित्व से बचत मात्रा बढ़ती है। कम से कम वे ऋणात्मक बचत को समाप्त करने या उन्हें कम करने में तो अवश्य सहायक होती है। यह एक तथ्य है कि मूल्य वृद्धि के समय में राष्ट्रीय आय में पारिवारिक क्षेत्र की बचत का भाग घट जाता है किन्तु मूल्य-स्थायित्व की स्थितियों में इस अनुपात में तीव्र वृद्धि होती है।

(ii) विकास की दृष्टि से लाभदायक विनियोग नहीं—*मुद्रा प्रसार से सदैव ही* लाभ और लाभदायक विनियोगों में वृद्धि हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। चिली के अनुसार वहाँ सन् 1950 और 1957 की अवधि में 10 गुनी मूल्य-वृद्धि हुई, किन्तु *स्थिर-पूँजी में विनियोगों की मात्रा गिर गई।* बहुधा, मूल्य-वृद्धि विनियोगों को प्रोत्साहित करती है किन्तु इस समय इस बात की बहुधा सम्भावना होती है कि विनियोक्ता विवेकपूर्ण एवं दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विनियोग सम्बन्धी निर्णय नहीं ले पाते, तुरन्त फलदायक और अधिकाधिक लाभदायक परियोजनाएँ ही बहुधा हाथ में ली जाती हैं जो दीर्घकालीन आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इस प्रकार ये विनियोग आर्थिक विकास की दृष्टि से, अधिक लाभप्रद नहीं हो पाते।

(iii) विदेशी विनिमय पर विपरीत प्रभाव—आर्थिक विकास की गति प्रारम्भ में बहुत कुछ विदेशी विनिमय साधनों पर निर्भर करती है। यह विदेशी-विनिमय या तो आयातों की अपेक्षा अधिक निर्यात करके अथवा विदेशी-पूँजी के आयात द्वारा उपलब्ध होता है। मूल्य-वृद्धि से विदेशी विनिमय के इन दोनों ही स्रोतों पर कुप्रभाव होता है। मूल्य-वृद्धि से देश में वस्तुओं की उत्पादन-लागत बढ़ जाती है और इससे निर्यात हतोत्साहित होते हैं। इससे विदेशी-विनिमय का अभाव है और ऐसी स्थिति में विनिमय नियन्त्रण, विदेशी विनिमय में सट्टे की प्रवृत्ति और विदेशी विनिमय-दर में गिरावट आती है, परिणामस्वरूप, निजी विदेश-पूँजी भी हतोत्साहित होती है।

(iv) **आर्थिक विषमता मे वृद्धि**—निरन्तर मूल्य-वृद्धि से आर्थिक विषमता मे वृद्धि होती है क्योकि इस समय लाभो में अधिक वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति मे, मूल्य-वृद्धि कतिपय व्यक्तियो को ही धनवान बनाती है और अधिकाँश को निर्धनता की ओर ले जाती है। अत आर्थिक विकास की वित्त-व्यवस्था करने का मुद्रा-प्रसारिक पद्धति से सामाजिक तनाव और सघर्ष बढता है। यदि आर्थिक विकास का आशय आय के न्यूनतम स्तर पर रहने वाले लोगो की सख्या में कमी करना है तो तीव्र मूल्य-वृद्धि ऐसे आर्थिक विकास के कदापि अनुकूल नही है।

(v) **अनेक देशो के उदाहरण**—यदि आर्थिक विकास का आशय राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से लें तो भी मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास में अनिवार्य रूप से सहायक नही है। मूल्य-वृद्धि के बिना भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सकती है और अधिक वृद्धि होने पर भी राष्ट्रीय आय में बहुत कम वृद्धि हो सकती है। उदाहरणार्थ भारत की प्रथम योजना मे उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो में 5% की कमी हुई, किन्तु राष्ट्रीय आय 18 4% बढी। इसके विपरीत, द्वितीय योजना मे उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे 29·3% की वृद्धि हुई, जबकि राष्ट्रीय आय मे 21 5% की ही वृद्धि हुई। तृतीय योजना में तो मूल्य 36% बढे, किन्तु राष्ट्रीय आय में केवल 14% की ही वृद्धि हुई। अत मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास की कोई आवश्यक शर्त नही हो सकती। पश्चिमी जर्मनी, जापान, कनाडा, इटली आदि के अनुभवो से भी यही बात सिद्ध होती है। सन् 1953-59 की अवधि मे पश्चिमी जर्मनी की राष्ट्रीय आय मे 12% वार्षिक दर से वद्धि हुई, किन्तु इसी अवधि में मूल्यो में केवल 1% वार्षिक की दर से वृद्धि हुई। जापान मे 1950 और 1959 की उक्त अवधि मे राष्ट्रीय आय 12 3% वार्षिक की दर से बढी, किन्तु इस समस्त अवधि मे मूल्य केवल 2% ही बढ पाए। इटली मे तो इस अवधि मे मूल्य स्तर मे 1 प्रतिशत की कमी आई, किन्तु फिर भी राष्ट्रीय आय 4 प्रतिशत बढ गई। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार "युद्धोत्तर वर्षों मे अल्प विकसित देशो मे औसत रूप से प्रति व्यक्ति उत्पादन मे 4% की वृद्धि उस अवधि मे हुई। जब उन्होने अपने यहाँ मौद्रिक स्थायित्व बनाए रखा। इन देशो में मुद्रा-प्रसार के समय उत्पादन में केवल प्रथम अवधि की अपेक्षा आधी ही वृद्धि हुई। तीव्र मुद्रा-प्रसार के समय तो उत्पादन-वृद्धि की प्रवृत्ति उससे भी कम रही।"[1]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मूल्य-वृद्धि आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य नही है। किन्तु फिर भी अधिकाँश लोगो का मत है कि आर्थिक विकास को तीव्र गति देने के लिए मूल्यो मे अत्यल्प वृद्धि (Gently or Moderately Increasing Prices) लाभदायक है। मूल्यो मे 1 या 2% वृद्धि या 'रेंगता हुआ मुद्रा प्रसार' (Creeping Inflation) अपरिहार्य है। किन्तु, इस बात की सावधानी बरतना

1 Yojna November, 10 1968, p 12

आवश्यक है कि यह 'रेंगता हुआ मुद्रा प्रसार' (Creeping Inflation) कूदते हुए और उछलते हुए (Galloping Inflation) मुद्रा-प्रसार मे परिवर्तित नही हो जाए। इस प्रकार की स्थिति होने पर सब आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। भारत जैसे विकासोन्मुख देशो मे इस प्रकार का भय अवश्यम्भावी है, जहाँ उद्योग और मुख्य रूप से भारी तथा आधारभूत उद्योग कृषि की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से विकसित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति मे खाद्यान्नो, उपभोक्ता-वस्तुओ और औद्योगिक कच्चे माल की कमी उत्पन्न होकर, इनके मूल्य तेजी से बढ सकते हैं। अन्य कई वस्तुओ और अन्य सेवाओ के मूल्य भी इन वस्तुओ के मूल्यो पर निर्भर करते हैं, अत मजदूरी और अन्य पदार्थों के मूल्य बढेंगे। इस प्रकार, मजदूरी मूल्य वृद्धि (Wage-Price Spiral) चक्र चलता रहेगा, योजनाओ के अनुमान गलत हो जाएंगे और विकास की आशाएँ धूमिल हो जाएँगी।

इस प्रकार एक ओर यह मत व्यक्त किया जाता है कि मूल्य-प्रक्रिया को उत्पादन-वृद्धि करने और उत्पादन सरचना को वांछित दिशा निर्देशन के उपयोग किए जाने के लिए मूल्य नीति मे कुछ लोच होनी चाहिए। दूसरी ओर, आर्थिक विकास मे निहित भारी पूँजी विनियोग के कारण उत्पन्न मुद्रा प्रसारिक-प्रवृत्तियाँ, मुख्य रूप से, आवश्यक उपभोग वस्तुओ के मूल्यो को बढने से रोकने के लिए मूल्य-स्थायित्व वांछनीय है। किन्तु, दोनो ही स्थितियो मे आधारभूत वांछनीय बात यह होनी चाहिए कि बुनियादी उपभोक्ता-वस्तुओ और पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि वांछनीय है। जो मूल्य-नीति इस उद्देश्य की पूर्ति करे वही आर्थिक विकास के लिए उचित नीति है। डॉ वी के आर. वी राव के मतानुसार "जिस सीमा तक मूल्यो वृद्धि उत्पादन-वृद्धि नही करे, उस सीमा तक मूल्य-वृद्धि अनुचित है और इसे रोकने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किए जाने चाहिए। किन्तु जिस सीमा तक मूल्य-वृद्धि उपभोग या अनावश्यक दिशाओ म साधनो के उपयोग में कमी लाती है, यह वांछनीय है और इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। मूल्य-वृद्धि उत्पादन-वृद्धि नही करने पर भी उस समय स्वीकार्य है, जबकि यह वांछनीय क्रियाओ में माँग का पुन निर्देशन, उत्पादक-शक्तियो का पुनर्वितरण और उत्पादन का नवीनीकरण करे।"

मूल्य-नीति के दो पहलू
(Two Aspects of Price Policy)

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक विकास के लिए सहायक उचित मूल्य-नीति अपनाए जाने की आवश्यकता है। डॉ वी. के. आर वी राव के अनुसार इस नीति के वृहद् और सूक्ष्म (Macro and Micro) दोनो पहलू होने चाहिए।

वृहद् पहलू (Macro Aspect)—वृहद् पहलू में, मूल्य-नीति, मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आर्थिक विकास में भारी विनियोगो के कारण एक ओर तो समाज के सीमित साधनो की माँग बढने से मूल्य-वृद्धि होती

है, दूसरी ओर रोजगार-वृद्धि के परिणामस्वरूप, व्यक्तियों की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है जिसका परिणाम व्यय में वृद्धि के कारण मूल्य-वृद्धि होता है। मूल्य-वृद्धि से रोजगार-आय और मांग पुन बढती है जिसके कारण पुन. मूल्य बढते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ और आधारभूत विनियोग वस्तुओ के उत्पादन को बढाया जाना आवश्यक है। विनियोग वस्तुओ के उत्पादन में वृद्धि, दीर्घकाल में, अधिक प्रभावशाली होती है, जबकि उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि मूल्य-वृद्धि को रोकने का तात्कालिक उपाय सिद्ध होती है। इसके विपरीत अनावश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि या साधनो के अनावश्यक उपभोक्ता और पूँजीगत वस्तुओ के निर्माण हेतु उपयोग मुद्रा-प्रसारिक-प्रवृत्तियो को बल देता है, क्योकि साधन सीमित होते है। इस प्रकार, उनका मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए समुचित उपयोग नही हो पाता, किन्तु, विकासमान अर्थ-व्यवस्था से ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अत. कुछ मौद्रिक और राजकोषीय उपायों की आवश्यकता होती है, जो आय तथा आय के उपयोग को सुप्रभावित करके वांछित दिशा प्रदान कर सके।

भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की रिपोर्ट के अनुसार मूल्य-नीति के प्रमुख अग मौद्रिक और राजकोषीय-अनुशासन है। "मौद्रिक नीति द्वारा व्यय और तत्जनित आय को गलत व्यक्तियो के हाथो में जाने से रोकना चाहिए।" इसके द्वारा वस्तुओ का सट्टे के लिए सग्रह और उन्हे छिपाकर रखने की प्रवृत्ति पर काबू पाना चाहिए। इस सब में उचित 'ब्याज-दर की नीति' और 'चयनात्मक साख नियन्त्रण' (Selective Credit Control) के द्वारा सहायता ली जानी चाहिए। मौद्रिक-नीति के साथ-साथ ही राजकोषीय-नीति का उपयोग भी किया जाना चाहिए। मौद्रिक-नीति बैंको आदि के द्वारा अतिरिक्त क्रय-शक्ति के सृजन को नियमित और नियन्त्रित करती है, तो राजकोषीय नीति में करारोपण (Taxation) इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे व्यय किए जाने के लिए जन-साधारण के पास, विशेष रूप से ऐसे लोगो के पास जो अपव्यय करें, आय कम हो जाए। इस उपभोग को सयमित और सीमित करने तथा बचत को अधिक प्रभावकारी ढग से गतिशील बनाने में समर्थ होना चाहिए। इस प्रकार मौद्रिक और राजकोषीय दोनो नीतियो का उद्देश्य जनता के हाथ में कम आय और क्रय-शक्ति पहुँचाना तथा इस आय में से भी अधिकाधिक बचत की प्रेरणा देना होना चाहिए। प्रो वी के आर. वी. राव ने वृहत्-नीति (Macro Policy) के कार्य-वहन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मूल्यो के सम्बन्ध में वृहत् नीति व्यक्तिगत मूल्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में ही नही, अपितु अप्रत्यक्ष रूप से आय सृजन और आय के उपयोग इन दो चल तत्वो पर अपने प्रभाव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सचालित होती है, जो मूल्यो में समस्त परिवर्तनो के लिए मौद्रिक-सरचना को निर्धारित करते हैं।"[1] इस नीति का सार

1 *Dr. V K R V Rao* : Essays in Economic Development, p 151.

अतिरिक्त आय के सृजन और उसके व्यय को प्रतिबन्धित करना है, जिससे माँग कम हो और मूल्य वृद्धि न हो पाए।

सूक्ष्म पहलू (Micro Aspects)—मूल्य-नीति के इस पहलू के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत विनियोग-वस्तुओं और आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं के उत्पादन में अधिकाधिक वृद्धि की जाए, ताकि वह अतिरिक्त विनियोजन के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई आय एवं उपभोग व्यय के अनुरूप हो जाए। इस उद्देश्य से नियोजन अधिकारी को इस प्रकार की नीति अपनानी पड़ेगी, ताकि एक ओर साधनों का उपयोग आर्थिक विकास के लिए आधारभूत विनियोजन वस्तुओं और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में लगे तथा दूसरी ओर इन वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का उपयोग हतोत्साहित हो अर्थात् प्रथम स्थिति में मूल्य-तान्त्रिकता का उपयोग 'उत्तेजक' (Stimulant) के रूप में और द्वितीय स्थिति में 'अवरोधक' (Deterrent) के रूप के किया जाए। परन्तु इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि ऊँचे मूल्यों के रूप में मूल्य-तान्त्रिकता का अनावश्यक वस्तुओं के उपभोग को हतोत्साहित करने के रूप में उपयोग से साधन इन आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की ओर आकर्षित नहीं होने लगें। इसी प्रकार, ऊँचे मूल्यों के रूप में मूल्य-तान्त्रिकता का आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में 'उत्तेजक' के रूप में उपयोग का परिणाम यह नहीं होना चाहिए कि इससे वांछित विनियोग वस्तुओं की माँग में कमी की प्रवृत्ति और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओं में मुद्रा-प्रसारिक लागत-प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाए। ऐसा होने पर मूल्य-वृद्धि द्वारा प्रोत्साहन तथा हतोत्साहन के परिणामस्वरूप वांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकेगी। अतः सूक्ष्म पहलू का इस प्रकार से उपयोग किया जाना चाहिए ताकि कम से कम अवांछनीय बातों के साथ अधिकतम वांछनीय परिणाम प्राप्त किए जा सकें।

इसके लिए अनावश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि की जानी चाहिए, किन्तु साथ ही, इस क्षेत्र में ऊँचे कर लगाए जाने चाहिए और साधनों का नियन्त्रित आवटन किया जाना चाहिए। आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि के लिए मूल्य-वृद्धि द्वारा प्रोत्साहन देने की अपेक्षा इनका उत्पादन सार्वजनिक-क्षेत्र में किया जाना चाहिए। जहाँ यह सम्भव नहीं हो वहाँ भी उत्पादन-वृद्धि के लिए ऊँचे मूल्यों की प्रेरणा की अपेक्षा करों में रियायत देना अधिक श्रेयस्कर है। जहाँ कर सम्बन्धी रियायतों से भी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता हो वहाँ विक्रय-अनुदान (Sales Subsidies) दिए जाने चाहिए। आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए इनकी मूल्य-वृद्धि से बचना चाहिए और इसके स्थान पर इनकी उत्पादन-लागत को कम करने के लिए उत्पादन में प्रयुक्त आदानों (Inputs) के मूल्य कम किए जाने चाहिए, किन्तु यदि मूल्यों में वृद्धि से किसी प्रकार बचना सम्भव नहीं हो तो मूल्य-नियन्त्रण और वितरण राज्य को अपने हाथों में ले लेने चाहिए और जनता को इन आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं की एक न्यूनतम आवश्यक मात्रा स्थिर मूल्यों पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए और

इस हानि की पूर्ति, न्यूनतम आवश्यक मात्रा से अतिरिक्त पूर्ति के मूल्यो मे वृद्धि द्वारा की जानी चाहिए।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-नीति के सिद्धान्त (Principles of Price-Policy in Mixed Economy)

आर्थिक विकास और नियोजन के सन्दर्भ मे मूल्य-नीति से सम्बन्धित उपरोक्त सैद्धान्तिक विवेचन के आधार पर डॉ वी. के आर. वी. राव ने मूल्य-नीति सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्तो का निरूपण किया है—

1. विकासार्थ नियोजन मे भारी पूँजी विनियोग के कारण जनता की आय मे वृद्धि होती है। आय की इस वृद्धि के अनुरूप ही उत्पादन-वृद्धि होनी चाहिए अन्यथा मूल्य-वृद्धि होगी। इस उत्पादन मे वृद्धि का जितना भाग अर्द्ध-निर्मित अवस्था मे हो या विक्रय के लिए उपलब्ध नही हो, आय के उसी भाग के अनुरूप नकद सग्रह (Cash holdings) मे वृद्धि होनी चाहिए। सक्षेप मे, किसी ऐसे व्यय की स्वीकृति नही दी जानी चाहिए जिससे या तो उत्पादन मे अथवा नकद सग्रह मे वृद्धि न हो।

2 अर्थ-व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र या समूह की आय मे वृद्धि के अनुरूप उस क्षेत्र या समूह के उत्पादन मे वृद्धि अथवा अन्य क्षेत्रो या समूह से हस्तान्तरण होना चाहिए अन्यथा मूल्य-वृद्धि की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाएगी।

3 विनियोगो मे वृद्धि के अनुरूप ही बचत मे वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। यदि यह सम्भव नही हो तो विनियोगो मे भावी वृद्धि को बचत मे सम्भावित वृद्धि तक सीमित कर देना चाहिए।

4 बुनियादी उपभोक्ता-वस्तुओ के मूल्यो को बढने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिए, भले ही सामान्य मूल्य-स्तर को रोकने का प्रयत्न आवश्यक नही है, क्योकि मूल्य-स्तर मे प्रत्येक वृद्धि मुद्रा-प्रसारिक नही होती। केवल आधारभूत उपभोक्ता-वस्तुओ की मूल्य-वृद्धि ही लागत-मुद्रा-प्रसार (Cost-inflation) के द्वारा तीव्र मूल्य वृद्धि को जन्म देती है।

5 आर्थिक विकास की अवधि मे बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओ की माँग की पूर्ण सम्भावना होती है। अत इन वस्तुओ के मूल्यो को बढने से रोकने के प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं, जबकि इन वस्तुओ के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो। यदि इन वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हेतु मूल्य-वृद्धि को प्रोत्साहन देना आवश्यक हो तो अल्पकालीन नीति के रूप मे इसका अवलम्बन किया जा सकता है। किन्तु इस बीच मूल्य स्थिर रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'मूल्य-नियन्त्रण' और 'नियन्त्रित-वितरण' आदि उपायो को भी अपनाया जाना चाहिए।

6. जब तक अर्थ-व्यवस्था स्वय-स्फूर्त अवस्था मे नही पहुँच जाए, तब तक विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-वृद्धि की प्रवृत्ति जारी रहती है। किन्तु कभी-कभी से प्राकृतिक आपदाओ या कमी वाले क्षेत्रो पर कम ध्यान दिए जाने के कारण अन्य कारणो से यह प्रवृत्ति बहुत दृढ हो जाती है और मूल्यो मे विभिन्न मौसमो,

क्षेत्रों या प्रदेशों में भारी तेजी आ जाती है। इस प्रकार की समस्याओं के निराकरण हेतु 'बफर स्टॉक' (Buffer Stock) का निर्माण किया जाना चाहिए। 'बफर स्टॉक' द्वारा सरकार अल्पकाल में पूर्ति को माँग के अनुरूप समायोजित करने में सफल होती है। इस प्रकार, इनके द्वारा अल्पकालीन और अस्थायी वृद्धियों को रोका जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के पदार्थों से सम्बन्धित मूल्य-नीति

कृषि पदार्थ—अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में आर्थिक विकास के लिए उचित कृषि पदार्थ सम्बन्धी नीति का बड़ा महत्त्व होता है। इन पदार्थों के मूल्य माँग और पूर्ति की स्थितियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि-जन्य उत्पादन का भाग लगभग 50% होता है। अत देश में सामान्य मूल्य-स्तर पर कृषि पदार्थों के मूल्य परिवर्तनों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। साथ ही, भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशों में उपभोक्तागण अपनी आय का अधिकांश भाग खाद्य-पदार्थों पर व्यय करते हैं जो मुख्यतः कृषि-जन्य होते हैं। जब इन पदार्थों के मूल्यों में अधिक वृद्धि होती है, तो व्यक्तियों में असन्तोष बढ़ता है। मजदूर अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए संगठित होते हैं। महँगाई-भत्ते में वृद्धि के लिए दबाव बढ़ जाता है। कई उद्योगों के लिए कच्चा माल भी कृषि द्वारा प्राप्त होता है। इनके मूल्य बढ़ने से इन उद्योगों की लागत बढ़ जाती है और देश-विदेश में इनकी प्रतिस्पर्द्धा-शक्ति कम हो जाती है। अत इन विकासशील देशों की योजनाओं की सफलता के लिए कृषि-पदार्थों के मूल्यों में स्थायित्व और तीव्र वृद्धि को रोकना आवश्यक है। साथ ही, मूल्य इतने कम भी नहीं होने चाहिए जिससे उत्पादकों का प्रोत्साहन समाप्त हो जाए। इस दृष्टि से बहुधा कृषि-पदार्थों के अधिकतम और न्यूनतम मूल्य निर्धारित कर देने चाहिए। कृषकों को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यकतानुसार 'Price Support' की नीति को अपनाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन पदार्थों के मूल्यों में अधिक उतार-चढ़ाव नहीं हो। इन सब दृष्टिकोणों से कृषि-पदार्थ सम्बन्धी मूल्य-नीति बहुत व्यापक होनी चाहिए जिसमें उत्पादन से लेकर वितरण तक की उचित व्यवस्था सन्निहित हो। उत्पादन वृद्धि के प्रयत्न किए जाने चाहिए और इस हेतु भूमि-सुधार, प्रकृति पर कृषि की निर्भरता में कमी तथा उर्वरक, यन्त्र, साख आदि आवश्यक आदानों की व्यवस्था की जानी चाहिए। मुख्य कृषि पदार्थों, विशेष रूप से खाद्यान्नों की न्यूनतम और अधिकतम मूल्य निर्धारित कर देने चाहिए। न्यूनतम मूल्य इस प्रकार के होने चाहिए ताकि कृषकों में अधिक उत्पादन की प्रेरणा बनी रहे और अधिकतम मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे उपभोक्ताओं पर अधिक भार नहीं पड़े। कृषि सम्बन्धी मूल्य-नीति का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व सरकार द्वारा 'बफर स्टॉक' का विस्तृत पैमाने पर निर्माण है। यदि स्वदेश में उत्पादन कम हो तो उचित मूल्य पर इन पदार्थों को विदेशों से आयात की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। कृषि पदार्थों के उचित वितरण हेतु थोक-स्तर पर राज्य व्यापार का विस्तार, खुदरा

बिक्री के लिए स्थान-स्थान पर सहकारी और सरकारी वितरण एजेन्सियो की स्थापना की जानी चाहिए। संक्षेप मे कृषि पदार्थों की मूल्य-नीति से सम्बन्धित निम्नलिखित बातो पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(1) मूल्य-नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे उत्पादक और उपभोक्ता दोनो पक्षो को लाभ हो।

(2) मूल्यो मे भारी उतार-चढाव को रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(3) विभिन्न कृषि पदार्थों के मूल्यो मे सापेक्ष समानता रहनी चाहिए।

(4) कृषि पदार्थों और औद्योगिक पदार्थों के मूल्यो मे भी समानता रहनी चाहिए।

(5) कृषि पदार्थों के उत्पादन-वृद्धि के सब सम्भव उपाय किए जाने चाहिए।

(6) कृषि पदार्थों के वितरण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसमे राज्य-व्यापार, सहकारी तथा सरकारी एजेन्सियो का विस्तार किया जाना चाहिए।

औद्योगिक वस्तुओ का मूल्य—अनावश्यक उपभोक्ता पदार्थ, जो विलासिता और आरामदायक वस्तुओ की श्रेणियो मे आते हैं, का मूल्य निर्धारण बाजार-तान्त्रिकता पर छोड दिया जाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो इनमे भी मूल्य-वृद्धि की स्वीकृति दी जानी चाहिए, किन्तु साथ ही ऊँचे कर और साधनो का नियन्त्रित वितरण किया जाना चाहिए। किन्तु औद्योगिक कच्चे माल जैसे सीमेन्ट, लोहा एव इस्पात, कोयला, रासायनिक पदार्थ आदि के मूल्यो को नियन्त्रित किया जाना चाहिए। औद्योगिक निर्मित वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि को रोकने के लिए मूल्य नियमन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्बन्धित मूल्य-नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे मुद्रा प्रसारित प्रवृत्ति उत्पन्न नही हो। साथ ही, इनका उचित उपयोग और वितरण हो। घरेलू उपयोग को कम करने, निर्यात में वृद्धि करने, उत्पादन और विनियोगो के प्रोत्साहन के लिए औद्योगिक पदार्थों के मूल्यो मे तनिक वृद्धि की नीति को स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु साथ ही, मूल्य ऐसे होने चाहिए जिनसे उत्पादको को अत्यधिक लाभ (Excessive Profit) नहीं हो। वस्तुत औद्योगिक पदार्थों के क्षेत्र मे भी उत्पादक और उपभोक्ता दोनो वर्गों के हितो की रक्षा होनी चाहिए। कृषि-क्षेत्र मे न्यूनतम मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योकि कृषको की मोल भाव करने की शक्ति कम होती है। इसके विपरीत औद्योगिक क्षेत्र मे अधिकतम मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। फिर भी, न्यूनतम मूल्यो को भी निश्चित करना होगा। निर्यात योग्य पदार्थों के मूल्य, घरेलू उपभोक्ताओ के लिए अधिक रखे जा सकते हैं, जिससे उनका आन्तरिक उपभोग कम हो। साथ ही, बिना हानि उठाए उसे विदेशियो को सस्ते मूल्यो पर बेचा जा सके। भारत मे चीनी के मूल्य निर्धारण की नीति इसी प्रकार की रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का मूल्य[1]—निजी व्यक्तियो द्वारा उत्पादित

1. पी एल गुप्ता आर्थिक समीक्षा, सार्वजनिक क्षेत्र विशेषांक, 15 अगस्त, 1969, पृष्ठ 25.

वस्तुओं और सार्वजनिक उपक्रमो द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण के लिए अपनाई गई नीतियाँ भिन्न हो सकती हैं। निजी-उपक्रमो मे मूल्य-निर्धारण इस प्रकार होना चाहिए जिससे कर-सहित उत्पादन लागत निकलने के पश्चात् इतना लाभ प्राप्त हो ताकि पूँजी तथा उपक्रम आकर्षित हो सकें। किन्तु सरकारी उपक्रमों के समक्ष मूल्य-निर्धारित करते समय व्यावसायिक दृष्टिकोण की अपेक्षा जन-कल्याण का ध्येय प्रमुख होता है। इसीलिए, सार्वजनिक उपक्रमो की स्थिति बहुधा एकाधिकारिक होते हुए भी इनके मूल्य कम हो सकते हैं क्योंकि सरकार का विचार इस रूप मे उपभोक्ता को रियायत देना हो सकता है। किन्तु विभिन्न विचारको मे इस बात पर मतैक्य नहीं है कि सार्वजनिक उपक्रमो की मूल्य-नीति लाभ के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए अथवा नही।

मूल्य-नीति से उपक्रम को लाभ—कुछ विचारको के मतानुसार सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे उन पर विनियोजित पूँजी पर पर्याप्त लाभ हो सके। इससे जहाँ सरकार को विकास के लिए पर्याप्त धनराशि प्राप्त हो सकेगी, वहाँ मुद्रा प्रसारित प्रवृत्तियो के दमन मे भी सहायता मिलेगी। इन उपक्रमो पर हानि पर चलाने से मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है, क्योंकि इस प्रकार कम मूल्य वसूल करने से जनता के पास व्यय करने के लिए अधिक राशि रह जाती है। साथ ही, राजकोष मे कम राशि पहुँचती है, जिसकी पूर्ति जनता से अधिक कर वसूल कर की जाती है। इन उपक्रमो द्वारा उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ कम मूल्य पर बेचने से इसका बोझ सामान्य जनता पर पड़ता है, जबकि उसका लाभ उस वस्तु का उपभोग करने वाले कुछ व्यक्तियों को ही मिलता है। उपभोक्ताओं को एक वर्ग के रूप मे इस प्रकार रियायत देना उपयुक्त नहीं है। अत इन उपक्रमो द्वारा उत्पादित पदार्थों और सेवाओं म मूल्य इतने होने चाहिए जिससे उन्हे सन्तोषप्रद लाभ मिल सके। इससे देश की विकास योजनाओं के लिए सहज ही साधन उपलब्ध किए जा सकते हैं, यदि किन्ही कारणो से किसी उद्योग को आर्थिक सहायता देना भी हो तो भी लाभ-हानि का लेखा-जोखा स्पष्ट रूप से दिखाया जाना चाहिए और उपक्रम को दी गई सहायता को अलग दिखाया जाना चाहिए।

लाभ-रहित स्थिति मे भी सचालन—उक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन उपक्रमो की कुशलता का मापदण्ड इनके द्वारा प्राप्त लाभ है, किन्तु ऐसा अनिवार्य नही है। नाभा गोपालदास के मतानुसार "एक सार्वजनिक व्यवसाय हानि पर चलाया जा रहा है, किन्तु वह सस्ती गैस, विद्युत, यातायात या डाक व्यय के रूप मे हानि से भी अधिक सामाजिक कल्याण मे वृद्धि कर रहा हो।" सार्वजनिक व्यवसायो के लिए यह वाँछनीय है कि वे स्वावलम्बी हो किन्तु व्यापक सामाजिक हितो की दृष्टि से कम मूल्य की नीति अपनाकर उन्हे 'नियोजित हानि' पर भी सचालित किया जाना अनुचित नहीं है। वस्तुत सरकार का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं अपितु अधिकाधिक सामाजिक कल्याण होता है। अत सरकार द्वारा उत्पादित ऐसी वस्तुओ और सेवाओं

के मूल्य कम लिए जाने चाहिए जिनका उपयोग मुख्यत समाज के निर्धन, शोषित और पीडित व्यक्ति करें।

किन्तु इसका यह आशय कदापि नही है कि सरकारी उपक्रम कुशलतापूर्वक नही सचालित किए जाने चाहिए। उपक्रम की कुशलता एक अन्य वस्तु है जिसका मूल्य-निर्धारण से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। उत्पादन लागत से कम मूल्य पर इनकी वस्तुएँ विक्रय किए जाने पर भी उपक्रम को निजी क्षेत्र की ऐसी ही इकाई की कुशलता के स्तर पर सचालित करने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। लाभ-रहित स्थिति मे सचालन के समर्थक इस तर्क को भी सन्तोषप्रद नही मानते कि लाभ-मूल्य-नीति (Profit-Price-Policy) अपनाने से उपभोक्ताओ के पास व्यय के लिए कम राशि बचेगी जिससे व्यय कम होगा और मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो का दमन होगा। ऐसा तभी सम्भव है, जबकि वह उद्योग एकाधिकारिक हो और उसकी माँग बेलोच हो।

अत कभी-कभी यह विचार प्रस्तुत किया जाता है कि सार्वजनिक उपक्रमो की मूल्य-नीति का आधार 'न लाभ, न हानि' (No Profit, No Loss) होना चाहिए। किन्तु नियोजन द्वारा विकासशील निर्धन देशो के लिए यह नीति अनुचित है। अर्द्ध विकसित देशो में वित्तीय साधनो को जुटाने की समस्या होती है और अधिक मूल्य की नीति अपना कर सार्वजनिक उपक्रमो के लाभ योजनाओ की वित्त-व्यवस्था का एक बडा स्रोत बन सकते हैं। यही कारण है कि नियोजन पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ऊटी मे होने वाले सेमिनार मे डॉ वी के आर वी. राव ने 'न लाभ, न हानि' की नीति को अस्वीकार करते हुए लाभ-मूल्य नीति का समर्थन किया। आजकल भारत मे योजना-आयोग भी इसी नीति पर चल रहा है और उसकी प्रत्येक योजना मे सार्वजनिक उपक्रमो से प्राप्त लाभो पर उत्तरोत्तर अधिक निर्भरता प्रदर्शित की गई है। अन्य अर्द्ध-विकसित देशो के लिए भी यही मूल्य-नीति उचित है।

वस्तु नियन्त्रण
(Commodity Control)

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे नियन्त्रण निहित है। कई बार नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे भेद, उनमे व्याप्त नियन्त्रण की प्रकृति और लक्षणो के आधार पर किया जाता है। नियन्त्रण जितने अधिक और कठोर होते है वहां नियोजन भी उतना ही कठोर होता है। इसके विपरीत जहाँ नियन्त्रण कम और सरल होते हैं, वहाँ नियोजन अधिक जनतान्त्रिक और कम कठोर होता है। इस प्रकार 'नियन्त्रण' नियोजन की एक प्रमुख विशेषता है। थॉमस विलसन के अनुसार, "नियोजन और भौतिक नियन्त्रण इतने अधिक सम्बन्धित हैं कि इन्हे लगभग अभिन्न माना जा सकता हैं।"[1] इस प्रकार, नियोजन मे कई प्रकार के नियन्त्रण होते हैं। वस्तुत नियोजित अर्थ व्यवस्था का आशय ही नियोजन अधिकारी द्वारा निश्चित सामाजिक उद्देश्यो के

1 *Thomas Wilson* Planning and Growth, p 14

लिए नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था है पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था अधिक नियन्त्रित रहता है, किन्तु मिश्रित जनतान्त्रिक-नियोजन मे नियन्त्रण अधिक व्यापक नही होते। किन्तु फिर भी नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे वस्तु नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। इन अर्द्ध-विकसित देशो मे नियोजन अवधि मे उपभोक्ता और पूँजीगत दोनो प्रकार की वस्तुओ की माँग बढती है। विकास कार्यक्रमो के लिए कई परियोजनाएँ सचालित की जाती हैं, जिनके लिए विशाल मात्रा मे पूँजीगत वस्तुएं चाहिए। ये वस्तुएं स्वदेशा तथा आयातित दोनो प्रकार की हो सकती है। जिस प्रकार विकास के लिए यह आवश्यक है कि ये वस्तुएँ उचित मूल्यो पर प्राप्त हो, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि अच्छी किस्म की, पर्याप्त मात्रा मे और समय पर निरन्तर ये वस्तुएँ उपलब्ध हो। आवश्यकतानुसार, विभिन्न क्षेत्रो, उद्योगो, व्यक्तियो आदि मे इनका उचित आवटन हो और अनुकूलतम उपयोग हो, इसके लिए इन वस्तुओ का नियन्त्रण आवश्यक है। इसमे इनके निश्चित मूल्यो पर बिक्री के साथ-साथ विभिन्न फर्मों तथा उद्योगो का कोटा (Quota) भी निर्धारित किया जा सकता है।

नियोजन के अन्तर्गत बहुधा उपभोक्ता वस्तुओ का भी अभाव रहता है। उत्पादन के अधिकांश साधनो का अधिकाधिक भाग विनियोग कार्यक्रमों म लगाया जाता है। अधिकांश उपलब्ध, वित्तीय और भौतिक साधनो का उपयोग पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे लगाया जाता है। सिचाई, विद्युत, सीमेन्ट, इस्पात, मशीन और मशीनी औजार भारी विद्युत सामग्री, भारी रसायन आदि परियोजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इस प्रकार, नियोजित अर्थ व्यवस्था मे साधन पूँजीगत परियोजनाओ मे लग जाते हैं और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन की ओर कम ध्यान दिया जाता है। देश के आर्थिक विकास को गति देने और उसे स्वय-स्फूर्त-अवस्था में पहुँचाने के लिए यह आवश्यक भी है, किन्तु इससे उपभोक्ता वस्तुओ की कमी पड जाती है। साथ ही, नियोजन के परिणामस्वरूप व्यक्तियो की आय भी बढती है, जिसे उपभोग पर व्यय किया जाता है। इससे उपभोग वस्तुओ की माँग बढ जाती है। इन देशो की तीव्रता से बढती हुई जनसख्या भी इनकी माँग मे वृद्धि कर देती है। ऐसी स्थिति मे इनके मूल्य-वृद्धि की प्रवृत्ति होती है। बहुधा उद्योगपति वर्ग वस्तु की स्वल्पता के कारण परिस्थितियो का नाजायज लाभ उठाकर अधिकाधिक मूल्य लेने का प्रयास करते हैं। इसके लिए कृत्रिम अभावो का सृजन भी किया जाता है। काला बाजार और मुनाफाखोरी को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे निर्धन वर्ग को कठिनाइयो का सामना करना पडता है। उन्हे इन पदार्थों की आवश्यक न्यूनतम मात्रा भी प्राप्त नही हो पाती। ऐसी स्थिति मे इन उपभोक्ता वस्तुओ, विशेष रूप से आवश्यक पदार्थों जैसे, खाद्यान्न, चीनी, खाद्य, तेल मिट्टी का तेल, साबुन वस्त्र आदि का नियत्रण तो आवश्यक सा हो जाता है। केवल मूल्य नियत्रण या मूल्य निर्धारण ही पर्याप्त नहीं है, क्योकि यदि कम मूल्य निश्चित कर दिए गए तो वस्तुएँ छिपा ली जाएँगी और काला बाजार (Black Market) मे बेची जाएँगी या वे अच्छी किस्म की नहीं होंगी या फिर उनके उत्पादको को पर्याप्त प्रेरणा नही मिलने के कारण उत्पादन

कम होगा। अत. उचित मूल्य-नीति अपनाई जाने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि इन वस्तुओ के उत्पादन, उपभोग-विनिमय और वितरण पर पूर्ण नियन्त्रण रखा जाए। उत्पादन-स्तर पर इनके उत्पादन मे कोई शिथिलता नही बरती जाए और क्षमता का पूरा उपयोग करके अधिकाधिक उत्पादन किया जाए। साथ ही, उसे बाजार मे बिक्री हेतु उपलब्ध कराया जाए। इन वस्तुओ की बिक्री भी नियन्त्रित रूप से स्वय सरकार द्वारा या सहकारी समितियो द्वारा नियन्त्रित एजेन्सियो द्वारा की जाए। जो कुछ उपलब्ध हो उसके उचित वितरण की व्यवस्था की जाए। यदि उचित वितरण व्यवस्था न हो, जैसे कुछ लोगो को कम और कुछ लोगो को अधिक वस्तुएँ मिल सके तो यह बात अधिक सहन नही की जा सकती। इन वस्तुओ के वितरण मे राशनिंग (Rationing) नीति भी अपनाई जा सकती है।

भारतीय नियोजन में मूल्य और मूल्य-नीति
(Prices and Price-Policy during Planning in India)

प्रथम पंचवर्षीय योजना—भारतीय नियोजन मे प्रारम्भ से ही मूल्य नियमन की ओर ध्यान दिया गया है। प्रथम योजना द्वितीय विश्वयुद्ध और विभाजन जनित वस्तुओ की कमी को दूर करने और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो को रोकने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई थी तथा अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने मे यह सफल भी हुई। इस योजनावधि मे मुद्रा-पूर्ति मे भी 13% की वृद्धि हुई और 330 करोड रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई किन्तु मानसून की अनुकूलता के परिणामस्वरूप उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई। खाद्यान्नो का उत्पादन 20%, कपास का उत्पादन 45% और तिलहन का उत्पादन 8% बढ गया। योजनावधि मे कृषि-उत्पादन निर्देशांक 1949-50 वर्ष का आधार मानते हुए 96% से बढ़कर 117% हो गया। औद्योगिक उत्पादन मे 18·4 पाइन्ट की वृद्धि हुई। उत्पादन मे इस वृद्धि के साथ साथ सरकार द्वारा किए गए प्रयत्नो, कोरिया-युद्ध की समाप्ति के कारण मूल्यो मे गिरावट आई। सन् 1952 मे थोक-मूल्य-निर्देशांक मे कमी आई और कुछ समय तक मूल्यो मे लगभग स्थिरता रही। सन् 1953-54 मे बहुत अच्छी फसल हुई जिसके कारण मूल्यों मे बहुत गिरावट आई। कुल मिलाकर योजना-काल मे थोक मूल्यो के निर्देशांक मे 20%, खाद्य-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक मे 25%, निर्मित-पदार्थों के मूल्य निर्देशांक मे 3 6% और औद्योगिक सच्चे माल के मूल्य-निर्देशांक मे 32% की कमी आई। योजनावधि मे मूल्यो की इस गिरावट के वातावरण मे राज्य ने यथोचित् मूल्य निर्धारित करने और अनेक कार्यवाहियों द्वारा मूल्यो को इस स्तर से नीचे नही गिरने देने के लिए प्रयास प्रारम्भ किए ताकि उत्पादको को मूल्यो के गिरने से हानि न हो।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—यह योजना प्रथम योजना की अपेक्षा बहुत बडी थी। सार्वजनिक क्षेत्र मे 4,600 करोड रुपये व्यय किए गए। निजी क्षेत्र मे 3,100 करोड रुपये का विनियोग हुआ। योजनावधि मे 948 करोड रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई जो समस्त योजना व्यय का 20% था। साथ ही इस

अवधि मे मुद्रा पूर्ति 2,216 करोड रुपये से बढकर 2 868 करोड रुपये हो गई। इस प्रकार मुद्रा पूर्ति मे 29% की वृद्धि हो गई। दुर्भाग्यवश कृषि-उत्पादन मे वृद्धि नही हो सकी अपितु कई वर्षों मे तो विगत वर्षों की अपेक्षा उत्पादन मे कमी आई। उदाहरणार्थ, सन् 1957-58 मे खाद्यान्नो का उत्पादन गत वर्ष की अपेक्षा 60 लाख टन कम हुआ। सन् 1959-60 मे भी खाद्यान्नो के उत्पादन मे इसके पिछले वर्ष की अपेक्षा 40 लाख टन की गिरावट आई। इसी वर्ष जूट, कपास और तिलहन के उत्पादन मे क्रमश 12%, 18% और 12% की गिरावट आई। इस प्रकार योजना अपने उत्पादन लक्ष्यो मे काफी पिछड गई। परिणामस्वरूप, द्वितीय योजना मे मूल्य वृद्धि होना स्वाभाविक था। जनसंख्या वृद्धि ने भी इसे सहारा दिया। इस योजना मे मूल्यो मे निरन्तर वृद्धि होती रही। योजनावधि में थोक मूल्यो का सामान्य निर्देशांक (General Index of Wholesale Prices) 33% बढ गया। इसी प्रकार, खाद्यान्नो, औद्योगिक कच्चे माल, निर्मित वस्तुओ के मूल्य निर्देशांको में क्रमश 48%, 45% तथा 25% की वृद्धि हुई।

योजनावधि मे मूल्य नीति के अन्तर्गत खाद्य तथा अन्य सामग्री मे उचित सन्तुलन बनाए रखने पर बल दिया गया। खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए प्रेरणास्प्रद मूल्य स्तर आवश्यक था और सरकार इस नीति को अपनाती रही। इस योजना मे मूल्यो के अत्यधिक उतार-चढाव को रोकने के लिए खाद्यान्नो के बफर-स्टॉक के निर्माण का आयोजन किया गया। साथ ही, आयात निर्यात कोटे की मात्रा की समय से पूर्व घोषणा, अग्रिम सौदो पर नियन्त्रण साख का नियन्त्रण एव अन्य वित्तीय कार्यवाहियो को अपनाया गया। इसके बावजूद भी मूल्य वृद्धि को नही रोका जा सका। वस्तुत योजना के अन्तर्गत उद्योग खनिज यातायात विद्युत आदि पर अधिक विनियोजन के साथ साथ मूल्य वृद्धि रोकने के लिए कृषि उत्पादन मे वृद्धि आवश्यक है। किन्तु भारत मे कृषि उत्पादन की मात्रा मौसम और मानसून की अनुकूलता पर निर्भर करती है जो अनिश्चित है। अत मूल्य नीति का आधार कृषिगत पदार्थों के भडार पर्याप्त मात्रा मे बनाए रखना है ताकि कमी के समय मूल्यो को नियन्त्रित रखा जा सके। द्वितीय योजना मे मूल्य-नीति की निम्नलिखित कमियाँ थी—

(i) मूल्य नीति को प्रभावशाली ढग से लागू नही किया गया और उसके क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान नही दिया गया।

(ii) मूल्य नीति से सम्बन्धित कार्यवाहियो मे पारस्परिक समन्वय का अभाव था।

(iii) मूल्य-नीति को दीर्घकालीन दृष्टिकोण और आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित नहीं किया गया।

तृतीय पचवर्षीय योजना—द्वितीय योजना के प्रारम्भ और तृतीय योजना के प्रारम्भ के वातावरण मे पर्याप्त अन्तर था। जहाँ प्रथम योजना मे मूल्यो मे गिरावट आई थी वहाँ अन्य योजनाओ मे मूल्य 35% बढ गए थे। इसलिए तृतीय योजना मे

मूल्य नियमन-नीति की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। द्वितीय योजना मे मूल्य-नियमन के लिए सुदृढ नीति को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया, किन्तु इस बात का अवश्य अनुमान लगा लिया गया था कि विकास कार्यक्रमो के लिए विनियोजन की नई मॉगो की तुलना मे पूर्ति कम ही होगी और इसलिए मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियो की सभावना और उनके नियन्त्रण की समस्याएँ उत्पन्न होगी। इसके बावजूद भी योजना-आयोग ने इन कठिनाइयो के भय से विकास कार्यक्रमो को कम करना उचित नहीं समझा। इस प्रकार द्वितीय योजना-निर्माण मे विकास को अधिक महत्त्व दिया गया और मूल्यो की स्थिरता को आधारभूत आवश्यकता नही माना गया।

किन्तु तृतीय योजना के समय परिस्थितियाँ भिन्न थीं। देश का विदेशी मुद्रा-कोष भी बहुत कम हो गया था और इसलिए विदेशो से अधिक मात्रा मे पदार्थों का आयात करके वस्तुओ की पूर्ति बढाना भी कठिन था। विदेशी-विनिमय की स्थिति मे सुधार हेतु निर्यात मे वृद्धि और आयात मे कमी करना आवश्यक था। मूल्य-वृद्धि से योजना के कार्यक्रमो पर भी अत्यन्त दुष्प्रभाव पडता है। योजना की सफलता सदिग्ध हो जाती है। फिर तृतीय योजना मे तो विकास कार्यक्रमो और विनियोजन की राशि द्वितीय योजना की अपेक्षा बहुत अधिक थी। तृतीय योजना मे 10,400 करोड रुपये के विनियोजन का लक्ष्य था। ऐसी स्थिति मे मूल्य-वृद्धि की सभी सम्भावनाएँ थी। अत तृतीय योजना मे एक सुदृढ मूल्य नीति की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था और मूल्य नियमन की आवश्यकता अनुभव की गई थी। किन्तु मूल्य-नियमन का आशय मूल्यो मे कोई परिवर्तन नही होने देने से नही है। भारी पूँजी विनियोजन के कार्यक्रम वाली विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था मे थोडी-बहुत मूल्य वृद्धि अप्रत्याशित और हानिकारक नही है, किन्तु मूल्यो मे अधिक वृद्धि को तथा उसमे आने वाले उच्चावचनो को रोकने हेतु उचित मूल्य-नीति आवश्यक थी।

तृतीय योजना मे इसी आधार पर मूल्य-नीति बनाई गई थी, जिसमे कर-नीति, मौद्रिक-नीति, व्यापारिक-नीति, पदार्थ-वितरण नीति आदि को समन्वित रूप से अपनाने का आयोजन था। कर-व्यवस्था इस प्रकार की करनी थी जिससे उपभोग को योजना के अनुकूल प्रतिबन्धित और सीमित किया जा सके तथा विनियोजन हेतु पर्याप्त साधन जुटाए जा सकें। मौद्रिक-नीति द्वारा साख का नियमन तथा नियन्त्रण, सट्टे की सौदेबाजी तथा इस उद्देश्य से पदार्थों का सग्रह हतोत्साहित हो। व्यापारिक नीति द्वारा विदेशो से आवश्यक वस्तुओ का आयात करके बुनियादी वस्तुओ की कमी को दूर करना था। किन्तु इसके लिए दीर्घकालीन आयात को कम करने की आवश्यकता पर बल दिया गया था। कुछ अत्यन्त आवश्यक वस्तुओ का मूल्य-नियन्त्रण अपनाया जाना था और इनके मूल्यो को एक सीमा से अधिक नही बढने देना था। साथ ही इनके समुचित वितरण के लिए राशनिंग पद्धति को भी अपनाया जा सकता था। इस योजना मे मध्यस्थो और उनके लाभो को सीमित करने या समाप्त करने लिए सरकारी या सहकारी सस्थाओ द्वारा इनके वितरण को प्रोत्साहित किए जाने पर अधिक बल दिया गया था। अर्द्ध-विकसित देशो मे खाद्य-पदार्थों के मूल्यो मे स्थिरता

लाना बहुत आवश्यक होता है। अत इस योजना मे भी खाद्यान्नो के मूल्यो मे यथोचित स्थिरता लाना आवश्यक था। इसके लिए सरकार द्वारा खाद्यान्नो के सग्रह को पर्याप्त मात्रा मे बढाना था। साथ ही, मूल्य-वृद्धि को रोकने लिए कृषि और औद्योगिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि का आग्रह था।

इनके बावजूद भी इस योजना मे निरन्तर तेजी से मूल्य वृद्धि हुई। मुख्यत कृषि पदार्थों के मूल्य काफी बढ गए। योजना के प्रथम दो वर्षों मे तो मूल्य-वृद्धि नगण्य थी। सन् 1961–62 मे समस्त पदार्थों के मूल्य निर्देशांक मे 4 6 पाइट की गिरावट आई। किन्तु सन् 1962–63 से मूल्य-वृद्धि शुरू हुई और यह वृद्धि योजना के अन्त तक जारी रही। तृतीय योजना के इन पाँच वर्षों मे खाद्य पदार्थों से सम्बन्धित थोक मूल्य निर्देशांक 484% बढ गया। औद्योगिक कच्चे माल, निर्मित माल और समस्त पदार्थों के थोक मूल्य निर्देशांको मे क्रमश 32 6%, 22 1% और 36·4% की वृद्धि हो गई। परिणामस्वरूप, अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (All India Consumer Price-Index) (आधार वर्ष 1949=100) योजना के प्रारम्भ मे 125 से सन् 1965–66 मे 174 हो गया। इसी प्रकार तृतीय योजना मे भी मूल्यो मे बहुत वृद्धि हुई। इस मूल्य-वृद्धि के लिए पदार्थों की माँग और पूर्ति दोनो से सम्बन्धित घटक उत्तरदायी थे। इस योजनावधि मे चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण के कारण सुरक्षा-व्यय मे भारी वृद्धि हुई। सार्वजनिक और निजी दोनो क्षेत्रो मे वैसे भी पर्याप्त पूँजी विनियोजित की गई। जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होती रही, किन्तु कृषि-उत्पादन मे वृद्धि नही हो सकी। साथ ही 1 150 करोड रुपये के हीनार्थ-प्रबन्धन का सहारा लिया गया। मुद्रा-पूर्ति मे भी 51 8% की वृद्धि हुई। योजनावधि में करो द्वारा भी पर्याप्त राशि एकत्रित की गई। विशेषत अप्रत्यक्ष करो का अधिक आश्रय लिया गया। इसी कारण मूल्यो में तेजी से वृद्धि हुई।

योजनावधि में इस वृद्धि को रोकने के लिए प्रयत्न किए गए। खाद्यान्नो के मूल्यो को नियन्त्रित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उचित मूल्य की दूकानो (Fair Price Shops) की सख्या बढाई गई। सरकार ने अनुदान देकर खाद्यान्नो को कम मूल्य पर जनता को उपलब्ध कराने के प्रयास किए। इन उचित मूल्य वाली दूकानो से जनता को वितरित अनाज की मात्रा निरन्तर बढती गई। यह सन् 1962 मे 43 लाख से बढ कर 1965 में दुगुने से अधिक हो गई। खाद्यान्नो के सग्रहण के अधिक और अच्छे प्रयत्न किए गए। विदेशो से पर्याप्त मात्रा में अन्न का आयात किया गया। बडे-बडे नगरो में उचित वितरण के लिए खाद्यान्नो के राशनिंग का सहारा लिया गया। खाद्यान्नो और आवश्यक पदार्थों के मूल्यो को निर्धारित किया गया और उन्हे वसूल किए जाने का आग्रह किया गया। आवश्यक उपभोग वस्तुओ के अधिक मूल्य लेने और उनके अनावश्यक सग्रह को रोकने के प्रयत्न किए गए। रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर साख नीति में इस प्रकार के परिवर्तन किए गए जिनसे बुनियादी उपभोग-वस्तुओ के अनावश्यक सग्रह को रोका जा सके। इसके लिए भारत सुरक्षा नियमो (Defence of India Rules) का सहारा लिया गया और

अनधिकृत सग्रहकर्ताओं दण्डित करने का आयोजन किया गया। किन्तु इसके बावजूद भी तृतीय योजना में मूल्य-वृद्धि को रोका नही जा सका। निम्नलिखित सारणी में विभिन्न पदार्थों की वार्षिक वृद्धि दरें दी गई हैं—

मूल्य-निर्देशांको मे वार्षिक वृद्धि दरें (प्रतिशत में)[1]

पदार्थ	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	1960-67
1 सम्पूर्ण वस्तुएँ	7 0	6 4	15 0
2. खाद्यान्न	7 7	8·1	18 4
3 औद्योगिक कच्चा माल	9 4	6 6	20 8
4 निर्मित वस्तुएँ	4 9	4·1	9 2

एकवर्षीय योजनाओ मे मूल्य—उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि द्वितीय योजना में शुरू हुआ मूल्य-वृद्धि का क्रम तृतीय योजना में भी जारी रहा और प्रथम एकवर्षीय योजना सन् 1966-67 में तो मूल्यो में वृद्धि-दरें सर्वोपरि रही। केवल इसी वर्ष में समस्त वस्तुओं के मूल्यो में 15% और खाद्यान्नो के मूल्यो में 18 4% की वृद्धि हुई। औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यो में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण सूखा था। सन् 1967-68 में थोक मूल्यो में 11% और खाद्य पदार्थों के मूल्यो में 21% की वृद्धि हुई। परन्तु सन् 1968-69 की अवधि में मूल्यो में अपेक्षाकृत स्थिरता आई। कुछ पदार्थों के मूल्यो में गिरावट आई। इसका एक प्रमुख कारण मानसून और मौसम की अनुकूलता के कारण कृषि-उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होना है।

चौथी और पांचवीं योजनाएँ—*चतुर्थ पचवर्षीय योजना में स्थायित्व के साथ* आर्थिक विकास (Growth with Stability) करने का उद्देश्य रखा गया। योजना से सम्बन्धित 'Approach Paper' में स्थायित्व को निम्नलिखित दो उद्देश्यो से सम्बन्धित किया गया—

(ı) कृषि पदार्थों की भौतिक उपलब्धि में आने वाले अधिक उच्चावचनो को रोकना।

(ıı) मूल्यो में निरन्तर मुद्रा-प्रसारित वृद्धि को रोकना।

प्रथम उद्देश्य से सम्बन्धित मुख्य कार्यक्रम कृषि पदार्थों के 'बफर-स्टॉक' का निर्माण करना था। अत चतुर्थ योजना मे पर्याप्त बफर-स्टॉक का निर्माण करने का निश्चय किया गया। मुख्य रूप से अनाजों के बफर-स्टॉक बनाने पर अधिक ध्यान दिए जाने की बात कही गई। यह आशा व्यक्त की गई कि सरकार मुख्य कृषि-पदार्थों की सापेक्षिक मूल्य-सरचना को स्थिर बनाने और इन्हें इस प्रकार नियमित करने की स्थिति मे होगी ताकि योजना के कई उद्देश्यो को पूरा करने मे योग मिले।[2]

दूसरे उद्देश्य के बारे मे यह मत व्यक्त किया गया कि मूल्यो मे निरन्तर मुद्रा प्रसारित वृद्धि को रोकना मुख्य रूप से हीनार्थ प्रबन्धन मे सयम पर निर्भर करता है।

1 रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन, जून 1967, पृष्ठ 742

2 Notes on Approach to the Fourth Plan, Growth ... Stability

साथ ही, मूल्यो मे सम्भावित वृद्धि को रोकने हेतु अन्य उपाय और नीतियाँ भी अपनाई जाएँगी। 'उचित मूल्य की दूकाने' और 'उपभोक्ता सहकारी भण्डारो' का पर्याप्त मात्रा मे विस्तार किया जाएगा और उनकी परिधि मे अनेक नई वस्तुएँ भी लाई जाएँगी। इससे आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे स्थायित्व लाया जा सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था, विशेष रूप से मौसमी उतार-चढावो को रोकने और आकस्मिक दबावो (Sudden pressures) का सामना करने के लिए अधिक सहायक होगी। इस ओर किए गिए पूर्व प्रयत्नो का एकीकरण और विस्तार किए जाने का निश्चय किया गया ताकि पर्याप्त व्यापक और कुशल सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public system of distribution) को जन्म दिया जा सके। विदेशो से वस्तुओं का आयात और अर्थव्यवस्था के सुचालन हेतु आवश्यक बिदेशी पदार्थों की प्राप्ति सार्वजनिक अभिकरणो द्वारा किए जाने पर भी बल दिया गया।

उक्त योजना मे यह माना गया कि मूल्य स्तर को स्थिर बनाए रखने मे कृषि-उत्पादन का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। यह कहा गया कि हाल ही के अनुभवो से ज्ञात होता है कि जीवन-स्तर की लागत मे निर्देशांक (Cost of Living Index Number) मे खाद्यान्नो के मूल्य निर्णायक महत्त्व रखते है। अत रहन सहन के व्यय कों स्थिर बनाए रखने हेतु खाद्यन्नो के मूल्यो को स्थिर रखना आवश्यक है। अत योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन और मुख्य रूप से कृषि-उत्पादन मे वृद्धि की अनिवार्यता स्वीकार की गई। चतुर्थ योजना मे कृषि-उत्पादन मे 5% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। साथ ही, औद्योगिक उत्पादन मे 9% प्रतिवर्ष की वृद्धि तथा अन्य क्षेत्रो मे पर्याप्त वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

पाँचवी योजना मे इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि आर्थिक विकास इस ढग से हो ताकि मुद्रा-स्फीति न होने पाए, मूल्यो के बढ़े हुए स्तर में गिरावट आए निर्धन व्यक्तियो के लिए उचित मूल्यो पर उपभोग वस्तुएँ प्राप्त हो सके—इसके लिए पर्याप्त वसूली और उचित वितरण प्रणाली स्थापित की जाए।

सरकारी प्रयत्न—सम्पूर्ण नियोजन की अवधि में मुद्रा-प्रसारित प्रवृत्तियो के दमन हेतु *सरकारी प्रयत्न दोनो दिशाओ से किए गए है। इसमे आवश्यक वस्तुओ* की पूर्ति बढाने और अत्यधिक माँग को सयमित करने के प्रयत्न किए हैं। आवश्यक वस्तुओ की उत्पादन वृद्धि के लिए सभी उपाय किए गए है। कृषको को उत्पादन हेतु आवश्यक प्रेरणा प्रदान करने हेतु वस्तुओ के न्यूनतम मूल्य निर्धारित किए गए है। खाद्यान्नो के बफर-स्टॉक का निर्माण, उस॰। अधिक अच्छा सग्रहण (Procurement), इनका राजकीय व्यापार और भारी मात्रा में विदेशो से *आयात की व्यवस्था* की गई है। आन्तरिक वितरण के लिए सम्पूर्ण देश को खाद्यान्न क्षेत्रो में विभाजित किया गया और गेहूँ, चावल आदि आवश्यक वस्तुओ के स्वतन्त्र रूप से लाने ले जाने को नियन्त्रित किया गया। उपभोग वस्तुओ की उचित वितरण व्यवस्था के लिए 'सहकारी उपभोक्ता भण्डार' सुपर बाजार (Super Markets) और पर्याप्त मात्रा में 'उचित मूल्य की दूकानें' स्थापित की गई। सरकार ने कृषि पदार्थों के सम्बन्ध

में सलाह देने के लिए सन् 1965 में 'कृषि मूल्य आयोग' (Agricultural Price Commission) नियुक्त किया गया। वस्त्र, साबुन, वनस्पति घी, मिट्टी का तेल, खाद्य, तेल ट्यूब, टायर आदि सामान्य उपयोग की वस्तुओं के मूल्यों को नियन्त्रित और नियमित किया गया। सीमेन्ट, इस्पात, कोयला, चीनी आदि के वितरण और मूल्यों के बारे में भी नियन्त्रण की नीति अपनाई गई। उपभोग को सीमित करने के हेतु मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां अपनाई गई। राजकोषीय नीति में कर-वृद्धि, गैर-विकास व्यय में कटौती, कर-चोरी को रोकना, काले धन का पता लगाना, ऐच्छिक बचत में वृद्धि करना आदि के उपाय अपनाए गए। मौद्रिक-नीति के अन्तर्गत साख-नियन्त्रण हेतु खुले बाजार की नीति (Open Market Operations), बैंक-दर (Bank Rate) में वृद्धि, चयनात्मक साख नियन्त्रण (Selective Credit Control) और सुरक्षित कोष की आवश्यकताओं में परिवर्तन आदि के सब उपाय अपनाए गए। इसके बावजूद भी नियोजित विकास अवधि में भारत में मूल्यों में स्थायित्व नहीं लाया जा सका और मूल्यों में तेजी से वृद्धि हुई। सन् 1972–73 और 1973–74 में तो थोक और फुटकर मूल्यों में भारी वृद्धि हुई जिससे जन-साधारण के लिए जीवन-निर्वाह भी कठिन हो गया।

सरकार ने मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए समुचित और तर्क सगत मूल्य-नीति को कठोरतापूर्वक लागू करने का निश्चय किया। उत्पादन वृद्धि के लिए बचत दर अधिक करने और मुद्रा-स्फीति को निष्प्रभावी बनाने के लिए 'हीनार्थ प्रबन्धन' की व्यवस्था पर अकुश लगाने का निश्चय किया गया। मूल्य नियन्त्रण के लिए प्रशासकीय मशीनरी को अधिक प्रभावशाली बनाने पर ध्यान दिया गया। खाद्यान्नों के उत्पादन के सम्बन्ध मे व्यावहारिक अनुमान लगाने और सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों मे समय-समय पर खाद्यान्नों को पहुँचाने की नीति पर अधिक प्रभावी रूप मे अमल किया जाने लगा। सन् 1975-76 मे मूल्य-नीति इस बात को ध्यान मे रख कर बनाई गई कि कृषि गत वस्तुओं के मूल्यों मे स्थिरता आ सके। इसी दृष्टि से सन् 1975 76 के बिक्री के मौसम (अप्रेल मार्च) के लिए गेहूँ की वसूली का मूल्य गत वर्ष के स्तर पर अर्थात् 105 रुपये प्रति क्विन्टल रखी गई। 'कृषि-मूल्य आयोग' ने भी महसूस किया था कि सरकार ने गत वर्ष जो वृद्धि स्वीकार की है, वह उस समय से कृषि उत्पादन लागत में हुई वृद्धि की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है। अधिक वसूली के लिए बोनस स्कीम पर अधिक व्यवस्थित रूप मे अमल किया गया। मूल्य स्तर को रोकने के उपायों को सुदृढ करने के लिए खरीफ के अनाज के मूल्यों के बारे मे मूल्य-नीति निर्धारित की गई। 'कृषि मूल्य आयोग' की सिफारिशों के अनुरूप खरीफ के अनाज की वसूली का मूल्य 1974 के स्तर पर ही रखी गई। आयोग के सुझाव पर विचार किया गया कि चावल की वसूली के सम्बन्ध मे दो प्रकार की प्रोत्साहन बोनस स्कीमों को जारी किया जाए और मिला दिया जाए ताकि लक्ष्य पूर्ति को सुनिश्चित करने मे सहायता मिले। कृषि-मूल्य-आयोग ने अनाज की वसूली के मूल्यों मे तो कोई परिवर्तन करने की सिफारिश नहीं की थी, लेकिन अपनी रिपोर्ट मे गन्ना, जूट और

कपास के न्यूनतम समर्थित मूल्यो मे वृद्धि करने का सुझाव दिया था । सरकार ने स्थिति पर पूर्णरूप से विचार करने के पश्चात् गन्ने का मूल्य ज्यो का त्यो रखने का फैसला किया क्योकि कृषको के हित को ध्यान मे रखते हुए कानूनी न्यूनतम मूल्य महत्त्वहीन था । निर्धारित न्यूनतम मूल्य मे वृद्धि करने का सबसे बडा प्रभाव यह पडता, कि लेवी चीनी की लागत और मूल्य बढाने पडते और उपभोक्ता के लिए चीनी का मूल्य बढाना पडता । सन् 1974-75 के मौसम मे भी लेवी चीनी का अनुपात 70 से घटा कर 65 करके लेवी चीनी की एक समान अखिल भारतीय कीमत बनाए रखी गई थी, जिससे चीनी मिल उद्योग को जो लाभ मिलता है, वह कम न हो । लेवी चीनी का अनुपात घटाने से सरकारी वितरण प्रणाली पर कोई कुप्रभाव नही पडा, क्योकि सन् 1974-75 मे 48 लाख मैट्रिक टन चीनी का उत्पादन हुआ । कपास और जूट के समर्थित मूल्यो के बारे मे सरकार ने 'कृषि मूल्य आयोग' की सिफारिशें मान ली । कपास का उत्पादन अधिक होने पर इसके मूल्य तेजी से नही घटे और चालू वर्ष मे भी कपास की अच्छी फसल होने पर मूल्यो में गिरावट नही आई । इसके लिए आवश्यक कार्यवाही करने के प्रति सरकार सतर्क है । यद्यपि 1975-76 में विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप मूल्यो को स्थिर रखने पर अधिक जोर दिया गया है, तथापि उत्पादन लागत मे हुई अनिवार्य वृद्धि को ध्यान मे रखते हुए यह सम्भव नही हो सका है कि मूल्यो मे कोई परिवर्तन न किया जाए । उपभोग वस्तुओ के मूल्यो मे जमा-खोरी, तस्करी आदि के कारण वृद्धि न हो, इसके प्रति सरकार आपातकाल के दौरान बहुत अधिक सक्रिय हुई है और इसके परिणाम भी सामने आए हैं । सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ बनाना, मूल्य-वृद्धि को रोकना सरकारी-नीति का एक महत्त्वपूर्ण अग है । जहाँ तक अनाज और चीनी का सम्बन्ध है, इस व्यवस्था के अन्तर्गत इन चीजों के वितरण का कार्य उचित मूल्य की दूकानो के माध्यम द्वारा किया जाता है । सम्पूर्ण देश मे इन दुकानो का एक जाल सा बिछा हुआ है । आर्थिक समीक्षा 1975-76 के अनुसार, इस समय ऐसी दूकानो की सख्या 2 लाख 23 हजार है और ये 45 36 करोड व्यक्तियो की आवश्यकताओ की पूर्ति करती हैं ।

16

परियोजना मूल्यांकन के मानदण्ड; विशुद्ध-वर्तमान मूल्य और प्रतिफल की आन्तरिक-दर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागत एवं लाभ

(Criteria for Project Evaluation; Net Present Value and Internal Rate of Return; Direct and Indirect Costs and Benefits)

परियोजना मूल्यांकन के मानदण्ड (Criteria for Project Evaluation)

विनियोजक के समक्ष अनेक विनियोग-विकल्प होते हैं। सर्वाधिक लाभदायक विनियोग सम्बन्धी निर्णय अत्यन्त कठिन होते हैं। विनियोजक के लिए यह निर्णय लेना कि किस परियोजना मे पूंजी विनियोग करे, अनेक मानदण्डो पर निर्भर करता है। विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने की अनेक विधियाँ हैं। इन विधियो के अन्तर्गत विनियोग परियोजना के 'लागत प्रवाह' (Cost flows) तथा 'आय प्रवाह' (Income flows) का विचार किया जाता है। इन प्रवाहो के विश्लेषण द्वारा विनियोग निर्णय लिए जाते हैं। प्रवाहो के विश्लेषण की तकनीकी को प्राय 'लाभ-लागत विश्लेषण विधि' (Cost Benefit Method) कहा जाता है। इस विधि का मुख्य आधार विनियोग के प्रतिफल की आतरिक दर को ज्ञात करना होता है। यह दर अनेक विधियो द्वारा ज्ञात की जा सकती है। इसे छ कल्पित विनियोग परियोजनाओ के एक उदाहरण द्वारा अग्रलिखित सारणी मे समझाया गया है।

सारणी 1

परियोजना लागत एवं प्रतिफल दर[1]
(Project Costs and Rate of Returns)

परियोजना (Project)	0	1	2	3	4	5	शुद्ध अवधि 1—5 (Net Periods)	शुद्ध आय 0—5 (Net returns Periods)
A	—100	100	10	—	—	—	110	10
B	—100	50	50	10	10	—	120	20
C	—100	40	30	30	20	—	130	30
D	—100	28	28	28	28	—	140	40
E	—100	10	20	30	40	—	150	50
F	—100	—	—	—	40	—	160	60

उक्त सारणी के माध्यम से परियोजना मूल्यांकन की निम्न तीन प्रकार की प्रतिफल-दरों की गणना की गई है—

(1) औसत प्रतिफल-दर (Average rate of return)
(2) मूल-राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल-दर (Pay off period rate of return)
(3) आन्तरिक प्रतिफल-दर (Internal rate of return)।

(a) प्रत्येक योजना का मूल लागत व्यय 100 रुपये है। (b) प्रत्येक की परिपक्वता अवधि 5 वर्ष है। (c) प्राप्त लाभों के पुन विनियोग की सम्भावना पर विचार नहीं किया गया है।

1 से 5 तक के कॉलमों में प्रति वर्ष होने वाले आय-प्रवाहों को प्रदर्शित किया गया है। शून्य अवधि वाले कॉलम में प्रत्येक परियोजना की लागत कम बताई गई है। अन्तिम कॉलम में कुल लाभों में से मूल लागत व्यय को घटाकर विशुद्ध लाभ बताए गए हैं। अन्तिम से पूर्व वाले कॉलम में परियोजना की पूरी 5 वर्ष की अवधि वाले कुल लाभ बताए गए हैं।

(A) औसत प्रतिफल-दर विधि
(Average Rate of Return Method)

औसत प्रतिफल-दर निम्नलिखित दो प्रकार की होती है—(a) प्रारम्भिक विनियोग पर कुल औसत प्रतिफल दर, (b) प्रारम्भिक विनियोग पर शुद्ध औसत प्रतिफल दर। *प्रारम्भिक विनियोग पर कुल औसत प्रतिफल दर को प्रत्येक परियोजना* के कुल लाभों को योजनावधि से विभाजित करके निकाला जाता है। इस प्रकार A, B, C, D, E, F परियोजनाओं के लिए यह दर क्रमशः 22, 24, 26, 28,

1. *Henderson* : Public Enterprise, ed. by R. Turvey, p. 158

30, 32 होगी। प्रारम्भिक विनियोग पर शुद्ध औसत प्रतिफल दर अन्तिम कॉलम मे दिए गए शुद्ध लाभो को अवधि से विभाजित करके ज्ञात की जाती है। उक्त परियोजनाओ के लिए यह दर क्रमश: 2, 4, 6, 8, 10 व 12 है।

(B) मूल लागत की प्राप्ति वाली प्रतिफल दर (Pay off Period Rate of Return)

मूल लागत की प्राप्ति जिस अवधि मे होती है उसकी गणना करते हुए प्रतिफल दर इस प्रकार ज्ञात की जाती है—उन लाभो को जोड लिया जाता है, जो मूल लागत के बराबर होते हैं। जिस अवधि तक लाभो का योग मूल लागत के बराबर होता है, उस अवधि के आधार पर प्रतिफल-दर का प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। उक्त उदाहरण मे परियोजना A के लिए केवल एक ही वर्ष मे इसका लागत व्यय प्राप्त हो जाता है। अत: इसे 100% के रूप मे व्यक्त किया जायेगा। B परियोजना मे चूँकि मूल लागत दो वर्षों मे प्राप्त होती है, अत प्रतिवर्ष औसत प्राप्ति दर 50% होगी। C परियोजना मे मूल लागत की प्राप्ति मे 3 वर्ष लगते है। अत प्रतिवर्ष की औसत प्राप्ति-दर $\frac{100}{3}$ या $33\frac{1}{3}\%$ होती है। इस प्रकार,सभी परियोजनाओ के प्रतिशत मे औसत दर ज्ञात की जा सकती है, वह क्रमश: 28%, 25%, तथा $22\frac{2}{9}\%$ होगी।

उक्त विधियो मे एक गम्भीर दोष यह है कि इनमे शुद्ध लाभो की प्रत्येक अवधि का विचार नही किया जाता। केवल वार्षिक औसत निकाला जाता है। यद्यपि मूल्य राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल दर (The Pay off Period Rate of Return) मे समय का विचार किया जाता है, तथापि उस अवधि को छोड दिया जाता है, जिसमे पूर्व लागत व्यय की वसूली हान के पश्चात् भी लाभो का मिलना जारी रहता है।

(C) आन्तरिक प्रतिफल दर (Internal Rate of Return)

आन्तरिक प्रतिफल दर वाली विधि इन सभी से श्रेष्ठ मानी जाती है, क्योकि इसमे उन समस्त वर्षों की गणना मे विचार किया जाता है, जिनमे लागत और लाभ होते रहते हैं। आन्तरिक प्रतिफल-दर की परिभाषा उस कटौती-दर के रूप मे की जाती है, जो लाभ व लागत के प्रवाहो के वर्तमान कटौती मूल्य को शून्य के बराबर कर देती है। आन्तरिक प्रतिफल-दर (IRR) विभिन्न परियोजनाओ के लिए निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जा सकती है—

$$-Y_0+\frac{Y_1}{(1+r)}+\frac{Y_2}{(1+r)^2}=0$$

जिसमे $-Y_0$=मूल लागत तथा Y_1 व Y_2 प्रथम व द्वितीय वर्ष के लाभ प्रकट करते है। r=आन्तरिक प्रतिफल-दर। $\frac{1}{(1+r)}=x$ रखते हुए उक्त समीकरण को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$-Y_0+Y_1x+Y_2x^2=0$$

इस समीकरण मे परियोजना A के लाभ-लागत राशियो को रखकर इस योजना की आन्तरिक प्रतिफल दर निम्न प्रकार निकाली गई है—

$$-100+100x+10x^2=0$$

या $$10x^2+100x-100=0$$

या $$x^2+10x-10=0$$

$$\therefore x=\frac{-10+\sqrt{(10)^2-4x-10^*}}{2}$$

$x=\cdot916$ मान को, $r=\frac{1-x}{x}$ रखने पर आन्तरिक प्रतिफल दर 9·1% या 09 आती है। इसी प्रकार अन्य परियोजनाओं की दर ज्ञात की जा सकती है, जो क्रमश 10 7, 11·8, 12·4, 12 0 व 10 4 है।

उक्त परिणामो को निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट किया गया है—

सारणी 2

परियोजना प्रतिफल दर

(प्रतिशत मे)

परियोजना	(A) औसत प्रतिफल-दर (i) विनियोग पर कुल प्रतिफल	(ii) विनियोग पर शुद्ध प्रतिफल	(B) मूल-राशि की प्राप्ति से सम्बन्धित अवधि वाली प्रतिफल दर (Pay off period rate of return)	(C) आन्तरिक प्रतिफल-दर (IRR)
A	22	2	100	9 1
B	24	4	50	10 7
C	26	6	$33\frac{1}{3}$	11·8
D	28	8	28	12 4
E	30	10	25	12·0
F	32	12	$22\frac{2}{9}$	10 4

उक्त विधियो के अतिरिक्त, वर्तमान मूल्यो के आधार पर भी विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक लाभ देखे जा सकते हैं। परियोजना के वर्तमान मूल्य ज्ञात करने का सूत्र है—

$$\text{वर्तमान मूल्य}=\frac{R_1}{(1+r)}+\frac{R_2}{(1+r)^2}+\cdots\frac{R_n}{(1+r)^n}+\cdots$$

*Quadratic समीकरण के सूत्र $-b\pm\frac{\sqrt{b^2-4ac}}{a^2}$ के अनुसार x का मूल्य ज्ञात किया गया है।

इस समीकरण मे r का अर्थ ब्याज की बाजार-दर से है। R परियोजना से प्राप्त लाभो को प्रकट करते हैं। दी हुई परियोजनाओ के वर्तमान मूल्य $2\frac{1}{2}\%$, 8% तथा 15% के आधार पर निकाले गये हैं। इन परिणामो को सारणी 3 मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 3

विभिन्न ब्याज दरो पर परियोजनाओ के वर्तमान मूल्य[1]
(Project Present Values at Different Interest Rates)

परियोजना	$2\frac{1}{2}\%$	8%	15%
A	7 1	1 2	— 5 4
B	14 8	4 5	— 6 4
C	22 4	8 0	— 6 4
D	30 1	11 8	— 6 2
E	37·1	13 6	— 8 7
F	42 3	11 1	—17 4

सारणी के आधार पर विभिन्न परियोजनाओ को उनके प्रतिफल की अधिकता के क्रम मे विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त कर, यह देखा जा सकता है कि कौनसा विनियोग विकल्प अन्य विकल्प से कितना अधिक लाभदायक है।

सारणी 4 मे इन श्रेणियो को दर्शाया गया है।

सारणी 4

नियोजन की वैकल्पिक विधियो द्वारा परियोजनाओं को प्रदत्त श्रेणी[2]

श्रेणी	औसत प्रतिफल दर	अवधि (Pay off Period)	आन्तरिक प्रतिफल-दर	ब्याज दरो पर वर्तमान मूल्य $9\frac{1}{2}\%$	8%	15%
1	F	A	D	F	E	A
2	E	B	E	E	D	D
3	D	C	C	D	F	B
4	C	D	B	C	C	C
5	B	E	F	B	B	E
6	A	F	A	A	A	F

इन श्रेणियो को ध्यान मे रखकर विनियोजक विनियोग-विकल्प का चुनाव करता है। सर्वप्रथम वह प्रथम श्रेणी के विनियोग मे अपनी पूंजी लगाता है। उदाहरणार्थ वह औसत प्रतिफल-दर विधि का प्रयोग करता है तो सर्वप्रथम F परियोजना मे विनियोग करेगा। Pay off अवधि विधि के अन्तर्गत

1 Ibid, p 161
2 Ibid, p 162.

A परियोजन मे तथा आन्तरिक प्रतिफल-दर विधि मे D परियोजना को विनियोग के लिए चुनेगा। इसी प्रकार, वर्तमान मूल्य विधि मे विभिन्न विनियोग विकल्पो के चुनाव किए जा सकते है।

परियोजना मूल्यांकन की वर्तमान कटौती-मूल्य-विधि
(The Present Discounted-Value Criteria of Evaluation)

लाभ-लागत विश्लेषण (Benefit-Cost Analysis) परियोजना मूल्यांकन की एक आधुनिक तकनीकी है। सवप्रथम इसका विकास व प्रयोग अमेरिका मे किया गया। इस विधि द्वारा अनेक विकास परियोजना प्रस्तावो का आर्थिक मूल्यांकन किया गया है। लाभ लागत विश्लेषण की अनेक विधियाँ है, जिनमे मुख्य (1) विशुद्ध वतमान मूल्य विधि (Net Present Value Criteria) (2) आन्तरिक प्रतिफल दर (Internal Rate of Return) आदि है।

विशुद्ध वर्तमान-मल्य-विधि
(Net Present-Value-Criteria)

परियोजना मूल्यांकन की इस विधि मे परियोजना के आय प्रवाह (Income Flows), लागत व्यय (Cost-outlay) तथा ब्याज अथवा कटौती दर का विचार किया जाता है। इन तत्वो के आधार पर किसी भी परियोजना के वतमान कटौती मूल्य की गणना निम्नलिखित सूत्र के आधार पर की जा सकती ह—

$$PV = -Y_0 + \frac{Y_1}{(1+r)} + \frac{Y_2}{(1+r)^2} + \frac{Y_3}{(1+r)^3} + \cdot + \frac{Y_n}{(1+r)^n} + \cdot$$

$$\text{अथवा } PV = -Y_0 + \sum_{t=1} \frac{Y_t}{(1+r)^t}$$

सूत्र मे

PV=दी हुई परियोजना का वर्तमान कटौती मूल्य

$-Y_0$=प्रारम्भिक लागत व्यय

Y_1, Y_2 Y_n क्रमश प्रथम द्वितीय तथा n वर्षो की आय को प्रकट करते हैं

r=ब्याज अथवा कटौती दर।

मान लीजिए किसी परियोजना से सम्बन्धित निम्नलिखित सूचनाएँ दी हुई हैं—

आय प्रवाह=—100, 50, 150

कटौती दर=10% अथवा 1 (मूल-राशि के इकाई होने पर)

-100=प्रारम्भिक लागत व्यय तथा 50 व 150 क्रमश प्रथम व द्वितीय वर्ष की आय प्रकट करते हैं, अर्थात् $Y_1=50$ व $Y_2=150$

इन सूचनाओ को उक्त सूत्र मे रखते हुए 2 वर्षो की अवधि पर्यन्त परियोजना का वर्तमान शुद्ध कटौती मूल्य निम्न प्रकार ज्ञात किया जा सकता है—

$$-100 + \frac{50}{1+1} + \frac{150}{(1+1)^2} = 66\cdot5$$

वास्तव मे, परिसम्पत्ति का कुल वर्तमान मूल्य (Gross Present Value) उक्त उदाहरण म 166 5 होगा, किन्तु इसम से लागत व्यय 100 के घटाने पर शेष

मूल्य को 'विशुद्ध वर्तमान-मूल्य' (Net Present Value) कहा जाता है। अत विशुद्ध वर्तमान मूल्य 166 5 — 100 = 66 5 है—

यदि एक लाभ के स्रोत (Benefit Stream) को B_0, B_1, B_2 .. B_n के रूप मे प्रकट किया जाता है तथा जिसमे सभी B धनात्मक अथवा शून्य या ऋणात्मक हो सकते हैं। निम्नलिखित सूत्र द्वारा वर्तमान कटौती–मूल्य प्रकट किया जा सकता है—

$$B_0 + \frac{B_1}{(1+r)} + \frac{B_2}{(1+r)^2} + \dots \dots \frac{B_n}{(1+r)^n}$$

सक्षेप मे ,

$$\sum_{t=0}^{t=1} \frac{B_t}{(1+r)^t}$$

जिसमे r कटौती दर को प्रकट करता है।[1]

इस अवधि मे r का उपयुक्त चुनाव करना विशेष महत्व रखता है। सामान्यत यह माना जाता है कि ब्याज की सही दर वह है जो समाज के समय अधिमान की दर (Rate of Social Time Preference) को दर्शाती है। उदाहरणार्थ यदि कोई समाज वर्तमान वर्ष के 100 रु को दूसरे वर्ष के 106 रु के समान महत्व देता है तो *उस समाज की समय अधिमान दर 6 % प्रति वर्ष होगी।*

उक्त विधि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित तीन उल्लेखनीय प्रस्थापनाओ (Proposition) पर विचार करना आवश्यक है—

1 विशुद्ध वर्तमान मूल्य अथवा लागत पर वर्तमान मूल्य का अतिरेक कटौती-दर पर निर्भर करता है। यदि विशुद्ध लाभो का प्रवाह —100, 0 150 है, तो इनका वर्तमान-मूल्य $r = 1$ होने पर 48 से कुछ कम होगा तथा $r = 5$ की स्थिति मे यह मूल्य $-\frac{100}{3}$ होगा।

2 विनियोग का कौन सा प्रवाह अधिकतम वर्तमान कटौती-मूल्य उत्पन्न करता है, इस प्रश्न का उत्तर सामान्यत कटौती दर पर निर्भर करता है। यदि प्रथम प्रवाह —50 20 और 80 तथा दूसरा प्रवाह —60, 20 तथा 70 हो तो प्रथम प्रवाह के अधिशासी (Dominant) होने की स्थिति मे, किसी भी कटौती दर के, इसका कटौती मूल्य दूसरे प्रवाह के कटौती मूल्य की अपेक्षा अधिक होगा। यदि दो प्रवाह — 100, 0 180 और —100, 165 और 0 हो तो 1 % की कटौती-दर की स्थिति मे प्रथम कटौती मूल्य लगभग 76 तथा दूसरे का 63 होगा। अत प्रथम प्रवाह को प्रथम श्रेणी (Rank First) तथा दूसरे को द्वितीय श्रेणी (Rank Second) मिलेगी। $r = 5$ की स्थिति मे प्रथम प्रवाह का कटौती-मूल्य —20 तथा इसकी श्रेणी द्वितीय होगी, जबकि दूसरा प्रवाह वर्तमान मूल्य के 10 होने के कारण प्रथम श्रेणी प्राप्त करेगा।

1 *E J Mishan* Cost Benefit Analysis, p 190

उक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि 1% व 5% के मध्य एक निश्चित सामाजिक कटौती-दर होती है, जिस पर दोनों प्रवाहों का वर्तमान कटौती-मूल्य एक दूसरे के बराबर होता है। इस दर को हम r^* से प्रकट कर सकते हैं। r^* को दोनों प्रवाहों के वर्तमान मूल्यों को एक दूसरे के समान समीकरण में रखते हुए सरलता से मालूम किया जा सकता है अर्थात् उक्त प्रवाहों को निम्न प्रकार रखने पर—

$$-100+\frac{180}{(1+r)^2}=-100+\frac{165}{(1+r)}$$

चित्र–7
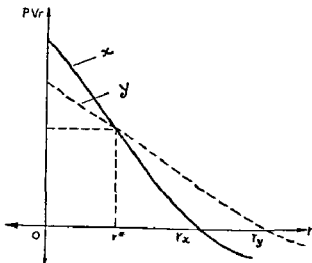
सामान्यतः हम किसी एक विशेष विनियोग प्रवाह का कटौती-दर के अनुरूप वर्तमान-मूल्य निर्धारित करते हैं। उक्त चित्र में X परियोजना का उदाहरण लिया जा सकता है। चित्र में लम्बअक्ष पर PV_r या विनियोग का वर्तमान मूल्य दर्शाया गया है तथा क्षिनिजीय अक्ष पर सामाजिक कटौती-दर दिखाई गई है। X प्रवाह का वर्तमान-मूल्य r के आकार का विपरीत होगा अर्थात् जितना अधिक r होगा उतना ही विनियोग प्रवाह का वर्तमान मूल्य कम होगा। इसीलिए X चक्र ऋणात्मक ढाल वाला है। ऋणात्मक ढाल का क्षितिजीय अक्ष को काट कर नीचे की ओर बढना यह प्रकट करता है कि 50% कटौती-दर पर प्रवाह का वर्तमान मूल्य ऋणात्मक हो जाता है (जैसे —100, 0, 180 का 50% से कटौती-मूल्य = —20) इसी प्रकार का सम्बन्ध Y प्रवाह के लिए स्थापित किया जा सकता है।

यदि दोनों प्रवाहों में से किसी एक प्रवाह की स्थिति अधिशासी (Dominant) होती है, तो प्रत्येक कटौती-दर पर इस प्रवाह की स्थिति सभी अन्य प्रवाहों से ऊँची

* r के लिए समीकरण का हल, इसका मूल्य लगभग 9% प्रकट करेगा।

होगी। अधिशासन की अनुपस्थिति मे X और Y एक दूसरे को चित्र के या तो धनात्मक क्वाडरेंट (Quadrant) अथवा ऋणात्मक क्वाडरेंट (Quadrant) मे काटेंगे। केवल r^* को स्थिति के अतिरिक्त अन्य सभी स्थितियों मे दोनो प्रवाहो के वर्तमान मूल्य विभिन्न कटौती-दरो के अनुसार भिन्न-भिन्न होगे। r^* पर दोनो के मूल्य समान होते हैं तथा r^* से कम पर X का मूल्य Y से अधिक होता है। अन्त मे चित्र r_x व r_y कटौती-दरो को देखा जा सकता है, जिन पर दोनो प्रवाहो की कटौती-दर शून्य है।

पूर्व वर्णित निष्कर्षों के अतिरिक्त इस विधि से किसी परिसम्पत्ति के विकास-पथ के दिए हुए होने की स्थिति मे वह अवधि (Optimal gestation period) जिसमे सम्पत्ति का अधिकतम शुद्ध वर्तमान-मूल्य प्राप्त किया जा सकना सम्भव है, ज्ञात की जा सकती है। यह पथ निम्न चित्र मे दर्शाया गया है.

चित्र-8
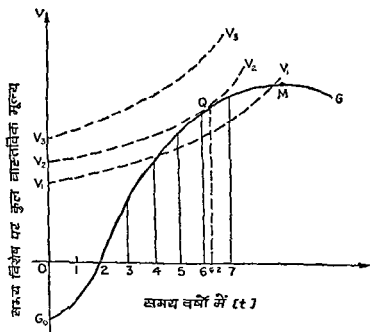
चित्र मे कटौती-दर द्वारा किसी परिसम्पत्ति की उस अनुकूलतम या इष्टतम परिपक्वता अवधि (Optimal gestation period) का निर्धारण समझाया गया है, जिसमे सम्पत्ति का वर्तमान-मूल्य अधिकतम होता है।

तब उसका मूल्य पेड की वृद्धि के अनुपात मे बढ़ता जाता है। उदाहरणार्थ, जब टिम्बर का पौधा लगाया जाता है।

G_0G द्वारा विकास-पथ प्रकट किया गया है, OG_0 टिम्बर के प्रारम्भिक लागत को प्रकट करता है। इसलिए इसे एक ऋणात्मक मात्रा के रूप मे चित्र में

प्रदर्शित किया गया है। क्षितिजीय अक्ष से O_0G वक्र पर डाले गए लम्ब किसी समय विशेष पर टिम्बर के मूल्यों को दर्शाते हैं। दो वर्ष की अवधि वाले बिन्दु पर टिम्बर का शुद्ध-मूल्य होना है। विभिन्न लम्बों की ऊँचाइयां वैकल्पिक विनियोगों के प्रवाह (Alternative Investment Stream) को प्रकट करती है। यदि $OG_0=50$ मानी जाती है, तो 4 वर्ष की अवधि वाला लम्ब टिम्बर के मूल्य को 100 के बराबर प्रकट करेगा। इसी प्रकार चित्र की सहायता से विभिन्न विनियोग विकल्पों के आय-प्रवाहों को निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

जब	आय-प्रवाह
$t=5$	50,0,0,0,0,112
$t=6$	50,0,0,0,0,0,120

इसी प्रकार $t=7,8,9$ आदि की स्थिति मे विभिन्न विनियोग विकल्पों को प्रकट किया जा सकता है। किन्तु समझना यह है कि इन विनियोग विकल्पों में से कौनसा विकल्प सर्वाधिक लाभदायक होगा। इसे हम सामाजिक कटौती-दर के आधार पर विभिन्न कटौती-वक्रों की रचना करके ज्ञात कर सकते है। मान लीजिए $r=5$ / दिया हुआ है। इससे V_1V_1 कटौती वक्र की रचना की गई है। इस वक्र मे यदि हम OV_1 पर 80 का माप करते है तो $t=1$ के बिन्दु पर लम्ब की ऊँचाई 84, $t=2$ पर 88 2 और इसी प्रकार एक एक वर्ष से बढ़ती हुई अवधि मे 5 / की अधिकता से लम्बों की ऊँचाइयां अधिक होती चली जाएँगी। इस उदासीन वक्र का प्रत्येक बिन्दु समाज के लिए समान महत्त्व रखेगा, क्योंकि $r-5$ / होने पर वर्तमान वर्ष के 100 व आगामी वर्ष के 105 मे विनियोजक कोई अन्तर नहीं करेगा। समान सन्तोष की अनुभूति करते हुए इन बिन्दुओं के प्रति वह उदासीन रहेगा।

इसी प्रकार लम्ब अक्ष पर अन्य उदासीनता वक्रो की रचना की जा सकती है। चित्र मे V_2V_2 व V_3V_3 इसी प्रकार के दो अन्य उदासीन वक्र दिए हुए हैं। इन उदासीनता वक्रो मे से हमको उच्चतम वक्र का चुनाव करना चाहिए जो विकास-पथ के वक्र को स्पर्श करता है। V_2V_2 चित्र मे उच्चतम उदासीन वक्र है। Q स्पर्श बिन्दु है, जहाँ $t=6$ 2 वर्ष है। निष्कर्षतः शुद्ध लाभों के प्रवाह का 5 / की कटौती-दर पर अधिकतम वर्तमान-मूल्य OV_2 ऊँचाई द्वारा प्रकट होगा तथा परिपक्वता अवधि 6-2 वर्ष होगी। विशुद्ध वर्तमान मूल्य $OV_2 - OG_0$ द्वारा प्रकट होगा।

आन्तरिक प्रतिफल-दर

(Internal Rate of Return or IRR)

आन्तरिक प्रतिफल दर (The Internal Rate of Return) विनियोग मूल्यांकन की एक श्रेष्ठ विधि है। विनियोजक के समक्ष अनेक विनियोग विकल्प होते हैं। अपनी पूँजी को किस विनियोग मे लगाए, यह उसके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न होता है। उदाहरणार्थ, दो विनियोग हैं—(1) एक ट्रक का

, वाडी का।

सन्	1974	1975	1976	1977	1978	1979	1980
पनवाडी	500	500	500	500	500	500	500
ट्रक	5000	5000	6000	10,000	200	100	20

ट्रक से समान आय प्राप्त नही हो रही है, किन्तु पनवाडी से प्राप्त होने वाली आय की राशि सभी वर्षों मे समान है। अत समस्या यह है कि उक्त दोनों विनियोगो से प्राप्त आय की परस्पर तुलना किस प्रकार की जाए। इस प्रश्न का उत्तर आन्तरिक प्रतिफल दर द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिफल की आन्तरिक दर की सहायता से आय-प्रवाह को वर्तमान-मूल्य मे परिवर्तित किया जा सकता है। तत्पश्चात् प्रत्येक परियोजना का वर्तमान मूल्य व उसकी लागत का अनुपात $=\frac{V-C}{C}$ के रूप मे निकाला जाता है। जिस परियोजना का उक्त अनुपात अधिक होगा, उसे श्रेष्ठतर समझा जाएगा।

अतः आन्तरिक प्रतिफल दर वह दर होती है, जो विनियोग के आय-प्रवाह व वर्तमान मूल्य को विनियोग की लागतो के वर्तमान मूल्य के ठीक बराबर कर देती है, अथवा यदि लाभ-लागत प्रवाहो के वर्तमान-मूल्यो को जोडा जाता है, तो योगफल शून्य के बराबर होगा।[1]

इस दर को निम्नलिखित सूत्र-से ज्ञात किया जा सकता है—

$$-Y_0-\frac{Y_1}{(1+r)}-\frac{Y_2}{(1+r)^2}+\frac{Y_3}{(1+r)^3}+\dots+\frac{Y_n}{(1+r)^n}+\dots\dots$$

सक्षेप मे

$$-Y_0\sum_{t=1}^{n}\frac{Y_n}{(1+r)^n}$$

$\frac{1}{(1+r)}=x$ रखते हुए पूरे प्रवाह मे r का मान ज्ञात किया जा सकता है। r का मान ही आन्तरिक प्रतिफल दर कहलाती है। इसे कुछ विनियोग परियोजनाओ के उदाहरण लेकर गणितीय रूप मे भी अग्राकित प्रकार से समझाया जा सकता है—

1. "The internal rate of return is that rate of discount which makes the present value of the entire stream-benefits and costs-exactly equal to zero"
—*E J. Mishan*: Cost-benefit Analysis, p 198.

परियोजना	लागत (रु. में) $(-Y_0)$	I वर्ष की आय (रु) (Y_1)	II वर्ष की आय (रु) (Y_2)
A	10,000	10,0)0	0
B	10 000	10,000	1100

उक्त सूचनाओं को दिए हुए सूत्र मे रखने पर

परियोजना A

$$-10{,}000+10{,}000\,x=0$$
$$x=0$$
$$r \text{ या } IRR=0$$

परियोजना B

$$-10000+10000x+1100x^2=0$$

अथवा $\quad -100+100x+\quad 11x^2 \quad =0$

या $\quad \dfrac{-100+\sqrt{(100)^2+11\ 1004}}{2\ 11}$

$\therefore \quad x=90 \qquad\qquad \therefore \quad r$ या $IRR=10$

संक्षेप मे r *or* $IRR=\dfrac{1-x}{x}$

इसी प्रकार अन्य परियोजनाओं की प्रतिफल दर ज्ञात की जा सकती है। जिस क्रम में यह दर विभिन्न परियोजनाओं की स्थिति मे अधिक होगी, उसी क्रम मे विनियोजक अपनी पूँजी का विनियोग करेगा। उक्त उदाहरण मे परियोजना A की अपेक्षा परियोजना B श्रेष्ठ है। अतः पूँजी विनियोजन परियोजना B मे ही होगी।

आन्तरिक प्रतिफल दर को चित्र द्वारा भी समझाया जा सकता है—

चित्र-9
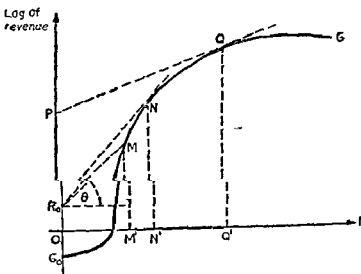
चित्र मे G_0G विकास-पथ दिया हुआ है। इस पर R_0 से एक सीधी रेखा खीची गई है। इस रेखा का विकासवक्र के किसी भी बिन्दु पर जो ढाल (Slope) है, वही आन्तरिक प्रतिफल दर (*IRR*) को प्रकट करती है। चूंकि ढाल निर्धारण स्पर्श बिन्दु से किया जाता है जो NN' मे प्रकट किया गया है। M बिन्दु पर R_0 से डाली गई सीधी रेखा $OR_0 = OG_0$ अर्थात् लाभ लागत-प्रवाहो के वर्तमान मूल्यो को परस्पर बराबर प्रकट करती है। OG_0 परियोजना की प्रारम्भिक लागत को प्रकट करता है तथा OR_0 परियोजना के लाभो के प्रवाह के वर्तमान-मूल्य को प्रकट करता है।

चित्र मे—

OX पर समय

OY पर आगम (लॉग स्केल)

OP = उच्चतम वर्तमान मूल्य 5% की सामयिक कटौती दर के अनुसार

OQ' = अधिकतम परिपक्वता अवधि (Optimum Gestation Period) वर्तमान मूल्य वाले मानदण्ड (Present Value Criterion) के अनुसार।

इसी परिणाम को आन्तरिक प्रतिफल दर वाले मापदण्ड द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है लेकिन इससे पूर्व हमे यह देखना है कि इस चित्र मे आन्तरिक प्रतिफल दर को किस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

हम यह जानते हैं कि आन्तरिक प्रतिफल दर के अन्तर्गत लाभ-प्रवाह के वर्तमान मूल्य मे लागत-प्रवाह के वर्तमान-मूल्य को घटाने से शून्य शेष रहता है।

चित्र मे हम OG_0 व OR_0 के निरपेक्ष मूल्य समान मानते हैं, तो विकास-वक्र G_0G पर R_0 बिन्दु से खीची गई सीधी रेखा (M बिन्दु पर) का ढाल को आन्तरिक प्रतिफल-दर का प्रतीक माना जा सकता है।

ढाल को ज्ञात करने के लिए हम tan θ निकालते हैं।

$$\tan\theta = \frac{\text{लम्ब}}{\text{आधार}} = \frac{MK}{R_0K} = \frac{M'M - M'K}{OM'}$$

$$= \frac{\text{कुल आगम (Total Compounded Benefit)—लागत}}{OM' \text{ अवधि}}$$

tan θ द्वारा व्यक्त कटौती-दर को हम इसलिए आन्तरिक प्रतिफल दर मानते है क्योंकि यह दर $M'M$ भावी लाभो को OR_0 के बराबर वर्तमान-मूल्य मे बदल देती है, जो प्रारम्भिक लागत OG_0 के बराबर होना है। उच्चतम सम्भव आन्तरिक प्रतिफल दर (Highest Possible Internal Rate of Return) R_0 से N बिन्दु पर विकास-पथ G_0G पर डाली गई स्पर्श-रेखा (Tangent) से निर्धारित होती है, क्योंकि R_0N की तुलना मे किसी भी अन्य विकास-पथ पर डाली गई सीधी रेखा का ढाल अधिक नही हो सकता है। यदि उच्चतम प्रतिफल दर वाली अवधि को 'अनुकूलतम विनियोग अवधि' (Optimum Investment Period) के रूप मे परिभाषित किया जाता है, तो यह चित्र मे ON' द्वारा प्रकट होता है, जो स्पष्टतः

OQ' से कम है। यह वर्तमान-मूल्य मापदण्ड वाली विधि की अनुकूलतम अवधि को दर्शाता है।

IRR व NPV मापदण्डों की तुलना

विनियोग विकल्पो के दोनो मापदण्ड—आन्तरिक प्रतिफल दर (*IRR*) तथा शुद्ध वर्तमान मूल्य (*NPV*) वैज्ञानिक हैं। विनियोग निर्णय मे दोनों का ही सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। दोनो विधियों की अपनी कुछ ऐसी निजी विशेषताएँ हैं कि स्पष्टत यह कह देना कि दोनो मे से कौन श्रेष्ठ है, अत्यधिक कठिन है। इन विधियो म दा मूल अन्तर हैं—

1 आन्तरिक प्रतिफल दर वाले मापदण्ड मे प्रयुक्त कटौती दर का पूर्व ज्ञान नही होता है। यह दर स्वय-सम्पत्ति के कलेवर मे अन्तर्निहित होती है (This rate is built in the body of the asset itself)। वर्तमान मूल्य वाले मापदण्ड मे कटौती-दर पहले से ज्ञात होती है। प्राय ब्याज की बाजार दर के अनुसार, इस मापदण्ड मे सम्पत्ति का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

2 आन्तरिक प्रतिफल-दर, एक ही विनियोग प्रवाह के लिए, एक से अधिक हो सकती है। उदाहरणार्थ,

विनियोग प्रवाह (Investment Stream) $= -100, 350, -400$

IRR की परिभाषा के अनुसार—

$$-100 + \frac{350}{(1+\lambda)} - \frac{400}{(1+\lambda)^2} = 0$$

दो दर प्राप्त होगी—

$$\lambda_1 = 46\%$$
$$\lambda_2 = 456\%$$

इस स्थिति को चित्र मे निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है—

चित्र–10
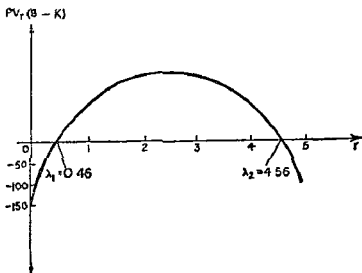
दो आन्तरिक प्रतिफल दरों का उक्त उदाहरण एक विशेष प्रकार का उदाहरण है। n^{th} मूल्य वाले (of n^{th} roots) विनियोग प्रवाह (Investment Stream) की n ही आन्तरिक प्रतिफल दरें सम्भव हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस दृष्टि से वर्तमान मूल्य मापदण्ड का पक्ष आन्तरिक प्रतिफल दर वाले पक्ष से अपेक्षाकृत अधिक सशक्त प्रतीत होता है।

दोनों मापदण्डों में से किसका चुनाव किया जाए, इसमें कठिनाई यह आती है कि अनेक स्थितियों में दोनों मापदण्ड विनियोग प्रवाहों को समान श्रेणी (Same Ranks) प्रदान करते हैं। इस स्थिति में किस मापदण्ड को श्रेष्ठ समझा जाए, यह समस्या सामने आती है।

इस समस्या के समाधान हेतु अर्थशास्त्री Mc Kean ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि एक निश्चित बजट सीमा में कुछ विनियोग परियोजनाओं का चुनाव इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि विनियोजित राशि का प्रत्येक परियोजना पर इस प्रकार वितरण हो कि उस विनियोग प्रवाह की आन्तरिक प्रतिफल दर (IRR) वर्तमान मूल्य की कटौती दर से अधिक हो। इस तथ्य को निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 5

परियोजनाएँ	समय t_0	t_1	t_2	आन्तरिक प्रतिफल दर (*IRR*)	$PV_r\frac{(B-K)}{K}$ ($r=0.03$) 3% से वर्तमान मूल्य
A	−100	110	0	10%	$\frac{7}{100}$
B	−100	0	115	7%	$\frac{8}{100}$
C	−100	106	0	6%	$\frac{3}{100}$
D	− 50	52	0	4%	$\frac{1}{100}$
E	−200	2	208	2·/.	$\frac{-2}{200}$

A, B, C, D व E पाँच परियोजनाएँ दी हुई हैं। प्रत्येक की आन्तरिक प्रतिफल दर घटते हुए क्रम में दिखाई गई हैं। वर्तमान मूल्य के अनुसार शुद्ध लाभ का अनुपात 3/ की कटौती दर के आधार पर दिया हुआ है।

यदि 1000 रुपये का बजट दिया हुआ है और उसमें से केवल 350 रुपये का विनियोजन करना है तो A, B, C व D परियोजनाओं का चुनाव किया जाना

चाहिए, क्योंकि E परियोजना की आन्तरिक प्रतिफल दर केवल 2 /. है, जो वर्तमान मूल्य की कटौती दर 3 /. से कम है। यद्यपि दोनों मापदण्डों के आधार पर चारों परियोजनाओं का श्रेणीक्रम (Ranking) समान नहीं रहेगा, तथापि दोनों ही मापदण्डों के अन्तर्गत प्रथम चार विनियोग विकल्प ही अपनाए जा सकते हैं।

यदि 200 रु का बजट हो तो *IRR* व *NPV* दोनों मापदण्डों के परिणाम A व B परियोजनाओं को समान श्रेणियाँ प्रदान करते हैं। किन्तु यदि बजट केवल 100 रुपये हैं, तो *IRR* के अनुसार A का तथा *NPV* के अनुसार परियोजना B का चुनाव किया जाना उपयुक्त समझा जाएगा।

परियोजना मूल्यांकन की लागत-लाभ विश्लेषण विधि की आलोचना (A Critique of Cost-benefit Analysis)

यद्यपि लागत-लाभ विश्लेषण विधि परियोजना मूल्यांकन की एक श्रेष्ठ विधि है, तथापि अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस विधि की निम्न आलोचनाएँ की हैं—

(1) परियोजनाओं को उचित प्रमाणित करने की दृष्टि से सरकार लाभों को बढ़ाकर दिखाती है तथा अनेक उचित लागतों की उपेक्षा करती है (Govt. inflates benefits and ignores costs)।

(2) वास्तव में सगणित शुद्ध लाभ (Calculated net benefits) परियोजना की लाभदायकता को प्रमाणित नहीं करते हैं। उनकी सगणना यह ध्यान में रखते हुए की जाती है कि परियोजना के सम्बन्ध में लिया गया निर्णय उचित है।

(3) लाभ-लागतों की सगणना में आर्थिक-तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है तथा राजनीतिक लक्ष्यों को अधिक ध्यान में रखा जाता है।

(4) आर्थिक कुशलता की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है (The value of social goals is stressed more than economic efficiency)।

उक्त आलोचनाओं के बावजूद, परियोजना मूल्यांकन की यह उत्तम विधि है। विनियोग निर्णयों में कुछ अवरोधों का आना स्वाभाविक है। इस प्रकार के अवरोध (Constraints), कुछ भौतिक (Physical), कुछ प्रशासनिक (Administrative), कुछ राजनीतिक (Political), कुछ वैधानिक (Legal) तथा कुछ वित्तीय (Financial) होते हैं। भौतिक अवरोधों के कारण तकनीकी दृष्टि से उपयुक्त (Technically feasible) विनियोग विकल्पों का चुनाव भी सीमित हो जाता है, वैधानिक अवरोधों के कारण कानून में बिना सशोधन के उचित विनियोग निर्णय लेने में कठिनाइयाँ आती हैं, प्रशासनिक अवरोध-निर्णयों में विलम्ब के लिए उत्तरदायी होते हैं, राजनीतिक अवरोध, आर्थिक कुशलता की उपेक्षा करते हैं तथा वित्तीय अवरोध व्यय राशि की एक निश्चित सीमा से बाहर निर्णय लेने के गतिरोध उपस्थित करते हैं।

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लागतें व लाभ
(Direct and Indirect Cost and Benefits)

सिंचाई, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि परियोजनाओ का मूल्यांकन इन से एक विशेष अवधि मे प्राप्त लाभो तथा इन पर व्यय की गई लागतो के आधार पर किया जाता है। किन्तु परियोजना-मूल्यांकन मे जो लाभ व लागतें ली जाती हैं, वे सामान्य बाजार मूल्यो के आधार पर नही आँकी जाती हैं उनके अकन का आधार सामान्य लेखा विधि नही होनी, अपितु 'छाया-मूल्य' (Shadow Prices) की अवधारणा होती है। सामान्य लेखा-विधि द्वारा बाजार मूल्य के आधार पर सगणित लाभ व लागत प्राय प्रत्यक्ष लाभ व लागतो की श्रेणी मे लिए जाते हैं। किन्तु, इस प्रकार की सगणना से कोई यथिक निष्कर्ष निकालना सम्भव नही होता, क्योकि लेखांकन लागतो के अतिरिक्त अनेक ऐसी लागतें भी होनी हैं जिनकी प्रविष्टि यद्यपि लेखा-पुस्तको मे नही होती, किन्तु उनको गणना मे लाए बिना लागत-प्रवाह का वर्तमान मूल्य निकालना आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार, लाभो के अन्तर्गत भी परियोजनाओ से प्रत्यक्ष रूप मे प्राप्त लाभो के अतिरिक्त बाह्य बचतें आदि से सम्बन्धित लाभ होते हैं। लाभो के सम्पूर्ण प्रवाह की सगणना मे अन्य लाभो की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण होती है। ऐसे लाभो को सामान्यत 'अप्रत्यक्ष लाभो' की सज्ञा दी जाती है। इनकी सगणना 'छाया-मूल्यो' (Shadow Price) के आधार पर की जाती है।

प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefit) — प्रत्यक्ष अथवा प्राथमिक लाभ उन वस्तुओ और सेवाओ के मूल्य को प्रकट करते हैं, जिनका परियोजना द्वारा उत्पादन होना है। जो लाभ परियोजना से शीघ्र व प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते हैं 'प्रत्यक्ष लाभ' कहलाते हैं। उदाहरणार्थ सिंचाई-परियोजना मे बाट नियन्त्रण सिंचाई, विद्युत्-उत्पादन कृषि-उत्पादन मे वृद्धि पेयजल की सुविधा, इन लाभो का स्वरूप प्राय भौतिक होना है तथा इनकी माप-मुद्रा मे लेखा मूल्यो के आधार पर की जाती है। विशेष अवधि मे होने वाले मूल्यो के परिवर्तनो का अवश्य ध्यान रखा जाता है। अत मूल्य निर्देशांको के आधार पर इन मूल्यो की सकुचित या प्रसारित (Deflated or Inflated) अवश्य किया जाता है। इसी प्रकार, किसी यातायात परियोजना से कई प्रत्यक्ष लाभ हो सकते हैं जैसे—यात्रियो को आने-जाने की सुविधा, माल ढोने की सुविधा, व्यापार मे वृद्धि, कुछ मात्रा मे रोजगार-वृद्धि आदि।

अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect Benefit) — तकनीकी परिवर्तन के कारण उत्पन्न बाह्य प्रभाव 'अप्रत्यक्ष लाभ' होने है। बाह्य-प्रभाव परियोजना के उत्पादन अथवा अन्य व्यक्तियो द्वारा इसके उपयोग के परिणाम होते हैं। जो लाभ परियोजना से सीधे प्राप्त नही होने, बल्कि जिनकी उत्पत्ति परियोजना के कारण होने वाले आर्थिक कारण विकास से प्राप्त होती है, उनको 'अप्रत्यक्ष लाभ' कहते हैं। उदाहरणार्थ, सिंचाई परियोजना के कारण सडको का निर्माण, नई रेल्वे लाइनो का बिछाया जाना, नए नगरो का विकास, रोजगार के अवसरो में वृद्धि, नए उद्योगो की स्थापना,

आदि अप्रत्यक्ष लाभ के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त विनियोग की दर, जनसख्या वृद्धि दर, श्रम की कुशलता, लोगो के सामाजिक व सांस्कृतिक विकास आदि पर पडने वाले परियोजना-प्रभावो को भी अप्रत्यक्ष लाभो की श्रेणी मे लिया जा सकता है।

अप्रत्यक्ष लाभ उत्पादन की अग्रिम कडियो (Forward Production Linkages) से भी उत्पन्न होते है, ये कडियाँ उन व्यक्तियो की आय मे वृद्धि करती हैं, जो परियोजना के उत्पादन की मध्यवर्ती-प्रक्रियाओ मे सलग्न होते है। उदाहरणार्थ, किसी सिचाई परियोजना के अन्तर्गत उत्पादित कपास, बाजार मे बिक्री हेतु प्रस्तुत होने से पूर्व अनेक मध्यवर्ती प्रक्रियाओ मे से गुजरता है। प्रत्येक मध्यवर्ती प्रक्रियाकत्ता बढी हुई व्यावसायिक प्रक्रियाओ से लाभ उठाता है।

'अप्रत्यक्ष लाभ', उत्पादन की पीछे वाली कडियो (Backward Production Linkages) के कारण भी प्राप्त होते है। इन कडियो के कारण उन व्यक्तियो की आय मे वृद्धि होती है, जो परियोजना-क्षेत्र मे वस्तु और सेवाएँ प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ, परियोजना द्वारा उत्पादित कपास के लिए मशीनरी, खाद तथा अन्य सामग्रियो की आवश्यकता होगी। इस प्रकार, विभिन्न प्रकार के व्यवसायो की एक श्रृ खला उत्पन्न होती है। सभी व्यक्ति, जो इस श्रृ खला के अन्तगत विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक काय करते है, परियोजना से अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते हैं।

लागत (Costs)—*परियोजना पर होने वाले प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्यय,* 'लागत' कहलाती है।

प्रत्यक्ष लागत (Direct Costs)—*प्रत्यक्ष लागत वह लागत होती है* जो परियोजना क निमाण व कायान्वित करने मे उचित रूप से उठाई जाती है। मुख्यत ये लागतें निम्नलिखित होती हैं—(i) निर्माण लागतें, (ii) अभियान्त्रिक व प्रशासनिक लागतें, (iii) परियोजना के लिए काम मे ली जाने वाली भूमि की अवसर लागत, (iv) परियोजना की क्रियान्विति के लिए सडकें, रेलवे लाइनें, पाइप लाइनें, विद्युत् लाइनें पुल-निर्माण यदि आवश्यक हो तो इन पर होन वाली लागतो, (v) परियोजना के सचालन, सुरक्षा एव पुनर्स्थापन सम्बन्धी लागतो।

अप्रत्यक्ष लागत (Indirect Costs)—*जो लागत अप्रत्यक्ष लाभो की प्राप्ति* हेतु की जाती है, उसे 'अप्रत्यक्ष लागत' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, परियोजना मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिए आवास-सुविधाएँ, अच्छी सडकें, बच्चो की शिक्षा के लिए पाठशाला, अस्पताल इत्यादि।

भाग-2

भारत में आर्थिक नियोजन

(ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

1 भारतीय नियोजन

(Indian Planning)

स्वतन्त्रता के बाद भारत मे तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया गया, किन्तु यह भारत के लिए नया नही था । स्वतन्त्रता से पूर्व भी भारत मे अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गईं जिनमे 'विश्वेश्वरैया योजना', 'बम्बई योजना','जन-योजना ,'गाँधीवादी योजना', आदि के नाम उल्लेखनीय है,तथापि ये योजनाएँ कोरी कागजी रही, वास्तविक नियोजन कार्य राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही प्रारम्भ किया जा सका ।

विश्वेश्वरैया योजना
(Visvesvaraya Plan)

सर एम विश्वेश्वरैया एक विख्यात इन्जीनियर थे। उन्होने आर्थिक नियोजन पर सन् 1934 मे 'भारत मे नियोजित व्यवस्था'(Planned Economy for India) नामक पुस्तक प्रकाशित की । इस पुस्तक मे भारत के आर्थिक विकास के लिए एक दस-वर्षीय आर्थिक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की गई जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय आय को दस वर्ष की अवधि मे दुगुना करना था । 'विश्वेश्वरैया योजना' मे उद्योगो को विशेष महत्त्व दिया गया और साथ ही व्यवसायो मे सन्तुलन स्थापित करके आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने का लक्ष्य रखा गया । 1934–35 मे भारतीय आर्थिक सभा (Indian Economic Conference) की वार्षिक बैठक मे इन प्रस्तावो पर काफी विचार-विमर्श किया गया किन्तु परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण इस योजना के आर्थिक कार्यक्रमो की क्रियान्विति के प्रयत्न नही हो सके । परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि इस योजना ने भारत मे आर्थिक-नियोजन की सैद्धान्तिक आधार-शिला रखी तथा विचारको को नियोजन की दिशा मे चिन्तन के लिए प्रेरित किया ।

आर्थिक नियोजन पर प्रारम्भिक साहित्य के रूप मे कुछ अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित हुईं जिनमे पी एम. लोकनाथन् की 'नियोजन के सिद्धान्त' (Principles of Planning), एन. एस. सुब्बाराव की नियोजन के कुछ पहलू'(Some Aspects of Planning), और के. एन. सेन की 'आर्थिक पुनर्निर्माण'(Economic Reconstruction) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

राष्ट्रीय आयोजन समिति
(National Planning Committee)

भारत मे आर्थिक नियोजन की दिशा मे दूसरा कदम राष्ट्रीय आयोजन समिति की स्थापना करना था। अक्तूबर, 1938 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस ने दिल्ली मे प्रान्तीय उद्योग मन्त्रियो का सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन मे देश की आर्थिक प्रगति के लिए सुझाव प्रस्तुत किए गए। इन सुझावो को क्रियान्वित करने के लिए श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे 'राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया गया। प्रो के टी शाह इसके महासचिव मनोनीत किए गए। इस योजना समिति ने विभिन्न आर्थिक विषयो का अध्ययन करके विकास योजनाएँ प्रस्तुत करने के लिए कई उप-समितियाँ नियुक्त की। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध तथा कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो के त्याग-पत्रो के बाद की राजनीतिक हलचल के कारण समिति का कार्य रुक गया और सन् 1948 मे ही 'भारत मे नियोजन' पर समिति के कुछ प्रतिवेदन सामने आ सके। इन प्रतिवेदनो मे औद्योगीकरण, सार्वजनिक-क्षेत्र के विस्तार, श्रमिको के उचित प्रतिफल, निजी उद्योगो के राष्ट्रीयकरण, गृह-उद्योगो के विकास, सहकारिता को प्रोत्साहन सिचाई व विद्युत सुविधाओ के विस्तार, वनो की सुरक्षा और भू-सरक्षण आदि से सम्बन्धित आर्थिक सुझाव प्रस्तुत किए गए।

बम्बई योजना
(Bombay Plan)

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत मे आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में 'बम्बई योजना' एक *महत्त्वपूर्ण प्रयत्न थी। 1944 मे भारत के आठ प्रमुख उद्योगपतियो—घनश्यामदास* बिडला, जे आर. डी टाटा, जॉन मथाई, ए डी श्रोफ, कस्तूरभाई लालभाई, सर आर्देशीर दलाल, सर पुरुषोत्तमदास, ठाकुरदास और सर श्रीराम ने भारत के आर्थिक विकास की एक योजना प्रस्तुत की। यही योजना 'बम्बई योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। यह पन्द्रह-वर्षीय योजना थी। इस योजना का अनुमानित व्यय 10 हजार करोड रुपये था। इसका लक्ष्य योजनावधि मे प्रति व्यक्ति आय को दुगुना अर्थात् 65 रुपये से बढाकर 130 रुपये करना और राष्ट्रीय आय को 2200 से बढाकर 6600 करोड रुपये करके तिगुना करना था। इस योजना के अन्तर्गत 1944 के अको पर कृषि-प्रदा (Agriculture Output) मे 130 प्रतिशत, औद्योगिक प्रदा (Industrial Output) मे 500% और सेवाओ के उत्पादन (Output of Services) मे 200% वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे।

बम्बई योजना एक प्रकार से उत्पादन योजना थी। योजना के सम्पूर्ण व्यय का 45% भाग उद्योगो के लिए निर्धारित किया गया था। उद्योग प्रधान होते हुए भी इस योजना मे कृषि के विकास पर समुचित ध्यान दिया गया था। कृषि के लिए 1240 करोड रुपये के व्यय का आवटन किया गया। कृषि-उत्पादन मे 130% के वृद्धि के लक्ष्य के साथ ही सिचाई-सुविधाओ मे 200% वृद्धि का लक्ष्य भी रखा गया।

कृषि एव उद्योग के अतिरिक्त इस योजना मे यातायात के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया । इस योजना मे 453 करोड रुपये के व्यय से 4001 मील लम्बी रेल लाइनों को 6200 मील तक बढाने का लक्ष्य रखा गया तथा इसके अतिरिक्त 2,26,000 मील कच्ची सडको को पक्का बनाने, मुख्य गाँवो को महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों से जोडने और बन्दरगाहो की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि करने का प्रस्ताव भी था । यातायात की मद पर कुल व्यय 940 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया ।

योजना की समीक्षा

इस योजना मे निजी क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया । योजना की वित्त-व्यवस्था के अनुमान भी महत्त्वाकांक्षी थे । गृह-उद्योगो के विकास के लिए इस योजना मे निश्चित कायक्रमो का आयोजन नही किया गया । व्यापार-सन्तुलन से छ सौ करोड रुपये, पौड पावने से 1000 करोड रुपये और विदेशी सहायता से 700 करोड रुपये की राशि प्राप्त करने के अनुमान भी सदिग्ध थे । इन सब कमियो के बावजूद इस योजना ने राष्ट्रीय आर्थिक पुर्ननिर्माण की दिशा मे एक समन्वित प्रयास और साहसिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया ।

जन योजना
(People's Plan)

'बम्बई योजना' के तीन माह बाद ही इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर की ओर से श्री एम एन. राय द्वारा जन-योजना प्रकाशित की गई । यह दस-वर्षीय योजना थी जिसके लिए अनुमानित व्यय की राशि 15000 करोड रुपये निर्धारित की गई । जन-योजना का मूल उद्देश्य जनता की तत्कालीन मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना था । इस योजना के प्रथम पाँच वर्षों मे कृषि पर तथा अगले 5 वर्षों मे उद्योगो के विकास पर बल दिया गया था । इस योजना मे कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी । कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए भूमि मे 10 करोड एकड की वृद्धि, सिचाई के साधनो मे 400% की वृद्धि तथा अधिक मात्रा मे अच्छे खाद और बीज के उपयोग के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे । राजकीय सामूहिक कृषि के विस्तार, भूमि के राष्ट्रीयकरण और राजकीय कृषि-फार्म की स्थापना क सुझाव भी इस योजना मे रखे गए थे । इसके अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन मे 600% की वृद्धि का लक्ष्य इस योजना मे रखा गया था और निजी उद्योगो में लाभ की दर को 3% तक सीमित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था ।

यातायात के अन्तर्गत इस योजना मे सडको व रेलो की लम्बाई मे क्रमश: 15% एव 50% की वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किए गए थे । सडको की लम्बाई मे 45,00,00 मील और रेलमार्गो मे 24,000 मील की वृद्धि करने का आयोजन था । जहाजी यातायात के विकास के लिए 155 करोड रु. निर्धारित किए गए थे ।

जन-योजना मे ग्रामीण-क्षेत्रो की आय मे 300% और औद्योगिक क्षेत्र की आय मे 200% वृद्धि का अनुमान किया गया था । सहकारी समितियो को प्रोत्साहन

वित्तीय सस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण, धन व व्यापार का समान वितरण, गृह-निर्माण योजना आदि कार्यक्रम भी इस योजना मे सम्मिलित थे।

योजना की समीक्षा

इस योजना मे कृषि को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया था। कृषि की तुलना मे औद्योगिक विकास की उपेक्षा की गई थी। कुटीर-उद्योगो की ओर इस योजना मे यथोचित ध्यान नही दिया गया था, किन्तु इस योजना मे प्रस्तावित कृषक वर्ग की ऋण-ग्रस्तता तथा लाभ की भावना के नियन्त्रण सम्बन्धी आर्थिक सुझाव स्वागत योग्य थे।

गाँधीवादी योजना
(Gandhian Plan, 1944)

इस योजना के निर्माता वर्धा के गाँधीवादी नेता श्रीमन्नारायण अग्रवाल थे। यह योजना एक आदर्शवादी योजना थी, जिसका निर्माण गांधीजी के सिद्धान्तो के आधार पर किया गया था। इस योजना का अनुमानित व्यय 3500 करोड रु निर्धारित किया गया। इस योजना का मुख्य लक्ष्य ऐसे विकेन्द्रित आत्म-निर्भर कृषि-समाज की स्थापना करना था जिसमे गृह उद्योगो के विकास पर बल दिया गया हो।

यह योजना दस वर्षीय थी। इस योजना के लिए निर्धारित 200 करोड रु की आवर्तक राशि (Recurring Amount) को सरकारी उपक्रमों तथा 3500 करोड रु की अनावर्तक राशि (Non-Recurring Amount) को आन्तरिक मुद्रा-प्रसार और करारोपण द्वारा प्राप्त किया जाना था।

इस योजना मे 175 करोड रु के अनावर्तक और 5 करोड रु के आवर्तक व्यय से सिंचाई सुविधाओ को दुगुना करने का कार्यक्रम बनाया गया था। योजना का लक्ष्य दस वर्षो मे कृषि की आय को दुगुना करना था। योजना मे गृह और ग्रामीण उद्योगो को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। साथ ही सुरक्षा, उद्योग, खानें, जल-विद्युत-शक्ति, मशीन और मशीनरी औजार, रसायन इन्जीनियरिंग आदि बडे और आधारभूत उद्योगो के विकास के लिए भी कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे। इसके अतिरिक्त रेल यातायात मे 25% की वृद्धि ग्रामीण-क्षेत्रो मे 2,00 000 मील लम्बी अतिरिक्त सडको का निर्माण तथा चिकित्सा व शिक्षा सुविधाओ मे पर्याप्त विकास कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे।

योजना की समीक्षा

इस योजना के दो पक्ष थे—एक ग्रामीण क्षेत्र का विकास ग्रामीण जीवन के अनुसार व दूसरा नगरीय क्षेत्र जिसका विकास बडे उद्योगो द्वारा किया जाना था। परन्तु इस प्रकार का समन्वय असम्भव था। योजना मे हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) को भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया किन्तु एक विशेषता यह थी कि इसमे भारतीय आदर्शों को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

अन्य योजनाएँ
(Other Plans)

सन् 1944 मे भारत की तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने सर आर्देशीर दलाल की अध्यक्षता मे योजना विभाग स्थापित किया । इस विभाग ने अल्पकालीन व दीर्घकालीन कई योजनाएँ तैयार की जिनको युद्ध के पश्चात् क्रियान्वित किया जाना था । किन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद परिस्थितियाँ बदल गईं, अत किसी भी योजना पर कार्य नही किया जा सका ।

सन् 1946 मे भारत की अन्तरिम सरकार ने विभिन्न विभागो द्वारा तैयार की गई परियोजनाओ पर विचार करने तथा उनके सम्बन्ध मे रिपोर्ट देन के लिए एक Planning Advisory Board की स्थापना की जिसके अध्यक्ष श्री के. सी नियोगी नियुक्त हुए । मण्डल ने नियोजन के मुख्य उद्देश्यो के रूप मे जनता के जीवन-स्तर को उठाने और पूर्ण रोजगार देने पर बल देने का सुभाव रखा । मण्डल न एक प्राथमिकता बोर्ड (Priorities Board) तथा एक योजना कमीशन (Planning Commission) की स्थापना के सुझाव भी दिए ।

स्वतन्त्रता के बाद नियोजन
(Planning after Independence)

सन् 1947 मे राजनीतिक स्वतन्त्रता ने आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए मार्ग प्रशस्त किया । कृषि, सिंचाई और खनिज सम्पदा के अनदोहित साधनो और उपलब्ध साधनो का आवटन करने की जरूरत थी । आयोजन के द्वारा सुनिश्चित राष्ट्रीय प्राथमिकताओ के ढांचे के अन्तर्गत तेज और सन्तुलित विकास सम्भव हो सकता था । नवम्बर, 1947 मे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने श्री नेहरू की अध्यक्षता मे Economic Programme Committee की स्थापना की जिसने 25 जनवरी, 1948 को अपने विस्तृत सुझाव प्रस्तुत किए और यह अनुशसा दी कि एक स्थायी योजना आयोग की स्थापना की जाए ।

भारत सरकार ने देश के साधनो और आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए विकास का ढांचा तैयार करने के लिए मार्च, 1950 मे योजना आयोग की नियुक्ति की । आयोग ने मोटे तौर पर भारत मे नियोजन के दो उद्देश्य बतलाए—

1 उत्पादन मे वृद्धि करना और जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना ।

2 स्वतन्त्रता तथा लोकतान्त्रिक मूल्यो पर आधारित ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का विकास करना जिसमे राष्ट्रीय जीवन की सभी सस्थाओ के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय प्राप्त हो ।

आर्थिक नियोजन के लक्ष्य इस प्रकार रखे गए—

1. राष्ट्रीय आय म अधिकतम वृद्धि करना ताकि प्रति व्यक्ति औसत आय बढ सके ।

2. तीव्र औद्योगीकरण एव आधारभूत उद्योगो का शीघ्र विकास ।

3. अधिकतम रोजगार ।

4. आय की असमानताओ मे कमी एव धन का अधिक समान वितरण।

5. देश मे समाजवादी ढग पर आधारित समाज (Socialistic Pattern of Society) का निर्माण।

इन सभी लक्ष्यो और उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए देश मे पचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात हुआ। अभी तक तीन पचवर्षीय योजनाएँ (1951–52 से 1965–66), तीन एकवर्षीय योजनाएँ (1966 से 1969) तथा चतुर्थ पचवर्षीय योजना (अप्रैल, 1969 से मार्च, 1974) समाप्त हो चुकी हैं और 1 अप्रैल, 1974 से चालू की गई पाँचवी पचवर्षीय योजना के तीन वर्ष बीत चुके हैं।

प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाएँ[1]
(First Three Five Year Plans)

उद्देश्य (Objectives)—प्रथम पचवर्षीय योजना (1951–52 से 1955–56) के दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य युद्ध और देश के विभाजन के कारण उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन को ठीक करना था। दूसरा उद्देश्य था, साथ ही साथ सर्वांगीण, सन्तुलित विकास की प्रक्रिया शुरू करना जिससे निश्चित रूप से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो और जीवन-स्तर मे सुधार हो। 1951 मे देश को 47 लाख टन खाद्यान्न आयात करना पडा था और अर्थ व्यवस्था पर मुद्रा स्फीति का प्रभाव था। इसलिए योजना मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिचाई और बिजली परियोजना सहित कृषि को दी गई और इनके विकास के लिए सरकारी क्षेत्र के 2,069 करोड रु के कुल परिव्यय (जो बाद मे बढाकर 2,356 करोड रु कर दिया गया) का 44·6 रखा गया। इस योजना का उद्देश्य निवेश को राष्ट्रीय आय के 5% से बढाकर लगभग 7% करना था।

दिसम्बर, 1954 मे लोकसभा ने घोषित किया कि आर्थिक नीति का व्यापक उद्देश्य 'समाज के समाजवादी ढाँचे' की प्राप्ति होना चाहिए। समाज के समाजवादी ढाँचे के अन्तर्गत प्रगति की रूपरेखा निर्धारित करने की आधारभूत कसौटी निजी मुनाफा नही, बल्कि सामाजिक लाभ और आय तथा सम्पत्ति का समान वितरण होना चाहिए। इस बात पर बल दिया गया कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था, विज्ञान और टेक्नोलोजी के प्रति कुशल तथा प्रगतिशील दृष्टि अपनाए और उस स्तर तक क्रमिक प्रगति के लिए सक्षम हो कि आम जनता खुशहाल हो सके।

द्वितीय योजना (1956–57 से 1960–61) मे भारत मे समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा मे विकास-ढाँचे को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किए गए। इस योजना मे विशेष बल इस बात पर दिया गया कि आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम साधन-प्राप्त वर्गों को मिलें और आय, सम्पत्ति और आर्थिक शक्ति के चन्द हाथो मे सिमटने की प्रवृत्ति मे लगातार कमी हो। इस योजना के उद्देश्य थे—(1) राष्ट्रीय आय मे 25% वृद्धि, (2) आधारभूत

1. India 1973

और भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल देते हुए द्रुत औद्योगीकरण, (3) रोजगार के अवसरों में वृद्धि और (4) आय और सम्पत्ति की विषमताओं में कमी तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण। इस योजना का उद्देश्य निवेश-दर को राष्ट्रीय आय के लगभग 7% से बढा कर 1960-61 तक 11% करना था। योजना में औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया। लोहे तथा इस्पात और नाइट्रोजन उर्वरकों सहित रसायनों के उत्पादन में वृद्धि और भारी इन्जीनियरी तथा मशीन निर्माण उद्योग के विकास पर जोर दिया गया। योजना में सरकारी क्षेत्र का कुल परिव्यय 4,800 करोड रु था। इसमें से 3,650 करोड रु. निवेश के लिए था और निजी क्षेत्र का परिव्यय 3,100 करोड रु था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-62 से 1965-66) शुरू हुई जिसका मुख्य उद्देश्य स्वय-स्फूर्त विकास की दिशा में निश्चित रूप से बढना था। इसके तात्कालिक उद्देश्य ये थे—(1) राष्ट्रीय आय में 5% वार्षिक से अधिक की वृद्धि करना और साथ ही ऐसा निवेश ढांचा तैयार करना कि यह वृद्धि-दर आगामी योजना अवधियों में बनी रहे, (2) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और कृषि-उत्पादन बढाना जिससे उद्योग तथा निर्यात की जरूरतें पूरी हो सकें, (3) इस्पात, रसायनों, ईंधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगों का विस्तार करना और मशीन निर्माण-क्षमता स्थापित करना ताकि आगामी लगभग 12 वर्षों में औद्योगीकरण की भावी मांगों को मुख्यत देश के अपने साधनों से पूरा किया जा सके, (4) देश की जन-शक्ति के साधनों का अधिकतम उपयोग करना और रोजगार के अवसरों का पर्याप्त विस्तार करना, और (5) उत्तरोत्तर अवसरों की समानता में वृद्धि करना और आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण करना। राष्ट्रीय आय में लगभग 30 प्रतिशत वृद्धि कर के 1960-61 में 14,500 करोड रु. से बढाकर (1960-61 के मूल्यों पर) 1965-66 में 19,000 करोड रु. करना और प्रति व्यक्ति आय में लगभग 17% वृद्धि कर के 330 रु. के बजाय इस अवधि के दौरान लगभग 385 रु करना।

परिव्यय और निवेश (Out-lay and Investment)—पहली योजना में, सरकारी क्षेत्र में 2,356 करोड रु के संशोधित परिव्यय के मुकाबले व्यय 1960 करोड रु हुआ। दूसरी योजना में, सरकारी क्षेत्र में 4,800 करोड रु. की व्यवस्था के मुकाबले वास्तविक खर्च 4,672 करोड रु रहा जबकि निजी क्षेत्र में 3,100 करोड रु का विनियोग हुआ। तीसरी योजना में सरकारी क्षेत्र के लिए 7,500 करोड रु. के परिव्यय का प्रावधान था। इसके मुकाबले सरकारी क्षेत्र में वास्तविक खर्च 8,577 करोड रु. रहा। निजी क्षेत्र में 4,000 करोड रु. से अधिक का विनियोजन हुआ।

तीनों योजनाओं में उपलब्धियां (Achievements During the Three Plans)—पन्द्रह वर्षों के आयोजन से, समय-समय पर बाधाओं के बावजूद अर्थ-व्यवस्था में सर्वांगीण प्रगति हुई। आधारभूत सुविधाएँ जैसे सिंचाई, बिजली और

परिवहन मे काफी विस्तार हुआ और छोटे बडे उद्योगो के लिए बहुमूल्य खनिज भण्डार स्थापित किए गए।

पहली योजना मे मुख्यत कृषि उत्पादन मे बढोत्तरी से, राष्ट्रीय आय मे निर्धारित लक्ष्य 12 / से अधिक यानी 18 / वृद्धि हुई। दूसरी योजना मे राष्ट्रीय आय मे 25 / के निर्धारित लक्ष्य के मुकाबले 20 / वृद्धि हुई और तीसरी योजना मे राष्ट्रीय आय (सशोधित) 1960-61 के मूल्यो पर पहले चार वर्षों मे 20% बढी और अन्तिम वर्ष में इसमे 5·7% की कमी आई। जनसख्या में 25 / की वृद्धि के कारण 1965–66 में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय वही रही जो 1960–61 मे थी।

पहली दो योजनाओ में कृषि-उत्पादन लगभग 41 / बढा। तीसरी योजना में कृषि उत्पादन सन्तोषजनक नही था। 1965–66 और 1966–67 में सूखा पडा और कृषि-उत्पादन तेजी से गिरा। इससे अर्थ-व्यवस्था की विकास दर में ही कमी नहीं आई, बल्कि खाद्यान्नो के आयात पर भी हमारी निर्भरता बढी। तीसरी योजना में देश ने 250 लाख टन खाद्यान्नो का आयात किया। हमें कपास की 39 लाख और पटसन की 15 लाख गाँठें भी आयात करनी पडी।

पहली दो योजनाओं मे सगठित निर्माता उद्योगो मे शुद्ध उत्पादन लगभग दुगुना हुआ। इसमे सरकारी क्षेत्र के उद्योगो का योग, जो पहली योजना के शुरू मे 1 5 प्रतिशत था, दूसरी योजना के अन्त तक बढ कर 8 4 प्रतिशत हो गया। यह वृद्धि अधिकतर इस्पात, कोयला, खान, भारी रसायन जैसे आधारभूत उद्योगो मे हुई। तीसरी योजना के पहले चार वर्षों मे सगठित उद्योग का उत्पादन 8 10 प्रतिशत वार्षिक बढा। लेकिन योजना के अन्तिम वर्ष मे भारत-पाकिस्तान युद्ध से हुई गडबडी और विदेशी सहायता मे आई बाधाओ के कारण वृद्धि दर घट कर 5·3 प्रतिशत रह गई। कुल मिलाकर तीसरी योजना मे सगठित उद्योगों की वृद्धि-दर 11 प्रतिशत के लक्ष्य के मुकाबले 8 2 प्रतिशत रही लेकिन इस काल मे एक उल्लेखनीय बात उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि तथा विविधता रही। यह बात प्रमुख रूप से इस्पात और अल्यूमीनियम, मशीनी औजार, औद्योगिक मशीनें बिजली और परिवहन उपकरण, उर्वरकों, औषध, औषधियो और पैट्रोलियम के उत्पादन मे हुई। इन सब ने औद्योगिक ढांचे को सुदृढ बनाने मे योग दिया।

आयोजन के इन वर्षों मे स्वास्थ्य और शैक्षणिक सुविधाओं का उल्लेखनीय विस्तार हुआ। 1950–51 मे जन्म पर अपेक्षित आयु 35 वर्ष थी जो 1971 मे 50 वर्ष हो गई। स्कूलों मे प्रवेश की सख्या 1950–51 मे 235 लाख थी जो 1965–66 तक बढकर 663 लाख हो गई। अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जन जातियो की दशा सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए जिनसे उन्हे अनेक लाभ मिले और उनकी दशा बेहतर हुई।

तीन वार्षिक योजनाएँ (Three Annual Plans)

तीसरी योजना के बाद तीन एक वर्षीय योजनाएँ (1966–69) कार्यान्वित की गईं। भारत-पाकिस्तान युद्ध से उत्पन्न स्थिति, दो वर्षों के लगातार भीषण सूखे,

मुद्रा अवमूल्यन, मूल्यों मे वृद्धि और योजना के लिए उपलब्ध साधनो मे कमी के कारणों से चौथी योजना को अन्तिम रूप देने मे बाधा पडी। इस दौरान चौथी योजना के मसविदे को ध्यान मे रखते हुए तीन एकवर्षीय योजनाएँ बनाई गई। इनमे तत्कालीन परिस्थितियो का ध्यान रखा गया। इस अवधि मे अर्थ व्यवस्था की स्थिति और योजना के लिए वित्तीय साधनो की कमी से विकास व्यय कम रहा।

वार्षिक योजनाओ मे विकास की मुख्य मदो का व्यय इस प्रकार रहा (करोड रु मे) कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र 1 166 6, सिचाई और बाढ-नियन्त्रण 457 1, बिजली 1,182 2, ग्राम और लघु उद्योग 144 1, उद्योग और खनिज 157 0, परिवहन और सचार 1,239 1, शिक्षा 322 4, वैज्ञानिक अनुसन्धान 51 1, स्वास्थ्य 140 1, परिवार नियोजन 75 2, पानी की सप्लाई और सफाई 100 6, आवास शहरी और क्षेत्रीय विकास 63 4 पिछडी जातियो का कल्याण 68 5, समाज कल्याण 12 1, श्रम कल्याण और कारीगरो का प्रशिक्षण 32 5 और अन्य कार्यक्रम 123 5। तीन वार्षिक योजनाओ का कुल व्यय 6,756 5 करोड रुपये रहा।

चौथी और पांचवी पचवर्षीय योजनाएँ
(Fourth and Fifth Five Year Plans)

चौथी पचवर्षीय योजना अप्रेल, 1969 से शुरू होकर मार्च 1974 तक रही और तत्पश्चात् *1 अप्रेल, 1974 से पाँचवी पचवर्षीय योजना चालू की गई जिसके* तीन वर्ष पूरे होने को हैं। इन दोनो ही याजनाओ का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है।

भारत मे नियोजन : समाजवादी समाज का आदर्श
(Planning in India Ideal of Socialistic Pattern of Society)

नियोजन का अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण है जिसमे व्यक्ति तथा समाज के लिए सुरक्षा, स्वतन्त्रता और अवकाश के लिए स्थान हो—जिसमे व्यक्ति को उत्पादक दृष्टि से, नागरिक की दृष्टि से और उपभोक्ता की दृष्टि से समुचित सन्तोष मिले। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार के लिए अनिवार्य हो गया कि एक निश्चित *जीवन-स्तर, पूर्ण रोजगार, आय का समान वितरण आदि की व्यवस्था* करके देशवासियों को सुरक्षा प्रदान की जाए। यह तभी सम्भव था जब उत्पादन के मुख्य साधनो पर समाज का अधिकार हो, उत्पादन की गति निरन्तर विकासमान हो और राष्ट्रीय आय का उचित वितरण हो। अत देश की भावी नीति को और देश के आर्थिक नियोजन को इन्हीं लक्ष्यो की पूर्ति के हेतु आवश्यक मोड देने का निश्चय किया गया। ऐसे उपाय खोजे जाने लगे जिनसे अधिकतम लोगो का अधिकतम कल्याण हो सके। 1947 मे दिल्ली कांग्रेस की बैठक मे पारित प्रस्ताव मे कहा गया था—"*हमारा उद्देश्य एक ऐसे आर्थिक कलेवर का नव निर्माण और विकास होना* चाहिए जिसमे धन के एक ही दिशा मे एकत्र होने की प्रवृत्ति के बिना अधिकतम

उत्पादन किया जा सके, जिसमे नागरिक एव ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे उचित सामञ्जस्य हो।" 1954 के अजमेर अधिवेशन मे स्वर्गीय नेहरू ने कहा था कि वर्तमान भारत की समाजवादी व्यवस्था वस्तुत गांधीवादी समाज और विकासात्मक व्यवस्था के समन्वय का नया रूप है और देश के आर्थिक पुनर्निर्माण तथा देश मे समाजवादी समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि शीघ्रातिशीघ्र आय के असमान वितरण को दूर किया जाए, प्राप्त साधनो का विदोहन किया जाए, पूंजी को बाहर निकाला जाए, बेरोजगारी की समस्या को हल किया जाए तथा देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास किया जाए। 1954 म ही लोक सभा मे पारित प्रस्ताव मे कहा गया कि जन-समुदाय के भौतिक कल्याण से ही देश की उन्नति सम्भव नही है, इसके लिए सामाजिक व्यवस्था मे संस्थागत (Institutional) परिवतन करने होगे। तत्पश्चात् 22 जनवरी, 1955 को अवाडी अधिवेशन मे आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ जिसमे ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया गया जो समाजवादी समाज के निर्माण मे सहायक हो। उपर्युक्त प्रस्ताव मे समाजवादी समाज के इन मौलिक सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा गया—

(1) पूर्ण रोजगार, (2) राष्ट्रीय धन का अधिकतम उत्पादन, (3) अधिकतम राष्ट्रीय आत्म-निभरता, (4) सामाजिक एव आर्थिक न्याय, (5) शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक और लोकतान्त्रिक तरीको के प्रयोग, (6) ग्राम पचायतो व। समितियो की स्थापना, एव (7) व्यक्ति की सर्वोच्चता एव उसकी आवश्यकताओं को अधिकतम प्राथमिकता।

समाजवादी समाज के इन सिद्धान्तो को ध्यान मे रखते हुए अवाडी अधिवेशन मे समाज की स्थापना के लिए ये लक्ष्य रखे गए—(1) जन साधारण के जीवन-स्तर मे वृद्धि, (2) उत्पादन स्तर मे वृद्धि, (3) दस वर्ष मे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था, (4) राष्ट्रीय धन का समान वितरण, एव (5) व्यक्ति तथा समाज की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति आदि। योजना आयोग द्वारा इन सिद्धान्तो का समर्थन किया गया और इस प्रकार की व्यवस्थाएँ की गई जो समाजवादी समाज की आधारशिला बन सकें। द्वितीय पचवर्षीय योजना का मूल आधार समाजवादी समाज का निर्माण रखा गया और इस दिशा मे आगे बढने के लिए तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा के मुख्य निर्माता विख्यात अर्थशास्त्री महालनोबिस ने निम्नलिखित आठ उद्देश्यो पर विशेष बल दिया—

(1) सावजनिक क्षेत्र के महत्त्व और उसकी सीमा को विस्तृत करना।
(2) आर्थिक सुदृढता के लिए आधारभूत उद्योगो का विकास।
(3) गृह उद्योगो एव हस्तकला वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन।
(4) भूमि सुधारो की गति मे तेजी एव भूमि का समान वितरण।
(5) छोटे उद्योगो का बडे उद्योगो से रक्षण करना और उन्हे पूरक बनाना।
(6) जन-साधारण के लिए आवास, स्वास्थ्य सेवाओ और शिक्षा सेवाओ का विस्तार।

(7) बेरोजगारी समस्या की दस वर्षों मे समाप्ति ।

(8) इस अवधि मे राष्ट्रीय आय मे 25% की वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय का समान व उचित वितरण ।

1973–74 तक नियोजन और समाजवादी आदर्श की प्राप्ति का मूल्यांकन

स्पष्ट है कि भारत मे नियोजन का आधार समाजवादी समाज का निर्माण रहा और इस दिशा मे आगे बढने के लिए नियोजन मे विभिन्न कदम उठाए गए। प्रगति भी हुई, राष्ट्रीय आय बढी जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

आर्थिक प्रगति आँकडो मे[1]

	1960-61	1965-66	1973-74
राष्ट्रीय आय .			
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्यो पर	13,300 करोड रु.	20,600 करोड रु.	49,300 करोड रु.
स्थिर मूल्यों पर	13,300 करोड रु.	15,100 करोड रु.	19,700 करोड रु.
प्रति व्यक्ति आय			
वर्तमान मूल्यो पर	306 रु.	426 रु.	850 रु.
स्थिर मूल्यो पर	306 रु	311 रु.	340 रु.
औद्योगिक उत्पादन का सूचक			
(1960=100)	100 रु	154 रु.	201 रु.
भुगतान सन्तुलन			
विदेशी मुद्रा कोष	304 करोड रु.	298 करोड रु.	947 करोड रु.
विदेश व्यापार			
निर्यात	660 करोड रु.	810 करोड रु.	2,483 करोड रु.
आयात	1,140 करोड रु	1,394 करोड रु	2,921 करोड रु.

लेकिन नियोजन की वास्तविक उपलब्धियो को समाजवादी समाज के दर्पण मे देखने पर अधिकांशत निराशा ही हाथ लगी। इसमे सन्देह नही कि सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रयत्न किए और योजनाओ को इस दिशा मे मोडने तथा गति देने के लिए विभिन्न कदम उठाए, लेकिन विभिन्न कारणो से इसमे अपेक्षित सफलता न मिल सकी। व्यवहार मे समाजवादी तत्वो को कोई प्रोत्साहन नही मिल पाया और न ही आय तथा सम्पत्ति का कोई उचित वितरण हो सका। चार पचवर्षीय योजनाओ, तीन एक वर्षीय योजनाओ और पांचवी योजना के प्रारम्भिक डेढ वर्ष के सम्पन्न होने के बाद भी यह देखकर सभी क्षेत्रो मे निराशा छाई रही कि आय और धन की असमानताओ मे भारी वृद्धि हुई है तथा राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग उद्योगपतियो और पूँजीपतियो को मिला है। यद्यपि निम्न वर्गों के रहन-सहन के स्तर मे कुछ सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन तुलनात्मक रूप से

1. भारत सरकार · सफलता के दस वर्ष (1966–1975), पृष्ठ 47–53.

यह निराशाजनक है और असमानताओ की खाई पहले से बढी है। समाजवाद लाने की आशा जगाने वाले अनेक सरकारी सस्थानो मे भी पूँजीपतियो का प्रभुत्व छाया हुआ है। देश मे न तो समाजवादी मनोवृत्ति ही जाग्रत हुई है और न व्यक्ति की आर्थिक सुरक्षा ही प्राप्त हो सकी है। पूर्ण रोजगार की बात तो दूर रही, बेरोजगारो की फौज निरन्तर बढती जा रही है जिसका सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड रहा है। देश की श्रम-शक्ति का सदुपयोग न हो पाने से और बडी मात्रा मे उसके व्यर्थ पडे रहने से राष्ट्र को कितनी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक हानि होती है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास द्वारा निजी-क्षेत्र पर कुछ रोक अवश्य लगी है, लेकिन आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर कोई प्रभाव नही पडा है। क्षेत्रीय असमानताएँ भी बहुत कुछ यथापूर्व बनी हुई हैं और एकाधिकारी शक्तियो मे वृद्धि हो रही है।

वस्तुत, समाजवाद की कल्पना कोरे कागजो पर ही हुई। देश मे जिस दर से महँगाई बढी, वस्तुओ के भाव आकाश छूने लगे और साधारण जनता जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओ मे भी जितने कष्ट का अनुभव करने लगी, उससे समाजवादी समाज का निर्माण कोसो दूर दिखाई देता था। मूल्य-वृद्धि का सामना करने के लिए सबसे सरल उपाय कर्मचारियो के वेतन मे वृद्धि और तद्नुसार घाटे की अर्थव्यवस्था समझा जाता रहा है। लेकिन इससे स्वभावत मुद्रा-प्रसार होता है और मुद्रा-प्रसार से हमे पुन मूल्य-वृद्धि के भवर म फँसना पडता है। फलस्वरूप हमारे गरीबी के कष्ट और अधिक बढ जाते है। इसीलिए शहरो मे पाए जाने वाला गरीब-अमीर का अन्तर गाँवो मे भी काफी गहरा होता गया। जैसा कि योगेशचन्द्र शर्मा ने 22 अप्रेल, 1973 के योजना-अ क मे प्रकाशित एक लेख मे लिखा—"गाँवो मे एक ओर तो बडे-बडे भू-पति है, जिनके पास स्वय अपने नाम पर या रिश्तेदारो के नाम पर दूर-दूर तक फैली हुई कृषि-भूमि है और दूसरी ओर ऐसे किसान हैं जिनके पास केवल एक या दो बीघा जमीन है। बडे भू-पतियो में या तो शहर के पूंजीपति और पुराने जमीदार हैं अथवा ऐसे राजनीतिक नेता है जिन्होने अपने प्रभाव से काफी जमीन अपने पास बटोर ली है। ये भू पति निश्चित रूप से मूल्य-वृद्धि से काफी लाभान्वित हुए हैं और बढी हुई राष्ट्रीय आय को दोनो हाथो से बटोर रहे हैं। दूसरी ओर किसान हैं जो इस स्थिति में भी नही हैं कि पैदा हुई फसल को कुछ समय तक रोक कर अपने पास रख लें। उन्हे तो तत्काल अपनी फसल को बाजार में ले जाकर बेचना पडता है, ताकि अपने लिए आवश्यकता की वस्तुएँ जुटा सकें।"

योजनाओ के आँकडो से पता चलता है कि भूमि का वितरण भी उचित रूप से नहीं हुआ। उपर्युक्त लेख के अनुसार "देश भर मे जुलाई, 1972 तक लगभग 24 लाख एकड भूमि पर सरकार ने कब्जा किया, जिसमे लगभग आधा भाग ही वितरित किया जा सका।" यथार्थ रूप मे कृषि-मजदूरो और पट्टेदारो की सख्या मे भी सन्तोषप्रद कमी नही आई। ग्रामीण जीवन पर सहकारी सिद्धान्त का प्रभाव व्यवहार मे निराशाजनक रहा। गाँवो मे जो भूमिहीन व्यक्ति हैं, उन्हें रोजगार देने

के लिए बहुत कम सोचा गया तथा उसके व्यावहारिक स्वरूप को और भी कम महत्त्व दिया गया। न्यूनतम जीवन-स्तर की कल्पना कागजी ही अधिक रही। डॉ राव ने ठीक ही विचार व्यक्त किया कि 'यदि समाजवाद के प्रश्न पर सरकारी दृष्टि से विचार किया जाए अथवा केवल आँकडो की दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस दिशा मे काफी प्रगति हुई है। लेकिन वास्तविकता यह है कि जितनी उम्मीद थी उतनी भी आर्थिक उन्नति नही हुई है।""देश मे समाजवादी मनोवृत्ति एव प्रवृत्ति का स्पष्ट रूप कही देखने को नही मिलता और न इस प्रकार की प्रवृत्ति पैदा करने की दिशा मे कोई कार्यवाही की जा रही है। इसके विपरीत पूँजीवादी मनोवृत्ति एव प्रवृत्ति दिन पर दिन बढती जा रही है और सरकारी नीति तथा कार्यक्रम भी इनका उत्साह भग करने मे सफल नही हो पाए हैं।" डॉ राव का यह विचार निश्चय ही सारपूर्ण था कि "समाजवादी समाज के लिए आयोजन व्यूह रचना और तकनीक मे मूल तत्त्व का अभाव रहा है। मूल तत्त्व ये हैं कि हमजन-साधारण मे आस्था पैदा करने और जन-सहयोग प्राप्त करने मे सफल नही हो रहे है।"

भारत मे समाजवादी समाज की दिशा मे नियोजन की सफलता का मूल्यांकन देश मे व्याप्त 'गरीबी' के आधार पर किया जाना चाहिए और इस कसौटी पर नियोजन एकदम फीका सिद्ध हुआ। एस एच. पिटके ने 7 मार्च, 1973 के योजना-अक मे प्रकाशित अपने एक लेख मे ठीक ही लिखा कि "गरीबी के स्तर को मापने का सरल निर्देशांक यही हो सकता है कि कुल उपभोक्ता व्ययो का बँटवारा प्रमुख मदो मे किया जाए, जैसे अन्न, ईंधन, कपडा, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरजन आदि। भारत मे इनमे से भोजन पर सर्वाधिक व्यय होता है। अनुमान है कि भारत मे उपभोक्ता के कुल व्यय का 70 से 80 प्रतिशत तक मात्र भोजन पर व्यय होता है।" प्रो दाण्डेकर ने भारत मे गरीबी का जो विद्वतापूर्ण अध्ययन किया उससे भी यह स्पष्ट है कि पिछले दशक के आर्थिक विकास का अधिकतम लाभ ग्रामीण एव शहरी दोनो ही क्षेत्रो मे उच्च, मध्यम श्रेणी तथा अमीर वर्ग को ही हुआ और गरीब वर्ग इससे कुछ भी लाभान्वित नही हो सका, बल्कि उसके उपभोग मे गिरावट हुई। इस अध्ययन का स्पष्ट एव तार्किक निष्कर्ष यह निकलता है कि 1973–74 तक आय की असमानता मे और वृद्धि होकर अमीर तथा गरीब के बीच की खाई और भी विस्तीर्ण हो गई।

1974 से अगस्त 1976 तक का मूल्यांकन

आर्थिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण प्रगतियो के बावजूद दुर्भाग्यवश हम समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य मे असफल रहे। लेकिन राष्ट्र ने बडे सोच विचार के बाद एक ऐसे उद्देश्य को पकडा है जिसकी पूर्ति को असम्भव नही माना जा सकता। वास्तव मे सबसे बडी कमी सरकार के दृढ निश्चय की रही। सरकार द्वारा दी गई सुविधाओ को उन सभी तत्त्वो ने सरकार की कमजोरी समझा जो सभी स्तरो पर आर्थिक अव्यवस्था लाना चाहते थे और सम्भवत उनकी यह भावना ही राजनीतिक

क्षेत्र मे व्याप्त नियन्त्रणहीनता का प्रतिबिम्ब था। यह स्थिति पैदा हो गई कि देश की स्थिरता को कमजोर किया जाने लगा, देश के कई भागो मे हिंसा का वातावरण फैलाया गया, स्थिरता और प्रगति के विरोधी राजनीतिक तत्त्वो ने अस्त व्यस्तता और साम्प्रदायिक भावनाओ को भडकाया। जब यह स्पष्ट हो गया कि सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिरता एव प्रगति खतरे मे पड गई है तो सरकार ने 26 जून, 1975 को राष्ट्रीय आपात् स्थिति की घोषणा की जो अभी अक्तूबर 1976 तक जारी है और निकट भविष्य म जब तक कि राष्ट्र एकदम सुव्यवस्थित नहीं हो जाता, इसके समाप्त होने की सम्भावना नहीं दिखाई देती। इस आपात् स्थिति ने तोड फोड और हिंसा की प्रवृत्तियो की रोकथाम कर दी और अनुशासन का एक नया वातावरण पैदा किया है जो भारत के विकास के लिए विशाल सम्भावनाओ को फिर से सही दिशा प्रदान करने के लिए और सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के ढाचे मे तेजी से वृद्धि के कार्यक्रम को लागू करने के लिए आवश्यक है।

वास्तव मे 1974 के मध्य से ही सरकार समाजवादी समाज के घोषित लक्ष्य की पूर्ति की दिशा मे विशेष रूप से सक्रिय हो गई। इन्दिरा सरकार द्वारा बैंको के राष्ट्रीयकरण ने सरकार के इरादो को पहले ही स्पष्ट कर दिया था, 1974 के मध्य मुद्रा स्फीति को रोकने के लिए कुछ कठोर कदम उठाए गए (अनिवार्य जमा योजना लागू करना आदि)। इसी प्रकार जुलाई 1974 म ही सभी बैंको के सबसे बडे खातो पर रिजर्व बैंको के कठोर निगरानी सम्बन्धी आदेश लागू किए गए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि पाँचवी पचवर्षीय योजना को समाजवादी लक्ष्य की दिशा म यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया गया। पाँचवी योजना जिन लक्ष्यो को प्राप्त करना चाहती है वे इस प्रकार है—

1 एक ऐसा विकास कार्यक्रम, जिसके द्वारा पिछडे तथा शोषित समुदायो को अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूरा बढने का उपयुक्त अवसर मिले और वे भी सबके कल्याण के लिए किए जा रहे कार्यो म हाथ बँटा सकें।

2 एक इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना जिसमे प्रत्येक वयस्क नागरिक को उसके योग्यतानुसार पूरा रोजगार प्राप्त हो सके और वह राष्ट्र की प्रगति म सहयोग दे सके।

3. धन उपार्जित करने की एक ऐसी व्यवस्था तैयार करना जिसके द्वारा अमीर-गरीब के बीच की खाइ को कुछ समाप्त किया जा सके।

4 एक ऐसी जीवन धारा का निर्माण राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता अर्थपूर्ण और वास्तविक रूप मे रहे।

समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की प्रगति के लिए सरकार को अपनी शिथिलता का परित्याग करना होगा और अपनी नीतियो को कठोरतापूर्वक अमलीजामा पहिनाना होगा। नीति निर्माण का उद्देश्य तब विफल हो जाता है जब उस नीति का समुचित ढग से क्रियान्वयन नही हो पाता। सरकार से अपेक्षित है कि—

1 विलासिताओ पर भारी कर लगाया जाए। जब हम आर्थिक स्वतन्त्रता

प्राप्त करने और एक न्यायोचित समाज का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं तो यह अनुचित है कि समाज का एक विशेष वर्ग प्रदर्शन उपभोग मे व्यस्त रहे। न्याय-सिद्धान्त का तकाजा है कि समाज का जो व्यक्ति जितना अधिक कमाता है वह आनुपातिक रूप से सामाजिक जिम्मेदारियो का भी उतना ही अधिक भार वहन करे और अधिक कर देते समय कोई असन्तोष महसूस न करे।

2 सरकार कटिबद्ध होकर उत्पादन के सभी साधनो भूमि श्रम पूँजी साहस और सगठन को एकजुट करके राष्ट्रीय आय मे तीव्र वृद्धि के लिए प्रयत्नशील हो और राष्ट्रीय आय का उचित वितरण कर आय की असमानता कम करने के लिए युद्ध स्तरीय ठोस कदम उठाए।

3 खाद्यान्न उत्पादन म तेजी से अधिकाधिक वृद्धि के लिए ठोस और युद्ध-स्तरीय कदम उठाए जाएँ। सिंचाई खाद जोत आदि के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जाएँ। नहरो बाधो कुओ आदि का बडी सख्या मे निर्माण कर मौसम पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को ठुकराया जाए।

4 औद्योगिक विकास तीव्र गति से हो तथा कुछ समय के लिए पूँजी का निर्यात बन्द करके उससे अपने ही देश मे औद्योगिक विकास किया जाए।

5 घाटे की अर्थव्यवस्था और मुद्रा प्रसार की प्रवृत्ति पर अकुश लगाया जाए।

6 काले धन को बाहर निकालने के लिए कठोर वैधानिक कदम उठाए जाएँ।

7 सम्पन्न किसानो की आय पर ऊँची दर से करारोपण किया जाए और प्राप्त आय से ग्रामीण क्षेत्रो मे नए रोजगार पैदा किए जाएँ।

8 देश के बडे बडे पूँजीपतियो और उद्योगपतियो पर बेरोजगारी टैक्स लगा कर उस धन से बेरोजगार व्यक्तियों को समुचित आर्थिक सहायता दी जाए।

9 हडतालो आदि पर कुछ वर्षों के लिए कठोरतापूर्वक रोक लगाकर देश के उत्पादन को बढाया जाए और श्रम शक्ति का पूरा पूरा उपयोग किया जाए। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए सविधान मे भी सशोधन किया जाए।

10 उद्योगो के राष्ट्रीयकरण से सरकार नए उत्तरदायित्वो से घिर गई है। सरकार इन उत्तरदायित्वो को कुशलतापूर्वक निभाए और सावजनिक क्षेत्र की कार्यक्षमता पर लोगो को सन्देह न होने दे। आधुनिक प्रबन्ध को प्रभावशाली बनाने के लिए सभी स्तरो पर सार्वजनिक अनुशासन का पूरा ध्यान रखा जाए। यह भली प्रकार समझ लिया जाए कि यदि जन जीवन मे सामन्तशाही विशेषता घर करने लगेगी तो समाजवादी समाज की स्थापना के लिए आवश्यक सामाजिक परिवतन के अस्तित्व का आधार ही समाप्त हो जाएगा।

11 सरकार लघु योजनाओ और कार्यक्रमो का जाल बिछाए ताकि बेकार पडी श्रम शक्ति का उपयोग किया जा सके। बेरोजगारी को दूर करने के प्रत्येक सम्भव उपाय किए जाएँ।

12 सामाजिक सेवाओ का तेजी से विस्तार किया जाए पर इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाए कि साधारण जनता और पिछडे वर्गों को उनका

समुचित लाभ मिल सके। वस्तुओं के उत्पादन और उचित वितरण, दोनों पर प्रभावशाली ढंग से ध्यान दिया जाए।

13. बैंक राष्ट्रीयकरण के प्रसंग में जो कमियाँ घर कर गई हैं उनका यथाशीघ्र निराकरण किया जाए। प्रशासनिक व्यय को घटाया जाए। जो 'नए जमींदार और जागीरदार' बने हैं, जो 'नए-नए राजा-महाराजा' पनप गए हैं—उनकी आकस्मिक समृद्धि का पूरा लेखा-जोखा लिया जाए और सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को खाई कम करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जाएँ। उच्च पदाधिकारियों की वेतन वृद्धि की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाए और छोटे राज्य कर्मचारियों की वेतन-वृद्धि पर इस रूप में ध्यान दिया जाए कि उससे मूल्य-वृद्धि को प्रोत्साहन न मिले। इस दिशा में सक्रिय रूप से विचार किया जाए कि न्यूनतम वेतन लगभग 250 रुपए हो और अधिकतम वेतन लगभग 2000 रुपए से अधिक न हो। रेलों में प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी समाप्त कर दी जाए।

यदि इन सभी और इसी प्रकार के अन्य उपायों पर प्रभावी रूप में अमल किया जाए तो इसमें सन्देह नहीं है कि हम नियोजन के माध्यम से समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ सकेंगे। इस लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में 2 जुलाई, 1975 को 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की गई जिसने देश का ध्यान राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास के अधूरे कार्य पर केन्द्रित किया और जिसका समाज के सभी वर्गों ने स्वागत किया। इससे जनता में नई आशा जाग्रत हुई है।

नया आर्थिक कार्यक्रम[1]

यह नया कार्यक्रम अधिक से अधिक तेजी और कुशलता के साथ अमल में लाया जा रहा है और लगभग एक वर्ष की अल्पावधि में ही इसके प्रभावशाली परिणाम आने लगे हैं। आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को कम करने के लिए जो उपाय किए गए थे उन पर जोर दिया जा रहा है और सार्वजनिक वितरण प्रणाली अमल में लाने में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। जन-उपभोग की कई आवश्यक वस्तुओं के मूल्य काफी गिर गए हैं और वे अब पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगी हैं। इससे जन-साधारण को बड़ी राहत मिली है। इस वर्ष खरीफ की फसल रिकार्ड स्तर पर हुई है और आने वाली रबी की फसल की सम्भावनाएँ भी बहुत अच्छी हैं। आशा है कि 1975-76 में भारत में पूर्वापेक्षा सर्वाधिक खाद्यान्नों का उत्पादन (11 4 करोड़ मी. टन) होगा। सर्वाधिक मात्रा में खाद्यान्न की वसूली और उनके पर्याप्त भण्डार जमा करने के भरपूर प्रयत्न किया जा रहे हैं।

सभी राज्यों में सहकारी समितियों के द्वारा छात्रावासों में आवश्यक वस्तुओं की पर्याप्त सप्लाई करने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। इसी प्रकार नियन्त्रित मूल्यों पर किताबों और स्टेशनरी की सप्लाई के लिए भी प्रबन्ध किए गए हैं।

1. भारत सरकार : सफलता के दस वर्ष (1966–1975), पृष्ठ 42-46.

पाठ्य पुस्तकों और स्टेशनरी को तैयार करने तथा वितरण के लिए रियायती दरों पर केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार को कागज दिया है। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के लिए पुस्तकों के मूल्य निश्चित करने के लिए भी कार्रवाई की गई है और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहकारी स्टोर खोले गए हैं। विद्यार्थियों की सहायता के लिए विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के विद्यार्थियों की मदद के लिए 70 हजार से अधिक पुस्तक-कोष देश में कार्य कर रहे हैं। इन कार्यों से विद्यार्थियों में काफी सन्तोष उत्पन्न हुआ है। विश्वविद्यालयों में अब अनुशासनहीनता का वातावरण नहीं है।

कृषि उत्पादन को और अधिक बढ़ावा देने के लिए नए आर्थिक कार्यक्रम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि 50 लाख हैक्टेयर अधिक जमीन में सिंचाई की जाएगी। बिजली के उत्पादन में भी तेजी लाई जा रही है। औद्योगिक क्षेत्र में अर्थव्यवस्था के विभिन्न कमजोर क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। उदाहरणार्थ, अप्रैल से अक्तूबर, 1975 के दौरान पिछले वर्ष की इसी अवधि की अपेक्षा कोयले के उत्पादन में 11 6% बिक्री योग्य इस्पात में 16 4%, एल्यूमीनियम में 38 2%, नत्र जनित रासायनिक खादों में 29 9% सीमेंट में 15 3% और बिजली के उत्पादन में 9 5% की वृद्धि हुई। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के क्रियाकलापों में हुआ सुधार जारी रहा और उत्पादन में वृद्धि की समग्र दर अप्रैल अक्तूबर, 1975 की अवधि में पिछले वर्ष की इसी अवधि की अपेक्षा 15% अधिक रही। रेलों और बन्दरगाहों की कार्यपद्धति में सुधार हो जाने के कारण अब हमारे औद्योगिक उत्पादन में यातायात की कोई बाधा नहीं रही।

जबकि सार्वजनिक क्षेत्र, अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का नियन्त्रण करता है वहीं निजी क्षेत्र को भी देश के विकास के लिए एक विशिष्ट भूमिका सौंपी गई है। हाल ही में कुछ ऐसे परिवर्तन किए गए हैं जिससे कि ये क्षेत्र विशेष रूप से इस भूमिका को पूरा कर सकें। औद्योगिक लाइसेंसिंग नीतियाँ और प्रणालियाँ सरल की गई है ताकि छोटे-छोटे उद्यमी पूँजी विनियोग कर सकें और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में वृद्धि हो सके। सरकार ने आयात और निर्यात प्रणालियों को भी सरल कर दिया है और नई वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाए हैं।

मजदूरों ने भी प्रधान मन्त्री की 'औद्योगिक शान्ति' की अपील पर शानदार ढंग से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। औद्योगिक शान्ति के कारण आपात् स्थिति के बाद जिन व्यक्ति दिनों की हानि हुई है वह पिछले वर्ष की इसी अवधि के व्यक्ति दिनों की हानि के 1/10 भाग से भी कम है। इसी प्रकार अनुचित तालाबन्दियों, छटनियों और जबरन छुट्टी को रोकने के लिए सरकार द्वारा उचित कदम उठाए गए हैं। प्रबन्ध में मजदूरों को सम्मिलित करने की दृष्टि से संयत्र स्तर पर और बिक्री स्तर पर उद्योगों में श्रमिकों को सम्बद्ध करने के लिए एक योजना कार्यान्वित की जा रही है। रोजगार और प्रशिक्षण को बढ़ाने के लिए अप्रेन्टिसशिप योजना की समीक्षा

की गई और एक तिहाई से अधिक जो स्थान खाली रह जाते थे वे सब भरे जा रहे हैं।

लाखो बुनकरो की सहायता के लिए हाथकरघा उद्योग के लिए एक विकास योजना बनाई गई है जिसमे अधिकांश भाग सहकारी समितियो का होगा और इसके द्वारा आवश्यक चीजो की सप्लाई और निर्यात आदि को प्रोत्साहन दिया जाएगा। हाथकरघो के लिए एक पृथक विकास आयुक्त का सगठन बनाया गया है। मिलों के क्षेत्र मे नियन्त्रित कपडे की योजना मे सुधार किया जा रहा है ताकि कपडे की किस्म बढिया हो सके।

कृषि का उत्पादन बढाने के लिए और ग्रामीण समुदाय मे आय तथा सम्पत्ति की विषमताओ को घटाने के लिए भूमि सुधार आवश्यक है। कई राज्यों ने विभिन्न प्रकार के भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यों पर तेजी से अमल करने के लिए और अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन लोगो को देने के लिए कार्रवाई की है। आदिम-जाति के लोगो की जो जमीनें है वे उनसे न ली जा सकें, इसके लिए कदम उठाए जा रहे हैं और उनको अपनी घरेलू जमीनो के स्वामित्व के अधिकार दिए जा रहे हैं। इसके अलावा भूमिहीन और कमजोर वर्गों को 60 लाख से अधिक मकान बनाने की जमीनें दी गई हैं। ग्रामीण मजदूरो का शोषण रोकने के लिए केन्द्रीय सरकार ने एक अध्यादेश द्वारा देश मे सभी प्रकार की बन्धुवा मजदूरी समाप्त कर दी है। न्यूनतम मजदूरियो मे सशोधन किया गया है। साहूकारो के शिकजे से छोटे किसानो और भूमिहीन लोगो को छुटकारा दिलाने के लिए ऋणो पर पाबन्दी लगा दी गई है। कई राज्यो ने इन ऋणो को समाप्त करने के लिए कानून भी बनाया है। इसके साथ-साथ सहकारी ऋण सस्थाओ को मजबूत किया जा रहा है और 50 ग्रामीण बैंको की योजना बनाई गई है जिसमे प्रत्येक बैंक की 100 शाखाएँ होगी। इस प्रकार ग्रामीण कारीगरो और कृषको की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए 5 हजार बैंक होगे। ऐसे 5 बैंक हरियाणा के भिवानी मे, राजस्थान के जयपुर मे, पश्चिमी बगाल के मालदा मे और उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद और गोरखपुर म स्थापित हो चुके हैं।

राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रो मे सुस्ती और अयोग्यता को दूर करने के लिए कदम उठाए गए हैं। मनोवृत्तियो और प्रणालियो को बदलने के लिए प्रशासनिक ढांचे मे कई सुधार किए जा रहे हैं। निकम्मे और बेईमान तत्त्वो को हटाया जा रहा है। सभी सार्वजनिक एजेन्सियो मे ग्राहक सेवा का सुधार किया जा रहा है। इस समय का नारा है—"जनता की सेवा—काम करके दिखलाना।" देश मे उदासीनता और बेबसी का वातावरण अब 'विश्वास और पक्के इरादे' मे बदल रहा है। एक समझदार और साहसी नेतृत्व मे राष्ट्र शक्तिशाली ढग से आत्मनिर्भर और कुशल अर्थ-व्यवस्था की ओर बढ रहा है।

2 योजनाओं मे विकास, बचत एवं विनियोग दरें-नियोजित तथा वास्तव मे प्राप्त

(Growth-rates and Saving [Investment] Rates—Planned and Achieved in the Plans)

भारत मे चार पचवर्षीय योजनाएँ और तीन एकवर्षीय योजनाएँ पूर्ण करने के बाद 1 अप्रेल 1974 से पाँचवी पचवर्षीय योजना लागू हो गई है। अब तक पूरी की गई योजनाओ मे विकास-दर, बचत तथा विनियोग दरो की क्या स्थिति रही है, इसका पर्यवेक्षण करने से पूर्व विकास दर का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्राय विकास-दर को निम्न प्रकार से फार्मूला द्वारा ज्ञात किया जाता है—

$$\text{विकास-दर} = \frac{\text{बचत}}{\text{पूँजी गुणाक या पूँजी-प्रदा-अनुपात}}$$

उदाहरणार्थ, किसी अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी-प्रदा-अनुपात 4 1 है तथा जनसख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2% है और बचत एव विनियोग दर 8% है। इस स्थिति मे उस राष्ट्र की राष्ट्रीय आय 8/4=2% वार्षिक दर से बढेगी। किन्तु जनसख्या की वृद्धि भी 2% होने के कारण प्रति व्यक्ति आय मे कोई वृद्धि नही होगी और इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से देश की अर्थ-व्यवस्था स्थिर बनी रहेगी। चूंकि आर्थिक विकास का अर्थ प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि है, इसीलिए विकास मे वृद्धि के लिए बचत एव विनियोग की दर 8% से *अधिक आवश्यक होगी।* विकास-दर की उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि भारत की योजनाओं मे नियोजित विकास-दर के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम इस देश की बचत एव विनियोग की स्थिति जानना आवश्यक है। यह देखना जरूरी है कि भारत की योजना मे बचत एव विनियोग दरें किस प्रकार रही हैं। उल्लेखनीय है कि भारतीय नियोजन और अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे विविध स्रोतो के आँकडो मे प्राय न्यूनाधिक भिन्नता पायी जाती है। प्रस्तुत अध्याय देश की पचवर्षीय योजनाओ और विख्यात अर्थशास्त्री प्रो विल्फ्रेड मेलनबाम (Wilfred Malenbaum) के अध्ययन पर आधारित है। प्रो. मेलनबाम का अध्ययन प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ और चतुर्थ योजना प्रारूप (1966) के सन्दर्भ मे है। यद्यपि चतुर्थ पचवर्षीय योजना का प्रारूप बाद मे सशोधित किया गया तथापि अध्ययन के लिए कोई विशेष अन्तर नही पडता।

भारत में नियोजित बचत एवं विनियोग की स्थिति

यदि घरेलू बचतो को राष्ट्रीय आय के भाग के रूप में देखें तो 1951-52 में घरेलू बचतें राष्ट्रीय आय का केवल 5 3% थी। यह दर 1955-56 में बढकर 7·5% हो गई तथा 1960-61 में इस दर की स्थिति 8·5% थी। 1965-66 में ये बचतें कुल राष्ट्रीय आय का 106·/ थीं किन्तु 1968-69 में यह घटकर 8·8·/. ही रह गई। चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1973-74 में इस दर की परिकल्पना 13 2 / की गई।

जहाँ तक विनियोजन का प्रश्न है, 1950-51 मे विनियोजन राष्ट्रीय आय का 5 6 / था जो बढकर 1955-56 मे 7 3 /. हो गया, 1960-61 मे 11 7/. 1965-66 में 13 / तथा 1968-69 मे यह कम होकर 11 2·/ हो गया। 1973-74 मे यह दर 13 8 /. अनुमानित की गई थी। बचत व विनियोजन की उपरोक्त दरो को नीचे दी गई तालिका मे प्रस्तुत किया गया है[1]—

वर्ष	बचत राष्ट्रीय आय का (प्रतिशत)	विनियोजन राष्ट्रीय आय का (प्रतिशत)
1950–51	—	5 6
1951–52	5·3	—
1955–56	7·5	7 3
1960–61	8 5	11·7
1965–66	10 6	13 0
1968–69	8 8	11·2
1973–74	13 2	13 8 (अनुमानित)

सितम्बर, 1972 की योजना के अक मे भी प्रचलित मूल्य-दर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप मे बचत और विनियोग की दरें प्रकाशित हुई थीं, वे निम्न प्रकार है[2]—

बचत और विनियोग की दरें

प्रचलित मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत

वर्ष	विनियोग	देशी बचत	विदेशी बचत
1960–61	12·0	8 9	3 1
1965–66	13·4	11 1	2 3
1966–67	12 2	9 0	3 2
1967–68	10 6	7·9	2 7
1968–69	9 5	8·4	1·1
1969–70	9 2	8 4	0 8
1970–71	9 6	8 3	1·3

1. पचवर्षीय योजनाएँ
2. योजना (सितम्बर, 1972)

तालिका से स्पष्ट है कि 1960-61 अर्थात् द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष मे विनियोग दर 12·0% तक पहुँच चुकी थी, जो 1965-66 अर्थात् तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष तक बढकर 13 4% हो गई। किन्तु इसके बाद विनियोग दर बजाए बढने के घटती ही चली गई और 1969-70 मे यह निम्न स्तर 9·2% तक गिर गई। विनियोग दर मे कमी का प्रमुख कारण बचत दर मे गिरावट है। 1965-66 मे बचत दर अपने चरम स्तर 11·1% तक पहुँच गई। योजना आयोग का अनुमान था कि 1968-69 मे विनियोग-दर 10 0% तक बढेगी और 1973-74 तक 13·1% तक पहुँच जाएगी।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने भी भारत मे बचत की स्थिति का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार बचत आय-अनुपात 1951-52 मे 5 1% और 1955-56 मे 9 1% था। 1951-52 से 1958-59 तक देश की औसत-बचत आय-अनुपात 7 2% रहा है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह अनुपात 6·6% और द्वितीय योजना के प्रथम तीन वर्षो मे 7 9% रहा है। इस प्रकार यदि इस दृष्टि से विचार करें तो बचत-अनुपात आशाप्रद है किन्तु सीमान्त बचत आय अनुपात की दृष्टि से विचार करें तो भिन्न स्थिति प्रकट होती है। उदाहरणार्थ 1953-54 से 1955-56 की अवधि मे सीमान्त-बचत आय अनुपात (Marginal Saving-Income Ratio) 19 1 था जो 1956-57 से 1958-59 तक की अवधि मे घट कर 14·2% रह गया। इस प्रकार कुल बचत मे वृद्धि हुई किन्तु बढी हुई आय के अनुपात मे बचतो मे वृद्धि नही हुई है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे बचत अनुपात को 1955-56 के 7 3% से बढाकर 11 0% करने का लक्ष्य रखा गया था। यह लक्ष्य कुछ महत्त्वाकांक्षी था किन्तु जैसा कि प्रो शितार्थ ने पहले ही कह दिया था कि इस योजनावधि मे घरेलू बचत के उक्त लक्ष्य की प्राप्ति नही की जा सकी। तृतीय योजना मे विनियोजन की राशि को राष्ट्रीय आय 11 0% से बढाकर 14% से 15% करने का लक्ष्य रखा गया था और उसके लिए घरेलू बचत को 8 5% से बढा कर 11 5% करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस योजना के अन्तिम वर्ष अर्थात् 1965-66 मे बचत की दर 10 4% रही जो अगले वर्ष अर्थात् 1967-68 मे इसमे और कमी आई। योजना आयोग के अनुसार 1967-68 मे बचत की दर राष्ट्रीय आय का 8% थी। परन्तु इसमे फिर से वृद्धि होने लगी है। 1968-69 मे यह 9% थी।

विनियोग का क्षेत्रीय आवटन

अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग, सचार आदि सेवा-क्षेत्रो मे भारत की विभिन्न योजनाओ मे परिकल्पित विनियोग किस प्रकार आवटित हुआ है, तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इस दिशा मे सापेक्ष भूमिकाएँ क्या रही हैं, उसका विश्लेषण विख्यात अर्थशास्त्री विल्फ्रेड मेलनबाम (Wilfred Malenbaum) द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण सांख्यिकी अको के आधार पर प्रस्तुत किया गया है—

महत्वपूर्ण अक—भारत की विकास योजनाएँ[1]
(Important Number—India's Plans for Development, 1951-71)

मद	प्रथम योजना (1951-56)		द्वितीय योजना (1956-61)		तृतीय योजना (1961 66)		चतुर्थ योजना प्रारूप (1966-71)	
1 0 कुल शुद्ध विनियोग (करोड रु)	3500	100%	6200	100%	10400	100%	21350	100%
1 1 कृषि (सिचाई सहित)	875	25	1180	19	2110	20	3439	16
1 2 बडे उद्योग (शक्ति व खनन सहित)	805	23	1810	29	3682	35	8366	39
1 3 अन्य छोटे उद्योग	175	5	270	4	425	4	550	3
1 4 यातायात सचार	775	22	1360	22	1726	17	3660	17
1 5 अन्य	870	25	1580	26	2497	24	5355	25
2 0 सार्वजनिक/कुल विनियोग अनुपात	53%		61 /		61 /		64 /.	
3 0 रोजगार								
3 1 अतिरिक्त (मिलियन व्यक्ति)	उपलब्ध नही		9 6		14		19	
3 2 श्रम शक्ति	9		12		17		23	

1 *Wilfred Malenbaum* Modern India s Economy, p 59

मद	प्रथम योजना (1951 56)	द्वितीय योजना (1956 61)	तृतीय योजना (1961 66)	चतुथ योजना प्रारूप (1966 71)
4 0 राष्ट्रीय आय शुद्ध (करोड रु०)				
4 1 नियोजन से पूव का वष	8870	10800	14140	15930
4 2 गत योजना वष	10000	13480	18460	23900
4 3 वृद्धि (/)	11 2 /	25 0 /	34•0 /	50 0 /
5 0 औसत शुद्ध विनियोग (राष्ट्रीय आय का अनुपात)	7 4 /	10 2 /	12 8 /	21 4 /
6 0 औसत घरेलू बचतें (राष्ट्राय आय का अनुपात)	5 7 /	8 1 /	9 8 /	15 0 /
7 0 शुद्ध आयात/शुद्ध विनियोग	21 0 /	18 0 /	25 0 /	32 0 /
8 0 सीमा त पूँजी/प्रदा अनुपात	3 1	2 3	2 4	2 7
9 0 थोक मूल्य स्तर (1952 53=100)				
9 1 वास्तविक औसत	103 4	108 1	142 8	205 2 (1966 69)
9 2 योजनाओ मे प्रयुक्त औसत	104 0 (1948–49)	100 1 (1952–53)	127 5 (1960–61)	186 1 (जून 1966)

दी गई सारणी से स्पष्ट है कि योजनाग्रो मे ग्रावश्यक विनियोग की वृद्धि वास्तविक ग्रको मे (In real terms) सारणी की पक्ति 10 मे प्रदर्शित कुल विनियोग दर से बहुत कम रही है। तृतीय योजना मे द्वितीय योजना की ग्रपेक्षा 70/. ग्रधिक विनियोग की ग्रावश्यक्ता परिकल्पित की गई है, ग्रौर ड्रॉफ्ट चतुर्थ योजना (1966) मे तृतीय योजना से दुगुनी मात्रा मे विनियोग के ग्रनुमान लगाए गए हैं। मूल्य स्तर मे विस्तार के समायोजनो के पश्चात् भी इन योजनाग्रो के लिए निर्धारित विनियोग मे 30 से 40/. तक की वृद्धि ग्रनुमानित की गई है। महत्वपूर्ण तथ्य वास्तविक तथा नियोजित कुल विनियोग राशि के ग्रन्तर (Gap) पर कीमतो का प्रभाव है। सारणी की 9 1 व 9 2 पक्तियो मे दिए गए कीमत ग्रनुपातो पर ग्राधारित ग्रको को एक उदाहरण के रूप मे देखने पर तृतीय योजना मे नियोजित 10,400 करोड रु. की विनियोग दर की पूर्ति लगभग 11,500 करोड रु के विनियोगो द्वारा ही की जा सकती है।

जहाँ तक विनियोग के क्षेत्रीय ग्रावटन का प्रश्न है, सारणी की पक्तियाँ 1 1 से 1 5 विनियोग के क्षेत्रीय ग्रावटन मे एकरूपीय प्रवृत्ति (Consistency) प्रदर्शित करती है। कृषि मे कुल विनियोग का ग्रनुपात उत्तरोत्तर कम होता गया है जब कि उद्योग मे यह ग्रनुपात बढता गया है। तृतीय योजना मे ग्रर्थव्यवस्था के इन दोनो मूल-क्षेत्रो के लिए कुल विनियोग का 55% निर्धारित किया गया। इसमे से उद्योग का ग्रनुपात कृषि की ग्रपेक्षा 75% ग्रधिक रहा। यातायात ग्रौर सचार के विनियोग मे ग्रनुपात द्वितीय योजना की तुलना मे तृतीय योजना मे 22% से घट कर केवल 17% रह गया। सेवा-क्षेत्र का विनियोग 47% के स्थान पर 41% रह गया किन्तु सरकारी सेवा व वस्तु-वितरण सम्बन्धी सेवाग्रो के लिए विनियोग के ग्रनुपात मे निरन्तर वृद्धि होती गई।

सारणी पक्ति 1 0–1 5 मे दिए गए विनियोग के ग्रॉकडो मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र सम्मिलित हैं, दोनो क्षेत्रो का ग्रन्तर भारत की विकास नीतियो पर प्रकाश डालता है। पक्ति 2 0 मे सार्वजनिक क्षेत्र के बढते हुए सापेक्ष महत्व को देखा जा सकता है। 1951-56 मे सार्वजनिक क्षेत्र का जो प्रतिशत 53 था वह घट कर 1966-71 मे 64 प्रतिशत हो गया। ग्रग्रांकित सारणी मे कृषि, उद्योग, सेवा ग्रादि क्षेत्रो मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो की सापेक्ष स्थिति को प्रदर्शित किया गया है—

नियोजित विनियोग का विवरण[1]

(Planned Investment Allocations)

मद	प्रथम (1951 56)			द्वितीय (1956 61)			तृतीय (1961 66)			चतुर्थ (1966-71)		
	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग	सार्वजनिक	निजी	योग
1 0 शुद्ध विनियोग (करोड रु)	1850	1650	3500	3800	2400	6200	6300	4100	10400	13600	7750	21350
1 1 कृषि (सिचाई सहित)	525	350	875	780	400	1180	1310	800	2110	2539	900	3439
1 2 बड उद्योग (शक्ति व खनन सहित)	380	425	805	1190	620	1810	2532	1100	3632	5966	2400	8366
1 3 अन्य छोट उद्योग	25	150	175	120	150	270	150	275	425	230	230	550
1 4 यातायात व संचार	650	125	775	1235	125	1360	1486	250	1736	3010	630	3640
1 5 अन्य	270	600	870	475	1105	1580	822	1675	2497	1855	3509	5305

1 *Wilfred Malenbaum* Modern India s Economy p 62

विकास-दर
(Growth Rate)

यद्यपि विकास-दर का निर्धारण आर्थिक दृष्टि से सांख्यिकी अकों पर निर्भर करता है तथापि व्यावहारिक रूप मे इस दर का निर्धारण मूलतः एक राजनीतिक निर्णय है, अथवा यह निर्णय देश की जन-धारणा के अनुसार लिया जाता है। किस गति के साथ एक देश के निवासी अपनी प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना चाहते हैं अथवा गरीबी-उन्मूलन की आकांक्षा रखते है, इस प्रश्न का उत्तर उस देश की जन धारणा अथवा राजनेताओ से सम्बन्धित है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, इसकी प्रत्येक योजना के साथ प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने का प्रश्न जुडा रहा है। भारत की प्रत्येक योजना के मूल मे यह प्रश्न अन्तर्निहित है कि कितने वर्षों मे इस देश को अपनी प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना आवश्यक है। यह प्रश्न आज भी निरुत्तर है। भारत की प्रति व्यक्ति आय 600 रु से कुछ अधिक है, जबकि अमेरिका की प्रति व्यक्ति 4000 डॉलर पर विचार किया जा सकता है, अर्थात् हमारे यहाँ प्रति व्यक्ति आय अमेरिका की तुलना मे लगभग 1/50वाँ भाग है। इसी पृष्ठभूमि मे भारत की योजनाओ मे नियोजित तथा वास्तव मे प्राप्त विकास-दरो का अध्ययन किया जा सकता है। E C A F E साहित्य मे प्रति व्यक्ति आय के दुगुना होने सम्बन्धी एक दिलचस्प सारणी प्रस्तुत की गई है, जिसका एक अश निम्न प्रकार है—

विकास-दर	जनसख्या-वृद्धि-दर	प्रति व्यक्ति विकास-दर	अवधि जिसम यह दुगनी होती है
$4\frac{1}{2}\%$	$2\frac{1}{2}\%$	2%	35 वर्ष
$5\frac{1}{2}\%$	$2\frac{1}{2}\%$	3%	23 वर्ष
$3\frac{1}{2}\%$	$2\frac{1}{2}\%$	1%	70 वर्ष

यदि प्रति व्यक्ति आय 3% की दर से बढती है तो इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय आय $5\frac{1}{2}\%$ की दर से बढ रही है। यह वह विकास-दर है जिसकी चतुर्थ योजना मे परिकल्पना की गई थी। इस दर के अनुसार प्रति व्यक्ति आय 23 वर्ष मे दुगुनी हो सकती है। विकास की यह दर विशेष महत्त्वाकांक्षी नही है क्योकि इस दर से भी हम अपनी प्रति व्यक्ति आय को 23 से 25 वर्ष की अवधि मे दुगुना कर सकेंगे। पूर्व-योजनाओ की उपलब्धियो को देखने पर तो इस दर को भी स्थिर बनाए रखना असम्भव प्रतीत होता है, क्योकि प्रथम योजना मे प्रति व्यक्ति विकास-दर 1%, द्वितीय मे 1 7% और तृतीय मे केवल 0 4% रही है। 18-19 वर्ष की दीर्घावधि मे भी प्रति व्यक्ति अधिकतम विकास-दर हम केवल 1 7% प्राप्त कर सके, जिसे भी स्थायी नही रखा जा सका। इस स्थिति मे जब तक परिवार-नियोजक किसी प्रकार का कोई चमत्कार नहीं कर रहे हैं तब तक 5 से $5\frac{1}{2}\%$ विकास दर को प्राप्त करना और उसे स्थायी बनाए रखना सम्भव प्रतीत नही होता है। यदि हम प्रथम तीन योजनाओ मे अधिकतम प्राप्त 1 7% की विकास-दर को भी स्थिर रख

पाते हैं तब भी हम 46½ वर्षों मे अपनी प्रति व्यक्ति आय को दुगुना कर सकेंगे। इसका यह अर्थ है कि सन् 2016 म हम इस स्थिति को प्राप्त कर पाएँगे। इन *आंकडो को ध्यान में रखते हुए 4% विकास दर सम्भव व प्राप्ति योग्य प्रतीत होती* है तथा 5 या 5½% विकास दर का प्राप्त किया जाना उच्च उपलब्धि की श्रेणी में आएगा। विकास दर के अनुभागो के रूप मे कतिपय वृद्धि सूचक अको को ध्यान म रखना आवश्यक है जो आगे दिये जा रहे है।

वृद्धि सूचक अक

1950 51 से 1970 71 तक भारत की आय वृद्धि दर का अनुमान कई सूचको से लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय आय की दर मे 3 6% वृद्धि हुइ जबकि कृषि उत्पादन व औद्योगिक उत्पादन मे क्रमश 3 2 / और 6 4 / की वार्षिक दर से वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय के रूप मे राष्ट्रीय आय मे 1 5 / प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई है जबकि अनाज के उत्पादन म 1 4 / वार्षिक वृद्धि हुई। प्रति हैक्टर अनाज के उत्पादन मे 1 9 / की वार्षिक दर से वृद्धि हुई। बचत आय अनुपात 5 7 / से बढ कर 10 0 / अर्थात् लगभग दुगुना हो गया। प्रथम तीन योजनाओ मे हुई विकास दर का सक्षेप म पहले ही विवेचन किया जा चुका है। इन योजनाओ के अनुभवो के आधार पर निमित चतुर्थ एव पचम पचवर्षीय योजनाओ मे विकास दरो का विश्लेषण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना की आय वृद्धि दर

चौथी योजना मे विकास की वार्षिक चक्र-वृद्धि दर का लक्ष्य 5 5 / से अधिक अर्थात् लगभग 5 6 / था जब कि 1969 70 मे अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 5 3 / व 1970 71 मे 4 8 / रही। इस प्रकार अर्थ व्यवस्था की औसत वार्षिक चक्र वृद्धि दर योजना मे प्रस्तावित लक्ष्य की तुलना मे केवल 5 / ही रही।

कृषि म 5 / वार्षिक दर निर्धारित की गई थी पर वास्तविक वृद्धि दर 1969 70 मे 5 1 / और 1970 71 मे 5 3% रही। इस प्रकार कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र की उपलब्धि लक्ष्यो के अनुरूप रही।

खनन् और विनिमाण (Mining and Manufacturing) मे 7 7% वृद्धि का प्रावधान था लेकिन 1969 70 मे 5% और 3 2% की ही वृद्धि हुई। इस प्रकार दोनो वर्षों की औसत वृद्धि दर 4 1% रही।

बडे पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 9 3% था किन्तु वार्षिक वृद्धि-शुद्ध मूल्य के रूप मे 1969 70 मे 5 9% और 1970 71 मे 3 6% रही। इस प्रकार दो वर्षों की वार्षिक औसत वृद्धि 4 7% रही।

विद्युत गैस और जल आपूर्ति क्षेत्र मे 9 5% वृद्धि दर रही और 1970 71 मे 7 9%। इस प्रकार औसत वृद्धि दर 8 7% रही जो योजना के लक्ष्य 9 3% से कुछ कम थी।

परिवहन और सचार के क्षेत्र मे योजना का 6 4% वार्षिक वृद्धि का था लेकिन 1969 70 मे परिवहन व सचार की वार्षिक वृद्धि 5 9% रही और 1970 71 मे

केवल 3·8% रही। इस प्रकार दो वर्षों की औसत वार्षिक-वृद्धि दर 4 9% रही। कमी मुख्यतः इसलिए हुई कि रेलो मे शुद्ध-वृद्धि की दर केवल 0·4% रही।

बैकिंग और बीमा के क्षेत्र मे वृद्धि योजना के अनुमान से अधिक रही। योजना का लक्ष्य 4 7% वार्षिक-वृद्धि का था लेकिन 1969-70 मे वास्तविक वृद्धि 9 2% रही और 1970-71 मे 8·6% थी। इस प्रकार दो वर्षों के वृद्धि का औसत 8 9% रहा जो कि योजना के वार्षिक-वृद्धि के लक्ष्य से लगभग दुगुना था। सक्षेप मे चौथी योजना मे परिकल्पित 5 7% की कुल वृद्धि-दर की तुलना मे अर्थव्यवस्था मे 1969-70 मे वृद्धि-दर 5 2% रही। इसके बाद 1970-71 मे यह घट कर 4 2% और 1972-73 मे 0 6% रह गई। आवश्यकताओ को देखते हुए चौथी योजना की अवधि की वृद्धि-दर बहुत कम और अपर्याप्त रही। पाँचवी योजना मे 5 5% की वृद्धि-दर का लक्ष्य रखा गया है।

पाँचवी पचवर्षीय योजना की वृद्धि-दरे

चौथी योजना का लाभ उठाते हुए, पाँचवी योजना मे 5 5% की वृद्धि-दर का जो लक्ष्य रखा गया है, उसके लिए आयोजन और अमल मे कही अधिक कुशलता के अतिरिक्त कठिन निर्णयो, कठोर अनुशासन और बहुत त्याग की आवश्यकता होगी।

पाँचवी योजना के इस 5·5% की वृद्धि-दर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए (क) पहले से अधिक पूँजी-निवेश, (ख) अधिक कुशलता, (ग) पहले से अधिक बचत, आमदनी की असमानताएँ दूर करने और उपभोग को इस ढँग से घटाने की आवश्यकता पड़ेगी, जिससे समृद्ध वर्गों पर अधिकाधिक बचत करने का भार पड़े।

योजना के लक्ष्य का इस ढग से विकास करना है कि मुद्रा-स्फीति न होने पाए। कुछ क्षेत्रो जैसे इस्पात, कोयला, लौह-धातुएँ, सीमेण्ट और उर्वरक, उद्योगो मे पूँजी बहुल उद्योगो के विकास के लिए तो पूँजी जुटाना अनिवार्य है ही क्योकि इससे ऐसी वस्तुओ का उत्पादन होता है जो रोजगार देने वाली है और जिनका कृषि मे बहुत इस्तेमाल हो रहा है। इसी प्रकार उन क्षेत्रो पर भी अकुश रखना होगा जो न तो आदमी के उपभोग की वस्तुओ मे आते है और न ही जिनसे निर्यात-वृद्धि मे सहायता मिलती है। मुद्रा-स्फीति के बिना विकास करने की नीति के अनुसार दीर्घ अवधि मे और अल्पावधि मे फल देने वाली परियोजनाओ का सतुलित मेल रखने और रोजगार देने वाले माल तैयार करने के उद्योगो और परमावश्यक मध्यवर्ती वस्तुएँ व पूँजीगत सामान बनाने वाले उद्योगो मे लगाई जाने वाली पूँजी का भी सन्तुलित और उचित वितरण आवश्यक है।

भारत के विकास की स्थिति के सिहावलोकन के लिए राष्ट्रीय उत्पादन मे वास्तविक वृद्धि तथा उत्पादन के तीन मुख्य क्षेत्रो—कृषि-उद्योग, व्यापार तथा सचार के उत्पादन के आँकडो को एक सारणी मे प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम तीन योजनाओ मे वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य 11·2%, 25% व 34% थे। लक्ष्यो की तुलना मे उपलब्धि का प्रतिशत क्रमश. 18, 21 व 13 रहा। प्रथम योजना को छोड कर अन्य योजनाओ मे प्राप्त वृद्धि-दर से कम रही।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन : कुल और बडे मूल उत्पादन क्षेत्र[1]
(Net National Product : Total and Major Originating Sectors)

वर्ष (1)	जनसख्या (2)	एन एन पी राष्ट्रीय आय (3)		कृषि (4)		उद्योग (5)		व्यापार व सचार (6)	
	सूचनाक	योग	सूचनाक	योग	सूचनाक	याग	सूचनाक	याग	सूचनाक
1950–51	100	9325	100	5150	100	610	100	2510	100
1951–52	101 7	9400	102	5250	102	640	105	2620	104
1952–53	103 5	9775	105	5410	105	660	108	2715	108
1953–54	105 4	10325	111	5875	114	685	112	2790	111
1954–55	107·4	10625	114	5925	115	735	120	2890	115
1955–56	109 5	11000	118	5960	116	825	135	3020	120
औसत विकास दर प्रथम योजना	(1 7%)	(3 4%)		(3 0%)		(6 2%)		(3 7%)	
1956–57	111 7	11550	124	6125	119	895	147	3190	127
1957–58	114 0	11450	123	5925	115	945	155	3300	131
1958–59	116 4	12300	132	6450	125	970	159	3460	138
1959–60	118 7	12475	134	6375	124	1040	171	3640	145
1960–61	121 5	13294	143	6857	133	1215	199	3870	154

1. *Wilfred Malenbaum*. Modern India's Economy, p. 135.

वर्ष	जनसख्या	एन एन पी राष्ट्रीय आय		कृषि		उद्योग		व्यापार व सचार	
(1)	(2)	(3)		(4)		(5)		(6)	
औसत विकास दर द्वितीय योजना	(2 1%)	(3 9%)		(2 8%)		(8 1%)		(5 1%)	
1961–62	124 1	13763	148	6925	135	1320	216	4070	162
1962–63	127 2	14045	151	6747	131	1463	240	4280	170
1963–64	130 3	14845	159	6940	135	1610	264	4570	182
1964–65	133 5	15917	171	7558	147	1723	283	4880	194
1965–66	136 9	15021	161	6520	127	1777	291	5130	205
औसत विकास दर तृतीय योजना	(2 2%)	(2 2%)		(—0 9%)		(7 9%)		(5 8%)	
1966–67	140 0	15123	162	6442	125	1794	294	5265	210
1967–68	143 5	16583	178	7629	148	1799	295	5453	218
1968–69	147 0	16943	182	7558	147	1899	312	5700	228
औसत विकास दर एक वर्षीय योजनाएँ	(2 5%)	(4 1%)		(5 0%)		(2 2%)		(3 6%)	

सारणी मे जनसख्या के वृद्धि-सूचकांक और औसत विकास-दर को प्रदर्शित किया गया है, जो प्रथम, द्वितीय एव तृतीय पंचवर्षीय योजनाओ तथा एक वर्षीय योजनाओ मे क्रमश 1 7/, 2 1·/, 2·2 /. व 2 5/. रही। निरन्तर बढती हुई जनसख्या भारत की आर्थिक प्रगति मे बडी बाधक है। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का वृद्धि-सूचकांक सारणी के तीसरे खाने मे प्रस्तुत किया गया है। इसमे प्रदर्शित अको से स्पष्ट है कि प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे राष्ट्रीय उत्पादन की औसत वृद्धि दर अधिक रही, किन्तु तीसरी योजना मे यह बहुत कम हो गई, किन्तु पुनः एकवर्षीय योजनाओ मे 2 2/ से बढ कर 4 1/ हो गई। यह एक अच्छी स्थिति का सकेत थी। सारणी के शेष खानो मे अर्थ व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रो—कृषि उद्योग तथा व्यापार-सचार आदि की विकास-दरो को दर्शाया गया है। कृषि की विकास-दर तीसरी योजना तक निरन्तर गिरती गई। प्रथम योजना में यह दर जो 3 0·/ थी, द्वितीय योजना मे 2·8/ रह गई और तीसरी योजना मे तो इसका प्रतिशत ऋणात्मक (—0·9 /.) हो गया, किन्तु एकवर्षीय योजनाओ मे यह पुन बढ कर 5/. हो गई। दूसरी ओर उद्योग के क्षेत्र मे विकास-दर द्वितीय योजना के बाद गिरती गई। द्वितीय योजना मे यह दर 8 1% थी जो घटकर तीसरी योजना मे 7 9% और एकवर्षीय योजनाओ मे केवल 2·2% रह गई। यह चिन्ताजनक स्थिति का सकेत थी जिसमे सुधार के लिए औद्योगिक उत्पादन की दर को बढाना अनावश्यक था। व्यापार व सचार के क्षेत्र मे प्रगति का सूचकांक सन्तोषप्रद स्थिति को प्रकट करता है।

3 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाएँ-क्षेत्रीय लक्ष्य, वित्तीय आवंटन तथा उपलब्धियाँ

(First Three Five Year Plans—Sectoral Targets, Financial Allocation and Achievements)

योजनाओ के उद्देश्यो को जब सरयात्मक स्वरूप प्रदान किया जाता है तब उद्देश्य बन जाते है। किसी अर्थ-व्यवस्था के कृषि, उद्योग, परिवहन तथा सचार आदि क्षेत्रो से सम्बन्धित विकास लक्ष्यो (Growth Targets) को क्षेत्रीय लक्ष्य (Sectoral Targets) कहते हैं। इन लक्ष्यो के अन्तर्गत मूलत क्षेत्रो से सम्बन्धित भौतिक उत्पादन के लक्ष्य, क्षेत्रीय विकास दर, वित्तीय परिव्यय आदि लिए जाते हैं। भारतीय अर्थ-व्यवस्था को आर्थिक नियोजन के सन्दर्भ मे कृषि, शक्ति, खनिज उद्योग, परिवहन तथा सचार, सामाजिक सेवाएँ आदि क्षेत्रो मे विभक्त किया जाता है।

योजनाओ मे वित्तीय आवंटन
(Financial Allocation in the Plans)

योजनाओ मे विभिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित निर्धारित विकास-लक्ष्यो तथा इनकी उपलब्धियो के विश्लेषण से पूर्व यह उपयुक्त होगा कि इन क्षेत्रो पर आवटित परिव्यय तथा इस परिव्यय की वित्त-व्यवस्था को जान लिया जाए। इस सदर्भ मे सर्वप्रथम हम विभिन्न सारणियो द्वारा विनियोग, परिव्यय एव वित्त-व्यवस्था को स्पष्ट करेंगे।

प्रथम तीन योजनाओ मे विनियोग

सारणी–1 मे दिए गए विनियोग के अको से सरकारी और निजी क्षेत्र के विस्तार की सापेक्ष स्थिति स्पष्ट होती है। निरपेक्ष रूप मे यद्यपि दोनो ही क्षेत्रो मे विनियोग दर में काफी वृद्धि हुई किन्तु दोनो क्षेत्रो का अनुपात प्रथम तीन योजनाओं मे क्रमश: लगभग 15 18 37 31 तथा 71 49 रहा। इन अनुपातो से स्पष्ट है कि उत्तरोत्तर निजी क्षेत्र की तुलना मे सरकारी क्षेत्र का अधिक विस्तार हुआ। यह स्थिति देश के समाजवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है।

सारणी–1

तीन योजनाओ मे सरकारी और निजी क्षेत्र मे विनियोग

(करोड रु मे)

योजना	सरकारी क्षेत्र का परिव्यय				निजी क्षेत्र में	योजना
	योजना प्रावधान	वास्तविक व्यय	चालू व्यय	विनियोग	विनियोग	का कुल व्यय
प्रथम पचवर्षीय योजना	2,356	1 960	400	1,560	1,800	3,760
द्वितीय पचवर्षीय योजना	4,800	4,672	941	3,731	3,100	7,772
तृतीय पचवर्षीय योजना	7,500	8,577	1,448	7,129	4,190	12,767

तीन योजनाओं के परिव्यय

सारणी–2 मे योजनाओ के वास्तविक सार्वजनिक परिव्यय (Outlay) को दर्शाया गया है। योजना-परिव्यय मे राज्य व केन्द्र के भाग को पृथक् पृथक् रखा गया है तथा कुल परिव्यय का विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो पर आवटन तथा कोष्ठको मे राशि के आवटन का प्रतिशत दर्शाया गया है—

सारणी–2

प्रथम तीन योजनाओ में सरकारी क्षेत्र का परिव्यय

(करोड रु में)

विकास की मद	प्रथम पचवर्षीय योजना	द्वितीय पचवर्षीय योजना			तृतीय पचवर्षीय योजना		
	योग	केन्द्र*	राज्य	योग	केन्द्र	राज्य	योग
1 कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	290 (14 8)	53 (9 7)	496 (90 3)	549 (11·7)	117. (10 7)	972 (89·3)	1089 (12 7)
2 सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण	434 (22 2)	55 (12 8)	375 (87 2)	430 (9 2)	10 (1 5)	655 (98 5)	665 (7 8)
3 विद्युत्	149 (7·6)	28 (6·2)	424 (93 8)	452 (9·7)	113 (9 0)	1139 (91 0)	1252 (14 6)
4 गांव और लघु उद्योग	42 (2·1)	106 (56 7)	81 (43 3)	187 (4 0)		203 (10 3)	241 (2 8)
5 खनिज और उद्योग	55 (2 8)	898 (95·7)	40 (4 3)	938 - (20 1)	1764 (89 7)		1726 (20 1)

विकास की मद	प्रथम पचवर्षीय योजना	द्वितीय पचवर्षीय योजना			तृतीय पचवर्षीय योजना		
	योग	केन्द्र	राज्य	योग	केन्द्र	राज्य	योग
6 यातायात और सचार	518 (26 4)	1092 (86 6)	169 (13 4)	1261 (27 0)	1818 (86 1)	294 (13 9)	2112 (24 6)
7 अन्य*	472 (24 1)	357 (41 8)	498 (58·2)	855 (18·3)	590 (39 6)	902 (60 4)	1492 (17·4)
जिसमे							
(अ) शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान	149 (7 6)	—	—	273 (5 8)	—	—	660 (7·7)
(ब) स्वास्थ्य	98 (5 0)	—	—	216 (4 6)	—	—	226 (2·6)
(स) परिवार नियोजन							25 (0 3)
योग	1960 (100 0)	2589 (55 4)	2083 (44 6)	4672 (100 0)	4412 (51·4)	4165 (48·6)	8577 (100 0)

* शेष आँकड़े। जिस हद तक राज्य के हिस्से से कुछ का परिव्यय 4600 करोड़ रुपये (जो बाद में सशोधित कर 4672 करोड़ रुपये कर दिया गया और जिसके लिए केन्द्र और राज्य वार ब्यौरा उपलब्ध नहीं है) में से है उस हद तक केन्द्र का परिव्यय अधिक हो सकता है। केन्द्र और राज्य मदो (कालमो) के नीचे कोष्ठक मे दिए गए आँकड़े सम्बद्ध क्षेत्रों में परिव्यय का प्रतिशत बताते हैं।

Source : India 1973 & 1974

योजना–परिव्यय की वित्त-व्यवस्था

विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो के लिए आवश्यक परिव्यय के वित्तीय सम्बन्ध सारणी–3 से स्पष्ट हैं—

सारणी–3

सरकारी क्षेत्र मे योजना परिव्यय की वित्त-व्यवस्था

(करोड रु मे)

मद	प्रथम पंचवर्षीय योजना		द्वितीय पंचवर्षीय योजना		तृतीय पंचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
1. मुख्यतया अपने साधनों से	740 (35 7)	725 (38 4)	1350 (28 1)	1230 (26 3)	2810 (37 5)	2908 (33·9)
(1) कराधान की योजना पूर्व दरो पर चालू राजस्व से बचत	570	382	350	11	550	419
(2) अतिरिक्त कराधान, जिसमे सार्वजनिक उद्यमो की बचत बढाने के उपाय शामिल हैं	अ	255ब	850ब	1052ब,	1710	2892
(3) रिजर्व बैंक से लाभ	—	—	—	—	—	—
(4) योजना के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए उठाए गए उपायो से हुई आय को छोडकर सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की बचत						
(क) रेल	170ई	115ई	150ई	167ई	100	62
(ख) अन्य	फ	फ	फ	फ	650	373

मद	प्रथम पंचवर्षीय योजना		द्वितीय पंचवर्षीय योजना		तृतीय पंचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
2. मुख्यतया घरेलू ऋणों के जरिए	808 (39·1)	1019 (52 0)	2650 (55 2)	2393 (51·2)	2490 (33 9)	3246 (37 9)
(1) सार्वजनिक ऋण, बाजार और जीवन बीमा निगम से सरकारी उद्यमो द्वारा लिए गए ऋणो सहित शुद्ध	115ह	208ह	700ह	756हर	800	823
(2) छोटी बचतें	225	243	500	422	600	565
(3) वार्षिकी जमा, अनिवार्य जमा, इनामी बौंड और स्वर्ण बौंड	—	—	—	—	—	117
(4) राज्य भविष्य निधियों के	45	92	250	175ज	265	336
(5) इस्पात समानकरण निधि (शुद्ध)	—	—	—	40	105	34
(6) विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	133	147	—	46	170	238
(7) घाटे का वित्त इ	290	333	1200	954	550	1133
3. कुल घरेलू साधन (1 + 2)	1546 (74 8)	1771 (90 4)	4000 (83·3)	3623 (77·5)	5300 (70 7)	6154 (71·8)

मद	प्रथम पचवर्षीय योजना		द्वितीय पचवर्षीय योजना		तृतीय पचवर्षीय योजना	
	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक	आरम्भिक अनुमान	वास्तविक
4. विदेशी सहायता न	521 (25 2)	189 (96)	800 (16 7)	1049 (22 5)	2200 (29 3)	2423 (28 2)
5. कुल साधन (3+4)	2069 (100 0)	1960 (100 0)	4800 (100 0)	4672 (100 0)	7500 (100 0)	8577 (100 0)

नोट—काष्ठको मे दिए गए आँकडे कुल के प्रतिशत हैं।

(अ) मद 1 (1) और 1 (4) के अन्तर्गत शामिल। (ब) रेल किराए और भाडे मे वृद्धि से हुई आय को छोडकर। (ई) रेल किराए और भाडे मे हुई वृद्धि से आय समेत। (फ) मद 1 (1) और (2) (6) के अन्तगत शामिल। (ह) केन्द्र और राज्य सरकारो द्वारा बाजार से ऋण (र) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा पी एल 480 कोषो का निवेश शामिल है (क) प्रथम और द्वितीय योजनाओ के आँकडे अनिधिबद्ध ऋणो से सम्बद्ध हैं। (ड) तृतीय योजना अवधि और उसके बाद के लिए दर्शाए गए घाटे के वित्त के आँकडे सरकार की रिजव बैंक ऑफ इण्डिया के प्रति ऋणता (दीर्घावधि और लघु अवधि दोनो) मे परिवर्तन को दर्शाते हैं। पूर्व योजनाओ के लिए ये घाटे के बजट की ओर सकेत हैं। प्रथम और द्वितीय योजना अवधियो मे घाटे का वित्त क्रमश 260 करोड रु और 1,170 करोड रुपये था। (य) राज्य भविष्य निधियो से भिन्न बिना खर्च किए गए ऋण शामिल है। (न) नई विनिमय-दर के अनुसार।

Source Ind a 1973 & 19

प्रथम योजना का परिव्यय तथा वित्त व्यवस्था

सारणी–2 (परिव्यय 2) के अनुसार प्रथम योजना पर सरकारी क्षेत्र मे 1960 करोड रु की राशि व्यय की गई। सारणी मे दिए गए व्यय के आवटन से स्पष्ट है कि इस योजना मे कृषि को सर्वाधिक महत्त्व मिला क्योंकि योजना की कुल राशि का 37% भाग कृषि, सिंचाई और बाढ-नियन्त्रण पर व्यय किया गया। योजना मे शक्ति, परिवहन तथा संचार को भी आवश्यक महत्त्व दिया गया, जो इन मदो पर व्यय के क्रमश 7 6% और 26 4% से परिलक्षित होता है। शक्ति तथा परिवहन व सचार को दी गई प्राथमिकता का उद्देश्य भावी विकास के लिए आधार-ढाँचे (Infra-structure) का निर्माण करना था। सभी प्रकार के उद्योगो व खनिजो पर कुल व्यय का केवल 4 9% ही व्यय किया गया। शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान तथा स्वास्थ्य पर कुल राशि का क्रमश 7 6% व 5% व्यय हुआ। इन मदो पर व्यय का यह प्रतिशत यह प्रदर्शित करता है कि नियोजको का इस योजना मे शिक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओ के विस्तार की ओर भी यथेष्ट ध्यान रहा।

1960 करोड रु के व्यय की वित्तीय-व्यवस्था के लिए निजी साधनो से 752 करोड रु, घरेलू ऋणो से 1010 करोड रु तथा विदेशी सहायता से 189 करोड रु प्राप्त किए गए। प्रतिशत के रूप मे इन मदो का कुल राशि मे योगदान क्रमशः 38 4% 5 2% तथा 9 6% रहा। घरेलू ऋणो की मद मे घाटे के वित्त के 333 करोड रु भी सम्मिलित हैं। प्रथम योजना के अन्तिम वर्षो मे घाटे की वित्त-व्यवस्था का अधिक तेजी से उपयोग किया गया किन्तु योजना की अवधि के दौरान उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होने के कारण मूल्य-स्तर योजना की पूर्व अवधि की तुलना मे 13% कम रहा तथा भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी अनुकूल रही।

द्वितीय योजना का परिव्यय तथा वित्त-व्यवस्था

द्वितीय योजना के लिए 4,800 करोड रु के व्यय का लक्ष्य रखा गया किन्तु वास्तव मे कुल व्यय 4 672 करोड रु हुआ, जिसमे से राज्यो ने 2 589 करोड रु तथा केन्द्र ने 2,083 करोड रु॰ व्यय किए। 4 800 करोड रु की प्रस्तावित राशि का कृषि व सामुदायिक विकास के लिए 11 8% सिचाई के लिए 7 9%, शक्ति के लिए 8 9% बाढ-नियन्त्रण व अन्य परियोजनाओं के लिए 2·2%, उद्योग व खनिज के लिए 18 5% परिवहन व सचार के लिए 28 9%, सामाजिक सेवाओं के लिए 19 7% तथा शेष 2 1% विविध कार्यों के लिए निर्धारित किया गया। इन मदो पर प्रस्तावित राशि की तुलना मे जो राशि वास्तव मे व्यय हुई उसे 'परिव्यय सारणी' की कालम सख्या पांच मे बताया गया है। प्रस्तावित तथा वास्तविक व्यय प्रतिशतो की तुलना को सारणी-4 मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

सारणी–4

द्वितीय योजना की मदों पर प्रस्तावित तथा वास्तविक व्यय के प्रतिशत

मद	प्रस्तावित व्यय का प्रतिशत	वास्तविक व्यय का प्रतिशत
1 कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	11 8	11 7
2. सिंचाई और बाढ़-नियन्त्रण	10 1	9 2
3. शक्ति (Power)	8 9	9·7
4 उद्योग व खनिज	18 5	24 1
5. परिवहन व संचार	28 9	27 0
6. सामाजिक सेवाएँ	19 7	10 4
7 अन्य	2 1	7 9
कुल	100 0	100 0

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि उद्योग व खनिज पर प्रस्तावित व्यय से वास्तविक व्यय की राशि अधिक रही तथा सामाजिक सेवाओं पर वास्तविक व्यय की राशि प्रस्तावित व्यय की राशि की तुलना में काफी कम रही। अन्य मदों के प्रतिशत को मिला कर भी सामाजिक सेवाओं के वास्तविक व्यय का प्रतिशत प्रस्तावित व्यय के प्रतिशत से काफी कम रहा है। इस योजना में सर्वाधिक प्राथमिकता यद्यपि उद्योग व खनिज क्षेत्र को दी गई, किन्तु कुल निरपेक्ष-राशि की दृष्टि से कृषि के लिए प्रथम योजना की तुलना में द्वितीय योजना में काफी बड़ी राशि का प्रावधान रखा गया। इसका अभिप्राय है कि उद्योग व खनिज के क्षेत्र पर अत्यधिक बल दिए जाने पर भी कृषि के महत्त्व को इस योजना में पर्याप्त स्थान मिला।

जहाँ तक योजना के परिव्यय की वित्त-व्यवस्था का प्रश्न है, 4,800 करोड़ रु. के प्रस्तावित व्यय के लिए 1,200 करोड़ रु. की राशि का घाटे के वित्त के अन्तर्गत प्रावधान रखा गया तथा 400 करोड़ रु. के घाटा (Uncovered Deficit) के रूप में घरेलू साधनों में वृद्धि के अतिरिक्त उपायों द्वारा पूर्ति के लिए छोड़ दिया गया। 800 करोड़ रु विदेशी साधनों से तथा योजना की शेष 2,400 करोड़ रु. की राशि को कर, जनता से ऋण, रेल व भविष्य-निधि आदि घरेलू साधनों से प्राप्त करने का प्रावधान किया गया। सरकारी क्षेत्र के 4,800 करोड़ रु के अतिरिक्त 2,400 करोड़ रु का विनियोग निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया।

तृतीय योजना का परिव्यय तथा वित्त-व्यवस्था

सारणी—3 के अनुसार तृतीय योजना मे सरकारी क्षेत्र के लिए 7,500 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र के लिए 4,100 करोड रुपये के परिव्यय का लक्ष्य रखा गया । 7,500 करोड रुपये के सरकारी व्यय का विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो के लिए निम्न प्रकार आवटन किया गया—

सारणी–5

तृतीय पंचवर्षीय योजना मे प्रस्तावित सरकारी व्यय का विभिन्न आर्थिक मदो पर आवटन

मदें	प्रस्तावित व्यय (करोड रुपये मे)	कुल का प्रतिशत
1 कृषि व सामुदायिक विकास	1068	14
2. बडे व मध्यम सिचाई के साधन	650	9
3 शक्ति	1012	13
4. ग्रामीण व लघु उद्योग	264	4
5 सगठित उद्योग व खनिज पदार्थ	1520	20
6 परिवहन व सचार	1486	20
7. सामाजिक सेवाएँ व विविध	1300	17
8 इन्वेन्टरीज	200	3
कुल	7500	100

तृतीय पचवर्षीय योजना के कुल प्रस्ताविन व्यय का कृषि, सिचाई और सामुदायिक विकास के लिए 25% व्यय निर्धारित किया गया । इन मदो को इस योजना मे सर्वाधिक महत्त्व दिया गया । इस प्राथमिकता का मूल कारण द्वितीय योजना मे कृषिगत उत्पादन के लक्ष्यो को प्राप्त नही किया जाना था । इसीलिए इस योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की गई । सगठित उद्योगो तथा खनिजो व परिवहन और सचार की मदो को समान प्राथमिकता प्रदान की गई । इन मदो मे से प्रत्येक के लिए कुल व्यय का 20% व्यय निर्धारित किया गया ।

योजना की प्रस्ताविन 7,500 करोड रुपये की राशि की वित्त-व्यवस्था के लिए चालू राजस्व की बचत से 550 करोड रुपये अतिरिक्त कराधान से 1,710

करोड रुपये, रेलो से 100 करोड रुपये, सार्वजनिक प्रतिष्ठानो से 450 करोड रुपये, सार्वजनिक ऋण से 800 करोड रुपये, छोटी बचतो से 600 करोड रुपये, राज्य की भविष्य निधियो से 265 करोड रुपये, इस्पात-समानीकरण निधि से 105 करोड रुपये, विविध पूंजीगत प्राप्तियो से 170 करोड रुपये, घाटे के वित्त से 550 करोड रुपये तथा विदेशी सहायता से 2,200 करोड रुपये, प्राप्त करने का प्रावधान रखा गया। इन अको को सारणी-3 मे तृतीय पचवर्षीय योजना के शीर्षक के अन्तर्गत आरम्भिक अनुमान वाले कॉलम मे दर्शाया गया है।

उपरोक्त वित्तीय मदो की मुख्य विशेषता 1,710 करोड रुपये का अतिरिक्त करारोपण तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था की राशि को द्वितीय योजना की तुलना मे कम किया जाना है। इसके अतिरिक्त विदेशी सहायता की आवश्यकता को अधिक अनुभव किया गया। इस मद के अन्तर्गत द्वितीय योजना के आरम्भिक अनुमान जहाँ 800 करोड रुपये के थे वहाँ इस योजना मे इस मद से प्राप्त की जाने वाली राशि 2200 करोड रुपये अनुमानित की गई।

उपरोक्त विवेचन के अन्तर्गत सरकार अथवा सार्वजनिक व्यय का ही विश्लेषण किया गया है। सार्वजनिक व्यय के अतिरिक्त भारत की प्रथम तीन योजनाओ मे निजी क्षेत्र का जो विनिमय हुआ है उसे सारणी 13 1 मे प्रदर्शित किया गया है। इन योजनाओ मे निजी क्षेत्र का विनिमय क्रमश 1,800 करोड रुपये 3,100 करोड रुपये व 4,190 करोड रुपये रहा। इस क्रम मे यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रथम पचवर्षीय योजना मे 1960 के कुल व्यय मे से 400 करोड रुपये चालू व्यय पर खर्च हुए और इस प्रकार सरकारी क्षेत्र का इस योजना मे शुद्ध विनिमय 1 560 करोड रुपये का हुआ। इसी प्रकार द्वितीय योजना के 4,672 करोड रुपये मे से चालू व्यय के 941 करोड रुपये निकालने पर इस योजना की अवधि मे सरकारी क्षेत्र का विनियोग 3,731 करोड रु तथा तृतीय योजना मे व्यय की वास्तविक राशि 8,577 करोड रुपये मे से चालू व्यय की 1,448 करोड रुपये की राशि निकालने पर इस योजना मे सरकारी क्षेत्र का विनियोग 7,129 करोड रुपये हुआ।

योजनाओ में क्षेत्रीय लक्ष्य
(Sectoral Targets in Plans)

प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ के वित्तीय आवटन के उपरान्त अब हम इन योजनाओ के क्षेत्रीय लक्ष्यों का अध्ययन करेंगे। इन योजनाओ मे भारत के आर्थिक विकास की क्या स्थिति रही, विभिन्न आर्थिक मदो के अन्तर्गत क्या उपलब्धियाँ रही, उत्पादन के प्रस्तावित भौतिक लक्ष्यो को किस सीमा तक प्राप्त किया जा सका, आदि प्रश्नो से सम्बन्धित तथ्यो को कृषिगत तथा औद्योगिक मदो के सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम कृषिगत मदो के लक्ष्यो तथा इनकी उपलब्धियो को सारणी-6 मे दिया जा रहा है।

सारणी—6
चुनी हुई कृषिगत वस्तुओं के उत्पादन–लक्ष्य तथा प्रगति

मदें	1950–51	1955–56		1960–61	1965–66	
	वास्तविक	प्रस्तावित लक्ष्य	वास्तव में प्राप्त लक्ष्य	वास्तविक	प्रस्तावित लक्ष्य	वास्तव में प्राप्त लक्ष्य
खाद्यान्न (मि टन)	54 92	61 60	69 22	82 0	72 29	72 0
तिलहन (मि टन)	5 09	7 07	5 63	7 0	10 7	6 3
गन्ना गुड़ (मि टन)	6 92	6 32	7 29	1 12	13 5	12 0
कपास (मि गाठ)	2 62	4 23	4 03	5 3	8 60	4 8
जूट (मि गाठें)	3 51	5 39	4 48	4 1	4 48	6 5

Source (i) Economic Survey 1969 70 pp 66-67
(ii) *Paul Streeten* op cit p 3 2.

प्रथम योजनावधि में कृषि उत्पादन में वृद्धि कृषिगत भूमि के क्षेत्रफल में विस्तार करके की गई। किन्तु द्वितीय योजना काल में कृषि की उत्पादकता में वृद्धि जल, रासायनिक खाद कीटनाशक दवाइयों शक्ति आदि कृषिगत साधनों की पूर्ति बढ़ा कर की गई। इन साधनों की पूर्ति के विस्तार को सारणी–7 में प्रदर्शित किया गया है—

सारणी–7
कृषिगत साधन

मदें	1950 51	1965 66
खाद (हजार टन नाइट्रोजन)	56	600
विद्युत् (मि किलोवाट घंटा)	203	1730
सिंचाई नल कूप (म)	3500	32499
ईंधन तेल (मुन्द्र कराड़ रु म)	4 5	27 7

Source Economic Survey 1969 70 pp 66-67

सारणी 7 से स्पष्ट है कि 1950 51 की तुलना में 1965 66 में कृषिगत साधनों के प्रयोग में वृद्धि हुई है। खाद का उपयोग दस गुना विद्युत् का आठ गुना बढ़ा। नलकूपों की संख्या में दस गुनी अधिक वृद्धि हुई तथा ईंधन-तेल का उपभोग भी छः गुना अधिक किया जाने लगा।

सारणी-8

कुछ औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन-लक्ष्य

मदें	1950-51	1955 56		1965 66	
		प्रस्तावित	वास्तविक	प्रस्तावित	वास्तविक
1 तैयार इस्पात (मि टन)	1 04	1·4	1 3	4 6	4 51
2 अल्यूमिनियम धातु (हजार टन)	4 0	12 0	7 3		62 1
3 डीजल इजन (हजारो मे) स्टेशनरी	5 5		10 0	85·0	93·1
4 कुल मोटरगाडियाँ (हजारो मे)	16 5		25 3	68 5	70 7
5 मशीनी औजार (मिलियन रु मे)	3 0		7·8	230 0	294 0
6 चीनी मिल मशीनरी (मिलियन रु मे)			1 9	80 0	77 0
7 साइकिल (हजारो मे)	99 0		513	1700	1574
8 सलफ्यूरिक एसिड (हजार टन)	101				662
9 सीमेन्ट (मि टन)	2 7	4 8	4·6		10·8
10 नाइट्रोजन उवरक (हजार टन म)	9 0			233	232
11 कास्टिक सोडा (हजार टन)	12 0				218
12 कोयला (मि टन) (लिग्नाइट सहित)	32 8		38 4		70 3
13 कच्चा लोहा (मि टन) (गोआ को छोडकर)	3 0		4 3		18 1
14 परिशुद्ध पैट्रोल पदार्थ (मिलियन टन)	0 2		3 6		9 4
15 उत्पन्न विद्युत् (बिलियन कि घटा)	5 3				32 0

Source (i) Economic Survey 1969 70 pp 66 67
(ii) *Paul Streeten* op cit p 301

अर्थ व्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रो के भौतिक लक्ष्यो को निरपेक्ष रूप मे उपरोक्त सारणियो मे प्रदर्शित किया गया है। लक्ष्यो की सापक्ष स्थिति को और अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से विकास लक्ष्यो को वार्षिक औसत विकास-दरो के रूप मे सारणी-9 मे प्रस्तुत किया जा रहा है। यह अध्ययन Paul Streeten एव Michael Lipton का है। इन विकास-दरो के माध्यम से यह सरलता से जाना जा सकता है कि कृषि, शक्ति, खनिज, उद्योग, यातायात और सचार आदि आर्थिक क्षेत्रो के विकास की सापेक्ष प्रवृत्ति प्रत्येक योजना अवधि मे किस प्रकार की रही है।

सारणी–9

चुने हुए लक्ष्य और उपलब्धियाँ—वार्षिक औसत विकास दरें

(Selected Targets and Achievements—Annual Average Growth Rates)

मदें (Items)	भौतिक सूचकांक (Phys cal Indicator)	1950 51 के व स्तविक पर 1955 56 के लक्ष्य (Targets 1955 56 over Actuals 1950 5)	1950 51 के वास्तविक पर 1955 56 के वास्तविक (Actuals 1955 56 over Actuals 1950 51)	195 56 के वास्तविक पर 1960 61 के लक्ष्य (Targets 1960 61 over Ac uals 1955 56)	1955 56 के वास्तविक पर 1960-61 के वास्तविक (Actuals 1960 61 over Ac uals 1955 56)	1960 61 के वास्तविक पर 1965 66 के लक्ष्य (Targets 1965 66 over Actuals 1960 6)	1950 51 के व स्तविक पर 1964 65 के वास्तविक (Actuals 1964 65 over Actuals 19 0 51)	1964 65 के वास्तविक पर 1970 71 के लक्ष्य (Targets 1970 71 over Actuals 964 6)
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1 कृषि								
(i) कृषिगत उत्पादन								
खाद्यान्न	वजन	3 4	4 7	4 1	3 5	4 0	2 0	5 1
कपास	गाँठें	7 7	6 6	10 2	0 5	5 8	0 6	8 0
गन्ना गुड	वजन	2 4	1 4	5 4	9 0	—	2 4	1 6
तिलहन	वजन	1 5	1 9	6 3	4 4	7 0	4 4	4 3
जूट	गाँठें	10 4	4 9	5 5	—	2 8	9 9	6 9
चाय	वजन		0 7	1 9	2 4	4 6	3 2	3 8
(ii) कृषिगत उत्पादक कारक								
नेत्रजन खाद का उपयोग	वजन	—	13 8	n a	14 4	n a	2 0	23 8
फास्फेट खाद का उपयोग	वजन	—	13 1	n a	40 0	n a	20 6	37 4

1	2	3	4	5	6	7	8	9
2 शक्ति								
विद्युत् क्षमता का उत्पादन	मि किलोवाट	9 4	8 1	14 9	10 5	17 8	11 3	15 1
3 खनिज								
कच्चा लोहा	वजन	5 9	7 5	23 8	20 6	17 8	8 3	23 6
कोयला	वजन	5 8	3 5	9 3	7 4	11 7	3 7	8 7
4 उद्योग								
इस्पात	वजन	10 6	5 0	27 8	12 1	24 2	16.5	12 1
मशीन यंत्र	मूल्य	—	16 7	30 6	54 3	33 8	30 0	31 8
अल्यूमीनियम	वजन	24 6	12 8	31 3	19 9	34 2	31 2	35 2
नेत्रजन खाद	वजन	57 4	54 0	29 8	4 3	52 0	25 0	43 0
फॉस्फेट खाद	वजन	27 2	5 9	57 4	35 1	49 4	24 0	40 3
कागज तथा कागज के पुटठे	वजन	11 9	10 4	13 3	13 0	14 9	9 0	10 5
सीमेन्ट	वजन	12 2	11 2	23 1	11 3	10 3	5 3	12 4
सूती कपडा	लम्बाई	4 8	6 5	0 2	—	2 7	6 1	5 4
चीनी	वजन	6 0	10 7	3 9	9 4	3 1	1 8	5 5
साइकिलें	संख्या	39 8	39 0	14 3	15 8	13 8	7 7	6 1
विद्युत् पंखे	संख्या	11 6	7 6	15 3	29 8	18 7	4 6	18 4

1	2	3	4	5	6	7	8	9
5 यातायात और सचार								
(i) रेलें		—						
यात्री	ट्रेनमील	—	2 7	2 8	4 5	n a	4 7	4 1
किराया	भार टनो मे	—	4 5	7 3	6 1	9 8	5 6	8 1
(ii) सडकें (पक्की)	मील	—	4 6	3 1	5 1	3 0	4 0	3 6
(iii) जहाजरानी		—	4 2	13 4	12 3	7 8	12 9	13 5
(iv) डाक								
डाकघर	सख्या	—	8 8	6 4	7 0	4 1	5 9	1 2
टेलीफोन	सख्या	—	10 6	10 6	10 7	8 7	13 4	12 1
6—सामाजिक सेवाएँ								
(i) शिक्षा		—						
छात्र-सख्या		—						
प्राथमिक	छात्र	—	5 6	5 5	6 8	8 9	8 1	6 2
माध्यमिक		—	6 6	5 5	3 3	5 5	10 4	11 5
उच्च माध्यमिक, उच्चतर		—	9 2	7 9	9 3	12 7	12 1	11 4
(ii) स्वास्थ्य		—						
अस्पताल शैया	सख्या	—	2 0	4 4	8 3	5 2	5 3	4 6
डाक्टर	सख्या	—	3 0	1 5	1 2	3 0	4 0	8 1
परिवार नियोजन क्लीनिक	सख्या	—	n a	78 0	62 0	37 8	47 0	35 8

n a —not available

Source *Paul Streeten and Michael Lipton* (Eds)—The Crisis of Indian Planning pp 382 83

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों का मूल्यांकन
(An Evaluation of the Achievements of the First Three Five Year Plans)

प्रथम पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय आय मे 18% वृद्धि हुई। वृद्धि का लक्ष्य 11% रखा गया था। द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय आय मे 25% वृद्धि के विरुद्ध वास्तविक वृद्धि केवल 20% हुई। तृतीय योजना मे 30% वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर राष्ट्रीय आय मे 13 8% वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से प्रथम पचवर्षीय योजना मे 11% वृद्धि हुई, द्वितीय योजना में 18% वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर 11% वृद्धि हुई। 1960-61 के मूल्यो पर प्रति व्यक्ति आय 1960-61 मे 306·7 रुपये थी। यह बढ कर 1964-65 मे 333 6 रुपये हो गई किन्तु 1965-66 मे पुन घट कर 307·3 रुपये रह गई। इससे स्पष्ट है कि तृतीय योजना के अन्त मे प्रति व्यक्ति आय लगभग वही रही है जो योजना के प्रारम्भ मे थी।

1950 51 से 1964 65 तक राष्ट्रीय आय मे 65% वृद्धि हुई तथा प्रतिवर्ष चक्र-वृद्धि दर के हिसाब से लगभग 3 8% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति वास्तविक औसत दर लगभग 1 8% रही। इन अकों की दृष्टि से यह कहना उपयुक्त नही है कि प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ की 15 वर्षीय अवधि मे भारत मे आर्थिक विकास नही हुआ। किन्तु यह कहना सही है कि लक्ष्यो की तुलना मे उपलब्धि का स्तर कम रहा।

कृषि

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि के उत्पादन मे 18% वृद्धि हुई। खाद्यान्नो का उत्पादन 54 92 मिलियन टन से बढ कर 69 22 मिलियन टन हो गया। द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष 1960-61 मे खाद्यान्न का उत्पादन 82 0 मिलियन टन हो गया किन्तु तृतीय योजना मे खाद्यान्नो का उत्पादन घट कर केवल 72 मि. टन ही रह गया। औसत वार्षिक विकास-दर की दृष्टि से प्रथम पचवर्षीय योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे 3 4% औसत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के स्थान पर 4 7% औसत वार्षिक वृद्धि हुई। किन्तु तृतीय योजना मे 4 0% औसत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के विरुद्ध केवल 2 0% की ही वृद्धि हुई। खाद्यान्नो के उत्पादन की सफलता तथा तृतीय पचवर्षीय योजना की असफलता को प्रकट करते हैं। कुल मिलाकर खाद्यान्नो की प्रति व्यक्ति उपलब्धि मे वृद्धि हुई। 1951 मे खाद्यान्नो की प्रति व्यक्ति उपलब्धि जो *13 0* औंस थी वह *1965* मे बढ कर 16 8 औंस प्रति व्यक्ति हो गई।

तिलहन गन्ना, जूट व कपास के उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि-दर प्रथम योजना मे क्रमश 1 9, 1·4, 4 9 व 6 6% रही। अधिकांश कृषि-उपजो की औसत वार्षिक वृद्धि दर लक्ष्य से अधिक रही, किन्तु तृतीय योजना मे जूट को छोड कर लगभग इन सभी कृषि-उपजो की औसत वार्षिक वृद्धि-दर कम हो गई। इस तथ्य को सम्बन्धित सारणी मे देखा जा सकता है।

सिंचाई की दृष्टि से प्रथम तीन योजनाओ म बडी व मध्यम श्रेणी की सिंचाई के अन्तर्गत 13 8 मिलियन एकड क्षेत्र व लघु सिंचाई के अन्तर्गत 31·6 मिलियन एकड क्षेत्र की वृद्धि हुई। शक्ति के क्षेत्र मे 1950 51 मे जो प्रस्थापित क्षमता (Installed Capacity) 23 लाख किलोवाट थी वह 1965 66 मे बढ कर 102 लाख किलोवाट हो गई। विद्युत् क्षमता मे इस प्रकार पाँच गुनी वृद्धि हुई।

सक्षेप मे भारत की तीन पचवर्षीय योजनाओ के दौरान कृषिगत उत्पादन का सूचनांक काफी ऊँचा रहा। 1950 51 मे 95 6 (1949 50=100) से 1965-66 म बढ कर 169 हो गया। इस तरह वृद्धि का प्रतिशत लगभग 65 रहा।

औद्योगिक क्षेत्र

कृषि की तुलना मे औद्योगिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ प्रथम तीन योजनाओ की पन्द्रह वर्षीय अवधि मे अधिक हुई। औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक 1951 मे 100 से बढ कर 1961 मे 194 हो गया। 1955 56 म यह सूचनांक 139 तथा औद्योगिक उत्पादन का यह सूचनांक 1956 के 100 से बढ कर 1965 66 मे 182 हो गया। उपभोग वस्तुओ के उत्पादन का मूल्य 1950 51 म (1960 61 के मूल्यो पर) जो 200 करोड रुपये था वह 1965-66 म बढ कर 488 करोड रुपये हो गया। मध्यवर्ती वस्तुओ का उत्पादन मूल्य 90 करोड रुपये से बढ कर 620 करोड रुपये तथा मशीनी उत्पादन का मूल्य 31 करोड रुपये से बढ कर 316 करोड रुपये हो गया। इस प्रकार सर्वाधिक वृद्धि मशीनी उत्पादन मे हुई।

प्रमुख उद्योगो की प्रगति का उल्लेख सारणी 8 व 9 मे किया जा चुका है। सारणी के अनुसार आर्थिक नियोजन के प्रथम 15 वर्षों मे डीजल इजन, मशीनी औजार, नेत्रजन खाद, पेट्रोल पदार्थों, अल्युमीनियम आदि के उत्पादन म काफी वृद्धि हुई। अल्यूमीनियम का उत्पादन 1950 51 म केवल 4000 टन था। 1965 66 म बढ कर यह 62 1 हजार टन हो गया। डीजल इजन 1950 51 म 5 5 हजार थे। उनका उत्पादन 1965 66 मे बढ कर 93 1 हजार हो गया। मशीनी औजारो का मूल्य 1950-51 मे जो केवल 3 मिलियन था वह 1965-66 मे बढ कर 294 मिलियन हो गया। सीमेन्ट के उत्पादन म भी काफी वृद्धि हुई। 1950-51 मे इसका उत्पादन 2 7 मिलियन टन था। 1965 66 मे बढ कर यह 10 8 मिलियन टन हो गया। नेत्रजन खाद का उत्पादन 1950-51 के 9 हजार टन के मुकाबले 1965-66 मे 232 हजार टन हो गया। आर्थिक नियोजन की इस पन्द्रह वर्षीय अवधि म तैयार इस्पात का उत्पादन लगभग चार गुना बढा। डीजल इजनो की सख्या 17 गुना बढी। मशीनी औजारो म 98 गुना अधिक वृद्धि हुई। नाइट्रोजन खाद का उत्पादन 26 गुना अधिक होने लगा। पेट्रोल से बने पदार्थों का उत्पादन 47 गुना अधिक हुआ।

औसत वार्षिक विकास-दरो की दृष्टि से कृषि की तुलना मे औद्योगिक वस्तुओ मे वृद्धि की औसत वार्षिक दरें अपेक्षाकृत कही अधिक रही हैं। इन वार्षिक दरो को सम्बन्धित सारणी से देखा जा सकता है। मशीनी-यन्त्रो की औसत वार्षिक वृद्धि दर

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त म 16 7% थी। तृतीय योजना के अन्त मे यह 38% हो गई। अल्यूमीनियम की औसत वार्षिक विकास-दर 1955 56 मे 12·8/. थी। 1965-66 म बढ कर यह 21 2 /. हो गई। इसी प्रकार अन्य औद्योगिक मदो की स्थिति को आंका जा सकता है।

द्वितीय योजना मुख्य रूप से औद्योगीकरण की योजना थी। इस योजना की अवधि मे लोहा एव इस्पात के तीन कारखान भिलाई (मध्य प्रदेश), रुरकेला (उडीसा) और दुर्गापुर (पश्चिम बगाल) मे स्थापित किए गए। इस योजना मे चितरजन, टाटा, लोह उद्योग मे विस्तार और इजीनियरिंग उद्यागो का विकास किया गया। लघु उद्योगो के विकास पर 180 करोड रुपय व्यय किए गए तथा विभिन्न उद्योगो के विकास के लिए अखिल भारतीय बोर्डो की स्थापना हुई।

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

आर्थिक योजनाओ के माध्यम से भारत म सार्वजनिक क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार हुआ। अब देश मे एक सुदृढ सार्वजनिक क्षेत्र की स्थिति विद्यमान है। सावजनिक क्षेत्र मे औद्योगिक प्रतिष्ठानो की सख्या म हुई उत्तरोत्तर वृद्धि को सारणी-10 म निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

सारणी-10

सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की स्थिति

प्रारम्भ मे	प्रतिष्ठाना का सख्या	कुल विनियोग (मिलियन रुपये मे)
प्रथम योजना	5	290
द्वितीय योजना	21	810
तृतीय योजना	48	9530
चतुर्थ योजना	85	39020

1971 72 तक सावजनिक प्रतिष्ठानो को कोई लाभ नही हुआ अपितु भारी हानि हुई। 1971 72 मे विशुद्ध हानि की राशि 191 5 मिलियन थी किन्तु 1972 73 मे 101 प्रतिष्ठानो मे से 67 प्रतिष्ठानो मे 1044 6 मिलियन रुपये का विशुद्ध लाभ हुआ और 74 प्रतिष्ठानो मे 867 6 मिलियन रुपये की हानि हुई। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र का विशुद्ध लाभ 177 6 मिलियन रुपये रहा। भारी उद्योग मत्रालय के 1973-74 के प्रतिवेदन के अनुसार 14 सार्वजनिक प्रतिष्ठानो ने 1973 74 के वर्ष मे 4090 मिलियन रुपये के उत्पादन मूल्य का मानदण्ड स्थापित किया। विकास दर की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र की विकास-दर जहाँ 5 5 / रही वहाँ निजी क्षेत्र की विकास दर 1971-72 मे 1 / और 1972-73 म 2 5 / रही। औद्योगिक उत्पादन मे सरकारी क्षेत्र का अश 1951 मे केवल 2 / था वह 1970 मे बढ कर 5 / हो गया।

यातायात एव सचार-क्षेत्र की उपलब्धियाँ

यातायात एव सचार-व्यवस्था का विकास औद्योगीकरण की आधारशिला

है। प्रथम योजना मे रेल की 380 मील लम्बी नई लाइनें बिछाई गईं और रेल-ट्रेफिक मे 24 8 / की वृद्धि हुई। 636 मील लम्बी सडकों का निर्माण हुआ। जहाजरानी की क्षमता 3 9 लाख जी आर टी. से बढ़ा कर 4 8 लाख जी. आर. टी. कर दी गई। 1950 51 मे रेल इन्जनो का वार्षिक उत्पादन 27 से बढ कर 1955-56 मे 179 इजन हो गया।

द्वितीय योजना मे रेलो सडको और जहाजरानी के विकास के लिए विस्तृत विकास-कार्य किए गए। 8000 मील लम्बी रेलवे लाइनो का सुधार, 1,300 मील लम्बी लाइनो का दोहरीकरण और 500 मील लम्बी लाइनो का विद्युतीकरण किया गया जिससे माल ढोने की क्षमता 11 6 करोड टन से बढ कर 15 6 मैट्रिक टन हो गई। रेलो के विकास पर 1 044 करोड रुपये व्यय हुआ। सडक-विकास पर 224 करोड रुपये व्यय करने से कच्ची व पक्की सडको की लम्बाइयाँ क्रमश: 2 94 000 मील और 1 47 000 मील हो गई। इस प्रकार कच्ची एव पक्की सडको मे क्रमश 37 000 मील और 22,000 मील की वृद्धि हुई। जहाजरानी की क्षमता 4 8 लाख जी आर टी से बढ कर 8 6 लाख जी. आर. टी. हो गई।

तृतीय योजना मे यातायात एव सचार के लिए 1,486 करोड रुपये (कुल का 20 /) निर्धारित किया गया जब कि वास्तविक व्यय 2110 7 करोड रुपये हुआ। अधिक व्यय का कारण सैनिक दृष्टि से भौतिक लक्ष्यो एव कार्यक्रमो मे परिवर्तन था। रेलो के माल ढोने की क्षमता 1450 लाख टन से बढा कर 2540 लाख टन करने का (59 / वृद्धि) लक्ष्य था पर योजना के अन्त मे यह क्षमता सिर्फ 2050 लाख टन ही थी। सडको के निर्माण मे 292 करोड रुपये का व्यय कर 2,70,400 मील लम्बी कच्ची-पक्की सडकें बनाई गईं। जहाजरानी की क्षमता 8 6 लाख टन से बढ कर 15 4 लाख टन कर दी गई। इस प्रकार लगभग 7 लाख जी. आर. टी. की वृद्धि हुई।

सामाजिक सेवाओ के क्षेत्र की उपलब्धियाँ

सामाजिक सेवाओ पर प्रथम योजना मे कुल योजना व्यय का 25 /. भाग व्यय किया गया। प्राथमिक शालाओ की सख्या 2 09 लाख से बढ कर 2·8 लाख हो गई। मेडिकल कॉलिजो की सख्या 30 से बढ कर 42 और विद्यार्थियो की सख्या 2,500 से बढ कर 3,500 हो गई। अस्पतालो की सख्या मे 1,400 की वृद्धि हुई और डॉक्टरो की सख्या 59 000 से बढ कर 70,000 हो गई।

द्वितीय योजना मे शिक्षा के क्षेत्र मे विस्तार एव विकास से छात्रो की सख्या 3 13 करोड से बढ कर 4 35 करोड, चिकित्सालयो की सख्या 10 000 से बढ कर 1,26,000, मेडिकल कॉलिजो की सख्या 42 से बढ कर 57, परिवार नियोजन केन्द्रो की सख्या 147 से बढकर 1649 कर दी गई। गृह निर्माण-कार्य पर 250 करोड रुपये व्यय किए गए जिससे आवास-गृहो की सख्या मे 5 लाख की वृद्धि हुई। पिछड़े वर्गों मे 4800 छात्रो को छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

तृतीय योजना मे शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा पर 1300 करोड रुपये व्यय

करने का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 1355 5 करोड रुपये हुआ। जिससे स्कूलो व शिक्षा प्राप्त करने वालो की सख्या 4 लाख और 4 5 करोड से बढ कर 5 लाख तथा 6 8 करोड हो गई। अस्पतालो की सख्या मे 2000 की वृद्धि हुई। परिवार-नियोजन केन्द्रो की सख्या 1649 से बढ कर 11,474 हो गई। मेडिकल कॉलेजो की सख्या मे 30 की वृद्धि हुई जिससे मेडिकल कॉलेजो की कुल सख्या देश मे इस योजना के अन्त मे 87 हो गई।

बचत व विनियोग

भारत मे आर्थिक-नियोजन के प्रथम 15 वर्षों मे बचत व विनियोग के क्षेत्र मे रही स्थिति को सारणी-11 मे प्रदर्शित किया गया है—

सारणी–11

वर्ष	बचत-राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे	विनियोग राष्ट्रीय-आय के प्रतिशत के रूप मे
1950-51	5 53	5 44
1955-56	9 26	9 86
1960-61	9 45	12 88
1965-66	10 5	14 00

1965-66 के सूचनांक से स्पष्ट है कि विनियोगो के लगभग 3 5 / भाग के लिए हमे विदेशी साधनो पर निर्भर रहना पडा है। घरेलू बचतो मे वृद्धि आवश्यक विनियोगो के अनुरूप नही हुई।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन की प्रथम 15 वर्षीय अवधि मे कृषि, उद्योग, यातायात और सचार, सामाजिक-सेवाएँ आदि क्षेत्रो मे उक्त उपलब्धियाँ रही। आर्थिक नियोजन की इस अवधि मे देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ और गतिमान हुई है तथा विभिन्न आर्थिक क्षेत्रो की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय रही हैं तथापि योजनाओ के लक्ष्यो और वास्तविक उपलब्धियो मे पर्याप्त अन्तर रहने, मुद्रा-स्फीति के कारण मूल्य-स्तर के असामान्य रूप से बढने, बेरोजगारी मे निरन्तर वृद्धि, विदेश-विनिमय-सकट और उत्पादन के केन्द्रीकरण से सर्वसाधारण का जीवन-स्तर अभी तक भी बहुत निम्न स्तर पर है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के होते हुए भी खाद्यान्नो के क्षेत्र मे आवश्यकता की पूर्ति आयातो मे करनी पडती है। ऐसी स्थिति मे सर्वसाधारण के जीवन-स्तर को उठाने और गरीबी का उन्मूलन करने के लिए हमको योजना के क्रियान्विति पक्ष पर विशेष ध्यान देना होगा। प्रशासनिक-कुशलता एव ईमानदारी मे वृद्धि करनी होगी। गत वर्षों के योजनाबद्ध आर्थिक विकास ने भारत की अर्थव्यवस्था को स्वय-स्फूर्त तथा आत्म-निर्भरता की स्थिति की ओर बढाया है, किन्तु आयोजन के फलस्वरूप कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रो मे हुए रचनात्मक परिवर्तनो का लाभ उठाने के लिए हमको आर्थिक आयोजन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा।

रही। दूसरी योजना मे भी विनियोग-दर की दृष्टि से स्थिति आशाजनक रही। यह दर 11% के लगभग रही जो निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप थी। किन्तु तृतीय योजना मे विनियोग व बचत दर मे प्रगति असन्तोषजनक रही। 1965-66 मे 14 से 15% के लक्ष्य की तुलना मे विनियोग-दर 13 4% के लगभग रही। आगे की तीन वार्षिक योजनाओ मे भी स्थिति उत्तरोत्तर असन्तोषजनक होती गई। विनियोग-दर निरन्तर गिरती गई। 1966-67 मे यह गिर कर 12·2%, 1967-68 मे 19 6% और 1968-69 मे 9·5% रह गई। विनियोग-दर की इस गिरती हुई स्थिति पर चौथी योजना मे विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप स्थिति मे पुन सुधार हुआ और विनियोग-दर बढ कर 1970-71 मे 10 5% तथा 1971-72 मे 11 5% के लगभग हो गई।

यदि आँकडो से हटकर भी देखें तो देश मे उत्पादकता और मुद्रा प्रसार की जो स्थिति है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रीय उत्पादन अपेक्षित स्तर से बहुत कम है, और इसके लिए विनियोग की असन्तोषजनक स्थिति भी एक सीमा तक उत्तरदायी मानी जा सकती है। अत आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर विनियोजित पूँजी की उत्पादकता मे वृद्धि की जानी चाहिए तथा दूसरी ओर उत्पादन मे वृद्धि के लिए विनियोगो की दशा मे ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहिए जिनसे विनियोगो मे वृद्धि हो सके। इससे पूर्व कि हम विनियोगो मे वृद्धि के लिए सम्भावित उपायो पर विचार करें, उन तकनीकियो की जानकारी कर लेना उपयुक्त है जिनके द्वारा देश की योजनाओ के लिए बचतो को विनियोग-क्षेत्रो मे आकर्षित करने के प्रयत्न किए गए। योजनाओ के विनियोग-विश्लेषण से स्पष्ट है कि बचतो को प्राप्त करने के लिए निम्न तीन तकनीकियाँ अपनाई गई--

(1) प्रत्यक्ष हस्तातरण विधि (Technique of Direct Transfer)
(2) अप्रत्यक्ष हस्तातरण विधि (Technique of Indirect Transfer)
(3) अनिवार्य हस्तातरण विधि (Technique of Forced Transfer)

प्रत्यक्ष हस्तातरण--बचतकर्त्ताओ से साधनो के सग्रह के लिए पहली विधि जो योजनाओ मे प्रयुक्त हुई वह प्रत्यक्ष हस्तातरण की विधि थी। इस विधि के अन्तर्गत किए गए प्रयत्नो का मूल उद्देश्य बचतकर्त्ताओ को वित्तीय सम्पत्तियो के क्रय के लिए प्रेरित करना था। राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र, डाकघर जमा योजनाएँ आदि शुरू की गईं। इस विधि के अन्तर्गत विशेष रूप से यह प्रयत्न किया गया कि बचतो का उपयोग उत्पादक-क्षेत्रो (Productive Channels) मे हो तथा निजी क्षेत्र की अपेक्षा लोगो की बचतें सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रवाहित हो।

अप्रत्यक्ष हस्तातरण—जनता की बचतो को विनियोजन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए दूसरी विधि अप्रत्यक्ष हस्तानतरण की अपनाई गई। इस विधि के अन्तर्गत कुछ राजकोषीय तरीको (Fiscal Measures) को प्रयोग मे लाया गया। इन तरीको के अन्तर्गत करारोपण, अनिवार्य जमा आदि के माध्यम से बचतो को विनियोग के लिए उपलब्ध कराने के प्रयत्न हुए तथा साथ ही जीवन-बीमा भुगतान,

प्रोवीडेण्ट-फंड आदि (Contractual Savings) के परिणाम को बढाने के प्रयत्न किए गए। इन सब प्रयत्नो का मुख्य लक्ष्य उपभोग्य आय (Disposal Income) को कम करके बचतो का सृजन करना तथा इन बचतो को अनिवार्य एव अर्द्ध-अनिवार्य तरीकों के माध्यम से सरकारी क्षेत्र पर पहुँचाना था। द्वितीय योजना मे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट किया गया कि, पहला अनिवार्य विन्दु यह है कि क्या निजी बचतें, निजी विनियोगो की आवश्यकता को पूरा करने के उपरान्त, इतनी अधिक हो सकती है कि राज्य की सम्भावित आवश्यकताओ को पूरा कर सके। बचतो मे पर्याप्तता की स्थिति तभी सम्भव है जब कि उपभोग को आवश्यक प्रतिबन्धो में रखा जाए। करो के रूप में या सार्वजनिक प्रतिष्ठानो के लाभो के रूप में जितनी कम मात्रा में बचतें प्राप्त होगी, उतनी ही अधिक आवश्यकता उपभोग को नियन्त्रित रखने की महसूस की जाएगी। परिणामस्वरूप उपभोग पर नियन्त्रण रखने के लिए अन्य तरीके काम मे लिए जाएँगे।

अनिवार्य हस्तातरण—बचतो को विनियोजन के लिए उपलब्ध कराने की तीसरी विधि अनिवार्य हस्तांतरण की प्रयोग मे ली गई। यदि सरकारी प्रतिभूतियो की सीधी खरीद के द्वारा निजी बचतें सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्राप्त नही होती हैं तो बचतो की उपलब्धि के लिए स्वीकृत मात्रा से अधिक मात्रा में निजी क्षेत्र से बैंक नकदी तथा जमाओ को अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

विनियोगो मे वृद्धि के लिए उपरोक्त सैद्धान्तिक तकनीकियो के अतिरिक्त समय पर सरकार द्वारा तथा रिजर्व बैंक द्वारा राजकोषीय और मौद्रिक तरीके घोषित किए जाते है। साख, ऋण, कर आदि नीतियो में सशोधन किए जाते हैं, बैंक-दर को घटाया-बढाया जाता है। अनेक प्रकार के नए कर लगाए जाते है और पुरानी कर-व्यवस्था मे सुधार किए जाते हैं। बैंक-दर, खुले बाजार की क्रियाएँ, नकद कोष अनुपात में परिवर्तन आदि विनियोग तथा बचतो को प्रभावित करने वाली विधियाँ तथा कर, ऋण एव व्यय-नीति सम्बन्धी राजकोषीय तरीको से प्राय सभी परिचित है। इन नीतियो के सैद्धान्तिक पहलुओ में जाकर हमको यह मान्यता लेते हुए कि विनियोग का वर्तमान स्तर देश की आवश्यकताओ से बहुत कम है, उन उपायो को देखना चाहिए जिनसे भविष्य में विनियोग की दर मे देश की आवश्यकताओ के अनुरूप वृद्धि की जा सके।

विनियोग-वृद्धि के उपाय

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे विनियोगो की वृद्धि के लिए साधन-सग्रह के कुछ सुझाव दिए गए हैं—

1. सार्वजनिक प्रतिष्ठानो के अन्तर्गत सार्वजनिक उपयोगिता प्रतिष्ठान और राजकीय क्षेत्र के अन्य व्यावसायिक प्रतिष्ठान लिए जा सकते हैं। नियोजन काल मे सार्वजनिक क्षेत्र का योजनाओ मे निरन्तर विस्तार किया गया है और लगभग 5 हजार करोड से भी अधिक की राशि इस क्षेत्र मे विनियोजित की गई है किन्तु इस भारी विनियोजन के यथेष्ट लाभ प्राप्त नही हो पा रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र से मिलने वाले

लाभ विनियोग योग्य साधन-सग्रह के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखते हैं। सार्वजनिक प्रतिष्ठानो के सम्बन्ध मे नियुक्त कुछ समितियो ने इन उपक्रमा के लिए निश्चित प्रतिफल दर की सिफारिश की है।

2 जिन क्षेत्रो पर अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए विशेष रूप से ध्यान दिया जा सकता है, उनमे राजकीय विद्युत सस्थानो का प्रमुख स्थान है। वैंकट रमन समिति की सिफारिशो के अनुसार विद्युत् सस्थानो से कम से कम 11% की दर से प्रतिफल मिलना चाहिए। जहाँ यह दर 11% से कम है, वहाँ इसे कम से कम 11% तक बढाया जाना चाहिए। धीरे धीरे शुल्क मे वृद्धि अपेक्षित है तथापि बिजली दरो को इस प्रकार मिश्रित करना चाहिए जिससे आर्थिक दृष्टि से अच्छी स्थिति वाले उपभोक्ताओ को अधिक दाम चुकाना पडे।

3 सिंचाई परियोजनाओ के सम्बन्ध मे नियुक्त निजलिंगप्पा समिति की यह सिफारिश भी विनियोग वृद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि सिंचाई की दरें सिंचित फसलो से कृषको को प्राप्त अतिरिक्त विशुद्ध लाभ के 25–40 % पर निश्चित की जानी चाहिए। कृषको के उस वर्ग से साधन जुटाने के प्रयास बढाने होंगे जिन्हें सिंचाई योजनाओ से प्रत्यक्ष लाभ मिलता है।

4 चतुर्थ योजना मे अतिरिक्त साधन व्यवस्था की दृष्टि से इस बात को भी महत्त्वपूर्ण समझा गया कि सार्वजनिक उपयोग के लिए सचालित उद्योगो को छोडकर सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक और वाणिज्य प्रतिष्ठानो मे लगी पूंजी पर होने वाली आय को धीरे धीरे बढा कर 15 प्रतिशत करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5 साधनो को बढाने तथा साधनो मे वृद्धि से विनियोगो का विस्तार करने का एक बडा उपाय करारोपण सम्बन्धी राजकोषीय साधन है। कृषि क्षेत्र अभी तक कर-मुक्त हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में योजना काल के दौरान अरबो रुपयों का विनियोजन किया गया है और इस क्षेत्र मे आय मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। अनेक बडे किसान समृद्ध पूँजीपति बन गए है। अत बढती हुई आय विषमताओ को रोकने तथा विनियोगो के लिए आवश्यक धन जुटाने के लिए कृषि-आय पर कर लगाया जाना चाहिए। वस्तुओ पर भी करारोपण की इस रूप मे प्रभावशाली व्यवस्था होनी चाहिए अथवा अप्रत्यक्ष करो का ढांचा इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous Consumption) या विलासी उपभोग (Luxury Consumption) प्रतिबन्धित रहे। बिक्री कर की दरो मे पायी जाने वाली विभिन्न राज्यो मे विषमता को दूर किया जाना चाहिए। बिक्री दरो मे समानता लाने से भी एक बडी राशि प्राप्त की जाना सम्भव है। शहरी सम्पत्ति के मूल्यो मे अनार्जित वृद्धि (Unearned increase) पर कर लगाया जाना चाहिए तथा आय और धन पर करो को अधिक प्रभावकारी बनाया जाना चाहिए। मृत्यु कर तथा पूंजी लाभ करों को शक्ति से क्रियाशील बनाया जाना चाहिए।

6. करो के सम्बन्ध मे करारोपण की अपेक्षा करो की चोरी (Tax evasion) को रोकने के प्रयत्न अधिक आवश्यक हैं।

7. ग्रामीण बचतो से विनियोग के लिए बहुत बडी राशि प्राप्त हो सकती है। ग्रामीण बचत को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण ऋण-पत्र निर्गमित किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता को ग्रामीण उद्योग, सिचाई कार्यक्रम, ग्राम-विद्युतिकरण, आवास एव पेय-जल की प्रभावी व्यवस्था द्वारा प्रत्यक्ष लाभ पहुँचा कर उनसे समुचित मात्रा मे धन सग्रह किए जाने पर बल दिया जाना चाहिए।

8 काले धन की वृद्धि को रोकथाम करने और काले धन को बाहर निकलवा कर विनियोग के लिए प्रयुक्त करने की नीतियो पर पुनर्विचार आवश्यक है। ऐसा, करते हुए इन उपायो पर विशेष बल देना होगा—तस्करी की रोकथाम, महत्त्वपूर्ण कृषि जिन्सो की सप्लाई पर और अधिक मात्रा मे सामाजिक नियन्त्रण, उचित शहरी भूमि सम्बन्धी नीति पर अमल आदि। अनुमान है कि देश मे लगभग उसी मात्रा मे लोगो के पास काला धन छिपा हुआ है जिस मात्रा मे देश मे मुद्रा प्रचलन मे है। अत मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियो पर पुनर्विचार करके उन्हे इस रूप मे प्रभावी बनाया जाना चाहिए कि काले धन मे वृद्धि सम्भव न रहे। साथ ही काले धन को बाहर निकालने के लिए कठोर वैधानिक उपायो का आश्रय लिया जाना चाहिए। इससे विनियोगो के लिए एक बडी राशि प्राप्त की जा सकती है।

9. वित्त-व्यवस्था मे घाटे को इस स्तर तक कम किया जाना चाहिए कि जनता के पास धन-वृद्धि होने से वह अर्थ व्यवस्था की माँगो से अधिक नही बढे ताकि योजना के लिए धन की व्यवस्था करने मे मुद्रा-स्फीति की स्थिति न आए।

10. राज सहायता पर पुनर्विचार किया जाकर इसमे यथासम्भव कमी से भी विनियोग-वृद्धि के लिए भारी राशि प्राप्त की जा सकती है।

11 निर्यात मे तेजी से वृद्धि और आयात प्रतिस्थापन की दिशा मे कमजोर बिन्दुओ को दूर किया जाना चाहिए।

12 कुछ विदेशी सहायता की राशि को यथाशीघ्र इस स्तर तक घटाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि केवल ऋणो के भुगतान के लिए आवश्यक राशि ही विदेशी सहायता के रूप के स्वीकार की जाए।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि योजनाओ के लिए विनियोग-वृद्धि की दृष्टि से हमे कई दिशाओ मे एक साथ काम करना होगा। लोगों की बढती हुई आय का एक बडा भाग विकास-कार्यों के लिए सग्रहीत करना होगा। घरेलू बचत की दर मे पर्याप्त वृद्धि करनी होगी, क्योकि लगभग 88 प्रतिशत विनियोगो की पूर्ति घरेलू बचतो से की जाती है। उपायो की प्रिय स्थिति के लिए प्रशासनिक यन्त्र मे कुशलता लानी होगी। अनुत्पादक व्यय पर नियन्त्रण लगाना होगा तथा उत्पादक व्यय की उत्पादकता मे वृद्धि करनी होगी। एक ओर उत्पादकता वृद्धि के प्रयत्न तथा दूसरी ओर अनुत्पादक व्यय पर नियन्त्रण से ही योजनाओ के लिए आवश्यक विनियोग की पूर्ति सम्भव होगी।

उत्पादकता-सुधार के उपाय[1]
(Measures to Improve Productivity)

भारत मे उत्पादकता आन्दोलन का इतिहास लगभग 17 वर्ष पुराना है किन्तु इसका प्रारम्भ अमेरिका मे कई दशकों पहले हो चुका था। द्वितीय महायुद्ध के अन्त मे उत्पादकता की विचारधारा को पश्चिमी जगत मे व्यापक स्वीकृति मिली। जापान ने अमेरिका मे जन्मी उत्पादकता की विचारधारा का पूरा लाभ उठाया। उसने अपने सभी स्तरो के औद्योगिक कर्मचारियो को अमेरिका भेजा ताकि वे वहाँ के औद्योगिक संयत्रों से अनुभव प्राप्त कर सकें तथा अपने देश मे संयत्रों की कार्य-प्रणाली मे क्रान्ति ला सकें। भारत ने भी इसका अनुसरण किया और एक शिष्टमण्डल जापान यह ज्ञात करने भेजा कि किस प्रकार उस देश ने अपनी उत्पादकता मे शीघ्र वृद्धि की है। शिष्ट-मण्डल के प्रतिवेदन के आधार पर भारत मे 1958 में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council=NPC) की स्थापना की गई। विख्यात अर्थशास्त्री पी एस लोकनाथन् इसके अध्यक्ष मनोनीत किए गए।

उत्पादकता का अर्थ

भारतीय नियोजन के सन्दर्भ मे उत्पादकता-सुधार के उपायो पर आने से पूर्व उत्पादकता का अर्थ समझ लेना उपयुक्त है। उत्पादकता से आशय केवल बढे हुए उत्पादन से ही नही है और न ही श्रमिक की उत्पादकता से सम्बन्धित है। वास्तव मे उत्पादकता का अर्थ कम से कम उपकरणो के साथ उत्पादन बढाने की एक विधि के रूप मे लगाया जाना उपयुक्त है। यह पूँजी के विनियोग, बिजली और ईंधन की खपत, वस्तु सूची, वित्त तथा अन्य साधनो के रूप मे मापी जा सकती है।

प्राय उत्पादकता, आदा व प्रदा के अनुपात के रूप में परिभाषित की जाती है। उत्पादकता के उच्च स्तर के लिए लागत को कम करने तथा उत्पादन को बढाने पर बल दिया जाता है। न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन साधनो के कुशल उपयोग (Efficient utilization) पर निर्भर करता है। किन्तु लागत की कमी व उत्पादन की वृद्धि वस्तु की किस्म को गिरा कर की जानी चाहिए। उत्पादकता के अन्तर्गत कम लागत तथा अधिक उत्पादक के अतिरिक्त माल की श्रेष्ठ किस्म का भी ध्यान रखा जाना है। उत्पादकता की इस अवधारणा मे भी एक कमी रह जाती है। वह यह है कि उत्पादकता की उपरोक्त परिभाषा वितरण पक्ष की व्याख्या नही करती है। एक विकासशील देश मे उत्पादकता वृद्धि का परीक्षण उन वस्तुओ तथा सेवाओ के उत्पादन के रूप मे किया जाना चाहिए, जो सामान्य व्यक्ति के माँग-ढाँचे के अधिक अनुकूल होती हैं। उत्पादकता के विश्लेषण के अन्तर्गत इस प्रकार की वस्तुओ पर लगे साधन तथा इन साधनो के कुशलतम उपयोग को लिया जाना

1 (a) योजना, 7 सितम्बर 1972—विकास के दो दशक (डॉ बी बी भट्ट)
(b) योजना, फरवरी 1971—उत्पादिता-विशेषांक
(c) India 1973, India 1974, India 1976
(d) योजना, 13 फरवरी 1972 (उत्पादिता के सिद्धान्त)

चाहिए। उत्पादकता और उत्पादन दो भिन्न तत्त्व हैं। इन्हे समान अर्थों मे प्रयुक्त नही किया जाना चाहिए। उत्पादकता तथा उत्पादन मे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि उत्पादन शब्द वस्तुओ के उत्पादन की भौतिक मात्रा के लिए प्रयुक्त होता है जबकि उत्पादकता शब्द का प्रयोग साधनो के उपयोग मे दिखाई गई कुशलता तथा श्रेष्ठता के लिए किया जाता है।

उत्पादकता का विचार उत्पादन-साधनो तथा आर्थिक विकास के कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रो के सन्दर्भ मे किया जाता है। उत्पादन के साधन-श्रम का प्रति इकाई उत्पादन-श्रम की उत्पादकता तथा प्रति इकाई पूँजी का उत्पादन पूँजी की उत्पादकता कहलाता है। प्रति एकड अथवा प्रति हैक्टेयर कृषि के उत्पादन को कृषि उत्पादकता कहा जा सकता है। इसी प्रकार प्रति इकाई पूँजी के रूप मे अथवा प्रति मानव घटे (Man Hour) के रूप मे औद्योगिक उत्पादन को प्राय औद्योगिक उत्पादकता कहते है।

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा उत्पादकता वृद्धि के प्रयत्न

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् श्रमिको, मालिको और सरकार के प्रतिनिधियो का एक ऐसा स्वायत्त सगठन है, जिसका उद्देश्य देशभर मे उत्पादकता की चेतना उत्पन्न करना और उत्पादकता के जरिए देश को प्रगति के पथ पर ले जाना है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् का मुख्य कार्यालय नई दिल्ली मे है और इसके आठ क्षेत्रीय निदेशालय बम्बई, कलकत्ता मद्रास, बगलौर, कानपुर, दिल्ली अहमदाबाद और चण्डीगढ जैसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक नगरो मे स्थित है। इसके अतिरिक्त 49 स्थानीय उत्पादकता परिषदें भी हैं, जिनके निकट सहयोग से उत्पादकता-कार्यक्रमो का सचालन किया जाता है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना सन् 1958 मे हुई थी और तब से अब तक उसका उद्देश्य रहा है कि कैसे उत्पादकता को राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अग बना दिया जाए, ताकि लोगो के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठे और देश खुशहाल हो। प्रबन्ध तथा उत्पादकता के क्षेत्रो मे गत 16 वर्षों से राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने अपनी सेवाओ को विकसित किया है और उन्हे एक मानक रूप प्रदान किया है। इन क्षेत्रो मे परिषद् प्रशिक्षण तथा परामर्श सेवाएँ देती रही है। इसके अलावा इसने नए क्षेत्रो मे अपनी उत्पादकता तथा विशिष्ट सेवाओ को विकसित करने का प्रयास किया है। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित है—

(1) 'ईंधन क्षमता' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण-कार्यक्रम
(2) 'आचरण विज्ञान' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण-कार्यक्रम
(3) 'वित्तीय प्रबन्ध' मे दो वर्ष का प्रशिक्षण कार्यक्रम
(4) (क) निगमित योजना, (ख) उद्देश्यो के अनुसार प्रबन्ध, (ग) सम्भाव्यता अध्ययन, (घ) यातायात उद्योग, (ङ) नागरिक पूर्ति निगम तथा (च) अस्पतालो मे विशिष्ट सेवाओ के विकास के लिए विशेषज्ञो के दलो का गठन।

(5) औद्योगिक स्नेहन, कम्पन तथा ध्वनि, औद्योगिक विद्युत यन्त्र, सयन्त्र रख-रखाव उपकरण तथा प्रक्रिया-नियन्त्रण मे औद्योगिकी सेवाओ का विकास आदि विषयो मे कई प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन।

एशियायी उत्पादकता सगठन के कार्यक्रमो को हिन्दुस्तान मे कार्यान्वित करने तथा विभिन्न फैलोशिप कार्यक्रमो के अन्तर्गत विदेशो मे प्रशिक्षण के लिए प्रत्याशियो को प्रायोजित करने का काम रा उ प कर रही है। राउप के परामर्शदाताओ को समय समय पर अवसर मिलता है कि वे देश तथा विदेशो मे प्रशिक्षण लेकर अपने ज्ञान और कुशलता मे वृद्धि करे।

आपात् स्थिति की घोषणा मे सभी क्षेत्रो मे अर्थव्यवस्था की उत्पादक तथा वितरण सम्बन्धी प्रणाली को कुशल बनाने के लिए जोरदार प्रयास की जरूरत पर जोर दिया गया है। देश को प्रगति के रास्ते पर ले जाने के लिए जिससे कि वह अनवरत वृद्धि करता हुआ तथा मुद्रा-स्फीति से बचकर राष्ट्रीय एकता की सामान्य स्थिति प्राप्त कर सके, अर्थव्यवस्था के सभी आधारभूत क्षेत्रो मे उत्पादक सामर्थ्य के पूरे उपयोग, सभी तरह के नुकसान से बचने, व्यापार के स्रोतो को प्रवाही बनाने, मजदूरो और प्रबन्धको सभी के द्वारा समय का पूरा-पूरा उपयोग करने, काम को पूरी लगन और सामाजिक दृष्टि से करने समयनिष्ठा प्रबन्ध-सम्बन्धी निर्णयो को उद्देश्यपूर्ण ढग से और शीघ्र लेने तथा आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण रूप से आवश्यकता अनुभव करने की भावना पर जोर दिया गया है। राउप के प्रयासो का प्रभाव उसके वित्तीय खर्चो और आय को सामने रखकर नही मापा जा सकता, क्योकि इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक सगठनो की कुशलता और प्रणाली मे सुधार करना है। अत लाभ उन सगठनो मे ढूंढा जा सकता है न कि राउप के वित्तीय बजट मे। राउप ने उत्पादकता-वृद्धि के प्रयास मे जो कुछ व्यय किया है, वह सकल राष्ट्रीय उत्पाद का थोडा सा अश है, जबकि उत्पादकता वृद्धि का कार्य अर्थव्यवस्था मे कुशलता का विकास करने का एक बुनियादी तत्त्व है। उत्पादन और वितरण और देश के सीमित वित्तीय तथा भौतिक साधनो के इस्तेमाल मे कुशलता बढाना अन्ततोगत्वा उन सभी लोगो की कुशलता और रवैय्ये पर निर्भर है जो उत्पादन तथा वितरण के कार्यों मे लगे हुए हैं। राउप की भूमिका तो यह है कि वह प्रशिक्षण कार्यक्रमो, समस्याओ का निदान तथा तथ्यो को स्पष्ट करके मानव-तत्त्व की इस प्रकार सहायता करे कि कार्य को बेहतर ढग से किया जा सके।

उत्पादकता योजना को राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओ से समन्वित करने की जरूरत हैं जिससे कि अर्थव्यवस्था के विस्तार और वृद्धि के लिए एक सुदृढ आधार प्रदान करने मे उत्पादकता-आन्दोलन अपनी भूमिका अदा कर सके और राष्ट्रीय आर्थिक विकास म अपना कारगर योगदान दे सके। राउप अपने कार्यक्रमो का विस्तार और विकास करने की योजना राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओ की जरूरतो के अनुसार करती है। इसके 1975–76 के कार्यक्रमो की योजना को पहले ही

अन्तिम रूप दे दिया है, जिसका लक्ष्य है देश में उत्पादकता-आन्दोलन की वृद्धि और विकास तथा उत्पादकता के माध्यम से राष्ट्र के आर्थिक विकास को गति प्रदान करने मे सहायता करने की चुनौतीभर भूमिका और बढती हुई जिम्मेदारी को सम्भालना।

उत्पादकता-आन्दोलन का प्रभाव

योजनाबद्ध कार्यक्रमो के पश्चात् अब यह कहा जा सकता है कि विकास के लिए विस्तृत स्तर पर आधारभूत औद्योगिक-ढाँचे का निर्माण किया जा चुका है तथा अनेक प्रकार के नवीन आर्थिक कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। 25,000 करोड रु की महत्त्वाकांक्षी चौथी पचवर्षीय योजना तथा 50 000 करोड रु से अधिक की वर्तमान पचवर्षीय योजना अर्थव्यवस्था के उत्पादक-स्वरूप के ही प्रतिफल हैं। 1968–69 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन मे 60% की वृद्धि विनियाग की किसी विशिष्ट वृद्धि के परिणामस्वरूप न हो कर उपयुक्त औद्योगिक क्षमता मे वृद्धि के कारण ही सम्भव हो सकी थी।

आज हम लोहा इस्पात खाद, रसायन, मशीनी-यन्त्र, पेट्रो-रसायन भारी इन्जीनियरिंग आदि उद्योगो की स्थापना करके देश के आधारभूत औद्योगिक ढाँचे का निर्माण करने मे हम समर्थ हो सके हैं। भारत इन वस्तुओ को उन्हीं देशो को निर्यात कर रहा है जिनसे वह 20 वर्ष पूर्व आयात करता था। 20 वर्ष पूर्व सूती वस्त्र, जूट, सीमेन्ट आदि कुछ एक उद्योगो को छोडकर अधिकांश आवश्यकताओ की पूर्ति विदेशी आयातो से होती थी। शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित सुविधाएँ प्राय. नगण्य थी। कुछ आवश्यक वस्तुओ की प्रति व्यक्ति उपलब्धि इस प्रकार है—

विद्युत्	0 0063 किलोवाट
मशीनी यन्त्र	0 0083 मि क
इस्पात	0 0027 टन
रेल	0 0001 किलोमीटर
क्रूड तेल	0 0007 टन

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादक परिषद् के प्रयत्नो तथा पचवर्षीय योजनाओ मे किए गए प्रयासो के बावजूद उत्पादकता कमी बहुत कम है। कुछ अपवादो को छोडकर भारत मे निर्मित प्रत्येक वस्तु की लागत अन्तर्राष्ट्रीय लागत की तुलना म बहुत ऊँची है। इसके अतिरिक्त हमारी उत्पादन-क्षमता का भी पर्याप्त उपयोग नहीं किया गया। अत उत्पादकता वृद्धि के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

कृषि-उत्पादकता बढाने के उपाय

गत कुछ वर्षों से कृषि के क्षेत्र मे उत्पादकता मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। कृषि-उत्पादकता एक अच्छे स्तर पर पहुँच गई है। नई कृषि-नीति का पैकेज-कार्यक्रम कृषिगत ढाँचे मे उत्पादिकता की ओर सकेत करता है। इस समय लगभग मिलियन से अधिक हैक्टेयर भूमि पर उन्नत किस्म के बीजो का प्रयोग होता है। गेहूँ की कुछ किस्मो मे 5 से 6 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन होने लगा है। जबकि

इससे पूर्व सिंचित भूमि मे भी केवल 2 टन की पैदावार होती थी। उन्नत किस्म के बीजो के कारण अन्य अनाजो की पैदावार मे भी काफी वृद्धि हुई है। चावल के क्षेत्र मे 'Break Through' की स्थिति है। इसलिए यह दावा उचित प्रतीत होता है कि खाद्यान्नो मे 20 से 50 मिलियन टन की वार्षिक वृद्धि कृषि उत्पादकता मे सुधार के कारण ही सम्भव हुई है।

इस स्थिति से प्रोत्साहित होकर ही योजना आयोग ने कृषि क्षेत्र मे विज्ञान व तकनीकी प्रयोग को चतुर्थ-योजना की व्यूह-रचना (Strategy) मे महत्त्व दिया था। हम उत्तरोत्तर इस तथ्य का अनुभव कर रहे हैं कि कृषि के क्षेत्र मे उत्पादकता की वृद्धि के लिए सबसे अधिक अवसर प्राप्त है तथा वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि के रूप मे और राष्ट्रीय बाजारो के विस्तार के रूप मे कृषि-उत्पादकता मे वृद्धि मे आर्थिक विकास के अनेक अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। भारत मे कुछ भागो मे देखे जाने वाले ट्रैक्टर कृषि उपकरण तथा उच्चतर जीवन-स्तर कृषि के क्षेत्र मे नवीन उत्पादकता तकनीकियो के प्रयोग के ही परिणाम हैं। राष्ट्रीय उत्पादकता मे कृषि-क्षेत्र के महत्त्व को ध्यान मे रखते हुए कृषि की उत्पादकता को बढाने के लिए कृषि के लिए नियोजित विनियोग की राशि को बढाना आवश्यक है।

उत्पादक वृद्धि के लिए निम्नलिखित सुझाव है—

1 अनुसधान उत्पादकता वृद्धि का मूल आधार है। अत वैज्ञानिक अनुसधान को बढावा देकर तथा उसे व्यवहार मे लाकर उत्पादकता मे वृद्धि की जानी चाहिए। योजना आयोग ने कृषि क्षेत्र मे विज्ञान व तकनीकी प्रयोग को चौथी और पाँचवी योजना की व्यूह-रचना मे अत्यधिक महत्त्व दिया है।

2 कृषि के लिए नियोजित विनियोग (Planned Investment) के अश को बढाया जाना चाहिए। जब-कभी योजनाओ के परिव्यय मे कमी करना आवश्यक समझा गया, योजना परिव्यय मे कटौतियाँ कृषि के भाग को कम करके की गई तथा कृषि का वास्तविक भाग सशोधित अनुमानो मे नियोजित अथवा प्रस्तावित राशि से बहुत कम रहा। विनियोग की अपर्याप्तता के कारण कृषि-उत्पादकता मे अपेक्षित वृद्धि नही की जा सकी। प्रथम तीन योजनाओ मे कृषि-विनियोग की स्थिति कुछ इसी प्रकार की रही।

3 मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए तथा सहकारी खेती को और अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जाकर पैमाने, विनियोग और सगठन (Scale, Investment and Organization) के समस्त लाभ कृषि क्षेत्र में लेने चाहिए।

4. आवश्यक प्रशिक्षण द्वारा कृषि-श्रमिको की उत्पादकता में वृद्धि की जानी चाहिए तथा कृषि के नए उपकरणो और नई तकनीकी प्रयोग के लिए इन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए।

5. कृषि मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। कृषि मूल्यो से अनिश्चितता की स्थिति दूर की जानी चाहिए।

6 कृषि शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। देश के कृषि विश्वविद्यालयो को प्रयोगात्मक ज्ञान के ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए कि जिनसे कृषि के छात्रो को कार्य करने का अवसर मिले तथा वे व्यवहार में लाकर कृषि-उत्पादकता वृद्धि में योग दे सकें। पाँचवी योजना मे 25 500 कृषि स्नातक, 4200 पशु चिकित्सक और 1400 कृषि इन्जीनियरो के बनने का अनुमान है। कृषि के लिए प्रशिक्षित इस वर्ग से कृषि-उत्पादकता में वृद्धि की भारी आशाएँ है।

7 रासायनिक खाद का प्रयोग बढाया जाना चाहिए। पाँचवी योजना के आधार वर्ष 1973–74 में रासायनिक खाद की खपत लगभग 19 7 लाख टन थी। योजना के अन्त तक यह खपत 52 लाख टन तक बढाने का प्रस्ताव है। आशा की जाती है कि रासायनिक खाद के बढते हुए इस प्रयोग से कृषि उत्पादिता में आवश्यक वृद्धि सम्भव हो सकेगी। मिट्टी परीक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ बढायी जानी चाहिए, क्योकि मिट्टी के आधार पर ही फसलो के उगाए जाने का नियोजन किया जा सकता है। पाँचवी योजना में मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओ को सुदृढ बनाने और उनका उपयोग बढाने के अतिरिक्त 150 स्थायी मिट्टी परीक्षा प्रयोगशालाएँ स्थापित किए जाने का प्रावधान है।

8. छोटे और सीमान्त किसानो (Marginal Farmers) को शामिल किया जाना चाहिए। बारानी खेती बडे पैमाने पर शुरू की जानी चाहिए। शुष्क खेती के विस्तार की भी बडी आवश्यकता है।

9 पाँचवी योजना में कृषि-उत्पादकता बढाने के लिए खेती को रोकने तथा शुष्क भूमि के उचित उपयोग और बीहडो, खारी तथा रेतीली भूमि को खेती योग्य बनाने का भी सुझाव है।

10 विश्वविद्यालयो और अन्य शोध सस्थानो मे किए अनुसन्धानो पर प्रयोग करने मे जो कठिनाइयाँ सामने आई है उन्हे दूर करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालयो अनुसन्धान-सस्थानो और सरकार के बीच समन्वय स्थापित किया जाना आवश्यक है।

11. शुष्क क्षेत्रो मे घास, फसलो के पेड और वन लगाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इन क्षेत्रो मे सौर शक्ति के उपयोग तथा हवा भरे पोलीथिलीन के तम्बुओ मे खेती करने का पाँचवी योजना मे सुझाव दिया गया है। कुछ रेगिस्तानी इलाको मे इस तरह से खेती की भी जा रही है।

12 ऊँचाई वाले इलाको मे भूमि के उचित उपयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उर्वर भूमि क्षरण और झूम खेती की स्थानीय समस्याओ को भी ध्यान मे रखा जाना आवश्यक होगा।

13 कृषि के आधुनिकीकरण के लिए बडी मात्रा मे Industrial Inputs की आवश्यकता है।

14 कृषि ऋण व साख सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। कृषि वित्त निगम, सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत व्यापारिक बैंकों आदि वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण देने की सुविधाएँ है। इन सुविधाओं मे पर्याप्त वृद्धि की आवश्यकता है।

संक्षेप मे कृषि-उत्पादकता बढाने के लिए कृषि-प्रशासन व सगठन को सुदृढ बनाने, प्रामाणिक बीजो की पैदावार बढाने, रासायनिक खाद का अधिक मात्रा मे और भली भाँति प्रयोग करने सिंचाई की उचित व्यवस्था, कटाई के बाद कृषि उपज रखने की संग्रह-व्यवस्था, बाजार-व्यवस्था आदि की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि के उपाय

भारतीय श्रम उत्पादकता का स्तर विकसित देशो की तुलना मे बहुत कम है। अतः श्रम-उत्पादकता बढाने के लिए कुछ उपाय आवश्यक है—

श्रमिक की Working Conditions असन्तोषप्रद हैं। कार्य करने के लिए अच्छी मशीनें और औजार श्रमिक को नही मिलते। कारखानो मे श्रमिक की प्राथमिक आवश्यकताओं का अभाव है। अत श्रमिको को अच्छे वेतन, चिकित्सा, शिक्षा, सुरक्षा आदि की सुविधाएँ मिलनी चाहिए ताकि उनकी कुशलता व उत्पादकता मे अपेक्षित वृद्धि हो सके।

2. *कार्य अध्ययन तथा प्रोत्साहन* पुरस्कारो (Work Studies and Incentives) द्वारा भी श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है।

3. उत्पादकता-वृद्धि के लिए पर्याप्त कार्यशील पूँजी (Working Capital) आवश्यक है।

4 उत्पादकता-वृद्धि में मानव तत्त्व (Human element) भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए संयत्र के फेल होने (Plant breakdown), बिजली न मिलने, आवश्यक निर्देशो के अभाव के कारण व्यर्थ में खोए जाने वाले कार्य के घण्टो पर सामयिक रोक लगाई जानी चाहिए साथ ही पदार्थ व यन्त्र सम्बन्धी नियन्त्रण (Scientific material & tool control) और उपयुक्त वर्क-शॉप सुविधाओं की व्यवस्था (Provision for work-shop services) भी श्रम की कुशलता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

5 कच्चे माल तथा आधुनिक मशीनरी के अभाव को दूर किया जाना चाहिए। समय पर कच्चा माल न मिलने के कारण बहुत से मानव घण्टे (Man-hours) बेकार हो जाते हैं।

6 श्रम-उत्पादकता के लिए अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो का होना अत्यावश्यक है। प्रबन्ध पक्ष की ओर से श्रमिको को अच्छे वेतन, सुविधाएँ तथा कार्य करने की अच्छी अवस्थाएँ प्रदान कर उनकी प्रगति में रुचि रखना है और श्रमिको की ओर से सक्रिय सहयोग देना है ताकि उद्योग के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। दोनो ओर से अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो के कारण औद्योगिक एकता (Industrial Harmony) विकसित

होती है। सामान्यत इस प्रकार की पृष्ठभूमि में दोनो वर्गों के हित साधन की दृष्टि से निम्नलिखित क्षेत्रों को लिया जाना चाहिए—

(1) अधिक उत्पादन,
(2) सुरक्षापूर्ण व स्वास्थ्य कार्य-दशाएँ,
(3) कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण,
(4) *औद्योगिक इकाइयों का उचित विस्तार और स्थायित्व।*

इस प्रकार श्रम उत्पादकता म वृद्धि के लिए जहाँ एक ओर श्रमिकों के लिए कार्य की श्रेष्ठ अवस्थाओं और आवश्यक प्रशिक्षण की सुविधाओं की व्यवस्था करना आवश्यक है वहाँ दूसरी ओर कार्यशील पूँजी का पर्याप्त प्रावधान तथा उत्पादन के संयत्र की क्षमता का नियमित रूप से कुशलतम उपयोग करना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध म राष्ट्रीय उत्पादिता परिषद् ने श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध और निरीक्षण सेवाओं के विकास, कार्य अध्ययन विधि, उत्पादिता-सर्वेक्षण आदि की दिशा म किए गए प्रयत्न महत्त्वपूर्ण हैं।

औद्योगिक उत्पादकता वृद्धि के उपाय

कृषि उत्पादकता तथा श्रम उत्पादकता के अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादकता का विश्लेषण भी आवश्यक है। औद्योगिक उत्पादकता का सामान्य अर्थ उद्योग म लगे साधनों की प्रति इकाई उत्पादकता से लिया जाता है। औद्योगिक उत्पादकता से सम्बन्धित उपायों म मुख्य हैं— Waste Control। वेस्ट कण्ट्रोल' की प्रभावशाली व्यवस्था द्वारा उत्पादकता म वृद्धि की जा सकती है। पहला आवश्यक कदम हर प्रकार Waste का लेखा करके उसके कारण तथा उसके प्रति उत्तरदायित्व का विश्लेषण करना है। यह सिद्धान्तत सरल प्रतीत होता है, किन्तु व्यवहार म स्थिति विपरीत देखने को मिलती है। अधिकांश लघु उद्योग इकाइयों के पास ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती जिसके द्वारा यह अनुमान लगाया जाए कि उनके साधन किस सीमा तक बेकार जाते हैं। साधनों की बरबादी के नियन्त्रण के दो प्रभाव होते हैं। एक ओर यह लागत को कम करता है तथा दूसरी ओर उत्पादन-वृद्धि म सहायक होता है। साधनों की बरबादी के मुख्य रूप हो सकते हैं—(i) व्यर्थ म जाने वाले प्रयत्न (Lost efforts), (ii) गति म रुकावट (Lost motions) (iii) अवधारणाओं की अस्पष्टता (Ambiguity of Concepts), एव (iv) वस्तुओं की अनावश्यक किस्म (Undue variety of materials and products)। इन सभी प्रकार की 'Wastes' को स्टैंडर्डाइजेशन (Standardisation) से नियन्त्रित किया जा सकता है।

'स्टण्डर्डाइजेशन तथा उत्पादिता' (Standardisation and Productivity) की दृष्टि से एक औद्योगिक प्रतिष्ठान के कार्यक्रम को तीन बड़ी श्रेणियों में रखा जा सकता है—प्रबन्ध, इन्जीनियरिंग और क्रय (Management, Engineering and Purchase)। प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियन्त्रण व प्रशिक्षण सम्बन्धी क्रियाएँ आती हैं। यदि प्रबन्ध-व्यवस्था इन उत्तरदायित्वों को ठीक से निभाती है तो वह उत्पादिता वृद्धि म सहायक होती है।

इन्जीनियरिंग प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पादन से सम्बन्धित डिजाइनिंग, निर्माण-कार्य, किस्म नियन्त्रण (Quality Control) आदि तकनीकी फलन आते हैं। इन तकनीकी फलनो पर उत्पादिता निर्भर करती है। अत उत्पादकता वृद्धि के लिए इन्जीनियरिंग पहलुओ पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

क्रय नीति का भी उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पडता है, क्योंकि आधुनिक उत्पादन-तकनीकी अधिकांश कच्चे माल के स्तर पर निर्भर करती है। यदि स्टैंडडाइजेशन को ध्यान मे रखकर कच्चे माल की खरीद की जा सकती है, तो उत्पादन-व्यवस्था मे एक अनिश्चितता व असन्तुलन का तत्त्व आ जाता है। सामान्यत बिना स्टैण्डर्ड की वस्तुएँ खरीदने पर उत्पादकता इस प्रकार प्रभावित होती है—

(i) समय पर ठीक ढग का सामान न मिलने से कार्य मे दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन रुकावट,

(ii) किसी काम को बार बार अस्वीकृति तथा उसे बार बार करना (Excessive rejection and re working),

(iii) दोष पूर्ण वस्तुओ (Defective Products) के उत्पादन को रोकने के लिए अतिरिक्त निरीक्षण कार्य

(iv) उपरोक्त कारणो से ऊपरी लागत मे वृद्धि (Increasing Overhead charges for the above)।

भारत अब क्रेता से विक्रेता मे बदलता जा रहा है। दिन प्रतिदिन प्रतिस्पर्द्धा बढती जा रही है। अत व्यावसायिक सस्थानो के लिए श्रेष्ठ बिक्री-व्यवस्था करना आवश्यक है। बिक्री मे वृद्धि से लागत कम आती है और लागत मे कमी से उत्पादकता बढती है।

5

भारतीय योजना-परिव्यय के आवंटन का मूल्यांकन

(Criticisms of Plan Allocation in India)

योजना परिव्यय के आवंटन का प्रश्न मूलत प्राथमिकताओं (Priorities) का प्रश्न है। प्राय प्रत्येक देश म साधन सीमित होते हैं अतः योजनाओं मे किस मद (Item) को कम या अधिक महत्त्व दिया जाए प्रश्न ही योजनाओं मे प्राथमिकताओं का प्रश्न है। प्राथमिकताओं की समस्या मे दो पक्ष है—प्रथम, वित्तीय साधनो की उपलब्धि (Resource Availability)। और द्वितीय, उपलब्ध वित्तीय साधनों का आवटन (Resource Allocation) समस्या के दूसरे पक्ष का विश्लेषण प्रायः देश की क्षेत्रीय आवश्यकताओं (Regional needs), उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी आवश्यकताओं (Production & Distribution needs), प्रौद्योगिक स्थिति (State of Technology), उपभोग तथा विनियोग सम्बन्धी आवश्यकताओं (Consumption and Investment needs) तथा सामाजिक आवश्यकताओं (Social needs) को ध्यान मे रखते हुए किया जाता है। इन्ही के आधार पर *योजना मे प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं।*

प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ
(Priorities of First Five Year Plan)

प्रथम योजना मे परिव्यय की राशि प्रारम्भ मे 2069 करोड रुपये प्रस्तावित की गई सशोधित अनुमानो मे यह राशि बढा कर 2378 करोड रुपये कर दी गई। योजना पर वास्तविक व्यय 1960 करोड रुपये हुआ।

कृषि व सिंचाई

कृषि व सिंचाई के लिए प्रथम योजना के प्रारूप मे 823 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए थे, जो कुल प्रस्तावित व्यय का 3 5% था, किन्तु इस मद पर वास्तविक व्यय 724 करोड रुपये हुआ जो प्रस्तावित व्यय से 99 करोड रुपये कम था। किन्तु योजना के कुल वास्तविक व्यय (1960 करोड रु) मे इस मद का प्रतिशत 37% रहा जो प्रस्तावित प्रतिशत से 2% अधिक था।

इस प्रकार प्रथम योजना मे कृषि और सिंचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। यह प्राथमिकता उचित थी तथा योजना की पूर्वनिर्धारित व्यूह-रचना (Strategy) के अनुकूल थी, क्योंकि प्रथम योजना की व्यूह-रचना का मूल लक्ष्य देश मे औद्योगीकरण के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करना था। कृषि के विकास से ही कच्चे माल

की आवश्यक पूर्ति प्राप्त हो सकती थी तथा देश की अतिरिक्त श्रम-शक्ति (Surplus labour force) को रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकते थे। कृषिगत विनियोग की गर्भावधि (Gestation Period) भी औद्योगिक विनियोग की तुलना मे बहुत छोटी होती है। कृषिगत विनियोगो से शीघ्र प्रतिफल मिलने लगते है। अत देश की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के लिए भी कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता का दिया जाना उचित था तथा अन्य मदो की तुलना मे इस मद पर आवटित राशि का प्रायोजन योजना के उद्देश्यो के अनुकूल था।

परिवहन और सामाजिक सेवाएँ

परिवहन तथा सचार के लिए इस योजना मे 570 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए जो कुल प्रस्तावित व्यय का 24 /. था। इस मद पर वास्तविक व्यय 518 करोड रुपये का हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 26 / था। सामाजिक सेवाओ के लिए प्रस्तावित व्यय 532 करोड रुपये का रखा गया था लेकिन वास्तविक व्यय 412 करोड रुपये हुआ। इस प्रकार प्रथम योजना में परिवहन तथा सचार का द्वितीय तथा सामाजिक सेवाओ का तीसरा स्थान रहा।

परिवहन तथा सामाजिक सेवाओ की प्राथमिकता को सरकारी क्षेत्रों मे उचित ठहराया गया। परिवहन तथा सचार को दी गई प्राथमिकता को उचित कहा जा सकता है, क्योकि आर्थिक विकास मे परिवहन तथा सचार की सुविधाओ के विस्तार का बड़ा महत्त्व है। कृषि, उद्योग आदि किसी भी क्षेत्र मे प्रगति के लिए कुशल परिवहन तथा सचार सेवाएँ आवश्यक है। बाजारो के विस्तार तथा देश के विभिन्न भागो को एक दूसरे से जोडने मे और नवीन आर्थिक क्रियाओ के सचालन में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। किन्तु सामाजिक सेवाओ के लिए निर्धारित व्यय तथा इसको दी गई प्राथमिकता को उचित नही कहा जा सकता। यह तो उचित है कि देश के विकास के लिए मानव-तत्त्व की कुशलता को बढाने के लिए अधिक से अधिक शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाएँ मिलनी चाहिए। किन्तु भारत जैसे देश में इस मद पर किए जाने वाले व्यय का अधिकांश भाग प्रशासनिक व्यय के रूप में जाता रहा। सामाजिक कल्याण के नाम पर देश में करोडो रुपयो का अपव्यय हुआ इस मद मे से कटौती कर उद्योग तथा खनिज के विकास परिव्यय की मात्रा बढाई जानी चाहिए थी। विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे आर्थिक ऊपरी पूँजी (Economic over-heads) का निर्माण सामाजिक ऊपरी पूंजी (Social over-heads) की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

उद्योग तथा खनिज

उद्योग तथा खनिज पर इस योजना मे 188 करोड रुपये का व्यय प्रस्तावित किया गया था किन्तु वास्तव मे केवल 97 करोड रुपये ही व्यय हुए। इस मद पर इतना कम राशि का आवटन अनुचित था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ
(Priorities of the Second Five Year Plan)

द्वितीय योजना मे 4800 करोड रुपये का परिव्यय प्रस्तावित किया गया।

इस प्रस्तावित राशि के मुकाबले वास्तविक व्यय 4672 करोड रुपये का हुआ। यह उद्योग-प्रधान योजना थी। इस योजना मे कृषि की प्राथमिकता को कम किया गया तथा प्रथम योजना की तुलना मे उद्योग तथा खनिजो के लिए एक बडी राशि निर्धारित की गई।

कृषि तथा सिंचाई

कृषि तथा सिंचाई के लिए योजना मे 1101 करोड रुपये की राशि प्रस्तावित की गई थी जो कुल प्रस्तावित व्यय का 23 प्रतिशत थी। इस मद पर वास्तविक व्यय 979 करोड रुपये का हुआ जो कुल योजना-परिव्यय का 21 प्रतिशत था। प्रथम योजना मे इस मद पर व्यय का प्रतिशत जहाँ कुल व्यय का 37 था, वहाँ यह प्रतिशत घट कर इस योजना मे केवल 23 रह गया। कृषि के विनियोग को कम करना नियोजको की अदूरदर्शिता को दर्शाता है। पहली योजना के दौरान खाद्यान्न की अच्छी स्थिति होने का कारण अच्छी वर्षा का होना था, किन्तु नियोजको ने योजना की सफलता मान कर, द्वितीय योजना मे कृषि पर कम ध्यान दिया। कृषि विनियोगो मे कमी का यह परिणाम निकला कि दूसरी योजना मे कृषि के लक्ष्य पूर्ण रूप से असफल रहे और खाद्यान्नो का उत्पादन गिर गया।

परिवहन तथा सचार

परिवहन तथा सचार के लिए योजना मे 1385 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए थे कुल परिव्यय के 29 प्रतिशत थे। इस मद पर वास्तविक व्यय 1261 करोड का हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 27 प्रतिशत था। जहाँ तक व्यय के प्रतिशत का प्रश्न है, पहली योजना की तुलना मे इसमे कोई विशेष अन्तर नही आया। पहली योजना मे यह प्रतिशत 26 था। किन्तु निरपेक्ष अको के रूप मे पहली योजना मे जहाँ इस मद पर हुए वास्तविक व्यय की राशि केवल 518 करोड रुपये थी, वहाँ इस योजना मे यह राशि 1261 करोड रुपये हो गयी। इस मद के लिए इस बडी राशि का प्रावधान इस योजना मे परिवहन व सचार को दिए गए ऊँचे महत्त्व को स्पष्ट करता है। इस योजना मे परिव्यय की दृष्टि से सर्वोच्च प्राथमिकता इसी मद को दी गई। यह प्राथमिकता उचित थी, क्योकि आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए परिवहन तथा सचार के कुशल तथा तेज रफ्तार वाले साधनो के रूप मे आर्थिक ऊपरी पूँजी का होना अत्यावश्यक था।

उद्योग तथा खनिज

द्वितीय योजना मे इस मद के लिए 825 करोड रुपये की राशि निर्धारित की गई। वास्तविक व्यय की राशि तो इससे कही अधिक (1125 करोड रुपये) थी। कुल प्रस्तावित व्यय मे इस मद के प्रस्तावित व्यय का प्रतिशत 19 तथा कुल वास्तविक व्यय मे इस मद के वास्तविक व्यय का प्रतिशत 24 रहा। इस प्रकार वास्तविक व्यय का प्रतिशत प्रस्तावित व्यय के प्रतिशत से 5 अधिक रहा। ये आँकडे इस योजना मे उद्योग तथा खनिजो को दिए गए महत्त्व को प्रकट करते हैं। इस मद को योजना में दूसरा स्थान मिला। उद्योगो के क्षेत्र मे भी मूल व भारी उद्योगो जैसे

लोहा व इस्पात, मशीन, इन्जीनियरी, रासायनिक आदि उद्योगो को विशेष स्थान दिया गया । निर्धारित विनियोगो का अधिकाँश भाग इन उद्योगो के लिए प्रस्तावित किया गया । औद्योगीकरण की गति मे तीव्रता लाने के लिए इस मद के लिए बडी राशि का आवटन उचित था । पहली योजना मे इस मद की उपेक्षा की गई थी जिसके कटु-अनुभव का लाभ उठाते हुए इस योजना मे इस मद के लिए किया गया वित्तीय आवटन (Financial Allocation) सर्वथा उचित था ।

सरकारी क्षेत्र मे किए गए उपरोक्त व्यय के अतिरिक्त निजी क्षेत्र मे सगठित उद्योग और खनिजो पर 575 करोड रुपये व्यय किए गए । देश को औद्योगिक दिशा देने के लिए प्राथमिकता का यह परिवर्तन योजना के उद्देश्यो के अनुकूल था ।

सामाजिक सेवाएँ तथा विविध

सामाजिक सेवाओ के मद के लिए योजना मे 1044 करोड रुपये की राशि का प्रस्ताव किया गया था । इस मद पर वास्तविक व्यय 855 करोड रुपये का हुआ जो कुल वास्तविक योजना परिव्यय का 18 प्रतिशत था । प्राथमिकताओ की दृष्टि से इस मद का योजना मे काफी ऊँचा स्थान रहा । पहली योजना मे सामाजिक सेवाओ के व्यय का प्रतिशत जहाँ 21 था, वहाँ इस योजना मे इस मद के व्यय का प्रतिशत 18 रहा । पहली योजना की तुलना मे व्यय के प्रतिशत मे यह गिरावट उचित थी, *क्योंकि प्रथम योजना के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि देश के विकास* की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे साधनो का अधिक भाग सामाजिक मदो की अपेक्षा आर्थिक मदो पर अधिक लगाया जाना चाहिए । सामाजिक सेवाओ के व्यय मे अनेक प्रकार की 'Leakages' का रहना स्वाभाविक है ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताएँ
(Priorities of the Third Five Year Plan)

तृतीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 7509 करोड रुपये का निर्धारित किया गया । सार्वजनिक क्षेत्र मे इस योजना के दौरान वास्तविक व्यय 8577 करोड रुपये का हुआ ।

कृषि और सिंचाई

कृषि और सिंचाई के लिए 1718 करोड रुपये *प्रस्तावित किए गए ।* कुल प्रस्तावित व्यय का यह 23 प्रतिशत था । इस मद पर वास्तविक व्यय 1753 करोड रुपये हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 21 प्रतिशत था । प्रतिशत व्यय की दृष्टि से योजना मे इस मद को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ । 25 प्रतिशत पर प्रथम परिवहन व सचार को तथा 23 प्रतिशत पर द्वितीय स्थान उद्योग और खनिज को मिला ।

इस योजना मे कृषि-क्षेत्र को द्वितीय योजना की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया । कृषि विकास के लिए 1068 करोड रुपये तथा सिंचाई-विकास के लिए 650 करोड रुपये का निर्धारण इस स्थिति को स्पष्ट करता है कि *इस योजना मे* समस्त व्यय का एक चौथाई भाग कृषि विकास के लिए रखा गया । यह वित्तीय प्रावधान उचित था । देश की बढती हुई आबादी की आवश्यकता-पूर्ति के लिए

खाद्यान्नो के उत्पादन मे भारी वृद्धि अपेक्षित थी। कृषि के क्षेत्र मे रही द्वितीय योजना की असफलताओ की पूर्ति के लिए भी तृतीय योजना मे कृषि को प्राथमिकता दिया जाना उचित था।

उद्योग और खनिज

द्वितीय योजना की भाँति इस योजना मे भी उद्योग और खनिज को प्राथमिकता दी गई। इस मद के लिए 1784 करोड रु प्रस्तावित किए गए जो कुल प्रस्तावित व्यय का 24 प्रतिशत था तथा वास्तविक व्यय इस मद पर 1967 करोड रु. हुआ जो कुल वास्तविक व्यय का 23 प्रतिशत था। द्वितीय योजना मे देश द्रुत औद्योगीकरण (Rapid Industrialisation) के लिए लोहा व इस्पात खाद, भारी मशीनरी आदि के कारखानो के रूप मे ऊपरी आर्थिक पूँजी (Economic overheads) का एक सुदृढ आधार निर्मित हो चुका था। अत इस ऊपरी आर्थिक पूँजी के अपेक्षित उपयोग के लिए यह आवश्यक था कि अधिक से अधिक उद्योग स्थापित किए जावें और औद्योगिक आधार को अधिक सुदृढ बनाने के लिए नए खनिजो की खोज की जावे तथा पुराने खनिजो का उत्पादन बढाया जावे। इसलिए इस योजना मे उद्योग तथा खनिज पर किया गया वित्तीय आवटन उचित था। इस मद पर बडी राशि का प्रावधान तीव्र आर्थिक विकास और आत्म निर्भरता के लिए आवश्यक था।

परिवहन तथा सचार

परिवहन तथा सचार के लिए 1486 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए, किन्तु वास्तविक व्यय 2112 करोड रु का हुआ जो सभी मदो की अपेक्षा अधिक था। किन्तु वास्तविक व्यय के प्रतिशत की दृष्टि से इस मद का स्थान पहला रहा। तीव्र औद्योगीकरण के उद्देश्य की दृष्टि से परिवहन तथा सचार को अधिक महत्त्व दिया जाना आवश्यक था। अत इस मद के लिए किया गया वित्तीय आयोजन उचित था।

सामाजिक सेवाएँ

सामाजिक सेवाओ पर योजना मे 1493 करोड रु व्यय किए गए जबकि प्रस्ताव 1300 करोड रु का रखा गया था। इस योजना मे सामाजिक सेवाओ को वित्तीय आवटन की दृष्टि से चौथा स्थान दिया गया। दो योजनाओ के बाद कृषि तथा उद्योग का जो आधारभूत ढाँचा निर्मित हुआ, उसके अनुरूप कार्यक्रमो को आगे बढाने के लिए अधिक सख्या मे कुशल श्रमिको, इजीनियरो एव कृषि विशेषज्ञो की आवश्यकता थी अत इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा आदि सामाजिक सेवाओ के लिए निर्धारित 1300 करोड रु की राशि उचित ही थी।

विद्युत् शक्ति

तीव्र औद्योगीकरण के लिए विद्युत् शक्ति को भी प्राथमिकता दिया जाना उचित था। इस मद के लिए प्रथम योजना मे 179 करोड रु, द्वितीय योजना मे 380 करोड रु तथा इस योजना मे 1012 करोड रु निर्धारित किए गए। प्रथम योजना की तुलना मे इस योजना मे देश मे बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए 6 गुना व्यय वृद्धि का प्रावधान आवश्यक था।

शक्ति विनियोग के औचित्य का (Indian Energy Survey Committee) द्वारा परीक्षण किया गया । इस समिति के रिपोर्ट की अनुसार देश के सम्मुख औद्योगिक तथा पारिवारिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विद्युत् शक्ति उत्पादन के लिए बडी राशि की आवश्यकता थी ।

चतुर्थ योजना मे प्राथमिकताएँ
(Priorities in the Fourth Five Year Plan)

चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 15 902 करोड रु. का व्यय प्रस्तावित किया गया । तृतीय योजना की भाँति इसमे उद्योग तथा खनिजो का महत्त्वपूर्ण स्थान रखा गया । कृषि तथा उद्योग को लगभग समान महत्त्व दिया गया । तृतीय योजना की अवधि मे आर्थिक सकटो के परिणामस्वरूप 'योजना अवकाश' (P'an-holiday) की स्थिति हो गई तथा पचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन वार्षिक योजनाएँ अतः कृषि और उद्योग पर लगभग समान विनियोग के कार्यक्रम योजना के उद्देश्यो के अनुरूप थे । कृषि तथा सिचाई के लिए 3815 करोड रु तथा उद्योग और खनन के लिए 3631 करोड रु प्रस्तावित किए गए ।

परिवहन तथा सचार को दूसरा स्थान दिया गया । विद्युत् शक्ति के लिए 2448 करोड रु का प्रस्ताव किया गया तथा सामाजिक सेवाओ के लिए 2771 करोड रु प्रस्तावित किए गए । इन मदो पर प्रस्तावित व्यय की उपरोक्त राशियाँ प्राथमिकता के क्रम मे अनुरूप थी, किन्तु मूल्य-स्तर की दृष्टि से इन राशियो को देश की आवश्यकताओ के उचित नही कहा जा सकता । विशेष रूप से विद्युत् शक्ति के विकास के लिए अधिकतम साधनो की आवश्यकता थी ।

चतुर्थ योजना का मूल्यांकन
(अप्रैल 1969 से मार्च 1974)

(Appraisal of the Fourth Plan)

उद्देश्य (Objectives)

चतुर्थ योजना का लक्ष्य स्थिरतापूर्वक विकास की गति को तीव्र करना, कृषि के उत्पादन मे उतार-चढ़ाव को कम करना तथा विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण उसके प्रभाव को घटाना था। इसका उद्देश्य ऐसे कार्यक्रमो द्वारा लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा करना था जिससे समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन भी मिले। इस योजना मे रोजगार और शिक्षा की व्यवस्था द्वारा कमजोर और कम सुविधा प्राप्त वर्ग की दशा को सुधारने पर विशेष बल दिया गया। इस योजना मे सम्पत्ति आय और आर्थिक शक्ति को अधिकाधिक लोगो म प्रसार करने और उन्हें कुछ ही हाथो मे एकत्र होने से रोकने के प्रयत्न भी किए गए।

योजना का लक्ष्य शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन को, जो सन् 1969–70 मे 29,071 करोड रु था, बढाकर सन् 1973–74 मे 38 306 करोड रु करने का था। इसका अर्थ था कि सन् *1960 61* के मूल्यो पर *1968–69* के *17,351* करोड रु के उत्पादन को सन् 1973–74 म 22 862 करोड रु कर दिया गया। विकास की प्रस्तावित औसत वार्षिक चक्रवृद्धि दर 5 7 प्रतिशत थी।[1]

परिव्यय और निवेश (Outlay and Investment)

प्रारम्भ मे चतुर्थ योजना के लिए 24 882 करोड रु का प्रावधान रखा गया था। इसमे सरकारी क्षेत्र के लिए 15 902 करोड रु (इसमे 13,655 करोड रु. का निवेश शामिल है) और निजी क्षेत्र मे लगाने के लिए *8,980* करोड रु की राशि थी। सन् 1971 मे इस योजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया गया और सरकारी क्षेत्र के परिव्यय को बढाकर 16,201 करोड रु कर दिया गया।

1 India 1976, p 171

चतुर्थ योजना मे सरकारी क्षेत्र का परिव्यय[1]

(करोड़ रु० मे)

मद	केन्द्र	राज्य	योग
1 कृषि और सम्बद्ध क्षत्र	1,235	1,508	2 743
	(7 6)	(9·3)	(16 9)
2 सिंचाई और बाढ नियन्त्रण	17	1,188	1,205
	(0·1)	(7 3)	(7 4)
3. बिजली	510	2,370	2,880
	(3 2)	(14 6)	(17·8)
4. ग्रामीण और लघु उद्योग	132	122	254
	(0 8)	(0 7)	(1 5)
5. उद्योग और खनिज	2,772	211	2,983
	(17 1)	1 4)	(18·5)
6 यातायात और सचार	2,345	638	2,983
	(14·5)	(3 9)	(18 4)
7. अन्य	541	1,612	3 153
	(9·6)	(9 9)	(19·5)
जिसमे से			
(अ) शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान	375	529	904
	(2·3)	(3 3)	(5 6)
(ब) स्वास्थ्य	151	186	337
	(0 9)	(1 1)	(2·0)
(स) परिवार नियोजन	262	—	262
	(1 6)		(1 6)
योग	8 552	7,649	16,201
	(52 9)	(47 1)	(100 0)

कोष्ठको मे दिए गए आकडे सम्बद्ध क्षेत्रो से परिव्यय का प्रतिशत बताते है।

शेष आंकडे जिस हद तक राज्यो के हिस्से का कुल परिव्यय 4,600 करोड रुपये (जो बाद मे सशोधित कर 4,672 करोड रुपये कर दिया गया) जिसके लिए केन्द्र और राज्य-वार ब्यौरा उपलब्ध नही है मे से है, उस हद तक केन्द्र का परिव्यय अधिक हो सकता है।

परिव्यय की वित्त-व्यवस्था
(Financing of Plan Outlay)

चतुर्थ योजना मे सरकारी क्षेत्र मे परिव्यय की वित्त-व्यवस्था अग्रानुसार रही—

1. India 1976, p 172.

चतुर्थ योजना में सरकारी क्षेत्र में योजना परिव्यय की वित्त-व्यवस्था[1]

(करोड रु० मे)

मद	आरम्भिक अनुमान	अन्तिम उपलब्ध अनुमान
1. मुख्यतया अपने साधनो से	7,102	5,475
	(44·7)	(33 9)
(1) कराधान की योजना पूर्व दरो पर चालू राजस्व से बचत	1,673	(–) 236
(2) अतिरिक्त कराधान, जिसमे सार्वजनिक उद्यमो की बचत बढाने के उपाय शामिल हैं	3,198	4,280
(3) रिजर्व बैंक के लाभ	202	296
(4) योजना के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए किए गए उपायो से हुई आय को छोडकर सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की बचत	2,029	1,135
(क) रेल	265	(–) 165
(ख) अन्य	1,764	1,300
2 मुख्यतया घरेलू ऋणो के जरिए	6,186	8,598
	(38 9)	(53 2)
(1) सार्वजनिक ऋण, बाजार और जीवन बीमा निगम से सरकारी उद्यमो द्वारा लिए गए ऋणो सहित (शुद्ध)	2,326	3,145
(2) छोटी बचतें	769	1,162
(3) वार्षिकी जमा, अनिवार्य जमा, इनामी बौंड और स्वर्ण बौंड	(–) 104	(–) 98
(4) राज्य भविष्य निधियाँ	660	874
(5) इस्पात समानकरण निधि (शुद्ध)	—	—
(6) विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ (शुद्ध)	1,685	1,455
(7) घाटे का वित्त	850	2060
3. कुल घरेलू साधन (1+2)	13,288	1,4073
		(87·1)
4. विदेशी सहायता	2 614	2087
	(16 4)	(12·9)
5 कुल साधन (3+4)	15 902	16 160
	(100 0)	(100 0)

कोष्ठको मे दिए गए आँकडे कुल के प्रतिशत हैं।

1. Ind.a 1976, p 173

उपलब्धियाँ (Achievements)[1]

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत वृद्धि की दर का लक्ष्य 5·7 /. वार्षिक था, परन्तु 1969–70 में यह 5 7·/. रही। 1970–71 में यह घटकर 4 9 /., 1971–72 में 1 4 /., 1972–73 में (–) 0 9 और 1973–74 में 3·1 / रह गई। योजना के प्रत्येक वर्ष में कृषि और उद्योग जैसे मुख्य क्षेत्रों में भिन्न प्रकार के रुख दिखाई दिए।

चौथी योजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 12·9 करोड टन था। अन्तिम अनुमानों के अनुसार 1973–74 में यह उत्पादन 10 4 करोड टन था। उत्पादन कम होने का मुख्य कारण मौसम था। योजना में अपनाई गई नई कृषि नीतियों से गेहूँ के उत्पादन में नई सफलताएँ मिलीं। हालांकि चावल का उत्पादन सन्तोषजनक था, परन्तु इस क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय तकनीकी सफलता प्राप्त नहीं हुई। दालों और तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि की दर योजना में अपेक्षित वृद्धि की दर से कम थी।

जब चौथी पचवर्षीय योजना बनाई गई थी तब आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और औद्योगिक क्षेत्र की बहुत क्षमता का उपयोग भी नहीं हो रहा था। इसलिए मौजूदा क्षमता का भली प्रकार प्रयोग इस योजना का एक मुख्य उद्देश्य था। योजना के वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की दर आंके गए 8 से 10 / से कम थी। योजना के पहले चार वर्षों में यह क्रमश 7 3, 3 1, 3 3 और 5 3 /. थी। 1973–74 में केवल नाममात्र की वृद्धि (एक प्रतिशत से भी कम) हुई। कुछ उद्योगों में तो उत्पादन की क्षमता कम थी, परन्तु कई अन्य प्रमुख उद्योगों—जैसे इस्पात और उर्वरक की उत्पादन क्षमता का उपयोग करने में बिजली और कच्चे माल की कमी और सचालन की समस्याओं के कारण रुकावट पड़ी।

बाधाओं के बावजूद योजना काल की उपलब्धियाँ सराहनीय रही और राष्ट्र शक्तिशाली ढग से आत्मनिर्भर तथा कुशल अर्थ-व्यवस्था की ओर बढा। 1 जुलाई, 1975 को 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के बाद तो देश ने एक नई करवट ली ही है, लेकिन इससे पूर्व की प्रगति को भी हमें स्वीकार करना होगा।

आर्थिक प्रगति आंकड़ो में[2]

मद	1960-61	1965-66	1973-74
राष्ट्रीय आय			
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन			
वर्तमान मूल्यों पर	13,300 करोड रु.	20,600 करोड रु	49,300 करोड रु.
स्थिर मूल्यों पर	13,300 करोड रु.	15,100 करोड रु	19,700 करोड रु.
प्रति व्यक्ति आय वर्तमान			
मूल्यों पर	306 रु	426 रु.	850 रु
स्थिर मूल्यों पर	306 रु	311 रु	340 रु

1. India 1976, p 174.
2. भारत सरकार, सफलता के दस वर्ष (1966-1975), पृष्ठ 47-53.

मद	1960-61	1965-66	1973-74
कृषि			
कुल बोया गया क्षेत्र	13 करोड 30 लाख हैक्टेयर	13 करोड 60 लाख हैक्टेयर	14 करोड 10 लाख हैक्टेयर
एक से अधिक फसलो वाला क्षेत्र	2 करोड हैक्टेयर	1 करोड 90 लाख हैक्टेयर	2 करोड 60 लाख हैक्टेयर
शुद्ध सिंचित क्षेत्र	2 करोड 50 लाख हैक्टेयर	2 करोड 70 लाख हैक्टेयर	3 करोड 20 लाख हैक्टेयर
उर्वरको की खपत	3 लाख 6 हजार टन	7 लाख 28 हजार टन	28 लाख 39 हजार टन
खाद्यान्नो का उत्पादन	8 करोड 20 लाख टन	7 करोड 20 लाख टन	10 करोड 36 लाख टन
पशुओ की सख्या	33 करोड 60 लाख	34 करोड 40 लाख	35 करोड 50 लाख
सहकारी ऋण			
प्राथमिक कृषि सहकारियाँ			
सख्या	2 लाख	2 लाख	2 लाख
सदस्य सख्या	1 करोड 70 लाख	2 करोड 61 लाख	3 करोड 68 लाख
दिए गए ऋण (अल्पावधि और मध्यावधि)	203 करोड रु	342 करोड रु	315 करोड रु.
उद्योग और खनन			
कोयले का उत्पादन	5 करोड 60 लाख टन	7 करोड	8 करोड 10 लाख टन
क्रूड पेट्रोलियम	4 लाख 54 हजार टन	30 लाख 22 हजार टन	71 लाख 98 हजार टन
लौह अयस्क	1 करोड 10 लाख टन	1 करोड 80 लाख टन	3 करोड 40 लाख टन
अल्यूमीनियम	18 हजार टन	62 हजार टन	1 लाख 48 हजार टन
चीनी	26 लाख 99 हजार टन	33 लाख 88 हजार टन	37 लाख 45 हजार टन
वनस्पति	3 लाख 40 हजार टन	4 लाख 1 हजार टन	4 लाख 49 हजार टन
चाय	32 करोड किग्रा.	37 करोड 46 30 लाख किग्रा	46 करोड 50 लाख किग्रा.

मद	1960 61	1965 66	1973-74
काफी	54 हजार टन	62 हजार टन	92 हजार टन
सूती कपडा	670 करोड मीटर	740 करोड मीटर	780 करोड मीटर
	5 करोड	6 करोड	5 करोड
जूते (चमडे और रबड के)	40 लाख जोडे	90 लाख जोडे	40 लाख जोडे
कागज और गत्ता	3 लाख	5 लाख	6 लाख
(पेपर बोर्ड)	50 हजार टन	58 हजार टन	51 हजार टन
टायर (साइकिल, ट्रेक्टर और विमानो के)	1 करोड	1 करोड	2 करोड
	12 लाख	86 लाख	21 लाख
ट्यूब (साइकिल, ट्रेक्टर, और विमानो के)	1 करोड	1 करोड	1 करोड
	33 लाख	87 लाख	46 लाख
अमोनियम सल्फेट	80 हजार टन	84 हजार टन	1 लाख
			21 हजार टन
सुपर फास्फेट	52 हजार टन	1 लाख	1 लाख
		10 हजार टन	20 हजार टन
साबुन	1 लाख	1 लाख	2 लाख
	45 हजार टन	67 हजार टन	11 हजार टन
सीमेन्ट	80 लाख टन	1 करोड	1 करोड
		8 लाख टन	47 लाख टन
तैयार इस्पात	24 लाख टन	45 लाख टन	47 लाख टन
डीजल इजन	55,50 लाख	1 लाख 1,200	1 लाख 37,700
शक्ति चालित पम्प	1 लाख, 9,000	2 लाख 44 हजार	3 लाख27 हजार
सिलाई मशीनें	3 लाख 3,000	4 लाख 30 हजार	3 लाख
घरेलू रिफ्रिजरेटर	11,700	30,600	1 लाख 13,300
बिजली के मोटर	7 लाख	17 लाख	29 लाख
	28 हजार	53 हजार	8 हजार
	अश्व शक्ति	अश्व शक्ति	अश्व शक्ति
बिजली के लैम्प	4 करोड	7 करोड	13 करोड
	85 लाख	21 लाख	32 लाख
बिजली के पखे	10 लाख	13 लाख	23 लाख
	59 हजार	58 हजार	20 हजार
रेडियो सेट	2 लाख	6 लाख	17 लाख
	82 हजार	6 हजार	74 हजार
साइकिलें	10 लाख	15 लाख	25 लाख
	71 हजार	74 हजार	77 हजार

मद	1960-61	1965-66	1973-74
बिजली उत्पादन	1,700 करोड केडब्ल्युएच.	3,682 करोड केडब्ल्युएच.	7 275 करोड़ केडब्ल्युएच
औद्योगिक उत्पादन का सूचक (1960=100)	100	154	201
सामान तैयार करने वाले उद्योग			
पंजीकृत कारखाने	43 हजार	48 हजार	80 हजार
उत्पादन पूँजी	2,700 करोड	8 000 करोड रु	14,800 करोड़रु
रोजगार मे लगे मजदूर	33 लाख	39 लाख	60 लाख
व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले व्यक्ति (इजीनियरिंग)			
स्नातक	7,500	12,900	14,300
स्नातकोत्तर	500	1,000	1,400
चिकित्सा			
स्नातक	4,700	7,300	10,200
स्नातकोत्तर	500	1,100	1,900
कृषि			
स्नातक	2,600	4,900	4,600
स्नातकोत्तर	600	1,200	1,700
पशु चिकित्सा			
स्नातक	813	889	924
स्नातकोत्तर	104	90	244
रेले			
रेलमार्ग की लम्बाई	57 हजार किमी	59 हजार किमी.	60 हजार किमी.
यात्री किलोमीटर	7,800 करोड	9,700 करोड	13,600 करोड
माल भाडा (टन किलोमीटर)	8,800	11,700 करोड	12,200 करोड
चालू रोलिग स्टाक इजन	11 हजार	12 हजार	11 हजार
यात्री डिब्बे	28 हजार	33 हजार	36 हजार
माल के डिब्बे	3 लाख 8 हजार	3 लाख 70 हजार	3 लाख 88 हजार
सडके			
पक्की	2 लाख 63 हजार किमी.	3 लाख 43 हजार किमी	4 लाख 74 हजार किमी.
सडको पर मोटर गाडियो की सख्या	6 लाख 94 हजार	10 लाख 99 हजार	20 लाख 88 हजार

मद	1960-61	1965 66	1973-74
जहाजरानी			
जहाज	172	221	274
सकल रजिस्टर्ड टन-भार	8 लाख 58 हजार	15 लाख 40 हजार	30 लाख 90 हजार
डाक और अन्य सेवाएँ			
डाकघर	77 हजार	97 हजार	1 लाख 17 हजार
तार घर	12 हजार	13 हजार	17 हजार
टेलीफोन	4 लाख 63 हजार	8 लाख 58 हजार	16 लाख 37 हजार
समाचार-पत्रो की प्रचार सख्या	2 करोड 10 लाख	2 करोड 50 लाख	3 करोड 31 लाख
रेडियो लाइसेंस	20 लाख	40 लाख	1 करोड 40 लाख
टेलीविजन लाइसेंस	—	200	1 लाख 63 हजार
भुगतान सन्तुलन			
विदेशी मुद्रा कोष	304 करोड रु	298 करोड रु	947 करोड
विदेशी व्यापार			
निर्यात	660 करोड रु	810 करोड रु	2,483 करोड रु
आयात	1 140 करोड रु	1,394 करोड रु.	2,921 करोड रु

नोट—1973-74 के आंकडे स्थायी हैं।

7 5वीं पंचवर्षीय योजना (1974–79)

(The Fifth Five Year Plan)

पाँचवी पचवर्षीय योजना, (1974–79) 1 अप्रेल 1974 से लागू हुई है। योजना अपने तीसरे वर्ष में प्रवेश कर चुकी है तथापि, विभिन्न कठिनाइयो के कारण, योजना के मसौदे को अभी अन्तिम रूप नही दिया जा सका है। भारत सरकार की पाँच सितम्बर 1976 की सूचना के अनुसार योजना आयोग ने 4 सितम्बर, 1976 को पाँचवी पचवर्षीय योजना के मसौदे के अन्तिम रूप पर विचार किया। इस बैठक की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने की जो योजना आयोग की अध्यक्ष भी हैं। मसौदे पर अन्तिम रूप से विचार करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक दिल्ली में 24 और 25 सितम्बर को बुलाई गई और आवश्यक निर्णयलिए गए।

योजना के उद्देश्य

पाँचवी योजना के दृष्टिकोण पत्र को 'आर्थिक स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र कहा गया है। इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य है—गरीबी का उन्मूलन और आत्म-निर्भरता। इस योजना का उद्देश्य है कि जो 30 / लोग इस समय 25 रु प्रतिमास के न्यूनतम उपभोक्ता स्तर पर हैं,उनका स्तर बढ़ाकर 40 6रु प्रतिमास(1972–73 के मूल्यो पर) कर दिया जाए यह न्यूनतम वांछनीय स्तर है। मुख्य प्रयत्न यह होगा कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के लिए—विशेषतया खेतिहर मजदूरो और छोटे और अति लघु किसानो के लिए बड़े स्तरो पर रोजगार उपलब्ध कराया जाय।

राज्यो की योजनाओ के समेकित भाग मे कुछ विशेष कार्यक्रम हैं। उनमे ऐसी उपयोजनाएँ तैयार की गई हैं जिनसे पिछड़े वर्गों का उत्थान हो और पिछड़े क्षेत्रो का विशेषतया पर्वतीय तथा आदिम जातियो के क्षेत्रो का विकास हो। अधिक निर्धन लोगो की न्यूनतम आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम भी बनाया गया है। योजना का लक्ष्य एक ओर तो कृषि और औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि की दर की तेजी से बढ़ाना है और दूसरी ओर विकास के कार्यों मे इस तरह धन लगाना है कि मुद्रा स्फीति न हो। राष्ट्रीय उत्पादन मे वार्षिक वृद्धि की दर का लक्ष्य 5 5 /. रखा गया है।

अन्य बातो के अलावा पांचवी योजना की रीति-नीति मे ये बातें और उल्लेखनीय हैं—(1) उत्पादन बढाने वाले रोजगार का विस्तार, (2) समाज कल्याण कार्यक्रमो को और आगे बढाना, (3) गरीब लोगो के लिए उचित भागो पर उपभोग वस्तुएँ मिल सकें, इसके लिए पर्याप्त वसूली और वितरण की प्रणाली (4) निर्यात की वृद्धि और आयात होने वाली चीजो की जगह देशी चीजें पैदा करने का जोरदार प्रयत्न, (5) अनिवार्य उपभाग पर कडाई से पाबन्दी, (6) कीमतो, वेतनो और आयो का समुचित सन्तुलन तथा (7) सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताएँ घटाने के लिए सस्थागत, वित्तीय तथा अन्य उपाय।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

पाँचवी योजना मे सम्मिलित करने के लिए जो राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम सोचा गया है, उसके अनुसार साधन चाहे कितने हो, फिर भी सामाजिक उपभोग के सब क्षेत्रों के लिए पर्याप्त ससाधन भी रखे जाएँगे। राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम मे निम्नलिखित प्रावधान हैं—

(1) 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चो को प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधाएँ (701 03 करोड रुपये),

(2) रोगो की रोकथाम, परिवार नियोजन, पोषाहार, बाल-मृत्यु के कारण पता लगाने और गम्भीर रोगियो को अच्छे इलाज की सुविधाएँ जुटान समेत सार्वजनिक स्वास्थ्य की न्यूनतम और समान सुविधाएँ (821 67 करोड रुपये),

(3) जिन गाँवो मे पानी की हमेशा से किल्लत रही है, या जहाँ शुद्ध जल नही मिलता, उनके लिए पीने के पानी की सुविधा (554 करोड रुपये),

(4) 1,500 या इससे अधिक आबादी वाले गाँवो मे हर मौसम मे काम देने वाली सडकें (498 करोड रुपये),

(5) भूमिहीन मजदूरो के वास्ते मकान बनाने के लिए विकसित जमीन (107 95 करोड रु)

(6) गन्दी बस्तियो की सफाई और सुधार (94 63 करोड रुपये),

(7) लगभग 40% देहाती आबादी को लाभ पहुँचाने के लिए बिजली देने का प्रबन्ध (276 03 करोड रुपये जिसमे केन्द्र शासित क्षेत्रो के लिए नियत राशि भी शामिल है)।

वृद्धि-दर

चौथी योजना के अनुभवो से लाभ उठाते हुए, पाँचवी योजना मे 5 5% की वृद्धि-दर का जो लक्ष्य रखा गया है, उसके लिए आयोजन और अमल मे कही अधिक कुशलता के अलावा कठिन निर्णयो, कठोर अनुशासन और बहुत त्याग की आवश्यकता होगी।

पांचवी योजना के इस 5·5% वृद्धि-दर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहले से अधिक पूंजी निवेश, अधिक कुशलता और पहले से अधिक बचत करनी होगी। इस ढग से आय की असमानताएँ दूर करने और उपभोग की असमानता को घटाने की जरूरत पडेगी, जिससे समृद्ध वर्गों पर अधिकाधिक बचत करने का भार पडे।

योजना का लक्ष्य यह है कि मुद्रा-स्फीति न होने पाए। इस्पात, कोयला, अलौह धातुएँ, सीमेट और उर्वरक उद्योगो जैसे पूंजी-बहुल उद्योगो के विकास के लिए तो पूंजी जुटाना अनिवार्य है ही क्योकि इनसे ऐसी वस्तुओ का उत्पादन होता है, जो रोजी देने वाली है और जिनका खेती-बाडी मे भी बहुत उपयोग होता है। इसी प्रकार उन वस्तुओ पर नियन्त्रण रखना होगा, जो न जनसाधारण के उपभोग में आती हैं और न जिनसे निर्यात-वृद्धि मे सहायता मिलती है।

पांचवी योजना मे उत्पादन वृद्धि इन बातो पर निर्भर करेगी—(1) जो परियोजनाएँ हाथ मे ली जा चुकी हैं, उनका पूरा होना, (2) उत्पादन-क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग, (3) अर्थ-व्यवस्था को ऐसा रूप देना कि जिससे तकनीकी तौर-तरीको और लोगो के आम व्यवहार मे परिवर्तन आए तथा (4) और अधिक निर्यात करने की हमारी क्षमता।

सार्वजनिक उपभोग 7% वार्षिक औसत से बढेगा।

विकास परिव्यय

पांचवी योजना के लिए 53,411 करोड रुपये का परिव्यय निर्धारित है। इनमे 37,250 करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र के लिए और 16,161 करोड रुपये निजी क्षेत्र के लिए हैं।

(क) सार्वजनिक क्षेत्र—सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न मदो और क्षेत्रो के लिए निर्धारित परिव्यय की राशि तालिका के अनुसार है—

सार्वजनिक (सरकारी) क्षेत्र के लिए परिव्यय[1]

(करोड रु मे)

मद	केन्द्र (क)	राज्य	सघ राज्य क्षेत्र	योग
1. कृषि	1946	2717	67	4730
2. सिंचाई	140	2515	26	2681
3 बिजली	738	5343	109	6190
4. खनन तथा उत्पादन	8180	742	17	8939
5. निर्माण	25	—	—	25
6 परिवहन तथा सचार	5727	1297	91	7115
7. व्यापार तथा भण्डारण	194	11	—	205
8. आवास तथा सम्पत्ति	237	338	25	600
9. बैंकिंग तथा बीमा	90	—	—	90

1. India 1976, p 175.

मद	केन्द्र (क)	राज्य	सघ राज्य क्षेत्र	योग
10 सावजनिक प्रशासन तथा सुरक्षा	60	30	8	98
11 ग्रन्य सेवाएँ	1953	3580	257	5790
(i) शिक्षा	484	1155	87	1726
(ii) स्वास्थ्य	253	517	26	796
(iii) परिवार नियोजन	516	—	—	516
(iv) पोषण	70	330	—	400
(v) नगर विकास	252	272	19	543
(vi) जल प्रदाय	16	924	82	1022
(vii) समाज कल्याण	200	26	3	229
(viii) पिछड़े वर्गों का कल्याण	55	167	4	226
(ix) श्रमिक कल्याण	15	38	4	57
(x) ग्रन्य	92	151	32	275
12. विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी (ख)	419	—	—	419
13 पर्वतीय व ग्रादिम जाति क्षेत्र	—	500	—	500
योग	19577	17073	600(ग)	37250(घ)

(ख) निजी (गैर-सरकारी) क्षत्र—पाँचवी योजना के दौरान गैर-सरकारी क्षेत्र मे 16161 करोड रु व्यय किए जाने का प्रावधान है। खान ग्रौर विनिर्माण क्षेत्र मे कुल मिलाकर 6 250 करोड रु. लगाए जाएँगे जिनमे से 5,200 करोड रु. बडे ग्रौर मध्यम पैमाने के कार्यों मे ग्रौर 1,050 करोड रु छोटे ग्रौर ग्रामोद्योगो मे लगाए जाएँगे।

वित्तीय स्रोत

पाँचवी योजना के लिए 53 411 करोड रु के परिव्यय के लिए वित्तीय स्रोतो की व्यवस्था इस प्रकार की गई है—

1 चालू परिव्यय के लिए बजट व्यवस्था	5 850 करोड रु
2 देशीय बचत (सरकारी क्षेत्र)	15 075 करोड रु.
3 देशीय बचत (गैर सरकारी क्षेत्र)	30 055 करोड रु
4 कुल विदेशी सहायता	2 431 करोड रु,
योग	53 411 करोड रु

सरकारी क्षेत्र मे योजना परिव्यय की वित्त व्यवस्था

सरकारी क्षेत्र मे योजना परिव्यय की वित्त व्यवस्था इस प्रकार की गई है—

मद	करोड रु मे 1972-73 के मूल्यो पर		
1 1973 74 के करो की दरो पर केन्द्र ग्रौर राज्य सरकारो के राजस्व खाता साधन			7348
(क) चालू राजस्व से बचत		5612	
(ख) चालू राजस्व से निधियो को स्थानान्तरण		1736	
(i) शोधन निधि (सिंकिंग फण्ड)	1484		
(ii) ग्रन्य निधि (शुद्ध)	252		

मद	करोड़ रु. में 1972-73 के मूल्यों पर	
2. सरकारी उद्यमों से कुल बचत		5988
(क) केन्द्र	4331	
(ख) राज्य	1657	
3. अतिरिक्त साधन जुटाने से		6850
(क) केन्द्र	4300	
(ख) राज्य	2550	
4. सरकारी, सरकारी उद्यमों तथा स्थानिक निकायों द्वारा बाजार से लिए गए ऋण		7232
5. छोटी बचतें		1850
6. राज्य भविष्य निधियाँ		1280
(क) केन्द्र	680	
(ख) राज्य	600	
7 वित्तीय संस्थाओं से लिए गए सावधिक ऋण (शुद्ध)		895
(क) जीवन बीमा निगम और रिजर्व बैंक से लिए गए ऋण	755	
(ख) अन्य सावधिक ऋण	500	
(ग) घटा वित्तीय संस्थाओं को अदायगी	(–) 360	
8. बैंकों से लिए गए व्यापारिक ऋण (शुद्ध)		1185
(क) बैंकों के बकाया ऋण में वृद्धि	1500	
(ख) घटा बैंकों में जमा रकम में वृद्धि	(–) 315	
9 खर्च जमा पूंजी तथा अन्य		1008
(क) ऋण वित्तीय संस्थाओं द्वारा सावधिक ऋणों की अदायगी	128	
(ख) अन्य प्राप्तियाँ (शुद्ध)	880	
10. जनता में सिक्कों की खपत (शुद्ध)		81
(क) जनता में खपे कुल सिक्के	100	
(ख) घटा खजानों और सरकारी संस्थाओं की नकदी में वृद्धि	(–) 19	
11. रिजर्व बैंक से हुण्डियों के एवज में लिया गया ऋण		1000
12. सार्वजनिक बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थाओं के साधनों का भवन-निर्माण कार्यों में निवेश		90
13. संसार के अन्य देशों से प्राप्तियाँ (शुद्ध)		*2443*
(क) देश में नए फण्ड आने से	2243	
(ख) अमेरिका की 'रुपया-राशि' से	200	
कुल योग		37250

नोट—इसमें सामान देने वालों से मिला 400 करोड़ रु. का उधार शामिल है।

निर्देशक सिद्धान्त

(1) परियोजनाओ को शीघ्र पूरा करना, (2) वर्तमान क्षमता का भरपूर उपयोग, (3) मुख्य क्षेत्रो म आवश्यक न्यूनतम लक्ष्यो की प्राप्ति और (4) आर्थिक रूप से दुर्बल वर्गो के लिए एक निश्चित न्यूनतम विकास-स्तर की प्राप्ति।

विदेशी सहायता

अनुमान है पाँचवी योजना मे विदेशी सहायता कुल पूँजी निवेश का केवल 3 1 प्रतिशत होगी और सार्वजनिक निवेश का 4 6 प्रतिशत, जबकि चौथी योजना मे यह क्रमश 8 2 और 13 6 प्रतिशत थी। आशा है कि 1985–86 तक देश इस स्थिति मे होगा कि अपने साधनो से ऋण सेवाओ और विदेशी मुद्रा की अन्य आवश्यकताएँ पूरी कर सके। लेकिन सामान्य व्यावसायिक शर्तों पर विदेशी पूँजी देश मे आने की गुन्जाइश रहेगी। 1985–89 तक आर्थिक विकास के मामले मे आत्मनिर्भर हो जाने और 6 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से विकास करने की परिकल्पना की गई है।

अनुमान है कि देश के विदेशी मुद्रा कोष मे 1978–79 मे 100 करोड रुपये रह जाएगी और 1985–86 तक यह बिल्कुल समाप्त हो जाएगी।

निर्यात

पाँचवी और छठी योजनाओ मे निर्यात मे 7 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होने का अनुमान किया गया है और इसके पश्चात् 7 प्रतिशत की दर से। दूसरे शब्दो मे देश का निर्यात 1973–74 के 2,000 करोड रु से बढकर 1978-79 मे 2 890 करोड रु और 1983–84 मे 4,170 करोड रु और 1985–86 मे 4 770 करोड रु का होने की सम्भावना है। इन वस्तुओ के निर्यात मे बहुत अधिक बढोत्तरी की आशा है इजीनियरी का सामान, खनिज, लोहा, दस्तकारियाँ (मोती, रत्न और जेवरात समेत), सूती कपडा, इस्पात, मछली और मछली से बनी चीजें, और *चमडा तथा चमडे का सामान*। पाँच वर्षों की अवधि मे *जिस* 890 करोड रु. की निर्यात वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है, उसमे से लगभग दो तिहाई इन्ही सात वस्तुओ से प्राप्त होगा।

आयात

पाँचवी योजना के प्रारूप मे आशा की गई है कि घरेलू उत्पादन मे वृद्धि और विकास द्वारा अनेक वस्तुओ जैसे मुलायम इस्पात, नाइट्रोजन और फॉस्फेट युक्त *उर्वरक तथा कारखानो के लिए कई सामानो तथा उपकरणो का आयात बन्द किया* जा सकना है। इसके अतिरिक्त कई वस्तुओ–जैसे अलौह वस्तुओ का आयात कम किया जा सकता है। देश मे ही उत्पादित कोयले और पनबिजली का बडे पैमाने पर आयातित तेल के स्थान पर ईंधन के रूप म प्रयुक्त किया जा सकेगा। तांबे के स्थान पर अल्यूमीनियम का प्रयोग किया जा सकता है।

धातुओ, खनिजो और धातु की छीलन का आयात 1978-79 के 380 करोड रु से घटकर 1983–84 मे 340 करोड रु रह जाने का अनुमान है, लेकिन इस्पात

के आयात मे कमी की सम्भावना नही है। अलौह धातुओं के आयात मे वृद्धि होने की सम्भावना है।

मशीनों और परिवहन उपकरणो का आयात 1978–79 के 964 करोड रु से बढकर 1983–84 मे 1010 करोड रु और 1985–86 मे 1035 करोड रु हो जाने का अनुमान है।

बिना साफ किए पैट्रोलियम, पैट्रोलियम से बने पदार्थों और मशीनें चिकनी रखने वाले पदार्थों के कुल आयात मे भी वृद्धि की सम्भावना है जो 1978–79 के 811 करोड रु से बढकर 1983–84 मे 1,240 करोड रु और 1985–86 मे 1,500 करोड रु का हो जाने का अनुमान है।

उर्वरकों और उर्वरकों के लिए कच्चे माल के आयात मे भी बढोत्तरी की कल्पना की गई है। इनका आयात 1978–79 के 270 करोड रु से बढकर 1983–84 म 330 करोड रु होने की सम्भावना है।

अन्य आयातित वस्तुओं मे महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ रत्न आदि और कच्चा काजू है। इनका आयात हमारे यहां से निर्यात होने वाले तैयार जवाहरातो और काजू की गिरी के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति के लिए अनुमान किया गया है। हम 1983–84 तक अखबारी कागज और लुग्दी के मामले मे आत्मनिर्भर हो जाएंगे। कपास और वनस्पति तेल के मामले मे हम लगभग आत्मनिर्भर बन गए हैं।

जहाजरानी और पर्यटन का विकास किया जाएगा और प्रवासी भारतीयो द्वारा भेजे जाने वाले धन मे होने वाली गडबडी रोकने का प्रयास किया जाएगा।

बचत और विनियोग

योजनावधि मे पूँजी निर्माण की दर में लगातार वृद्धि होने की आशा है। अनुमान है कि पूँजी निर्माण की दर भी कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 13 7% से बढकर 1978–79 मे 16 3%, 1983–84 म 18 7% और 1985–86 मे 19 7% हो जाएगी।

बचत दर भी बढने की आशा है। यह 1973–74 के कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 12 2/ से बढकर 1978–79 म 15 7/ 1983–84 मे 19% और 1985-86 मे 20/ हो जाएगी।

इस अवधि मे बचत का अनुमान बहुत कुछ जनसाधारण की बचत पर आधारित है। कुल बचत मे 7 8/. की वृद्धि का जो अनुमान लगाया गया है उसमें 5 4/ अश जन साधारण की बचत का होगा। अनुमान है कि सार्वजनिक बचत दर 1973-74 के कुल राष्ट्रीय उत्पादन के 2 8/ से बढकर 1985 86 म 8 2/ हो जाएगी।

काले धन की वृद्धि की रोकथाम

काले धन की उत्पत्ति रोकने के लिए प्रशासकीय, वित्तीय और मूल्य सम्बन्धी नीतियों पर कार्य किया जा रहा है—(क) शहरी भूमि सम्बन्धी नीति जिसमे भूमि का समाजीकरण शामिल है, (ख) कपास या तिलहन जैसी महत्त्वपूर्ण कृषि जिन्सों

के वितरण पर और अधिक परिमाण मे सामाजिक नियन्त्रण, और (ग) तस्करी की रोकथाम के लिए कारगर उपाय।

पर्यटन

पाँचवी योजना मे विदेशी पर्यटको को आकृष्ट करने के लिए होटल परिवहन और अन्य सुविधाओ को बढाया जा रहा है। इसके साथ ही इस बात के लिए भी आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं कि पर्यटन से होने वाली आय गैर-सरकारी हाथो मे न चली जाए। ऐसा निर्णय किया गया है कि भारतीय होटलो मे ठहरने वाले पर्यटको को अपने बिल विदेशी मुद्रा में चुकाने होंगे। अनुमान है कि विदेशी पर्यटको से होने वाली आय जो *1973-74 में 34* करोड रु. थी, वह *1978-79 में* बढकर 49 करोड रु. हो जाएगी। पाँचवीं योजना की अवधि में विदेशियो के भारत यात्रा करने से कुल 100 करोड रु. की प्राप्ति होने का अनुमान है।

कृषि

पाँचवी योजना में अनाजो की उपज में वार्षिक वृद्धि-दर 4·2% रखी गई है जो चौथी योजना की दर से बहुत कम है। यही बात अधिकांश फसलो पर लागू होती है। योजना में फसलो की उपज के मुख्य लक्ष्य पूरे पाँच वर्षों के लिए निर्धारित किए गए हैं, जबकि अब तक कि योजनाओ में ऐसा नही किया गया था। ये लक्ष्य निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है—

क्रम सख्या	फसल	इकाई	चौथी योजना के पाँच वर्षों की सभावित उपज	पाँचवी योजना के पाँच वर्षों के लक्ष्य
1.	चावल	लाख टन मे	2,080 00	2,540 00
2	गेहूँ	,,	1,260 00	1,680 00
3	मक्का	,,	300 00	370 00
4	ज्वार	,,	420·00	510 00
5	बाजरा	,,	300 00	370 00
6	अन्य अनाज	,,	290 00	330 00
7	दाले	,,	550 00	650·00
		कुल योग अनाज	5 200 00	6,450 00
8	तिलहन	लाख टन में	415 00	550 00
9.	गन्ना	,,	6,350 00	7,750 00
10.	कपास	लाख गाँठें	281 00	360 00
11.	पटनसन और सन	,	320 00	360 00

फसल की पैदावार बढाने के लिए इन बातो पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है—(1) किन्ही विशिष्ट समस्याओ को सुलझाने के लिए अनुसधान में वृद्धि, (2) कृषि विस्तार और प्रशासन को मजबूत करना, (3) प्रमाणित बीजों की पैदावार बढाना तथा इन्हें और अधिक किसानो को देना, (4) रासायनिक खाद का

अधिक मात्रा में और भली भाँति प्रयोग, (5) पानी प्रबन्ध, (6) वित्त सस्थाओं द्वारा ऋण देने की सुविधाएँ बढाना, (7) कटाई के बाद फसल रखने आदि की सुविधाएँ बढाना तथा इसकी बिक्री का प्रबन्ध करना, (8) बाजार व्यवस्था के समर्थन के लिए फसल रखने के लिए पर्याप्त गोदामो की व्यवस्था।

कार्य पद्धति—कृषि की कार्य पद्धति में भी क्रान्तिकारी सुधार किए जा रहे हैं। पिछले अनुभवो के परिणामस्वरूप खेतो में छोटे और सीमान्त किसानो को शामिल करने के दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाएगा। बारानी खेती बडे पैमाने पर शुरू की जाएगी। छोटे किसानो और सीमान्त किसानो से सम्बद्ध योजनाएँ मिलान का विचार है। इन योजनाओ को बढाया भी जाएगा। पिछली योजनाओ के दौरान अधिक पैदावार देने वाली जो किस्में विकसित की गई और जो अच्छी भी साबित हो चुकी हैं, उन्हे पाँचवी योजना के दौरान सिचाई के कमाण्ड क्षत्रो के और अधिक इलाको में बोया जाएगा। पाँचवी योजना में सिचाई वाले कमाण्ड क्षेत्रो का समन्वित विकास करने के लिए विशाल कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है। यह कार्यक्रम 50 बडी सिचाई परियोजनाओ पर लागू होगा और इससे 1 4 करोड हैक्टर भूमि में सिचाई की व्यवस्था हो जाएगी। इससे न केवल चावल की उपज बढाने में अपितु कई फसलें बोने में सहायता मिलेगी। सिचाई वाले इन इलाको में व्यापारिक फसलें बोने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

योजना के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओ मे 'झूम' खेती रोकना तथा 'झूम' भूमि का उचित उपयोग प्रायोगिक योजनाओ के अधीन बीहडो, खारी और नमकीन तथा रेतीली जमीनो को खेती योग्य बनाना भी है।

पहाडो, विशेषकर हिमालय के इलाको मे और दक्षिण भारत के मालनाड इलाके मे बागवानी बडे पैमाने पर बढाई जाएगी। बागो मे पैदा हुए फलो आदि की बिक्री तथा इनसे अन्य खाद्य पदार्थ बनाने पर भी ध्यान दिया जाएगा।

विश्वविद्यालयो और अन्य सस्थाओ मे किए गए अनुसधानो पर अमल करने के बारे मे जो कमियाँ और कठिनाइयाँ सामने आई है, उन्हे दूर किया जाएगा। इसके लिए विश्वविद्यालयों अनुसधान सस्थाओ और सरकार के विस्तार विभागो के बीच समन्वय स्थापित किया जाएगा। कृषि अनुसधान के मुख्य उद्देश्य होगे—(1) पैदावार बढाकर अनाजो की उपज बढाते जाना, (2) भूमि और जल का वैज्ञानिक ढग से उपयोग कर परिस्थितियो तथा आर्थिक लाभ को ध्यान मे रखकर फसलें बोने का क्रम निश्चित करना, (3) उर्वर भूमि की देखभाल और इसे उपजाऊ बनाए रखना, (4) जल प्रबन्ध, और (5) निर्यात की जाने वाली फसलो की किस्म और उपज मे सुधार।

रासायनिक खाद—पाँचवी योजना के आधार वर्ष (1973 74) मे रासायनिक खाद की खपत लगभग 19 7 लाख टन होने का अनुमान था। पाँचवी योजना के अन्त तक यह खपत 52 लाख टन तक बढाने का प्रस्ताव है। रासायनिक खाद का सतुलित प्रयोग बढाने के लिए मिट्टी-परीक्षा की सुविधाएँ काफी बढाने का विचार है।

बढ़िया बीज—पाँचवी योजना मे बीज टैक्नोलॉजी मे अनुसधान करने पर काफी ध्यान दिया जाएगा ताकि अच्छे बीज मिल सकें। पाँचवी योजना मे 4 लाख टन की अतिरिक्त क्षमता स्थापित करने का प्रस्ताव है। ये प्लांट मुख्य रूप से सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्रो मे होंगे।

कृषि उपकरण और मशीनें—अनुमान है कि पाँचवी योजना के दौरान देश मे ट्रैक्टरो की सख्या 2 लाख से बढकर 5 लाख हो जाएगी। इसी तरह शक्ति चालित जुताई की मशीनो की सख्या 10 हजार से बढकर लगभग एक लाख हो जाएगी। कृषि उपकरणों और मशीनो का उत्पादन बढाने के कार्यक्रम को ध्यान मे रखते हुए पाँचवी योजना मे कृषि इजीनियरिंग की नई केन्द्रीय सस्था खोलने का विचार है। इन मशीनो को चलाने वालो और इनकी मरम्मत करने वालो को ट्रेनिंग देने के लिए सुविधाएँ बढाई जाएँगी।

उर्वर भूमि और पानी सरक्षण—*पाँचवी योजना में लगभग 90 लाख हैक्टर* क्षेत्र मे उर्वर भूमि और पानी के सरक्षण पर ध्यान दिया जाएगा। इस प्रकार पाँचवी योजना के अन्त तक उर्वर भूमि और पानी सरक्षण उपायो से लाभान्वित इलाका एक करोड 80 लाख हैक्टर से बढकर ढाई करोड हैक्टर हो जाएगा। सारे देश की भूमि और जल के बारे मे सूचना एकत्रित करने और इनका विश्लेषण करने के लिए *'केन्द्रीय उर्वर भूमि सर्वेक्षण सगठन बनाया जाएगा। पाँचवी योजना के* दौरान बडी सिचाई योजनाओ के नौ नए जलग्रह क्षेत्रो मे उर्वर भूमि के सरक्षण का कार्यक्रम शुरू किया जाएगा।

कृषि ऋण—अनुमान है कि पाँचवीं योजना के अन्त तक उपज के लिए प्रतिवर्ष लगभग 3 हजार करोड रुपये के अल्पावधि ऋणो की जरूरत होगी। *1978 79 मे सहकारी और व्यावसायिक बैंको द्वारा लगभग 1 700 करोड रुपये* के अल्पावधि उत्पादन ऋण दिए जाने लगेंगे। पाँचवी योजना मे पूँजी लगाने के लिए ऋण लेने का योजना के पाँच वर्षों के लिए लक्ष्य 2 400 करोड रुपये रखा गया है। योजना के अन्तिम वर्ष मे सहकारी और व्यावसायिक बैंकों द्वारा 1 700 करोड रुपये के जो अल्पावधि ऋण दिए जाएँगे उनमे से 680 करोड रुपये छोटे किसानो को दिए जाएँगे। व्यावसायिक बैंक देश के और अधिक देहाती इलाको म अपनी शाखाएँ खोलने की नीति जारी रखेंगे। आशा है पाँचवी योजना के दौरान कृषि वित्त निगम कृषि विकास कार्यो के लिए 600 करोड रुपये से अधिक रुपये लगाने की सुविधाएँ दे सकेगा।

कृषि मूल्य नीति—योजना के दौरान अनाजो के न्यूनतम समर्थन मूल्य और खरीद मूल्यो म अन्तर बनाए रखना होगा। उत्पादन लागत और अन्य बातो को ध्यान मे रखकर सभी महत्त्वपूर्ण फसलो का न्यूनतम समर्थन मूल्य बुआई शुरू होने से पहले घोषित कर दिया जाएगा। बाद मे खरीद मूल्य की घोषणा की जाएगी और यह आमतौर पर न्यूनतम समर्थन मूल्य से अधिक ही होगा। कपास, पटसन महत्त्वपूर्ण तिलहनो और अन्य व्यापारिक फसलो के लिए पाँचवी योजना मे न्यूनतम समर्थन मूल्य निश्चित कर दिया जाएगा।

गोदाम भरना—योजना मे विभिन्न सगठनों की सग्रह-क्षमता योजना के प्रारम्भ में लगभग 131 लाख टन से बढाकर योजना के अन्त तक लगभग 218 लाख टन करने का लक्ष्य है। खेती में अन्न सुरक्षित रखने की सुविधाएँ बढाई जाएँगी।

सहकारिता और सामुदायिक विकास

पाँचवी योजना में सहकारी विकास के चार विशेष उद्देश्य होगे—(1) कृषि सहकारी समितियो (ऋण, सप्लाई, विपणन और तैयारी) को सुदृढ करना, जिससे लम्बे समय तक कृषि का विकास होता रहे, (2) विश्वास क्षम उपभोक्ता सहकारी प्रवृत्ति का निर्माण जिससे उपभोक्ताओ को ठीक भाव पर सामान मिलता रहे, (3) सहकारी विकास के स्तर में, विशेषकर कृषि ऋण के क्षेत्र में, क्षेत्रीय असन्तुलन दूर करना, और (4) सहकारी समितियो के पुनर्गठन की दिशा मे विशेष प्रयास, जिससे वे छोटे और सीमान्त किसानो तथा गरीब लोगो के लाभ के लिए काम कर सकें। योजना में अनुसूचित जनजातियो की भलाई के लिए काफी कार्यक्रम होगे।

पाँचवी योजना के ग्राम-विकास कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य खेती की पैदावार बढाना और गाँव वालो को और अधिक रोजगार जुटाना है। अलग-अलग कार्यों के बजाए 'समूचे गाँव' के विकास के लिए कार्यक्रम बनाए जाएँगे ताकि सभी ग्रामवासियो को उनका लाभ पहुँचे। इस दृष्टि से कार्यक्रम में इन उपायो को प्रमुख स्थान दिया गया है—(1) जमीनों की चकबन्दी, (2) पानी के इस्तेमाल पर अधिकतम नियन्त्रण और सूखे इलाकों में जमीन की नमी कायम रखने की दृष्टि से भूमि का समग्र विकास, (3) सिचाई का अधिकतम विकास और (4) सारे गांव के लिए फसलो का कार्यक्रम और यह ध्यान रख कर कि सिचाई का सबसे अधिक उपयोग कैसे हो। समूचे गाँव सम्बन्धी इस कार्यक्रम को आजमाइशी तौर पर बिहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु के 29 गाँवों म शुरू करने का विचार है।

ग्राम विकास

पाँचवी योजना के मुख्य उद्देश्यो मे से एक देहातो के रहने वाले सबसे गरीब 30 प्रतिशत लोगो की मासिक खर्च करने की प्रति॰व्यक्ति सामर्थ्य बढाना है। इसका अभिप्राय है कि लगभग ढाई करोड परिवारो की आमदनी काफी बढनी ही चाहिए। यह कार्य निम्नलिखित तीन दिशाओ मे यत्न कर पूरा किया जाएगा—

1. छोटे और सीमान्त किसानो द्वारा बडे पैमाने पर दुधारू पशु पालने का कार्यक्रम। पशुपालन और मत्स्य पालन के कार्यक्रमो मे इस प्रकार के परिवर्तन किए जाएँगे ताकि इनसे कुल उत्पादन बढने के साथ-साथ छोटे और सीमान्त किसानो तथा कृषि मजदूरो की आर्थिक अवस्था भी सुधरे।

2 *पाँचवीं योजना मे चुनी हुई सिचाई परियोजनाओं के कमाण्ड क्षेत्र* विकसित किए जाएँगे तथा देश के जिन इलाको मे अक्सर सूखा पडता है उनकी हालत सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाएगा।

3. कृषि अर्थ-व्यवस्था के अपेक्षाकृत कमजोर वर्गों की हालत सुधारने के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए कार्यक्रमो को बढाना तथा इन पर पूरी तरह ध्यान देकर अमल करना।

सिचाई तथा बाढ-नियन्त्रण

सिचाई क्षमता मे पर्याप्त वृद्धि की जाएगी। विशेष तौर पर सूखे से ग्रस्त इलाको मे। योजना मे बडी और मझौली योजनाओ के लिए 2,401 करोड रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है और उनसे 62 लाख हैक्टर और भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इसमे चालू योजनाओ से होने वाली सिंचाई भी सम्मिलित है।

पाँचवी योजना के प्रारम्भ मे 235 लाख हैक्टर कृषि भूमि मे छोटी सिंचाई योजनाओ से खेती की जा रही होगी। योजना के दौरान 60 लाख हैक्टर अतिरिक्त भूमि मे लघु सिंचाई योजनाओ से सिंचाई की व्यवस्था हो जाएगी।

निर्मित सिंचाई क्षमता का अधिकतम उपयोग करने के लिए पाँचवी योजना मे कुछ नहरी सिंचाई क्षेत्रो मे निम्नलिखित कार्यवाहियो द्वारा एकीकृत क्षेत्र विकास के लिए प्रायोगिक परियोजनाएँ प्रारम्भ किए जाने का प्रस्ताव है—(1) जोतो की चकबन्दी (2) भूमि को समतल बनाना और सही आकार देना, (3) पानी की धारा को निर्धारित करना, (4) नालो की सफाई और उनका नियन्त्रण (5) खाइयो की सफाई की व्यवस्था, (6) जहाँ कही आवश्यक हो, वहाँ भूमिगत जल से पूरक सिंचाई सुविधा की व्यवस्था, (7) उत्पादन बढाने मे अडचन डालने वाले और पुराने सिंचाई नियमो और कानूनो मे संशोधन।

पाँचवीं योजना मे बाढ-नियन्त्रण के लिए 301 करोड रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है, इससे 18 लाख हैक्टर भूमि के बचाव की व्यवस्था हो सकेगी।

विद्युत्

इस क्षेत्र में देश को बडी चुनौती का सामना करना है। इसी उद्देश्य से पाँचवी योजना मे ये लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं—बिजली पूर्ति का स्थिरीकरण, कार्यक्रम के कार्यान्वियन मे प्रगति, इस्पात उर्वरक तथा कोयला जैसे प्राथमिक उद्योगो के लिए बिजली-पूर्ति सुनिश्चित करना, सामाजिक उद्देश्यो के अनुकूल बिजली-विकास का नवीनीकरण तथा विज्ञान और टैक्नोलॉजी के विकास मे तालमेल रखते हुए छठी योजना के लिए पर्याप्त रूप से अग्रिम कार्यवाही सुनिश्चित करना। यह प्रस्ताव किया गया है कि पाँचवी योजनावधि मे 165 5 लाख किलोवाट की नई क्षमता योजना के अन्तिम वर्ष मे 330 लाख किलोवाट की क्षमता के प्रभावी सचालन के साथ बढा दी जाए।

उद्योग तथा खनिज

औद्योगिक और खनिज क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित क्षेत्रों के विकास के लिए पाँचवी योजना के दौरान कुल परिव्यय 1 खरब 35 अरब 28 करोड रुपये रखा गया है जिसमे 83 अरब 28 करोड रुपया अर्थात् कुल का लगभग 62 प्रतिशत परिव्यय सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओ के लिए है और शेष 52 अरब रुपया निजी तथा सहकारी क्षेत्र की परियोजनाओ के लिए। सार्वजनिक क्षेत्र मे 78 अरब 29 करोड रुपया केन्द्रीय परियोजनाओ मे तथा 4 अरब 49 करोड रुपया राज्यो और केन्द्र प्रशासित प्रदेशो की परियोजनाओ मे खर्च करने का प्रस्ताव है।

सार्वजनिक क्षेत्र मे केन्द्रीय निवेश की अधिकतम राशि इस्पात, अलौह धातुएँ, उर्वरक, कोयला, पैट्रोलियम और औद्योगिक मशीनरी जैसे उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगो मे खर्च की जाएगी ।

हल्के इस्पात से सम्बन्धित प्रमुख कार्यक्रमो म भिलाई का 40 लाख मीट्रिक टन तक विस्तार, एक नियमित आधार पर बोकारो का 47 5 लाख मीट्रिक टन तक विस्तार और विशाखापत्तनम् और विजयनगरम् इस्पात परियोजनाओ के कार्यान्वयन म उल्लेखनीय प्रगति शामिल है । मिश्रित इस्पात के लिए सालेम, दुर्गापुर और मैसूर की परियोजनाओ को शुरू किया जाएगा । सरकारी क्षेत्र के इस्पात कार्यक्रमो के लिए 16 अरब 22 करोड रुपये की व्यवस्था है ।

अलौह धातुओ के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मे 443 करोड रुपये की व्यवस्था है। पाँचवी योजना मे जो नई परियोजनाएँ शुरू की जाएँगी, उनसे ताँबा, जस्ता, सीसा और अल्यूमीनियम के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होने की सम्भावना है । इन्जीनियरी उद्योगो के लिए जो कार्यक्रम निर्धारित किए गए हैं उनके परिणामस्वरूप उत्पादनो मे काफी वृद्धि होगी । इनका उत्पादन 1973–74 म 2700 करोड रुपये से बढकर 1978–79 मे 5200 करोड रुपये हो जाने का अनुमान है । इस वृद्धि का अर्थ आयात मे कमी होने के साथ नियात बढाना भी है ।

वास्तव मे पाँचवी योजना मे औद्योगिक विकास के कार्यक्रमो के लिए आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के साथ विकास इन दो उद्देश्यो को सामने रखा गया है । औद्योगिक तथा खनिज क्षेत्र से सम्बन्धित योजना का लक्ष्य वार्षिक विकास दर 8 1 प्रतिशत प्राप्त करना है । इसमे एक ऐसा निवेश तथा उत्पादक प्रणाली की कल्पना की गई है, जो निम्नलिखित बातो पर बल देती है—

(1) आधारभूत औद्योगिक क्षेत्र का तीव्र गति स विकास,
(2) निर्यात उत्पादन
(3) आम उपभोग की वस्तुओ की पर्याप्त सप्लाई,
(4) अनावश्यक वस्तुओ के उत्पादन पर नियन्त्रण,
(5) ग्राम तथा लघु उद्योगो को प्रोत्साहन,
(6) औद्योगिक रूप से पिछडे हुए क्षत्र का विकास और
(7) औद्योगिक विकास के लिए विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी का प्रयोग ।

ग्रामोद्योग और लघु उद्योग

योजना मे लघु उद्योगो पर कुल मिलाकर लगभग 1960 करोड रुपये व्यय किए जाएँगे । पिछडे क्षेत्रो पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और यह आशा है कि 60 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार मिल सकेगा । यह विश्वास प्रकट किया गया है कि गरीबी और उपभोग मे असमानता कम करने की दिशा म लघु और ग्रामोद्योगो का विकास बडा सहायक होगा । इस सम्बन्ध म, योजना म, नीति सम्बन्धी मार्गदर्शी सिद्धान्त इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं—

(1) सही उद्योगो का चुनाव किया जाएगा और उन्हें सलाहकार और

विपणन सेवाओ की सहायता दी जाएगी, (2) लघु उद्योगो और बडे उद्योगो के बीच समुचित सम्पर्क स्थापित किया जाएगा। इसमे सरकार उपयोगी भूमिका निभाएगी, (3) वित्तीय रियायते देकर पिछडे क्षेत्रो मे औद्योगिक विकास को बढावा दिया जाएगा, (4) औद्योगिक विकास के लिए बुनियादी अवस्थापना का विस्तार किया जाएगा और बारानी खेती की नई विधियाँ अपनाकर तथा सिंचाई की नई क्षमताओ के उपयोग से उपज बढाई जाएगी और पूँजी विनियोग की बाधाएँ दूर की जाएँगी।

लघु और ग्रामोद्योगो के विकास की दशा मे की जाने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यवाहियाँ निम्नलिखित होगी—

(1) उद्यमियो को प्रोत्साहन देना और उनके लिए विभिन्न सलाहकार सेवाओ की व्यवस्था जिससे रोजगार के लिए अधिकतम अवसर मिल सकें, विशेषकर स्वय-रोजगार के अवसर।
(2) वर्तमान जानकारी और उपकरणो के भरपूर उपयोग की सुविधा।
(3) उत्पादन तकनीक मे सुधार और इसे विकास-क्षम बनाना।
(4) पिछडे इलाको सहित कस्बो और ग्रामीण क्षेत्रो के चुने विकास केन्द्रो मे लघु उद्योगो को बढावा देना।

आधुनिक लघु उद्योगो का बडे उद्योगो क सहायक के रूप मे और विस्तार किया जाएगा।

परिवहन

पाँचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे परिवहन पर कुल परिव्यय 5697 करोड रुपया रखा गया है जिसमे 4343 करोड रुपया केन्द्रीय क्षेत्र मे और 1354 करोड रुपया राज्यो तथा केन्द्र शासित क्षेत्रो म होगा। परिवहन सम्बन्धी अर्थव्यवस्था म रेलो का स्थान सर्वोपरि बना रहेगा और अब तक की मुख्य प्रवृत्तियाँ भविष्य मे भी जारी रहेगी। परिवहन प्रणालियो मे समन्वय पर जोर दिया जाएगा और सभी परिवहन दिशाओ में विकास किया जाएगा। सडक सम्बन्धी उन कामो को प्राथमिकता दी जाएगी जो चौथी योजना से चले आ रहे है।

शिक्षा

पाँचवी योजना मे पिछले अनुभवो से सबक लेने और शिक्षा के ढाँचे में कुछ अनिवार्य परिवर्तन करने का प्रयत्न है। शिक्षा व्यूह-रचना में मुख्य जोर चार बातो पर रहेगा—(1) शिक्षा सम्बन्धी अवसरो को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की समग्र योजना का अग समझना, (2) शिक्षा-प्रणाली, विकास की आवश्यकताओ और रोजगार के बीच निकट का तालमेल रखना, (3) शिक्षा स्तर में सुधार, और (4) विद्यार्थियो समेत शिक्षा से सम्बद्ध समुदाय को सामाजिक और आर्थिक विकास के काम में शामिल करना।

शिक्षा और रोजगार में निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे सुधार किए जाएँगे जिनसे विद्यार्थियो मे रोजगार के अनुकूल प्रवृत्ति पैदा हो और

वे कुछ हुनर सीख सकें। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक रूप दिया जाएगा और विश्वविद्यालय स्तर पर भी कुछ व्यावसायिक पाठ्यक्रम चालू किए जाएंगे तथा व्यावसायिक शिक्षा को देश की जनशक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार ढाला जाएगा।

प्रमुख गुण सुधार-कार्यक्रमों में, पाठ्यक्रम तथा परीक्षा में सुधार, अध्यापन तथा शिक्षा ग्रहण के तरीकों मे सुधार, अध्यापकों का प्रशिक्षण, पाठ्य-पुस्तकों में सुधार, शिक्षा प्रक्रिया में जन सचार साधनो का अधिकाधिक उपयोग और भौतिक सुविधाओं में सुधार उल्लेखनीय कदम होगे।

पाँचवी योजना मे प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गई है और इसके लिए चौथी योजना मे जहाँ 237 करोड रुपये के परिव्यय का प्रावधान रखा गया था, पाँचवी योजना मे 743 करोड रुपये का प्रावधान है। पिछडे हुए इलाको और देश के सबसे असुविधाग्रस्त वर्गो मे शिक्षा के विस्तार पर मुख्य जोर दिया गया है। पाँचवी योजना मे शिक्षा के लिए 1,726 करोड रुपये का प्रावधान है। इसमें 743 करोड रुपया प्रारम्भिक शिक्षा 241 करोड रुपया माध्यमिक शिक्षा और 164 करोड रुपया तकनीकी शिक्षा के विकास के लिए है।

विज्ञान और टैक्नोलॉजी

वैज्ञानिक अनुसधान के क्षेत्र मे प्रगति अपर्याप्त और असन्तोषजनक रही है। इस सन्दर्भ मे पाँचवी योजना के मुख्य उद्देश्य ये हैं—(1) अर्थव्यवस्था के आधारभूत क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता के प्रयत्नो का समर्थन, (2) परमाणु ऊर्जा, बाह्य अन्तरिक्ष और इलैक्ट्रोनिक्स जैसे क्षेत्रो मे और अधिक प्रगति की व्यवस्था, (3) मकान, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि जनता की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी करने मे योगदान, (4) जिन चुने हुए क्षेत्रो मे सामर्थ्य है, उनकी क्षमता बढाना, (5) डिजाइन इन्जीनियरी और सलाह, प्राकृतिक साधनो का अनुमान लगाने तथा इनका उपयोग करने कोयले का उचित उपयोग करने और विश्वविद्यालयो मे युवकों को प्रशिक्षित करने जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो की कमियाँ दूर करना।

वैज्ञानिक अनुसधान के लिए जहाँ चौथी योजना मे कुल 373·57 करोड रु (योजना=142 27 करोड रुपये+गैर योजना=231 30 करोड रुपये) व्यय किए गए वहाँ पाँचवी योजना मे कुल 1568·22 करोड रुपये (योजना=1033 29 करोड रुपये+गैर योजना=534 92 करोड रुपये) का प्रावधान रखा गया है।

स्वास्थ्य, परिवार नियोजन और पोषाहार

चौथी योजना मे स्वास्थ्य कार्यक्रमो पर कुल 433 53 करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी जिसमे से वास्तव मे लगभग 343 91 करोड रुपये ही खर्च हुए, जबकि पाँचवी योजना मे स्वास्थ्य कार्यक्रमो पर 796 करोड रुपये व्यय किए जाएँगे। इन कार्यक्रमो पर पाँचवी योजना के मुख्य उद्देश्य ये हैं—

(1) न्यूनतम सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था, जो परिवार-नियोजन और गर्भवती माताओं तथा बच्चो के लिए पोषक आहार की सुविधाओं से सम्बद्ध हैं।

(2) देहाती इलाको मे और खासकर पिछडे तथा जन-जातियो वाले इलाको मे स्वास्थ्य सुविधाओ मे वृद्धि तथा प्रादेशिक असन्तुलन दूर करना।

(3) छूत की बीमारियो, विशेषकर मलेरिया और चेचक पर नियन्त्रण पाने और उन्हे समाप्त करने के प्रयत्नो मे वृद्धि।

(4) स्वास्थ्य सेवाओ से सम्बद्ध व्यक्तियो की शिक्षा और ट्रेनिंग में गुणात्मक सुधार।

(5) विशेषज्ञ सेवाओ का विशेषकर देहाती इलाको में विस्तार।

योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम इस प्रकार रखा गया है—(1) प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, (2) 10,000 की आबादी पर एक उप-केन्द्र, (3) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो की कमियाँ समन्वित रूप से दूर करना, (4) प्रत्येक स्वास्थ्य केन्द्र के लिए और अधिक दवाइयो की व्यवस्था, (5) चार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो म से एक को 30 रोगी शैय्या वाला ग्राम चिकित्सालय बनाना।

शहरी विकास, आवास और पीने का पानी

शहरी विकास—पाँचवी योजना में शहरी विकास के लिए कुल 578·55 करोड रुपये रखा गया है। 252 करोड रुपये केन्द्रीय क्षेत्र में और 326 55 करोड रुपये राज्यो और केन्द्र शासित क्षेत्रो के लिए हैं। इसके मुकाबले चौथी योजना मे 708 करोड रुपये रखा गया था।

शहरी विकास परियोजनाओ मे अन्य बातो के अलावा बडे पैमाने पर भूमि अधिग्रहण और विकास का कार्यक्रम शामिल होगा। गन्दी बस्तियो के वातावरण के सुधार कार्यक्रम पर विशेष बल दिया जाएगा। अनुमान है कि लगभग 7 लाख गन्दी बस्ती-वासियो को लाभ पहुँचेगा।

आवास—पाँचवी योजना मे आवास पर कुल 4,670 करोड रुपए खर्च किया जाएगा। इसमे 580 16 करोड रुपये सरकारी क्षेत्र मे और 3,640 करोड रुपये निजी क्षेत्र मे होगा। इसके अलावा रेल, डाक तार आदि विभागो द्वारा 450 करोड रुपये और खर्च किया जाएगा। योजना के मुख्य उद्देश्य हैं—(1) वर्तमान मकानो की सुरक्षा और सभाल-सुधार, (2) भूमिहीनो को गाँवो म मकानो के लिए करीब 40 लाख प्लाट देने की व्यवस्था, (3) समाज के कुल दुर्बल वर्गों के लिए मकान बनाने के लिए सहायता देने की वर्तमान योजनाओ को जारी रखना, (4) ऐसी सस्थाओ या अभिकरणो जैसे कि आवास तथा शहरी विकास निगम को जारी निम्न आय और मध्य आय वर्ग के लोगो को सहायता देने की योजनाओ के लिए मदद जारी रखना, और (5) सस्ते इमारती सामान के विकास और अनुसधान को और तेज करना।

जलपूर्ति—इस क्षेत्र मे योजना के मुख्य उद्देश्य हैं—(1) 116 लाख समस्याग्रस्त गाँवो मे पीने के पानी की व्यवस्था करना, (2) शहरी इलाको मे

जलपूर्ति योजना जल्दी पूरी करना विशेषकर अधूरी योजनाएँ पूरी करना, (3) जिन इलाको मे सीवर व्यवस्था नही है, वहाँ ग्राम शौचालयो की जगह सफाई वाले शौचालय बनाना, (4) कूडा इकट्ठा करने और इसको फेंकने के आधुनिक तरीके अपनाने के लिए प्रोत्साहन।

रोजगार, श्रम-शक्ति और श्रमिक कल्याण

पाँचवी योजना मे कारीगरो के प्रशिक्षण, रोजगार सेवाओ और श्रमिक कल्याण कार्यक्रमो के लिए 57 करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। रोजगार नीति मे (1) वेतन पर रोजगार और (2) स्वय रोजगार सुविधाओ के विकास दोनो पर बल दिया जाएगा।

भारतीय श्रमिक सस्था का पुनर्गठन कर और इसका विस्तार कर राष्ट्रीय श्रमिक सस्था बनाई जाएगी। यह सस्था श्रमिको से सम्बद्ध मामलो मे अनुसधान के बारे मे समन्वय स्थापित करने वाली सस्था होगी।

समाज कल्याण

इस क्षेत्र मे कुल परिव्यय 229 करोड रुपये का है। इसमे से 200 करोड रुपये *केन्द्रीय क्षेत्र के लिए रखे गए हैं। योजना का लक्ष्य कल्याण और विकास* सेवाओ का समायोजन करना है और इसके लिए ये उपाय सोचे गए है-(क) समाज-कल्याण के विकास और रक्षा के कार्यक्रमो का विस्तार, (ख) दुर्बल वर्गों, विशेषकर बच्चो और स्त्रियो के लिए किए जाने वाले सामाजिक और आर्थिक आयोजनो मे समन्वय, (ग) रोजगार के कार्यक्रमो के जरिए कल्याण सेवाओ की वृद्धि, (घ) परिवारो को बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएँ मुहैया करना, और (ड) जिन स्त्रियो और बच्चो को सरक्षण की आवश्यकता है, उनके लिए कल्याण के कार्यक्रम और वृद्धो तथा अशक्तो के लिए सहायता।

पुनर्वास

विभिन्न प्रकार के विस्थापितो की समस्याएँ सुलझाने के लिए पाँचवी योजना मे अस्थायी रूप से 70 करोड रुपये खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

पाँचवीं योजना के कुछ प्रश्न चिह्न

देश के अर्थशास्त्रियो और विचारको ने पाँचवी योजना के दृष्टिकोण-पत्र और प्रारूप को गहराई से जाँचा और उसकी कुछ आधारभूत भ्रान्तियो तथा कमियो की ओर सकेत किया। डॉ ईश्वरदत्तसिंह ने अपने एक लेख 'पाँचवी योजना कुछ प्रश्न-चिह्न' के अन्तर्गत इन भ्रान्तियो की ओर अच्छा सकेत दिया। आर्थिक और राजनीतिक दोनो क्षेत्रो मे ऐसी शकाएँ प्रकट की गई कि पाँचवी योजना भी सम्भवत पिछली योजनाओ की तरह 'बात बडी और काम छोटा' वाली कहावत चरितार्थ करेगी। आलोचना के कुछ प्रमुख बिन्दु ये रहे हैं—

1. योजना मे प्रस्तावित व्यय के आधार पर प्राप्त किए जाने वाले भौतिक लक्ष्यो का सकेत किया गया है पर "बढती हुई कीमतो के कारण परिव्यय और

भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति के सम्बन्ध मे किए जा रहे आँकलन मृग-मरीचिका के सदृश दीख पडते है।" कीमतें जिस तेजी से बढ रही है, वह प्रस्तावित लक्ष्यो को निरर्थक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

2. योजना के मूल मे यह मान्यता निहित है कि गरीबी निवारण के लिए तीव्र दर से आर्थिक विकास आवश्यक है। योजना-काल मे 5 5 प्रतिशत वार्षिक विकास की दर का लक्ष्य रखा गया है। पिछले दो दशको मे विकास की दर लगभग 3·8 प्रतिशत रही है और विकास की दर का कम होना देश की गरीबी का एक बडा कारण रहा है। वास्तव मे, गरीबो को आधारभूत आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति के लिए 5 5 प्रतिशत विकास की दर (यदि प्राप्त भी हो जाए तो) अपर्याप्त दिखाई देती है। दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य योजना के अनुसार पाँचवी योजना मे कम-से-कम 6·2% विकास की दर होनी चाहिए थी।

3. योजना-प्रारूप मे आय की विषमताओ को घटाने की बात की गई, पर जब तक आर्थिक विकास की गति तीव्र न हो, सम्भव समानता के सिद्धान्त पर आधारित नीतियाँ भी परिस्थितियो मे बुनियादी परिवर्तन नहीं ला सकती। डॉ ईश्वरदत्तसिंह का तर्क है कि यदि विकास की दर मुश्किल से 5 5 प्रतिशत तक ही प्राप्त की गई और समानता के सिद्धान्त पर आधारित नीतियाँ भी परिस्थितियो मे परिवर्तन नही ला सकेंगी तो गरीबी-निवारण कैसे होगा? वास्तव मे 'गरीबी निवारण' का नारा देना और गरीबी निवारण के लिए कार्य करना दो अलग बातें हैं।

4 योजना-प्रारूप मे कीमत मजदूरी-आय नीति का सकेत है तथा इन तीनों मे एक उचित सतुलन बनाए रखने की बात कही गई है। व्यापार, वसूली और विक्रय के कार्यों मे सार्वजनिक क्षेत्र के हस्तक्षेप को बढाकर कीमतो मे स्थायित्व लाने की चर्चा सशोधित परिकल्पना मे है। एक राष्ट्रीय मजदूरी ढाँचा बनाने की भी बात की गई है। काले धन की मात्रा को भी घटाने का भी सकेत किया गया है। इस प्रकार ये विचार निश्चित रूप से अच्छे हैं, लेकिन प्रश्न व्यावहारिकता का है। व्यापार एव विक्रय के कार्य को सरकारी कर्मचारियो के हाथ मे देने से कीमतो का क्या हाल हो सकता है, कहना कठिन है। डॉ ईश्वरदत्तसिंह के शब्दो मे, 'सरकारी प्रशासन मे पलते हुए भ्रष्टाचार, कार्यकुशलता एव व्यापारिक अनुभवो की कमी और प्ररणा के अभाव वाले वातावरण में राजकीय व्यापार से सामाजिक कल्याण बढेगा, यह नही कहा जा सकता। समान राष्ट्रीय मजदूरी का प्रश्न भी अभी तो दिवा-स्वप्न सा ही लगता है। वैसे कानूनी तौर पर तो निम्नतम मजदूरी अधिनियम भी बहुत दिनो से लागू है, लेकिन बहुत से क्षेत्र इससे अछूते हैं। अभी तो इसका भी ठीक-ठीक ब्यौरा उपलब्ध नही है कि देश मे काला धन कितना है। सरकारी अफसरो और कर्मचारी की छत्र छाया मे ही काले धन का बहुत कुछ अर्जन एव सवर्द्धन होता है। यदि काले धन पर अकुश लगाना है तो सरकारी तन्त्र पर स्पष्ट और कडे अकुश की आवश्यकता है।"

5. बेकारी निवारण के प्रश्न पर योजनाकारों का स्वर बहुत ऊँचा नहीं दिखाई पड़ता। कहा गया है कि गैर-कृषि क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार के अवसर देने के प्रयास होंगे। लेकिन बहुतों को स्वयं अपने को साकार बनाने के लिए लघु उद्योगों, कृषि, सेवाकार्य, निर्माण-कार्य आदि में अवसर ढूंढने होंगे। शिक्षित बेकारों के बारे में योजनाकार निराश लगते हैं कि सार्वजनिक सेवाओं में तो विश्वविद्यालयों और कॉलिजों से नए निकलने वालों को भी जगह देना मुश्किल होगा। वर्तमान बेरोजगारों का तो प्रश्न ही अलग है।

6 13 जनवरी, 1974 के साप्ताहिक दिनमान में रामावतार चौधरी के लेख 'पांचवी योजना के लक्ष्य कब पूरे होंगे?' में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की तर्कसंगत रूप में आलोचना की गई। योजना आयोग की गणनाओं के अनुसार देश की लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के अत्यन्त खौफनाक दायरों में है, कुछ अन्य अनुमानों के अनुसार यह प्रतिशत 50 से 55 के बीच है। गरीबी की सरकारी माप को हम सही मान भी लें तो करीब 17 करोड़ लोगों को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ प्रदान करनी होंगी। यह निश्चय ही एक दुष्कर कार्य है। पिछले बीस वर्षों म आर्थिक विषमता सूचक अंकों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए पहले तीन योजना कालों म यह सूचक अंक क्रमश 0 35, 0 30 तथा 0 30 रहा है। शहरी क्षेत्र के लिए यह 0 38 (पहली योजना), 0 36 (दूसरी योजना) व 0 36 (तीसरी योजना) था। इन तथ्यों से जाहिर है कि सामाजिक न्याय के अनवरत नाप के बावजूद असमानता में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। पांचवी योजना काल के दौरान आय के पुनर्वितरण के कार्यक्रम इस कल्पना पर आधारित हैं कि यह विषमता सूचक अंक 0 32 (1973-74) से घट कर 0 20 (1978-79) हो जाएगा। अब तक की उपलब्धियों की पृष्ठभूमि में तो यह असम्भव ही लगता है। 18 करोड़ लोगों की रोजी-रोटी की जरूरतें केवल राष्ट्रीय आय के संकल्पित अतिरिक्त उत्पादन से ही नहीं पूरी हो पाएँगी। इसके लिए समाज के उच्चतम 10 प्रतिशत लोगों को अपने विलासी उपभोग में भारी कमी करनी पड़ेगी। यह सत्ताशील वर्ग ऐसा होने देगा, इसमें सन्देह है।

7 श्री चौधरी के अनुसार ही, योजना के प्रारूप में सरकारी खर्च में भारी कमी करने की बात भी की गई है। यह कहा गया है कि सार्वजनिक उपभोग व्यय केवल 7 प्रतिशत की सालाना रफ्तार से बढ़ेगा पर पिछले दशक का अनुभव तो कोई और ही कहानी कहता है। सार्वजनिक उपभोग व्यय इस दौरान 15 प्रतिशत की वार्षिक की गति से बढ़ रहा है।

8. कृषि की पाँच प्रतिशत सालाना बढ़ोत्तरी के लिए प्रकृति की कृपा पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ेगा। पिछले बीस वर्षों में कृषि उत्पादन तीन प्रतिशत सालाना से अधिक नहीं बढ़ा है।

9 प्रारूप के अनुसार यदि आय के पुनर्वितरण का क्रम सम्भव हो गया तो भी 1978-79 के अन्त तक 8 करोड़ 64 लाख लोग गरीबी की सीमा से नीचे ही रहेंगे। गरीबी समाप्त नहीं हो पाएगी।

10. योजना प्रारूप मे आयात माँगो का अल्पानुमान किया गया है। कच्चे माल, मशीनी उपकरण तथा विद्युत् और परिवहन उपकरणो की आयात माल अल्पानुमानित हैं। पुनश्च, भारतीय आयातो का ढाँचा ऐसा है कि पाँचवी योजना के पाँच वर्षों मे आयातो मे केवल 1·5 प्रतिशत की कमी होने की आशा की जा सकती है। निर्यातो की 7 5 प्रतिशत वृद्धि-दर भी कल्पनातीत लगती है। इसके अतिरिक्त निर्यातो को अन्तर्राष्ट्रीय मण्डियो मे प्रतिस्पर्द्धा बनाने की बात दबकर रह गई है। कई बार तो निर्यात की जाने वाली वस्तुओ की कीमत उनके निर्माण हेतु आयात किए गए कच्चे माल की लागत से कम होती है। इस प्रक्रिया मे हम विदेशी मुद्रा अर्जित करने की बजाए खोते हैं।

11 योजना मे जो विपुल राशि सरकार को देश के अन्दर जुटानी होगी, उसमे करो का आश्रय लिया जाना बडा असन्तोषजनक होगा। रिजर्व बैंक की 'रिपोर्ट आन कैरेन्सी एण्ड फाइनेन्स' मे कहा गया कि आय एव निगम करो को पुन बढाने से करो की चोरी को प्रश्रय मिलेगा। रिपोर्ट के अनुसार देश मे अप्रत्यक्ष करो को लगाने की अब्र कोई गुंजाइश नही रह गई है। उन्हे बढाने से सरकार को धनराशि घटती हुई दर पर प्राप्त होगी। करो को बढाने से एक ओर तो लोगो पर करो का बेतहाशा बोझ बढेगा और दूसरी ओर कीमतो का भी बोझ बढगा क्योकि घाटे की वित्त-व्यवस्था अपनानी होगी।

कुछ सुझाव

यद्यपि योजना मे अनेक भ्रान्तियाँ एव कमियाँ हैं तथापि पिछली योजनाओ की अपेक्षा यह अधिक दूरदर्शी है, इसमे सन्देह नही और फिर सरकार इस बात को बारम्बार दोहरा रही है कि इस बार योजना के क्रियान्वयन मे पोल नही की जाएगी। फिर भी, योजना की सफलता के मार्ग मे उपस्थित बाधाओ का तो निराकरण करना ही होगा। इस दृष्टि से निम्नलिखित उपाय करने होगे—

1. सरकार मूल्यो को नियन्त्रित करके मूल्य-स्थिरता प्रदान करने की दिशा मे आवश्यक कदम उठाए।

2 जनसख्या वृद्धि पर प्रभावशाली ढग से रोक लगाई जाए और यदि उचित हो तो कानूनी व्यवस्था का भी आश्रय लिया जाए।

3 मजदूरी तो दिन-प्रतिदिन बढ रही है लेकिन उसके अनुपात मे उत्पादन बहुत कम हो रहा है। अत सरकार को पूर्ण सजग रहना होगा कि देश मे औद्योगिक हडतालें न हो। यह उचित होगा कि सरकार पाँच वर्षों के लिए हडतालो को अवैधानिक ठहरा दे।

4. नौकरशाही की सकीर्ण मनोवृत्ति भी सार्वजनिक क्षेत्र की असफलता का एक प्रमुख कारण रही है। सरकार नौकरशाही के इस दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास करे कि केवल नियम और स्वीकृति के पालन से ही कर्त्तव्य की इतिश्री नही हो जाती।

5 योजना की सफलता के मार्ग मे एक प्रमुख बाधा यह भी है कि राज्य

केन्द्रीय सहायता की माँग मे एक दूसरे से प्रतियोगिता मे फँसे हैं । आँकडो को बढा-चढा कर पेश करके केन्द्र से अधिकाधिक सहायता की माँग की जाती है । केन्द्र को चाहिए कि वह राज्यो की इस मनोवृत्ति पर अकुश लगाए । राज्य-सरकारो को भी चाहिए कि वे सयम से काम लें और योजना के लाभकारी ढग से क्रियान्वयन पर बल दें ।

6 एकाधिकारी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करना भी योजना की सफलता की दिशा मे और आर्थिक न्याय की स्थापना की दिशा मे एक उपयोगी कदम होगा ।

7. खाद्यान्नो का पूर्ण रूप से राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए ।

वास्तव मे कोई भी योजना तभी सफल हो सकती है जब देश मे उपलब्ध साधनो का समुचित विदोहन और उपयोग किया जाए । योजना के निर्धारित लक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब जनता केन्द्रीय शासन, राज्य प्रशासन और निजी क्षेत्र परस्पर सहयोग से काम करें । 26 जून 1975 को राष्ट्रीय आपात् की उद्घोषणा और 1 जुलाई, 1975 से 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम लागू करने के बाद से देश मे बहुमुखी प्रगति और अनुशासन का एक नया वातावरण बना है और एक वर्ष के अल्पकाल मे ही उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की गई है । पाँचवी योजना के मसौदे पर पुनर्विचार कर उसे अन्तिम रूप दिया जा रहा है ।

1974-75 और 1975-76 के लिए वार्षिक योजनाएँ
(Annual Plans for 1974-75 and 1975-76)

पाँचवी पचवर्षीय योजना के अग के रूप मे 1974-75 के लिए जो वार्षिक योजना बनाई गई, उसके परिव्यय के रूप मे 4,844 करोड रु की राशि रखी गई । योजना का मुख्य उद्देश्य था—देश के भीतर और बाहर से उठते हुए उन दबावो का सामना करना, जो हमारी अर्थ-व्यवस्था को आघात पहुँचा रहे थे । बढती हुई महँगाई और मुद्रा स्फीति पर प्रभावी अकुश रखने के लिए योजनाकाल मे कुछ कठोर कदम उठाए गए । इस वार्षिक योजना मे इस्पात, विद्युत् उत्पादन, यातायात और कोयला-उत्पादन क्षेत्रो पर विशेष ध्यान दिया गया । अन्तर्राष्ट्रीय तेल स्थिति को ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक भी था । अधिक निर्धन व्यक्तियो की न्यूनतम आवश्यकताओ को पूर्ण करने हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम की पूर्ति की दिशा मे भी प्रभावशाली कदम उठाए गए । परिणामस्वरूप, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, पेय-जल, गन्दी बस्तियो की सफाई, ग्रामीण सडको तथा विद्युतीकरण की स्थिति म पर्याप्त सुधार हुआ ।

सन् 1975-76 की वार्षिक योजना के लिए परिव्यय की राशि 5,978 करोड रु रखी गई । इस योजना का मुख्य लक्ष्य स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास को गति देना था । विकास रणनीति की व्यूह रचना करते समय वितरणात्मक स्थितियो पर विशेष ध्यान दिया गया । इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि सभी क्षेत्रो मे उपलब्ध क्षमताओ का पूर्ण उपयोग हो, आयात मे बचत और निर्यात में वृद्धि की जाए । उन परियोजनाओ को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई, जो दीर्घकालीन परियोजनाओं की अपेक्षा अल्पकाल मे ही लाभ देने वाली हो । सन् 1975-76 की

वार्षिक योजना मे विभिन्न मदो पर परिव्यय की राशियाँ निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट है।

वार्षिक योजना (1975–76) के ग्रन्तर्गत विभिन्न मदो के लिए परिव्यय

(करोड रु० मे)

	विकास की मद	केन्द्रीय और केन्द्र प्रस्तावित योजनाएँ	राज्य	संघीय-क्षेत्र	योग
1	कृषि ग्रौर सम्बद्ध क्षेत्र	278 56	400 26	12 59	691 41
2	सिंचाई ग्रौर बाढ नियन्त्रण	11 21	453 18	3 83	468 32
3	विद्युत्	119 01	966 41	16 16	1101·58
4.	ग्रामीण ग्रौर लघु-उद्योग	40 49	30 73	2 67	73 89
5	उद्योग ग्रौर खनिज	1534 19	109 35	0 48	1644 02
6	यातायात ग्रौर सचार	835 08	190 43	14 93	1040 44
7.	शिक्षा	92 07	110 37	11 65	184 09
8	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी	71 27	—	—	71 27
9	स्वास्थ्य	44 09	45·80	5 26	95 15
10	परिवार नियोजन	63 20	—	—	63 20
11	पोषण	3 95	14 95	0 46	19 36
12	जल प्रदाय	1 03	123 28	13 51	137 82
13.	ग्रावास ग्रौर नगर विकास	34 59	98 64	8 93	142 16
14	पिछडे वर्गो का कल्याण	17 00	31 34	0 79	49 13
15	समाज-कल्याण	11 00	2 38	0 40	13 78
16	श्रम ग्रौर श्रमिक-कल्याण	1 51	4 88	0 47	6 86
17	ग्रन्य	22 26	44 98	3 97	71 21
18	रोजगार-वृद्धि कार्यक्रम	10 00	44 50	—	54 50
19	पर्वतीय व ग्रादिम जाति क्षेत्र	—	40 00	—	40 00
20	उत्तरी पूर्वी परिषद्	—	—	—	10 00
	योग	3,106 51	2,711 48	96 10	5 978 09

1976–77 के लिए वार्षिक योजना का दस्तावेज[1]

"26 मई को ससद् के समक्ष जो वार्षिक योजना का दस्तावेज रखा गया, उसमे पूर्वापेक्षा ग्रधिक ग्रार्थिक विकास दर के साथ साथ 11 करोड 60 लाख टन ग्रनाज के उत्पादन तथा ग्रौद्योगिक शान्ति की ग्राशा व्यक्त की गई है। योजना ग्रायोग के ग्रनुसार, यदि मूल्य स्थिर रहे, तो वार्षिक योजना से सार्वजनिक क्षेत्र मे तीव्र विकास होगा। कुल योजना का लक्ष्य 7,852 करोड रुपये रखा गया है। सार्वजनिक

1 सन् 1976-77 की वार्षिक योजना का दस्तावेज (दिनमान 6-12 जून 1976)—योजना मन्त्री डॉ शकर घोष।

क्षेत्र के अतिरिक्त निजी-क्षेत्र मे भी तीव्र विकास करने के सम्बन्ध मे उठाए गए कदमो को महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है और यह आशा की जाती है कि पिछले दशक मे अर्थतन्त्र मे जिस दर से पूँजी लगाई गई थी अब अपेक्षाकृत अधिक दर से लग सकती है। उद्योग मे इस प्रकार का प्रस्तावित विकास मूल्यो के वर्तमान ढाँचे मे कोई बाधा उत्पन्न नही करेगा, क्योकि देश मे पर्याप्त अन्न का भण्डार बन गया है और विदेशी मुद्रा की स्थिति भी सन्तोषजनक है। मूल्यो को स्थिर रखने हेतु आवश्यक वस्तुओ की उपलब्धि मे काफी सुधार आ गया है तथा उद्योगो मे जाने वाले कच्चे माल जैसे लोहा, कोयला, बिजली ईंधन तथा परिवहन आदि तत्त्वो मे पर्याप्त सुधार आ गया है, इनके अतिरिक्त, सरकार द्वारा उठाए गए वित्तीय कदम मुद्रा स्फीति रोकने के लिए पर्याप्त समझे जाते हैं।

ससद् मे योजना मन्त्री डॉ. शकर घोष द्वारा रखे गए दस्तावेज के अनुसार आपात्-स्थिति तथा बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के कारण औद्योगिक शान्ति पैदा हो गई है। वर्तमान वार्षिक योजना के लिए पूँजी देश मे आर्थिक स्रोतो के द्वारा ही प्राप्त की गई है। पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में जो अनुमान लगाया गया था, प्रथम तीन वर्षों मे स्थानीय स्रोतो से प्राप्त पूँजी कर दर उससे काफी अधिक रही है। ऐसा अनुमान है कि केन्द्रीय और राज्य-सरकारो के सरकारी उद्यम से 1974-75 और 1975-76 के बीच 2,450 करोड रु. वर्तमान वर्ष के लिए और 6 850 करोड रु पच-वर्षीय योजना की पूरी अवधि के लिए प्राप्त होगे। वार्षिक योजना मे बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के लिए कुल 2,337 करोड रु रखे गए है।

इस सन्दर्भ मे विभिन्न मुद्दो पर व्यय का आवण्टन इस प्रकार है—भूमि सुधार 37 26 करोड, छोटी सिचाई 149 04 करोड, बृहद् और मध्यम सिचाई 613 63 करोड, सहकारिता 57 52 करोड, विद्युत् 1289 69 करोड, हाथकरघा-उद्योग 11 70 करोड, भूमिहीनो के लिए भवन-निर्माण 9 97 करोड, नव-उद्यमी योजनाएँ 95 लाख गरीब बच्चो के लिए मुफ्त किताबें कागज आदि और पुस्तक बैंक 4 21 करोड रुपया।

इसके अतिरिक्त, राज्यो और केन्द्र शासित क्षेत्रो की योजना से 163 करोड से अधिक रुपये निश्चित किए गए हैं। दस्तावेज मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को सामान्य आयोजना का विकल्प नही बनाया जा रहा है, बल्कि यह उसका पूरक है।

देश मे आर्थिक-विकास और मूल्य-वृद्धि पर तथा आवश्यक वस्तुओ की उपलब्धि हेतु जो कदम उठाए गए है, उनमे आर्थिक अपराधियो, कालाबाजारियो, जमाखोरो और तस्करो का दमन, सभी प्रकार के माल का निश्चित मूल्य घोषित करने की कानूनी व्यवस्था आदि भी शामिल है। इसके साथ-साथ 1975-76 मे देश मे कृषि-उत्पादन मे काफी वृद्धि ने एक अच्छा वातावरण पैदा कर दिया। इस सन्दर्भ मे मूल्य-वृद्धि पर रोकथाम का हवाला देते हुए बताया गया है कि इस वर्ष थोक मूल्य निर्देशांक मे 9 1% की गिरावट आ गई। औद्योगिक कार्यकर्त्ताओ के लिए

'अखिल भारतीय उपभोक्ता-मूल्य-सूचकाँक मे गत वर्ष जून से इस वर्ष के बीच 12 8 प्रतिशत की कमी हुई और कृषि-मजदूरो के लिए 22·1% की।

खरीफ की अच्छी फसल के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा मे अनाज की वसूली का कार्यक्रम इस वर्ष सफलतापूर्वक चल पडा है। 7 मई तक खरीफ की फसल का 66 करोड 70 लाख टन वसूल किया गया, जबकि इसी अवधि मे गत वर्ष 34 करोड 50 लाख टन ही खरीदा जा सका था। अर्थात् देश मे अन्न का पर्याप्त भण्डार स्थापित हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्र म भूमि-सुधार पर बल दिया जा रहा है, और ग्रामो में अधिक रोजगार उत्पन्न करने की योजनाओ पर कार्य हो रहा है। इस सम्बन्ध मे, राज्यो मे कहा जा रहा है कि भूमि सुधार और अतिरिक्त भूमि के बटवारे का कार्य तेज करें। कृषि क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए सिचाई के विकास पर बल दिया जा रहा है। 1975–76 म 25 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त-भूमि को सिचाई के अन्तर्गत लाया गया। अब 50 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त-भूमि की सिचाई योजना पर अमल हो रहा है।

विभिन्न औद्योगिक उत्पादनो मे उत्साहवर्द्धक वृद्धि रही है। इस सन्दर्भ मे कोयला, इस्पात, अल्युमीनियम, नाइट्रोजन उवरक, सीमेट तथा विद्युत् महत्त्वपूर्ण है। सावजनिक क्षेत्र के उद्यागो ने अच्छी प्रगति दर्शायी है। इसमे राष्ट्रीय टेक्सटाइल कारपोरेशन क कारखाने भी सम्मिलित हैं। रेलो, बन्दरगाहो के कुशल कार्य के कारण अब व्यापार के प्रवाह म भी गति आ गई है। अब रेलमार्गों से पूर्वापेक्षा 12% अधिक वैगन गुजरते है। केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय सडक परमिट जारी करन की नीति अपनाई है। अभी तक 5300 परमिट दिए जा चुके हैं।

औद्योगिक वातावरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है, परिणामस्वरूप, उत्पादन बढ गया है। मजदूरो को उद्यागो में अपनत्व का अहसास दिलाने के लिए मजदूरो की सहूलियत का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जा रहा है ताकि उद्योगो के सचालन मे भी उनका पूरा-पूरा हिस्सा हो।

पिछडे क्षेत्रो और वर्गों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे 95 4 करोड रुपये पिछडे वर्गों के आर्थिक विकास हेतु निश्चित किए गए हैं। इनमे जनजाति सम्बन्धी छोटी योजनाओ पर 40 करोड का व्यय भी शामिल है। 4 करोड 14 लाख अनुसूचित वग और जनजातियो के छात्रो को इस योजना से लाभ पहुँचने वाला है। इसके अन्तर्गत उन्हे विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियाँ मिलगी। इस पर 14 करोड रुपये व्यय होंगे। राज्यो और केन्द्र शासित क्षेत्रो को इसी कार्य के लिए 39 करोड 49 लाख रुपये दिए जा रहे हैं। प्रोफेसर दाँतवाला की अध्यक्षता मे एक समिति का गठन किया गया है जो सम्पूर्ण देश मे विभिन्न ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमो के सामाजिक आर्थिक प्रभावो का अध्ययन करेगी।

यद्यपि बल इसी बात पर दिया जा रहा है कि योजनाओ के लिए घरेलू स्रोतो से धन प्राप्त किया जाए, तथापि विकासशील देश होने के नाते विश्व बैंक की सहायता से भी बहुत सी योजनाएँ और विकास-सम्बन्धी कार्यों को चलाने की आशा

करना अस्वाभाविक नहीं है। इस वर्ष भारत मे आर्थिक विकास की अभूतपूर्व प्रगति को देखते हुए विदेशो मे भी भारत को आर्थिक सहायता देने के बारे मे अच्छा वातावरण बन रहा है। भारत को सहायता देने वाले सहयोगी सगठन ने 1976-77 के लिए 170 करोड डॉलर देने का निश्चय किया है। 13 सदस्यीय सहयोगी समिति के सदस्यो ने कुल 100 करोड डॉलर देने की घोषणा की है, जबकि शेष 70 करोड डॉलर विश्व बैंक ने देने का वायदा किया है। यद्यपि यह गत वर्ष की राशि से 20 करोड डॉलर कम है, तथापि वास्तव में सभी देशो ने गत वर्ष की अपेक्षा अपना हिस्सा बढाया है। किन्तु अमेरिकी डॉलर की मजबूत स्थिति के कारण डॉलरो मे यह कुल राशि कम हो जाएगी। इस सम्बन्ध म यह महत्त्वपूर्ण है कि अधिसख्य देशो ने किसी न किसी रूप मे अधिक रियायतें देने की घोषणा की है। उदाहरणार्थ, बेल्जियम ने ऋण पर ब्याज 2 से 1% कर दिया है। पश्चिम जर्मनी का कर्जा 10 वर्षों की ब्याज मुक्त अवधि के आधार पर दिया जा रहा है जबकि इसकी अदायगी की अवधि 50 वर्ष है। फ्रांस ने सहायता की राशि मे 8% की वृद्धि की है। पहले के समान ही ब्रिटेन, डेनमार्क और नार्वे की सहायता पूर्णरूप से अनुदान के रूप मे है। स्वीडन ने प्रथम बार अन्य स्कडेनेवियाई देशो का अनुसरण किया है। जापान ने सहायता की राशि मे कुछ वृद्धि की है। यद्यपि अमेरिका ने इस प्रकार की कोई वृद्धि की घोषणा नही की है, तथापि उसने भारत के साथ पी एल 480 का एक समझौता अवश्य किया है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय समूह ने आर्थिक क्षेत्र मे प्रगति और मूल्य वृद्धि की रोकथाम की सराहना करते हुए यह आशा व्यक्त की है कि भारत सरकार अपने प्राथमिकता वाले क्षेत्रो, जैसे—निर्यात, कृषि और ऊर्जा पर अधिक ध्यान देती रहेगी तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रम को आगे बढायेगी।

इसने इस बात पर जोर दिया है कि भारतीय आर्थिक विकास मे कमजोर वर्गों का सहयोग आवश्यक है। 13 राष्ट्रो की इस बैठक मे सभी देशो ने भारत के बारे मे अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। भारतीय प्रतिनिधि श्री एम जी कौल ने इस प्रश्नोत्तर को मित्रतापूर्ण बताया। विश्व बैंक के उपाध्यक्ष श्री अर्नेस्ट स्टन ने इस बात पर सन्तोष व्यक्त किया कि आर्थिक क्षेत्र मे भारतीय कार्यक्रमो की सफलता के प्रसग मे सभी सदस्य देश एकमत थ।

आज का आयोजन

1976 77 की वार्षिक योजना, जिसके मसौदे का विवरण ऊपर दिया जा चुका है, अर्थव्यवस्था म हुए सुधारो की पृष्ठभूमि मे तैयार की गई है और इसका मूल मुद्दा स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ सम्वृद्धि को प्रोत्साहन देता है। योजना मन्त्री डॉ शकर घोष ने योजना पत्रिका के 7 जुलाई, 1976 के अक म प्रकाशित अपने लेख 'आज का आयोजन' मे योजनाओ की रणनीति, 1976 77 की योजना की सम्भावित सफलताओ और 1975-76 की उपलब्धियो का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस लेख के आधार पर हम सुगमतापूर्वक यह अनुमान लगा सकते

हैं कि पाँचवी योजना के शेष वर्षों में आयोजन के प्रति सरकार की नीति क्या होगी। अत उपयुक्त होगा कि हम, कुछ पुनरावृत्ति के दोष का खतरा उठाकर भी, डॉ घोष के इस लेख का अवलोकन करें।

भारत ने नियोजित आर्थिक-विकास के 25 वर्ष पूरे कर लिए हैं। सन 1951 मे हमारी प्रथम पचवर्षीय योजना प्रारम्भ हुई थी। तब से चार पचवर्षीय योजनाएँ और तीन वार्षिक योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं। पाँचवी पचवर्षीय योजना का तीसरा वर्ष चल रहा है। ये सभी योजनाएँ निरन्तर विकास-प्रक्रिया की कडी हैं। ये मूलभूत सामाजिक आर्थिक नीतियो मे विकास क्रम की एक तस्वीर पेश करती हैं। योजना के प्रत्येक चरण में, बदलती स्थितियो नये अनुभवो व मूल्यांकन के बाद परिवर्तन हुए हैं।

प्रत्येक पचवर्षीय योजना एक दूरगामी परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखकर तैयार की गई है। प्रथम योजना 1951 मे 1981 तक 30 वर्षों के आर्थिक विकास के आधारभूत रूप मे बनाई गई थी। द्वितीय योजना का आयाम 1976 तक का था और तृतीय योजना 1961-76 की 15 वर्षीय योजना के प्रथम चरण के रूप मे बनाई गई थी।

इसके पश्चात् 1965 के युद्ध मे सहायता देने वाले देशो ने सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस कारण 1965 66 तथा 1966-67 की फसले खराब हो गई। उन स्थितियो में नियमित पचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन (1966 69) वार्षिक योजनाएँ बनाई गईं। उसके बाद ही अगली पचवर्षीय योजना प्रारम्भ करने की अनुकूल स्थितियाँ उभर सकी।

आजकल पाँचवी पचवर्षीय योजना का तीसरा वर्ष चल रहा है। इस सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि देश 1971 72 से ही आर्थिक विषमता के दौर से गुजर रहा है। बगलादेश की मुक्ति से पूर्व वहाँ से बहुत अधिक शरणार्थी भारत आए, फिर देश के बडे भागो मे अनावृष्टि और बाढ का प्रकोप आया। खनिज पेट्रोलियम के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य एकाएक आसमान छूने लगे। साथ ही अनेक वस्तुओ के राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यो मे भी खूब उछाल आया। तस्करी, काला बाजारी, कानून व व्यवस्था के प्रति घटती आस्था से स्थिति और भी बिगड गई।

लेकिन आपात्-स्थिति लागू होने और प्रधानमन्त्री द्वारा बीस-सूत्री आर्थिक-कार्यक्रम की घोषणा से आर्थिक तथा राजनीतिक अनुशासनहीनता पर अकुश लग गया। देश की व्यवस्थित प्रगति के लिए उचित परिस्थितियाँ बन गईं। 1975-76 मे सबसे उल्लेखनीय घटना मुद्रास्फीति पर काबू पाना था। अक्तूबर, 1974 से मूल्यो मे गिरावट का रुख आया था, वह 1975-76 के दौरान भी बना रहा और अक्तूबर, 1975 के बाद से गिरावट-दर और भी तेज हो गई। मार्च, 1976 के अन्त मे थोक-मूल्य निर्देशांक 282 9 था जो पूर्व वर्ष की अपेक्षा 7 9% और सितम्बर, 1974 की अपेक्षा 14 4% कम था। 1975-76 का औसत निर्देशांक 1974-75 की अपेक्षा 3 3% कम था। राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सन्दर्भ मे मुद्रास्फीति का बढाव उलट जाना कोई छोटी उपलब्धि नही।

1974 के मध्य मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण हेतु कुछ कदम उठाए गए थे। आपात् स्थिति की घोषणा के पश्चात् कुछ नए कदमो की घोषणा की गई, ताकि मूल्य-स्थिरता बनी रहे। ये निम्नलिखित थे—कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, और तस्करो के विरुद्ध जेहाद, काले धन के उपयोग पर अकुश, व्यापारियो के लिए कुछ अनिवार्य वस्तुओ की मूल्य-सूची टांगना और स्टॉक की स्थिति बताना कानूनन अनिवार्य किया जाना, चीनी, वनस्पति, सीमेंट, कागज, जैसे उद्योगो मे सोल सेलिंग एजेन्सी प्रणाली की समाप्ति आदि। साथ ही सरकार ने जखीरेबाजो के विरुद्ध विस्तृत पैमाने पर अभियान चलाया। इससे व्यापारी वर्ग और उपभोक्ता वर्ग दोनो की मनोवृत्ति बदली है।

आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओ की सार्वजनिक-वितरण-प्रणाली को और भी मजबूत किया गया है ताकि गाँवो, पहाडो और कमी वाले तटीय क्षेत्रो मे रहने वाले समाज क कमजोर वर्गो के व्यक्तियो व छात्रो को लाभ पहुँचे। वितरण-प्रणाली मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की भूमिका बढी है। नागरिक आपूर्ति विभाग कुछ विशेष अनिवार्य वस्तुओ के उत्पादन, मूल्य और आपूर्ति-व्यवस्था की देखरेख कर रहा है। दिल्ली व नैनीताल म एक मॉडल योजना' प्रारम्भ की गई है, जिसे बाद मे अन्य स्थानो पर भी लागू किया जाएगा।

रबी और खरीफ फसलो के वसूली मूल्य गत वर्ष जितने ही रखे गए। ये स्थिर-मूल्य-नीति के महत्वपूर्ण मुद्दे है। साथ ही, सरकार यह भी चाहती है कि कृषको को उनकी मेहनत का उचित फल मिले। इसलिए रबी की, जौ व चने की फसलो के लिए भी समर्थन दिया गया। ईख, पटसन और नियन्त्रित कपडे का मूल्य भी अपरिवर्तित रहे। इसके अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न व खाद्य तेलो के आयात की भी व्यवस्था की गई, ताकि सुरक्षित भण्डार बनाकर उन वस्तुओ की उपलब्धि बढाई जा सके।

सन् 1976-77 की वार्षिक योजना, अर्थ-व्यवस्था मे हुए इन सुधारो की पृष्ठभूमि मे तैयार की गई है। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि योजना व्यय मे वृद्धि से मुद्रास्फीति को प्रोत्साहन न मिले।

इस वार्षिक योजना का मूल मुद्दा, स्थिरता और सामाजिक न्याय के साथ सम्वृद्धि को प्रोत्साहन देना है। इसके लिए 78 अरब 52 करोड रुपयो की व्यवस्था की गई है जो गत वर्ष की अपेक्षा 31 4% अधिक है। इसमे कृषि, सिंचाई, ऊर्जा, उद्योगो और खनिज-क्षेत्रो के लिए विशेष व्यवस्था है। ये अर्थ-व्यवस्था के आधारभूत क्षेत्र हैं। कृषि व सम्बद्ध सेवाओ पर पूर्व वर्ष के 6 अरब 91 करोड 41 लाख रुपयो की अपेक्षा 8 अरब 96 करोड 22 लाख रुपयो, सिंचाई व बाढ नियन्त्रण पर 4 अरब 68 करोड 22 लाख रुपयो की अपेक्षा 6 अरब 86 करोड 79 लाख रुपयो और ऊर्जा पर 11 अरब 1 करोड 58 लाख रुपयो की अपेक्षा 14 अरब 53 करोड़ 40 लाख रुपयो के परिव्यय की व्यवस्था की गई है।

सन् 1976–77 मे खाद्यान्न 11 करोड 60 लाख टन, ईख 15 करोड़ टन,

कपास 75 लाख गाँठें (प्रत्येक 170 कि.ग्रा की), पटसन व सन 65 लाख गाँठें (प्रत्येक 180 कि ग्रा. की) का उपज लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यदि मौसम गत वर्ष के समान ही अनुकूल रहा, तो सम्भव है, उत्पादन लक्ष्य से भी अधिक हो। इसके लिए यह नीति तय की गई है कि उर्वरकों की खपत बढ़े, सिंचाई के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़े, अधिक उपज देने वाली किस्मों को अधिक विस्तृत पैमाने पर उगाया जाए और सरक्षण के उन्नत तरीके अपनाए जाएँ।

छोटी, मँझली व बड़ी सिंचाई योजनाओं से 20 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि मे सिंचाई-व्यवस्था की जाएगी। 1975 मे 40 जिलो मे दालो का सघन विकास-कार्यक्रम चल रहा है। इसके अतिरिक्त तिलहन, कपास, पटसन आदि प्रमुख नकदी फसलो के साथ-साथ, चीनी मिलो के आस पास के क्षेत्र मे गन्ना विकास का कार्यक्रम भी तेज किया जाएगा।

छोटे व सीमान्त-किसानो, विशेष रूप से अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो के, की उत्पादकता बढाने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके लिए विभिन्न विकास कार्यों पर 93 करोड 83 लाख रु व्यय किए जाएँगे।

उद्योगो व खनिजो के लिए गत वर्ष, जहाँ 16 अरब 44 करोड 2 लाख रुपये व्यय किए थे, वहाँ इस वर्ष 21 अरब 85 करोड 34 लाख रु की व्यवस्था की गई है।

औद्योगिक विकास के तेज होने के आसार है। इस्पात कोयला सीमेंट, ऊर्जा व यातायात जैसे उपादानो मे पूर्वापेक्षा सुधार आया है। स्थिति के और भी सुधरने की आशा है। 1976-77 मे विद्युत् उत्पादन की स्थापित क्षमता मे 25 लाख किलोवाट की वृद्धि होने की सम्भावना है। रेलो मे भी पूरी तैयारी है कि गत वर्ष की 21 करोड 40 लाख टन माल ढुलाई की अपेक्षा इस वर्ष 22 करोड 50 लाख टन माल की ढुलाई का लक्ष्य पूरा किया जाए। इन सबसे यह आशा बढती है कि इस वर्ष आर्थिक वृद्धि की दर गत वर्ष की अपेक्षा अधिक रहेगी।

इस वार्षिक योजना मे बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के अनेक मुद्दो को विशेष महत्त्व मिला है। इन कार्यक्रमो को वर्तमान योजनाओ मे समाहित करने के प्रयास किए गए हैं। बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम से सम्बद्ध विभिन्न योजनाओ के लिए 1 अरब 63 करोड 71 लाख रु रखे गए हैं। हमारी योजना-नीति मे खाद्य व कृषि क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण है। खाद्यान्न की उपज व वितरण, स्वावलम्बी होने के लक्ष्य से अनिवार्यत जुड़े है और आय व रोजगार के वांछनीय स्तर जुड़े हैं हमारे पुनर्वितरण के लक्ष्यो से।

वर्तमान योजना मे इन क्षेत्रो पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। बडी, मझली व छोटी सिंचाई योजनाओ मे हर मामले की जाँच करके खर्च की स्वीकृति दी जा रही है, ताकि चालू योजनाएँ शीघ्रता से पूरी की जा सके। भूगत जल के अन्वेषण व उपयोग पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। वर्तमान स्थिति मे ऊर्जा के अन्य स्रोतो को ढूँढना राष्ट्रीय आयोजना का अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके लिए कोयला क्षेत्र मे और अधिक पूँजी लगानी होगी तथा इस क्षेत्र का समन्वित विकास

करना होगा। साथ ही पैट्रोलियम की खपत घटानी होगी। यह उद्देश्य पैट्रोलियम का विकल्प ढूंढ कर, आर्थिक उपाय अपनाकर और देश मे पैट्रोलियम के बढ़े हुए उत्पादन द्वारा प्राप्त करना होगा।

आयोजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राज्य व उप क्षेत्रीय स्तर पर आयोजना तन्त्र को सुदृढ किया जाए और राष्ट्रीय व प्रादेशिक योजनाओ ने निर्दिष्ट कृषि-नीतियो को ध्यान मे रखते हुए, फसलो की योजना पर तथा कृषि पर आधारित क्षेत्रो पर ध्यान दिया जाए। भारत मे रोजगार देने की योजनाओ को अन्य योजनाओ से सम्बद्ध करना होगा तथा यह भी ध्यान रखना होगा कि उत्पादन पर इनका अनुकूल प्रभाव पडे। हमारी योजना मे छोटे व सीमान्त कृषको व भूमिहीन मजदूरो की सामर्थ्य बढाने पर विशेष बल दिया गया है ताकि योजना-कार्यों मे लगने वाले धन का लाभ कमजोर वर्गो को मिल सके। बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे भूमि सुधार पर विशेष बल दिया गया है और ग्रामीण जनसख्या के दलित वर्गों के अधिकारो की रक्षा पर भी ध्यान दिया गया है।

हमारी आज की नियोजित प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था के मूलभूत लक्ष्यो को पूरा करना है। ये है—गरीबी उन्मूलन और स्वावलम्बन की उपलब्धि।

आर्थिक कायापलट के प्रति निराशा का कोई कारण नहीं

1972-74 हमारे देश के लिए घोर आर्थिक सकट के दिन थे। इन दिनो उत्पादन मे ठहराव के साथ-साथ स्फीतिकारी परिस्थितियाँ पैदा हो गई थी। इस सकट पर विजय प्राप्त करने मे हमारे देश को जो सफलता मिली, उससे हमारे देश की ऐसी क्षमता का सकेत मिलता है कि यदि राजनीतिक सकल्प बना रहे तो वह सकट की प्रत्येक स्थिति का डटकर सामना कर सकता है। अक्तूबर, 1975 से मूल्यो के गिरते रहने, वर्ष 1975 76 मे वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियो के उत्पन्न होने और नए आर्थिक कार्यक्रम के लागू किए जाने के कारण आर्थिक सयम पर बहुत अधिक जोर देने से अधिक उद्देश्यपूर्ण रीति से विकासोन्मुख नीति अपनाने के लिए हमारा मार्ग अब साफ हो गया है।

यद्यपि बिजली उर्वरक और अच्छे बीजो की सप्लाई मे सामान्यत सुधार होना 1976 77 मे खेती की अच्छी पैदावार होने की दिशा मे एक शुभ लक्षण है, तथापि खेती की पैदावार मे हर वर्ष घट-बढ का होना स्वाभाविक है। किन्तु, आगामी वर्षों मे 50 लाख हैक्टेयर अधिक क्षेत्र मे सिंचाई के बडे और मध्यम दर्जे के साधनो की व्यवस्था किए जाने के लक्ष्य को, जो नए आर्थिक कार्यक्रम का एक आवश्यक अग है, सफलतापूर्वक प्राप्त करने से कृषि की पैदावार मे न केवल वृद्धि होने लगेगी, बल्कि पैदावार मे बहुत अधिक घट बढ होने की जो प्रवृत्ति है, वह भी कम हो जाएगी। हाल मे अन्तर्राज्यीय जल विवादो का जिस गति से निपटारा हुआ है, उससे राष्ट्रीय जल साधनो के तेजी से और युक्ति सगत विकास मे सहायता मिलनी चाहिए। अधिक गाँवो मे बिजली लगाने से सिंचाई सम्बन्धी छोटे निर्माण कार्यों, जैसे—पम्पिंग-सेट लगाने मे और अधिक धन लगाने को और बढावा मिलेगा।

विद्युत, लोहा, इस्पात तथा सीमेंट के उत्पादन मे उत्साहवर्धक वृद्धि होने के कारण, यह आशा बध गई है कि उद्योगो मे काम आने वाली वस्तुओ की कमी से 1976-77 और बाद के औद्योगिक उत्पादन मे कोई विशेष बाधा नही पडेगी। कृषि से प्राप्त होने वाले औद्योगिक कच्चे माल का जितना भण्डार मिलेगा उससे आशा है कि कृषि पर आधारित मुख्य उद्योगो के विकास पर कच्चे माल की कमी का प्रभाव नही पडेगा। वर्तमान स्थिति मे 1976-77 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की सम्भावना काफी आशाजनक है। अनाज की वसूली और अनाज के आयात की सम्भावित मात्रा को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि देश के पास अब प्रभूत मात्रा मे अनाज का स्टॉक होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो की अनिश्चितता और मन्दी की स्थिति के कारण, निर्यात की सम्भावनाएँ हालांकि यद्यपि कुछ अनिश्चित बनी हुई है, लेकिन देश की विदेशी मुद्रा प्रारक्षित-निधि की स्थिति ऐसी है कि निवेश के क्षेत्र मे और अधिक वृद्धि करने के लिए सुनियोजित तरीके से कुछ उपाय किया जा सकता है। इस समय देश मे और विदेशो मे ऐसी परिस्थितियाँ हैं, कि भविष्य मे उत्पादन के लिए काफी पूँजी लगाई जा सकती है।

वर्तमान सकेतो के अनुसार 1976-77 मे पाँचवी योजना के शेष वर्षो मे और अर्थ-व्यवस्था मे वृद्धि की समग्र दर मे विगत 15 वर्षों की दीर्घ अवधि से चली आ रही दर की अपेक्षा स्पष्ट सुधार होना चाहिए। लेकिन हमे समग्र विकास-दर को 5 5 /. के सुनियोजित लक्ष्य के आस-पास तक स्थिर करने के लिए अभी लम्बा रास्ता तय करना है। भविष्य की अपनी नीति निर्धारित करते समय हमे यह नही भूलना चाहिए कि 1975-76 और 1976-77 मे जो इतना अधिक आर्थिक विकास हुआ है, वह बहुत हद तक मौसम के अनुकूल रहने के कारण भी हुआ है। इसीलिए अधिक गतिशील अर्थ-व्यवस्था प्राप्त करने के लिए जो कार्य करना है, उसकी गुरुता के बारे मे हमे किसी भ्रम मे नही पडे रहना चाहिए।

वर्तमान के वर्षों मे भारत मे जो आर्थिक प्रगति हुई है, उसके विश्लेषण से प्रकट होता है कि आगामी वर्षों मे, आर्थिक विकास की दर को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे स्तर पर बनाए रखने हेतु निम्नलिखित क्षेत्रो मे और अधिक प्रयत्न करने होंगे—

) घरेलू बचत-दर मे उत्तरोत्तर वृद्धि,

(ख) निर्यात-सवर्धन का और जोरदार कार्यक्रम बनाकर तथा विदेशो से आयात की जाने वाली वस्तुओ के स्थान पर देशी वस्तुओ के प्रयोग को प्रोत्साहन देकर देश की भुगतान-क्षमता को और दृढ करना,

(ग) बुनियादी बिक्री-योग्य वस्तुओ का और अधिक उत्पादन तथा उनके समान रूप से वितरण की अधिक कारगर व्यवस्था; और

(घ) इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करने के लिए और ज्यादा कारगर उपाय करना कि हमारे समाज के निर्धन वर्गो के व्यक्तियो को आर्थिक विकास से प्राप्त लाभो मे पर्याप्त हिस्सा मिले।

इस बात पर जितना जोर दिया जाए उतना ही कम है क्योंकि सुनियोजित विकास के किसी कार्य को सोद्देश्य रूप से पुनः प्रारम्भ करने हेतु देश में पर्याप्त रूप से आन्तरिक बचत के जुटाए जाने की आवश्यकता है। सरकारी क्षेत्र के बढ़े हुए परिव्यय की वित्त-व्यवस्था करने के लिए पिछले अनुभव के आधार पर, घाटे की वित्त व्यवस्था पर बहुत अधिक निर्भर करना उत्पादन के विरुद्ध और हानिकारक सिद्ध हो सकता है। मुद्रा-स्फीति किए बिना पर्याप्त घरेलू साधन न जुटा पाना ही हमारी विकास-प्रक्रिया की सबसे बड़ी कमजोरी रही है। अत: वर्तमान वर्षों में, मूल्यों की स्थिरता के सन्दर्भ में आर्थिक विकास में तेजी लाना मुख्यत: देश में आन्तरिक-बचत के साधन जुटाने के लिए नई नीतियाँ बनाने की हमारी क्षमता पर काफी अधिक निर्भर करता है।

हमारी नई नीति में बचत करने पर ही अधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि उन निजी-बचत की अधिकांश राशि को उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर लगाने के लिए प्रोत्साहन भी दिया जाना चाहिए, जो इस समय ऐश आराम की व्यवस्था करने वाले मकानों के निर्माण, भूमि के पट्टे के सौदे और जेवरों जैसे कम प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर खर्च हो जाया करता था। हमारी आर्थिक नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए ताकि उनसे काला धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति में न केवल कमी ही आए, बल्कि आय के शेष भाग को सामाजिक हित के उत्पादक कार्यों पर लगाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन भी मिले। सगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के वेतन में वृद्धि की जाए, वह राष्ट्रीय उत्पादकता में होने वाली वृद्धि के एक निश्चित अनुपात से होनी चाहिए। आर्थिक प्रगति के कार्य से जो बोझ पड़ता है वह बोझ भी एक समान पड़ना चाहिए और आर्थिक प्रगति से जो लाभ मिलते हैं वे भी सबको समान रूप से मिलने चाहिए।

सरकारी बचत में वृद्धि करने से निवेश-दर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण मदद मिलेगी और उससे आय तथा सम्पत्ति की विषमता भी नहीं बढ़ेगी। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि सरकारी बचत में तब तक अधिक वृद्धि नहीं की जा सकती, जब तक सरकारी क्षेत्रों में किए गए निवेश से हमें अधिक आय प्राप्त न हो। कुछ हद तक इसके लिए उपलब्ध क्षमता का अधिक अच्छे ढंग से उपयोग किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अधिक युक्ति संगत मूल्य नीति निर्धारित करने की भी आवश्यकता है। पहले भी, इन प्रश्नों पर प्राय: चर्चा की गई है और उनको अनेक बार तदर्थ आधार पर असंगत तरीके से निपटाया गया है। विगत दो वर्षों में, सरकारी-क्षेत्र के उद्यमों की आय में वृद्धि करने के लिए काफी अधिक प्रयत्न किए गए हैं और इन प्रयत्नों के अब सुपरिणाम प्राप्त होने लगे हैं। अब समय आ गया है कि हम सभी सरकारी उद्यमों की मूल्य-उत्पादन-नीतियों की सुव्यवस्थित समीक्षा करें तथा उस समीक्षा के आधार पर एक ऐसी युक्तिसंगत नीति तैयार करें जो काफी हद तक स्थायी रह सके।

इस बात पर ठीक ही जोर दिया गया है कि हमारी योजना का प्रमुख उद्देश्य

आत्मनिर्भरता प्राप्त करना चाहिए। लेकिन इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा में और प्रगति तभी की सकती है, जब हम अपने निर्यात के परिमाण में 8 से 10 / तक की वार्षिक वृद्धि कर सकें ताकि हम विदेशों से ऊर्जा आयात करने पर कम से कम निर्भर रह सकें। देश में तेल की खोज और विकास कार्यक्रम को मुस्तैदी और तेजी से किया जा रहा है। अब तक जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, वह काफी उत्साहजनक हैं। विगत दो वर्षों में निर्यात-सम्बन्धी नीतियों और प्रक्रियाओं को सरल बनाने के लिए गम्भीर रूप से प्रयत्न किया गया है। परिणामस्वरूप 1974 75 और 1975-76 में भारत के निर्यात के परिमाण में दीर्घावधि औसत से लगभग 40 /. की वृद्धि हो जाने की सम्भावना है। निर्यात के सम्बन्ध में मन्त्रिमण्डल समिति की स्थापना किए जाने के फलस्वरूप निर्यात के लगातार विकास के लिए सक्षम नीति का आधार निर्धारण करने के लिए नए सिरे से विचार करने में सहायता मिली है। लेकिन अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है जिससे निर्यात के नए क्षेत्रों में पर्याप्त गति से वृद्धि होनी सुनिश्चित की जा सके।

भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में विकास की गति को तीव्र करने में श्रमिक-वस्तुओं की कमी को दूर किया जाना बुनियादी तौर पर कृषि क्षेत्र में की गई प्रगति पर निर्भर है। यह भी एक सर्वसम्मत राष्ट्रीय उद्देश्य है कि देश की सबसे निम्न वर्गों की 40 / जनता की ओर हमारी आयोजना सम्बन्धी नीतियों और प्रक्रियाओं में सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। यह भी सर्वमान्य है कि भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में ग्रामीण विकास के एकीकृत कार्यक्रम के माध्यम से ही इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन गाँवों का एकीकृत विकास तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक विस्तृत राष्ट्रीय आयोजन के पूरक के रूप में निचले स्तर से आयोजन करने पर जोर दिया जाए। प्राय सभी यह मानते हैं कि हमें पर्याप्त परिणाम तब तक प्राप्त नहीं हो सकते जब तक हम स्थानीय आवश्यकताओं साधनों और सम्भवनाओं की विस्तृत जानकारी के आधार पर अपनी योजनाएँ तैयार न करें। इन क्षेत्रों में अभी तक आशातीत प्रगति नहीं हुई है। पहले कृषि की पैदावार में वृद्धि के जो लक्ष्य निर्धारित किए जाते थे, वे काफी हद तक वास्तविक नहीं होते थे, क्योंकि वे खेती में काम आने वाली वस्तुओं और उत्पादन के ब्यौरेवार विश्लेषण तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों में फसलों की अनुकूलतम वास्तविक स्थिति तथा फसलों के क्रम के आधार पर नहीं निर्धारित किए जाते थे। इन कमियों को दूर करने के लिए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में विकेन्द्रीकृत आयोजन पर अधिक बल देना चाहिए।

अतिरिक्त जन शक्ति और अन्य उपलब्ध स्थानीय साधनों का पूर्ण उपयोग न किया जाना हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रम की एक बड़ी कमजोरी रही है। कृषि के काम आने वाली वस्तुओं को विदेशों से विशाल मात्रा में मगाकर प्रयोग करने के स्थान पर भविष्य में हमें स्थानीय जनशक्ति और उपलब्ध स्थानीय साधनों के अधिकाधिक उपयोग पर अधिक जोर देना पड़ेगा। यह आवश्यक नहीं है कि

कठिनाइयाँ जिस रूप में राष्ट्रीय स्तर पर सामने आती हैं, उसी रूप में स्थानीय स्तर पर भी आएँ, जहाँ उपर्युक्त साठनात्मक और आयोजनात्मक उपायों द्वारा स्थानीय संघनों की सहायता से केन्द्रीय आयोजना में उपलब्ध स्वर्मी का प्रयोग इस क्षेत्र की समस्याओं को प्रभावपूर्ण तरीके से हल करने में किया जा सकता है। छोटे और सीमान्तिक कृषकों तथा कृषि मजदूरों के लिए बनाई गई विशेष योजनाओं से, ग्रामीण समाज के अपेक्षाकृत निम्न वर्ग के व्यक्तियों के सामने आने वाली समस्याओं का व्यावहारिक हल ढूँढने में अत्यन्त उपयोगी सहायता मिली है। लेकिन अनुभव से सिद्ध होता है कि इस प्रकार की योजनाओं से सर्वोत्कृष्ट परिणाम तभी निकल सकते हैं जब उन योजनाओं को एक क्षेत्र-विशेष के विकास सम्बन्धी कार्यक्रम का अनिवार्य अंग बना दिया जाए। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि स्थानीय आवश्यकताओं साधनों तथा सम्भावनाओं का व्यापक सर्वेक्षण कर, उसके आधार पर ग्रामीण विकास के कार्य को समेकित प्रयास से पूरा किया जाए। कृषि के आधुनिकीकरण के प्रत्येक सफल कार्यक्रम के अन्तर्गत, उत्पादन-सम्बन्धी तकनीक में उत्तरोत्तर सुधार लाने तथा कृषकों द्वारा उक्त तकनीक के अपनाए जाने के लिए समुचित आर्थिक प्रोत्साहनों की व्यवस्था पर बल दिया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में अधिक महत्त्व इस बात को दिया जाएगा कि अनाज की खेती भूमि की उत्पादकता में वृद्धि की जाए और अधिक उत्पादन कई किस्मों के गेहूँ की खेती की भूमि की उत्पादकता की वृद्धि में रुकावट को, जिसका आभास वर्तमान में ही मिला है, समाप्त कर, उसकी उत्पादकता में वृद्धि की जाए।

यद्यपि 1950 के पश्चात् के कुछ वर्षों में देश की सिंचाई-प्रणाली में काफी विस्तार हुआ है, तथापि देश की सिंचाई-क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सका है। इस कमी को सिंचाई के बड़े बड़े निर्माण-कार्यों के अन्तर्गत आने वाले सिंचित-क्षेत्रों के समेकित विकास कार्यक्रम के द्वारा पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है। आगामी कुछ वर्षों में सिंचित-क्षेत्रों की विकास-क्षमता का उपयोग करना, कृषि की पैदावार बढ़ाने और सार्वजनिक-वितरण हेतु अधिक से अधिक अनाज की खरीद करने के लिए बनाई जाने वाली कृषि-नीति का प्रमुख अंग होना चाहिए। इस कार्यक्रम में आशानुकूल प्रगति नहीं हुई है। इसलिए यह आवश्यक है कि सिंचित-क्षेत्र के विकास प्राधिकरणों की शीघ्र स्थापना किए जाने के सम्बन्ध में जो बाधाएँ आ रही हैं, उनको दूर किया जाए।

यदि हम चाहते हैं कि सक्षम सार्वजनिक वितरण-प्रणाली, हमारी अर्थव्यवस्था का स्थाई अंग बन जाए तो हमें अनाज की खरीद के कार्यक्रम को भी काफी कारगर बनाना होगा। विश्व की अनाज की पैदावार तथा व्यापार की वर्तमान प्रवृत्ति के कारण दीर्घावधि के लिए पर्याप्त-मात्रा में विदेशों से अनाज प्राप्त करना अनिश्चित हो गया है, चाहे हमारे पास उसे खरीदने के लिए साधन ही क्यों न हो, अतः सरकारी-वितरण प्रणाली को बनाए रखने के लिए आयात पर बहुत अधिक निर्भर रहने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाना चाहिए।

अगर अर्थव्यवस्था की वृद्धि की दर को, 5 से 6% के आस-पास रखना है,

तो औद्योगिक उत्पादन मे विगत वर्षों मे जो वृद्धि हुई है, उससे दुगुनी वृद्धि करनी होगी। अभी कुछ अश तक औद्योगिक उत्पादन की भावी प्रगति पर सरकारी क्षेत्र की सम्भावित निवेश दर का प्रभाव पडता रहेगा। फिर भी विदेशो से वस्तुओ के आयात करने के स्थान पर देश मे बनी वस्तुओ का प्रयोग किए जाने के पहले दौर के समाप्त हो जाने से भविष्य मे औद्योगिक उत्पादन मे बराबर वृद्धि प्राय तभी की जा सकती है जब सर्व-साधारण के प्रयोग की उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग मे वृद्धि हो, यह कृषि की उपज बढा कर और औद्योगिक माल के निर्यात मे तेजी से वृद्धि करके की जा सकती है। औद्योगिक-विकास मे तीव्र वृद्धि करने हेतु आयोजन करते हुए उपर्युक्त बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है।

फिर भी, सदियो पुरानी गरीबी और जडता अल्प समय मे दूर नही की जा सकती, लेकिन यदि आवश्यक राजनीतिक सकल्प बना रहे और आर्थिक अनुशासन का कठोरतापूर्वक पालन किया जाए, तो हम काफी हद तक घोर निर्धनता की खाइयो को पाट देने की आशा कर सकते है। यही नवीन आर्थिक कार्यक्रम का वास्तविक उद्देश्य है। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हाल के महीनो मे जो ठोस सफलता मिली है, उसे उसके आधार पर हम आगे बढें, और आत्मनिर्भरता से विकास करने हेतु मध्यम अवधि की एक व्यापक नीति बनाएँ।

भारत मे योजना-निर्माण-प्रक्रिया और क्रियान्वयन की प्रशासकीय मशीनरी

(The Administrative Machinery for Plan Formulation Process and Implementation in India)

यदि अर्द्ध-विकसित देश द्रुत आर्थिक विकास करना चाहते हैं तो उन्हे अपनी आर्थिक योजनाएँ बनाकर क्रियान्वित करनी चाहिए। सोवियत रूस ने भी आर्थिक योजनाओ द्वारा ही आर्थिक प्रगति की है। किन्तु आर्थिक विकास हेतु जहाँ योजनाओ का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है वहाँ इनके विवेकपूर्ण निर्माण और उनके उचित क्रियान्वयन का भी कम महत्त्व नही है। वस्तुत योजना की सफलता उसके युक्तियुक्त निर्माण तथा उसकी क्रियान्विति पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ योजना निर्माण और क्रियान्वयन मे अधिकाधिक व्यक्तियो को भागीदार बनाए जाने पर इसकी सफलता का अश बढ जाता है। किन्तु यदि योजना के लक्ष्य और कार्यक्रम सरकार द्वारा केवल ऊपर से जनता पर लादे जाएँ तो योजना की सफलता सदिग्ध हो जाती है। भारतीय योजना आयोग के उपाध्यक्ष डी. आर गाडगिल के अनुसार "किसी योजना के निर्माण की अवस्था और तत्पश्चात् इसके क्रियान्वयन मे जितना अधिक प्रत्येक व्यक्ति भागीदार होगा उतना ही अधिक अच्छा हमारा नियोजन होगा।"[1] अत योजना के निर्माण और क्रियान्वयन मे अपनाई गई प्रणालियो का भी बहुत महत्त्व है।

भारत मे योजना-निर्माण की प्रक्रिया
(Planning Formulation-Process in India)

भारत मे योजना-निर्माण का कार्य 'भारतीय योजना आयोग' द्वारा किया जाता है। भारत की राष्ट्रीय योजना मे एक ओर केन्द्र और राज्य सरकारो की योजनाएँ तथा दूसरी ओर निजी क्षेत्र की योजनाएँ सम्मिलित होती हैं। भारत मे योजना स्वीकार किए जाने से पूर्व निम्नलिखित अवस्थाओ म होकर गुजरती है—

सामान्य दिशा निर्देश (General Approach)—प्रथम अवस्था मे योजना-निर्माण हेतु सामान्य दिशा निर्देश' पर विचार किया जाता है। योजना प्रारम्भ

1. *Dr. D R Gadgil* Formulating the Fourth Plan in Yojna, 23 Feb., 1969

योजना-आयोग इन सभी संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों सम्बन्धी कार्यक्रमों के आधार पर 'संक्षिप्त ड्राफ्ट मेमोरेण्डम (Draft Memorandum) तैयार करता है। इस मेमोरण्डम में योजना के आकार, नीति सम्बन्धी मुख्य विषय, अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की अपेक्षा योजना के प्रयत्नों में कम पड़ने वाले सम्भावित क्षेत्रों आदि को भी प्रस्तुत किया जाता है। ड्राफ्ट मेमोरेण्डम में निजी-क्षेत्र के कार्यक्रमों का अधिक ब्यौरा नहीं रहता है। योजना-आयोग द्वारा यह ड्राफ्ट मेमोरेण्डम केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात् यह 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' (National Development Council) में प्रस्तुत किया जाता है।

ड्राफ्ट प्रारूप का निर्माण—इस अवस्था का सम्बन्ध ड्राफ्ट आउट-लाइन (Draft Outline) के निर्माण से है। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों तथा परिवर्तनों आदि के आधार पर योजना की ड्राफ्ट आउट-लाइन तैयार की जाती है। ड्राफ्ट मेमोरेण्डम की अपेक्षा यह अधिक व्यापक और बड़ा दस्तावेज (Memorandum) होता है जिसमें विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) के लिए विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं का ब्यौरा तथा मुख्य नीति सम्बन्धी विषय, उद्देश्य और उनकी प्राप्ति के तरीके दिए होते हैं। इस दस्तावेज को विभिन्न मन्त्रालयों और राज्य सरकारों के पास समीक्षार्थ भेजा जाता है। इस पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी विचार किया जाता है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद् इस पर विचार करती है, जिसकी सहमति के पश्चात् योजना की इस ड्राफ्ट आउट-लाइन का जनता एवं विभिन्न संस्थाओं, विश्वविद्यालयों द्वारा विचार-विमर्श एवं समालोचना के लिए प्रकाशित किया जाता है और जनता के सुझाव और विचार आमन्त्रित किए जाते हैं। राज्यों में राज्य-स्तर पर और जिला-स्तर पर तथा राष्ट्रीय स्तर पर संसद् के दोनों सदनों द्वारा विचार किया जाता है। संसद् में पहले इस पर कुछ दिनों तक सामान्य विचार-विमर्श चलता है उसके पश्चात् कई संसदीय समितियों द्वारा अधिक विचारपूर्वक विचार किया जाता है।

राज्य सरकारों से विचार-विमर्श—इस बीच जबकि योजना के इस प्रारूप पर देश भर में विचार होता रहता है, योजना आयोग विभिन्न राज्यों से उनकी योजनाओं के सम्बन्ध में विस्तृत वार्तालाप करता है। वार्ता के मुख्य विषय उनके विकास की सविस्तार योजनाएँ, वित्तीय संसाधन और अतिरिक्त साधनों के जुटाने सम्बन्धी उपाय आदि होते हैं। योजना-आयोग और राज्य सरकारों का यह परामर्श विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ दोनों स्तरों पर चलता है। अन्तिम निर्णय राज्य के मुख्य मन्त्री से सलाह-मशविरे के पश्चात् ही लिए जाते हैं।

नया मेमोरेण्डम—इस अवस्था की मुख्य बात योजना-आयोग द्वारा योजना के सम्बन्ध में नया मेमोरेण्डम तैयार करना है, जो राज्य-सरकारों के साथ सविस्तार वार्तालाप जनता और संगठित संस्थाओं द्वारा की गई समीक्षा तथा विभिन्न पैनल एवं कार्यशील दलों द्वारा दिए गए विस्तृत सुझावों के आधार पर तैयार किया जाता

है। इस दस्तावेज में योजना की मुख्य विशेषताओं, नीति-सम्बन्धी निर्देश, जिन पर बल दिया जाता है तथा उन विषयों का वर्णन होता है जिन पर योजना के अन्तिम रूप से स्वीकार किए जान के पूव विचार की आवश्यकता है। इस मेमोरेण्डम पर पुन. केन्द्रीय-मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विचार किया जाता है।

योजना को अन्तिम रूप दिया जाना—केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा लिए गए निर्णयो के आधार पर योजना आयोग योजना की अन्तिम रिपोर्ट तैयार करता है। यह अन्तिम रिपोर्ट बहुत व्यापक होती है और इसम योजना के उद्देश्य, नीतियो, कार्यक्रम और परियोजनाओ का विस्तृत वर्णन होता है। यह अन्तिम योजना पुनः केन्द्रीय-मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, जिसकी सहमति क पश्चात् इसे ससद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। दोनो सदनो मे कई दिनो के वाद विवाद के पश्चात् दोनो सदनो द्वारा स्वीकृति मिल जाने के बाद इसे लागू कर दिया जाता है तथा राष्ट्र से इसके क्रियान्वयन और उद्देश्यो तथा लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए अपील की जाती है।

योजना निर्माण—भारत म उपरोक्त प्रकार से ऊपर से केन्द्र द्वारा योजना बनाने के साथ-साथ सगठन की निचली इकाइयो की आवश्यकताओ, उनके द्वारा लक्ष्यो के मूल्यांकन तथा सुझावो के अनुसार सरकार इस योजना मे परिवर्तन या सशोधन करती है। विभिन्न राज्यो, जिलो और विकास-खण्डो द्वारा योजना के प्रारूप म निर्धारित व्यापक लक्ष्यो को ध्यान मे रखते हुए योजनाएँ तैयार करने के लिए कहा जाता है। उनमे आवश्यकतानुसार परिवतन करके अन्तिम योजना मे समायोजन कर लिया जाता है। योजना-आयोग, राज्यो, जिलो और पचायत समितियो द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओ, प्रस्तावो, कायक्रमो और परियोजनाओ की आर्थिक और तकनीकी दृष्टियो से सावधानीपूर्वक जाँच करता है और उनके आधार पर योजना-निर्माण किया जाता है।

समय समय पर पुनरावलोकन—योजना-निर्माण मे काफी समय लगता है और इस बीच तथा योजना की पचवर्षीय अवधि मे भी परिस्थितियो मे परिवर्तन हो सकता है। अत योजना-आयोग एक बार पचवर्षीय योजना बना देने के पश्चात् भी देश और अर्थव्यवस्था मे समय-समय पर होने वाले परिवर्तनो पर निगरानी रखता है, तत्सम्बन्धी अध्ययन करता है और आवश्यकतानुसार योजना मे परिवर्तन और सशोधन करता रहता है। इसके अतिरिक्त पचवर्षीय योजना को वार्षिक योजनाओ मे विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक वर्ष नवम्बर या दिसम्बर म योजना-आयोग और केन्द्रीय-मन्त्रालयो तथा राज्य-सरकारो के बीच गत प्रगति की समीक्षा, ससाधनो की स्थिति, लक्ष्यो के समायोजन की तकनीकी सम्भावनाओ और आगामी वर्ष की योजना की आवश्यकताओ पर विचारार्थ परामर्श चलता रहता है। केन्द्र और राज्य सरकारो के बजट इन्ही वार्षिक योजनाओ को ध्यान मे रखते हुए आगामी वर्ष फरवरी मे बनाए जाते हैं। ये वार्षिक योजनाएँ अब भारतीय नियोजन की विशेषता बन गई है।

भारत में योजना-निर्माण की तकनीक
(Techniques of Plan-formulation in India)

भारत मे योजना आयोग द्वारा मध्यम और दीर्घकालीन योजनाओ के निर्माण मे निम्नलिखित तकनीको का प्रयोग किया जाता है—

1 **अर्थव्यवस्था की स्थिति का सांख्यिकीय विश्लेषण**—पर्याप्त और विश्वसनीय आँकडो के अभाव मे कोई नियोजन सफल नही हो सकता। सांख्यिकी आधारशिला पर ही नियोजन के प्रासाद का निर्माण होता है। अत भारत मे पचवर्षीय योजना के निर्माण मे सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओ का सांख्यिकी विश्लेषण किया जाता है। आँकडो के आधार पर भूतकालीन प्रवृत्तियो और प्रगति की समीक्षा की जाती है और मुख्य आर्थिक समस्याओ का अनुमान लगाया जाता है। इन सबके लिए देश की अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रो के बारे मे सांख्यिकी एकत्रित किए जाते है। यह कार्य भारत मे कई सरकारी और गैर-सरकारी सस्थाओ द्वारा किया जाता है और योजना-निर्माण मे इनका उपयोग किया जाता है। भारत मे सांख्यिकी सम्बन्धी स्थिति सुधारने हेतु विगत वर्षों मे बहुत प्रयत्न किए गए हैं। 'केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन' (Central Statistical Organisation) सन् 1948-49 से राष्ट्रीय आय के आँकडे तैयार करता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन द्वारा अर्थव्यवस्था मे बचत और विनियोग के अनुमान तैयार किए जाते है। रिजर्व बैंक के द्वारा व्यापक मौद्रिक और वित्तीय सांख्यिकी एकत्रित किए जाते हैं। कृषि और औद्योगिक सांख्यिकी सूचनाओ के सुधार के लिए भी विगत वर्षो मे अच्छे प्रयास किए गए है। योजना आयोग की 'अनुसधान कार्यक्रम समिति' द्वारा भी विभिन्न समस्याओ के सम्बन्ध मे अध्ययन अनुसधान किए जाते हैं तथा यह विकास से सम्बन्धित अध्ययन अनुसधानो के लिए विश्वविद्यालयो और अन्य शिक्षण सस्थाओ को अनुदान भी देती है। योजना आयोग के 'कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन' (Programme Evaluation Organisation) द्वारा भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन किया जाता है। अनेक विशिष्ट सस्थाएँ जैसे—'केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग' (Central Water and Power Commission), 'जियोलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया' (Geological Survey of India), 'ब्यूरो ऑफ माइन्स' (Bureau of Mines), जनगणना विभाग, ऑइल एण्ड नेच्यूरल गैस कमीशन (Oil and Natural Gas Commission) प्राकृतिक साधनो सम्बन्धी समिति (Committee on Natural Resources) आदि ने सम्बन्धित साधनो एव समस्याओ के बारे म विस्तृत अध्ययन किए हैं और करती रहती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मत्रालय मे सांख्यिकी-कक्ष होते हैं जो अपने विषय पर सभी प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। योजना-आयोग इन सभी स्रोतो द्वारा सांख्यिकी सूचनाओ और अध्ययनो के आधार पर अर्थव्यवस्था की स्थिति का विश्लेषण करता है और योजना-निर्माण प्रक्रिया मे आगे बढती है।

2 **आर्थिक विकास की सम्भावनाओ का अनुमान लगाना**—उपरोक्त अध्ययन

के आधार पर देश की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाता है। इस पर विचार किया जाता है कि विकास की वांछनीय दर क्या होनी चाहिए। साथ ही नियोजन की प्रमुख प्राथमिकताएँ तथा नीतियों के बारे में निश्चय किया जाता है। उदाहरणार्थ जनसंख्या और उसकी आयु-संरचना सम्बन्धी भावी अनुमान योजना के दौरान खाद्यान्न, वस्त्र, निवास आदि की आवश्यकताओं का अनुमान लगाने में सहायक होते हैं। इसी प्रकार विकास की वांछनीय दर के आधार पर योजनावधि में बचत और विनियोग की आवश्यकताओं पर निर्णय लिया जाता है। तत्पश्चात् योजना निर्माण सम्बन्धी इन आवश्यकताओं की योजनावधि में उपलब्ध होने वाले वित्तीय साधनों के सन्दर्भ में छानबीन की जाती है। इस प्रकार, वित्तीय साधनों का अनुमान लगाया जाता है। निजी-क्षेत्र के वित्तीय साधनों का अनुमान रिजर्व बैंक के द्वारा और सार्वजनिक क्षेत्र के साधनों का अनुमान योजना-आयोग और वित्त मन्त्रालय द्वारा लगाया जाता है। साथ ही इस बात की सम्भावना पर भी विचार किया जाता है कि योजनावधि में केन्द्र और राज्य-सरकारें अतिरिक्त करारोपण द्वारा कितनी राशि जुटा सकेंगी। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश में, जहाँ जन-साधारण का जीवन-स्तर बहुत नीचा है, मनमाने ढंग से कर नहीं लगाए जा सकते, अतः इस बात पर सावधानीपूर्वक विचार करना होता है। योजना आयोग विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं और सम्भावित विदेशी सहायता के बारे में भी अनुमान लगाता है। सार्वजनिक उपक्रमों के लाभों से नियोजन की कितनी वित्त-व्यवस्था हो सकेगी तथा *किस सीमा तक हीनार्थ-प्रबन्धन (Deficit Financing) का लाभपूर्वक आश्रय* लिया जा सकता है। हीनार्थ प्रबन्धन को कम से कम रखने का प्रयत्न किया जाता है अन्यथा मुद्रा प्रसारिक मूल्य-वृद्धि होने से योजना-निर्माण के प्रयत्न विफल हो जाते हैं। इस प्रकार पहले विनियोग की आवश्यकताओं और उसके पश्चात् वित्तीय साधनों का अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् योजना आयोग किसी एक को दूसरे से या दोनों में संशोधन करके समायोजन करता है। साथ ही, योजना आयोग विभिन्न प्रकार से इस बात की जाँच करता है कि तैयार की जाने वाली योजना में कहीं असंगति तो नहीं है। उदाहरणार्थ, यह देखा जा सकता है कि प्रस्तावित विनियोग उपलब्ध बचतों के अनुरूप है या नहीं, विदेशी विनिमय की आवश्यकता के अनुरूप इसकी उपलब्धि हो सकेगी या नहीं, आधारभूत कच्चे माल का आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन होगा या नहीं। इस प्रकार, योजना आयोग विभिन्न कार्यक्रमों की संगति की जाँच करता है ताकि अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न नहीं होने पाए।

3 **आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों का निर्धारण**—योजना निर्माण के लिए प्रमुख आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों के निर्धारण का कार्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, अतः भारत में योजना निर्माता इन उद्देश्यों के निर्धारण पर भी बहुत ध्यान देते हैं। इन उद्देश्यों के निर्धारण में उपलब्ध समय तथा भौतिक और वित्तीय दोनों प्रकार के साधनों के सन्दर्भ में विचार किया जाता है, विभिन्न उद्देश्यों में परस्पर विरोध होता है उनमें समायोजन किया जाता है। उदाहरणार्थ, अल्पकालीन और

दीर्घकालीन उद्देश्यो तथा कई आर्थिक तथा गैर-आर्थिक उद्देश्य परस्पर विरोधी होते है। आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण, ये दो उद्देश्य भी परस्पर विरोध प्रस्तुत कर सकते है। आर्थिक विकास पर अधिक महत्त्व देने से सामाजिक कल्याण की अवहेलना हो सकती है और सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम अधिक प्रारम्भ करने पर आर्थिक विकास की गति धीमी भी हो सकती है। अत योजना-निर्माता इन उद्देश्यो मे सामजस्य और समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

4 **विभिन्न क्षेत्रो मे लक्ष्य निर्धारण**—इसके पश्चात् विभिन्न क्षेत्रो जैसे—कृषि, उद्योग, विद्युत् सिचाई, यातायात, समाज-सेवाओ आदि मे लक्ष्यो का निर्धारण किया जाता है और यह कार्यशील दलो (Working Groups) द्वारा किया जाता है। इन कार्यशील दलो के सदस्य, विभिन्न मन्त्रालयो और अन्य सगठनो से लिए गए विशेषज्ञ होते हैं। लक्ष्य निर्धारण करते समय यह कार्यशील दल योजना आयोग द्वारा दिए गए निर्देशो और पथ-प्रदर्शन के अधीन कार्य करते हैं तथा जनमत पर भी ध्यान देते हैं। विभिन्न क्षेत्रो मे लक्ष्य निर्धारण के इस कार्य के पूर्ण होने के पश्चात् योजना आयोग समस्त अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से इन लक्ष्यो की जाँच करता है और देखता है कि विभिन्न लक्ष्यो मे परस्पर असगति (Inconsistency) तो नही है। योजना के लक्ष्यो के निर्धारण की विधि का वर्णन पिछले अध्याय मे किया जा चुका है।

योजना को अन्तिम रूप दिया जाना—अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो जैसे—कृषि, उद्योग, विद्युत्, सिंचाई, यातायात, समाज-सेवाओ आदि मे भिन्न भिन्न लक्ष्यो के निर्धारण के पश्चात् इन सबको मिलाया जाता है और मूल अनुमानो से तुलना की जाती है। इस अवस्था मे उपलब्ध होने वाले पूँजीगत साधनो और विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ मे इन लक्ष्यो पर विचार किया जाता है तथा साधनो को और अधिक गतिशील बनाने या लक्ष्यो को घटाने-बढाने की गुन्जाइश पर विचार किया जाता है। साथ ही, योजना के रोजगार-सम्बन्धी प्रभावो तथा बुनियादी भौतिक पदार्थों, जैसे—लोहा, इस्पात, सीमेन्ट आदि की आवश्यकताओ पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाता है। इन सबके आधार पर सरकार और योजना आयोग द्वारा योजना की नीति, आकार, क्षेत्र, विनियोगो के आवटन, प्राथमिकताओ के निर्धारण आदि के सम्बन्ध मे निर्णय लिए जाते है और योजना को अन्तिम रूप दिया जाता है, जिसे क्रमश केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल, राष्ट्रीय विकास परिषद् और ससद् द्वारा स्वीकृति दिए जाने पर लागू किया जाता है।

चतुर्थ योजना निर्माण तकनीक—चतुर्थ योजना के निर्माण मे अपनाई गई तकनीक के अध्ययन से भारतीय नियोजन निर्माण की तकनीक स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। चतुर्थ योजना पर प्रारम्भिक विचार योजना आयोग के दीर्घकालीन नियोजन सभाग (Perspective Planning Division : P P.D.) मे 1962 मे शुरू हुआ। योजना निर्माण के समय एक महत्त्वपूर्ण निर्णय इस सम्बन्ध मे लेना होता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग बचाया जाए और कितने का विनियोजन

किया जाए ? बचत-दर अधिक बढाने पर जनता को उपभोग कम करना पडता है इस प्रकार, कठिनाइयो का सामना करना पडता है। अतः इस सम्बन्ध मे बहुत सोच-विचार की आवश्यकता होती है। दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने योजना निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था मे, मुख्य रूप से इसी समस्या पर विचार-विमर्श किया कि योजना मे विनियोजन-दर क्या हो ? विनियोग-दर के निर्धारण हेतु जनता के लिए उपभोग-स्तर का निर्धारण भी आवश्यक है। योजना आयोग के दीर्घकालीन नियोजन सभाग (P. P. D) ने इस बात का निर्णय किया कि जनसख्या को न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध कराने के लिए 1960–61 के मूल्य स्तर पर 35 रुपए प्रति व्यक्ति प्रति माह आवश्यक होगे। अतः यह निर्णय लिया गया कि नियोजन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य जनता के जीवन-स्तर को उक्त 35 रुपये के स्तर तक ऊँचा करना है। किन्तु यदि इस उद्देश्य को 1975 तक प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय-आय मे 40% या वर्ष 1961–75 मे 10% से 20% वार्षिक वृद्धि आवश्यक थी। किन्तु ये लक्ष्य अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी थे। अत न्यूनतम 35 रुपये के जीवन-स्तर प्रदान करने का लक्ष्य छोडना पडा। इसके पश्चात् प्रमुख अर्थ-शास्त्रियो और राजनीतिज्ञो का एक अन्य अध्ययन-दल नियुक्त किया गया, जिसने 5 व्यक्तियो के परिवार के लिए 100 रुपये अर्थात् 20 रुपये प्रति व्यक्ति के न्यूनतम जीवन-स्तर का प्रबन्ध किए जाने की सिफारिश तथा यह लक्ष्य 1975-76 तक अर्थात् 1965-66 से 10 वर्षों मे प्राप्त करने थे। इस आधार पर दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने चतुर्थ और पांचवी योजना मे राष्ट्रीय आय मे 7 5 या 7 7% वृद्धि के लक्ष्य का सुझाव दिया। समग्र राष्ट्रीय आय सम्बन्धी निर्णय कर लेने के पश्चात् दूसरा कार्य अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे तरसम्बन्धी निर्णय लेना और उत्पादन-वृद्धि के लक्ष्यो को पूर्ण करने हेतु आवश्यक विनियोगो का विस्तृत अनुमान लगाना था। इसके पश्चात् दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने असख्य सूक्ष्म योजनाओ (Micro Plans) को समस्त अर्थ-व्यवस्था के लिए एक पूर्णसगत योजना मे समावेशित करने का कार्य किया। इसके लिए निम्नलिखित तकनीक अपनाई गई—

(i) सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर (Micro-Level) पर सभी प्रकार के भावी अनुमान लगाना,

(ii) सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर पर बडी मात्रा मे भौतिक सतुलनो का प्रयास करना।

प्रथम तकनीक के अन्तर्गत कुल घरेलू उत्पादन और व्यय तथा इसके प्रमुख भागो के सम्बन्ध मे गणनाएँ की गई। चतुर्थ और पांचवी योजना मे विदेशी-सहायता, शुद्ध विनियोग-दर, सार्वजनिक उपभोग-स्तर और व्यक्तिगत उपभोग के अनुमान लगाए गए। इसके पश्चात् 'समय-समय पर कुल घरेलू मांग की वृहत् वस्तु सरचना' (Broad Commodity Pattern of the Gross Domestic Demand at Various Points of Time) को ज्ञात करने के लिए कदम उठाया गया। दीर्घ-कालीन नियोजन सभाग ने विभिन्न व्यक्तिगत पदार्थों के लिए लक्ष्यो को ज्ञान किया।

निर्मित वस्तुओं मे 165 वस्तुओं, खनिज-पदार्थों मे 16 वस्तुओं और कृषि-पदार्थों मे 40 से अधिक पदार्थों के लक्ष्य निर्धारित किए। जिस प्रकार 'दीर्घकालीन नियोजन सभाग' (P. P. D) ने उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किए, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिगत पदार्थ उत्पादन के दौरान उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय आय होगी। इस प्रकार दीर्घकालीन नियोजन सभाग ने समस्त अर्थ-व्यवस्था और उसके विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया। सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर (Micro-Level) पर भौतिक सतुलनो के लिए अनेक पदार्थ चुने गए। एक पदार्थ के लिए भौतिक सतुलनो का आशय उस विस्तृत ब्यौरे से है जिसमे मुख्य उद्योगो मे, जिनमे उस पदार्थ का उपयोग होता है, माँग दिखाई होती है। साथ ही, इस बात का भी सकेत होता है कि किस प्रकार उस पदार्थ की उतनी मात्रा का उत्पादन किया जाएगा या विदेशो से आयात किया जाएगा। चतुर्थ योजना मे कोयला पैट्रोल के पदार्थ, विद्युत, कच्चा-लोहा, मैंगनीज, सीमट, रबर आदि कई वस्तुओं के लिए 'भौतिक सतुलन' तैयार किए गए थे।

इन सभी विस्तृत अध्ययनो एव तैयारियो के पश्चात्, एक ओर योजना आयोग तथा दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मत्रालयो मे परामर्श और विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। योजना का आकार निश्चित करने मे वित्त मत्रालय का महत्त्वपूर्ण योगदान था। परिणामस्वरूप, चतुर्थ योजना की प्रमुख रूपरेखाएँ प्रकट हुई, जिनके आधार पर चतुर्थ योजना का मेमोरेण्डम (दस्तावेज) तैयार हुआ, तब राष्ट्रीय परिषद् ने इस मेमोरेण्डम पर विचार किया। इसने कृषि, सिंचाई, उद्योग शक्ति, यातायात, सामाजिक सेवाएँ, समाधन और पहाडी क्षेत्रो के विकासार्थ पाँच समितिया नियुक्त की, जिन्होंने योजना पर विचार किया और अगस्त, *1966* मे चतुर्थ योजना का प्रारूप प्रकाशित किया गया, किन्तु अनेक कारणो से यह योजना लागू नही की जा सकी। चतुर्थ योजना का निर्माण पुन किया गया। इस नई चतुर्थ योजना की नीतियो और कार्यक्रमो का दिशा-निर्देश-पत्र (Approach to the Fourth Five Year Plan) 17 व 18 मई को राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक मे प्रस्तुत किया गया। उसके आधार पर नई चतुर्थ योजना 1969-74 का निर्माण किया गया, जिसे 21 अप्रल, 1969 को ससद मे प्रस्तुत किया गया।

योजना-निर्माण और क्रियान्वयन की प्रशासकीय मशीनरी (The Administrative Machinery for Plan Formulation and Implementation)

भारत मे योजना निर्माण एव क्रियान्वयन के लिए प्रशासकीय मशीनरी तथा योजना-तन्त्र के मुख्य अग निम्नलिखित हैं—

(1) योजना-आयोग (Planning Commission)
(2) राष्ट्रीय योजना परिषद (National Planning Council)
(3) योजना-आयोग के *विभिन्न सम्भाग (Divisions of* Planning Commission)
(4) अन्य सस्थाएँ (Other Institutions)

योजना आयोग (Planning Commission)

भारत मे योजना-निर्माण सम्बन्धी उत्तरदायित्व योजना आयोग का है, जिसकी स्थापना मार्च, 1950 मे की गई थी। योजना आयोग ही हमारे नियोजन तन्त्र का महत्त्वपूर्ण अग है। भारतीय सविधान मे योजना आयोग की नियुक्ति की कोई व्यवस्था नही है, अत इसकी स्थापना भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा की गई थी।

आयोग के प्रमुख कार्य—योजना-आयोग की स्थापना के समय ही आयोग के प्रमुख कार्यों का स्पष्ट सकेत दिया गया था। तदनुसार आयोग के मुख्य कार्य सक्षेप मे निम्नलिखित है—

1 प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य देश के साधनो का अनुमान लगाना है। योजना-आयोग देश के भौतिक, पूंजी-सम्बन्धी और मानवीय साधन का अनुमान लगाता है। वह ऐसे साधनो की बढोत्तरी की सम्भावना का पता लगाता है जिनका देश मे अभाव होता है। साधनो का अनुमान और उनमे अभिवृद्धि का प्रयत्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इसके अभाव मे कोई भी नियोजन असम्भव है।

2 योजना-आयोग का दूसरा कार्य है योजना-निर्माण। योजना-आयोग देश के ससाधनो के सर्वाधिक प्रभावशाली और सन्तुलित उपयोग के लिए योजना-निर्माण करता है।

3. योजना-आयोग का तीसरा कार्य है—योजना को पूरा किए जाने की अवस्थाओ को परिभाषित करना तथा योजना की प्राथमिकताओ का निर्धारण करना।

4 इसके पश्चात् योजना-आयोग इनके आधार पर देश के साधनो का समुचित आवटन करता है।

5 योजना-आयोग का पाँचवाँ कार्य है, योजना-तन्त्र का निर्धारण। आयोग योजना की प्रत्येक अवस्था के सभी पहलुओ मे सफल क्रियान्विति के लिए योजना-तन्त्र की प्रकृति को निर्धारित करता है।

6. योजना-आयोग समय-समय पर योजना की प्रत्येक अवस्था के क्रियान्वयन मे की गई प्रगति का मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन के आधार पर वह नीतियो और प्रयत्नो मे परिवर्तन या समायोजन की सिफारिश करता है।

7 योजना-आयोग का सातवाँ कार्य सुझाव और दिशा निर्देश सम्बन्धी है। योजना-आयोग आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध करने वाले घटको को बताता है *और योजना की सफलता के लिए आवश्यक स्थितियो का निर्धारण करता है।* योजना-निर्माण कार्य को पूर्ण करने हेतु आर्थिक परिस्थितियो नीतियो, विकास-कार्यक्रमो आदि पर योजना-आयोग सरकार को सुझाव देता है। यदि राज्य या केन्द्रीय सरकार किसी समस्या विशेष पर सुझाव माँगे तो आयोग उस समस्या विशेष के समाधान के लिए भी अपने सुझाव देता है।

अपने कार्य के सफल-सम्पादन की दृष्टि से योजना-आयोग को कुछ अन्य कार्य भी सौंपे गए हैं, जैसे—

(1) सामग्री, पूंजी और मानवीय साधन का मूल्यांकन, सरक्षण तथा उनमे

वृद्धि की सम्भावनाओं आदि को ज्ञान करना। इस सम्बन्ध में योजना-आयोग का कर्त्तव्य है कि वह वित्तीय साधनों, मूल्य-स्तर, उपभोग प्रतिमान आदि का निरन्तर अध्ययन करता रहे।

(ii) साधनों के सन्तुलित प्रयोग की दिशा में योजना-आयोग को इस प्रकार की विधि अपनानी चाहिए जिससे एक ओर तो विकास की अधिकतम-दर प्राप्त की जा सके तथा दूसरी ओर सामाजिक न्याय की स्थापना भी हो सके।

(iii) योजना-आयोग, योजनाओं की सफलता के लिए, सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करता रहे।

(iv) योजना आयोग आर्थिक एवं अन्य नीतियों का सामयिक मूल्यांकन करे और यदि नीतियों में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता हो तो इसके लिए मन्त्रिमण्डल को सिफारिश करे।

(v) नियोजन की तकनीक का आवश्यक अध्ययन करते हुए उसमें सुधार का प्रयत्न करे।

(vi) योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए जन-सहयोग प्राप्त करे ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी दायित्व महसूस करते हुए योजना के कार्यों में भागीदार बन सके।

सगठन—योजना-आयोग की रचना करते समय यह उद्देश्य रखा गया था कि आयोग और मन्त्रि-परिषद् में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हो। यही कारण है कि आरम्भ से ही आयोग में अन्य सदस्यों के अतिरिक्त मन्त्रि-परिषद् के केबिनेट स्तर के कुछ मन्त्रियों को सदस्यता प्रदान की गई। प्रधान मन्त्री आयोग का अध्यक्ष होता है। सितम्बर, 1967 में पुनगठन के बाद से प्रधान मन्त्री और वित्त मन्त्री के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य पूर्णकालीन (Whole time) रहे हैं और वे सरकार के मन्त्री नहीं होते। यद्यपि योजना आयोग के सभी सदस्य एक निकाय (Body) के रूप में कार्य करते हैं तथापि सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक सदस्य को एक या अधिक विषयों का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। वित्त मन्त्री योजना-आयोग के आर्थिक सम्भाग (Economic Division) से निकटतम सम्पर्क रखता है।

यह प्रश्न विवादास्पद है कि मन्त्रियों को योजना आयोग का सदस्य बनाना कहाँ तक उचित है। कुछ का मत है कि योजना आयोग का पूर्णत स्वतन्त्र सगठन होना चाहिए। योजना आयोग का प्रमुख कार्य देश की आर्थिक समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना है, अत यह उचित है कि इसका सदस्य उन्हीं को बनाया जाए जो ख्याति प्राप्त हों। साथ ही सदस्यों को स्वतन्त्र किन्तु सयुक्त रूप से कार्य करने का अधिकार दिया जाए। प्रधान मन्त्री व अन्य मन्त्रियों को आयोग का सदस्य बनाना उचित नहीं है, क्योंकि इससे आयोग की स्वतन्त्रता कम होती है।[1] लेकिन

1. Also see · Estimate Committee, 957-59, Twenty First Report (Second Lok Sabha), Planning Commission, p 21.

इस प्रकार का मत वजनी नही रखता है। वास्तव मे मन्त्री जनता के निकट सम्पर्क मे रहते हैं और जनता की नब्ज को अधिक अच्छी तरह पहिचानते हैं, अत जनता के लिए बनाई जाने वाली योजनाओ और योजना-मशीनरी से उनका निकट-सम्पर्क होना चाहिए। वैसे भी अधिक प्रभावशाली मत यही रहा है कि मन्त्रियो का आयोग के साथ निकटतम सम्पर्क होना चाहिए ताकि मन्त्रिमण्डल और आयोग के मध्य ताल मेल बना रहे। इसके अतिरिक्त योजना के क्रियान्वयन के लिए अन्तिम उत्तरदायित्व मन्त्रि-मण्डल पर ही होता है। प्रशासन ही वह यन्त्र है, जो योजना को सफल बनाने और क्रियान्वयन की दिशा मे सर्वोपरि भूमिका निभाता है। अत नियोजन आयोग मे मन्त्रियो को सदस्यता देना वाँछित है। वी टी कृष्णमाचारी के मतानुसार योजना का क्रियान्वयन उसी स्थिति मे अच्छा हो सकता है, जब मन्त्रि-मण्डल के सदस्य भी आयोग के विचार विवेचन और निर्णयो मे भाग लें।

प्रशासन सुधार आयोग की सिफारिशें और योजना आयोग का पुनर्गठन—सितम्बर, 1967 मे योजना-आयोग का पुनर्गठन किया गया। योजना-आयोग का यह पुनर्गठन प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) की सिफारिशो के आधार पर किया गया था, जो निम्नलिखित थी—

(i) आयोग के उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य केन्द्रीय मन्त्रियो में से नही लिए जाने चाहिएँ।

(ii) योजना आयोग केवल विशेषज्ञो की ही संस्था नही होनी चाहिए और इसके सदस्यो को विभिन्न क्षेत्रो का ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।

(iii) राष्ट्रीय नियोजन परिषद् योजनाओ के निर्माण में बुनियादी निर्देश देती रहे। उसकी और उसके द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियो की नियमित रूप से अधिक बैठकें की जानी चाहिएँ।

(iv) योजना आयोग को सलाहकार समितियो की नियुक्ति में मितव्ययिता करनी चाहिए और उनकी स्थापना सोच विचार करके की जानी चाहिए। नियुक्ति के समय ही समितियो के कार्यक्षेत्र और कार्य-सचालन विधि निर्धारित कर दी जानी चाहिए। योजना आयोग को अपने कार्य के लिए केन्द्रीय मन्त्रालयो में कार्य कर रही सलाहकार समितियो का अधिकाधिक सहयोग लेना चाहिए।

(v) लोकसभा की सार्वजनिक उपक्रम समिति के समान लोकसभा के सदस्यो की एक अन्य समिति बनाई जानी चाहिए जो योजना आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन तथा योजनाओ के मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रतिवेदनो पर विचार करे।

(vi) आयोग के लिए सलाहकार विषय-विशेषज्ञ एव विश्लेषणकर्ता इस प्रकार के तीन पूर्ण स्तरीय अधिकारी होने चाहिएँ।

(vii) विकास से सम्बन्धित विभिन्न विषयो मे प्रशिक्षण देने हेतु दिल्ली में एक प्रशिक्षण-सस्थान स्थापित किया जाना चाहिए।

(viii) उद्योगो के लिए स्थापित विभिन्न विकास परिषदो के साथ एक योजना समूह सलग्न रहना चाहिए जो निजी क्षेत्र के उद्योगो से योजना निर्माण मे परामर्श एव सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

(ix) एक स्टेन्डिंग कमेटी की स्थापना की जानी चाहिए जो केन्द्रीय सरकार के विभिन्न आर्थिक सलाहकार कक्षो मे अधिक समन्वय और सम्पर्क का कार्य करे। इसके सदस्य भिन्न-भिन्न मन्त्रालयो तथा योजना-आयोग के आर्थिक एव सांख्यिकीय कक्षो के अध्यक्ष होने चाहिएँ।

(x) प्रत्येक राज्य मे निम्न प्रकार के त्रि-स्तरीय नियोजन तन्त्र स्थापित किए जाना चाहिए—

(a) राज्य योजना परिषद्—यह विशेषज्ञो की सस्था होनी चाहिए। यह परिषद् राज्य मे योजना-आयोग के समान योजना सम्बन्धी कार्य करे, (b) विभागीय नियोजन सस्थाएँ—ये सम्बन्धित विभाग की भिन्न-भिन्न विकास परियोजनाओ में समन्वय स्थापित करने और उनके क्रियान्वयन की देखभाल करने का कार्य करें, (c) क्षेत्रीय तथा जिला-स्तरीय नियोजन सस्थाएँ—इसके लिए प्रत्येक जिले मे एक पूर्णकालीन योजना और विकास अधिकारी तथा एक जिला-योजना समिति होनी चाहिए। समिति मे पचायतो और नगरपालिकाओ के प्रतिनिधि एव कुछ व्यावसायिक विशेषज्ञ भी होने चाहिएँ।

अप्रेल, 1973 मे पुनर्गठन—योजना आयोग की रचना और कार्य विभाजन मे 1 अप्रेल, 1973 को पुन परिवर्तन किया गया। तद्नुसार आयोग के सगठन की रूपरेखा इस प्रकार रही—

(1) प्रधान मन्त्री, पदेन अध्यक्ष।
(2) एक उपाध्यक्ष (योजना मन्त्री स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद धर उस समय उपाध्यक्ष थे)।
(3) उपाध्यक्ष के अतिरिक्त आयोग के 4 और सदस्य (जिनमे कोई भी मन्त्री शामिल नहीं था, यद्यपि वित्त मन्त्री आयोग की बैठको मे भाग ले सकता था। ये सभी सदस्य पूर्णकालिक थे)।

जुलाई, 1975 मे आयोग का गठन—जुलाई, 1975 मे आयोग का गठन इस प्रकार था[1]—

1. श्रीमती इन्दिरा गाँधी	प्रधान मन्त्री तथा अध्यक्ष
2 पी एन हक्सर	उपाध्यक्ष
3 सी सुब्रह्मण्यम	वित्त मन्त्री
4 इन्द्रकुमार गुजराल	योजना राज्य मन्त्री
5 एस. चक्रवर्ती	सदस्य
6. बी शिवरामन	सदस्य

आयोग मे कार्य विभाजन

प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव के अनुसार, आयोग के कार्यों को तीन भागों मे विभाजित किया जाना अपेक्षित है—योजना-निर्माण-कार्य, मूल्यांकन कार्य

1. India 1976, p 170.

एवं प्रतिष्ठापन-कार्य । विकास से सम्बन्धित विषयों मे प्रशिक्षण देने हेतु एक प्रशिक्षण सस्थान भी अपेक्षित है । वर्तमान मे दिल्ली मे स्थापित इन्स्टीटयूट ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ, कार्य कर रहा है । 1973 के मध्य आयोग के सदस्यो मे कार्य-विभाजन की रूपरेखा इस प्रकार थी—

(1) सदस्य डॉ. मिन्हास के पास सामाजिक सेवाएँ (शिक्षा को छोडकर), गृह-निर्माण और शहरी-विकास, श्रम, रोजगार एव मानव शक्ति, यातायात एव सन्देशवाहन तथा पर्वतीय विकास सम्बन्धी कार्य थे ।

(2) सदस्य प्रो चक्रवर्ती के पास दीर्घकालीन नियोजन, आर्थिक-विभाग, शिक्षा और बहुस्तरीय नियोजन सम्बन्धी कार्य थे ।

(3) सदस्य श्री शिवरामन के पास कृषि और सिंचाई तथा योजना-क्रियान्वयन के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य थे ।

(4) सदस्य श्री एम. एस. पाठक के पास उद्योग, खनिज एव शक्ति-सम्बन्धी कार्य थे ।

योजना आयोग के कार्यों के सचालन हेतु आन्तरिक सगठन की दृष्टि से विभिन्न विभाग हैं, जो चार भागो मे विभाजित है—

1 **समन्वय विभाग (Co-ordination Division)**—इसके दो उप-विभाग हैं—योजना समन्वय विभाग (Plan Co-ordination Section) तथा कार्यक्रम प्रशासन विभाग (Programme Administrative Division) । जब आयोग को विभिन्न विभागो में सहयोग की आवश्यकता होती है, तो समन्वय विभाग अपनी भूमिका निभाता है । प्रशासन विभाग के कार्य वार्षिक और पचवर्षीय योजनाओ में समन्वय, अविकसित क्षेत्रो का पता लगाना, प्रदेशो को केन्द्रीय सहायता के तरीको तथा योजना को कुशल प्रभावपूर्ण ढग से कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में परामर्श देना आदि हैं ।

2. **साधारण विभाग (General Division)**—योजना से सम्बन्धित विभिन्न कार्यो के लिए अनेक साधारण विभाग है । प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक निदेशक होता है । मुख्य साधारण विभाग ये हैं—दीर्घकालीन योजना विभाग, आर्थिक विभाग, श्रम एव रोजगार विभाग, प्राकृतिक एव वैज्ञानिक अनुसधान विभाग, सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण विभाग, प्रबन्ध एव प्रशासन विभाग ।

3. **विषय विभाग (Subject Division)**—आर्थिक गतिविधि के विभिन्न क्षेत्रो के लिए विषय-विभाग 10 हैं जो अपने विषय से सम्बन्धित योजना के लिए कार्य और शोध करते हैं—कृषि विभाग, भूमि सुधार विभाग, सिंचाई और शक्ति विभाग, ग्राम और लघु उद्योग विभाग, समाज सेवा विभाग, गृह विभाग, यातायात एव सचार विभाग, उद्योग एव खनिज पदार्थ विभाग, शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग ।

4 **विशिष्ट विकास कार्यक्रम विभाग (Special Development Programme Division)**—कतिपय विशेष कार्यक्रमो के लिए 'विशेष विकास कार्यक्रम विभाग' बनाए गए है । ये दो हैं—ग्रामीण कार्य विभाग, एव जन-सहकारिता विभाग ।

योजना आयोग से सम्बद्ध अन्य संस्थाएँ

1. राष्ट्रीय नियोजन परिषद् (National Planning Council)—इस सस्था की स्थापना सरकार द्वारा फरवरी 1965 मे योजना आयोग के सदस्यो की सहायता से की गई। जिसमे सावधानीपूर्वक चुने हुए सीमित सख्या मे विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं। 'राष्ट्रीय नियोजन परिषद्' योजना आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता मे कार्य करता है।

2 कार्यशील दल (Working Groups)—योजना आयोग समय-समय पर 'कार्यशील समूह' नियुक्त करता है, जिनका कार्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के लिए योजना-निर्माण मे योजना आयोग और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो मे समन्वय करना है। इन कार्यशील समूहो के सदस्य योजना आयोग और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयो से लिए गए तकनीकी विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री और प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उप-समूह (Sub groups) भी नियुक्त किए जाते हैं।

3. परामर्शदात्री सस्थाएँ (Advisory Bodies)—इन्हे Panel or Consultative Bodies भी कहते हैं। ये स्थाई सस्थाएँ होती है जो सरकार की विभिन्न नीतियो और कार्यक्रमो पर सुझाव देती हैं। इसके अतिरिक्त, ससद् सदस्यो से परामर्श लेने की व्यवस्था की गई है। इसके लिए Consultative Committee of Members of Parliament for Planning Commission तथा Prime Minister's Informal Consultative Committee for Planning बनाई गई है।

4 एसोसिएटेड बॉडीज (Associated Bodies)—इनमे से प्रमुख केन्द्रीय मन्त्रालय, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन (Central Statistical Organisation) हैं। रिजर्व बैंक के आर्थिक विभाग से योजना आयोग निकट-सम्पर्क रखता है तथा उसके द्वारा किए गए अध्ययन योजना आयोग के लिए उपयोगी होते हैं। रिजर्व बैंक के इस विभाग का सचालक योजना आयोग के लिए अर्थ-शास्त्रियो के पैनल का सदस्य होता है। आयोग के लिए आवश्यक सांख्य एकत्रित करने का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन करती है।

5. मूल्यांकन समितियाँ (Evaluation Committees)—योजनान्तर्गत प्रारम्भ की गई विभिन्न परियोजनाओ के कार्य-सचालन के मूल्यांकन हेतु 'मूल्यांकन समितियाँ' नामक विशिष्ट सस्थाओ का निर्माण किया गया है। Committee on Plan Projects इस प्रकार का उदाहरण है।

6 अनुसंधान संस्थाएँ (Research Institutions)—योजना आयोग ने इस सम्बन्ध मे 'अनुसधान कार्यक्रम समिति' (Research Programme Committee) नामक विशिष्ट सस्था की स्थापना की है, जिसका अध्यक्ष आयोग का उपाध्यक्ष होता है। इसमे देश के ख्याति प्राप्त समाज वैज्ञानिको को भी सदस्य नियुक्त किया जाता रहा है। इसी प्रकार प्राकृतिक साधनो के सरक्षण, विकास और उचित विदोहन आदि के लिए प्राकृतिक ससाधन समिति (Committee of Natural Resources) स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त, भारतीय सांख्यिकी सस्थान, भारतीय व्यावहारिक

आर्थिक अनुसंधान परिषद् (Indian Council of Applied Economic Research) और आर्थिक विकास संस्थान (Institute of Economic Growth) आदि संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण आर्थिक-सामाजिक अनुसंधान कार्य करती हैं जिसका उपयोग योजना आयोग करता रहता है।

7. राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)— राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग की सर्वोच्च नीति-निर्धारक संस्था है। यह योजना आयोग और विभिन्न राज्यों मे समन्वय स्थापित करने का भी कार्य करती है। इसके मुख्य कार्य हैं—

(i) समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य-संचालन का पर्यावलोकन करना।
(ii) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक और आर्थिक-नीति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार करना।
(iii) राष्ट्रीय योजना मे निर्धारित उद्देश्यो और लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु उपाय सुझाना।
(iv) जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना।
(v) प्रशासनिक सेवाओं की कुशलता मे वृद्धि करना।
(vi) अल्प विकसित समाज के वर्गों और प्रदेशो के पूर्ण विकास के लिए प्रयत्न करना।
(vii) समस्त नागरिको के समान त्याग के द्वारा राष्ट्रीय विकास के लिए संसाधनो का निर्माण करना।

योजना आयोग की तरह राष्ट्रीय विकास परिषद् के पीछे भी सांविधानिक या कानूनी सत्ता नही होती, किन्तु इसकी सिफारिशो का केन्द्रीय और राज्य सरकारो द्वारा आदर किया जाता है। इस परिषद् मे देश के प्रधान मन्त्री और योजना आयोग के सदस्य होते हैं।

योजना का क्रियान्वयन
(Implementation of the Plan)

भारत मे योजना आयोग विशुद्ध रूप से परामर्शदात्री संस्था है। इसका कार्य योजनाओ का निर्माण करना और उनका मूल्यांकन करना है। इसके पास कोई प्रशासनिक शक्ति नही है अत योजनाओ के क्रियान्वयन का कार्य केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारो का है। योजना निर्माण के पश्चात् केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपने विभिन्न मन्त्रालयो और उनके अधीन विभागो द्वारा योजना के लिए निर्धारित कार्यक्रमो और लक्ष्यो की प्राप्ति की कार्यवाही करती है। कृषि, सिंचाई, सहकारिता, विद्युत्, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के कार्यक्रमो को प्रमुख रूप से राज्य सरकारें क्रियान्वित करती है क्योंकि ये राज्य-सूची मे आते हैं। अन्य विषयो जैसे—वृहद्-उद्योग, रेलें, राष्ट्रीय राजमार्ग, प्रमुख बन्दरगाह, जहाजरानी, नागरिक उड्डयन, संचार आदि से सम्बन्धित योजनाओ के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर होता है।

भारत मे नियोजन सम्बन्धी परियोजनाओ मे से कुछ का केवल केन्द्रीय सरकार क्रियान्वित करती है कुछ को राज्य सरकारो द्वारा क्रियान्वित किया जाता है और कुछ को केन्द्रीय और राज्य सरकारें दोनो मिलकर करती हैं। उदाहरणार्थ, भारत मे विशाल नदी-घाटी योजनाओ मे से कुछ का निर्माण और सचालन पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार द्वारा, कुछ का केवल राज्य सरकारो द्वारा और कुछ केन्द्र और राज्य सरकारो ने तथा एक से अधिक राज्य सरकारो ने मिलकर किया है। निजी-क्षेत्र की योजनाओ का क्रियान्वयन निजी-क्षेत्र द्वारा किया जाता है यद्यपि सरकार इस कार्य मे निजी क्षेत्र को आवश्यक वित्तीय, तकनीकी तथा अन्य प्रकार की सहायता देती है। सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओ का क्रियान्वयन सरकार द्वारा किया जाता है। कई अन्य देशो के समान भारत मे भी योजनाकरण मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा जिला-स्तर पर जिला-परिषदें तथा खण्ड स्तर पर पचायत समिति है, जो खण्ड-स्तर पर योजनाओ के निर्माण और क्रियान्वयन का कार्य करती है।

इस प्रकार भारत मे योजना का क्रियान्वयन केन्द्रीय और राज्य सरकारो के विभिन्न मन्त्रालयो और उनके अधीनस्थ विभागो द्वारा किया जाता है। योजना की सफलता इन विभागो के अधिकारियो और अन्य सरकारी कर्मचारियो की कुशलता, कर्त्तव्यपरायणता तथा ईमानदारी पर निर्भर करती है। योजनाओ की सफलता सामान्यत जनता के सहयोग पर निर्भर करती है।

प्रगति की समीक्षा—योजना के क्रियान्वयन के लिए उनका निरन्तर निरीक्षण और प्रगति की समीक्षा आवश्यक है ताकि योजना की असफलताओ और उसके क्रियान्वयन के मार्ग मे आने वाली बाधाओ का पता लगाया जा सके। भारत मे योजना आयोग का योजना निर्माण के अतिरिक्त एक प्रमुख कार्य "योजना की प्रत्येक अवस्था के क्रियान्वयन द्वारा प्राप्त प्रगति का समय समय पर ब्यौरा रखना तथा उसके अनुसार नीति मे समायोजन तथा अन्य उपायो के लिए सिफारिशें करना है।" अत योजना आयोग समय समय पर अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे योजना के क्रियान्वयन और सफलता का पर्यवेक्षण करता है। जब वार्षिक योजना का निर्माण किया जाता है और उसे वार्षिक वजट मे सम्मिलित किया जाता है तो आयोग केन्द्र और राज्य सरकारो से गत वर्ष की प्रगति के प्रतिवेदन मगाता है। इसके आधार पर योजना आयोग गत वर्ष की प्रगति प्रतिवेदन तैयार करता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय मन्त्रालयो और राज्य-सरकारो द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे विकास-कार्यक्रमो के व्यक्तिगत सम्बन्ध मे विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जाती है। कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन तथा योजना की परियोजना समिति योजनाओ के क्रियान्वयन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करती है। इन अध्ययनो का उद्देश्य परियोजनाओ की विलम्ब पूर्ति, अपर्याप्त सफलता, ऊँची लागतो आदि के कारणो की जाँच करना और इन्हे दूर करने के उपाय बतलाना होता है। योजना आयोग योजना अवधि के मध्य मे ही विभिन्न क्षेत्रो मे योजना कार्यक्रमो की पूर्ति के सम्बन्ध मे 'Mid Term' प्रतिवेदन भी

प्रकाशित करती है जिसमें आगे की कार्यवाही की दिशाओं का भी सकेत होता है। प्रत्येक पचवर्षीय योजना के अन्त मे योजना आयोग अवधि की समग्र समीक्षा, विकास सम्बन्धी तथ्यो तथा आई हुई कठिनाइयो और भविष्य के लिए सुझावो सहित प्रकाशित करता है। निजी-क्षेत्र मे योजना की प्रगति की समीक्षा और मूल्यांकन के लिए और अधिक प्रयत्नो की आवश्यकता है।

भारतीय नियोजन की विशेषताएँ—भारतीय नियोजन की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ है—

(i) भारतीय नियोजन जनतान्त्रिक नियोजन है।

(ii) भारतीय नियोजन सोवियत रूस और चीन की तरह पूर्ण या व्यापक (Comprehensive) नियोजन नही है।

(iii) भारतीय नियोजन का उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना है।

(iv) भारतीय नियोजन केन्द्रित और विकेन्द्रित दोनो प्रकार का है।

भारतीय योजना-निर्माण प्रक्रिया की समीक्षा

1. कई आलोचकों ने योजना आयोग को 'समानान्तर सरकार' (Parallel Government), 'सुपर केबिनेट' (Super Cabinet) और 'गाडी का पांचवाँ पहिया' (The Fifth Wheel of the Coach) कहा है। किन्तु इस प्रकार की आलोचनाएँ अतिरंजित हैं। भारत मे सम्पूर्ण आयोजन इस प्रकार का है कि राष्ट्रीय योजना भी कार्यान्वित होती है और राज्यिक योजनाएँ भी। इस प्रकार, राष्ट्रीय हितो की पूर्ति भी होती है और प्रान्तीय एव स्थानीय हितो की भी। मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि दोनो एक दूसरे के पूरक बनें। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति मे केन्द्रीकरण को कुछ प्रोत्साहन मिलता है और केन्द्र और राज्य सम्बन्ध एकात्मकता के लक्षणो से प्रभावित होते हैं तो इसमे 'अशुभ' कोई बात नही है। इसके अतिरिक्त योजना आयोग एक परामर्शदात्री सस्था रहा है, इसके पास प्रशासनिक अधिकार नही हैं। योजना आयोग केन्द्र तथा राज्यो के विभिन्न स्तरो पर व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात् ही निर्णय पर पहुँचता है। इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध मे आयोग नियोजन-क्षेत्र मे जो कुछ भी कहता है, उसमे राज्यो की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त होती है।

2 कुछ आलोचकों के अनुसार, योजना आयोग एक स्वतन्त्र और परामर्शदात्री सस्था के रूप मे कार्य नही कर पाता। मन्त्रियो को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया जाता रहा है। इस प्रकार, यह सस्था राजनीति प्रेरित है और यह विशेषज्ञ सस्था नही है। योजना आयोग की इस परम्परा का भी प्रतिरोध किया जाता है कि जब कभी किसी मन्त्रालय से सम्बन्धित विषय पर आलोचको का सुझाव है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् और मन्त्रिमण्डल को तो राष्ट्रीय योजना सम्बन्धी प्रमुख रेखाओ और विशिष्ट सीमाओ का ही निरूपण करना चाहिए। इसके पश्चात् योजना निर्माण और विस्तृत ब्यौरा तैयार करने, प्राथमिकताओ और लक्ष्यो का

1. वही, पृष्ठ 132-33.

निर्धारण करने विभिन्न वैकल्पिक उपायो मे से विकास की किसी विशिष्ट पद्धति को अपनाने आदि के कार्य पूर्णरूप से योजना आयोग पर छोड दिए जाने चाहिए, क्योकि ये तकनीकी मामले हैं। योजना आयोग के सदस्य सुविख्यात तकनीकी विशेषज्ञ होने चाहिए।

मन्त्रियो की सदस्यता न होने सम्बन्धी आयोग का तर्क सैद्धान्तिक रूप मे अच्छा है और कुछ वर्षों पूर्व प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी सिफारिश की थी कि मन्त्रियो को आयोग का सदस्य नहीं बनाया जाना चाहिए। लेकिन व्यावहारिक स्थितियो का तकाजा है कि आयोग मे मन्त्रिमण्डल को स्थान दिया जाए, क्योकि नीतियो और निर्णयो के क्रियान्वयन का अन्तिम उत्तरदायित्व मन्त्रियो पर होता है। योजना की असफलता के लिए जनता प्रधानमन्त्री और योजना मन्त्री को ही दोषी ठहराएगी, आयोग के विशेषज्ञो को नही। मन्त्रियो का जनता से निकट सम्पर्क होता है, वे जनता की आकांक्षाओ से परिचित होते है अत आयोग के तकनीकी विशेषज्ञों के विचारो को अपनी सलाह से अधिक व्यावहारिक और जनानुकूल बना सकते है। एक परामर्शदात्री सस्था मे परामर्श के स्रोत जितने प्रभावशाली होगे निर्णय उतने ही अच्छे हो सकेंगे। हाँ, इस प्रकार के रक्षा कवच अवश्य होने चाहिए ताकि मन्त्रियो की उपस्थिति से आयोग के तकनीकी विशेषज्ञो और स्वतन्त्र सदस्यो की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पडने की आशका न रहे।

3 यह आलोचना की जाती है कि आयोग का आकार अनावश्यक रूप से काफी बडा हो गया है और इसके पदाधिकारियो, कर्मचारियो, विभिन्न समितियो और सस्थाओ मे पर्याप्त मितव्ययिता किए जाने की गुजाइश है। आयोग की कई विभागीय शाखाओ मे कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण नही हैं और उनके कार्य एक दूसरे की परिधि मे आ जाते है। अत प्रत्येक विभाग मे विवेकीकरण किया जाना चाहिए। विषय सम्भागो पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और साधारण सम्भागो की सख्या कम की जानी चाहिए।

4 अधिकांश राज्य ससाधनो को गतिशील बनाने और उनके एकत्रीकरण के मामलो मे राष्ट्रीय और दीर्घकालीन दृष्टिकोण से कार्य नहीं करते हैं। अनेक राज्य सरकारो मे योजना के समन्वय सम्बन्धी प्राथमिक विचारो का भी अभाव है और योजना आयोग को दूध देने वाली गाय समझते हैं। उनमे से अधिकाँश के लिए आयोग ऋण का अन्तिम नही प्रथम आश्रयदाता है। अब तक राज्य सरकारें योजना आयोग से अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रही हैं और स्वय न कम प्रयास किए हैं।

बहुधा ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि योजना आयोग को राज्यो के मुख्य-मन्त्रियो को, ससाधनो के आवटन को गतिशील बनाने के सम्बन्ध मे अप्रसन्न करना पडे और ऐसा तभी हो सकता है जबकि आयोग के सदस्य गैर राजनीतिक क्षेत्र से लिए गए हो। तृतीय योजना मे कृषि पर कर द्वारा साधनो के एकत्रीकरण के बारे मे एक भी बात नही कही गई यद्यपि ऐसा करना नितान्त आवश्यक था। यह कहा जाता है कि आयोग ने ऐसा राजनीतिक कारणो से नही किया।

5. इसके अतिरिक्त पचवर्षीय योजनाओ के निर्माण और क्रियान्वयन मे और भी कई कमियां हैं। कई आलोचको के अनुसार सरकारी नीतियो और योजना के उद्देश्यो के बीच पर्याप्त अन्तर रहता है। सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियाँ और किए गए उपाय योजना के सामाजिक न्याय-क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाने की योजना के उद्देश्य के विपरीत पडती है। यह भूमि-सुधारो को क्रियान्वित करने, निजी-क्षेत्र मे कारपोरेट उपक्रम के विकास और मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो के नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित समस्याओ को हल करने के सरकारी विधियो के बारे मे अधिक सही हैं। राज्य-सरकारो ने बहुधा योजना के क्रियान्वयन मे निर्धारित प्राथमिकताओ का अनुपालन नही किया। बहुधा विशिष्ट परियोजनाओ हेतु राज्यो को दी गई केन्द्रीय सहायता का उपयोग निश्चित उद्देश्यो के लिए नही किया गया। योजना के क्रियान्वयन मे एक और कमी यह अनुभव की गई कि योजना व्यय को सम्पूर्ण योजनावधि में समान रूप से वितरित नही किया गया। बहुधा योजना के प्रथम दो तीन वर्षों मे कार्य धीरे चलता और अन्तिम वर्षो मे निर्धारित व्यय शीघ्रता से पूरा किया जाता है। इससे सरकारो का ध्यान योजना के भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति की अपेक्षा निर्धारित राशि को योजनावधि मे व्यय करने पर अधिक केन्द्रित रहता है। परिणामस्वरूप, उतनी ही राशि व्यय करने पर भी अपेक्षाकृत कम लाभ रहता और प्रगति की दर कम रहती है। अब पचवर्षीय योजनाओ को एक वर्षीय कार्यक्रमो मे विभाजित करके क्रियान्वित करने का निश्चय किया गया है जिससे उपरोक्त समस्या का उचित समाधान हो जाएगा। योजना आयोग के अध्यक्ष श्री गाडगिल ने इसकी अनुपस्थिति के अनुसार "होता यह है कि पचवर्षीय योजनावधि के प्रारम्भ मे प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक प्राप्त करने और अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए दौड-धूप करता है, क्योकि यह कार्य अभी नही होने पर पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पडती है। इससे तनाव बढता है। इससे योजना निर्माण मे एक कठिन स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे हम बचना चाहते हैं"[1] और एक वर्षीय योजनाएँ इससे बचने का एक उपाय है।

6. भारतीय नियोजन मे अब तक भी प्राथमिकताओ के मूल्यांकन के लिए कोई कसौटी उदाहरणार्थ, लागत लाभ विश्लेषण (Cost benefit Analysis) आदि का व्यवहार अभी तक नही किया गया। है यह आवश्यक है कि इस प्रकार के मापदण्ड का उपयोग किया जाए, अन्यथा प्रत्येक विशेषज्ञ अपने विभाग के लिए कुछ न. कुछ, प्राप्त. कर. लेता. है, ।. इस. प्रकार. भारतीय. नियोजन. सभी. प्रकार. की. दिशाओं. मे. बनाई गई विभिन्न योजनाओ का सग्रह है। इसका कारण यह है कि हमारे पास परियोजनाओ के मूल्यांकन के लिए कोई उपयुक्त मापदण्ड नही है जिससे विभिन्न विकल्पो मे से कुछ विकल्पो का चयन किया जा सके। इस प्रकार, हमारे साधनो का अपव्यय होता है। उदाहरणार्थ, सामाजिक कल्याण मे बाल अपराध (Juvenile delinquency), परित्यक्त बच्चे, भिक्षुक, वेश्याएँ, अपग व्यक्ति, तथा अन्य कई प्रकार के पहलू आते है और यदि हम इस सम्बन्ध मे अपने देश की अन्य देशो से

1 *D R. Gadgil*. Formulating the Fourth Plan, Yojna, Feb. 23, 1969, p 8.

तुलना करें, तो हमारे विशेषज्ञ स्वाभाविक रूप से यही कहेंगे कि ये सब पहलू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु यदि हमारे साधन सीमित हैं तो हमे इनमे चुनाव करना पडेगा। उदाहरणार्थ, हम पहले बाल अपराधियो और परित्यक्त बच्चो पर सारी राशि व्यय कर सकते हैं और भिखारियो और वेश्याओ के लिए अधिक चिन्ता नही करें। यद्यपि कुछ वर्गों की इस प्रकार उपेक्षा करना एक कठोर निर्णय है, किन्तु हमे ऐसा करना ही पडेगा। इस प्रकार सभी क्षेत्रो मे सब कार्यक्रमो को अपनाने की अपेक्षा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो में अधिकाधिक साधन लगाए जाने चाहिए अन्यथा विशेष परिणाम नही निकल पाएँगे।

7. हमारे योजना निर्माण की एक कमी यह है कि यद्यपि हमारा देश एक अत्यन्त निर्धन देश है किन्तु वित्त मन्त्रालय और योजना आयोग के अतिरिक्त नियोजन के सभी स्तरो पर ससाधनो के उपयोग में सयम की आवश्यकता को अनुभव नहीं किया गया है और ससाधनो का कई जगह अपव्यय किया गया है। हमें इस बात को अनुभव करना चाहिए कि हमारा देश विश्व के निर्धनतम देशो में से एक है, अत हमें देश के साधनो का अत्यन्त मितव्ययितापूर्वक कार्य करना चाहिए। साथ ही, प्रबन्धात्मक प्रयत्नो (Management Efforts) में अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। राज्यो को सहायता देने की प्रणाली भी उचित नही कही जा सकती। प्रशासनिक सुधार आयोग ने विभिन्न प्रकार के 'अनुरूप अनुदान' (Matching Grants) और सहायता की वर्तमान पद्धति में परिवर्तन का सुझाव दिया है। सौभाग्य से इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में मुख्य मन्त्रियो और केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय ने भी स्वीकार कर लिया है। अब राज्यो को 'प्रमापीकृत योजनाओ' (Standard Schemes) से युक्त योजनाओ को बनाने की आवश्यकता नही है। वे अपनी इच्छानुसार योजनाएँ बना सकते है। केवल उन्हे योजना आयोग को उनके उद्देश्य बताने, और यह बताने की आवश्यकता है कि वे उन योजनाओ को किस प्रकार क्रियान्वित करेंगे? अब राज्यो को निश्चित रूप से यह बता दिया जाएगा कि उन्हें कितनी सहायता मिलने वाली है? उसके पश्चात् उन्हे अपने प्रयत्नो द्वारा प्राप्त राशि का अनुमान लगाना होगा और उसके अनुरूप वे अपनी योजनाएँ बना सकते। अब राज्यो की योजनाओ का आधार उनके स्वय के प्रयासो द्वारा साधनो को गतिशील बनाने पर निर्भर करेगा क्योकि उन्हे केन्द्रीय सहायता का स्पष्ट अनुमान पहले ही प्राप्त हो जाएगा और राज्य 'Inflated Plans' प्रस्तुत नही करेंगे।

वास्तव में इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आयोग के गठन और योजनाओ के क्रियान्वयन में अनेक गम्भीर दोष रहे हैं और राष्ट्र को इनकी कीमत चुकानी पडी है। लेकिन 26 जून, 1975 को राष्ट्रीय आपात् स्थिति की उद्घोषणा और 1 जुलाई, 1975 से बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम लागू किए जाने के पश्चात् राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था ने एक नया मोड लिया है। चहुँमुखी सुधार और प्रगति की एक लहर चल पडी है। योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया है, पचवर्षीय योजना का पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है और आशा है कि सितम्बर, 1976 में राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक के बाद निकट भविष्य में योजना का जो नया रूप जनता के समक्ष रहेगा वह विगत वर्षों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक रहेगा।

---

9 भारत में गरीबी और असमानता

(Poverty and Inequality in India)

भारत मे गरीबी और असमानता इस हद तक व्याप्त है कि विश्व के आर्थिक रगमच पर भारत की भूमिका के महत्त्व की बात करना हास्यास्पद लगता है। आर्थिक आँकड़े, देशवासियो का जीवन स्तर, आर्थिक विषमताओ की गहरी खाई, गरीबी के मुँह बोलते चिह्न इस बात की स्पष्ट झलक देते हैं कि भारत विश्व का एक अत्यधिक गरीब देश है। भारत मे गरीबी की व्यापकता और भयावहता का अनुमान सरकार के 'गरीबी हटाओ' के नारे से भी व्यक्त होता है। देश की पाँचवी पचवर्षीय योजना का मूल उद्देश्य ही गरीबी और असमानता पर प्रहार करना तथा देश को आत्म-निर्भरता के स्तर पर पहुँचाना है। योजना-प्रारूप में यह निश्चय व्यक्त किया गया है कि अति-भयावह निर्धनता अथवा गरीबी का जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियो के जीवन स्तर को एक न्यूनतम स्तर पर लाया जाएगा।

भारत मे गरीबी और विषमता की एक झलक

विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित सूचना के अनुसार, विश्व के लगभग 122 देशो मे प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध मे भारत का स्थान 102वाँ है। हमारे देश मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 825 रु. है और विगत दस वर्षों मे देश के आर्थिक विकास मे मात्र 1 2% प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई है।[1] एक अन्य अध्ययन के अनुसार विश्व मे 25 देश ऐसे है, जो बहुत ही गरीबी की स्थिति मे हैं और इन देशो मे भारत का स्थान प्रमुख है। इन गरीब देशो मे उद्योगो का राष्ट्रीय आय मे अशदान 10% से भी कम है तथा 15 साल से बडी उम्र की 20% से भी अधिक जनसख्या अशिक्षित है। सयुक्तराष्ट्र के अनुसार इन देशो के 20% व्यक्तियो को पूरा भोजन नही मिलता और 60% लोगों को अपौष्टिक भोजन प्राप्त होता है। प्रतिवर्ष 30 लाख टन प्रोटीन वाला औद्योगिक राष्ट्र इन देशो मे खाद्यान्न भेजते है।[2] भारत, जो गरीब देशो मे

1. डॉ रामअवध राय, निदेशक भारतीय सामाजिक अनुसधान परिषद् का लेख 'देश के जिले और विकास के आयाम'—साप्ताहिक हिन्दुस्तान 23, सितम्बर, 1973, पृष्ठ 13
2. श्री आर वर्मा -'समाजवादी समाज की स्थापना के लिए गरीबी हटाना आवश्यक' योजना 22 मार्च, 1973, पृष्ठ 21.

प्रमुख है, विश्व की 15% जनसख्या का उसके 1/7 क्षेत्रफल मे भरण पोषण कर रहा है, किन्तु राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से विश्व के 122 देशो मे उसका स्थान 95वाँ तथा एशिया के 40 देशो मे 30वाँ है। भारत की 4 5 करोड जनता किसी न किसी रूप मे बेरोजगार है। 38 करोड 60 लाख व्यक्ति निरक्षर हैं। प्रत्येक भारतीय लगभग 1,314 रु. के विदेशी-ऋणभार से दबा हुआ है।[1] रुपये की क्रय-शक्ति मई, 1974 मे, मात्र 33 9 पैसे (आधार 1959 वर्ष) थी।[2] देश के लगभग 22 करोड व्यक्ति अत्यन्त गरीबीपूर्ण जीवन बिता रहे हैं। देश मे आर्थिक विषमता चौंका देने वाली है। जहाँ एक ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं और वैभव अठखेलियाँ करता है वही दूसरी ओर व्यक्तियो के पास रहने को झोपडी भी नही है। वे सडक पर ही जन्म लेते हैं, सडक पर ही पलते हैं और सडक पर ही मर जाते हैं।

(क) दाँडेकर एवं नीलकण्ठ रथ का अध्ययन

दाँडेकर एव रथ ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'भारत मे गरीबी' मे देश की निर्धनता (1960-61 की स्थिति) का चित्र खीचा है और यह चित्र वर्तमान स्थिति मे भी बहुत कुछ सही उतरता है। इसके अनुसार, देश की निर्धनता ही देश की गरीबी का प्रमुख कारण है। ससार के सभी देशों मे भारत अत्यन्त निर्धन देश है। अफ्रीका, दक्षिणी-अमेरिका तथा एशिया के अनेक अविकसित देशो की अपेक्षा भी भारत गरीब है। निर्धनता में भारत की बराबरी केवल दो ही देश—पाकिस्तान और इण्डोनेशिया कर सकते हैं। यदि इस गरीबी को आंकडो मे स्पष्ट करना हो तो लोगो का जीवन-स्तर देखना होगा। सन् 1960-61 मे देश का औसत जीवन-स्तर अर्थात् प्रति व्यक्ति वार्षिक निर्वाह-व्यय लगभग केवल 275 से 280 रुपयो तक ही था। अर्थात् प्रति दिन औसतन 75-76 पैसो मे लोग जीवन-यापन करते थे। इस औसत को ग्रामीण एव शहरी भागो के लिए भिन्न-भिन्न करके बताना हो तो यह कहा जा सकता है कि देहाती भाग मे प्रति व्यक्ति वार्षिक निर्वाह व्यय लगभग 260 रुपये था, वार्षिक तौर पर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि शहरी भाग का जीवन स्तर ग्रामीण भाग के जीवन-स्तर की अपेक्षा लगभग 40% अधिक था। परन्तु जीवनोपयोगी वस्तुओ के मूल्यो मे ग्रामीण एव शहरी भागो मे विद्यमान अन्तर को ध्यान मे रखा जाए तो दोनो विभागो का औसत जीवन स्तर लगभग समान हो जाता है। सक्षेप मे सन् 1960 61 मे ग्रामीण जनता प्रतिदिन लगभग 75 पैसो मे और शहरी जनता लगभग 1 रुपये मे जीवन-यापन करती थी।

"समाज मे विद्यमान असमानताओ को ध्यान मे रखा जाए तो स्पष्ट है कि आधे से अधिक व्यक्ति औसत से नीचे होगे बल्कि लगभग 2/3 व्यक्ति औसत से नीचे थे। अर्थात् ग्रामीण भाग मे दो-तिहाई व्यक्तियो का दैनिक खर्च 75 पैसो से भी कम था और शहरी भाग मे दो तिहाई लोगो का दैनिक व्यय एक रुपये से भी कम था।

1. वही, पृष्ठ 21
2. केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री चह्वाण की सूचना—हिन्दुस्तान, 27 जुलाई 1974.

इनमे से अनेक व्यक्तियो का दैनिक व्यय इस औसत से बहुत ही कम था। सक्षेप मे 40 प्रतिशत ग्रामीण जनता प्रतिदिन 50 पैसो से भी कम खर्च मे जीवन-यापन करती थी। इसमे घर का अनाज या अन्य कृषि-उपज, दूध वगैरह का जो प्रयोग घर मे किया जाता है उसका बाजार मूल्य शामिल है। शहरी भाग मे 50 प्रतिशत जनता प्रतिदिन 75 पैसो से भी कम खर्च मे निर्वाह चलाती थी। दोनो भागो के बाजार-मूल्यो के अन्तर को ध्यान मे रखा जाए तो ग्रामीण भाग के 50 पैसे और शहरी भाग के 75 पैसे लगभग समान थे।"

इस गरीबी का जिन लोगो को प्रत्यक्ष अनुभव नही है, उन्हे इन आँकडो पर सहसा विश्वास नही होगा। स्वर्गीय डॉ. राममनोहर लोहिया ने कुछ वर्ष पूर्व लोकसभा मे यह कह कर सनसनी उत्पन्न कर दी थी कि भारतीय ग्रामीण की औसत आय 19 पैसे प्रतिदिन है। जैसा होना चाहिए था सरकारी स्तर पर इसका प्रतिवाद किया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् सरकारी स्तर पर ही यह माना गया कि भारतीय ग्रामीण की औसत आय 37 पैसे प्रतिदिन है और यह माना जा सकता है कि सरकारी आँकडो और वास्तविक आँकडो मे कितना अन्तर होता है।[1] दाँडेकर एव रथ की टिप्पणी है कि "अनेक व्यक्तियो को इसका विश्वास ही नही होता था और अब भी अनेक लोग इसकी सच्चाई मे सन्देह करते है। परन्तु देश की गरीबी का यह सच्चा स्वरूप है, इन आँकडो मे पैसे-दो पैसो का अन्तर पड सकता है। प्रतिशत मे एक-दो अको का अन्तर हो सकता है किन्तु स्थूल रूप मे यह आँकडे तथ्य-प्रदर्शक है।"[2]

"प्रश्न उठता है कि इतने से खर्चे मे ये लोग कैसे निर्वाह करते है? एक दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर बडा सरल है। इन लोगो के सामने यह सवाल कभी खडा नही होता कि पैसो का क्या किया जाए? शरीर की न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे ही उनका सारा पैसा खर्च हो जाता है। उदाहरणार्थ 1960-61 साल के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो ग्रामीण भाग में प्रति व्यक्ति 50 पैसो में निर्वाह करना हो तो 55 से 60 प्रतिशत खर्च केवल गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा आदि खाद्यान्नो पर, 20 से 25 प्रतिशत तेल, नमक, मिर्च, चीनी, गुड आदि खाद्य वस्तुओ पर, और 7 से 3 प्रतिशत ईंधन दीया बत्ती आदि पर करना पडता है अर्थात् कुल निर्वाह व्यय का 35 प्रतिशत भाग केवल जीवित रहने पर ही व्यय होता है। उसमे यह सोचने के लिए अवसर ही नही होता कि क्या खरीदा जाए और कौन-सी वस्तु न ली जाए। शेष 15 प्रतिशत मे कपडा, साबुन, तेल, पान, तम्बाकू, दवा-दारू आदि का खर्च चलाना पडता है। उसी मे कुछ कमी-बेसी हो सकती है।"[3]

दाँडेकर एव रथ ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि "1960-61 मे उस समय के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो ग्रामीण भाग मे न्यूनतम आवश्यकता

1. डॉ रामाश्रय राय वही, पृष्ठ 13.
2 दाँडेकर एव रथ वही, पृष्ठ 2
3. वही, पृष्ठ 3

की पूर्ति करने के लिए प्रतिदिन 50 पैसे या वार्षिक 180 रु लगते थे और इस हिसाब से 1960-61 मे देश की 40 प्रतिशत जनता गरीब थी। इन लोगो को साल भर मे दो जून भोजन नही मिलता था अर्थात् उसका विश्वास नही था। शहरी भाग से जीवनोपयोगी वस्तुओ के मूल्यो को ध्यान मे रखा जाए तो वहाँ प्रतिदिन 75 पैसे या वार्षिक 240 रुपये लगते थे। शहरी जनता म से 50 प्रतिशत व्यक्तियो को वे उपलब्ध नही थे। सक्षेप मे गरीबी की इस न्यूनतम परिभाषा के अनुसार भी 1960 61 मे अर्थात् स्वाधीनता-प्राप्ति के 10-12 वर्ष बाद और आर्थिक विकास की पचवर्षीय योजनाओ क पूरा हो जाने के बाद भी देश की 40 प्रतिशत देहाती जनता और 50 प्रतिशत शहरी जनता गरीब थी। इन सभी व्यक्तियो का हिसाब लगाया जाए तो उनकी सख्या 18 करोड से अधिक हो जाती है। 1960-61 में देश के लगभग 43 करोड लोगो म से 18 करोड लोग गरीब थे, अर्थात् भूखे थे।"[1]

"गरीबी की यह मात्रा देश के सभी भागो मे न समान थी और न है। साधारणतया उत्तरी भारत में, अथात् पजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, गुजरात आदि राज्यो में गरीबी कम है। इस प्रदेश की देहाती जनता में गरीबी की मात्रा 20-25% से अधिक नही है। इसके विपरीत दक्षिणी भारत में अर्थात् तमिलनाडु, केरल, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यो की देहाती जनता में गरीबी की मात्रा 50-60% या उससे भी अधिक है। पूर्वी भारत में, अर्थात् बिहार, उडीसा पश्चिमी बगाल, असम आदि राज्यो म भी देहाती जनता मे गरीबी की मात्रा 40 50% है। देहाती व्यक्तियो मे से अधिकतर व्यक्ति रोटी की तलाश मे शहरो की ओर आते हैं, इसलिए भारत के विभिन्न प्रदेशो मे शहरी जनता मे गरीबी की मात्रा भी उसके अनुसार कम या अधिक है।

"रोटी की आशा में यही गरीबी जब शहरो मे पहुँच जाती है तब उसका स्वरूप घृणित हो जाता है। गन्दी बस्तियो या फुटपाथ पर बैठकर सामने की आलीशान इमारतो की तडक-भडक देखते हुए, वहाँ के विलासी-जीवन के सुरो को सुनते हुए, इससे पैदा होने वाली लालसा एव ईर्ष्या को दबाते हुए या उसका शिकार बन कर यह गरीबी बुरे मार्ग पर चलने लगती है।

"सन् 1960-61 मे, अर्थात् योजनाबद्ध विकास की दो पचवर्षीय योजनाओं के पूरे हो जाने के पश्चात् भी देश की 40% देहाती और 50% शहरी जनता इस न्यूनतम जीवन-स्तर की यन्त्रणा मे फँसी हुई थी।"[2]

सन् 1960-61 की स्थिति का चित्रण करने के उपरान्त दांडेकर और रथ ने आगामी दस वर्षों के आर्थिक विकास पर दृष्टि डाली है और बताया है कि '1960 61 से 1968 69 तक विकास की गति प्रतिवर्ष 3% से अधिक नहीं होती अर्थात् राष्ट्रीय उत्पादन मे प्रतिवर्ष 3% से अधिक वृद्धि नही हुई। राष्ट्रीय उत्पादन म वृद्धि

1. वही, पृष्ठ 3
2. वही, पृष्ठ 4

की यह गति या दर देश की गरीबी को हटाने के लिए पर्याप्त नही है, क्योंकि उत्पादन मे वृद्धि के हिसाब से हो या 3 /. के हिसाब से, जनसख्या अलग से अपनी स्वतन्त्र गति से बढ रही है। इसके अतिरिक्त विकास योजनाओ मे से अनेक उत्पादन कार्यक्रम आशानुकूल फलदायी नही हुए हैं। दांडेकर एव रथ ने अपना निष्कर्ष व्यगात्मक शब्दो मे अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि "1960-61 मे जिस गरीब का दैनिक व्यय 50 पैसे था वह 8 वर्षों के उपरान्त 1968-69 मे 52 पैसे हुआ है, यह उस बेचारे के समझने मे कैसे आए ? और 1960-61 मे जिसका दैनिक व्यय 50 पैसे भी नही था, जो अधपेट रहता था, उसे यदि कोई आंकडो का यह जादू बताकर यह पूछे कि, अरे बाबा बहुत आर्थिक प्रगति हुई है, विकास हो रहा है, हरति क्रान्ति का नारा बुलन्द हुआ है, फिर भी तुम इस तरह उदास क्यो हो ? क्या तुम यह नही जानते कि दस साल पहले तुम 50 प्रतिशत भूखे रहते थे, जबकि अब केवल 48 प्रतिशत ही भूखे रहते हो ? तो यह सब उस गरीब की समझ मे कैसे आए ? देश की निर्धनता का यह स्वरूप देखने पर ऐसा लगता है कि मानो आर्थिक विकास के चूहे ने पहाड खोदना शुरू कर दिया है।"

(ख) राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का अध्ययन

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने प्रति-व्यक्ति उपभोक्ता व्यय सम्बन्धी आंकडे सकलित करके देशवासियो के जीवन-स्तर पर और इस प्रकार देश मे गरीबी की व्यापकता पर प्रकाश डाला है। इस अध्ययन को सक्षेप मे एस एच. पिटवे ने योजना मे प्रकाशित अपने एक लेख मे व्यक्त किया है[1]—

"राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का अनुमान है कि 1960 61 मे प्रति व्यक्ति उपभोक्त-व्यय 278 8 रु वार्षिक था। प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय के ये आंकडे ग्रामीण तथा शहरी दोनो क्षेत्रो से अलग-अलग उपलब्ध किए गए है। 1960-61 मे 43 27 करोड जनसख्या मे से 35·54 करोड जनसख्या ग्रामीण क्षेत्र मे और 7 73 करोड शहरी क्षेत्र मे रहती थी। अनुमान के अनुसार ग्रामीण जनसख्या का औसतन प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय 261 2 रु था और ग्रामीण क्षेत्र की लगभग दो-तिहाई जनसख्या इस औसत स्तर से नीचे का जीवन व्यतीत कर रही थी। शहरी जनसख्या का प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय औसत 359 2 रु. था और ग्रामीण क्षेत्र के समान ही शहरी क्षेत्र की भी दो-तिहाई जनसख्या इस स्तर से नीचे का जीवन व्यतीत कर रही थी। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो के उक्त निम्नस्तरीय उपभोक्ता व्यय ही इस बात के सूचक हैं कि भारत एक अत्यधिक गरीब देश है और जनसख्या का एक बडा भाग निम्न स्तर पर जीवन व्यतीत कर रहा है।

"गरीबी की व्यापकता का यह एक बहुत ही दुखदायी तथ्य है कि 1960-61 मे ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 2·27 करोड व्यक्तियो मे प्रति व्यक्ति मासिक व्यय 8 रु.

1. योजना दिनांक 7 मार्च, 1973, पृष्ठ 19—एस. एच पिटवे का लेख 'भारतीय गरीबी का विवेचन, रहन-सहन का स्तर तथा जीवन-यापन की दशा'

से भी कम था अर्थात् 27 पैसे प्रतिदिन से भी कम। यदि हम पाँचवी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे निर्धारित गरीबी के न्यूनतम उपभोक्ता व्यय (1960-61 के मूल्यो के अनुसार 20 रु. प्रतिमास और अक्तूबर 1972 के मूल्यो के अनुसार लगभग 40 रु) को यहाँ लागू करें तो विदित होगा कि 1960-61 मे ग्रामीण क्षेत्र के 22 49 करोड व्यक्ति अथवा लगभग 63 /. जनसख्या उस स्तर से भी नीचे का जीवन यापन कर रही थी। शहरी क्षेत्र का भी यही हाल था, किन्तु उनकी स्थिति उतनी बदतर नही थी। सन् 1960-61 मे 8 रु प्रतिमाह तक अर्थात् 27 पैसे प्रतिदिन से भी कम खर्च करने वाले व्यक्तियो की सख्या वहाँ 17 लाख अथवा 2 20 प्रतिशत थी। इसे भी यदि गरीबी की परिभाषा के उसी परिप्रेक्ष्य मे देखें तो विदित होगा कि शहरी क्षेत्र की लगभग 44 /. जनसख्या निम्न-स्तर पर अपना गुजारा कर रही थी। उन व्यक्तियों को जो जनसख्या के इन गरीब वर्गों तथा ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 63 / और शहरी क्षेत्र के 44 / से अछूते है, उन्हे यह अत्यन्त आश्चर्यजनक व कल्पनातीत लगेगा कि ये अत्यधिक गरीब लोग इस स्तर पर किस प्रकार अपना जीवन यापन कर रहे होगे। इसीलिए जब कोई व्यक्ति गरीबी के ये तथ्य जनता के सामने उजागर करता है तो कुछ व्यक्ति स्तब्ध रह जाते है और सम्यक् दृष्टि से उस पर अपना रोष प्रकट करते हैं तथा कुछ लोग तो इस पर विश्वास ही नही कर पाते। फिर भी, इस देश मे इस प्रकार गरीबी एक भयावह सत्य है।"[1]

(ग) डॉ. रामाश्रय राय का आर्थिक विषमता पर अध्ययन

देश मे व्याप्त आर्थिक विषमता का बडा विद्वतापूर्ण अध्ययन डॉ रामाश्रय राय (निदेशक, भारतीय सामाजिक अनुसधान परिषद्) ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान दिनाँक 23 सितम्बर, 1973 मे प्रकाशित अपने लेख 'देश के जिले और विकास के आयाम' मे प्रस्तुत किया है। इस अध्याय के कुछ मुख्य उद्धरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

I समाज के विभिन्न वर्गों, देश की भौगोलिक इकाइयो मे सुलभ आर्थिक साधनो एव सुविधाओ के वितरण के ढग मे यह विषमता ठीक प्रकार परिलक्षित होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय जनता का जीवन स्तर बहुत ही निम्न है। जहाँ अमेरिका मे प्रति व्यक्ति आय का औसत 6000 डॉलर (लगभग 43,000 रु) है, वहाँ हमारे देश मे मात्र 100 डॉलर (लगभग 725) है। ऐसी विपन्नता की स्थिति मे यदि प्राप्य साधनो के वितरण मे विषमता हो तो स्थिति कितनी शोचनीय हो जाएगी, इसकी कल्पना मात्र से सिहरन उत्पन्न हो जाएगी।

साधनो के वितरण की विषमता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 1960-61 के मूल्यो के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति औसत उपभोक्ता व्यय केवल 258 8 रु मात्र था और 1967-68 तक इसमे मात्र

1. एस. एच पिटवे . वही, पृष्ठ 19-20

10 रु की वृद्धि हुई जबकि तृतीय पचवर्षीय योजना तथा उसके पश्चात् दो वार्षिक योजनाओ मे कुल मिलाकर लगभग 15,000 करोड रु देश के विकास पर व्यय किए गए। अर्थात् प्रति व्यक्ति औसतन 300 रु व्यय किए गए। अत स्पष्ट है कि विकास का लाभ सम्पन्न वर्ग ने उठाया। इससे एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिनकी आय की मात्रा जितनी अधिक है उनको विकास स्वरूप प्राप्त लाभ मे से उतना ही अधिक अश प्राप्त होता है।

2. आर्थिक साधनो एव सुविधाओ के विकास के साथ साथ धनहीन एव धनी वर्ग के अन्तराल मे वृद्धि हुई है। ऐसी बात नही कि यह विषमता ग्रामीण क्षेत्रो तक ही सीमित हो। शहरी क्षेत्रो मे भी इस अन्तराल मे व्यापक वृद्धि हुई है। एक ओर जहाँ आलीशान कोठियो का निर्माण हुआ है, जहाँ एक वर्ग अत्यधिक आधुनिक एव सम्पन्न नजर आ रहा है वहाँ भूखे पेट या आधा पेट खा कर सोने वालो की सख्या मे भी आशातीत वृद्धि हुई है।

3. यदि भौगोलिक इकाइयो के सम्बन्ध मे विषमता को लें तो भी बडे रोचक तथ्य सामने आते हैं। देश के सभी राज्यो मे लगभग 350 जिले हैं। इनमे 303 जिलो मे किए गए सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि केवल 130 जिले ही ऐसे हैं जिन्हे औद्योगिक एव विकास की दृष्टि से शीर्षस्थ माना जा सकता है। कुल 134 जिले ऐसे है, जिन्हे कृषि-विकास की दृष्टि से उच्चकोटि का माना जा सकता है। औद्योगिक एव कृषि-क्षेत्र मे विकास की दृष्टि से सम्पन्न जिलो की सख्या मात्र 53 है और औद्योगिक दृष्टि से मध्यम किन्तु कृषि विकास की दृष्टि से उच्चकोटि मे रखे जाने वाले जिलो की सख्या केवल 86 है।

अत स्पष्ट है कि कृषि विकास की प्रक्रिया केवल उन्ही जिलो मे चल पाती है, जिनमे औद्योगिक विकास द्वारा कृषि विकास मे सहायक ढाँचे का निर्माण हो चुका है अर्थात् औद्योगिक दृष्टि से विकसित जिलो मे ही कृषि-विकास का कार्य होता है। कुछ ऐसे भी जिले है जो औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित है परन्तु कृषि क्षेत्र मे काफी विकसित हैं। लेकिन ऐसे जिले केवल वही हैं जिनके निकटवर्ती जिलो मे औद्योगिक एव कृषि विकास हो चुका है और वे निकटवर्ती होने का लाभ उठा रहे हैं। जो जिले आरम्भ से ही आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछडे हुए थे उनमे पिछली दोनो दशाब्दियो मे विकास क्रम या तो आरम्भ ही नही किए गए या बहुत कम किए जा सके हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विषमता आर्थिक क्षेत्र मे ही नही, भौगोलिक-क्षेत्र मे भी व्यापक रूप से व्याप्त है।

4. हम एक अन्य तरीके से भी इस विषमता को मान लें कि हम इन 303 जिलो को 6 वर्गों मे बाँट लें और प्रत्येक वर्ग का 6 विशेषताओ के आधार पर अध्ययन करें। ये 6 वर्ग हो सकते हैं—औद्योगिक विकास, आयुस्तरण, कृषि-विकास, धार्मिक विविधता एव आर्थिक हीनता, प्रचल जनसख्या तथा सामाजिक पिछडापन। यो चाहे तो अन्य वर्ग भी हो सकते हैं।

प्रथम वर्ग मे 58 जिले हैं जिनमे औद्योगिक विकास नाममात्र को भी नहीं

हुआ और कृषि-विकास के नाम पर भी इन 58 मे से केवल 18 जिलो ने थोडी-बहुत प्रगति की है। अभ्युत्थरण की दृष्टि से श्रम-कार्य हेतु मानव-शक्ति का अभाव है, और जो मानव-शक्ति सुलभ है, वह केवल जिले मे ही रोजगार खोजती है। जिले के बाहर जाना उनके स्वभाव के विरुद्ध है। सामाजिक दृष्टि से इन जिलो के निवासी एकलय हैं।

द्वितीय वर्ग मे 54 जिले हैं। जिनमे औद्योगिक विकास तो काफी हुआ है, परन्तु कृषि-विकास के नाम पर थोडा-बहुत ही कार्य हो पाया है। मानव-सम्पदा भी कम है। फिर इनमे से 40% जिलो की श्रम-शक्ति कार्य की खोज मे अन्यत्र चली जाती है। सामाजिक दृष्टि से पर्याप्त मात्रा मे धार्मिक विविधता विद्यमान है और काफी जिलो मे समाज के पिछडे वर्गों की सख्या अधिक है।

तृतीय वर्ग मे 68 जिले हैं, जो कृषि-क्षेत्र मे काफी विकसित हैं। इनमें से 30 जिले ऐसे हैं, जो औद्योगिक विकास की दृष्टि से बहुत पिछडे हुए हैं। यहाँ श्रम-शक्ति पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है। केवल 4 जिलो को छोड कर शेष जिलो के श्रमिक अपने जिलो से अन्य कही नही जाते। सामाजिक दृष्टि से 23 जिलो मे धार्मिक विविधता पाई जाती है और 53 जिलो मे पिछडे वर्ग के व्यक्ति अधिक सख्या मे हैं।

चतुर्थ वर्ग मे 45 जिले हैं। यह औद्योगिक विकास की दृष्टि से उन्नत हैं, परन्तु 18 जिले कृषि विकास मे पिछडे हुए हैं। 11 जिले ऐसे हैं जहाँ श्रम-शक्ति का अभाव है, फिर भी आधे से अधिक जिलो मे श्रमिक कार्य की खोज मे इधर-उधर चले जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से धार्मिक विविधता बहुत अधिक पाई जाती है और 19 जिलो मे पिछडे वर्गों की जनसख्या अधिक है।

पाँचवीं श्रेणी के 45 जिलो मे से 11 जिले औद्योगिक विकास की दृष्टि से तथा 5 जिले कृषि-विकास की दृष्टि से पिछडे हुए हैं। इस श्रेणी के अधिकतर जिलों मे श्रम शक्ति प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है और 13 जिलो के केवल थोडे से श्रमिक आजीविका की खोज मे इधर-उधर जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से 42 जिलो मे धार्मिक विविधता बहुत अधिक है और 29 जिलो मे पिछडे वर्गों की सख्या काफी है।

अन्तिम वर्ग मे 33 जिले आते हैं। इन सभी जिलों ने औद्योगिक दृष्टि से काफी प्रगति की है। कृषि-विकास में भी केवल 2 जिले ही पीछे हैं। श्रम-शक्ति भी सभी जिलो में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है, लेकिन आर्थिक विकास के बावजूद श्रमिक आजीविका के लिए अन्य क्षेत्रो मे जाते रहते हैं। केवल 8 जिलो मे धार्मिक विविधता अधिक है और 26 जिलो मे पिछडे वर्गों की सख्या अधिक है।

आर्थिक असमानता यहाँ तक बढ गई है कि सरकारी क्षेत्र मे इस बात पर चिन्ता प्रकट की जाती है कि देश के गिने चुने हाथों मे आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण होता जा रहा है। अत्यन्त अल्प-सख्यक वर्ग उत्पादन के यन्त्रो पर एकाधिकार रखे हुए है तथा एकाधिकारी-पूँजी का तीव्र विकास होता जा रहा है। नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य देश मे व्याप्त आर्थिक विषमताओ को अधिकाधिक कम करके

समाजवादी ढंग मे समाज की स्थापना की ओर आगे बढना है। हमारे देश मे एक ओर तो कुछ प्रतिशत लोग वैभव का जीवन बिता रहे हैं तो दूसरी ओर जनता का अधिकांश भाग अभाव की छाया मे पल रहा है। न उन्हे भोजन की निश्चिन्तता है और न आवास की। खाने और तन ढकने की सुविधा भी देश के करोडो लोगो को ढग से उपलब्ध नही है। लाखो लोग "फुट-पाथो पर पैदा होते हैं पनपते हैं, मुर्झाते, मर जाते हैं।"[1]

(घ) भारतीय व्यापार एवं उद्योग मण्डलों के महासंघ द्वारा किया गया अध्ययन

भारतीय व्यापार एव उद्योग मण्डलो के महासघ ने जो अध्ययन किया तद्नुसार आंकडो का जादू कुछ भिन्न बैठता है। इस अध्ययन का सारांश 16 अक्तूबर, 1972 के दैनिक हिन्दुस्तान मे निम्नानुसार प्रकाशित हुआ था—

देश मे दस व्यक्तियो मे से चार से अधिक व्यक्ति गरीबी की निर्धारित सामान्य सीमा से भी नीचे है। वे प्रतिमास देहात के लिए अपेक्षित राष्ट्रीय न्यूनतम राशि 27 रुपये प्रति मास और शहरो के लिए 40·5 रुपये प्रतिमास से भी कम व्यय करते हैं। 1969 के अन्त मे कुल 52 करोड 95 लाख की जनसख्या मे 21 करोड 83 लाख व्यक्ति अर्थात् 41 2 प्रतिशत गरीबी की निर्धारित सीमा से नीचे हैं।

सख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश और बिहार मे सर्वाधिक गरीब व्यक्ति हैं। उत्तर प्रदेश मे 3 करोड 86 लाख व्यक्ति गरीब है। देश के गरीबो का 30 प्रतिशत इन दोनो राज्यो मे रहता है। परन्तु प्रतिशत की दृष्टि से सर्वाधिक गरीब लोग उडीसा मे है। वहाँ 64 7 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की निर्धारित सीमा से नीचे हैं। इसके पश्चात् अरुणाचल प्रदेश का स्थान है। वहाँ 57 4 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की सीमा से नीचे हैं। नागालैण्ड मे 52 9 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की सीमा से नीचे हैं। दस अन्य राज्यो मे गरीबी की सीमा से नीचे वाले व्यक्तियो का प्रतिशत 40 से 50 के बीच है। अन्य राज्यो का प्रतिशत इस प्रकार है—आन्ध्रप्रदेश 42 9, असम 40·6, बिहार 49 4, जम्मू व कश्मीर 44·6, मध्य प्रदेश 44 9, मणिपुर 42·7 मैसूर (कर्नाटक) 41 3, राजस्थान 45 6, उत्तर प्रदेश 44 8 और तमिलनाडु 40 4। राजधानी दिल्ली मे गरीबी का प्रतिशत सबसे कम अर्थात् 12 2 प्रतिशत है। गोआ, दमन और दीव का प्रतिशत 14 8 है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय दिल्ली मे सर्वाधिक 1,185 रुपये, और गोआ, दमन व दीव मे 1,130 प्रतिशत है जबकि सम्पूर्ण देश की औसत प्रति व्यक्ति आय 589 रुपये है। पजाब व हरियाणा मे प्रति व्यक्ति औसत आय क्रमश 1 002 रुपये और 903 रुपये है जबकि वहाँ गरीबी की सीमा के नीचे अपेक्षाकृत कम लोग अर्थात् 20 8 प्रतिशत हैं।

1. सी एम चन्द्रशेखर (सयुक्त मुख्य नगर नियोजक, सेन्ट्रल टाउन एण्ड कन्ट्री प्लानिंग आर्गेनाइजेशन) से वार्ता पर आधारित लेख के अनुसार—प्रस्तुतकर्ता पुष्पेश पत—साप्ताहिक-हिन्दुस्तान, दिनांक 23 सितम्बर, 1973, पृष्ठ 33.

अन्य राज्यों के आंकड़े इस प्रकार हैं—

राज्य	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय (रुपये)	गरीबी की सीमा (प्रतिशत में)
गुजरात	746	33 3
हिमाचल प्रदेश	725	34·1
केरल	645	37 9
महाराष्ट्र	739	33 5
त्रिपुरा	680	36 0
पश्चिम बंगाल	705	34 9
अण्डमान व निकोबार द्वीप	800	30 5
दादर व नागर हवेली	792	30 7
चण्डीगढ	812	29·8
लक्षद्वीप द्वीप	746	32 9
पाण्डिचेरी	770	31 8

(ड) भारत में गरीबी की 1974-75 में स्थिति

भारत में व्याप्त गरीबी और असमानता के जो विभिन्न अध्ययन ऊपर प्रस्तुत किए गए हैं उनके आंकड़ों में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य है, लेकिन उनसे इस तथ्य की निर्विवाद रूप से पुष्टि होती है कि देश भयावह गरीबी की स्थिति में है। 1960 61 में देश जिस भयानक गरीबी से ग्रस्त था, लगभग उतनी ही भयावह गरीबी से आज भी है। नियोजन का अधिकांश लाभ सम्पन्न वर्ग को मिला है, विपन्न वर्ग को बहुत कम, और लाभ का यह वितरण कुछ इस रूप में हुआ है कि आर्थिक विपन्नता की खाई पूर्वापेक्षा अधिक चौड़ी हो गई है। केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व योजना-राज्य मन्त्री श्री मोहन धारिया ने 1 अगस्त, 1974 को राज्य-सभा में स्वीकार किया था कि भारतीय जनता का ⅔ भाग (अर्थात् 67 प्रतिशत भाग) गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे (Below Poverty line) जीवन व्यतीत कर रहा है—यदि 1960-61 के मूल्यों पर 20 रुपये मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग को लिया जाए।[1]

संयुक्त राष्ट्रसंघ की 3 अगस्त, 1974 की सूचना के अनुसार संयुक्त राष्ट्र महासचिव कुर्त वाल्दहीम ने भारत की गणना विश्व के 28 निर्धनतम देशों में की है। दैनिक हिन्दुस्तान, दिनांक 4 अगस्त, 1974 में यह जानकारी इस प्रकार प्रकाशित हुई थी[2]—

1. The Economic Times, Friday, August 2, 1974—"Two-thirds of Indian population was now living below poverty line, taking the monthly per capita private consumption, of Rs 20 at 1960-61 prices as the standard".
2. हिन्दुस्तान, 4 अगस्त, 1974, पृष्ठ 4.

"संयुक्तराष्ट्र महासचिव कुर्त व ल्दहीम ने भारत, पाकिस्तान तथा बंगालदेश को उन 28 देशो की सूची मे रखा है जो खाद्य तथा ईंधन की महँगाई से बुरी तरह पीडित हैं। डॉ वाल्दहीम ने बताया कि एक ही आर्थिक धरातल पर स्थित ये देश आर्थिक सकट के परिणामस्वरूप उत्पन्न कठिनाइयो का मुकाबला कर रहे हैं।

"24 देशों की जिनका प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन 200 डॉलर से नीचे है तथा चार देशो का 200 से 400 डॉलर के बीच है, सूची सयुक्तराष्ट्र के आपात् सहायता कार्यक्रम मे दानदाताओ के सूचनार्थ प्रदान की गई। आँकडे 1971 से हैं। संयुक्तराष्ट्र महासचिव ने बताया कि यद्यपि प्रत्यक देश की वास्तविक स्थिति भिन्न है लेकिन विश्वास किया जाता है कि वे सभी गम्भीर समस्याओ का सामना कर रहे है तथा कुछ मामलो मे तो स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि लोगो को अत्यधिक छीना-झपटी तथा भुखमरी का सामना करना पडता है। 24 देश जिनका प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन 200 डॉलर से कम है उनमे . केमरून, मध्य अफ्रीका गणतन्त्र, चांद, इथोपिया, केनिया, लेसोथा, मालागासी गणतन्त्र, माली, मेरिटानिया नाइजर, सिएराथिम्रोन, सोमालिया, सूडान तन्जानिया तथा अपर वोल्टा। एशिया मे बगलादेश, भारत, खमेर गणतन्त्र, लाओस, पाकिस्तान, श्रीलका, उत्तरी यमन तथा दक्षिणी यमन।

"चार अतिरिक्त देश जिनका प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन 200 से 400 डॉलर तक है, उनमे सेनेगल, एल साल्वा डोर, गुयाना तथा होन्डूरास है।"

गरीबी का मापदण्ड और भारत में गरीबी

गरीबी एक सापेक्षिक चीज है। वस्तुतः गरीबी का मापदण्ड देश और काल के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। "1964 मे अमेरिका के राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए गए एक सरकारी प्रतिवेदन के अनुसार वहाँ के 20 प्रतिशत लोग गरीबी की स्थिति मे जीवन-यापन कर रहे थे। यदि गरीबी जाँचने के उसी पैमाने को यहाँ भी लागू किया जाए तो कतिपय व्यक्तियो के अतिरिक्त देश की सम्पूर्ण जनसख्या गरीब सिद्ध होगी।" विवरण को अधिक स्पष्ट रूप मे लें तो अमेरिका जैसे समृद्ध देश मे भी गरीबी विद्यमान है। अमेरिकी शासन ने मूलत. यह निर्धारित किया है कि यदि किसी परिवार की वार्षिक आय 3,000 डालर से कम है तो उसे 'गरीब' परिवार माना जाएगा। अमेरिका 'आर्थिक अवसर' के सघ कार्यालय ने अनुमान लगाया है कि 1967 मे अमेरिका में कुल 2 करोड 20 लाख व्यक्ति गरीबो की श्रेणी मे आते थे। अमेरिका सामाजिक सुरक्षा प्रशासन के अनुसार पाँच व्यक्ति वाले एक गरीब खेतिहर परिवार की न्यूनतम आवश्यक आय 2,750 डॉलर वार्षिक अर्थात् लगभग 21,000 रुपये वार्षिक आंकी गई है। यदि इस आँकडे को भारत के सन्दर्भ मे देखें तो यहाँ के इस आय वाले पाँच सदस्यीय खेतिहर परिवार को देश के सामाजिक सम्पन्न परिवारों की श्रेणी मे रखा जाएगा अर्थात् अमेरिका मे गरीबी

1. डॉ के. एन. राज : 'गरीबी और आयोजन', योजना, 22 सितम्बर, 1972.

की जो सीमा रेखा है, भारत मे वह अमीरी की सीमा रेखा है ।[1] अत स्पष्ट है कि हमे अपने देश की स्थिति के अनुरूप अपने आँकड़े रखने होगे, भले ही अप्रिय और कटु लगें ।

देश मे विगत कुछ वर्षों से गरीबी को मापने हेतु उचित आँकडे खोजने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके आधार पर देश की गरीबी का आँकलन किया जा सके और उसका समाधान ढूंढा जा सके । योजना आयोग ने 'न्यूनतम मासिक उपभोक्ता-व्यय की आवश्यकताओ' के आधार पर प्रतिमान को स्वीकार किया है, और पाँचवीं पचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण-पत्र मे गरीबी की परिभाषा और समस्या निम्न प्रकार से दी गई है[2]—

उपभोग के निम्नतम स्तर के रूप मे गरीबी के स्तर को स्पष्ट करना है । चतुर्थ योजना दस्तावेज मे, 1960-61 के मूल्यो के अनुसार 20 रुपये प्रतिमास निजी-उपभोग को वांछित निम्नतर स्तर माना गया था । वर्तमान (अक्तूबर, 1972) के मूल्यो के अनुसार यह राशि लगभग 40 रुपये होगी । अत गरीबी के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि हमारे असख्य देशवासी जो इस समय गरीबी के स्तर से भी निम्न जीवन-निर्वाह कर रहे हैं उन्हें ऊपर दर्शाए गए निम्नतम निजी-उपभोग का स्तर प्राप्त हो सके । समस्या की प्रचण्डता और प्रभावित लोगो की सख्या प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न है । परन्तु प्रत्येक क्षेत्र मे गरीबी प्रमुख समस्या है ।

गरीबी और असमानता के मापदण्ड

गरीबी और असमानता एक सापेक्ष भाव है, जिसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन होता है । किन्तु लोगो के जीविकोपार्जन से सम्बन्धित क्रियाओ का तुलनात्मक अध्ययन करके हम अमीरी और गरीबी के बीच एक सम्भावित सीमा-रेखा खीच सकते हैं । कुल गरीबी सूचक-स्तर निम्नलिखित हैं[3]—

(1) आय-व्यय स्तर—गरीबी सूचक पहला स्तर आय व्यय पर आधारित होता है । भारत मे सर्वाधिक सम्पन्न वे माने जा सकते हैं, जिनकी वार्षिक-आय 20,000 रु से अधिक है, किन्तु अमेरिका मे इस आय से कम वाले गरीब समझे जाते हैं, अर्थात् अमेरिका मे जो गरीबी की सीमा रेखा है वह हमारे देश मे अमीरों की सीमा-रेखा है । दांडेकर और रथ के अध्ययन के अनुसार 1960-61 मे गांवो मे 50 पैसे और शहरो मे 85 पैसे प्रतिदिन प्रति व्यक्ति व्यय था । उस समय ग्रामीण जनसख्या की 40% और शहरी जनसख्या की 50% जनसख्या गरीबी का जीवन बिता रही थी । 1967-68 के सरकारी आँकडो के अनुसार 5% व्यक्ति प्रतिदिन 20 पैसे, 5-10 % व्यक्ति प्रतिदिन 27 पैसे और 40-50 % व्यक्ति प्रतिदिन के

1. एम एच पिटवे वही पृष्ठ 19.
2. भारत सरकार योजना आयोग पांचवी योजना के प्रति दृष्टिकोण 1974-79 पृष्ठ 1.
3. जी आर वर्मा का लेख—'समाजवादी समाज की स्थापना के लिए गरीबी हटाना आवश्यक'—योजना, 22 मार्च, 1973 पृष्ठ 21-22

51 पैसे व्यय करने है। यदि प्रति व्यक्ति 20 रुपये मासिक खर्च मानें तो 60% ग्रामीण और 40% शहरी जनसंख्या गरीबी की रखा से नीचे आएगी।

(2) उपभोग और पौष्टिकता का स्तर एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए सामान्यत 2,250 कैलोरी खुराक प्रतिदिन आवश्यक मानी गई है, किन्तु रिजर्व बैंक के एक अध्ययन, जिसमे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो मे क्रमश. 1100 और 1500 कैलोरी खुराक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन आवश्यक मानी गई है, के अनुसार 1960-61 मे गाँवो मे 52 जनसख्या इससे कम भोजन पाती थी। सरकारी आँकडो के अनुसार वर्तमान मे 70% ग्रामीण जनसख्या खुराक के सम्बन्ध मे गरीबी मे पल रही है तथा शहरी जनसख्या का 50 से 60% भाग भोजन और पोषण की कमी मे पलता है।

(3) भूमि-जोत-स्तर—देश की जनसख्या का 80 प्रतिशत या 44 करोड व्यक्ति गाँवो मे बसते हैं, जिनमे से 70 प्रतिशत कृषि पर निर्भर हैं। इनमे 5 एकड से कम जोत वाले 5 करोड 31 लाख या 74 प्रतिशत हैं। 2·5 करोड एकड से कम जोत वाले 4 करोड 15 लाख या 58 प्रतिशत है और 1 करोड 58 लाख या 22 प्रतिशत बिल्कुल भूमिहीन है। इस प्रकार भूमिहीनो से लेकर 5 एकड से कम जोत वाले 11 करोड से भी अधिक लोग है, जो अत्यन्त गरीबी की हालत मे जीवन बिता रहे हैं।

(4) रोजगार-स्तर—सम्पन्न या विकसित देश वे हैं, जहाँ रोजगार-स्तर ऊँचा होता है अथवा उत्पादन के सभी साधनो को उनकी योग्यतानुसार रोजगार प्राप्त होता है, किन्तु भारत मे पिछले 25 वर्षों मे बेरोजगारी 10 लाख से बढकर 4·5 करोड तक पहुँच गई है। इनमे लगभग 23 लाख शिक्षित बेरोजगार हैं। बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगार के कारण देश की लगभग 22 करोड जनता की आमदनी एक रुपया रोज से भी कम है। विनियोग और रोजगार के अभाव मे 70 प्रतिशत औद्योगिक क्षमता बेकार पडी है। विनियोग, आय और रोजगार की यदि यही स्थिति रही तो 'गरीबी हटाओ' का स्वप्न 20वी शताब्दी तक भी साकार नही हो सकेगा।

भारत मे गरीबी और असमानता के कारण

योजना आयोग ने पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण 1974-79 मे गरीबी के दो मुख्य कारण बतलाते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है—

"गरीबी के दो मुख्य कारण हैं—(1) अपूर्ण विकास तथा (2) असमानता। इन दोनो पक्षो मे से किसी एक को कम मानना या उपेक्षा करना उचित नही है। अधिकाँश जन-समुदाय दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति भी नही कर पाता। क्योंकि प्रथम बहुत बडी जनसख्या को देखते हुए कुल राष्ट्रीय आय और इस प्रकार कुल उपभोग बहुत ही कम है। द्वितीय इस आय और उपभोग का वितरण एक समान नही है। केवल एक ही दिशा मे प्रयत्न करने से इस समस्या पर काबू नही पाया जा सकता। यदि असमानता उतनी ही विकट रही, जितनी कि इस

समय है, तो वास्तविक रूप से परिकल्पित विकास दर से इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं। इसी प्रकार, विकास दर मे तीव्र वृद्धि किए बिना सम्भावित समतामय नीतियाँ स्थिति मे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकती। अत व्यापक गरीबी को दूर करने के लिए विकास करना तथा असमानताएँ घटना आवश्यक हैं।"

गरीबी और असमानता के उपरोक्त प्रमुख कारणो से सम्बद्ध अन्य सहायक कारण भी हैं। सक्षेप मे अन्य कारण निम्नलिखित हैं—

(1) यद्यपि पिछले दशक मे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन दुगुने से भी अधिक हो गया किन्तु इसी अवधि म वस्तुओ के मूल्यो मे भी दुगुनी वृद्धि हो गई तथा मूल्यो में वृद्धि की गति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन से बहुत अधिक है। जनसख्या मे 2 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होना, जबकि प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन में अनुकूल रूप मे विशेष वृद्धि न हो पाना देश की आर्थिक अवनति और गरीबी के प्रसार का परिचायक है।

(2) नियोजन के फलस्वरूप जो भी आर्थिक विकास हुआ है, उस अल्प-वृद्धि का लाभ सम्पन्न वर्ग को अधिक हुआ है अर्थात् सम्पन्नता मे वृद्धि हुई है और विपन्नता पूर्वापेक्षा अधिक बढी है।

(3) जनसख्या वृद्धि को देखते हुए कुल राष्ट्रीय आय और इस प्रकार कुल उपभोग बहुत ही कम है। इसके अतिरिक्त आय और उपभोक्ता वितरण एक समान नहीं है। व्यावहारिक रूप मे आन्तरिक उत्पादन-दर मे वृद्धि के साथ-साथ जनसख्या की वृद्धि दर को घटाने के प्रयत्न अधिकांशत असफल ही रहे हैं। चतुर्थ योजनावधि मे भी अर्थव्यवस्था का वास्तविक सचालन इसी प्रकार हुआ जिससे आन्तरिक उत्पादन दर काफी घट गई।

(4) पिछले पृष्ठो मे दिए गए आँकडे सिद्ध करते हैं कि देश मे ग्रामीण और शहरी दोनो ही जनसख्या के सभी वर्गों मे उपभोक्ता व्यय मे गिरावट हुई है। वास्तव मे प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय ही व्यक्तियो का जीवन स्तर प्रदर्शित करता है। गाँवों और शहरो दोनो मे ही गरीब वर्ग बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार आय की असमानता मे कमी होने की अपेक्षा वृद्धि ही हुई है। दांडेकर एव रथ के अनुसार आर्थिक विकास का अधिकतम लाभ ग्रामीण और शहरी दोनो ही क्षेत्रो मे उच्च मध्यम श्रेणी तथा अमीर वर्ग को ही हुआ है और निर्धन वर्ग को इससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ है, बल्कि उनके उपभोग मे गिरावट ही हुई है।

(5) प्रति व्यक्ति अन्न उपभोग को जीवन निर्वाह का मापदण्ड लिया जाय और पौषणिक स्थिति देखी जाय तो भी 1960-61 की अपेक्षाकृत स्थिति बदतर हुई है। 1960-61 मे ग्रामीण क्षेत्र मे पौषणिक न्यूनता ग्रामीण जनसख्या का 52 प्रतिशत थी जो बढकर 1967-68 मे 70 प्रतिशत तक पहुँच गई। इसके पश्चात् भी स्थिति उत्तरोत्तर गिरी ही है। अत स्पष्ट है कि देश की गरीब ग्रामीण जनसख्या घोर अपोषण की स्थिति मे जीवन निर्वाह कर रही है।

(6) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि को बढ़ी हुई जनसख्या वृद्धि खा गई है या वह देश के बड़े-बड़े पूँजीपतियो, व्यापारियो और एकाधिकारियो की जेबो मे चली गई है। इसके अतिरिक्त, मूल्य वृद्धि, बेरोजगारी, महगाई और रिश्वतखोरी ने जनता की कमर तोड डाली है। उत्पादन को तहखानो मे छिपाकर काला-बाजारी करने, मूल्य वृद्धि करने और मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति ने विपन्नता को बढाया है। इसलिए सहकारियाँ, सुपर बाजार और सस्ते मूल्य की दुकानें असफल रही हैं। सम्पत्ति की असमानता और गरीबी को बढाने मे हडतालें, तालाबन्दी, घेराव आदि की घटनाएँ भी सहायक रही है।

(7) साधनो का अभाव भी गरीबी और असमानता को बढाने मे सहायक रहा है। योजना बनाते समय साधन एकत्र करने के सम्बन्ध मे बढा-चढा कर अनुमान लगाए जाते हैं और अनेक प्रशासकीय तथा राजनीतिक बाधाओ का ध्यान नही रखा जाता है। परिणामस्वरूप प्रस्तावित कार्यक्रमो का एक भाग कार्यान्वित नही हो पाता और जो कार्यक्रम लागू होते भी है, उनका वह प्रभाव और परिणाम नही हो पाता जो अधिक नियन्त्रित और सतर्क दृष्टिकोण अपनाने से होता।

(8) पूंजी और भूस्वामित्व मे अन्तर आर्थिक विषमता का एक प्रमुख कारण है। अधिक भूमि और पूँजी वालो को बिना विशेष परिश्रम किए ही लगान, ब्याज, लाभ आदि के रूप मे आय प्राप्त होती है और उनकी आय भी काफी अच्छी होती है। भारत मे जमीदारी-प्रथा के उन्मूलन से पूर्व कृषक-क्षेत्र मे घोर विषम वितरण था। जमीदारी-प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् नेता और पूँजीपति नए जमीदार और भूपति बन गए हैं, जिनमें से अधिकांश का कार्य है रुपया उधार देना, डटकर ब्याज लेना और निर्धनो का शोषण करना। औद्योगिक क्षेत्र मे भी हम देखते हैं कि देश के प्रमुख उद्योगो पर कतिपय लोगो का ही एकाधिकार है, जो प्रतिवर्ष करोडो रुपयो का लाभ अर्जित करते हैं।

(9) आर्थिक विषमता का द्वितीय प्रमुख कारण उत्तराधिकार है। प्राय. धनिक पुत्र, उसकी सम्पत्ति बिना किसी परिश्रम के उत्तराधिकार में प्राप्त कर लेते है और धनी बन जाते हैं। इस प्रकार, उत्तराधिकार के माध्यम से, आय की विषमता फलती-फूलती आती है। दूसरी ओर निर्धन बच्चो को न तो समुचित शिक्षा ही मिल पाती है और न ही उनके लिए कमाई के लाभकारी उत्पादन-क्षेत्र ही सुलभ होते हैं।

(10) आर्थिक विषमता का एक बडा कारण धनी व्यक्तियो की बचत-क्षमता का अधिक होना है। उनकी आय प्रायः इतनी अधिक होती है कि आवश्यकताओ की पूर्ति के पश्चात् भी उनके पास पर्याप्त धन बचा रहता है। धनिको की यह बचत आर्थिक विषमता को बढाती है। यह बचत विभिन्न उत्पाद-क्षेत्रो मे पूँजी का रूप धारण करती है तथा किराए, ब्याज या लाभ के रूप मे आय को और अधिक बढाती है। दूसरी ओर निर्धन शोषण की चक्की मे पिसते रहते हैं, अत उनकी बचत-क्षमता नगण्य होती है।

(11) आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति आर्थिक विषमता का प्रबल कारण है। श्रमिको की सौदा करने की शक्ति कम होने के कारण आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और पूँजीपति इसी कारण उनको उनकी सीमान्त उत्पादकता से कम मजदूरी देकर उनका आर्थिक शोषण करते हैं। फलस्वरूप पूँजीपतियो का लाभ दिन प्रतिदिन बढ़ता है जबकि श्रमिको की स्थिति प्राय दीन हीन (विशेषकर अर्द्ध विकसित समाजो में) बनी रहती है। इस प्रकार आर्थिक असमानता निरन्तर बढती जाती है।

गरीबी एवं असमानता को दूर अथवा कम करने के उपाय

भारत सरकार देश की गरीबी और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए कृत सकल्प है। श्रीमती गांधी ने भारतीय गरीबी की तस्वीर को पहचाना है और 'गरीबी हटाओ' का सकल्प लिया है। भारतीय इतिहास मे अपने ढग का यह पहला और महत्वपूर्ण सकल्प है और इसी नारे को साकार बनाने के लिए सरकार एक के बाद एक कदम उठा रही है तथा पांचवी पचवर्षीय योजना को इसी रूप मे ढालने का प्रयत्न किया गया है कि वह गरीबी और असमानता को दूर करने वाली तथा देश को आत्म निर्भरता की सीढियो पर चढाने वाली सिद्ध हो। गरीबी और असमानता को मिटाने अथवा यथासाध्य कार्य करने के स्वप्न को साकार बनाने हेतु ही भारत सरकार ने 14 बडे बैंको का राष्ट्रीयकरण किया। राजा महाराजाओं को दिया जाने वाला मुआवजा प्रीवीपर्स बन्द किया है। भूमि की अधिकतम जोत सीमा तथा शहरी सम्पत्ति-निर्धारण के क्रान्तिकारी कदमो पर सक्रिय विचार हो रहा है और कुछ दिशाओ मे आवश्यक कदम भी उठाए गए हैं। पांचवी योजना 'गरीबी हटाओ' के उद्देश्य को लेकर चली है। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने हेतु सरकार ने विभिन्न कदम उठाए हैं—जैसे औद्योगिक लाइसेंस नीति मे समुचित सशोधन करना जमाखोरी और कालेबाजारी के विरुद्ध कठोर वैधानिक कदम उठाना रिजर्व बैंक द्वारा देश के बैंको को '50 बड़े खातों' पर सतर्क दृष्टि रखने के आदेश देना आदि।

गरीबी और असमानता को कम करने की दिशा मे निम्नलिखित अपेक्षित कदमो को उठाना आवश्यक है—

1 निजी-सम्पत्ति की सीमा कठोरतापूर्वक निर्धारित कर दी जाए। ऐसे कानून बना दिए जाएँ ताकि भूमि, नकद पूँजी मकान आदि के रूप मे एक सीमा से अधिक सम्पत्ति कोई नही रख सके। विषमता का मूल आधार ही निजी सम्पत्ति का स्वामित्व है अत इसकी सीमा रेखा निर्धारित करना अनिवार्य है।

2 इस प्रकार के वैधानिक उपाय किए जिनसे निजी सम्पत्ति के उत्तराधिकार और सम्पत्ति अन्तरण की प्रथा समाप्त हो जाए अथवा वांछित रूप से सीमित हो जाए। यह उपयुक्त है कि उत्तराधिकार म सम्पत्ति प्राप्त करने वालो पर भारी उत्तराधिकार कर' लगा दिए जाएँ। धनिको पर ऊँची दर से मृत्यु कर लगाया जाए। सम्पत्ति अन्तरण पर भेंट कर लगा दिया जाए ताकि किसी भी धनिक द्वारा अपनी सम्पत्ति अन्य के नाम अन्तरित करते समय उसे कुछ अश सरकार को देना पडे।

3. यद्यपि वर्तमान कर-नीति समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा मे सहयोगी है, तथापि यह अपेक्षित है कि धनिको पर अधिकाधिक कठोरतापूर्वक आरोही कर लगाए जाएँ। दूसरी ओर निर्धनो को करो मे अधिकाधिक छूट दी जाए, लेकिन उद्देश्य तब निष्फल हो जाएगा यदि वसूली ठीक ढग से न की गई।

4 यद्यपि सरकार एकाधिकारी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण के लिए प्रयत्नशील है, तथापि अपेक्षित है कि बिना किसी हिचक के कठोर एकाधिकार विरोधी कानून लागू किया जाए और मूल्य-सन्धियो को रोका जाए। जो कदम उठाए जा चुके हैं उन्हे इस दृष्टि से अधिकाधिक प्रभावी बनाया जाए जिससे धनी व्यक्ति एकाधिकार-गुट का निर्माण न कर सकें। यह उपाय भी विचारणीय है कि सरकार एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु का अधिकतम मूल्य निर्धारित करे।

5 विभिन्न साधनो के अधिकतम और न्यूनतम मूल्य निर्धारण की नीति द्वारा आय की असमानताएँ कम की जा सकती हैं। इस नीति का क्रियान्वयन प्रभावी ढग से होन पर आय की असमानताओ का कम होना निश्चित है। लेकिन साथ ही, इस नीति से उत्पन्न समस्याओ के निराकरण के प्रति सजग रहना भी आवश्यक है।

6. आय और सम्पत्ति की विषमता को कम करने हेतु अनर्जित आयो पर अत्यधिक उच्च दर से प्रगतिशील करारोपण आवश्यक है। भूमि के मूल्यो मे वृद्धि अथवा लगान से प्राप्त आय, आकस्मिक व्यावसायिक लाभ, काला बाजारी से प्राप्त आय, एकाधिकारी लाभ, आदि पर अत्यधिक ऊँची दर से कर लगाया जाना चाहिए।

7 सरकार को निजी-सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके आय विषमता का निराकरण करना चाहिए। लेकिन यह उपाय एक बडा उग्र-अस्त्र है, जिसे भारत जैसे अर्द्ध-विकसित और रूढिवादी समाज के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। इस बात का भय है कि इस उग्र उपाय से देश मे व्यावसायिक उद्यम को भारी आघात पहुँचे। भारत की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के प्रतिकूल है।

8 सामाजिक सुरक्षा-सेवाओ का विस्तार किया जाए। यद्यपि सरकार इस दिशा मे प्रयत्नशील है, तथापि कार्यक्रमो को अधिक प्रभावी रूप मे लागू करना अपेक्षित है। बेरोजगारी, बीमारी वृद्धावस्था, दुर्घटना और मृत्यु—इन सकटो का सर्वाधिक दुष्प्रभाव निर्धन वर्ग पर ही पडता है, अत इनसे सुरक्षा हेतु सरकार को विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना कार्यान्वित करनी चाहिए ताकि निर्धनो की आय मे वृद्धि हो सके।

9 यह भी कहा जाता है कि सरकार को निर्धन-वर्ग को कार्य की गारण्टी देनी चाहिए। सरकार को रोजगार-वृद्धि की प्रभावशाली योजना अपनाकर यह निश्चित करना चाहिए कि बेरोजगारो को रोजगार उपलब्ध हो और यदि वह सम्भव न हो तो न्यूनतम जीवन स्तर निर्वाह करने हेतु उन्हे अनिवार्य आर्थिक-सहायता सुलभ हो सके।

10 सरकार कानूनी रूप से अधिक सन्तानोत्पत्ति पर नियन्त्रण लगाए। यह निश्चित कर देना उपयुक्त होगा कि तीन बच्चो से अधिक सन्तान उत्पन्न करना कानूनी अपराध माना जाएगा। परिवार नियोजन के कार्यक्रम मे शिथिलता-बिन्दुओ को दूर करने की प्रभावी चेष्टा की जाए।

11. उत्पादन-वृद्धि दर और सार्वजनिक निजी क्षेत्रो की बचत-दर असन्तोषजनक है, अत उसमे वृद्धि करने के हर सम्भव उपाय किए जाएँ और यदि इस दृष्टि से कटु और अप्रिय साधनो का प्रयोग करना पड़, तो उसमे भी हिचक न की जाए।

12 ठोस कार्यक्रमो को लागू किया जाए। विकास की रोजगार बहुल मदों जैसे छोटी सिचाई योजनाएँ भू सरक्षण, क्षत्रीय विकास, दुग्ध-उद्योग और पशुपालन, वन-उद्योग, मत्स्य-उद्योग गोदाम व्यवस्था प्रधान कृषि आधारित उद्योगो समेत लघु-उद्योग, सडकें, तथा अन्य विशेष-कार्यक्रमो पर अधिकाधिक बल दिया जाए। दाँडेकर एव रथ के अनुसार "उन समस्त व्यक्तियो को जो कार्य करने को तैयार हैं, तत्काल शुरू हो सकने वाले कामो मे न्यूनतम मजदूरी देकर लगा दिया जाए जैसे भूमि-विकास, कृषि, वन-वृद्धि, सडक-निर्माण आदि।

13 नैतिकता और न्याय की माँग करते हुए दाँडेकर एव रथ ने गरीबी हटाने की दिशा मे समाज के समृद्ध वर्गों से त्याग की माँग की है। उनके अनुसार समाज के समृद्ध वर्गों को जो आज उस न्यूनतम स्तर से कहीं अधिक ऊँचे स्तर पर जीवनयापन कर रहे हैं, जिसका हम आज गरीबो को आश्वासन देना चाहते हैं, इस कार्यक्रम का बोझ उठाना ही पडेगा। गाँव और शहर की जनसख्या के समृद्ध वर्ग मे से पहले 5·/ लोगो के प्रतिदिन के व्यय मे 15 / की कटौती तथा उससे बाद के (कम समृद्ध) 5 / लोगो के प्रतिदिन के व्यय मे 7½ / कटौती कर देने से ही काम चल जाएगा। यह बोझ बडा नही है, बशर्ते कि अमीर लोग इन्साफ और बुद्धि से काम लें। साथ ही आवश्यक वित्तीय-उपाय भी करने होगे ताकि उन अमीरो से आवश्यक आर्थिक साधन प्राप्त किए जा सकें।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण मे गरीबी और असमानता को दूर या कम करने सम्बन्धी नीति

देश की पाँचवी पचवर्षीय योजना के कार्यक्रमो मे गरीबी उन्मूलन और असमानताओ मे कमी के सन्दर्भ मे कुछ नीति सम्बन्धी पहलुओ का उल्लेख 'पाँचवी योजना के प्रति दृष्टिकोण 1974-79' मे निम्नलिखित दिए गए हैं—

1. असमानताओ से कमी—व्यापक गरीबी उन्मूलन हेतु आवश्यक है कि विकास उससे अधिक दर पर किया जाए जिस पर उस वर्ष के दौरान हुआ है। यह भी पर्याप्त नही है। चतुर्थ योजना के दस्तावेज मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि उपभोग स्तर मे उसी प्रकार असमानता बनी रही, जो कि 1967-68 मे थी, तो 1969-70 से 1980-81 की अवधि के लिए विकास के उच्चतर की जो कल्पना की गई है, उसके बावजूद 1968 69 के मूल्यो के अनुसार जनसख्या के दूसरे गरीब

दशांश का प्रति व्यक्ति उपभोग 27 रुपये प्रतिमास होगा। यदि 1960-61 के मूल्यो के अनुसार, उपभोग-स्तर 15 रुपये प्रति मास होगा। इस प्रकार, एक दशक तक तीव्र विकास करने पर भी दूसरे दशांश को 1960-61 के मूल्यो के अनुसार 20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति मास उपभोग का स्तर प्राप्त करना सम्भव न होगा, जो निम्नतम वांछित उपभोग का स्तर माना गया था। अत स्पष्ट है कि विकासोन्मुख नीति मे पुनर्वितरण के उपाय भी दिए गए हो। इसके लिए न केवल उच्च-दर से आयोजन की आवश्यकता है, बल्कि उस विशेष वस्तु, जिसे समाज के निर्बल वर्ग चाहते है, की उत्पादन वृद्धि भी आवश्यक है। इस प्रकार वांछित विकास बडे पैमाने पर रोजगार के अवसर सुलभ करने की नीति का अनुसरण कर किया जा सकता है। इससे जन-उपभोग के समान और सेवाओ की आवश्यकता बनी रहेगी। सामाजिक उपभोग और विनियोजन मे वृद्धि भी आवश्यक है। जिससे बृहद जन-समुदाय की कुशलता और उत्पादकता का स्तर बना रहे तथा उनके जीवन-स्तर मे भी सुधार हो। सामाजिक उपभोग रोजगार उत्पन्न करने वाले इन कार्यक्रमो को तैयार करते समय यह जरूरी है कि पिछडे क्षेत्रो और जातियो को उच्च प्राथमिकता प्रदान की जाए। वास्तव मे, जो असमानता कम करने के लिए बनाए जाने वाले किसी भी कार्यक्रम की नीति का आवश्यक पहलू यह होना चाहिए कि वे पिछडे क्षेत्रो और जातियो पर विशेष रूप से कार्यान्वित हो। अत विकास के उचित स्वरूप की परिभाषा मे केवल वस्तुएँ और सेवाएँ ही नही होनी चाहिएँ, बल्कि विकास की परिभाषा मे यह भी निश्चित किया जाना चाहिए कि तुलनात्मक रूप से पिछडे क्षेत्रो और जातियो को वृद्धिशील उत्पादन और बढती आय में उचित भाग प्राप्त होगा।

2 **जनसंख्या वृद्धि को रोकना**—निरन्तर जनसख्या वृद्धि हो रही है। जनसख्या का इस प्रकार बढना गरीबी उन्मूलन के मार्ग में सबसे बडी बाधा है। इसका आन्तरिक बचत पर कुप्रभाव पडता है और विकास हेतु घातक है। इसके अतिरिक्त, विकास प्रक्रिया पर कुप्रभाव पडे बिना नही रहता, क्योंकि जीवन-निर्वाह के लिए वांछित आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन पर अधिक ध्यान देना पडता है। राष्ट्रीय आय वृद्धि की किसी विशेष दर के अनुसार जितनी अधिक जनसख्या बढेगी उतनी ही प्रति व्यक्ति आय घटती जाएगी। इन सभी कारणो से, गरीबी-उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि जनसख्या की वृद्धि को ठीक ढग से रोका जाए। अत. परिवार-नियोजन कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओ की सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ताकि इस प्रकार की व्यवस्था की जा सके जो सुखद भविष्य का सकेत देता है। पांचवी पचवर्षीय योजना मे परिवार-नियोजन कार्यक्रम के लिए विशाल राशि अर्थात् 500 करोड रुपये रखे गए है। इससे प्रभावी कार्यक्रम आसानी से चलाया जा सकता है।

3 **गरीबी उन्मूलन**—भारत मे गरीबी की समस्या बहुत व्यापक तथा जटिल है। अतः इसका किसी एक योजनावधि मे समाधान करना सम्भव नही परन्तु वर्तमान परिस्थिति हमे इस बात के लिए मजबूर करती है कि पांचवी योजना को

इस प्रकार का मोड दिया जाए ताकि गरीबी-उन्मूलन की प्रक्रिया मे तेजी लाई जा सके और जनता की आकांक्षाओ की पूर्ति हो सके। ऐसी परिस्थितियो मे जबकि मानवीय ससाधनो का पूर्ण उपयोग नही हो रहा है, यदि आयोजना और कार्यान्वयन ठीक आधार पर चलाना है तो विकास दर और उपभोग के अनुसार अधिक समानता प्राप्त करना दोनों अन्योन्याश्रित हैं। दृष्टिकोण, दस्तावेज मे दी गई प्रस्तावित विकास दर व प्रणाली विकास प्रक्रिया को विदेशी सहायता की निर्भरता से मुक्ति, अधिक कारगर और समेकित जनसख्या पर बल, रोजगार के अवसरो पर बल, निम्नतम आवश्यकताओ के राष्ट्रीय कार्यक्रम की व्यवस्था, पिछड़े वर्गों की उन्नति और पिछडे क्षेत्रो का विकास और सार्वजनिक वसूली तथा बँटवारे की पद्धति की इस प्रकार व्यवस्था की गई जिसमे गरीब जनता को अन्योन्याश्रित नीति-तत्वो के रूप मे आवश्यक सामग्री उचित एव स्थिर मूल्यो पर प्राप्त हो सके। निश्चित अवधि मे गरीबी उन्मूलन करना पांचवी योजना की मुख्य कार्य नीति है।

4 गरीबी-उन्मूलन की विशालता को ध्यान में रखना आवश्यक है। जब तक कतिपय शर्तों की पूर्ति नही की जाती तब तक योजना चाहे कितनी भी अच्छी हो देश अपना उद्देश्य प्राप्त नही कर सकता। सबसे बडी आवश्यकता दृढ स्वावलम्बन की भावना से कृषि, फैक्टरी और कार्यालय मे कार्य करने की है। जीवन और कार्यकलाप के सभी क्षेत्रो में सामाजिक अनुशासन बनाए रखना भी आवश्यक है। इसके लिए बलिदान करना पडेगा। विशेषकर उन व्यक्तियो को जो अच्छी स्थिति में हैं। इन मामलो पर काफी जनचेतना पैदा हो चुकी है और गरीबो की चुनौती का सामना करने के लिए प्रत्येक नागरिक को अपना योगदान करना पडेगा। सम्बन्धित बाधाओ को देखते हुए काफी धैर्य से कार्य करना होगा। शताब्दियो पुरानी गरीबी को दूर करना कोई आसान काम नहीं है। अत राष्ट्र को सुनिश्चित कार्यवाही द्वारा, अपने सकल्प की पूर्ति हेतु तत्पर हो जाना चाहिए।

बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम और गरीबी पर प्रहार

26 जून, 1975 को राष्ट्रीय आपात् की उद्घोषणा के तुरन्त बाद 1 जुलाई, 1975 को प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी द्वारा बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम घोषित किए जाने से पूर्व तक भारत की गरीब जनता निराशा मे डूबी रही और गरीबी का कुचक्र अपने पाँव पसारता रहा। लेकिन नवीन आर्थिक कार्यक्रम लागू किए जाने के पश्चात् एक समतापूर्ण नवीन समाज की रचना और गरीबी उन्मूलन की दिशा मे एक के बाद एक कठोर, किन्तु रचनात्मक, कदम उठाए गए और कुछ ही महीनो मे भारत के पिछडे और गरीब वर्ग में यह आशा बस गई कि सम्भवत उनके बुरे दिन निकट भविष्य मे समाप्त हो जाएँगे, वे निर्धनता का कुचक्र तोड़ने मे सफल हो सकेंगे। देश मे व्याप्त गरीबी को समाप्त कर देना कोई एक दिन का अथवा कुछ महीनो की बात नही है, इसके लिए धैर्यपूर्वक वर्षों तक निरन्तर प्रयास करने होंगे। प्रयास पहले भी किए गए थे लेकिन उनमे दम नही था, प्रशासनिक शिथिलता और समाज के धनिक वर्ग के शोषण का बोलबाला था। लेकिन 1975

के उत्तरार्द्ध से अनुशासन और जागृति का नया वातावरण बनाने और फलस्वरूप सरकार के कानूनो को ठोस रूप मे कार्यान्वित किया जा रहा है। भारत की वर्तमान स्थिति मे गरीबी हटाने का प्रमुख रूप से यह अर्थ है कि गाँवो के गरीब लोगो, विशेषकर भूमिहीन मजदूरो, छोटे और सीमान्त-किसानो तथा गाँवो के कारीगरो की स्थिति सुधारी जाए। इसीलिए प्रधान मन्त्री ने नए आर्थिक कार्यक्रम मे और अपने विभिन्न भाषणो मे इन बातो पर जोर दिया है—भूमि के कागजात स्थानीय लोगो के सहयोग से तैयार किए जाए, जोत की अधिकतम सीमा कानून का परिपालन किया जाए, भूमिहीनो को आवास हेतु स्थान दिए जाए, कृषि के लिए निर्धारित न्यूनतम वेतनो पर पुन विचार किया जाए, जागीरदारी प्रथा के अन्तर्गत बन्धक मजदूरो की प्रथा समाप्त की जाए, गाँवो मे महाजनो के लिए ऋण की अदायगी मे छूट दी जाए, आदि। इन सभी बातो पर जोर देन का अर्थ यही है कि गाँवो मे सामाजिक और आर्थिक शक्तियाँ सुविधाहीन वर्गों के हित मे अधिकाधिक कार्य करने लगे।

श्रीमती गाँधी के कार्यक्रम को साकार रूप देने हेतु न केवल सरकारी मशीनरी, बल्कि समाज की रचनात्मक शक्तियाँ पूर्णरूप मे सक्रिय हो उठी हैं। निजी-क्षेत्र को जमाखोरी, कालाबाजारी और सरचना आदि समाज विरोधी प्रवृत्तियो से मुक्त करने हेतु कठोर कानून बनाए गए हैं। आर्थिक अपराधो के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। तस्करो की कमर तोड दी गई है। बेकार भूमि के स्वामित्व को और कब्जे की सीमा को निश्चित कर देने के लिए तथा शहरो और शहरीकरण के योग्य भूमि को सार्वजनिक-सम्पत्ति बनाने के हेतु कानूनी व्यवस्था की जा रही है। औद्योगिक शान्ति की स्थापना कर प्रत्येक दिशा मे औद्योगिक उत्पादन तीव्रता से बढाया जा रहा है ताकि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय भी तेजी से बढे और व्यक्ति गरीबी के न्यूनतम स्तर से ऊँचा उठे। राज्यो मे भूमि सुधार सम्बन्धी कायक्रमो पर तेजी से अमल किया जा रहा है अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन लोगो को देने के लिए सक्रिय रूप मे कार्यवाही की जा रही है। आदिम जाति के लोगो को अपने घरेलू जमीनो के स्वामित्व के अधिकार दिए जा रहे हैं। भूमिहीन और कमजोर वर्गों को भवन निर्माण हेतु भूमि दी जा रही है। ग्रामीण मजदूरो का शोषण रोकने के लिए सभी प्रकार की बन्धुआ मजदूरी कानूनन समाप्त कर दी गई है। न्यूनतम मजदूरियो मे सशोधन किया गया है और ग्रामीण क्षेत्रो मे साहूकारो के शोषण के विरुद्ध कठोर कानूनी कदम उठाए गए हैं। साहूकारो के शोषणकारी ऋणो पर पाबन्दी लगा दी गई है तथा सहकारी ऋण सस्थाओ को मजबूत किया जा रहा है। ग्रामीण कारीगरो और सीमान्त कृषको की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए ग्रामीण बैंको का जाल बिछाया जा रहा है। ये सब कार्यवाहियाँ कोरी कागजी नही हैं, व्यवहार मे कठोरतापूर्वक इन कदमो को अमल मे लाया जा रहा है फलस्वरूप, सुपरिणाम भी सामने आने लगे हैं। यही कारण है कि देश मे उदासीनता और बेबसी का वातावरण अब विश्वास और पक्के इरादे की लहर मे बदल रहा है।

प्रधान मन्त्री का आर्थिक कार्यक्रम हमारे चिर-अभिलाषित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा मे प्रयत्न है। यदि इसे सही ढग से कार्यान्वित किया गया तो उससे भारत के विशाल जन और भौतिक साधनो का उपयोग राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास कार्यों मे हो सकेगा। प्रधान मन्त्री का कहना है कि समृद्धि पाने का कोई छोटा रास्ता नहीं है। उन्होने बताया है कि केवल एक ही जादू है जो गरीबी दूर कर सकता है, वह है, कड़ी मेहनत जिसके साथ जरूरी है—दूर-दृष्टि, पक्का-इरादा और कड़ा अनुशासन। प्रधान मन्त्री ने एक कार्यक्रम तैयार किया है जिससे समग्र राष्ट्र एक-सूत्र मे आबद्ध हो सकता है भले ही राजनीतिक विचारधारा भिन्न क्यो न हो। यह सन्देश बड़ा स्पष्ट और बलशाली है। उनका आह्वान है कि सभी देशभक्त भारतीय देश को शोषण और अभाव से मुक्त करने हेतु मिलजुल कर कार्य करें।

---

10 भारत में बेरोजगारी-समस्या का स्वरूप तथा वैकल्पिक रोजगार नीतियाँ

(The Nature of Unemployment Problem and Alternative Employment-Policies in India)

भारत एक विकासमान किन्तु अर्द्ध-विकसित देश है जहाँ बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशो की अपेक्षा भिन्न है। देश मे काफी बडी सख्या मे श्रमिक और शिक्षित बेरोजगार है अथवा अल्प-रोजगार की स्थिति मे है। ऐसे श्रमिको की सख्या मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है, जो वर्ष के कुछ महीनो मे तो कार्यरत होते है और शेष महीनो मे बेकार रहते हैं। भारत मे बेरोजगारी की समस्या इतनी विकराल बन चुकी है कि उससे हमारा सम्पूर्ण अर्थ तन्त्र बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए, लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, देश की बहुमुखी प्रगति और समृद्धि के लिए बेरोजगारी की समस्या के प्रभावी हल ढूंढना भारत के लिए निस्सदेह एक आवश्यक शर्त और गम्भीर चुनौती है। इस ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना परमावश्यक है, तथा समस्या का चिन्ताजनक पहलू यह है कि अब तक किए गए प्रयत्न बेरोजगारी की बढती फौज पर अकुश नही लगा सके हैं। कुछ दृष्टियो से सफलता मिली है, पर कुल मिलाकर वह लगभग निष्प्रभावी ही मानी जानी चाहिए क्योकि प्रत्येक योजना के अन्त मे बेरोजगारो की कुल सख्या पूर्वापेक्षा अधिक ही मिलती है।

भारत में बेरोजगारी का स्वरूप और किस्में
(Nature and Types of Unemployment in India)

भारत मे बेरोजगारी के कई रूप हैं। इनमे खुली बेरोजगारी, आंशिक बेरोजगारी, ग्रामीण अल्प-रोजगारी, शिक्षित वर्ग की बेरोजगारी, औद्योगिक-क्षेत्र मे बेरोजगारी आदि प्रमुख है। इन्हें दो मोटे वर्गों मे रखा जा सकता है—ग्रामीण बेरोजगारी एव शहरी बेरोजगारी। भारत मे बेरोजगारी के जो विभिन्न रूप उपलब्ध हैं, वे कृषि प्रधान अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे प्रायः देखने को मिलते हैं।

सरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment)—भारत मे बेरोजगारी का विशेष पहलू यह है, कि यह बेरोजगारी 'सरचनात्मक' (Structural)

किस्म की है ग्रर्थात् इसका सम्बन्ध देश के पिछड़े ग्रार्थिक ढांचे के साथ है। इसीलिए यह बेरोजगारी दीर्घकालिक प्रकृति (Chronic Nature) की है। ग्रर्थात् भारत मे श्रमिको की संख्या की ग्रपेक्षा रोजगार के ग्रवसर ग्रथवा रोजगार-मात्रा न केवल बहुत कम है वरन् यह कमी देश की पिछडी ग्रर्थव्यवस्था से सम्बद्ध भी है। पूँजी निर्माण दर बहुत नीची होने से रोजगार-मात्रा का कम पाया जाना स्वाभाविक है। इस दीर्घकालिक प्रकृति की बेरोजगारी का हल यही है कि देश का तेजी से ग्रार्थिक विकास किया जाए।

छिपी या प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment)—भारत मे बेरोजगारी के इस रूप से श्रमिको का बडा भाग प्रभावित है। यह बेरोजगारी मुख्यत ग्रामीण क्षेत्रो मे पाई जाती है। ऊपर से तो ऐसा लगता है कि व्यक्ति कार्यरत है किन्तु वास्तव म व बेरोजगार होत है ग्रर्थात् कार्यरत रहने के बावजूद उनसे उत्पादन मे कोई वास्तविक योगदान नही मिलता। प्रो नर्कसे के मतानुसार ग्रर्द्ध-विकसित ग्रर्थव्यवस्थाग्रो मे कृषि क्षेत्र मे सलग्न ग्रधिकांश श्रमिक ऐसे होते हैं जिन्हे यदि कृषि-कार्य से हटा लिया जाए तो कृषि उत्पादन मे कोई कमी नही होगी। ग्रार्थिक दृष्टि से ऐसे श्रमिको को बेरोजगार ही कहा जाएगा, क्योकि यह उत्पादन-कार्य मे कोई योग नही देते ग्रथवा इनका सीमान्त उत्पादन शून्य होता है। चूँकि ऊपर से देखने पर ये श्रमिक काम मे लगे होते हैं किन्तु वास्तव मे उत्पादन कार्य मे कोई योग न देने से ये बेरोजगार होते हैं इसीलिए इनकी बेरोजगारी को 'प्रच्छन्न बेरोजगारी' कहा जाता है। ऐसी बेरोजगारी के सम्बन्ध मे यह कहना बहुत कठिन होता है कि कितने व्यक्ति इस रूप मे बेरोजगारी के शिकार हैं।

ग्रल्प-रोजगार (Under-employment)—बेरोजगारी का 'ग्रल्प रोजगारी' स्वरूप भी देश मे पाया जाता है। इसके ग्रन्तर्गत वे श्रमिक ग्राते है जिन्हे थोडा बहुत काम मिलता है ग्रौर वे थोडा बहुत उत्पादन मे योगदान भी देते हैं, किन्तु जिन्हे वस्तुत ग्रपनी क्षमतानुसार कार्य नही मिलता ग्रथवा पूरा कार्य नही मिलता। ये श्रमिक उत्पादन मे ग्रपना कुछ न कुछ योगदान तो करते है, लेकिन उतना नही कर पाते जितना कि वे वस्तुत कर सकते है। बेरोजगारी का यह रूप भी एक प्रकार से प्रच्छन्न बेरोजगारी का ही एक ग्रग है।

मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment)—बेरोजगारी का यह स्वरूप भी मुख्यत ग्रामीण क्षेत्रो मे ही देखने को मिलता है। कृषि मे सलग्न ग्रधिकांश श्रमिक ऐसे होते हैं, जिन्हें वर्ष के कुछ महीनो मे काम उपलब्ध नही होता। ये श्रमिक वर्ष के कुछ मौसम मे तो पूर्णरूप से कार्य मे व्यस्त रहते हैं ग्रौर कुछ मौसम मे बिल्कुल बेरोजगार हो जाते हैं। साथ ही कृषि छोडकर दूसरे काम की तलाश मे बाहर भी नही जा पाते।

खुली बेरोजगारी (Open Unemployment)—इसका ग्रभिप्राय ऐसी बेरोजगारी से है जिसमे श्रमिको को कोई रोजगार नही मिलता, वे पूर्ण रूप से बेरोजगार रहते हैं। गाँवो से ग्रनेक व्यक्ति रोजगार की तलाश मे शहरो मे जाते है, लेकिन कार्य न मिल पाने के कारण बेरोजगार पडे रहते हैं।

शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment)—शिक्षा के प्रसार के साथ साथ इस प्रकार की बेरोजगारी का कुछ वर्षों मे अधिक प्रसार होने लगा है। शिक्षित व्यक्तियों या श्रमिकों की कार्य के प्रति प्रत्याशाएँ अलग सी होती है और वे विशेष प्रकार के कार्यों के योग्य भी होते हैं। शिक्षित बेरोजगारो मे अधिकांश ऐसे हैं जो अल्प रोजगार की स्थिति मे है और विशाल सख्या मे ऐसे है जो खुली बेरोजगारी की अवस्था मे हैं। शिक्षित बेरोजगार अधिकतर शहरो म पाए जाते हैं। शिक्षित ग्रामीण भी रोजगार की तलाश मे प्राय शहरो मे ही भटकते रहते हैं।

बेरोजगारी की माप
(Measurement of Unemployment)

भारत मे बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारो को देखत हुए प्रश्न उठता है कि बेरोजगारी की कौन सी किस्म म कितने बेरोजगार हैं अथवा देश मे कुल बेरोजगारो की वास्तविक सख्या कितनी है? लेकिन इस प्रश्न का उत्तर सरल नही है क्योकि देश मे बेरोजगारी की उचित माप असम्भव सी है। हमारे यहाँ बेरोजगारी कुछ इस प्रकार की है कि अभी तक ठीक ढग से इसकी माप नही की जा सकी है और इस सम्बन्ध मे उपस्थित विभिन्न कठिनाइयो को देखते हुए ही 1971 की जनगणना मे बेरोजगारो के आगमन का कार्य बन्द कर दिया गया है। दांतेवाला समिति की 1970 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार देश में बेरोजगारी के सम्बन्ध में जो भी अनुमान लगाए गए हैं वे अविश्वसनीय हैं और समुचित अवधारणाओ तथा विधियो के सहारे नही लगाए गए हैं।

भारत में कृषि क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी को मापना एक बहुत ही कठिन समस्या है क्योकि इस बात का पता लगाना लगभग असम्भव ही है कि कृषि क्षेत्र में कितने व्यक्तियो की वस्तुत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त देश में कृषि मौसम पर निर्भर है और काम काज मौसम के अनुसार चलता है अर्थात् वर्ष के कुछ भाग में अत्यधिक श्रमिको की आवश्यकता है तो कुछ भाग में बहुत कम। अत जो श्रमिक किसी एक समय में उत्पादन-दृष्टि से बहुत आवश्यक होते है वे किसी दूसरे समय में गैर जरूरी बन जाते हैं। यह भी एक बडी कठिनाई है कि ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे सही आँकडो का अभाव है। शहरी बेरोजगारी के सम्बन्ध में भी आँकडो का अभाव है जो आँकडे उपलब्ध है वे रोजगार कार्यालयो द्वारा तैयार किए गए हैं। इन कार्यालयो में मुख्यत शहरी लोग ही अपना नाम दर्ज कराते हैं और वह भी प्राय कम सख्या म। देश में बेरोजगार व्यक्तियो के लिए इन कार्यालयो में नाम दर्ज कराना अनिवार्य नही है, अत विशाल सख्या में लोग अपना नाम इन कार्यालयो में दर्ज नही करवाते। एक अध्ययन के अनुसार, भारत में लगभग 25% बेरोजगार ही—और वे भी शहरी—इन कार्यालयो मे अपना नाम दर्ज कराते हैं। अधिकांश व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो कार्यरत तो होते हैं लेकिन बेरोजगारो की सूची मे अपना नाम इसलिए दर्ज करा देते हैं कि उन्हें अधिक अच्छी नौकरी का अवसर मिल सके। सक्षेप मे बेरोजगारी की माप सम्बन्धी विषम कठिनाइयो के परिणामस्वरूप ही देश मे बेरोजगारी के सम्बन्ध मे अधिक अनुमान उपलब्ध नही है और जो थोडे बहुत हैं उनमे भी परस्पर बहुत अन्तर है।

भारत में बेरोजगारी के अनुमान
(Estimates of Unemployment in India)

यद्यपि बेरोजगारी के बारे मे विश्वस्त अनुमान और आँकड़े उपलब्ध नही हैं, तथापि इसमे सदेह नही कि देश के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र मे बहुत अधिक सख्या मे श्रमिक और शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार हैं। दतिवाला समिति के जो भी विचार रहे हो, लेकिन ये विचार श्रम बाजार मे विद्यमान परिस्थितियो पर आधारित नहीं हैं और इस निष्कर्ष से बहुत कम लोगो की सहमति होगी कि 'ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी की समस्या गम्भीर नही है।" बेरोजगारी के सम्बन्ध मे सही अनुमान न होते हुए भी इस तथ्य पर पूर्णत विश्वास किया जा सकता है कि पचवर्षीय योजनाएँ बेरोजगारी-समाधान का उद्देश्य प्राप्त करने मे असमर्थ रही है। इसके विपरीत, प्रत्येक उत्तरोत्तर योजना के साथ बेरोजगारो की सख्या मे बढोत्तरी होती गई है। एक अध्ययन के अनुसार, प्रथम योजना के अन्त तक कुल श्रम शक्ति मे से केवल 2 9% व्यक्ति बेरोजगार थे, तृतीय योजना के अन्त तक बेरोजगारी की मात्रा बढकर 4·5% हो गई और मार्च, 1969 तक यह 9 6% के आश्चर्यजनक आँकड़े तक पहुँच गई।[1] चतुर्थ योजना क प्रारम्भ मे ही लगभग 100 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे और यह अनुमान था कि चतुर्थ योजना के दौरान लगभग 230 लाख नए श्रमिक श्रम-बाजार मे प्रवेश कर जाएँगे। अत नौकरियाँ प्राप्त करने वालो की सख्या 330 लाख हो जाएगी। नौकरियो की इस माँग के विरुद्ध, 185 से लेकर 190 लाख तक नौकरियाँ कायम की जाएँगी, जिनमे से 140 लाख गैर-कृषि क्षेत्र मे और 43 से 50 लाख कृषि-क्षेत्र मे होगी। चतुर्थ योजना के अन्त पर 140 लाख बेरोजगार व्यक्ति शेष रह जाने की सम्भावना व्यक्त की गई।

भगवती समिति की रिपोर्ट मई, 1973 मे प्रकाशित, तथ्यो के अनुसार सन् 1971 मे देश मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या लगभग 187 लाख थी। इनमे से 90 लाख तो ऐसे व्यक्ति थे जिनके पास कोई रोजगार नही था और 97 लाख ऐसे थे, जिनके पास 14 घण्टे प्रति सप्ताह का कार्य उपलब्ध था और जिन्हे बेरोजगार ही माना जा सकता था। इनमे से 161 लाख बेरोजगार व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रो से थे और 26 लाख शहरी क्षेत्रो से। कुल श्रम-शक्ति के प्रतिशत के रूप मे बेरोजगार व्यक्तियो की मात्रा 10 4 प्रतिशत थी। ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी की मात्रा 10 9/ और नगरीय क्षेत्रो मे 8 1/ थी। यह विवरण निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट है—

1971 मे भारत मे बेरोजगार श्रमिक

(लाखो मे)

मद	कुल	ग्रामीण	नगरीय
कुल बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या	187	161	26
कुल श्रम शक्ति	1803 7	1483 7	320
बेरोजगार श्रम शक्ति के प्रतिशत रूप मे	10 4	10 9	8 1

1. रुद्रदत्त एव सुन्दरम् : भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ 643.

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ (I L O) के एशिया सम्बन्धी एक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत मे 1962 मे 9 0 प्रतिशत बेरोजगारी विद्यमान थी, किन्तु 1972 मे कुल श्रम शक्ति के अनुपात के रूप मे 11 प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे। अत स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ का यह अनुमान भगवती समिति के अनुमान के अनुरूप ही है।

जहाँ तक शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारो की सख्या का सम्बन्ध है एक अध्ययन के अनुसार, 1951 मे यह सख्या लगभग 2 4 लाख थी, जो 1972 मे 32 8 लाख हो गई अर्थात् इसमे 13 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई। 1970-72 के बीच शिक्षित बेरोजगारो की सख्या मे लगभग 14 6 लाख की तीव्र वृद्धि हुई।

पचवर्षीय योजनाओ के दौरान रोजगार-विनियोग अनुपात

रिजर्व बैंक के विनियोग और रोजगार के अनुमान के अनुसार प्रथम योजना के दौरान एक नई नौकरी कायम करने के लिए औसतन 5,854 रुपये का विनियोग करना पडा और द्वितीय योजना मे एक अतिरिक्त नौकरी कायम करने के लिए 7 031 रुपये का विनियोग करना पडा। तृतीय योजना मे एक अतिरिक्त नौकरी कायम करने के लिए औसतन 6 939 रुपये का विनियोग हुआ। प्रथम तीन योजनाओ के 15 वर्षों मे कुल 315 लाख नई नौकरियाँ कायम की गईं जिनमे से 225 लाख अर्थात् लगभग 72/ गैर कृषि क्षेत्र मे कायम की गई। प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ के दौरान रोजगार और विनियोग का यह चित्र निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है[1]—

पचवर्षीय योजनाओ के दौरान रोजगार और विनियोग

मद	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना
1 स्थापित अतिरिक्त रोजगार (लाखो मे)			
(क) गैर-कृषि क्षेत्र	55	65	105
(ख) कृषि क्षेत्र	15	35	40
कुल (क+ख)	70	100	145
2 कुल विनियोग (करोड रुपये)	3,360	6,750	11,370
3 1960 61 के मूल्यो पर विनियोग का सूचकांक	82	96	118
4 1960-61 के मूल्यो पर विनियोग (करोड रुपये)	4,098	7,031	10 062
5 रोजगार विनियोग अनुपात	1 5854	1 7031	1 6939

1 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, दिसम्बर, 1969—रुद्रदत्त एव सुदरम् से उदधृत, पृष्ठ 646

भारत में ग्रामीण बेरोजगारी
(Rural Unemployment in India)

भारत मे ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे तथ्य न तो स्पष्ट है और न यथार्थ ही। ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे रहस्य अब भी बना हुआ है परन्तु कई बातें अब बिल्कुल स्पष्ट हो गई है[1]—

(क) परम्परागत अर्थ मे इतनी बेरोजगारी नही है जितनी कि हम कल्पना करते हैं। सम्भवत हम ऐसी परिस्थिति मे हो जबकि बेरोजगारी तो कम हो परन्तु रोजगार मे आमदनी का स्तर बहुत निम्न हो।

(ख) परम्परागत बेरोजगारी और गरीबी सम्भवत इतने घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध न हो जैसाकि विशुद्ध तार्किक दृष्टि से लगता है—यह एक ऐसी सम्भावना है जिसके सत्य होने की स्थिति मे बहुत दूरगामी परिणाम हो सकते हैं।

(ग) ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे रोजगार और बेरोजगारी के स्वरूप की तह मे जाने और छान-बीन करने की आवश्यकता अब भी बनी हुई है और हमें यह मान कर चलना होगा कि हम इस समस्या को मात्र 'श्रम शक्ति' की धारणा से, चाहे वह कितनी ही परिष्कृत हो नही सुलभा सकेंगे।

रोजगार सृजन की योजनाएँ

ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध मे छान बीन तो जारी है परन्तु सरकार ने ग्रामीण रोजगार के लिए अनेक योजनाएँ चालू की हैं, जिनमे से निम्नलिखित अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

1 **ग्रामीण रोजगार योजना**—यह योजना 1971-72 मे एक तीन वर्षीय योजना के रूप मे आरम्भ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य श्रम-प्रधान परियोजनाएँ चलाकर देश के प्रत्येक जिले मे रोजगार के नए अवसर पैदा करना और स्थानीय विकास योजनाओ के माध्यम से टिकाऊ परिसम्पत्तियाँ पैदा करना है। योजना आरम्भ करते समय इसका लक्ष्य प्रत्येक जिले मे प्रति वर्ष 300 दिनो के लिए कम से कम एक हजार व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराने का था। देश मे कुल 355 जिले हैं और इस प्रकार 3 55 000 लोगो को 300 दिनो के लिए अर्थात् 10,65,00 000 जन दिनो का रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया। योजना को पूर्णतया केन्द्रीय क्षेत्र योजना का रूप दिया गया और इसके लिए 50 करोड रु की राशि क प्रावधान रखा गया।

ग्रामीण रोजगार योजना, जो 1971-72 मे एक तीन वर्षीय योजना के रूप मे प्रारम्भ की गई, काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई। 1973-74 तक की प्रगति का ब्योरा निम्न सारणी से स्पष्ट है[2]—

1. योजना—22 मार्च, 1973—'बेरोजगारी' पर व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद्' के निदेशक श्री आई जेड भटटी का लेख।
2. कुरुक्षेत्र—अप्रेल, 1974—'ग्रामीण रोजगार योजना' पर श्री टी सी पाण्डे का लेख।

निधि का आवटन व्यय और रोजगार

वर्ष	निधि का आवटन (लाख रु मे)	दी गई राशि (लाख रु मे)	किया गया वास्तविक व्यय (लाख रु मे)	पैदा किया गया रोजगार (लाख जन दिनो मे)
1971 72	5 000 00	3 373 43	3,116 58	789 66
1972 73	4 885 00	4 711 395 (बाद म 5 040 745 हो गया)	5,339 57	1322 51
1973 74 (30 9 73 तक)	4 745 55	1 595 74	976 13	256 31

ग्रामीण रोजगार की प्रभावशाली योजना से क्षेत्रीय कार्यकर्ताओ का ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के अन्तगत बेरोजगार जन शक्ति का उचित उपयोग करने तथा उन्हे उत्पादन और निर्माणात्मक कार्यों म लगाने की दिशा मे सफल अनुभव हुआ है। असम मेघालय, तमिलनाडु केरल आन्ध्र प्रदेश गुजरात, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के 40 से अधिक जिलो का पयवेक्षण यही सिद्ध करता है कि ग्रामीण रोजगार योजना काफी सफल रही है और इसे समाप्त न करके अधिक प्रभावी रूप मे आगे भी जारी रखना चाहिए।

2 छोटे किसानों की विकास एजेन्सी—इस योजना का लक्ष्य थोडी सहायता देकर छोटे किसानो को अपने पैरो पर खडा होने के योग्य बनाना है। छोटे किसानो के अन्तर्गत वे किसान आते हैं जिनके पास 2 5 से 3 एकड सिंचित (या सिंचाइ के योग्य) या 7 5 एकड तक असिंचित भूमि है। यह सहायता आदानो या ऋण के रूप म हाती है ताकि किसान नए बीजो और खादो का पूरा पूरा लाभ उठा सकें।[1]

3 सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सी—इस योजना के भी वही लक्ष्य हैं जो छोटे किसानो की विकास एजे सी के हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह योजना छोटे किसानो की विकास एजेन्सी के अन्तर्गत न आने वाले छोटे किसानो और कृषि श्रमिको के लिए है। इसलिए यह छोटे किसानो की विकास एजेन्सी की पूरक है। *ग्रामीण कार्यों के माध्यम से कृषि श्रमिकों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध* कराना और छोटे किसानो को उसी प्रकार ऋण आदान तथा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना जिस प्रकार वे छोटे किसानों की विकास एजेन्सी क अन्तगत उपलब्ध कराई जाती हैं इस योजना का लक्ष्य है।[2]

1 योजना दिनाक 22 माच 1973—'बेरोजगारी पर आई जैड भट्टी (व्यावहारिक आर्थिक अनुसधान की राष्ट्रीय परिषद् के निदेशक) का लेख पृष्ठ 6

2 वही, पृष्ठ 6

4 सूखाग्रस्त क्षेत्रो के लिए कार्यक्रम—ग्राम्य निर्माण कार्यक्रम नामक योजना के लिए यह नया नाम है, जो 54 सूखाग्रस्त जिलो तक सीमित है। इस योजना का लक्ष्य 'उत्पादन प्रधान' ऐसे निर्माण-कार्यों को हाथ मे लेना है जिनमे श्रम-प्रधान तकनीकों का प्रयोग हो, ताकि सूखे के कारण पैदा होने वाली कमी की भीषणता को कम किया जा सके।[1]

उपरोक्त विभिन्न रोजगार-सृजन-योजनाएँ काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। व्यावहारिक आर्थिक अनुसधान की राष्ट्रीय परिषद् के निदेशक श्री आई. जैड भट्टी ने 22 मार्च, 1973 के योजना-अक म तक प्रस्तुत किया है कि यदि हम परम्परागत बेरोजगारी के स्थान पर रोजगार की प्रभावशालिता पर विचार करें तो ग्रामीण बेरोजगारी सम्बन्धी रहस्य काफी मात्रा तक लुप्त हो जाएगा और हम गरीबी की समस्या से भी अधिक अच्छी तरह निपटने मे समर्थ होगे। उपचार की दृष्टि से हम स्वय उत्पादन के सृजन पर उतना बल नही देंगे जितना कि समाधनो के विकास पर। उपरोक्त सरकारी योजनाओ मे यद्यपि दोनो ही तत्त्व हैं, तथापि ससाधनो का विकास वस्तुत इनमे गौण महत्त्व रखता है। श्री भट्टी के अनुसार गाँवो की गरीबी की समस्या का सही दर्शन हमे इस बात के लिए प्रेरित करे कि हम समाधनो के विकास और तत्काल ही सस्थापक ढाँचे के विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इसके लिए नीति सम्बन्धी कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होगे।

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के उपाय

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने और ग्रामीण जन-शक्ति का समुचित उपयोग करने के लिए सरकारी क्षेत्र मे योजनाओ द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमो के अन्तर्गत सघन कृषि-कार्यों में मजदूरों का उपयोग करना, निर्माण-सुविधाओं को बढाना, गाँवो में लघु और ग्राम्य उद्योगो को सगठित करना आदि अनेक कार्य सम्मिलित हैं। सरकार की यह नीति रही है कि जहाँ तक हो सके मानव-श्रम-क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जाए तथा आधुनिक मशीनो और यन्त्रो का उपयोग केवल उन्ही क्षेत्रो में किया जाए जहाँ मानव-श्रम विकास-कायक्रमो को पूरा करने में समर्थ न हो। लेकिन इन सब बातो के बावजूद ग्रामीण बेरोजगारी कम होने के स्थान पर ही है। अत आवश्यक है कि पूरी ग्रामीण शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए विशाल पैमाने पर कार्य किए जाएँ। इसके लिए कुछ उपयोगी सुझाव निम्नलिखित हैं—

1 ग्राम-पचायतो के अन्तर्गत जो विभिन्न कार्यक्रम (नालियाँ खुदवाना, तालाब खुदवाना, सडकें बनाना, छोटे-छोटे पुल बाँधना, भवन निर्माण करना आदि) चल रहे हैं उन्हें अधिक व्यापक स्तर पर और अधिक प्रभावी रूप में आगे भी जारी रखा जाए।

2 पचायतो को सौंपे गए कार्यों के अतिरिक्त स्थायी रूप से चलने वाले अन्य रोजगार-साधन भी गाँवो में प्रारम्भ किए जाने चाहिए तथा इनके लिए

1. वही, पृष्ठ 7.

सेवा-सहकारी सस्थाओं को उत्तरदायी बनाया जाए। देश का समस्त ग्रामीण क्षेत्र सेवा-सहकारी सस्थाओ से सम्बद्ध है। उनका उपयोग कृषि-ऋण वितरण के लिए तो किया ही जाता है, किन्तु इनके अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगो-जैसे पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, मछली-पालन, मुर्गीपालन, टोकरी बनाना, साबुन बनाना, मिट्टी के बतन बनाना, बुनकर उद्योग, लुहारी, सुनारी, आदि के लिए साख की पूर्ति तथा अन्य सुविधाओ की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इन ग्रामीण उद्योगो एव व्यवसायो का व्यापक रूप से विस्तार किया जाए। अधिक से अधिक ग्रामीण जन-शक्ति का स्थायी उपयोग उन्हे इन उद्योगो में लगाकर ही किया जा सकता है। इससे गाव में रोजगार के अवसरो के साथ ही उत्पादन मे भी वृद्धि होगी।

3 सहकारी सयुक्त कृषि समिति या सामूहिक सहकारी कृषि समिति, मछली पालन समिति, सिचाई समिति, श्रम-निर्माण समिति, औद्योगिक एव बुनकर समिति आदि की स्थापना अलग से भी गाँवो में करना उपयोगी है। इन समितियो द्वारा गाँवो में रोजगार की व्यवस्था की जा सकती है।

4. गाँवो के 10 से 18 वर्ष तक के बच्चो को इस प्रकार के काम देने चाहिए, *जिन्हे वे अपने विद्या-अध्ययन करने के साथ-साथ कर सक।* इससे उन्हे और उनके परिवार को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकेगी। पाठशाला भवन की सफाई, उसकी मरम्मत, उसमें फूलो का बाग लगाना, गाँव में मन्दिरो तथा पचायत घर आदि के आस-पास बाग बगीचा लगाना, मिट्टी के खिलौने बनाना, काष्ठ की वस्तुएँ एव खिलौने बनाना, कढाई, ड्राइग, सिलाई, कटाई, महिला एव बच्चो क बचत बैंक खोलना, पाठशाला में सहकारी उपभोक्ता भण्डार खोलना एव उसका सचालन करना आदि अनेक कार्य है, जो विद्याध्ययन के साथ-साथ किए जा सकत हैं।

5. भूमि के चकबन्दी-कार्यक्रम को तेजी से अमल में लाया जाए ताकि किसान उसमें कुआ बनाकर डीजल-इजन या बिजली की मोटर से सिचाई कर सके। सिचाई की व्यवस्था होने से किसान वर्ष में दो या तीन फसल तैयार करके अपने बेकार समय का पूरा उपयोग कर सकेंगे। साथ ही, एक जगह सारी भूमि इकट्ठी होने से भूमि की देखभाल भी अच्छी तरह हो सकेगी।

6. सरकार ऋण प्रणाली को सुगम बनाए। सरकार ने कृषि की उन्नति के लिए ऋण व्यवस्था तो की है परन्तु उसकी विधि इतनी पेचीदा, उलझनपूर्ण और जटिल है कि साधारण कृषक 6 माह तक अथक् परिश्रम करने के पश्चात् भी ऋण प्राप्त नही कर सकता। अत. सरकार को चाहिए कि ऋण स्वीकार करने की विधि को अधिक सरल बनाया जाए। प्रत्येक पचायत स्तर पर एक ऐसा चलता-फिरता कार्यालय बनाया जाए जो निश्चित तिथि पर गाँव में जाए और पटवारी, ग्राम सेवक तथा सहकारी समितियो से आवश्यक सूचना एकत्रित करके ऋण उसी स्थान पर स्वीकार करे। किसान को उसकी जमीन सम्बन्धी जानकारी के लिए पास बुक दी जाएँ, जिसमें ऋण, यदि कोई लिया हो, तो वह भी लिखा जाए।

7. शिल्पी वर्ग जिसमें लुहार, खाती, बुनकर, चर्मकार आदि सम्मिलित हैं,

बहुत दयनीय ग्रवस्था में है। इस वर्ग के लोगो के ग्रपने धन्धे बन्द होने जा रहे हैं फलस्वरूप ये लोग शहरो में जाकर नौकरी की तलाश में भटकते फिरते हैं या गाँवो में रहकर ग्रपना निर्वाह बडी ही दुष्कर स्थिति में करते है ग्रत ग्रावश्यक है कि इस वर्ग के लोगो को उचित ट्रेनिंग देकर उनकी ग्रपनी सहकारी समितियाँ बनवाई जाएँ तथा उनके धन्धो का ग्राधुनिकीकरण करन मे उन्हे धन ग्रौर ग्रावश्यक साज-सामान की सुविधा दी जाए।

8 जो ग्राम शहरो के पास स्थित हैं, जहाँ ग्रावागमन के साधन सुलभ हैं, वहाँ मुर्गी पालन ग्रौर डेरी उद्योग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा गठित भगवती समिति ने भी ग्रपनी सिफारिश मे यह सुझाव दिया था।

शिक्षित बेरोजगारी
(Educated Unemployment)

भारत जैसे ग्रर्द्ध विकसित किन्तु विकासशील देश मे जहाँ 3/4 जनसख्या ग्रशिक्षित है, सामान्य लिखने पढने वाले व्यक्ति को भी शिक्षित कहा जा सकता है। लेकिन शिक्षित बेरोजगारी के ग्रन्तर्गत वे ही व्यक्ति माने जाएँगे जिन्होने कम से कम मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करली हो। भारत मे ग्रधिकांश शिक्षित व्यक्ति बेरोजगारी के किसी न किसी रूप से पीडित है। सरकार के पास इतने साधन नही हैं कि वह ग्रल्पकाल मे सभी शिक्षितो को ग्रथवा शिक्षित बेरोजगारो को रोजगार या पर्याप्त बेकारी भत्ता ग्रादि दे सके। उपलब्ध ग्राँकडो के ग्रनुसार 1972 मे लगभग 32 8 लाख शिक्षित बेरोजगार थे। 1970 मे लगभग 63 हजार इजीनियर बेरोजगार थे। कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित पुस्तक 'भारत मे प्रशिक्षितो की बेरोजगारी' मे यह बताया गया है कि मार्च 1970 मे 34 5 लाख शिक्षित व्यक्ति रोजगार की तलाश मे थे जिनकी सख्या मार्च, 1971 तक 44 4 लाख हो गई ग्रर्थात् 1 वर्ष मे 22 2 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। इस पुस्तक के ग्रन्तिम ग्रध्याय मे चेतावनी देते हुए लिखा गया है, 'हमारे शिक्षित युवको मे बढती हुई बेरोजगारी हमारे राष्ट्रीय स्थायित्व के लिए जबरदस्त खतरा है। उसे रोकने के लिए यदि समयोचित कदम नही उठाया गया तो भारी उथल पुथल का ग्रन्देशा है।"[1]

शिक्षित बेरोजगारी को दूर करने के उपाय

देश मे शिक्षित बेरोजगारो की समस्या को दूर करने के लिए सरकार यद्यपि विभिन्न तरीको से प्रयत्नशील है, तथापि निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है—

1 देश मे शिक्षित व्यक्तियो के लिए रोजगार के ग्रवसर तब तक नही बढ सकते जब तक कि द्रुत ग्रौद्योगिक विकास नही हो। यद्यपि सरकार ग्रौद्योगिक विकास के लिए सचेष्ट है, लेकिन उच्च स्तर के कराधान की नीति इस मार्ग मे एक बडी बाधा है। ग्रधिक कराधान से बचत को प्रोत्साहन नही मिलता ग्रौर जब तक

1. योजना, 22 मार्च, 1972 जी सी जायसवाल का लेख शिक्षित बेरोजगारो की समस्या राष्ट्रीय स्थायित्व के लिए खतरा है?' पृष्ठ 18

बचत नही होगी तथा उसका उचित विनियोग नही होगा, तब तक रोजगार नही बढेगा। अतः आवश्यक है कि कराधान दर को कम करके औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दिया जाए।

2 देश मे उत्पादन-क्षमता का हाल ही के वर्षों म ह्रास हुआ है। उत्पादन क्षमता तो विद्यमान है, लेकिन विभिन्न कारणो से उसका पूरा उपयोग नही हो पाता। साथ ही, उसमे उदासीनता की प्रवृत्ति भी बढ रही है। अत इस प्रकार के उपाय किए जाने चाहिए कि उत्पादन क्षमता के अनुसार पूरा उत्पादन हो सके ताकि अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो। देश मे अनेक ऐसे औद्योगिक सस्थान हैं जिनमे पूर्ण उत्पादन नही हो रहा है। सार्वजनिक-क्षेत्र इस रोग का सबसे बुरा शिकार है।

3 देश मे लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास अपेक्षित गति से नही हो पा रहा है, जबकि इन उद्योगो की रोजगार-देय-क्षमता काफी अधिक होती है। जापान जैसे देश मे लघु उद्योगो मे लगभग 70 प्रतिशत लोगो को रोजगार मिलता है तो भारत जैसे विशाल देश मे, जहाँ इन उद्योगो के प्रसार की गुँजाइश है, बहुत बडे प्रतिशत मे रोजगार के अवसर बढाए जा सकते है।

4 इलैक्ट्रोनिक उद्योग का विकास भारत के लिए नया है। यदि इसका विस्तार किया जाए तो हजारो इजीनियरो या डिप्लोमा होल्डरो को रोजगार मिल सकता है।

5. तकनीकी विशेषज्ञो के लिए सेवा-क्षेत्र, रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकता है। वर्तमान मे ट्रांजिस्टरो, डीजल-इजनो, वाहनो, रैफ्रिजरेटरो आदि क्षेत्रो मे उपयुक्त सेवा एव सुधार की व्यवस्था उपलब्ध नही है। अत इस सेवा-क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

6 रोजगार की दृष्टि से वनो का समुचित प्रयोग नही किया जाता है। अन्य राज्यो को चाहिए कि वे भी पश्चिमी बगाल राज्य के समान वन्यगहन प्रशिक्षण, जगली जडी बूटी की खोज, पशुपालन एव चिकित्सा जैसे कार्यो को प्रोत्साहन देकर शिक्षित व्यक्तियो के लिए अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करे।

7. सरकार सभी शिक्षित लोगो को न तो नौकरी प्रदान कर सकती है और न ही बेरोजगारी का भत्ता दे सकती है। यह बात प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी एक बार नही कई बार कह चुकी है। अत. विभिन्न क्षेत्रो के तकनीकी विशेषज्ञो को चाहिए कि वे अपना रोजगार स्वय खोलें तथा अन्य सस्थाओ से पूँजी तथा कच्चे माल की व्यवस्था करें।

8 19वी शताब्दी की शिक्षा प्रणाली को यथाशीघ्र बदला जाए, क्योकि यह नौकरशाही वर्ग को पैदा करने वाली है जो वर्तमान स्थिति मे निष्क्रिय सिद्ध हो चुकी है। नवीन शिक्षा पद्धति मे श्रम की महत्ता प्रतिष्ठित की जानी चाहिए तथा नौकरियो के पीछे दौडने वाली शिक्षा को तिलांजलि दी जानी चाहिए।

9. एक परिवार मे जितने कम बच्चे होगे, उनकी शिक्षा दीक्षा का उतना ही उचित प्रबन्ध हो सकेगा तथा उचित नौकरी मिल सकेगी। जहाँ बच्चे अधिक

वहाँ शिक्षा अपूर्ण होगी और अल्प शिक्षित लोग शिक्षित बेरोजगारो की सख्या को बढाएँगे । अत. परिवार सीमित होना आवश्यक है ।

10. शिक्षित बेरोजगारो द्वारा स्वय के उद्योग धन्धे चालू करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । इस कार्य के लिए उन्हे कम ब्याज-दर पर बैंक एव अन्य सस्थाओ से ऋण दिलाए जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए । सरकार द्वारा उन्हे सुविधाएँ भी दी जानी चाहिए, जैसे आयकर की कुछ छूट, कच्चे माल की सुविधा, लाइसेंस की व्यवस्था आदि ।

11 देश में कृषि-शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए, विशेष रूप से ग्रामीण-क्षेत्रो मे, ताकि शिक्षित लोग कृषि-व्यवस्था की ओर अग्रसर हो सकें ।

12 सरकार द्वारा चालू किए गए कार्यक्रमो की उपलब्धियो से सम्बन्धित पर्याप्त आँकडे एकत्रित किए जाने चाहिएँ और उनके आधार पर भविष्य के लिए इस समस्या से सम्बन्धित कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिएँ तथा उन्हे कार्यान्वित किया जाना चाहिए ।

यदि इन विभिन्न उपायो पर प्रभावी रूप मे अमल किया जाए और जो उपाय किए जा रहे हैं उन्हे अधिकाधिक व्यावहारिक तथा प्रभावशाली बनाया जाए तो शिक्षित बेरोजगारी की समस्या दूर की जा सकती है ।

बेरोजगारी के कारण
(Causes of Unemployment)

भारत मे फैली व्यापक बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1 जनसख्या-वृद्धि की तुलना मे अल्प आर्थिक विकास—देश मे प्रतिवर्ष 2 5% की दर से जनसख्या बढ़ रही है, लेकिन द्रुत आर्थिक विकास न हो पाने के कारण जनसख्या-वृद्धि के अनुपात मे रोजगार की सुविधाओ मे वृद्धि नहीं हुई है । परिणामस्वरूप, श्रम-शक्ति के बाहुल्य की समस्या उत्पन्न हो गई है । स्वतन्त्रता से पूर्व कई दशाब्दियो तक देश की अर्थ-व्यवस्था के स्थिर रहने, परम्परागत उद्योगो का पतन होने और साथ ही आधुनिक ढग के विस्तृत पैमाने के उद्योगो के विकसित न हो सकने के कारण देश मे बेरोजगारी बढती गई । स्वतन्त्रता के पश्चात् यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ के माध्यम से देश के आर्थिक विकास के प्रयत्न किए गए हैं, लेकिन आर्थिक विकास की गति बहुत धीमी रही है । साथ ही योजनाओ में रोजगार प्रदान करने के सम्बन्ध मे कोई व्यापक एव प्रगतिशील नीति अपनाई जाने सम्बन्धी कमी भी रही है । फलस्वरूप, देश मे बेरोजगारी का निरन्तर विस्तार हुआ है । आयोजित विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत बढ रहे रोजगार के अवसर श्रमिक सख्या मे हो रही वृद्धि की तुलना मे कम हैं अत बेरोजगारी कम नही हो पाती, वरन् निरन्तर बढती जाती है । जनसख्या-वृद्धि का एक प्रभाव यह हुआ है कि उपभोग व्यय मे भारी वृद्धि होने लगी है और पूंजी निवेश के लिए बचत आवश्यकतानुसार उपलब्ध नही हो पा रही है ।

2 दोषपूर्ण आयोजन—रोजगार की दृष्टि से भारतीय आयोजन मुख्यत.

दो प्रकार से दोषपूर्ण रहा है। प्रथम, रोजगार नीति से सम्बन्धित है और द्वितीय, परियोजनाओं का चयन। पंचवर्षीय योजनाओं मे एक व्यापक प्रभावी और प्रगतिशील रोजगार नीति का बहुत बडी सीमा तक प्रभाव रहा है। प्रारम्भ मे यह विचार प्रबल रहा कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि होगी, अत विकास नीतियाँ बनाते समय रोजगार के उद्देश्य को लेकर अलग से विचार नहीं किया गया और न ही इस बात के लिए कोई नीति निर्धारित की गई कि योजनावधि में कितने लोगो को रोजगार दिए जाने है। रोजगार को योजना के मूल उद्देश्यो में अवश्य सम्मिलित किया गया, लेकिन इसे उच्च प्राथमिकता नही दी गई। रोजगार को केवल परिणाम के तौर पर समझने और मापने की नीति रही। केवल योजना-कार्यक्रमो के फलस्वरूप उपलब्ध होने वाले रोजगार के अनुमान लगाए गए। यह सोचकर नही चला गया कि योजनाओं के माध्यम से इतनी सख्या में लोगो को निश्चित रूप से रोजगार दिया जाना है। अब आगे चलकर द्वितीय योजनावधि में लघु उद्योगो पर जोर दिया गया तो रोजगार के अवसर बढने लगे, लेकिन इस योजना के दौरान भी मूलत रोजगार-उद्देश्य को सामने रखकर इन उद्योगो को महत्त्व नही दिया गया। आयोजन की दूसरी गम्भीर त्रुटि परियोजनाओं के चयन सम्बन्धी रही। कुछ विशेष उद्योगो को छोडकर, जहाँ पूँजी प्रधान तकनीक का अपनाया जाना अनिवार्य था, अन्य बहुत से उद्योगो के सम्बन्ध में वैकल्पिक उत्पादन-तकनीको के बीच चयन करने की ओर समुचित ध्यान नही दिया गया। विदेशी तकनीको पर निर्भरता बनी रही और कम श्रम प्रधान उत्पादन विधियो को मान्यता दी जाती रही। चतुर्थ योजना काल से सरकार ने रोजगार नीति में स्पष्ट और प्रभावी परिवर्तन किया। लघु उद्योगो को प्रोत्साहन दिया गया और ऐसी योजनाएँ चालू की गई जिनकी रोजगार देय क्षमता अधिक हो। रोजगार के लक्ष्य निर्धारित करके निवेश कार्यक्रम तैयार किए जाने और उसे कार्यरूप देने की दिशा में सक्रिय कदम उठाए गए। पाँचवी योजना का मुख्यत रोजगार सवर्द्धक बनाने की चष्टा की गई है।

3 **दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति**—भारतीय शिक्षा पद्धति, जो मूलत ब्रिटिश देन है दफ्तरी 'बाबुओं' को जन्म देती है। यह शिक्षा पद्धति छात्रो को रचनात्मक कार्यों की ओर नही मोडती तथा स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा भी नही देती। यह शिक्षा-पद्धति 'कुर्सी का मोह' जाग्रत करती है, इस प्रकार की भावना पैदा नही करती कि सभी प्रकार का श्रम स्वागत योग्य है।

4 **कृषि का पिछडापन**—भारत एक कृषि प्रधान देश है, लेकिन यहाँ की कृषि पिछडी हुई है और कृषि उत्पादन अन्य देशो की अपेक्षाकृत बहुत कम है। कृषि-व्यवसाय मे ग्रामीण क्षेत्रो मे लगभग 70% लोग लगे हुए हैं और प्राय दूसरे व्यवसायो से प्राय दूर भागते हैं। इस प्रकार भूमि पर ही लोगो की आत्म निर्भरता बढती जा रही है फलस्वरूप देश मे अल्प रोजगार, प्रच्छन्न बेरोजगारी आदि मे काफी वृद्धि हो रही है।

बेरोजगारी के उपरोक्त मूलभूत कारणो मे ही अन्य सहायक अथवा गौण कारण निहित हैं। अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि, अन्य प्राकृतिक प्रकोप, लोगो मे आलसीपन की प्रवृत्ति, सयुक्त परिवार प्रणाली, 'घर से चिपके रहने' की बीमारी, आदि कारण भी बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी हैं।

बेरोजगारी : उपाय और नीति
(Unemployment : Measures and Policy)

बेरोजगारी की समस्या के निदान हेतु आर्थिक एव राजनीतिक क्षेत्रो से विभिन्न सुझाव दिए जाते रहे हैं और सरकार द्वारा भी निरन्तर प्रयत्न किए जाते रहे हैं। ग्रामीण बेरोजगारी और शिक्षित बेरोजगारी निवारण के सदर्भ मे निम्नलिखित सुझाव विचारणीय है—

(1) अधिकतम आय स्तर पर अधिकतम रोजगार की व्यवस्था करने के लिए जनसख्या-वृद्धि पर तेजी से और कठोरता से नियन्त्रण लगाना पडेगा। इस सम्बन्ध मे परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमो को व्यापक बनाना और कठोरतापूर्वक लागू करना होगा। यह भी उचित है कि कानूनी रूप से तीन से अधिक सन्तान उत्पन्न करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए।

(2) लघु एव कुटीर उद्योगो के तीव्र विकास के साथ ही मिश्रित कृषि को अपनाया जाए अर्थात् कृषि के साथ-साथ पशुपालन और मुर्गीपालन आदि उद्योग भी अपनाए जाएँ।

(3) मानवीय श्रम पर अधिकाधिक बल दिया जाए, जहाँ मशीनीकरण से कोई विशेष बचत न होती हो, वहाँ मानवीय श्रम का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए।

(4) अधिक जनसख्या वाले क्षेत्रो मे किसी बडे विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन के बाद भी यदि बेरोजगार व्यक्ति बचे रहे तो उन्हे एक बडी सख्या मे काम सिखा कर उन क्षेत्रो मे भेजा जाए, जहाँ ऐसे प्रशिक्षित कारीगरो की कमी हो। इसके लिए प्रशिक्षण एव मार्ग-दर्शन योजनाएँ प्रारम्भ की जानी चाहिए।[1]

(5) ग्रामीण औद्योगीकरण एव विद्युतीकरण का तेजी से प्रसार किया जाए। प्रत्येक क्षेत्र में औद्योगिक विकास का एक-एक केन्द्र कायम किया जाए और इन्हे परिवहन तथा अन्य समुचित सुविधाओ के माध्यम से एक कडी के रूप मे जोड दिया जाए। ऐसे केन्द्र उन शहरो या गाँवो मे स्थापित किए जाएँ, जो कुशल कारीगरो तथा उद्योगपतियो को खीच सकें और उन्हे बिजली तथा अन्य सुविधाएँ दी जा सकें।[2]

(6) शिक्षा-पद्धति को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाय जिससे कर्मचारियो की आवश्यकताओ के बदलते हुए ढाँचे से उसका मेल बैठ सके। कुछ चयनित क्षेत्रो

1. योजना, दिनांक 22 मार्च, 1973 मे चन्द्रप्रकाश माहेश्वरी का लेख 'बेरोजगारी की समस्या पर एक विहगम दृष्टि', पृष्ठ 25.
2. वही, पृष्ठ 25.

मे जन-शक्ति सम्बन्धी अध्ययनो का आयोजन और तकनीकी शिक्षा-क्षेत्रो का विस्तार करने की नीति पर तेजी से अमल किया जाए।

(7) कृषि-क्षेत्र मे वृद्धि की जाए। भारत मे लाखो एकड जमीन बगर और बेकार पडी है जिसे अल्प प्रयास से ही कृषि-योग्य बनाया जा सकता है। इससे एक ओर तो श्रमिको को रोजगार मिलेगा तथा दूसरी ओर कृषि-क्षेत्र मे वृद्धि होकर कृषि-उत्पादन बढेगा।

(8) आयोजन के निवेश-ढाँचे मे, रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से, मुख्यत दो प्रकार के परिवर्तन लाना आवश्यक है—(क) उद्योगो का चयन-आधारमूलक ढांचे पर अब तक काफी निवेश हो चुका है और अब आवश्यकता इस बात की है कि अन्य उद्योगो—विशेष रूप से उपभोग-वस्तु-उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाए। ऐसे उद्योगो की रोजगार देय क्षमता अधिक होती है। इनके अन्तर्गत उत्पादन के अतिरिक्त वस्तुओ के वितरण आदि सेवाओ म भी रोजगार के अवसर बढते है। (ख) तकनीक का चयन-रोजगार-दृष्टि से श्रम-प्रधान तकनीको के चयन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इन दोनो प्रकार के परिवर्तनो द्वारा निवेश-ढाँचे को प्रभावित करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार की विकास-नीति को मोड दिया जाए। उत्पादन पर बल देने की नीति के साथ ही साथ रोजगार बढाने वाले उद्योगो और तकनीकी को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई जाए।

(9) रोजगार को प्रोत्साहन देने के लिए ससाधनो का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए तेजी से कदम बढाए जाएँ। अल्प रोजगार मे लगे लोगो के काम-काज को बढाया जाए ताकि पहले से लगे ससाधनो का अधिक उत्पादक प्रयोग सम्भव बन जाए। कृषि सम्बन्धी उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाए तथा स्व-नियोजित व्यक्तियो के लिए अधिक काम-काज की व्यवस्था की जाए ताकि उनकी अल्प रोजगार की स्थिति को दूर किया जा सके।

(10) विकेन्द्रित उद्योग नीति अपनाई जाए ताकि बडे बडे शहरो की ओर बेरोजगार लोगो का जाना रुके अथवा कम हो। यह उचित है कि गाँवो और छोटे-छोटे शहरो के आस पास उद्योगो का विकास किया जाए। उद्योगो के विकेन्द्रीकरण क फलस्वरूप दो बातें मुख्य रूप से होगी—प्रथम, श्रमिको का स्थानान्तरण रुकेगा और द्वितीय, अल्प-रोजगार मे लगे उन श्रमिको की स्थिति सुधरेगी, जो बाहर नही जाते।

बेरोजगारी दूर करने के लिए उपरोक्त उपाय इस प्रकार के है कि रोजगार-नीति केवल रोजगार-नीति न बनी रह कर एक बहुमुखी नीति का रूप धारण कर लेनी है और इस प्रकार की रोजगार की उपलब्धि हमारी अर्थ-व्यवस्था के व्यापक विकास-कार्यक्रम का एक अभिन्न अग बन जाती है।

बेरोजगारी सम्बन्धी 'भगवती समिति' की सिफारिशें
(Recommendations of Bhagwati Committee)

भारत सरकार ने बेरोजगारी के सम्बन्ध म दिसम्बर, 1970 मे जो 'भगवती समिति' नियुक्त की थी, उसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट मे आगामी दो वर्षों मे सभी

क्षेत्रो मे 40 लाख व्यक्तियो को रोजगार देने की विभिन्न योजनाओ के लिए 20 अरब रुपये की व्यवस्था का सुझाव दिया था। इस विशेषज्ञ समिति ने अन्तरिम रिपोर्ट मे जो प्रमुख सिफारिशें की वे बेरोजगारी-निवारण की दिशा मे आज भी महत्वपूर्ण मार्गदर्शक यन्त्र हैं। इन प्रमुख सिफारिशो का सारांश मार्च, 1972 के योजना अक मे श्री केदारनाथ गुप्त के एक लेख मे दिया गया है, जो निम्न है—

(1) छोटे किसानो और भूमिहीन मजदूरो की दुग्धशालाओ, मुर्गीपालन और सूअर पालन केन्द्रो के उत्पादनो के विधायन और हाट व्यवस्था के लिए आवश्यक सगठन बनाए जाने की आवश्यकता पर राज्यो को विचार करना चाहिए।

(2) किसानो को सहायता देने वाली सस्थाओ को, बटाईदारो और पट्टेदारो को कृषि और अन्य सहायक उद्योगो के लिए अल्प अवधि के और मध्यावधि कर्ज दिलाने म सहायता करनी चाहिए।

(3) प्रत्येक जिले के गांवो मे रोजगार के अधिक अवसर पैदा करने वाले कार्यक्रमों के लिए राशि, उसकी जनसख्या, वहा कृषि विभाग की स्थिति और अन्य महत्वपूर्ण बातो को ध्यान मे रख कर नीति पुनर्निर्धारित की जानी चाहिए।

(4) कुछ चुने हुए जिलो मे प्रायोगिक परियोजनाएँ शुरू की जानी चाहिए ताकि उस क्षेत्र का बहुमुखी विकास हो सके।

(5) कृषि-सेवा-केन्द्रो की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योकि इनम बहुत से इन्जीनियरो को काम मिलेगा।

(6) लघु सिंचाई योजनाओ मे अनेक लोगो को रोजगार मिल सकता है, अत अधिकाधिक अतिरिक्त भूमि योजना के अन्तर्गत लाई जानी चाहिए। समिति का सुझाव था कि आगामी दो वर्षो मे एक अरब रुपये की लागत से 5 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि योजना के अन्तगत लाई जाना अपेक्षित है। यह योजना चतुर्थ योजना मे निर्धारित कार्यक्रम के अतिरिक्त होनी चाहिए।

(7) समिति ने सुझाव दिया कि चतुर्थ योजना मे निर्धारित लक्ष्यो के अतिरिक्त 37 हजार और गांवो मे बिजली एव 3 लाख नल कूपो को बिजली दी जानी चाहिए।

(8) गांवो मे बिजली लगाने के कार्यक्रम को इस प्रकार लागू किया जाना चाहिए ताकि अपेक्षाकृत पिछडे राज्यो मे अधिक विकास हो सके और वे राष्ट्रीय स्तर पर लाए जा सकें।

(9) राज्य सरकार सडक-निर्माण-कार्य के लिए निर्धारित रकम उसी काम मे खर्च करें और उस रकम को अन्य मदो म व्यय न करें।

(10) अन्तर्देशीय जल-परिवहन-योजना से भी अनेक लोगो को रोजगार मिलेगा, अत सरकार को चाहिए कि वह अन्तर्देशीय जल-परिवहन-समिति की सिफारिशो पर अमल करे।

(11) गांवो मे आवास की विकट समस्या को देखते हुए सरकार को तेजी से भवन-निर्माण कार्यक्रम शुरू करना चाहिए।

(12) सरकार को गाँवो मे मकान बनाने के लिए व्यापक कार्यक्रम शुरू करना चाहिए तथा प्रचार साधनो के माध्यम से इस कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(13) प्रत्येक राज्य मे एक ऐसी एजेन्सी होनी चाहिए जो ग्रामीण क्षेत्रो मे वह कार्य करेगी जो कार्य इस समय आवास-मण्डल नगरो मे कर रहे हैं। ये कार्य हैं—भूमि का अधिग्रहण और विकास करना तथा आवास योजनाएँ तैयार करके उन्हे क्रियान्वित करना।

(14) जीवन बीमा निगम को भी गाँवो मे आवास-कार्यक्रमो के लिए सहायता देनी चाहिए।

(15) गाँवो में पेयजल सप्लाई करने की चालू योजनाओ को तुरन्त क्रियान्वित करना चाहिए तथा इनको अधिकाधिक क्षेत्रो में लागू करना चाहिए।

(16) प्रत्येक राज्य में एक ग्रामीण आवास वित्त-निगम बनाया जाना चाहिए जो सहकारी समितियो, पचायती-राज सस्थाओ तथा व्यक्तियो को मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता देगा।

(17) प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए एक व्यापक कार्यक्रम जल्दी ही प्रारम्भ करना चाहिए।

(18) जन साक्षरता के लिए जल्दी ही एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

(19) औद्योगिक क्षेत्र मे व्यक्तियो को रोजगार देने के लिए कारखानो की वास्तविक उत्पादन क्षमता को अधिकतम सीमा तक बढाना अत्यन्त आवश्यक है।

(20) आर्थिक दृष्टि से अक्षम मिलो के बन्द होने की समस्या से निपटने हेतु सरकार को एक सस्था बनानी चाहिए, जो बन्द हो जाने वाले कारखानो की आर्थिक स्थिति तथा अन्य पहलुओ की जाँच करे। इस सस्था को एक ऐसी विधि अपनानी चाहिए, जिसके अन्तगत कारखाने के बन्द होने के सम्बन्ध मे समय-समय पर सूचना दी जा सके।

(21) बैंको को भी चाहिए कि वे अपना धन्धा स्वय शुरू करने वाले लोगो को वित्तीय सहायता दे। बैंक अधिकारियो को चाहिए कि वे अधिक रोजगार देने वाली योजनाएँ शुरू करें और बैंक की प्रत्येक शाखा के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित करें, जो उन्हे पूरा करना होगा। अतिरिक्त साधनो का काफी हिस्सा इन योजनाओं के लिए निर्धारित कर देना चाहिए। बढे हुए कुल साधनो की 25 से 30% राशि इन योजनाओ के लिए निश्चित की जा सकती है।

(22) बैंको को स्वय धन्धा शुरू करने वाले लोगो की वित्तीय सहायता करने मे अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को अपना धन्धा अथवा व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए ऋण लेने मे कठिनाई न हो।

(23) विशेष वित्तीय सहायता का अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि ब्याज-दर, धन लौटाने की अवधि आदि ऋण की शर्तें

और अधिक उदार बनाई जाएँ। इसके अतिरिक्त ऐसे ऋण लेने वाले की आवश्यकता तथा उसकी मजबूरियो को भी ध्यान मे रखा जाना चाहिए। समिति का विचार है कि सम्बन्धित अधिकारियो को पृथक ब्याज-दरो से सम्बद्ध समिति की सिफारिशें तुरन्त लागू करने की दिशा मे प्रयास करने चाहिए।

(24) उद्योगपतियो को विशेष क्षेत्र या उद्योग मे कच्चे माल के सम्बन्ध मे जिन कठिनाइयो का सामना करना पडता है, उनको दूर करने के लिए उद्योगपति अपने सघ बना सकते है, जो लघु उद्योगो की कच्चे माल धन, उत्पादित वस्तुओ की बिक्री आदि समस्याओ का समाधान कर सकते है तथा आवश्यकता पडने पर मामले को उपयुक्त अधिकारियो के पास ले जा सकते हैं। सरकार को भी इस तरह के सगठन बनाने की दिशा मे प्रोत्साहन देना चाहिए।

(25) बेरोजगार व्यक्तियो के लिए आवेदन-पत्र नि शुल्क होना चाहिए। यात्रा व्यय देने के सम्बन्ध मे भी विशेष परिस्थितियो पर ध्यान रखा जाना चाहिए। केवल उस मामले मे, जहाँ चुनाव के लिए साक्षात्कार आवश्यक है, बेरोजगार व्यक्तियो को यात्रा-व्यय दिया जाना चाहिए, ताकि वे साक्षात्कार के लिए उपस्थित हो सकें। हाँ, यदि चुनाव के सम्बन्ध मे सभी प्रार्थियो के लिए प्रतियोगिता परीक्षा आवश्यक है तो सभी उम्मीदवारो को यात्रा व्यय देना आवश्यक नही है।

भगवती समिति की अन्तिम रिपोर्ट, 1973
(Final Report of the Bhagwati Committee, 1973)

भगवती समिति ने 16 मई, 1973 को अपनी अन्तिम रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दी जिसमे आंकडो के आधार पर 1971 मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या 187 लाख आँकी गई। इनमे से 90 लाख व्यक्ति तो ऐसे थे जिनके पास कोई रोजगार नहीं था और 97 लाख व्यक्ति ऐसे थे जिनके पास 14 घण्टे प्रति सप्ताह का कार्य उपलब्ध था अर्थात् वे बेरोजगार-से ही थे। अन्तिम रिपोर्ट के अन्तर्गत बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए मुख्यत निम्नलिखित सुझाव दिए गए[1]—

1 बेरोजगारो को काम की गारण्टी देने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू किया जाए। जो व्यक्ति रोजगार मे सलग्न है उन्हे रोजगार की हानि (Loss of Employment) की स्थिति मे बीमा व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए।

2 कार्याधिकार योजना (Right to work Scheme) सम्पूर्ण देश में लागू की जाए।

3 देहातो के विद्युतीकरण, सडक-निर्माण, ग्रामीण मकानो और लघु सिंचाई योजनाओं को आगामी दो वर्षो मे तेजी से लागू किया जाए। रोजगार कार्यक्रमो के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने मे कोई हिचक न की जाए और यदि आवश्यक हो तो विशेष करो तथा चालू करो म वृद्धि का मार्ग अपनाया जाए।

1. The Economic Times, May 17, 1973

4. काम के घण्टो को सप्ताह मे 48 से घटा कर 42 किया जाए और फैक्टरियों को सप्ताह मे पूरे 7 दिन तक प्रभावी रूप मे चालू रखा जाए ताकि रोजगार मे वृद्धि हो।

5. रोजगार एव श्रम-शक्ति-नियोजन पर एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया जाए।

6. विवाह-आयु लडको के लिए 21 वर्ष और लडकियो के लिए 18 वर्ष करदी जाए।

भगवती समिति ने अपनी सिफारिशो मे लघु सिचाई और ग्रामो के विद्युतीकरण के कार्यक्रमो को सर्वाधिक महत्त्व दिया। समिति का विचार था कि इन कार्यक्रमो और सडक-निर्माण, ग्रामीण आवास आदि की योजनाओ से ग्रामीण बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की समस्याओ पर गहरा प्रभाव पडेगा। समिति ने सुझाव दिया कि श्रम-प्रधान उद्योगो के लिए करो मे छूट और रियायत की व्यवस्था की जाए तथा बडे-बडे नगरो से उद्योगो का विकिरण किया जाए। यह सिफारिश भी की गई कि कृषि-क्षेत्र मे श्रम बचाने वाली भारी मशीनो के प्रयोग पर नियन्त्रण लगाया जाए, विशाल पैमाने पर ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमो का सचालन किया जाए (जिसका सकेत ऊपर किया जा चुका है), कानूनो द्वारा इन्जीनियरो एव तकनीकी श्रमिको के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाए। समिति का एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी था कि शिक्षा एव प्रशिक्षण के क्षेत्र मे वार्षिक दर से 5 लाख नौकरियो के लिए प्रबन्ध किया जाएँ। रोजगार एव श्रम शक्ति नियोजन के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना के अतिरिक्त केन्द्र एव राज्य स्तर पर ऐसे पृथक् विभाग खोले जाएँ, जिनका कार्य केवल रोजगार एव श्रम शक्ति-नियोजन सम्बन्धी कार्यो की देखभाल हो। जो पिछडे इलाके है उनके लिए पृथक् विकास-मण्डल (प्रादेशिक विकास बोर्ड) बनाए जाए। बेरोजगारी पर विभिन्न समितियो और अध्याय मे दिए गए अन्य सुझावो पर ध्यान देने तथा उन्हे आवश्यकतानुसार प्रभावी रूप म अमल मे लाने पर ग्रामीण एव शहरी बेरोजगारी की समस्या का प्रभावी समाधान सम्भव है।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना और बेरोजगारी
(Fifth Five Year Plan & Unemployment)

1951 के पश्चात् प्रथम बार देश की इस योजना मे बेरोजगारी दूर करने पर विशेष बल दिया गया है और विकास के अतिरिक्त अधिक रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य का एक मूल उद्देश्य माना गया है। पाँचवी योजना मे रोजगार के महत्त्व को ठीक परिदृश्य मे रखते हुए इस तथ्य को स्पष्टत स्वीकार किया गया है कि बेकार श्रम-शक्ति को समुचित रूप मे प्रयोग मे लाने पर विकास-क्षेत्र मे पर्याप्त मदद मिलगी। योजना के दृष्टिकोण-पत्र मे रोजगार-विषयक महत्वपूर्ण पहलू सक्षेप मे अग्रानुसार हैं[1]—

1. (अ) भारत सरकार, योजना आयोग : पाँचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण, 1974-79, पृष्ठ 3-8
   (ब) योजना, दिनांक 22 दिसम्बर, 1973 (पाँचवी योजना प्रारूप विशेषांक), पृष्ठ 36.

1 देश को रोजगार के इच्छुक लोगो की बढती हुई सख्या की भीषण समस्या से निपटने के लिए योजना बनानी होगी ताकि विकास के मार्ग मे यह भयकर खतरा न बने और इनका देश की प्रगति तथा खुशहाली के सशक्त सहायक के रूप मे उपयोग किया जा सके।

2 विकास की गति बढाने तथा असमानताएँ घटाने के लिए उत्पादक रोजगार का विस्तार करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। बेकार जन-शक्ति बेरोजगार, अपूर्ण रोजगार कर रहे तथा केवल अशकालीन रोजगार कर रहे लोग, विकास का ऐसे सक्षम साधन हैं जिनका यदि उचित उपयोग किया जाए तो द्रुत विकास किया जा सकता है। इसके साथ-साथ असमानताओ का मुख्य कारण व्यापक बेरोजगारी, अपूर्ण रोजगार का विस्तार कर उसे उचित आय-स्तरो पर सुलभ किया जाए। रोजगार ही एक ऐसा निश्चित तरीका है, जिसके द्वारा गरीबी के स्तर से नीचे जीवन-निर्वाह करने वालो का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है। आय का पुन बँटवारा करने के लिए जो प्रचलित कर-नीतियाँ हैं वे स्वय मे इस समस्या पर कोई विशेष प्रभाव नही डाल सकती।

3 रोजगार नीति इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे वेतन पर मिलने वाला रोजगार तथा अपना धन्धा आरम्भ करने का रोजगार, इन दोनो का विस्तार हो सके और उनकी उत्पादकता बढे। पाँचवी योजना मे कृषि-क्षेत्रो यानी निर्माण, खनन और निर्मित माल का उत्पादन, परिष्करण और वितरण परिवहन और सचार, व्यापार भण्डारण, बैंकिंग बीमा तथा समाज सेवाओ मे वेतन पर मिलने वाले रोजगार मे काफी वृद्धि होने की सम्भावना है। कृषि, कुटीर उद्योग, सडक परिवहन, व्यापार और सेवा क्षेत्रो मे अधिक पूर्ण और उत्पादक धन्धा प्रारम्भ करने की सम्भावनाएँ हैं।

4 उत्पादन प्रणाली को चुन कर ही विशेष विकास की दर पर रोजगार का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु यह प्रणाली श्रम-सघन होनी चाहिए। अथवा ऐसी प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना चाहिए, जो दुर्लभ पूँजी या श्रम द्वारा कृषि करने का स्थान ले। इन तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए चतुर्थ योजना मे अनेक रोजगार उन्मुख कार्यक्रमो का सूत्रपात किया गया। आशा है कि इन स्कीमो को पाँचवी योजना मे ऐसा रूप दिया जाएगा जिससे अधिकाधिक स्थायी उत्पादक परि-सम्पत्तियो के निर्माण के साथ-साथ इनमे सुलभ होने वाले रोजगार के अवसरो मे कमी न आए। इन दो उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए इस प्रकार के कार्यक्रम तैयार करने होगे, जिससे वर्तमान किस्मो को प्रत्येक क्षेत्र की विकास-प्रक्रिया का अभिन्न अग बनाया जा सके।

5. निर्माण कार्य में बहुत अधिक मजदूर कार्य करते हैं। अत रोजगार वृद्धि के दृष्टिकोण से निर्माण को महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मानना चाहिए। निर्माण कार्यकलाप का विस्तार कुल नियतकालीन पूँजी-निर्माण के विस्तार से सम्बन्धित है।

6. वेतन वाले रोजगार के अवसरो में वृद्धि की जाएगी तथा अपना धन्धा शुरू करने के लिए अधिक व्यापक स्तर पर सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी। समस्त कृषि-क्षेत्र के विकास पर बल दिया जाएगा और अतिरिक्त स्व-रोजगार की सम्भावनाओ का विकास किया जाएगा। बढती हुई श्रम-शक्ति को कृषि-क्षेत्र मे ही रोजगार पर लगाए जाने का प्रयास किया जाएगा।

7. कृषि तथा सम्बद्ध कार्यकलापो के लिए भूमि उत्पादन का बुनियादी आधार है। परन्तु इसे बढाया नही जा सकता। अत जिन लोगो के पास अत्यल्प भूमि है उन्हे भूमि देने का एक ही तरीका है कि जिनके पास बहुत अधिक भूमि है या जो अन्य काम कर रहे हैं, उनसे भूमि लेकर इन लोगो को दे दी जाए। इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए उच्च प्राथमिकता के आधार पर भूमि-सुधार पर बल दिया गया है। दूसरे, यह निश्चय किया गया है कि जो बेकार भूमि प्राप्त हो उसे भूमिहीन खेतिहर मजदूरो को देने के काम को प्राथमिकता दी जाए। तीसरे, जिन लोगो को भूमि दी जाए उन्हे भरपूर सगठन, ऋण, निवेश तथा विस्तार की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ ताकि ये कृषि-कर्म सफलतापूर्वक कर सके।

8 योजना मे बडी, मझोली और छोटी सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक, अनुसधान और विस्तार, फसल की कटाई के बाद के काम तथा नई प्रौद्योगिकी को समर्थन प्रदान करने और उसका विस्तार करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। पशुपालन, दुग्ध उद्योग और मछलीपालन जैसे जिन कामो के लिए भूमि होनी आवश्यक नही है, को बढावा देने पर बल दिया जाएगा। आशा है कि कृषि-क्षेत्र मे रोजगार को प्रोत्साहन देने को ध्यान मे रखते हुए अनाप-शनाप यन्त्रीकरण नही किया जाएगा। केवल इस प्रकार यन्त्रीकरण को प्रोत्साहित किया जाएगा, जो केवल श्रम को बचत करने की अपेक्षा भूमि के प्रति एक समस्त उत्पादन मे वृद्धि करेगा।

9 कतिपय विशेष कार्यक्रम, जैसे—लघु कृषक-विकास अभिकरण और नाममात्र कृषि-श्रमिक परियोजनाएँ, ग्रामीण रोजगार की त्वरित स्कीम और सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम चतुर्थ योजना मे आरम्भ किए गए। कुल मिलाकर, इन कार्यक्रमो को पृथक्-पृथक् तैयार किया गया तथा इनका सचालन भी स्थिति के अनुमार छितरा पडा रहा। पाँचवी योजना मे, न केवल इन कार्यक्रमो के कार्यान्वयन मे तेजी लानी होगी बल्कि विशिष्ट सचारात्मक सुधार भी करने होगे। इन कार्यक्रमो से प्राप्त अनुभव यह बताता है कि यदि प्रभाव परिलक्षित करना है, तो सामान्यतया विकास कार्यक्रम और विशेष रूप से विशेष कार्यक्रमो को एक साथ मिलाना होगा। इन क्षेत्रीय लघु और सीमान्त कृषक तथा कृषि-श्रमिको की अर्थ-व्यवस्था मे सुधार लाने के लिए यह आवश्यक होगा कि समेकित-क्षेत्र विकास की दिशा मे प्रयत्न किया जाए।

10 कतिपय क्षेत्रो मे, शारीरिक श्रम करने वालो को रोजगार की गारन्टी देने की दिशा मे छोटा-सा प्रयास किया गया है।

11. ग्रामोद्योग और लघु उद्योग, सडक परिवहन, फुटकर व्यापार व सेवा

व्यवसाय ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें अपना धन्धा आरम्भ करने की सम्भावनाएँ विद्यमान है। अतः जनसख्या के महत्त्वपूर्ण अश अर्थात् शहरी जनसख्या, शिक्षित व तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित, ग्रामीण कारीगर और ग्रामीण क्षेत्र मे अन्य भूमिहीन तत्त्व ऐसे हैं जिनके लिए पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए उपर्युक्त क्षेत्रो मे रोजगार का विस्तार करना होगा।

12 अर्थव्यवस्था मे यदि रोजगार के साधन तथा अन्य क्षेत्रो के मध्य बेढगा विकास होता रहा, तो इससे रोजगार बढने की अपेक्षा रोजगार कम होगा। अत: रोजगार और अन्त क्षेत्रीय सन्तुलन मे तालमेल होना चाहिए। सुविचारित रोजगार-उन्मुक्त योजना के रोजगार-सघन तथा पूँजी सघन क्षेत्रो के मध्य ठीक प्रकार का तालमेल अपेक्षित है।

13. रोजगार वृद्धि की सामान्य नीतियो को विशिष्ट कार्यक्रमो के साथ जोडकर उनका तालमेल बिठाना होगा ताकि शिक्षित बेरोजगारो को उत्पादन कार्य पर लगाया जा सके। इस प्रयोग के लिए कुशलता प्राप्त तथा अन्य सामान्य वर्गो मे अन्तर करना होगा।

14 द्रुत औद्योगिक विकास करने और उत्पादक अनुसधान तथा विकास कार्यकलापो को कारगर ढग से आगे बढाने से वैज्ञानिको इन्जीनियरो और तकनीशियनो को पूर्ण रोजगार दिया जा सकेगा। यदि परिकल्पित औद्योगिक विकास की दर और प्रणाली सही उतरती है और अनुसधान और विकास के कार्यकलाप सभावना के अनुरूप विस्तार करते हैं तो इन्जीनियरो तकनीशियनो और सुयोग्य वैज्ञानिको को रोजगार देने की समस्या नहीं रहेगी। प्राकृतिक ससाधनो के सर्वेक्षण के लिए जो कार्यक्रम बनाया जा रहा है, उससे भी रोजगार के अवसर सुलभ होने की सभावना है।

15. सार्वजनिक सेवाएँ, प्रशासनिक सेवाएँ तथा समाज सेवाएँ शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार देने के मुख्य केन्द्र हैं। पाँचवी योजना के दौरान समाज सेवाओ मे तीव्र विस्तार करने का विचार है। परन्तु इस पर कि इस अवधि के दौरान रोजगार के इच्छुक शिक्षित लोगो की सख्या इससे काफी अधिक होगी। यह मानना अव्यावहारिक होगा कि रोजगार की स्थिति मे केवल सार्वजनिक सेवाओ के विस्तार से कोई सुधार किया जा सकता है, क्योंकि अर्थ-व्यवस्था के सामग्री तथा सेवा क्षेत्रो मे भी समुचित सन्तुलन बनाए रखना जरूरी है। अत विशेष प्रशिक्षण द्वारा कुशलता प्रदान कर तथा अन्य नीति सम्बन्धी परिवर्तन कर इन्हे समान बनाने वाले क्षेत्रो मे काम देना होगा।

16. दीर्घकालीन सम्भावनाओ के अनुसार, नौकरी के इच्छुक व्यक्तियो की समस्या का निदान केवल माँग पक्ष से विचार कर नहीं किया जा सकता। जहाँ तक कुशल कर्मचारियो का सम्बन्ध है, प्रशिक्षण प्रदान करने वाले सस्थानो मे प्रवेश की सख्या घटानी पड रही है, ताकि समस्या को सुलझाया जा सके। जहाँ तक आम लोगो का सम्बन्ध है, इस बारे मे और भी तीव्रता से कार्यवाही करनी होगी ताकि

समस्या पर काबू पाया जा सके। विश्वविद्यालय की शिक्षा को इस प्रकार विनियमित करना होगा जिससे उतनी ही सख्या मे शिक्षा प्राप्त कर लोग विश्वविद्यालय से निकलें, जितने लोगो को रोजगार पर लगाया जा सके। इसके लिए न केवल विश्वविद्यालय शिक्षा पर रोक लगानी होगी वल्कि माध्यमिक शिक्षा को अधिक विविधता प्रदान कर उसे व्यावसायिक बनाना होगा ताकि उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली सस्थाओ मे प्रवेश की भीड-भाड को घटाया जा सके। इसके अतिरिक्त वे सभी नियमित उपाय अन्यायपूर्ण हैं जो समान शिक्षा अवसर सुलभ करने से इन्कार करते हैं। समतल गतिशीलता प्रदान करने मे शिक्षा, शक्तिशाली तत्व के रूप मे कार्य कर सकती है। वर्तमान शिक्षा इस सम्बन्ध मे कारगर न होने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि ठोस निर्णय लेकर उचित रीति-नीतियाँ अपनाई जाएँ।

यदि निर्धारित नीति और कार्यक्रमो को प्रभावी रूप मे क्रियान्वित किया गया तो, कठिन परिस्थितियो के बावजूद यह आशा है कि पाँचवी योजना की समाप्ति से पूर्व रोजगार की स्थिति मे बहुत सुधार हो चुका होगा।

भारत के संगठित क्षेत्र मे रोजगार (1974-75)[1]
(Employment in the Organised Sector in India)

सगठित क्षेत्र मे, 1974-75 मे रोजगार मे लगभग 2 प्रतिशत वृद्धि हुई। यह सारी वृद्धि लगभग सरकारी क्षेत्र मे ही हुई। सभी मुख्य उद्योग-समूहो ने (निर्माण को छोडकर) रोजगार की इस वृद्धि मे योगदान दिया। सेवा क्षेत्र मे जिसके अन्तर्गत कुल रोजगार के लगभग 2/5 भाग के रोजगार की व्यवस्था है रोजगार मे 2 3 /. वृद्धि हुई है। निर्माण सम्बन्धी उद्योग समूह के क्षेत्र मे रोजगार मे 0 7 / की मामूली वृद्धि हुई और वह भी सरकारी क्षेत्र के कारण हुई, किन्तु गैर-सरकारी क्षेत्र मे रोजगार मे कुछ कमी हुई। लेकिन खानो तथा पत्थर की खानो के क्षेत्रो मे रोजगार मे (+7 6 /) तथा व्यापार और वाणिज्य मे (+8 8 /) रोजगार मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई, खानो मे रोजगार मे वृद्धि मुख्यतः कोयले के उत्पादन मे हुई महत्वपूर्ण वृद्धि हो जाने के कारण माल का लदान करने तथा माल उतारने के लिए अधिक मात्रा मे कार्मिको की आवश्यकता हो जाने के कारण और व्यापार तथा वाणिज्य क्षेत्र के रोजगार-वृद्धि, बैंकिंग सम्बन्धी क्रियाकलाप मे विस्तार होने के कारण हुई। बागानो तथा वनो आदि क्षेत्रो मे, रोजगार मे 0 5 / वृद्धि हुई, जो सबसे कम थी। मकान निर्माण के कार्य मे लगे हुए कार्मिको की सख्या मे 2 4 / की कमी हुई क्योकि निर्माण-कार्य पर, विशेषत सरकारी-क्षेत्र मे निर्माण के कार्य मे प्रयोग की जाने वाली सीमेंट और इस्पात जैसी बुनियादी चीजो की कमी हो जाने के कारण पाबन्दी लगा दी गई थी।

प्रादेशिक क्षेत्रो के अनुसार, 1974-75 मे सगठित क्षेत्र मे रोजगार मे सर्वाधिक वृद्धि पूर्वी क्षेत्र मे (+2 5·/.) हुई और उसके बाद रोजगार मे सर्वाधिक वृद्धि दक्षिणी क्षेत्र मे (2 4 /) हुई। लेकिन पश्चिमी क्षेत्र (+1 6 प्रतिशत),

1 आर्थिक समीक्षा, 1975-76, पृष्ठ 13

उत्तरी क्षेत्र (+1 5 प्रतिशत) और मध्यवर्ती क्षेत्र (1 3 प्रतिशत) रोजगार मे जो वृद्धि हुई, वह अखिल भारतीय स्तर की रोजगार की औसत वृद्धि से कम थी। उत्तरी क्षेत्र मे, राजस्थान, हरियाणा तथा जम्मू और कश्मीर मे, रोजगार मे, क्रमश 5 2 प्रतिशत, 4 8 प्रतिशत और 2 8 प्रतिशत वृद्धि हुई, किन्तु दक्षिणी क्षेत्र मे, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश मे क्रमश 3 9 प्रतिशत तथा 3 8 प्रतिशत वृद्धि हुई। पश्चिमी क्षेत्र मे (जिसमे गोवा, दमन और दीव को शामिल नहीं किया गया है) गुजरात सबसे आगे रहा, जहाँ रोजगार मे 3 0 प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी प्रकार पूर्वी क्षेत्र मे, उडीसा में रोजगार में सर्वाधिक वृद्धि (+4 1 प्रतिशत) हुई और इसके बाद पश्चिमी बगाल में सर्वाधिक वृद्धि (+3 0 प्रतिशत) हुई।

सितम्बर, 1975 के अन्त में रोजगार कार्यालयो में नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की सख्या 92 54 लाख थी, जो एक वर्ष पहले से 7 1 प्रतिशत अधिक थी। इससे रोजगार में कुछ कमी होने का पता चलता है, क्योंकि पिछले 12 महीनो में 5 4 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। यह कमी, निस्सदेह 1975 के मध्य तक उद्योग की धीमी गति के विकास से जुडी हुई है। तब से औद्योगिक उत्पादन में सुधार हुआ है जिसका पता, अधिसूचित खाली स्थानो और दी गई नौकरियों के आँकडो से चलता है, जो जुलाई-सितम्बर, 1975 में 1974 की इसी तिमाही की अपेक्षाकृत अधिक थी।

नए आर्थिक कार्यक्रम में रोजगार के अवसर में, अप्रेटिसो के मौजूदा सभी रिक्त स्थानो को तेजी से भर कर, रोजगार मे वृद्धि की, विशेष रूप से शिक्षित युवको के रोजगार की, परिकल्पना की गई है। जब यह कार्यक्रम घोषित किया गया था, उस समय एक लाख उपलब्ध स्थानो में से केवल लगभग 2/3 स्थान वास्तव में भरे थे। सितम्बर, 1975 को समाप्त हुए तीन महीनो की अवधि में लगभग सभी रिक्त स्थानो में नियुक्तियाँ कर दी गईं। अभी हाल में, अधिसूचित उद्योगो और व्यवसायो की सूची में वृद्धि की गई है। परिणामस्वरूप, अप्रेटिसो की सख्या मे काफी वृद्धि होने की सम्भावना है।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा
(National Employment Service. N.E S)

राष्ट्रीय रोजगार सेवा 1945 मे शुरू की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारियो द्वारा चलाए जाने वाले अनेक रोजगार कार्यालय खोले गए हैं। ये रोजगार कार्यालय रोजगार की तलाश मे सभी प्रकार के व्यक्तियो की सहायता करते हैं, विशेषकर शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियो, भूतपूर्व सैनिको, अनुसूचित जातियो और जन-जातियो, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो तथा व्यावसायिक और प्रबन्धक पदों के उम्मीदवारो की। रोजगार सेवा अन्य कार्य भी करती हैं जैसे रोजगार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र और प्रचारित करना तथा रोजगार और धन्धो सम्बन्धी अनुसधान के क्षेत्र मे सर्वेक्षण और अध्ययन करना। ये अनुसधान तथा अध्ययन ऐसे आधारभूत आँकडे उपलब्ध कराते हैं, जो जन-शक्ति के कुछ पहलुओ पर नीति निर्धारण मे सहायक होते हैं।

रोजगार कार्यालय अधिनियम 1959 (रिक्त-स्थान सम्बन्धी अनिवार्य ज्ञापन) के अन्तर्गत 25 या 25 से अधिक श्रमिको को रोजगार देने वाले मालिको के लिए रोजगार कार्यालयो को अपने यहाँ के रिक्त स्थानो के बारे मे कुछ अपवाद के साथ ज्ञापित करना और समय-समय पर इस बारे मे सूचना देते रहना आवश्यक है।

31 दिसम्बर, 1974 को देश मे 535 रोजगार कार्यालय (जिनमे 54 विश्वविद्यालय रोजगार तथा मार्ग दर्शन ब्यूरो भी शामिल हैं) थे।[1] निम्नलिखित सारणी मे रोजगार कार्यालयो की गतिविधियो से सम्बन्धित आँकडे दिए गए हैं—

रोजगार कार्यालय तथा अभ्यर्थी[2]

वर्ष	रोजगार कार्यालयो की सख्या	पजीकृत सख्या	रोजगार पाने वाले अभ्यर्थियो की सख्या	चालू रजिस्टर मे अभ्यर्थियो की सख्या	रोजगार कार्यालयो का लाभ उठाने वाले मालिको का मासिक औसत	ज्ञापित रिक्त स्थानो की सख्या
1956	143	16,69 985	1,89,855	7,58,503	5,346	2,96,618
1961	325	32,30,314	4 04,707	18,32,703	10,397	7,08,379
1966	396	38,71,162	5,07,342	26,22,460	12,908	8,52,467
1971	437	51,29,857	5,06,973	50,99,919	12,910	8,13,603
1972	453	58,26,916	5,07,111	68,96,238	13,154	8,58,812
1973	465	61,45,445	5,18,834	82,17,649	13,366	8,71,398
1974	481	51,76,274	3,96,898	84,32,869	12,175	6,72,537

नवम्बर, 1956 से रोजगार कार्यालयो पर दैनिक प्रशासनिक नियन्त्रण का कार्य राज्य सरकारो को सौंपा गया है। अप्रेल, 1969 से राज्य-सरकारो को जन-शक्ति और रोजगार योजनाओ से सम्बद्ध वित्तीय नियन्त्रण भी दे दिया गया। केन्द्रीय सरकार का कार्य-क्षेत्र अखिल भारतीय स्तर पर नीति-निर्धारण, कार्य-विधि और मानको के समन्वय तथा विभिन्न कार्यक्रमो के विकास तक सीमित है।

229 रोजगार कार्यालयो तथा सारे विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग दर्शन ब्यूरो मे युवक-युवतियो (ऐसे अभ्यर्थी जिन्हें काम का कोई अनुभव नही है) और प्रौढ व्यक्तियो (जिन्हे खास-खास काम का ही अनुभव है) को काम-धन्धे से सम्बद्ध मार्ग-दर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श दिया जाता है।

शिक्षित युवक-युवतियो को लाभदायक रोजगार दिलाने की दिशा मे प्रवृत्त करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के कार्य-मार्गदर्शन और आजीविका परामर्श कार्यक्रमो को विस्तृत और व्यवस्थित किया गया है। रोजगार सेवा अनुसधान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय सस्थान मे एक आजीविका अध्ययन केन्द्र स्थापित किया गया है जो युवक-युवतियो तथा अन्य मार्गदर्शन चाहने वालो को व्यवसाय सम्बन्धी साहित्य देता है।

1 India 1976, p 343.
2 Ibid, p. 343.

11 राजस्थान में आर्थिक-नियोजन का संक्षिप्त सर्वेक्षण

(A Brief Survey of Economic-Planning in Rajasthan)

गुलाबी नगर जयपुर राजधानी वाला राजस्थान भारत संघ के उन्नत राज्यों की श्रेणी मे आने के लिए योजना-बद्ध आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर है। राजस्थान का क्षेत्रफल 3,42,214 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या 1971 की जनगणना के आधार पर 2,57,65,806 है। भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना के साथ ही 1951 मे राजस्थान राज्य मे भी आर्थिक नियोजन का सूत्रपात हुआ। राजस्थान राज्य अब तक चार पचवर्षीय योजनाएँ और तीन वार्षिक योजनाएँ पूरी कर चुका है। 1 अप्रेल, 1974 से राज्य मे पाँचवीं पचवर्षीय योजना लागू हो चुकी है। 1974 75 से जो एक वर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं, वे राज्य की पाँचवी योजना के अग रूप मे हैं।

राजस्थान मे आर्थिक नियोजन के सर्वेक्षण को निम्न शीर्षकों मे *विभाजित* किया जा सकता है—

(1) राजस्थान की प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाएँ,

(2) राजस्थान की तीन वार्षिक योजनाएँ,

(3) राजस्थान की चतुर्थ पचवर्षीय योजना,

(4) राजस्थान की पाँचवी *पचवर्षीय योजना और वार्षिक योजनाएँ* (1974-75, 1975–76 1976-77)

(5) राजस्थान मे सम्पूर्ण योजना-काल मे आर्थिक प्रगति।

राजस्थान मे प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाएँ

राजस्थान की तीनों पचवर्षीय योजनाओं की प्रस्तावित और वास्तविक व्यय *राशि इस प्रकार रही—*

योजना	प्रस्तावित व्यय-राशि (करोड रुपये म)	वास्तविक व्यय-राशि (करोड रुपये मे)
1. प्रथम योजना	64 50	54·14
2. द्वितीय योजना	105 27	102 74
3. तृतीय योजना	236 00	212 63

पूर्वोक्त सारणी से स्पष्ट है कि योजना-व्यय की राशि उत्तरोत्तर बढती गई। प्रथम योजना म सार्वजनिक-क्षेत्र म व्यय की राशि लगभग 54 करोड रुपय से बढकर द्वितीय योजना मे लगभग 103 करोड रुपये और तृतीय योजना म लगभग 213 करोड रुपये हुए।

तीनो योजनाओ मे सार्वजनिक-व्यय की स्थिति

राजस्थान की प्रथम तीनो योजनाओ मे विकास के विभिन्न शीर्षको पर सार्वजनिक व्यय की स्थिति (सख्या और प्रतिशत दोनो मे) निम्न सारणी से स्पष्ट है—

(करोड रुपये मे)

विकास के शीर्षक	प्रथम योजना रुपये (वास्तविक)	प्रथम योजना कुल व्यय से प्रतिशत	द्वितीय योजना रुपये (वास्तविक)	द्वितीय योजना कुल व्यय से प्रतिशत	तृतीय योजना रुपये (वास्तविक)	तृतीय योजना कुल व्यय से %
1	2	3	4	5	6	7
1 कृषि एव सामुदायिक विकास	6 99	12 90	25 45	24 77	40 65	19 11
2 सिचाई	30 24	55 86	23 10	22 57	76 23	35 85
3. शक्ति	1 24	2 27	15 15	14 74	39 64	18 64
4 उद्योग तथा खनिज	0 46	0 85	3 38	3 29	3 31	1 50
5 सडकें	5 55	10 25	10 17	9 90	9 75	4 59
6 सामाजिक सेवाएँ	9 12	16 84	24 31	23 67	42 03	19 77
7 विविध	0 55	1 01	1 09	1 06	1·02	0 48
योग	54 14	100 00	102 74	100 00	212 63	100 00

उपरोक्त आकडो से स्पष्ट है कि राजस्थान की आर्थिक योजनाओ मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिचाई एव शक्ति को दी गई है। प्रथम योजना मे कुल व्यय का लगभग 58 /, *द्वितीय योजना मे लगभग 37 / और तृतीय योजना मे कुल व्यय का लगभग* 54 / सिचाई एव शक्ति पर व्यय किया गया है। प्रथम योजना मे द्वितीय प्राथमिकता सामाजिक सेवाओ को रही जिस पर कुल वास्तविक व्यय का लगभग 17% खर्च किया गया। द्वितीय योजना मे इस मद पर लगभग 24 / व्यय हुआ और इस दृष्टि से यह व्यय कृषि एव सामुदायिक विकास मे किए गए व्यय (लगभग 25 प्रतिशत) के सन्निकट रहा। तृतीय योजना मे भी सामाजिक सेवाओ और कृषि एव सामुदायिक विकास पर लगभग बराबर व्यय किया गया। सामाजिक सेवाओ पर 20 / से कुछ कम तथा कृषि एव सामुदायिक विकास पर 19 / से कुछ अधिक व्यय किया गया।

सार्वजनिक व्यय के इस आवंटन से स्पष्ट है कि राजस्थान ने अपनी तीनो योजनाओ मे एक ओर तो सिचाई एव विद्युत-विकास का पूरा प्रयत्न किया और दूसरी ओर वह जन-कल्याण के लिए सामाजिक सेवाओ के विस्तार को भी ऊँची प्राथमिकता देता रहा। परिवहन मे प्रथम दोनो योजनाओ मे सडको के विकास पर काफी बल दिया गया और तृतीय योजना मे भी कुल-व्यय का 6/ से कुछ कम इस कार्यक्रम पर व्यय किया गया।

प्रथम तीनो योजनाओ मे आर्थिक प्रगति

राजस्थान की तीनो पचवर्षीय योजनाओ मे अर्थात् नियोजन के 15 वर्षों में (1951-66) हुई कुल उपलब्धियो का सामूहिक सिहावलोकन करना अध्ययन की दृष्टि से विशेष उपयुक्त होगा। इन तीनो योजनाओ मे सिंचाई एव शक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई और उनके बाद प्राथमिकता मे सामाजिक सेवाओ, कृषि कार्यक्रमो सहकारिता एव सामुदायिक विकास, यातायात एव सचार तथा उद्योग और खनिज का क्रमश द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम् एव षष्टम् स्थान आता है।

इन प्राथमिकताओ पर आर्थिक विकास व्यय से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास निम्न तथ्यो से स्पष्ट है—

राज्य की आय एव प्रति व्यक्ति आय—राजस्थान राज्य की 1954-55 मे कुल आय (1961 के मूल्यो के आधार पर) 400 करोड रुपये थी। वह प्रथम योजना की समाप्ति पर 456 करोड, द्वितीय योजना की समाप्ति पर 636 6 करोड रु और तृतीय योजना के अन्त मे बढकर 841 8 करोड रु हो गई। प्रति व्यक्ति आय क्रमश 260 रु, 323 रु और 381 रु हो गई। 1966-67 में राज्य की कुल आय 1,015 करोड तथा प्रति व्यक्ति आय 449 रु हो गई।

कृषि-विकास—कृषि-विकास को भी इन तीनो योजनाओ मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। भूमि-व्यवस्था मे क्रान्तिकारी एव प्रगतिशील सुधारो के परिणामस्वरूप जमींदारी तथा जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। छोटे-छोटे और बिखरे खेतों की समस्या के लिए कानून तथा 18·81 लाख हैक्टर भूमि की चकबन्दी का कार्य पूरा किया गया।

कृषि उत्पत्ति मे वृद्धि के लिए सुधरे बीज, रासायनिक खाद तथा वैज्ञानिक कृषि को प्रोत्साहन मिला। राज्य मे 50 बीज-विकास-फार्म स्थापित किए गए और 30 29 लाख हैक्टर मे सुधरे बीजो का प्रयोग होने लगा। नए औजारो और यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए कृषि मन्त्रालय की स्थापना और रूस की सहायता से 1956 मे सूरतगढ मे कृषि फार्म, जैतसार मे कृषि-फार्म का दूसरा प्रयास योजनाओ की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां रहीं।

कृषि के लिए प्रशिक्षित अधिकारियो व कर्मचारियो के लिए उदयपुर मे कृषि-विश्वविद्यालय, जोबनेर मे कृषि महाविद्यालय का विस्तार, बीकानेर मे पशुचिकित्सालय प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना कृषि-विकास की दिशा मे लाभदायक कदम रहे।

पशु धन के विकास के लिए 17 केन्द्रीय ग्रामखण्ड स्थापित किए गए। जहाँ राजस्थान के निर्माण के समय पशुधन के रोगो की रोकथाम के लिए राज्य मे 57 ग्रौषधालय, 88 चिकित्सालय ग्रौर 2 चल चिकित्सालय थे, वहाँ उनकी सख्या तृतीय योजना के ग्रन्त मे क्रमश 204, 129 ग्रौर 24 हो गई।

सारांशत राजस्थान के ग्राथिक नियोजन के 15 वर्ष मे राजस्थान मे खाद्यान्न की उत्पादन क्षमता लगभग दुगुनी, तिलहन की तिगुनी, कपास की दुगुनी हो गई। राजस्थान मे जहाँ सामान्य समय मे भी 50 हजार से एक लाख टन खाद्यान्न का ग्रभाव रहता था, वहाँ ग्रब ग्रात्मनिर्भर होकर ग्रन्य राज्यो को निर्यात करने की क्षमता हो गई। पशु-रोग निवारण, विकास तथा बीजो के सुधार की दिशा मे उल्लेखनीय प्रगति की गई।

सिंचाई एव शक्ति—राज्य के ग्राथिक नियोजन मे सिंचाई साधनो के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। तीनो योजनाग्रो के कुल वास्तविक व्यय 369 58 करोड रुपयो मे से 129 66 करोड रु केवल सिंचाई पर व्यय किया गया। फलस्वरूप, सिंचाई-क्षेत्र 11 74 लाख हैक्टर (1950 51) से बढ कर तृतीय योजना के ग्रन्त तक 20 80 लाख हैक्टर तक पहुँच गया।

शक्ति के साधनो पर कुल व्यय की गई राशि 56 62 करोड रु के बराबर थी। सन् 1550-51 मे विद्युत् उत्पादन-क्षमता 7·48 मेगावाट थी, जो 1967-68 मे बढकर 163 मेगावाट हो गई। 1950 मे केवल 23 बिजली-घर थे जो 1967-68 मे 70 हो गए। प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग भी 1965-66 तक 3 06 किलोवाट से बढकर 15 37 किलोवाट हो गया।

सहकारिता एव सामुदायिक विकास—राजस्थान मे जनता के सर्वांगीण विकास ग्रौर जनसहयोग वृद्धि के लिए 2 ग्रक्तूबर, 1962 को सामुदायिक विकास कार्य प्रारम्भ हुग्रा। ग्रब राज्य की समस्त ग्रामीण जनसख्या सामुदायिक विकास की परिधि मे ग्रा गई। राज्य मे 1965-66 तक 232 विकास खण्डो की स्थापना हो चुकी थी। इनमे 83 प्रथम चरण खण्ड, 95 द्वितीय चरण खण्ड ग्रौर 66 उत्तर द्वितीय चरण विकास खण्ड थे।

विकेन्द्रीकरण के ग्रन्तर्गत योजनाग्रो की समाप्ति पर 26 जिला परिषद्, 232 पचायत समितियाँ ग्रौर 7,382 ग्राम पचायतें काम कर रही थी।

सहकारिता का क्षेत्र भी बहुत बढा है। जहाँ 1950-51 मे राज्य मे सहकारी समितियो की सख्या 3,590 थी ग्रौर सदस्य सख्या 1 45 लाख थी, वहाँ 1965 66 मे क्रमश 22 571 तथा सदस्य सख्या 14 33 लाख हो गई है। तृतीय योजना के ग्रन्त तक 33 प्रतिशत ग्राम्य परिवार सहकारिता ग्रान्दोलन के ग्रन्तर्गत लाए जा चुके थे जबकि 1950 51 मे यह 1 5% ही था।

प्रशिक्षण के लिए जयपुर मे सहकारिता प्रशिक्षण स्कूल तथा कोटा, डूँगरपुर व जयपुर मे प्रशिक्षण केन्द्र शुरू किए गए।

सामाजिक सेवाएँ—तीनो पचवर्षीय योजनाग्रो के ग्रन्तर्गत सामाजिक सेवा

शेष पर 75 46 करोड रु व्यय किए गए अर्थात् कुल व्यय का 20 42% भाग शिक्षा, चिकित्सा व श्रम कल्याण आदि पर व्यय किया गया। फलस्वरूप, शिक्षण-संस्थाओ की सख्या 6,029 (वर्ष 1950-51) से बढ कर 32,826 (वर्ष 1965-66) हो गई। इसी प्रकार, चिकित्सालयो व डिस्पेन्सरियो की सख्या भी 366 से बढकर 535 हो गई। जल-पूर्ति की योजनाएँ भी 72 ग्रामीण और शहरी केन्द्रो मे पूरी की गई। इसके अतिरिक्त, राज्य मे 3 विश्वविद्यालय, 5 मेडिकल कॉलेज, 3 इजीनियरिंग कॉलेज और 4 कृषि-कॉलेज भी स्थापित हुए। लगभग 10 स्थानो पर पचायतीराज प्रशिक्षण केन्द्र कार्य करने लगे और 5 ग्राम सेवक प्रशिक्षक केन्द्र भी कार्यरत हुए।

योजनाकाल मे गृह-निर्माण के कार्यो मे काफी प्रगति की गई। अल्प-आय-गृह-निर्माण-योजना के अन्तर्गत 7,162 गृह-निर्माण किए गए। औद्योगिक गृह योजना के अन्तर्गत 3,974 मकान बनाए गए।

पिछडे वर्ग की जनसख्या राज्य की जनसख्या का लगभग 1/4 भाग है। एकीकरण के समय इनकी स्थिति आर्थिक और सामाजिक, दोनों दृष्टियो से बहुत पिछडी हुई थी। इनकी स्थिति सुधारने के लिए छात्रवृत्तियाँ, गृह निर्माण, आवास व्यवस्था और अन्य प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान की गई। तृतीय योजना के अन्त मे इस क्षेत्र के अन्तर्गत 1 रिमांड होम, एक प्रमाणित शाला, 1 आफ्टर केयर होम, 1 वृद्ध एव दुर्बलो के लिए एव 3 रेस्क्यू होम काम कर रहे थे। इसके अतिरिक्त 19 परिवीक्षा अधिकारी भी परिवीक्षा सेवाएँ कर रहे थे।

परिवहन एव संचार—राज्य के बहुमुखी विकास के लिए सडक निर्माण पर ध्यान देना बहुत आवश्यक था, क्योकि राज्य के पुनर्गठन के समय प्रति 100 वर्ग मील पर 5 35 मील लम्बी सडकें थी। सन् 1951 मे कुल मिलाकर सडको की लम्बाई 18,300 किलोमीटर थी, वह तृतीय योजना की समाप्ति पर बढकर 30,586 कि मी हो गई। प्रथम, द्वितीय और तृतीय योजनाओ मे क्रमशः 5·5 करोड रु., 10 2 करोड रु और 9 7 करोड रु व्यय से प्रत्येक योजना के अन्त मे सडको की कुल लम्बाई 1955-56 मे 22,511 किलोमीटर, 1960-61 मे 25,693 किलोमीटर और तृतीय योजना के अन्त 1965-66 मे 30,586 किलोमीटर हो गई, अर्थात् तीन योजनाओ मे 25 4 करोड रु के विकास व्यय से सडको की कुल लम्बाई मे 12,000 किलोमीटर से अधिक वृद्धि हुई। प्रति 100 वर्ग किलोमीटर पर 9 किलोमीटर लम्बी सडकें हो गई। इस प्रकार लगभग कुछ तहसील मुख्यालयो को छोडकर सभी तहसील मुख्यालयो को जिला मुख्यालयो से जोड दिया गया।

केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रेल परिवहन मे फतहपुर–चुरु, उदयपुर–हिम्मतनगर और गगानगर–हिन्दूमल कोट रेल लाइनें बनाई गई।

उद्योग—तीनो योजनाओ की अवधि मे उद्योग एव खनन् पर 7 15 करोड रु. व्यय किए गए। योजना के दौरान कई औद्योगिक नगरो, जैसे–कोटा, गगानगर, जयपुर, उदयपुर, भीलवाडा, भरतपुर, डीडवाना, खेतडी आदि का विकास हुआ। रजिस्टर्ड फैक्ट्रियो की सख्या जहाँ प्रथम योजना के अन्त में 368 थी वहाँ द्वितीय योजना

के अन्त में 856 और तृतीय योजना के अन्त में 1564 हो गई। राज्य में औद्योगिक इकाइयो की कुल सख्या नियोजन अवधि में लगभग 76% बढी।

रोजगार—प्रत्येक योजना का प्रमुख उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से अपनी मानव-शक्ति *का पूर्ण उपयोग करने का होता है। राजस्थान की पचवर्षीय योजनाओ में भी इस* उद्देश्य की ओर उचित ध्यान देने की चेष्टा की गई है। द्वितीय योजना में 3·77 लाख व्यक्तियो को और तृतीय योजना में 6 50 लाख व्यक्तियो को अतिरिक्त रोजगार प्रदान किया गया।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान ने विभिन्न कठिनाइयो के बावजूद भी आर्थिक नियोजन के 15 वर्षों में महत्त्वपूर्ण प्रगति की। नियोजन काल में की गई सर्वांगीण प्रगति के आधार पर ही राजस्थान क्रमशः तेजी से आर्थिक व सामाजिक समृद्धि के मार्ग पर बढ़ रहा है। यह आशा है कि निकट भविष्य में राजस्थान औद्योगिक एव सामाजिक दृष्टि से विकसित होकर देश के अन्य उन्नत राज्यो की *श्रेणी में आ खडा होगा।*

राजस्थान की तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)

तृतीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति के उपरान्त, विकट राष्ट्रीय सकटो और भारत पाक सघर्ष आदि के कारण चतुर्थ पचवर्षीय योजना 1 अप्रेल, 1966 से लागू नहीं की जा सकी, किन्तु नियोजन का क्रम न टूटने देने के लिए, 1966-69 की अवधि मे तीन वार्षिक योजनाएँ कार्यान्वित की गई। तीनो वार्षिक योजनाओ मे कुल व्यय लगभग 137 करोड रुपये हुआ। पहले ही की भाँति सिचाई एव शक्ति को प्राथमिकता दी गई और कुल व्यय का लगभग 61% इस मद पर खर्च हुआ। सामाजिक सेवाओ पर लगभग 15 5% व्यय हुआ और इस प्रकार प्राथमिकता की दृष्टि से इस मद का *द्वितीय स्थान है। कृषि-कार्य पर कुल व्यय का लगभग 15%* व्यय हुआ। परिवहन, सचार आदि पर लगभग 3% व्यय किया गया। इन वार्षिक *योजनाओ मे कृषि सिचाई व शक्ति को पहले से दी जाने वाली प्राथमिकता मे और* भी वृद्धि कर दी गई, जबकि सामाजिक सेवाओ पर किया गया प्रतिशत व्यय द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओ की अपेक्षा कम रहा। वास्तव मे साधनो के अभाव मे वार्षिक योजनाओ की प्राथमिकताओ मे कुछ परिवर्तन करना स्वाभाविक था।

विभिन्न कठिनाइयो के बावजूद वार्षिक योजनाओ मे कुछ क्षेत्रो मे प्रगति जारी रही। 1968 69 के अन्त मे विद्युत-उत्पादन 174 मेगावाट तक जा पहुँचा। खाद्यान्नो के उत्पादन मे प्रथम वार्षिक योजना मे स्थिति आशानुकूल नही रही, द्वितीय वार्षिक योजनाओ मे खाद्यान्नो का उत्पादन लगभग 66 लाख टन हुआ, किन्तु तृतीय वार्षिक योजनाओ मे खाद्यान्नो का उत्पादन प्रथम वार्षिक योजना के लगभग 43 5 लाख टन से भी घटकर केवल 35 5 लाख टन पर आ गया। सामाजिक सेवा क्षेत्र मे प्रगति हुई, परिवार-नियोजन कार्यक्रम आगे बढा और ग्रामीण तथा शहरी जल-पूर्ति कार्यक्रम भी सन्तोषजनक रूप म आगे बढे।

राजस्थान की चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)[1]

राज्य की चतुर्थ पचवर्षीय योजना की अवधि 1 अप्रेल, 1969 से आरम्भ हो गई, लेकिन कुछ कारणो से इसे अन्तिम रूप नही दिया जा सका। योजना आयोग ने पांचवें वित्त-आयोग की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए देश के विभिन्न राज्यो की योजनाओ का पुनर्मूल्यांकन किया और 21 मार्च, 1970 को राजस्थान राज्य की सशोधित चतुर्थ पचवर्षीय योजना का आकार 302 करोड रुपये निर्धारित किया जबकि राज्य-सरकार ने 316 करोड रुपये की योजना प्रस्तुत की थी।

इस योजना मे राज्य द्वारा प्रस्तावित व्यय-राशि का आवटन (प्रतिशत सहित) इस प्रकार था।[2]

(करोड रुपयो में)

विकास की मद	चतुर्थ योजना का व्यय	
	व्यय	कुल व्यय का प्रतिशत
1	2	3
1 कृषिगत कार्यक्रम	23	7 3
2. सहकारिता एव सामुदायिक विकास	9	2 8
3 सिचाई एव शक्ति	189	59·8
4. उद्योग तथा खनन	9	2 9
5. परिवहन एव सचार	10	3 2
6 सामाजिक सेवाएँ	73	23 1
7 अन्य	3	0 9
कुल	316	100 0

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिचाई एव शक्ति को दी गई तथा दूसरे स्थान पर सामाजिक सेवाएँ रही। कृषिगत कार्यक्रम का इनके बाद स्थान रहा और इन पर कुल व्यय का 7 3% व्यय करने की व्यवस्था की गई। चतुर्थ योजना समाप्त होने के पश्चात् जब इसके व्यय और उपलब्धियो का अन्तिम मूल्यांकन किया गया तो योजना के उपरोक्त प्रस्तावित व्यय तथा वास्तविक व्यय मे कोई विशेष अन्तर नहीं था। राजस्थान राज्य के आय-व्यय के अध्ययन (वर्ष 1976-77) के अनुसार वास्तविक व्यय की राशि 308·79 करोड रु रही। चतुर्थ योजना की विभिन्न विकास मदों पर कितना वास्तविक व्यय हुआ, यह पाँचवी योजना से सम्बन्धित एक सारणी मे (जिसमे दोनो योजनाओ के तुलनात्मक आँकडे दिए गए हैं) दर्शाया गया है।

1. चौथी योजना का यह विवरण मुख्य रूप से तीन स्रोतों पर आधारित है—(क) पाँचवीं योजना का प्रारूप जो जुलाई, 1973 में राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया, (ख) वित्त-मन्त्री राजस्थान का बजट भाषण, 1973-74, एव (ग) वित्त-मन्त्री का बजट भाषण, 1974-75.
2. Draft Fifth Five Year Plan 1974-79, p 13

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे आर्थिक प्रगति

राज्य की आय-वृद्धि—चतुर्थ योजना मे किए गए विभिन्न प्रयत्नो से राज्य की आय मे वृद्धि हुई। 1971-72 के मूल्यो के अनुसार योजना समाप्ति के समय प्रति व्यक्ति आय 600 रुपये अनुमानित की गई। 1971 एव 1974 के बीच राज्य की जनसख्या मे 8 51 प्रतिशत तक की दर से वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया है।

कृषिगत कार्यक्रम—चतुर्थ योजना के दौरान कृषिगत कार्यक्रमो को आगे बढाया गया। अधिक उन्नत किस्मो के बीजो, रासायनिक उर्वरको और लघु सिचाइ के माध्यम से कृषि-कार्यक्रमो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। 1971-72 के अन्त म अधिक उपज वाली फसलो की किस्म का क्षेत्रफल 8 लाख हैक्टेयर था जो 1972-73 के अन्त तक लगभग 12 34 लाख हैक्टेयर तक और 1973-74 म लगभग 13 20 लाख हैक्टेयर पहुँच गया। उर्वरको का वितरण 1971-72 मे 2 89 लाख टन था जो 1972-73 मे लगभग 3 18 लाख टन तक पहुँच गया। कृषि-विनियोजन से 1972-73 तक की समाप्ति तक 5 75 लाख टन खाद्यान्नो, 0 36 लाख टन तिलहन एव 90 लाख टन कपास की अतिरिक्त उत्पादन क्षमता बढने की आशा थी। 1973-74 में 71 लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न होने का अनुमान था जबकि चौथी योजना के प्रारम्भ मे उत्पादन-क्षमता का आधार-स्तर 63 लाख टन था। चतुर्थ योजनावधि मे दुग्ध उत्पादन भी 22 70 लाख टन से बढकर 23 70 लाख टन तक हो गया। पौध सरक्षण की व्यवस्थाओ एव गतिविधियो को विस्तृत किया गया। भूमि समतलन सम्बन्धी कार्य भी हाथ मे लिए गए। 1968-69 की तुलना में सहकारी साख मे दुगुने से भी अधिक वृद्धि हो गई।

सिचाई एव बिजली—चतुर्थ योजनावधि की समाप्ति तक 7 मध्यम सिचाई योजनाएँ अर्थात् पारबती, मेजा, मोरेल बेडच (बडगाँव), बेडच (बल्लभनगर), ओराई एव खारी फीडर लगभग पूरी हो गई। इसके अतिरिक्त 30 अन्य लघु सिचाई योजनाओ पर भी कार्य प्रारम्भ हो गया। सिचित क्षेत्र मे काफी वृद्धि हुई। 1968-69 मे जो सिचित क्षेत्र 21 18 लाख हैक्टेयर था, वह 1973-74 में बढकर लगभग 25 67 लाख हैक्टेयर हो गया। राजस्थान नहर क्षेत्र में बडी तेजी से प्रगति हुई और योजना की समाप्ति तक इस नहर परियोजना पर कुल व्यय लगभग 104 करोड रुपये का हुआ। 1968-69 मे इसकी सिचाई-क्षमता केवल 1 64 लाख हैक्टेयर थी जो योजना की समाप्ति तक बढकर लगभग 2 80 लाख हैक्टेयर हो गई।

शक्ति अर्थात् विद्युत्-उत्पादन के क्षेत्र मे भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जवाहर-सागर परियोजना एव राणाप्रताप सागर अणु विद्युत्-शक्ति प्लान्ट की यूनिट एक का काम पूरा हो गया। अत स्थायी विद्युत्-उत्पादन जो 1968 69 मे 174 मेगावाट था, बढकर 1973-74 मे 400 मेगावाट तक हो गया। योजनावधि मे प्रति व्यक्ति के पीछे खर्च होने वाली बिजली के आँकड़े 26 किलोवाट प्रति व्यक्ति

से बढ़कर 60 किलोवाट तक हो गया। 1968-69 तक केवल 2,247 ग्रामीण बस्तियों मे विद्युतीकरण हुआ था, जो योजना के अन्त तक बढ़कर लगभग 5,850 बस्तियों तक पहुँच गया। विद्युतीकरण किए गए कुओं की संख्या भी 18,795 से बढ़कर लगभग 73 000 हो गई। इस प्रकार चतुर्थ योजना-काल मे 54,000 से भी अधिक कुओं को बिजली दी गई।

उद्योग एवं खनन—योजना-काल मे औद्योगिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। वनस्पति, तेल, सीमेन्ट, पावर केबिल्स, सूती धागे, मशीन टूल्स, चीनी एवं नाइलोन के धागे आदि के उत्पादन हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योग स्थापित किए गए। कुछ वस्तुओं के उत्पादन मे बहुत सन्तोषप्रद वृद्धि हुई। 1973 के अन्त तक वनस्पति तेलों तथा उर्वरकों के उत्पादन मे 1969 की तुलना मे क्रमश 480 प्रतिशत एवं 96 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नाइलोन के धागों, सीमेन्ट, माइका इन्स्यूलिशन ब्रिक्स एवं बालबियरिंग के उत्पादन मे भी 1968 की तुलना मे क्रमश 28 प्रतिशत, 15 प्रतिशत, 65 प्रतिशत एवं 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

राज्य वित्त निगम ने उद्योगों को अपनी ऋण-सहायता मे भी काफी वृद्धि की। 1964-65 से 1968-69 की पाँच वर्ष की अवधि मे 156 औद्योगिक इकाइयों को 4 50 करोड रुपये की कुल ऋण सहायता दी गई थी और चतुर्थ योजनावधि मे 1,065 इकाइयों को लगभग 15 36 करोड रुपये की स्वीकृति दी जा सकने की सम्भावना थी। राज्य सरकार ने आधारभूत सुविधाएँ देने की प्रणाली जारी रखी। योजना समाप्ति तक 13 औद्योगिक क्षेत्रों मे 1 814 एकड़ औद्योगिक भूमि का विकास हो जाने तथा 252 औद्योगिक क्षेत्रों का निर्माण-कार्य पूरा हो जाने की आशा थी। राज्य ने केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (सेन्ट्रल पब्लिक सेक्टर एन्टरप्राइजेज) मे किया गया विनियोजन 1966-67 मे 16 86 करोड रुपये से बढ़कर 1973-74 मे लगभग 100 करोड तक पहुँच गया। रजिस्टर्ड फैक्टरियों की संख्या भी योजनावधि में 1,846 से बढ़कर लगभग 2,800 हो गई।

खनिज क्षेत्र मे सबसे उल्लेखनीय घटना झामरकोटड़ा मे रॉक फॉस्फेट की उपलब्धि रही। चतुर्थ योजना की समाप्ति तक इन खानों से 7 95 लाख टन कच्चा धातु निकाले जा चुकने की आशा थी। योजना-काल में ताम्बा व कच्चे लोहे के उत्पादन मे भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। 1973 के समाप्त होने तक कच्चा माइका, सिल्वर, लैड कन्सन्ट्रेट, कैल्साइट एवं फैल्सपार के उत्पादन मे 1968 के स्थान पर क्रमश 114 प्रतिशत, 48 प्रतिशत, 114 प्रतिशत, 91 प्रतिशत एवं 42 प्रतिशत की अधिक वृद्धि हुई।

परिवहन व संचार—योजना-काल में परिवहन और संचार-क्षेत्र मे काफी प्रगति हुई। लगभग 2,500 किलोमीटर लम्बी सड़के और बनी। 25 प्रतिशत मार्गों का योजनावधि की समाप्ति तक राष्ट्रीयकरण किया गया। पाँचवीं योजनावधि मे शत-प्रतिशत बस-मार्गों का राष्ट्रीयकरण कर देने की आशा वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण मे व्यक्त की। सड़कों के विकास के फलस्वरूप 1973-74 के अन्त

तक राज्य मे कुल सड़कों की लम्बाई लगभग 33,880 किलोमीटर हो जाने की आशा थी।

सामाजिक सेवा—*चतुर्थ योजना-काल मे सामाजिक सेवाओ और सुविधाओ* मे पर्याप्त वृद्धि हुई। राज्य मे 2,100 से अधिक प्राथमिक शालाएँ, 3,000 मिडिल स्कूल, 290 माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालय तथा 7 नए कॉलेज खोले गए। 1968 69 में ग्राम-जल-प्रदाय योजना 225 ग्रामो में चालू थी, किन्तु 1973-74 मे उनकी सख्या बढकर 1,427 हो गई। राजस्थान आवासन बोर्ड के तत्वावधान में गृह-निर्माण कार्य में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। 1974 के अन्त तक 2,655 भवनो का निर्माण-कार्य पूरा हो जाने की आशा वित्त-मत्री महोदय ने अपने बजट भाषण मे व्यक्त की।

रोजगार—बेरोजगारो को रोजगार देने की दिशा में भी काफी प्रयत्न किए गए। योजनावधि में लगभग 8 लाख लोगों को रोजगार की सुविधाएँ प्रदान की गई। ग्रामीण क्षेत्रो के लिए एव शिक्षित युवको के लिए रोजगार प्रदान करने वाले अनेक कार्यक्रमो को हाथ मे लिया गया, जिनमें से अधिकांश कार्यक्रम भारत सरकार की सहायता से प्रारम्भ हुए। 1973-74 में भारत सरकार द्वारा आवटित 2 76 करोड रुपये की राशि से एक 'हाफ-ए-मिलियन जाब्स प्रोग्राम' प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत 20 हजार शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार दिया जा सकेगा।

अत स्पष्ट है कि चतुर्थ योजनावधि मे राज्य मे विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति हुई। तथापि योजना-काल के अन्तिम दो वर्षो से राज्य को एक नाजुक आर्थिक स्थिति के दौर से गुजरना पडा, क्योकि देश की समूची अर्थव्यवस्था मे मुद्रा-स्फीति का दबाव बढ गया। जबरदस्त सूखे के कारण अन्न-उत्पादन को और विद्युत्-उत्पादन मे कमी के कारण औद्योगिक उत्पादन को भारी आघात पहुँचने, विश्व में तेल-मूल्यो मे असाधारण वृद्धि होने तथा अन्य सकटो के कारण देश की समूची अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव व असर पडता रहा।

राजस्थान की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप एवं 1974-75 की वार्षिक योजना

राजस्थान सरकार के नियोजन विभाग द्वारा जुलाई, 1972 मे राज्य की पाँचवी पचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण-पत्र प्रकाशित किया गया। इस दृष्टिकोण-पत्र मे पाँचवी योजना मे अपनाई जाने वाली आधारभूत नीतियो, विनियोग की मात्रा, विकास-दर आदि के सबन्ध मे कतिपय प्रस्ताव रखे गए। विकास-दर 7% वार्षिक प्रस्तावित की गई। सावजनिक क्षेत्र मे व्यय के लिए 775 करोड रुपये प्रस्तावित किए गए जिनमे से 600 करोड रुपये *की राशि केन्द्रीय सहायता के रूप मे प्राप्त की जानी* थी। दृष्टिकोण-पत्र मे सिचाई व शक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कुल प्रस्तावित राशि 775 करोड रुपये का 60% निश्चित किया गया। कृषि-कार्यक्रमो के लिए 13%, उद्योग एव खनन् के लिए 4·5% तथा सामाजिक सेवाओ के लिए 15% व्यय नियत किया गया। दृष्टिकोण-पत्र मे आर्थिक विपमताओ को दूर करने के

सम्बन्ध मे कोई ठोस सुभाव नही दिए गए और वित्तीय साधनो के अभाव की समस्या पर भी समुचित ध्यान नही दिया गया।

जुलाई, 1973 मे राज्य सरकार द्वारा पाँचवी पचवर्षीय योजना का प्रारूप (Draft) तैयार किया जा कर योजना आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया गया। दृष्टिकोण-पत्र मे सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय के लिए 775 करोड रुपये का प्रावधान था किन्तु प्रारूप मे योजना का आकार 635 करोड रुपये ही रखा गया। राजस्थान राज्य के आय व्यय का अध्ययन 1976-77 के अनुसार पाँचवी योजना का कुल परिव्यय (Outlay) 691 47 करोड रुपये रखा गया है। भारत सरकार की पाँचवी पचवर्षीय योजना का अन्तिम रूप से पुनर्मूल्यांकन अक्तूबर, 1976 मे प्रकाशित होने की सम्भावना है और स्वाभाविक है कि राज्यो की पचवर्षीय योजनाओ मे भी न्यूनाधिक हेरफेर सामने आएँगे।

पाँचवी योजना (1974-79) पिछली योजनाओ की तुलना मे अधिक व्यावहारिक और देश मे समाजवादी ढाँचे के समाज की स्थापना के लक्ष्य के अधिक अनुकूल है। इसका सकेत राज्य के मुख्य मन्त्री हरिदेव जोशी के इन शब्दो से भी मिलता है कि, "चार पचवर्षीय योजनाओ के क्रियान्वयन के पश्चात् अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि आर्थिक विकास पर बल देने मात्र से स्वत ही न तो जनता के कमजोर वर्गो का जीवन स्तर ऊँचा होता है और न ही आमदनी और अन्य आर्थिक लाभो का व्यापक वितरण ही होता है। साथ ही, हम यह भी पाते हैं कि पिछली पचवर्षीय योजनाओ के क्रियान्वयन के उपरान्त भी हम अन्य राज्यो की अपेक्षा विकास के निम्नतर स्तर पर है। इस स्थिति मे हमारे लिए यह आवश्यक है कि पाँचवी पचवर्षीय योजना मे हम ऐसे प्रयास करें कि राज्य के विकास की गति मे अधिकाधिक विकास हो ताकि राजस्थान और अन्य राज्यो के बीच विकास के स्तरो का अन्तर कम हो सके।"[1]

पाँचवी योजना के उद्देश्य और मूल नीति

प्रमुख रूप से पाँचवी योजना के उद्देश्य इस प्रकार है[2]—

(1) आर्थिक विषमता कम से कम रहे

(2) प्रत्येक को जीवन-यापन का साधन मिले

(3) सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा हो

(4) क्षेत्रीय असमानता मे कमी हो

(5) मानव-मूल्यो का विकास हो।

इन उद्देश्यो का सकेत मुख्य मन्त्री श्री हरिदेव जोशी ने किया। स्पष्टत उनके ये कोई कूटनीति-प्रेरित वाक्य नही हैं अपितु योजना-प्रारूप मे उल्लिखित उद्देश्यो का सक्षिप्तीकरण है। प्रारूप के प्रथम पृष्ठ के प्रथम पैरा मे ही स्पष्ट रूप मे उल्लख है

1. राजस्थान विकास, दिसम्बर, 1973 मे मुख्य मन्त्री श्री हरिदेव जोशी का लेख 'पाँचवीं योजना का आधार,' पृष्ठ 3
2 Ibid, p 13

कि, "राज्य की पाँचवी पचवर्षीय योजना का उद्देश्य विकास की स्थितियो को उत्पन्न करने मे समर्थ विभिन्न क्षेत्रो के विकास को प्रोत्साहन देकर आर्थिक आधार को मजबूत बनाना है। प्रयत्न यह होगा कि आर्थिक विकास के लाभ जनता के अधिकाधिक बडे भाग को मिल सकें और जनता के बहुमत के जीवन स्तर मे, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो मे, महत्त्वपूर्ण सुधार हो सके।"[1] प्रारूप के प्रथम अध्याय मे *योजना के मूलभूत उद्देश्यो और योजना की व्यूह-रचना अथवा मूल नीति को विस्तार से स्पष्ट किया गया है।* स्पष्टता के लिए मुख्य बिन्दु निम्नानुसार है[2]—

1. *अर्थ-व्यवस्था के उन क्षेत्रो का विकास किया जाएगा जो विकास की* गति को तीव्र करने और अधिकतम उत्पादन दे सकने मे समर्थ हो।

2 विभिन्न क्षेत्र मे विकास कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किए जाएँगे जिससे समाज के कमजोर वर्गो को योजना के अधिकाधिक लाभ उपलब्ध हो सके। उन कार्यक्रमो को वरियता दी जाएगी जो रोजगार के अवसरो को बढा सकें। यह प्रयास किया जाएगा कि शिक्षा सुविधाओ, स्वास्थ्य-कार्यक्रमो, जल-पूर्ति, विद्युतीकरण, सडको, गन्दी बस्तियो के सुधार आदि के सम्बन्ध मे ग्रामीण जनता की अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके।

3 उन कार्यक्रमो को अपनाया जाएगा जिनके द्वारा प्रायमिक उत्पादको, कृषि-श्रमिको और जनता के कमजोर वर्गों की आय मे वृद्धि हो सके।

4 कृषि-नीति को अधिक प्रभावी बनाया जाएगा। यह प्रयास किया जाएगा कि प्रति एकड उत्पादन बढे। साथ ही, अधिक गहन कृषि पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा, क्योकि राज्य मे नई भूमि पर कृषि विस्तार की सम्भावनाएँ सीमित हैं। राज्य मे पशुपालन के विकास की भारी सम्भावनाओ को देखते हुए इसके लिए चरागाहो तथा चारे के विकास की दिशा मे सक्रिय प्रयास किए जाएँगे।

5 भूमिगत-जल (Ground water) का विशेष रूप से प्रयोग किया जाएगा, क्योकि राज्य मे सतही जल (Surface water) की मात्रा सीमित है।

6. सिचाई क्षमता का अधिकतम उपयोग करते हुए कृषको के लिए कृषि और पशुपालन विकास के लिए साख-सुविधाओ का विस्तार किया जाएगा। भूमि को समतल बनाने तथा भू सरक्षण और शुष्क कृषि-कार्यक्रमो को प्रोत्साहन दिया जाएगा। इनके लिए चम्बल एव राजस्थान नहर परियोजनाओ के सिचाई-क्षेत्रो का समन्वित ढग से विकास किया जाएगा। इस विकास-कार्यक्रमों मे सडकों और मण्डियो का निर्माण, विद्युतीकरण, वैज्ञानिक कृषि-पद्धतियाँ आदि विभिन्न बातें सम्मिलित हैं।

7. राज्य मे बडे मध्यम एव लघु उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन दिया जाएगा। इस बात का पूरा प्रयास होगा कि औद्योगिक विकास निगमो के माध्यम से 'आधारित सरचना' (Infra-Structure) के विकास को गति मिले।

1 Draft Fifth Five Year Plan (Rajasthan) 1974-79, p 1.
2 Ibid, pp 8-12

योजना के प्रारूप मे प्रस्तावित राशियो ग्रौर ग्राय-व्यय के ग्रध्ययन 1976-77 मे दिखाई गई राशियो मे हुग्रा विशेष ग्रन्तर नही ग्राता। योजना प्रारूप मे सर्वोच्च प्राथमिकता (49 9 प्रतिशत) सिचाई एव शक्ति को दी गई है, दूसरा स्थान सामाजिक सेवाग्रो का है, जिनके 23 1 प्रतिशत राशि निर्धारित की गई है। कृषि-कार्यक्रम को तीसरा स्थान दिया गया है जिस पर 10 2 प्रतिशत राशि व्यय करने का प्रस्ताव है। यदि परिव्यय को भिन्न राशि मे लें तो प्रारूप के ग्रनुसार कुल 635 करोड रुपये के परिव्यय मे से सिचाई एव शक्ति पर 316 करोड रु, सामाजिक सेवाग्रो पर 147 करोड रु ग्रौर कृषि-कार्यक्रमो पर 65 करोड रुपये के परिव्यय का प्रावधान है ग्रौर ये राशियाँ ग्राय-व्ययक ग्रध्ययन 1976-77 की राशियो से कुछ ही ग्रन्तर रखती है। ग्राय-व्यय के ग्रध्ययन मे भी सर्वोच्च प्राथमिकता सिचाई एव शक्ति को, दूसरा स्थान सामाजिक सेवाग्रो को ग्रौर तीसरा स्थान कृषि-कार्यक्रमो को दिया गया है।

राज्य की वार्षिक योजना (1974–75)

राजस्थान सरकार के ग्रायोजना विभाग द्वारा 1974 75 की वार्षिक योजना (पाँचवी योजना के ग्रग के रूप मे) के प्रारूप मे 98 करोड रुपये के व्यय का प्रावधान रखा गया लेकिन योजना ग्रायोग द्वारा 79 80 करोड रुपये का परिव्यय ही स्वीकार किया गया। 1974-75 की इस वार्षिक योजना के सम्बन्ध मे ग्रावश्यक जानकारी हमे राजस्थान के वित्त मन्त्री के 1974-75 के बजट भाषण मे मिलती है। ग्रग्रिम विवरण इसी बजट भाषण के ग्राधार पर दिया गया है।[1]

वर्ष 1974-75 की वार्षिक योजना के परिव्यय (79 80 करोड रुपया) की वित्तीय व्यवस्था निम्न उपलब्ध स्रोतो से की जाने की व्यवस्था की गई।

		(करोड रुपयो मे)
1. केन्द्रीय सरकार से सहायता		45 06
2 राज्य द्वारा जुटाए गए ग्रतिरिक्त साधन		5 00
3. ग्रावासन हेतु जीवन-बीमा निगम से ऋण		1 00
4 रिजर्व बैंक ग्रॉफ इण्डिया से ऋण		0 80
5 राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल का डिप्रिसिएशन रिजर्व		2·98
6 राज्य विद्युत मण्डल द्वारा ऋण		13 95
(क) सार्वजनिक	4 95	
(ख) जीवन-बीमा निगम से	4 00	
(ग) ग्राम-विद्युत निगम से	5 00	
7 सार्वजनिक ऋण		2 20
(क) राज्य ग्रावासन-मण्डल	1·10	
(ख) राजस्थान राज्य ग्रौद्योगिक एव खनिज विकास निगम	1 10	

1 वित्त मन्त्री, राजस्थान का बजट भाषण 1974-75, पृष्ठ 11-17

८. राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम का डिप्रिसिएशन रिजर्व	1 49
9 नगरपालिकाओ की जल प्रदाय स्कीमो के लिए जीवन-बीमा निगम से ऋण	1 50
योग	7^ 98
वार्षिक योजना में घाटा	5 82

चूंकि 79·80 करोड रुपये की योजना परिव्यय की वित्तीय व्यवस्था करने मे 5 82 करोड रुपये की कमी पूरी नही हो पाती, अत इसके लिए अतिरिक्त साधन जुटाए जाने का निश्चय किया गया।

इस वार्षिक योजना मे 79 80 करोड रुपये के परिव्यय का विभिन्न मदो क अनुसार आवटन इस प्रकार रखा गया—

	(करोड रुपयो मे)
1 कृषि एव सम्बद्ध सेवाएँ	6 49
2 सहकारिता	1 09
3 उद्योग एव खान	3 26
4 परिवहन एव सचार	6 10
5 सामाजिक एव अन्य सामुदायिक सेवाएँ	20 88
6 जल एव विद्युत विकास	40 55
7 अन्य सेवाएँ	1 43
योग	79 80

उपरोक्त 79 80 करोड रुपये के परिव्यय के अतिरिक्त सास्थानिक वित्तीय एजेन्सियो के माध्यम से विभिन्न राज्य निगमो, मण्डलो राज्य एजेन्सियो, सहकारी सस्थाओ एव विश्वविद्यालयो द्वारा विकास की गतिविधियो म लगभग 72 करोड रु के व्यय का और विनियोजन करने का अनुमान था। इसके अतिरिक्त, केन्द्र सचालित स्कीमो पर कम से कम 20 08 करोड रुपये के व्यय का अनुमान था। इस प्रकार, 1974 75 म सार्वजनिक क्षेत्र मे विकास पर होने वाला कुल परिव्यय 171 88 करोड रुपये होने का अनुमान था।

राज्य की वार्षिक योजना (1975-76)

राज्य की वार्षिक योजना 1975-76 के लिए योजना आयोग द्वारा 105 50 करोड रुपये का प व्यय अनुमोदित किया गया, किन्तु कुछ अनुभाग जैसे शिक्षा, चिकित्सा एव स्वास्थ्य ग्रामीण विद्युतीकरण तथा कमाण्ड विकास-क्षेत्र की नितान्त आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु परिव्यय की राशि अधिक रही और 1976 77 के आय व्यय अध्ययन म दी गई एक सारणी के अनुसार सम्भावित व्यय 135 38 करोड रुपये हैं।

योजना का परिव्यय और सम्भावित व्यय

निम्नांकित सारणी म राज्य की वार्षिक योजना 1975-76 के परिव्यय और सम्भावित व्यय की राशियो के साथ ही सम्पूर्ण पांचवी योजना के परिव्यय को दर्शाया गया है। साथ ही, राज्य की चतुथ पचवर्षीय योजना के परिव्यय और व्यय सम्बन्धी आंकडे भी दिए गए है। इस प्रकार हमारे समक्ष चतुथ और पचम योजना का एक तुलनात्मक चित्र उपस्थित हो जाता है—

(करोड रुपये)

विभाग	चतुथ पचवर्षीय योजना		पचम पचवर्षीय योजना		
	परिव्यय (1969 74)	व्यय	परिव्यय (1974-79)	परिव्यय (1975 76)*	सम्भावित व्यय
1	2	3	4	5	6
1 कृषि एव सम्बन्धित सेवाएँ	25 10	22 55	73 93	10 79	11 56
2 सहकारिता	8 20	8 12	8 30	1 10	1 14
3 सिंचाइ एव शक्ति	178 83	186 95	327 47	63 29	69 25
4 उद्योग तथा खनन्	7 95	8 55	27 99	4 53	5 10
5 यातायात एव सचार	9 78	10 00	57 77	7 35	24 91
6 सामाजिक सेवाएँ	73 38	71 65	189 27	23 31	22 95
7 अन्य	2 97	0 97	6 75	0 47	0 47
योग	306 21	308 79	691 47	110 84	135 38

*प्रावधानिक

योजना के लक्ष्य और उपलब्धियाँ

राजस्थान राज्य के आय-व्ययक अध्ययन 1976 77 मे राज्य की वार्षिक योजना (1975-76) के लक्ष्य और उपलब्धियो का जो विवरण दिया गया है, वह निम्नानुसार है—

"राज्य अर्थव्यवस्था मे कृषि अनुभाग की महत्ता को देखते हुए सिंचित क्षेत्रफल में वृद्धि तथा अन्य साधन जैसे खाद्य एव उन्नत बीजो की उपलब्धि कराने के प्रयत्न किए गए। अधिक उपज देने वाले उन्नत बीज कार्यक्रम को 13 92 लाख हैक्टर भूमि तक विस्तारित करने, रासायनिक खाद का उपयोग 1 59 लाख मै टन तक बढाने तथा 55 लाख हैक्टर भूमि मे पौध सरक्षण उपायो के विस्तार किए जाने का प्रावधान रखा गया। खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 1975 76 मे 1974-75 के निर्धारित लक्ष्य की तुलना मे 1 5 लाख मै टन अधिक रखा गया।

वर्ष 1975-76 मे लघु सिंचाइ योजना के लिए भूमि-विकास बैंको के द्वारा वितरित ऋण की राशि बढा कर 12 40 करोड रुपये कर दी गई थी जिसमे 7 15

करोड रुपये की कृषि पुनर्वित्त निगम द्वारा दी गई राशि भी शामिल है। वर्ष 1975-76 के प्रारम्भ म 30 ए आर. सी योजनाएँ चालू रही एव 20 नवीन योजनाओ को प्रारम्भ किया जाना प्रस्तावित था। सिचाई विभाग द्वारा अधिकांशत चालू योजनाओ को ही पूर्ण करने का कायक्रम था। विश्व बैंक सहायता तथा डी पी ए पी के कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि विकास के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम को राजस्थान नहर एव चम्बल के कमाण्ड एरिया मे प्रारम्भ किया गया।

कृषि-विस्तार को पुन सक्रिय करने, खेतो मे तकनीकी प्रयोग अपनाने, भू सरक्षण कार्यक्रमो का अधिकाधिक सामञ्जस्य, शुष्क कृषि-प्रसार तथा लघु सीमान्त कृषक एव कृषि श्रमिको से सम्बन्धित उल्लेखनीय कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए, जैसा कि आलोच्य वर्ष की समीक्षा से दृष्टिगोचर होता है। राज्य मे इन कार्यक्रमों के क्रियान्वित होने से कृषि-क्षेत्र म उल्लखनीय सुधार हुआ।

वर्ष 1975-76 मे पशु-पालन के अन्तर्गत एक आधार ग्रामकेन्द्र 11 धातु एकत्रण उप इकाइयां, 6 पशु चिकित्सालय तथा दो नवीन भ्रमणशील इकाइयां पर्याप्त पशु चिकित्सा एव स्वास्थ्य सुविधाओ को सुलभ कराने हेतु आलोच्य वर्ष मे खोली गईं।

राज्य के सूखाग्रस्त क्षेत्रो के व्यक्तियो की आर्थिक स्थिति मे सुधार एव आय मे वृद्धि करने हेतु दुग्ध-विकास योजना पर निरन्तर महत्त्व दिया गया। बीकानेर, अजमेर व जोधपुर की दुग्ध शालाओ का एव जयपुर मे नया सयन्त्र लगाने का कार्य लगभग समाप्ति पर है। डेरी-विकास कार्य मुख्यत सहकारी क्षेत्र मे होने से दुग्ध उत्पादक सहकारी इकाइयो को अनुदान देने तथा उनकी हिस्सा पूँजी को बढाने का भी प्रावधान रखा गया।

राज्य की अन्य योजनाओ मे से नहर एव सडक के किनारे वृक्षारोपण व चारागाह विकास के कार्यक्रम लिए गए। 6500 हैक्टर भूमि मे गिरे हुए कूपो की फेंसिंग तथा भवन व प्रहरी स्तम्भ इत्यादि का निर्माण परिभ्रांशित वनो के पुनर्वास कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया।

सहकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत कमजोर सहकारी बैंको के पुनरोद्धार व हिस्सा पूँजी, जो कि सहकारी साख सस्थाओ का आधार है, मे वृद्धि करने का कार्य किया गया। अल्प एव मध्यकालीन साख को प्रभावी कृषि हेतु जो 1974-75 मे 41 93 करोड रुपये की थी, बढकर वर्ष 1975-76 मे 62 32 करोड रुपये की हो गई, विशेष अभियान के अन्तर्गत वर्ष 1975-76 मे कृषि परिवारो के विस्तार मे लगभग 50/ की वृद्धि हुई, जबकि वर्ष 1974-75 मे यह वृद्धि 42·/ थी। सामुदायिक विकास क्षेत्र मे, कृषि-उत्पादन को प्रोत्साहन देने हेतु प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं और पुरस्कार दिए गए। उपग्रह शैक्षणिक दूरदर्शन कार्यक्रम को राजस्थान के 385 गाँवो मे कार्यान्वित करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

सिचाई क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान नहर, व्यास इकाई प्रथम एव द्वितीय, चम्बल प्रथम चरण, माही बजाज व जाखम तथा चार मध्यम सिचाई योजनाएँ, जैसे सेई डाईवर्शन, मेजा फीडर, जैतपुरा व गोपालपुरा चालू सिंचाई योजनाएँ थीं।

वर्ष 1975-76 मे सभी वृहद् व मध्यम सिचाई परियोजनाओ से 110 40 हजार हैक्टर अतिरिक्त क्षेत्र मे सिचाई होने की आशा है। इस प्रकार कुल सिचाई क्षेत्र गत वर्ष के 9 40 लाख हैक्टर से बढकर 10·34 लाख हैक्टर हो जाएगा। वर्ष 1975-76 मे राजस्थान नहर और चम्बल के सिचित क्षेत्र म से क्रमश 2 84 लाख हैक्टर और 1 80 लाख हैक्टर की वृद्धि की आशा है। समस्त साधनो के माध्यम से सिचित क्षेत्र वर्ष 1974-75 के 27 57 लाख हैक्टर से बढकर वर्ष 1975-76 मे 28 59 लाख हैक्टर होने की सम्भावना है।

उद्योग एव खनिज क्षेत्र मे राजस्थान राज्य उद्योग एव खनिज विकास निगम के स्कूटर एव दूरदर्शन यन्त्र सम्बन्धित प्लान्ट इस वर्ष उत्पादन-स्तर पर आ जाने की सम्भावना है। बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत हाथ करघा उद्योग के विकास हेतु राजस्थान हाथ-करघा बोर्ड की स्थापना की गई है। खानो के अन्तर्गत राज्य की सोडियम सल्फेट प्लान्ट डीडवाना की उत्पादन क्षमता को बढाया गया है। डेरी बेस मैटल, जिसमे जस्ता एव तांबे की 12 / मिश्रित मात्रा है, का अनुमानत 10 लाख मैं टन का भण्डार समन्वेषण स्तर पर था। अन्य बेस मेटल भण्डार पर अनुसधान कार्य जारी रहा झामरकोटरा के प्रमाणित फास्फेट भण्डार की क्षमता वर्ष 1974-75 के 375 लाख मैं टन से बढ कर वर्ष 1975 76 मे 395 लाख मैं टन हो जाने की सम्भावना है। सडक क्षेत्र मे राज्य एव केन्द्रीय योजनाओ तथा अकाल ग्रस्त कार्यों के अन्तर्गत विशेष महत्त्व चालू योजनाओ को पूर्ण करने पर रहा। मिनियम नीड कार्यक्रम के अन्तर्गत 2500 एव उससे अधिक जनसख्या वाले ग्रामो को नई सडको से जोडने का कार्य प्रारम्भ किया गया।

राजस्थान एव चम्बल नहर के कमाण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत बस्तियो मण्डियो व उपज केन्द्रो को जोडने हेतु सडक निर्माण के लिए प्रावधान किया गया। वर्ष 1975-76 मे 395 किलोमीटर नवीन सडको का निर्माण करने का निश्चय किया गया। राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम द्वारा बसो मे वृद्धि की गई तथा यात्रियो को सुविधाएँ प्रदान की गई हैं व लगभग 40 प्रतिशत सडक मार्गों को निगम ने अपने अधीन ले लिया। पर्यटन क्षेत्र के अन्तर्गत दो नए डाक बगलो के निर्माण वर्तमान पर्यटन बगलो मे अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने तथा पर्यटक स्थलो के विकास जिसम जयपुर को सुन्दर बनाने व माउण्ट आबू के विकास के लिए राशि का प्रावधान किया गया।

चिकित्सा एव स्वास्थ्य क्षेत्र मे न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत नए प्राथमिकता स्वास्थ्य केन्द्रो के निर्माण, अपूर्ण भवनो को पूर्ण करने एव औषधि वितरण के कार्यक्रम किए गए। चिकित्सा शिक्षा-कार्यक्रम के अन्तर्गत 5 चिकित्सा महाविद्यालय एव इनमे सम्बन्धित चिकित्सालयो मे अतिरिक्त स्टाफ नियुक्त कर इन्हे सशक्त किया गया। वर्ष 1975 76 मे आयुर्वेदिक पद्धति के अन्तर्गत 101 औषधालय खोलकर ग्रामीण क्षेत्र मे चिकित्सा सुविधाओ मे विस्तार किया गया।

जल वितरण योजनाओ के अन्तर्गत वर्ष 1975-76 तक, शहरी क्षेत्रो मे

बढा कर क्रमश 50 करोड रु एव 10 करोड रुपये कर दी गई है ताकि साहूकारो पर लगाए गए प्रतिबन्ध के फलस्वरूप ऋण सुविधा मे आयी कमी की पूर्ति हो सके।

खेतिहर मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी बढा कर असिंचित क्षेत्रो मे 4 25 रुपय, सिंचित क्षेत्रो मे 5 00 रुपये एव वृहत् नहरी परियोजना क्षेत्र में 6 00 रुपये प्रतिदिन कर दी गई है तथा पुरुषो एव स्त्रियो के लिए समान मजदूरी निर्धारित की गई है।

नहरी एव भूमिगत जल सिचाई तथा पेय-जल हेतु सर्वेक्षण कार्य उत्साहपूर्वक किए गए। लघु सिचाई योजनाओ के अन्तर्गत दिसम्बर, 1975 के अन्त तक कुओ को खोदने तथा उन्हे गहरा करने के कार्य का गति प्रदान की गई व ग्रामीण विद्युनीकरण कार्यक्रम चालू रहा।

शिक्षण सस्थाओ मे गठित की गई 151 सहकारी समितियो के माध्यम से 1,204 छात्रावासो तथा किराए के मकानो मे रह रहे 51,000 छात्रो को प्रति माह प्रति छात्र 8 किलोग्राम गेहूँ तथा एक किलोग्राम चीनी उचित मूल्यो पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। अक्टूबर, 1975 से अभ्यास पुस्तिकाओ के मूल्य म 5 से 12 प्रतिशत की और कमी की गई है तथा 3 216 बुक बैंको की स्थापना की गई, जिनमे 5 लाख 49 हजार पुस्तकें उपलब्ध हैं। राज्य सरकार द्वारा स्थापित छात्रावासो के लगभग 5 700 अनुसूचित जाति एव जन-जाति के विद्यार्थियो को नि शुल्क भोजन, वस्त्र एव आवास की सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

1,300 ट्रेड, 250 तकनीकी एव 50 स्नातक प्रशिक्षणार्थियो को विभिन्न स्थानो पर लगाया गया तथा शेष डिग्री/डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियो के सीधी भर्ती या उच्च अध्ययन हेतु चले जाने के कारण रिक्त रहे।

अक्तूबर, 1975 मे गठित हाथ-करघा परियोजना मण्डल ने भारत सरकार को 1 32 करोड रुपये की एक योजना प्रस्तुत की है। जनता कपडे का वितरण 3 209 खुदरा दुकानो एव 299 अधिकृत मिल दुकानो के माध्यम से सुलभ कराया गया।

कर-चोरी उन्मूलन अभियान के अन्तर्गत 14,000 प्रकरणो की जाँच की गई तथा 21 लाख रुपये दण्ड के रूप मे वसूल किए गए। 8,000 रुपये की सीमा तक आय कर मे छूट दी गई। विभिन्न आर्थिक अपराधो की शीघ्र सुनवाई तथा विशेष न्यायालय स्थापित करने हेतु राजस्व से सम्बन्धित विभिन्न अधिनियमो मे सशोधन किया गया। मार्च, 1976 के अन्त तक सडक परिवहन के लिए 250 राष्ट्रीय परमिट प्रदत्त कर दिए जाएँगे।

राज्य प्रशासन में सुधार लाने की दृष्टि से भ्रष्ट एव अकर्मण्य कर्मचारियो को सेवा मुक्त करने की कार्यवाही की गई, जिससे 1,906 कर्मचारियो को सेवा मुक्त किया गया।

निर्धन व्यक्तियो को नि.शुल्क कानूनी सहायता एव सलाह देने के लिए उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश व अन्य सदस्यो सहित कानूनी सहायता एव सलाहकार बोर्ड की स्थापना माननीय मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में की गई है।

राज्य की वार्षिक योजना (1976-77)[1]

योजना आयोग ने वष 1976 77 की वार्षिक योजना का आकार 135 00 करोड रुपये निश्चित किया है किन्तु आयोग द्वारा राज्य परिवहन निगम के आन्तरिक स्रोतो से उपलब्ध साधनो की तुलना में आर्थिक परिव्यय ही सम्मिलित करने के कारण योजना का आकार 138 19 करोड रुपय होगा। उक्त विसगति की ओर योजना आयोग का ध्यान भी आकर्षित किया गया है।

जहाँ वर्ष 1971-72 मे प्रति व्यक्ति योजना व्यय केवल 23 रुपये था, 1-3 72 की अनुमानित जनसख्या के आधार पर वर्ष 1976 77 मे यह व्यय दुगने से भी अधिक बढकर 47 रुपये प्रति व्यक्ति होगा। इससे सकेत मिलता है कि विकास कार्यक्रमो पर राजस्थान किस गति से विनियोजन कर रहा है।

वार्षिक योजना के 138 19 करोड रुपये के परिव्यय का आवटन इस प्रकार है—

(करोड रुपयो मे)

	परिव्यय	प्रतिशत
1 सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाएँ	24 74	17 9
2 कृषि एव सम्बद्ध सेवाएँ	13 09	9 5
3 सहकारिता	1 26	0 9
4 उद्योग एव खनिज	4 44	3 2
5 परिवहन एव सचार	10 92	7 9
6 सिचाई एव विद्युत विकास	83 15	60 2
7 अन्य	0 59	0 4
योग	138 19	100 0

उक्त योजना व्यय की वित्तीय व्यवस्था निम्न स्रोतो से होगी—

	(करोड रुपयो मे)
1 केन्द्रीय सरकार से सहायता	49 57
2 अतिरिक्त साधनो से आय	33 52
3 सार्वजनिक एव वित्तीय प्रतिष्ठानो से ऋण	20 55
4 परिवहन निगम के उपलब्ध आन्तरिक स्रोत	1 73
	105 37
वार्षिक योजना मे घाटा	– 32 82
योग	138 19

1 वित्त मन्त्री (राजस्थान) का बजट भाषण 1976 77

इस प्रकार 138 19 करोड रुपये की योजना व्यय की वित्तीय व्यवस्था मे 32 28 करोड रुपये की कमी रह जाती है।

वार्षिक योजना के अन्तर्गत 138 19 करोड रुपये के अतिरिक्त, सास्थानिक वित्तीय एजेन्सियो के माध्यम से विभिन्न राज्य निगमो, मण्डलो, राज्य एजेन्सियो, सहकारी सस्थाओ एव विश्वविद्यालयो द्वारा विकास की गतिविधियो मे लगभग 116 00 करोड रुपये के व्यय का और विनियोजन करने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त आगामी वर्ष मे केन्द्र सचालित स्कीमो पर 20 33 करोड रुपये खर्च किए जाने का अनुमान है। इस प्रकार वर्ष 1976-77 मे, सार्वजनिक-क्षेत्र मे विकास पर होने वाला कुल परिव्यय 274 52 करोड रुपये होने की सम्भावना है।

Appendix—1

भारी उद्योगों का विकास

औद्योगीकरण का पहला दौर आजादी के बाद तुरन्त ही शुरू हुआ। उसमे बिजली, इस्पात, रासायनिक खाद, अल्युमिनियम, सीमेंट तथा अर्थ-व्यवस्था के लिए अत्यन्त ही आवश्यक अन्य चीजों की उत्पादन क्षमता बढाने पर जोर दिया गया। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि इन चीजो के उत्पादन बढाने के लिए हमे दुर्लभ विदेशी मुद्रा की बडी राशि खच करके विदेशो से पूंजीगत सामान मगाना पडा।

दूसरा दौर दूसरी पचवर्षीय योजना के साथ शुरू हुआ, जब हमने आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास के लिए पूंजीगत सामान का उत्पादन करने की कई योजनाएँ अपने हाथ मे लीं। ऐसी योजनाओं के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता हुई, इनमे उत्पादन शुरू होने मे भी काफी समय लगा और तुलनात्मक दृष्टि से, जहाँ तक मुनाफे का प्रश्न है, मुनाफा भी कम होने वाला था। इन सभी कारणो के अतिरिक्त, सरकार की नीति सार्वजनिक क्षेत्र को विकसित करने की थी, जिससे देश की अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके। इसलिए, सरकारी क्षेत्र मे कई बडे-बडे कारखाने लगाने की योजना तैयार की गई। आज भारत मे भारी उद्योग के बडे सरकारी कारखाने निम्नलिखित है—

सरकारी क्षेत्र के कारखाने

1. **भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड**—थर्मल वायलर, थर्मल व हाइड्रोटर्बो सेटो, भारी रोटेटिंग मशीनो, बडे आकार के ट्रान्सफार्मरो तथा स्विचगियर के निर्माण के लिए इसके कारखाने तिरुची, भोपाल हरिद्वार तथा रामचन्द्रपुरम् मे हैं।

2 **भारी इजीनियरी निगम (हैवी इजीनियरिंग कारपोरेशन)**—भारी ढलाई तथा गढाई, इस्पात सयत्रो के लिए सयत्र तथा मशीनें, क्रशर तथा ग्राइन्डर, बडी क्षमता वाले एक्सकेवेटर, ड्रिलिंग रिग तथा भारी मशीनो के कलपुर्जे बनाने के लिए निगम ने रांची मे तीन कारखाने स्थापित किए हैं।

3 **माईनिंग तथा समवर्गी मशीनरी निगम (माईनिंग एण्ड एलाइड मशीनरी कारपोरेशन)**—इस परियोजना के कारखाने दुर्गापुर मे हैं और इन कारखानो मे भूमिगत कोयला-खनन् के काम मे आने वाली मशीनें तथा बडा सामान उठाने धरने वाले उपकरणो का उत्पादन किया जा रहा है।

4. **हिन्दुस्तान मशीन टूल्स**—किस्म किस्म के सामान्य तथा विशेष उपयोग मे आने वाले मशीनी औजारो, छापेखानो, ट्रैक्टरो तथा घडियो आदि के निर्माण के लिए हिन्दुस्तान मशीन टूल्स ने बगलौर, हैदराबाद, कलामासरी, पिंजौर तथा श्रीनगर मे कारखाने स्थापित किए हैं।

5. भारत हैवी प्लेट्स तथा वेसल्स—विशाखापटनम् स्थित यह कारखाना हैवी प्रेसरवेसलें, हीट एक्सचेंजर, एअर सेपरेशन यूनिटें तथा पाइपिंग बनाता है। ये उपकरण रसायन तथा परिष्करण उद्योगो जैसे उर्वरको, तेल शोधक कारखानो तथा पेट्रोकेमिकल सयत्रो के लिए बनाए जाते है।

6. त्रिवेणी स्ट्रक्चरस—इलाहाबाद के नजदीक नैनी मे स्थित इस कारखाने मे जटिल ढांचो, पेनस्टाक (ग्रवधारक नलो), दरवाजो तथा सामान्य प्रकार के भांडो का निर्माण होता है।

इसके साथ साथ सरकार के अन्य प्रयोक्ता मन्त्रालयो के अन्तर्गत भारी उपकरण व सयत्र बनाने के लिए कारखाने स्थापित करने की भी कार्रवाई की गई जैसे रेल मन्त्रालय के अन्तर्गत इजिन व रेल के डिब्बे, जहाजरानी व परिवहन मन्त्रालय के अन्तर्गत जहाज निर्माण के कारखाने तथा प्रतिरक्षा की विभिन्न आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए प्रतिरक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत अर्थ मूविंग तथा अन्य उपकरण।

निजी क्षेत्र

सयत्र तथा मशीनो के विभिन्न उपकरण तथा पुर्जों का उत्पादन करने एव बढाने के लिए निजी क्षेत्र को भी बढावा दिया गया। सीमेंट चीनी, कागज, रसायन, औषधियो के निर्माण, कलपुर्जे, डीजल इजन, पम्प, बिजली के मोटर, ट्रान्सफार्मर तथा स्विचगियर, माल गाडी के डिब्बे तथा रेल के अन्य उपकरण, ट्रेक्टर बस व ट्रक आदि यात्री कारें, स्कूटर, मोटर साइकिल, मोपेड तथा मोटर गाडियो के किस्म-किस्म के पाटपुर्जे, सूती तथा जूट मिलो मे काम आने वाली मशीनें तथा कास्टिग, फोर्जिग, बाल बेयरिंग, पाइप तथा ट्यूबो जैसी सैकडो किस्म की चीजो के उत्पादन के लिए औद्योगिक मशीनो की क्षमता को तेजी से बढाया गया है।

क्षमता का उपयोग और तेजी से विकास तथा उपलब्धियाँ

क्षमता का उपयोग—भारी उद्योग विभाग का शुरू से ही यह प्रमुख उद्देश्य रहा है कि कारखानो की वर्तमान उत्पादन क्षमता से ही अथवा उसमे न्यूनतम बढोतरी करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाए।

इसलिए, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई कदम उठाए गए। मुख्य रूप से इसका अर्थ था कि सरकार इनके विनियन्त्रण की अपेक्षा इन कारखानो के विकास की ओर अधिक ध्यान दे तथा निर्णय की प्रक्रिया मे तेजी लाकर नीति सम्बन्धी निर्णयो की कार्यान्विति के लिए यथेष्ट सूचना पद्धति की व्यवस्था करे। उत्पादन एकाँशो को, अपने कारखानो के उत्पादन मे विविधता लाने तथा अपनी अधिकतम उत्पादन क्षमता प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक अधिकार देना भी जरूरी था।

सरकार ने एक ओर उत्पादनकर्ताओ पर अपने-अपने कारखानो की व्यवस्था कुशलतापूर्वक करने तथा उत्पादन खर्च को घटाने के लिए दबाव डाला, दूसरी ओर मूल्य नियन्त्रण तथा बोनस के भुगतान तथा ऋण लेने सम्बन्धी नीतियो को व्यावहारिक तरीके से लागू किया गया। इससे उत्पादन मे वृद्धि होने के साथ-साथ

लागत मे कमी होगी और हम अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपना सामान सफलतापूर्वक बेच सकेंगे। इसके साथ-साथ सरकार का यह उद्देश्य रहा है कि उत्पादन के खर्च मे कमी होने का फायदा समाज को मिले और मुनाफे की रकम व्यर्थ के कामो मे नही लगाई जाकर उत्पादन को बढाने व कारखाने को विस्तार देने के काम मे लगाई जाए। सरकारी क्षेत्र के कारखानो की व्यवस्था विशेषज्ञो के हाथ मे देने की ओर भी यथोचित ध्यान दिया गया। इसी के साथ अधिकारो के इस तरह प्रतिनिधायन एव विकेन्द्रीकरण की ओर भी ध्यान दिया गया जिससे सभी स्तरो पर लोगो को प्रोत्साहन मिलने के साथ उन्हे यह भी महसूस हो कि उत्पादन मे हम सभी सहभागी है। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि विभाग ने प्रधान सम योजक का कार्य स्वय सभाला तथा कारखानो के लिए कच्चे माल, पाटपुर्जे उपकरणो तथा वित्तीय सहायता की ही व्यवस्था नही की बल्कि कारखानो को दी जाने वाली सहायता और सरकार के अन्य मन्त्रालयो के निर्णय जल्द से जल्द कराकर कारखानो की मदद करने का भी काम शुरू किया।

सरकारी क्षेत्र की उपलब्धि—इस सबका परिणाम अत्यन्त ही सन्तोषप्रद रहा। सरकारी कारखानो मे सन् 1971-72 मे जहाँ 2 अरब 8 करोड रुपये मूल्य का उत्पादन हुआ था, वह सन् 1973-74 मे प्राय दुगुना 4 अरब 9 करोड रुपये मूल्य का हुआ तथा सन् 1974-75 मे उत्पादन और बढकर 5 अरब 57 करोड रुपये का हुआ। इसी अवधि मे सन् 1972-73 मे सरकारी कारखानो की जहाँ 13 करोड रुपये का घाटा हुआ था, सन् 1974-75 मे इन कारखानों ने 31 करोड रुपये का लाभ हुआ और इस प्रकार इन कारखानों ने 44 करोड रुपये कमाए। अब इस प्रवृत्ति को बनाए रखने की पूरी आशा है।

इन कारखानो की उपलब्धियो से प्रोत्साहित होकर, विभाग ने अपने लक्ष्य बढा दिए और 1975-76 मे 7 अरब 25 करोड मूल्य का उत्पादन करने का लक्ष्य हैं। आपात् स्थिति के कारण अनुशासन तथा कर्त्तव्यनिष्ठा का अनुकूल वातावरण तैयार हो जाने के फलस्वरूप अब सरकारी क्षेत्र के कारखानो ने अप्रेल, 1975 के स्तर पर मूल्यो को स्थिर करने, अनुत्पादक खर्चों मे दश प्रतिशत की कटौती करने तथा साथ में ली हुई योजनाओ को तत्परता तथा तेजी के साथ पूरा करने के साथ उत्पादन का लक्ष्य 7 अरब 25 करोड रुपये से बढाकर 8 अरब रुपये कर देने का निश्चय किया है।

उत्पादन में यह वृद्धि, यद्यपि कुछ कम मात्रा में, निजी क्षेत्र के कारखानो मे भी हुई है। मशीन टूल्स, सूती मिलो की मशीनो, ट्रैक्टरो, स्कूटरो, मोटर साइकिलो तथा मोपेड, डीजल इन्जनो तथा औद्योगिक मशीनो का उत्पादन काफी बढा है।

आत्मनिर्भरता की ओर

देश के आर्थिक विकास मे भारी उद्योगो के महत्त्वपूर्ण योगदान और सहायता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि चौथी पचवर्षीय योजना के अन्त तक बिजली उत्पादन के 85 प्रतिशत उपकरणो का विदेशो मे आयात किया जाता

था जबकि पाँचवी योजना मे बिजली परियोजनाग्रो के 85 प्रतिशत उपकरण देशो में बनने लगेंगे। 15 प्रतिशत उपकरण भी, जो विदेशो से मँगाए जाएँगे, वे हैं, जिनके ग्रार्डर पहले ही दिए जा चुके हैं। हमारी बिजली उत्पादन की कुल क्षमता 1974 मे 13 लाख किलोवाट थी, जबकि सन् 1975 मे हम एक वर्ष म ही लगभग 26 लाख किलोवाट अधिक बिजली उत्पादन करने मे सफल हुए। साथ ही सन् 1973 74 के ग्रन्त मे बिजली उत्पादन की हमारी कुल क्षमता प्राय 1 करोड 9 लाख किलोवाट थी, जो ग्राशा है 1978-79 के ग्रन्त तक 3 करोड 40 लाख किलोवाट हो जाएगी ग्रौर यह सब प्राय देश मे बने उपकरणो से सम्भव होगा। 1947 मे हमारे देश के गाँवो मे बिजली नही थी। सन् 1973-74 मे 1,48,000 गाँवो तक बिजली पहुँच गई तथा बिजली से चलने वाले पम्पो की सख्या 24,35,000 हो गई। प्राय ग्रतिरिक्त पूँजी निवेश के बिना तथा वर्तमान उत्पादन क्षमता का ही उपयोग करके हमारे सरकारी क्षेत्र के कारखाने, भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लिमिटेड ने इन यन्त्रो (ड्रिलिंग रिगो) के उत्पादन का जिम्मा ग्रपने ऊपर ले लिया है। इसी प्रकार थोडी सी ग्रतिरिक्त पूँजी लगाकर ड्रिलिंग प्लेटफार्मों का उत्पादन भी शुरू किया जाने वाला है।

इसी प्रकार हम ग्रन्य उद्योगो म भी ग्रात्म-निर्भरता की दिशा मे बढ रहे हैं। ग्रब हम ग्रपनी सीमेंट तथा चीनी मिलो के कुछ प्राय नगण्य पाटपुर्जों का छोडकर सभी सयत्रो तथा उपकरणो का निर्माण देश म कर रहे हैं। हमारे इन उद्योगो के कारखानो की उत्पादन क्षमता मे भी वृद्धि की गई है। सीमेंट के कारखानो की उत्पादन क्षमता 600 मी टन प्रतिदिन से बढकर 1,200 मी टन प्रतिदिन तथा चीनी उत्पादन के लिए गन्नो की पेराई की 600 मी टन प्रतिदिन की क्षमता को बढाकर 1,250 मी. टन प्रतिदिन कर दी गई है। हमारी रेलगाडियो मालगाडियो तथा सडक यातायात के सभी प्रकार के वाहनो का सामान ग्रब देश मे ही तैयार किया जा रहा है। इनमे सभी प्रकार के मालडिब्बे, यात्री डिब्बे, इजन रेलें, स्लीपर, प्वाइन्ट, क्रासिग, फास्नर तथा सिग्नलिंग उपकरण सम्मिलित हैं। ग्रब हमारी सडको के निर्माण मे स्वदेशी रोड रौलरो तथा ग्रन्य उपकरणो का प्रयोग हो रहा है तथा इन पर चलने वाले वाहन सभी इसी देश मे निर्मित हैं।

कोयला, धातुकर्मी सयत्र तथा मशीनरी—प्रौद्योगिकी की चुनौतियो के बावजूद, इस्पात कारखानो के लिए सयत्र ग्रौर मशीनरी के उत्पादन तथा कोयले ग्रौर ग्रन्य खानो का तेजी से विकास हुग्रा है ग्रौर हम प्राय ग्रपने ही प्रयासो से बोकारो इस्पात कारखाने की क्षमता 17 लाख से बढाकर 47 5 लाख मी. टन तथा भिलाई कारखाने की क्षमता 25 लाख मी. टन से 40 लाख मी टन करने जा रहे हैं। सन् 1973-74 मे 7 करोड 80 लाख मी टन कोयले के उत्पादन की तुलना मे सन् 1978-79 मे 13 करोड 50 लाख मी टन उत्पादन का लक्ष्य स्वदेशी उपकरणो पर ही निर्भर रहकर पूरा किया जाएगा, जिनका उत्पादन माइनिंग एण्ड ग्रलायड मशीनरी कारपोरेशन तथा निजी क्षेत्र के कुछ कारखाने मिलजुल कर करेंगे।

पाट पुर्जे तथा सूती वस्त्र मशीनरी—हमारे विकासमान इजीनियरिंग तथा सूती वस्त्र उद्योगो की ग्रधिकांश ग्रावश्यकताएँ ग्रथवा उनके ग्राधुनिकीकरण तथा

पुनर्स्थापना के लिए पाटपुर्जे तथा उपकरण तथा सूती वस्त्र कारखानो के अधिकांश सयत्र अब देश मे ही उपलब्ध हैं। पिछले दो तीन वर्षों मे इन दोनो उद्योगो मे तेजी के साथ उत्पादन बढा है। सन् 1972-73 मे जहाँ 53 करोड रुपये मूल्य के पाट पुर्जों का निर्माण देश मे हुआ था, सन् 1974-75 मे यह उत्पादन बढकर 77 करोड रुपये का हुआ। जहाँ तक सूती वस्त्र के कारखानो के लिए मशीनो का प्रश्न है, सन् 1972 73 मे 31 करोड रुपये की मशीनें तैयार हुई जबकि 1974-75 मे 81 करोड रुपये मूल्य की मशीनें तैयार हुईं।

रासायनिक तथा प्रक्रिया सयत्र तथा मशीनरी—जहाँ तक रासायनिक उर्वरको के लिए सयत्र तथा मशीनो, रासायनिक सयत्रो तथा शोध (तेल) कारखानो का सम्बन्ध है, हमारा प्रयास इनके लिए ऐसे उपकरणो का तेजी के साथ निर्माण करने का रहा है जो इन कारखानो के काम आ सकें और इस क्षेत्र मे वास्तव मे बडी तेजी के साथ प्रगति हुई है। पहली बार, सितम्बर, 1975 मे बोकारो इस्पात कारखाने को 550 मी टन प्रतिदिन उत्पादन क्षमता का एक टनेज ऑक्सीजन सयत्र तैयार करके दिया गया है। एक अन्य सरकारी कारखाना, भारत हैवी प्लेट्स एण्ड वैसेल्स सन् 1977 के अन्त तक पाँच ऐसे सयत्र तैयार करके उनकी डिलीवरी दे देगा। रासायनिक उर्वरक सयत्रो के लिए नाइट्रोजन वाश यूनिटो का उत्पादन शुरू किया जा चुका है और इनकी डिलीवरी जल्दी ही की जाने लगेगी।

भारी उद्योग तथा निर्यात—भारी इजीनियरिंग उपकरणो का उत्पादन तेजी के साथ बढाने अत्याधुनिक उपकरणो का उत्पादन शुरू करने मे तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा मे देश तेजी के साथ बढ रहा है। अब हम अपने उत्पादनो का विदेशो को निर्यात कर सकते हैं तथा दूसरे देशो के विकास मे हाथ बँटा सकते हैं। ताप बिजली घर सयत्रो के हिस्से के रूप मे हमारे उच्च दाब वाले बायलर मलेशिया तथा अन्य देशो मे लगाए जा चुके हैं। कई एशियाई व अफ्रीकी देशो मे हमारे देश में बनी हुई बसें सडको पर चल रही हैं तथा सारे ससार के कई रेल-व्यवस्था में हमारी मालगाडियो तथा यात्री गाडियो का उपयोग किया जा रहा है। सीमेंट, चीनी, छोटे इस्पात कारखानो सूती वस्त्रो के कारखानो तथा अन्य प्रकार की चीजो का उत्पादन करने वाले विभिन्न कारखानो के लिए हमने अपने सयत्र तथा मशीनो का निर्यात विदेशो में किया है जिससे उनकी अर्थ व्यवस्था के विकास में सहायता मिली है। हमारे इजानियर-परामर्शदाता ससार के विभिन्न भागो में फैले हुए देशो, जैसे लीबिया, तजानिया ईराक, ईरान, इण्डोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया तथा एशिया एव अफ्रीका के कई अन्य देशो में कारखाने लगाने की योजनाएँ तैयार करने तथा कारखाने स्थापित करने में लगे हुए हैं।

निजी क्षेत्र

जहाँ तक निजी क्षेत्र के कारखानो का प्रश्न है, इस बात मे सुनिश्चित होना अनिवार्य था कि प्रमुख रूप से जनता के पैसो (वित्तीय सस्थानो तथा जनता से शेयर के रूप मे प्राप्त) से जिस सम्पत्ति का निर्माण हुआ है, उसका उपयोग इन

Appendix—2

लघु उद्योगों का विकास

छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास 1966–75 के दशक मे वस्तुत उल्लेखनीय है। यह विशेष रूप से रोजगार के अवसरों और छोटे कारखानो के उत्पादन के वित्तीय मूल्य से प्रकट होता है। निम्न आंकडो से पाठक को इस महान् उपलब्धि के बारे मे पता चल जाएगा—

राज्यो के उद्योग निदेशालयो के साथ पजीयित	1966	1974
कारखानो की सख्या (लाखो मे)	1 20	4 09
रोजगार (लाखो मे)	29 30	50 40
स्थिर विनियोग (करोड रुपयो मे)	548 00	814 00
उत्पादन का मूल्य (करोड रुपयो मे)	2,954 00	6 249 00

छोटे उद्योगो की इस प्रगति का कारण सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियाँ और विशेष कार्यक्रम हैं। छोटे पैमाने के उद्योगो मे वस्तुओ की क्वालिटी मे सुधार और उत्कृष्टता के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के निर्यात मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, विशेष रूप से इस दशक के अन्तिम भाग मे, जबकि निर्यात की जाने वाली वस्तुओ का मूल्य सन् 1970–71 मे 119 करोड रुपये से बढकर सन् 1973–74 में 400 करोड रुपये हो गया। निर्यात की वस्तुओ मे आधुनिक एव जटिल किस्म की वस्तुएँ काफी थी, जैसे हल्का इन्जीनियरिंग का सामान, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ, दवाइयाँ, तैयार चमडा और चमडे का सामान, हौजरी, सिलाई की मशीनें, साइकिल इत्यादि। इसके अलावा अनुमान है कि छोटे पैमाने के कारखानो द्वारा ऐसी बहुत सी वस्तुएँ देश मे तैयार की जा रही हैं जो पहले बाहर से मँगाई जाती थी। इस प्रकार बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

यह बडी उल्लेखनीय बात है कि छोटे पैमाने के उद्योगो के क्षेत्र मे विकास, बड़े पैमाने के उद्योगो के क्षेत्र मे विकास का पूरक है। यह सम्बन्ध उप-ठेकेदारो के रूप मे प्रकट होता है, जो दोनो क्षेत्रो के लिए लाभदायक है। सहायक कारखानो की सख्या सन् 1971 मे 7,000 से बढकर सन् 1974 मे 22,760 हो गई।

छोटे पैमाने के क्षेत्र द्वारा जन-उपभोग की विभिन्न वस्तुओं की बडी मात्रा मे पूर्ति की जाती है, जैसे चमडा और चमडे का सामान, प्लास्टिक और रबड का सामान, रेडीमेड कपडे, धातु की चादरो से बनने वाला सामान, स्टेशनरी की वस्तुएँ, साबुन और साफ करने के पाउडर, इत्यादि। इस दशक मे छोटे पैमाने के क्षेत्र ने उत्पादन के नवीन और अधिक उत्कृष्ट क्षेत्रो मे प्रवेश किया है जिनमे अन्य वस्तुओ के साथ-साथ टेलिविजन सेट, हृदय गति-नियामक (कार्डियक पेस मेकर), ई.सी.जी मशीनें, श्रवण यन्त्र, टेप और कैसेटी रिकार्डर, इन्टर काम सैट, माइक्रोवेव यन्त्र, मशीनी यन्त्र, औषधियाँ इत्यादि हैं। पांचवी पचवर्षीय योजना मे उन वस्तुओ के विकास पर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है, जो कृषि के साथ आधुनिकीकरण तथा कृषि उपज के विधायन के लिए आवश्यक हैं। इसके साथ-साथ जन-उपभोग की वस्तुओ, सहायक एककों मे निर्मित वस्तुओ तथा निर्यात की दृष्टि से उपयोग की वस्तुओ पर भी विशेष बल दिया जा रहा है।

पिछडे और ग्रामीण क्षेत्रो का विकास

उद्योगो के छितराव सम्बन्धी सरकारी नीति के कारण गाँवों और पिछडे हुए क्षेत्रो मे छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इन कार्यक्रमो का लक्ष्य न केवल वर्तमान कारीगरो की आय मे वृद्धि और अतिरिक्त उत्पादक रोजगार के उद्देश्य से उनकी दक्षताओ मे सुधार करना है बल्कि इन क्षेत्रों में आधुनिक उत्कृष्ट कोटि के उद्योगो का विकास भी है। केन्द्र-प्रायोजित योजना के रूप में, ग्रामोद्योग परियोजना कार्यक्रमो के श्रीगणेश द्वारा, नीति को एक निश्चित रूप प्रदान किया गया और इसके लिए राज्य सरकारो को शत-प्रतिशत सहायता प्रदान की जाती है। नव स्थापित कारखानो की सख्या और रोजगार के अवसरो के सन्दर्भ में उत्साहवर्द्धक परिणामो को दृष्टि में रखते हुए यह कार्यक्रम 1974 में 49 से 111 जिलो में फैला दिया गया। निम्न आँकडे स्वय अपनी प्रगति की कहानी कह रहे हैं—

मद	1965–66	1973–74
ग्रामोद्योग परियोजनाओ की सख्या	49	111
सहायता प्राप्त एककों की सख्या (सचयी)	7,886	48,206
रोजगार (सचयी)	48,775	2,07,136
उत्पादन का मूल्य (करोड रुपयो में)	3 2	70 27

सन् 1974 मे 87 परियोजनाओ में से 40 परियोजनाओ में, जहाँ दोनो कार्यक्रम चल रहे थे ग्रामीण कारीगर कार्यक्रम का क्रियान्वयन ग्रामोद्योग परियोजना कार्यक्रम के साथ मिला दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत परम्परागत शिल्पो और आधुनिक व्यवसायो में प्रशिक्षण दिया जाता है, जैसे पम्प सैटो, बिजली की मोटरो की मरम्मत और ढलाई तथा खरीद आदि का काम इत्यादि। इसके बाद सहायता कार्यक्रम शुरू होता है, ताकि कारीगर अपने-अपने व्यवसायो में लाभदायक ढग से रोजी कमा सके।

विकास के अधिक न्यायसगत ढांचे की स्थापना की दृष्टि से सन् 1971 में पिछड़े क्षेत्रो के विकास के लिए एक सशक्त नीति अपनाई गई ताकि ये क्षेत्र भी विकसित क्षेत्रो की बराबरी कर सकें। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उद्योगो को विशेष प्रोत्साहन दिए जाते हैं जिनमें औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए 244 जिलो में वित्तीय सस्थाओ द्वारा रियायती दर पर वित्त उपलब्ध कराना भी शामिल है। लगभग 104 चुने हुए जिलो में, नए कारखानो के स्थिर पूँजी विनियोग पर और वर्तमान कारखानो के विस्तार के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 15 प्रतिशत सहायता दी जाती है। दुर्लभ और आयातित कच्चे माल की पूर्ति तथा किश्तो पर मशीनें खरीदने में भी रियायतें दी जाती है। इसके अलावा कुछ चुने हुए पहाडी क्षेत्रो मे जहां रेल की सुविधाएँ नही हैं, कारखानो को कच्चे माल और निर्मित वस्तुओ के परिवहन व्यय का 50 प्रतिशत सहायता के रूप मे दिया जाता है। 1974–75 मे स्थिर विनियोग पर सहायता के रूप म 4 करोड रुपये स्वीकृत किए गए, जबकि 1973–74 मे यह राशि 56 90 लाख रुपये और 1972-73 मे 11 76 लाख रुपये थी। 1974-75 वर्ष के लिए अनुमानित सहायता 9 करोड रुपये थी। यह पिछडे हुए क्षेत्रो मे औद्योगिक विकास का सूचक है। बहरहाल, इसमे छोटे सीमान्त और मध्यम उद्योगो को दी जाने वाली सहायता शामिल है।

विकास के लिए व्यापक कार्यक्रम

छोटे उद्योगो के विकास के कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य कारखानो की इस ढग से सहायता करना है कि वे एकीकृत सहायता कार्यक्रम के माध्यम से क्षमता का अधिकतम स्तर प्राप्त कर सकें। इस एकीकृत सहायता कार्यक्रम मे तकनीकी सेवाओ और सुविधाओ की अधिकाधिक उपलब्धि, प्रबन्ध सम्बन्धी परामर्श और प्रशिक्षण, स्वदेश मे माल की बिक्री और निर्यात में सहायता इत्यादि सम्मिलित हैं। लघु उद्योग विकास सगठन लगभग 100 लघु उद्योग सेवा सस्थानो, शाखा सस्थानो, प्रसार केन्द्रो और उत्पादन केन्द्रो के माध्यम से इस प्रकार की व्यापक सेवाओ की व्यवस्था करता है। तकनीकी सहायता के लिए छोटे उद्यमियो की बढती हुई आवश्यकताओ को देखते हुए लघु उद्योग विकास सगठन ने अपनी तकनीकी सेवाओ को और अधिक बढाया है। पिछले दस वर्षों के दौरान उद्यमियो को लगभग 5,000 मॉडल स्कीमो, सयत्र, मार्गदर्शिकाओ, परियोजना मार्गदर्शिकाओ तथा अन्य स्कीमो आदि के अलावा 1,25,000 डिजाइन, ड्राइग और खाके दिए गए। औद्योगिक विकास सगठन द्वारा प्रदत्त तकनीकी सेवाओ की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि सगठन के तकनीकी अधिकारियो से मार्गदर्शन प्राप्त करने वाले उद्यमियो की सख्या सन् 1965–66 में 57,000 से बढकर सन् 1974–75 में 1,30,000 हो गई। इसके अलावा तकनीकी अधिकारियो ने एक वर्ष में औसतन लगभग 70,000 कारखानो का उनके स्थान पर जाकर मार्गदर्शन करने के लिए निरीक्षण किया। उद्यमियो ने लघु उद्योग विकास सगठन द्वारा प्रदत्त वर्कशॉप सुविधाओ से भी व्यापक पैमाने पर लाभ उठाया। लघु उद्योग सेवा सस्थानो की वर्कशॉपो द्वारा किए गए कार्यों की

वार्षिक सख्या सन् 1965–66 में 21,000 से बढ़कर सन् 1974–75 में लगभग 50,000 हो गई।

तेजी से बढ़ते और विविधता लिए हुए लघु उद्योग क्षेत्र की नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लघु उद्योग विकास सगठन ने अपनी तकनीकी सेवाओं को सरल बनाने एवं सुधारने के लिए प्रभावशाली कदम उठाए। नई मशीन और उत्कृष्ट सेवाओं के समावेश, चार क्षेत्रीय परीक्षा-केन्द्रों की स्थापना और चुने हुए उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए एक विशेष कार्यक्रम के सचालन द्वारा लघु उद्योग सेवा सस्थानों के साथ सलग्न वर्कशॉपों का आधुनिकीकरण, इनमें सम्मिलित था। छोटे पैमाने के उद्योगों की प्रतियोगी शक्ति के विकास को दृष्टि में रखते हुए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, प्राथमिकता के आधार पर कुछ चुने हुए उद्योगों को मशीन, वित्त, कच्चा माल, प्रशिक्षण तथा तकनीकी प्रबन्ध सहायता उपलब्ध करने की व्यवस्था है। पाँचवी योजना-अवधि में 40 प्रकार के उद्योगों के लगभग 40,000 कारखानों को सेवाएँ उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है।

नई वस्तुओं के उत्पादन या वर्तमान औद्योगिक कारखानों के विस्तार के लिए अनेक उद्यमियों, कारीगरों, तकनीकी विशेषज्ञों और दूसरे निवेशकर्त्ताओं को लघु उद्योग विकास सगठन द्वारा सम्पादित उद्योगवार और क्षेत्रवार सर्वेक्षणों के आधार पर विस्तृत आर्थिक जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। औसतन, लगभग 80,000 छोटे उद्यमी प्रति वर्ष इन सेवाओं से लाभ उठाते हैं।

लघु उद्योग प्रसार प्रशिक्षण सस्थान ने प्रबन्ध विकास, वित्तीय प्रबन्ध, बिक्री सहायक एककों के विकास और क्षेत्रीय विकास इत्यादि के विभिन्न पहलुओं पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सचालित करने की दृष्टि से अपनी गतिविधियों को कई गुना बढ़ा दिया है। सस्थान ने कई विकासशील देशों के प्रशिक्षणार्थियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम भी आयोजित किए हैं।

छोटे पैमाने के क्षेत्र के लिए आयातित और स्थानीय कच्चा माल अधिकतम मात्रा मे उपलब्ध कराने की दृष्टि से लघु उद्योग विकास सगठन ने सम्बद्ध मन्त्रालयों और दूसरे सगठनों से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया है। दुर्लभ कच्चा माल पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध कराने तथा स्थानीय और दुर्लभ कच्चा माल प्रयोग करने वाले कुछ उद्योग समूहों की आवश्यकताओं का ठीक ठाक आकलन करने की दृष्टि से लघु उद्योग विकास सगठन ने वैज्ञानिक आधार पर औद्योगिक कारखानों की क्षमता का आकलन शुरू किया है।

जुलाई, 1969 मे प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप छोटे एककों को काफी बड़ी मात्रा मे ऋण दिए गए। दूसरे जो कदम उठाए गए, उनमे छोटे उद्योगों के लिए बैंकों से ऋण लेने की प्रक्रिया को सरल बनाना, पिछड़े क्षेत्रों मे कारखानों तथा इजीनियरिंग के स्नातकों के लिए उदार योजनाएँ इत्यादि हैं।

बढ़ता क्षितिज

गत दशक मे सरकार के लघु उद्योग कार्यक्रम का बहुत तेजी से विस्तार हुआ है। हाल के वर्षों मे छोटे पैमाने के क्षेत्र के विकास मे सहायता की दृष्टि से बहुत सी नई योजनाएँ बनाई गई हैं।

सहायक कार्यक्रम के रूप मे, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम ने किस्तो मे खरीद के आधार पर छोटे पैमाने के कारखानो को आधुनिकतम सयत्र और मशीनें उपलब्ध कराने में सहायता दी। लगभग 15,000 कारखानो को 80 करोड रुपये की 30,000 आधुनिक मशीनें अब तक उपलब्ध कराई जा चुकी हैं। इस योजना का एक मुख्य पहलू यह है कि छोटे पैमाने के कारखानो द्वारा अपेक्षित, स्थानीय और आयातित दोनो प्रकार की मशीनें, आसान किस्तो पर उपलब्ध कराई जाती हैं। यदि बहुत सख्ती से भी अन्दाजा लगाया जाए तो भी किस्तों मे खरीद पद्धति के अन्तर्गत 600 करोड रुपये से अधिक की मशीनें लगाई गई हैं और 4 लाख लोगो को रोजगार मिला है।

लघु उद्योग विकास कार्यक्रम का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू फैक्टरियो के लिए स्थान की व्यवस्था, सामान्य सेवा सुविधाओ और अन्य विशिष्ट सेवाओ की व्यवस्था करके छोटे पैमाने के उद्योगो को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से औद्योगिक बस्तियो की स्थापना है। कुल मिलाकर 612 औद्योगिक बस्तियाँ प्रायोजित की गई हैं जिनमे से 455 ने मार्च, 1974 तक काम करना शुरू कर दिया था और इनमे 10,139 फैक्टरियाँ स्थापित हो चुकी थीं।

तुलनात्मक चित्र नीचे प्रस्तुत है—

	मार्च 1964 तक	मार्च 1974 तक
उन औद्योगिक बस्तियो की सख्या जो पूरी बन चुकी हैं	181	499
निर्मित शेड	4,303	13,351
जिन शेडो मे काम चालू है	2 635	9,465
रोजगार मे लगे व्यक्तियो की सख्या	29,227	1,75,700
वार्षिक उत्पादन	28 करोड रु	352 करोड रु.

पिछले दशक मे छोटे पैमाने के उद्योगो के शानदार विकास को दृष्टि मे रखते हुए कई विकासशील देश अपने-अपने देशो मे छोटे पैमाने के उद्योगो के सगठित और आयोजित विकास मे सहायता के लिए हमसे प्रार्थना कर रहे हैं।

छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के जरिए विभिन्न योजनाओ के अधीन अनेक लक्ष्यो की प्राप्ति को दृष्टि मे रखते हुए, योजनाओ के अन्तर्गत इस क्षेत्र के लिए निर्धारित धनराशि मे जो उल्लेखनीय वृद्धि हुई है वह अधांकित तालिका से स्पष्ट है—

	व्यय (करोड रुपयो मे)
पहली योजना	5 20
दूसरी योजना	56 00
तीसरी योजना	113 06
वार्षिक योजनाएँ (1966-69)	53 48
चौथी योजना	96 76
पांचवी योजना (परिव्यय)	287 23

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पांचवीं पचवर्षीय योजना मे छोटे पैमाने के उद्योगो के क्षेत्र के लिए बहुत बड़ी धनराशि निर्धारित की गई है। पांचवी योजना का एक उल्लेखनीय पहलू यह है कि इस योजना के लिए स्वीकृत कुल धनराशि का लगभग 60 प्रतिशत पिछड़े हुए और ग्रामीण क्षेत्रो मे उद्योगो के विकास के लिए है।

पिछले दशक मे लघु उद्योगो के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह रहा है कि इस क्षेत्र ने आर्थिक गतिविधि को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया है और देश भर मे फैले हुए बहुसख्यक उद्यमियो मे आत्म विश्वास की भावना पैदा की है। सस्थागत सहायता के साथ-साथ इस क्षेत्र की अन्तर्निहित गतिशीलता ने इसे राष्ट्र के आर्थिक विकास मे प्रचुर मात्रा मे योगदान करने योग्य बनाया है।

ग्राम और लघु उद्योग उत्पादन मे वृद्धि (1975-77)

सूती हाथकरघा और विद्युत् करघा हस्त का उत्पादन 1976-77 के दौरान 420 करोड मीटर और सूती हाथकरघा वस्त्र और उत्पादन के लगभग 107 करोड रुपये मूल्य के होने की आशा है। चालू वर्ष के दौरान 37 लाख 7 हजार किलोग्राम कच्चे रेशम के अतिरिक्त लगभग 53 लाख रुपये मूल्य की 6 करोड 2 लाख मीटर खादी के उत्पादन की आशा है। रेशमी वस्त्र और उच्छिष्ठ के 15 करोड 50 लाख रुपये मूल्य के और नारियल जूट उत्पादन के लगभग 18 करोड 50 लाख रुपये मूल्य के 40 हजार टन के निर्यात किए जाने की सम्भावना है। इसी अवधि के दौरान ग्राम उद्योगो के उत्पादन के 173 करोड रुपये मूल्य के और हस्त-शिल्प के लगभग 201 करोड रुपये मूल्य के निर्यात किए जाने का अनुमान है।

1976 77 के दौरान विभिन्न लघु उद्योगो के विकास के कार्यक्रम के अन्तर्गत चालू योजनाओ विशेष रूप से हाथकरघा उद्योग और गलीचा बुनने मे प्रशिक्षण तथा किस्म सुधार, आवश्यक सामान्य सेवा सुविधाओ के अन्य कार्यक्रमो को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है। केन्द्रीय लघु उद्योग विकास सगठन द्वारा अपनी सेवा सस्थाओ और विस्तार केन्द्रो के माध्यम से चुने हुए पिछड़े क्षेत्रो मे लघु उद्योगो के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। अधिकांश राज्य सरकारो ने चुने हुए पिछड़े क्षेत्रो मे उद्यमियो को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था की है।

सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न लघु उद्योगों के लिए 1976-77 के लिए 95 करोड 2 लाख रुपये की राशि की व्यवस्था की गई है। इसमे से केन्द्र के लिए 51 करोड 68 लाख रुपये और राज्यो तथा केन्द्रशासित प्रदेशो के लिए 43 करोड 34 लाख रुपये का प्रावधान है। लघु उद्योगो के लिए 1976-77 की अवधि के लिए केन्द्रीय प्रावधान 11 लाख 30 हजार रुपये का और खादी तथा ग्राम उद्योगो के लिए 25 करोड 20 लाख रुपये का है। इसमे विज्ञान और प्रौद्योगिकी योजनाओ के लिए व्यय भी शामिल है। इन प्रावधानो के अतिरिक्त पहाडी एव जनजातीय क्षेत्रो के लिए कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ साधन उपलब्ध किए जाएंगे। कुछ लोग अपने साधनो से भी धन जुटाएँगे।

सूती, ऊनी और रेशमी खादी वस्त्र में उन्नत डिजाइन अपनाने के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। ग्रमीण उद्योगों के विकास सम्बन्धी कार्यक्रमो के अन्तर्गत धान से चावल निकालने और उन्हे पालिश करने के लिए विद्युत् चालित उपकरणो का अपनाया जाना, विद्युत् चालित धानियो की अधिक सख्या में सप्लाई, मधु मक्खी पालन का विस्तार, ग्राम कुम्हारी का परम्परागत वस्तुओ मे भवन-निर्माण सामग्री के उत्पादन मे बदला जाना आदि शामिल हैं।

हाथकरघा उद्योग का नवीनीकरण और विकास आरम्भ किया जाएगा। यह हाथकरघा उद्योग सम्बन्धी उच्च अधिकार प्राप्त अध्ययन दल की सिफारिशो पर आधारित होगा। इसमे 13 प्रोत्साहन विकास और 20 निर्यातोन्मुख उत्पादन परियोजनाओ की योजनाएँ, हाथकरघा का आधुनिकीकरण, सशोधन सुविधाएँ, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम को आर्थिक सहायता और शीर्ष सोसायटियो एव राज्य हाथकरघा विकास निगमो का सशक्तीकरण शामिल है।

केन्द्र द्वारा ग्रामीण उद्योग परियोजनाओ की योजना की प्रगति पर विचार किया जा रहा है।

Appendix—3

ग्रामीण विकास

भारत अपने लाखों गाँवों मे रहता है। देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर करती है और देश की लगभग आधी राष्ट्रीय आय कृषि से प्राप्त होती है। स्वतन्त्रता के बाद ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर काफी जोर दिया जा रहा है। प्रधानमन्त्री द्वारा 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे भी इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

ग्रामीण विकास के लिए अनेक दिशाओं से प्रयत्न करने की जरूरत है। ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम मे भूमि और पानी जैसे प्राकृतिक साधनों के विकास और सरक्षण एव ग्रामीण जनता का जीवन स्तर सुधार पर विशेष जोर दिया जाता है। इस दूसर कार्य को पूरा करने के लिए कृषि और सिंचाई मन्त्रालय मे अक्तूबर, 1974 मे ग्रामीण विकास का एक नया विभाग बनाया गया। इस विभाग को पुराने सामुदायिक विकास विभाग और कृषि ऋण, ग्रामीण क्षेत्रों मे कर्जदारी की समाप्ति और कृषि क्षेत्र मे सहकारियों का कार्य सौंपा गया। इस विभाग की मुख्य जिम्मेदारियों मे ये विषय शामिल है—

(क) सामुदायिक विकास और पचायती राज सहित ग्रामीण विकास के सभी पहलू।

(ख) समाज के दुर्बल वर्गों जैसे छोटे और सीमान्त (नाममात्र के) किसानों की भलाई सूखा पडने वाले, जन जातीय और पहाडी क्षेत्रों का विकास और ग्रामीण जनशक्ति का आयोजन और रोजगार।

(ग) कृषि ऋण और बिक्री, जिसमे किस्म नियन्त्रण (एगमार्क) और विनियमित मण्डियों का विकास शामिल है।

सामुदायिक विकास और पचायती राज

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसे अब ग्रामीण विकास के समन्वित कार्यक्रम मे बदला जा रहा है, 2 अक्तूबर, 1952 को शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण जनता के साधनों और सांस्कृतिक एव आर्थिक पहलुओं को देखते हुए गाँवों का समग्र विकास करना है। इस समय देश मे 5,123 सामुदायिक विकास खण्ड है। प्रत्येक खण्ड मे दो सक्रिय स्टेजों मे काम होता है, अर्थात् स्टेज I और स्टेज II। एक विकास खण्ड 5 वर्ष तक स्टेज I मे रहता है और इसके बाद दूसरे पाँच वर्ष के लिए स्टेज II खण्ड हो जाता है। पाँचवी योजना मे सभी राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों के लिए सामुदायिक विकास और पचायती राज के अन्तर्गत

129 80 करोड रुपये की राशि मन्जूर की गई है। 1975-76 के लिए 13 65 करोड रुपये का खर्च मन्जूर किया गया है।

तीन स्तरीय पचायती राज व्यवस्था अब स्थानीय प्रशासन की विकास व्यवस्था के नमूने के रूप मे स्वीकार की जा चुकी है। 15 राज्यो मे अर्थात आन्ध्र प्रदेश, असम बिहार (केवल 8 जिलो मे), गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र उडीसा, पजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बगाल मे इस तरह की व्यवस्था पहले ही लागू की जा चुकी है तथापि जम्मू कश्मीर केरल, मणिपुर और त्रिपुरा मे केवल गाँव पचायतें कार्य कर रही हैं। नागालैण्ड और मेघालय मे पचायती राज व्यवस्था नही है, लेकिन नागालैण्ड मे क्षत्र, रेंज और जन जातीय परिषदें हैं। केन्द्रशासित क्षेत्र अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह, दिल्ली और गोवा, दमन और दीव मे केवल ग्राम पचायतें कार्य कर रही हैं। हिमाचल प्रदेश, चण्डीगढ तथा नागर हवेली मे क्रमश तीन और दो स्तरीय पचायती राज व्यवस्था है। पाण्डिचेरी मे 'ग्राम और कम्यून पचायती अधिनियम' की कुछ व्यवस्थाएँ लागू होने के बाद, वहाँ पहली बार पचायती राज सस्थाओ की स्थापना की गई है। वहाँ वर्तमान म्यूनिसिपल कम्यूनो की अन्तरिम व्यवस्था के रूप मे कम्यून पचायतें परिषद् बना दिया गया है।

इस समय देश मे 2,19 892 गाँव पचायतें हैं। इनके अन्तर्गत 5,44,355 गाँव और 40 68 करोड जनसख्या है। इसके अलावा देश मे 3,863 पचायत समितियाँ और 201 जिला परिषदे भी कार्य कर रही है।

प्रशिक्षण

यह अनुमान लगाया गया है कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रम मे लगे हुए 25 लाख निर्वाचित प्रतिनिधियो को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। देश मे ग्रामीण विकास के कार्यों मे लगे विभिन्न वर्ग के लोगो को प्रशिक्षण देने के लिए 200 से अधिक प्रशिक्षण केन्द्र हैं। इसके अलावा हैदराबाद मे सामुदायिक विकास का राष्ट्रीय सस्थान है जो 9 जून, 1958 को मसूरी मे स्थापित किया गया था। यह सस्थान सामुदायिक विकास और पचायती राज विचारधारा और उद्देश्यो को नई दिशा और प्रशिक्षण देने वाली शीर्ष सस्था के रूप मे बनाया गया है। यहाँ सरकारी और गैर-सरकारी दोनो क्षेत्रो के प्रमुख सदस्यो को प्रशिक्षण दिया जाता है, व्यावहारिक समाज विज्ञान मे अध्ययन एव अनुसधान के कार्यक्रम हाथ मे लिए जाते हैं जिनमे सामुदायिक विकास द्वारा नियोजित सामाजिक परिवर्तन पर जोर दिया जाता है, प्रशिक्षण केन्द्रो के कर्मचारियो का शैक्षिक मार्गदर्शन किया जाता है और यह सस्थान सामुदायिक विकास और पचायती राज सम्बन्धी सूचना देने के केन्द्र के रूप मे भी कार्य करता है। यहाँ राज्य सरकारो को सलाह-सेवा देने का कार्य भी किया जाता है।

स्वैच्छिक कार्यों को प्रोत्साहन

पाँचवी योजना में एक नई स्कीम 'स्वैच्छिक कार्यों को प्रोत्साहन' कार्यान्वित करने के लिए शामिल की गई है। इस योजना के लिए 1 78 करोड रुपये खर्च की

व्यवस्था की गई है। इस कार्यक्रम के अधीन विभिन्न प्रकार के सहयोगी सगठनो का बढ़ावा देने के लिए अनेक कदम उठाए जाएँगे जैसे ग्रादर्श सगठनो का विकास ग्रामीण स्वैच्छिक सगठनो की रजिस्ट्रीज की सरल व्यवस्था, उनको निश्चित कार्य हाथ मे लेने के लिए सहायता देना, रख रखाव अनुदान का वितरण और प्रयोगात्मक आधार पर सहयोगी सगठनो का सघ बनाना एव इसी तरह के अन्य कार्य।

दुर्बल वर्गों के लिए कार्यक्रम

छोटे किसानो के विकास की एजेंसी एव सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरों के विकास की एजेंसी—सरकार ने चौथी योजना के दौरान समाज के दुर्बल वर्गों के जिनमे छोटे और सीमान्त किसान प्रमुख हैं फायदे के लिए दो नई स्कीम—छोटे किसानो के विकास की एजेंसी और सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो के विकास की एजेंसी शुरू की। इन एजेंसियो के प्रमुख कार्य है—समाज के ऐसे दुर्बल वर्गों का पता लगाना, उनकी समस्याओं का अध्ययन करना, उनके विकास की उपयुक्त योजनाएँ तैयार करना, उन्हे सस्थागत सहायता दिलाने का प्रबन्ध करना, विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करना और इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए पर्यवेक्षण की व्यवस्था करना। पिछले तीन चार वर्षों से 87 परियोजनाएँ—46 छोटे किसानो के विकास की एजेंसियो और 41 सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो की एजेंसियाँ काम कर रही हैं। आशा है कि 1975-76 तक पाँच वर्ष की अवधि मे प्रत्येक छोटे किसानो की एजेंसी 50 000 छोटे किसानो और प्रत्येक सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो के विकास की एजेंसी 20 000 सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो की सेवा करने लगेगी।

पाँचवी पचवर्षीय योजना के अधीन छोटे किसानो के विकास की एजेंसियाँ सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो के विकास की एजेंसियो की कुल सख्या बढ़ाकर 160 की जा रही है और इनके लिए अस्थायी रूप से योजना खर्च के रूप मे 200 करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए दोनो कार्यक्रमो—छोटे किसानो के विकास की एजेंसी सीमान्त किसानो और कृषि मजदूरो के विकास की एजेंसी—का अन्तर समाप्त कर दिया गया है और छोटे एव सीमान्त किसानो तथा कृषि मजदूरो की सहायता के लिए निश्चित क्षेत्रो मे कार्य करने का दृष्टिकोण अपनाया गया है। अब किसी क्षेत्र के समन्वित विकास पर जोर दिया जाता है और कार्यक्रम मे भी खेती, पशु-पालन और इनको बढ़ावा देने वाले अन्य कार्यक्रमो जैसे छोटी सिंचाई, भूमि का विकास, पशु पालन, डेरी उद्योग, मुर्गी पालन, सूअर पालन और भेड पालन—के विकास को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

जन-जातीय विकास के लिए आजमाइशी परियोजनाएँ—1970-71 मे जन जातीय विकास खण्डो के अलावा आन्ध्रप्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और उडीसा के 6 जिलो मे 5 वर्ष के लिए आजमाइशी परियोजनाएँ शुरू करने का निश्चय किया गया। जून, 1975 के अन्त तक इन जन जातीय विकास एजेंसियो को अनुदान के

रूप मे 690 करोड रुपये दिए जा चुके थे। पांचवी योजना मे उडीसा में दो और परियोजनाएँ मन्जूर की गई हैं। सभी 8 परियोजनाओं मे पांचवी योजना मे इस कार्यक्रम के लिए 10 करोड रुपए की व्यवस्था की गई है। जन-जातीय विकास की एजेंसी ने 1975 तक 1,88,000 जन-जातीय लोगो का पता लगाया है, जिनमे से लगभग 1,43 000 लोगो को आर्थिक कार्यक्रमो के अधीन लाभ पहुँचाया गया है। लगभग 2 009 लाख एकड़ भूमि को सुधरी हुई खेती की विधियो के अधीन लाया गया है। इस आर्थिक कार्यक्रम को नई सम्पर्क और प्रमुख सडको के निर्माण कार्यक्रम द्वारा बढाया जा रहा है।

व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम—व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम, जो सयुक्त राष्ट्र बाल कोष, खाद्य और कृषि सगठन और विश्व सगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठनों के सहयोग से कार्यान्वित किया जा रहा है। ग्रामीण जनता को सुधरे किस्म के पोषक भोजन से परिचित कराने का कार्यक्रम है। यह एक शिक्षा और उत्पादन बढाने वाला कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम मे पांच वर्ष की उम्र से कम के बच्चो, गर्भवती महिलाओ और बच्चे वाली माताओ के लिए पौष्टिक आहार की व्यवस्था करने पर विशेष जोर दिया गया है। युवक और महिला मण्डलो को पौष्टिक आहार तैयार करने के कार्यक्रम मे सक्रिय रूप से शामिल किया जाता है।

इस कार्यक्रम के अधीन 1973-74 के अन्त तक 1,181 विकास खण्ड लाए जा चुके थे। पांचवी योजना मे व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम 700 नए विकास खण्डो मे शुरू किया जाएगा।

सूखा पीडित क्षेत्रो के लिए कार्यक्रम—देश के 13 राज्यो मे 74 ऐसे जिलो का पता लगाया गया है, जो या तो पूरी तौर पर अथवा आंशिक रूप से सूखे से पीडित रहते हैं। इनमे 6 करोड जनसख्या रहती है। राजस्थान मे लगभग 56% भौगोलिक क्षेत्र, जिनमे 33% जनसख्या रहती है, और आन्ध्र प्रदेश मे 33% भौगोलिक क्षेत्र, जिसमे 22% जनसख्या रहती है, सूखा पीडित है सूखा पीडित क्षेत्र कार्यक्रम 1970-71 मे इन जिलो मे 100 करोड रु. की लागत से शुरू किया गया था। उद्देश्य यह था कि इन जिलो मे सिंचाई, भूमि-सरक्षण, वन लगाने और सडक निर्माण का कार्यक्रम शुरू किया जाए, जिससे और विकास कार्यक्रमो को बढावा मिले। पांचवी योजना मे सूखा पीडित क्षेत्र कार्यक्रम के अधीन कृषि और सम्बन्धित क्षेत्रों के समन्वित ग्रामीण विकास पर जोर दिया गया है। आशा है इन कार्यक्रमो से लगभग 70 लाख छोटे और सीमान्त किसान परिवारो को लाभ होगा। कृषि और पशुपालन के क्षेत्र मे भी किसानो के लाभ की अनेक योजनाओ को कार्यान्वित किया जाएगा।

ग्रामीण रोजगार की त्वरित योजना—क्षेत्र विशेष के समन्वित विकास के लिए वहाँ लाभप्रद रोजगार के अवसर बढाने और आर्थिक विकास के लाभों का समान बँटवारा करने के लगातार प्रयत्न आवश्यक हैं। 1971-72 मे ग्रामीण क्षेत्रो के बेरोजगार लोगो को तत्काल सहायता पहुँचाने के लिए ग्रामीण रोजगार की त्वरित

योजना शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक जिले मे प्रतिवर्ष 1,000 व्यक्तियो के लिए रोजगार पैदा करना है। देश के 350 ग्रामीण जिलो मे प्रतिवर्ष कुल मिलाकर 875 लाख जन-दिवसो के बराबर रोजगार पैदा किया जाएगा।

आजमाइशी सघन ग्रामीण रोजगार परियोजना—आजमाइशी सघन ग्रामीण रोजगार परियोजना 1972-73 मे शुरू की गई और अभी जारी है। इस परियोजना का उद्देश्य वेरोजगारी की समस्या की व्यापकता, विस्तार और स्थिति एव इसे हल करने की सम्भावित लागत का पता लगाना है। बुनियादी रूप से यह एक अनुसन्धान और क्रियान्वयन परियोजना है और देश के 15 चुने हुए विकास खण्डो मे, जिनकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति सम्बन्धी अवस्था अलग-अलग है, लागू की जा रही है। इस परियोजना का अन्तिम उद्देश्य ग्रामीण बेरोजगार और अर्द्ध-रोजगारी की समस्या को हल करने के लिए सबसे उपयुक्त तरीका खोजना है।

कृषि ऋण और बिक्री—रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने 1960 के आसपास ग्रामीण ऋण की समस्या का अध्ययन करने के लिए अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने सिफारिश की कि सहकारी आन्दोलन को मजबूत बनाया जाना चाहिए ताकि कृषि का समन्वित विकास हो सके। तब से यह आन्दोलन विभिन्न क्षेत्रो मे फैल गया है जैसे कृषि उत्पादन, छोटी सिंचाई, खाद, बीज, उर्वरक और अन्य पदार्थों का वितरण एव सप्लाई तथा किसानो के लिए तकनीकी और अन्य सेवाओ की व्यवस्था। पिछले कुछ वर्षों मे कृषि ऋण नीति को उदार बना दिया गया है। हाल ही मे जो नवीनतम कदम उठाया गया है वह है अनेक राज्यो द्वारा ग्रामीण ऋणो की समाप्ति के लिए की गई कार्यवाही, जो 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे एक प्रमुख सूत्र है। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा ऋण देने की अन्य व्यवस्थाएँ की जा रही है। अब तक सहकारियाँ कृषि ऋण के लिए प्रमुख सस्थागत स्रोत है। सरकार न किसानो की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की एक नई योजना भी शुरू की है। इन बैंको का कार्य वाणिज्यिक बैंको से अलग है। यह बैंक विशेष रूप से छोटे और सीमान्त किसानो, कृषि मजदूरो, ग्रामीण दस्तकारो, छोटे उद्यमियो और व्यापार एव अन्य उत्पादक कार्यों मे लगे समान हैसियत के लोगो को ऋण और पेशगियाँ देते हैं। शुरू मे 2 अक्तूबर, 1975 को ऐसे 5 बैंक उत्तरप्रदेश में मुरादाबाद और गोरखपुर, हरियाणा मे भिवानी, राजस्थान मे जयपुर (लवाण) और पश्चिम बगाल मे मालदा मे स्थापित किए गए। 1975 के अन्त तक अन्य केन्द्रो मे 10 और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए जाने थे। 1969 मे 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंको के राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंको द्वारा कृषि क्षेत्र को दिया जाने वाला ऋण जो 1969 मे 40·21 करोड रु था, 1974 के अन्त मे बढकर लगभग 540 करोड रुपये हो गया। राष्ट्रीय कृषि आयोग किसानो की सेवा समितियाँ भी आजमाइशी आधार पर सगठित की जा रही हैं। ये समितियाँ किसानो को समन्वित ऋण, बीज, खाद, उर्वरक और अन्य सेवाएँ उपलब्ध कराएँगी।

कृषि पुर्नवित्त निगम—इस निगम की गतिविधियो का मुख्य उद्देश्य कृषि के क्षेत्र मे पूंजी निवेश की गति को बढाना और इसके उद्देश्यो मे विविधता लाना है, ताकि विभिन्न क्षेत्रो, विशेष रूप से पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रो मे अधिक न्यायपूर्ण पूंजी-निवेश किया जा सके।

कृषि उपज की बिक्री—पिछड़े क्षेत्रो की चुनी हुई विनियमित मण्डियो को ऋण देने की योजना चौथी पचवर्षीय योजना मे शुरू की गई। पांचवी योजना के अधीन 'कमाण्ड' क्षेत्रो मे स्थित और विशेष किस्म की व्यापारिक फसलो, जैसे कपास, पटसन और तम्बाकू की मण्डियो के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसानो को अपनी उपज की किस्म के अनुसार दाम मिलें, कृषि उपज (वर्गीकरण और बिक्री) अधिनियम के अधीन वर्गीकरण शुरू किया गया। एगमार्क के अधीन वर्गीकरण के मानको का स्तर बनाए रखने के लिए वैज्ञानिक परीक्षणो की अधिक प्रयोगशालाएँ बनाई जा रही हैं।

आज ग्रामीण क्षेत्रो मे बड़ी तेजी से विकास कार्य हो रहे हैं। ग्रामीण जनता की दशा सुधारने के लिए नई सडकें बनाई जा रही हैं, नए स्कूल खोले जा रहे हैं, नई सहकारी समितियाँ स्थापित की जा रही हैं। लेकिन इन लाभजनक उपलब्धियो के अलावा एक बात और है, जो अधिक महत्वपूर्ण हैं यद्यपि उसकी माप तौल नहीं की जा सकती है और वह है लोगो की भावनाओ मे महान् परिवर्तन। लोगो के विचारो और कार्यो मे अकर्मण्यता समाप्त हो गई है। लोग मिल-जुल कर राष्ट्रीय कार्य कर रहे है और राष्ट्र निर्माण के इस महान् कार्य मे साझेदारी की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है।[1]

---

1. भारत सरकार—ग्रामीण विकास, दिसम्बर 1975.

Appendix—4

सिंचाई का विकास

हमारी पंचवर्षीय योजनाओं मे सिंचाई को सर्दव महत्त्व दिया गया है लेकिन बार-बार सूखा और अकाल पडने से सिंचाई के विकास की गति मे वृद्धि करने की ओर विशेष ध्यान केन्द्रित हुआ। अतएव तीसरी योजना के बाद से 1966 मे, इन प्रयासो को बढाया गया। सिंचाई योजना-कार्य तीन वर्गों, बडे (5 करोड रुपये से अधिक लागत वाले), मध्यम (मैदानी इलाको मे 25 लाख रु से लेकर 5 करोड रु तक की लागत वाले और पहाडी क्षेत्रो मे 30 लाख रु. से लेकर 5 करोड रु की लागत वाले) तथा छोटे (मैदानी इलाको मे 25 लाख रु से कम लागत वाले तथा पहाडी क्षेत्रो मे 30 लाख रु से कम लागत वाले) मे विभाजित किए गए है। अनुमान है कि बडी तथा मध्यम दर्जे की सिंचाई योजनाओ की अन्तिम क्षमता 5 करोड 70 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई करने की है, परन्तु 1974 75 तक हमने 2 करोड 18 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई करने की क्षमता ही अब तक पैदा की है।

पहली तीन योजनाओ मे अर्थात् 1951 से लेकर 1966 तक लगभग 500 बडे और मध्यम दर्जे के योजना कार्यो को क्रियान्वयन के लिए हाथ मे लिया गया। चौथी योजना मे, जो 1969 को शुरू हुई, 60 बडे और 157 मध्यम दर्जे के, योजना कार्यों पर काम जारी रहा और 18 बडे तथा 59 मध्यम दर्जे के योजना कार्यों को मन्जूरी दी गई। पहले के खर्चे के अनुमानो मे वृद्धि होने के कारण 3 मध्यम दर्जे के योजना कार्यो को बडे योजना-कार्यों के रूप मे वर्गीकृत किया गया। इस प्रकार चौथी योजना के दौरान 81 बडे और 213 मध्यम दर्जे के, सिंचाई योजना कार्यों पर काम चल रहा था। इनमे से 6 बडी और 58 मध्यम दर्जे की योजनाओ पर काम पूरा किया गया। इस प्रकार पाँचवी योजना मे 75 बडी तथा 155 मध्यम दर्जे की योजनाओ पर काम अभी चल रहा है।

1966 के बाद से अब तक की हुई प्रगति विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योकि इस अवधि मे पैदा की गई 52 लाख हैक्टर भूमि की अतिरिक्त सिंचाई क्षमता सुनियोजित विकास के पहले के 15 वर्षो मे पैदा की गई कुल क्षमता का लगभग 80% है। सभी फसलो के अन्तर्गत सिंचित भूमि लगभग दुगुनी हो गई है—यानी 4 करोड 50 लाख हैक्टर के स्तर पर। नलकूपो और पम्पसेटो के माध्यम से भूमिगत जल ससाधनो के अधिकाधिक उपयोग से सिंचाई के विकास मे महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। किसानो ने अपनी कमाई से या ऋण देने वाली संस्थाओ से उधार लेकर बहुत अधिक सख्या मे नलकूप अथवा कुएँ आदि लगवाए हैं। कम गहराई वाले नलकूपो की सख्या 1973-74 मे 7 82 लाख हो गई जबकि 1968 69 मे केवल

2·45 लाख ही थी। इसी प्रकार पम्पसेटो (बिजली और डीजल से चलने वाले—दोनो) की सख्या 1968-69 के 16·11 लाख से बढकर 1973-74 मे 41 93 लाख तक पहुँच गई। जुलाई, 1975 मे प्रधान मन्त्री द्वारा घोषित 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम मे सिचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पाँचवी योजना के अन्त तक 50 लाख हैक्टर और कृषि योग्य भूमि मे सिचाई की व्यवस्था की जाएगी।

परिव्यय और उपयोग

पिछले 9 वर्षो मे सिचाई पर हुए परिव्यय और अर्जित क्षमता के उपयोग के रूप मे जो पूँजी-निवेश हुआ है वह उससे पहले के 15 वर्षों के पूँजी-निवेश से कही अधिक है। 1951 और 1966 के बीच बड़ी और मध्यम सिचाई योजनाओ पर 1,336 करोड रु खर्च किया गया, जबकि पिछले 9 वर्षो मे अर्थात् 1966 और 1975 के बीच 1,682 करोड रु खर्च हुए। इस खर्च का एक बडा हिस्सा चालू परियोजनाओ पर खर्च किया गया जिससे पाँचवी योजनाओ के दौरान महत्वपूर्ण लाभ होगे। इस योजना में 62 लाख हैक्टर अतिरिक्त क्षमता की परिकल्पना की गई है, इसमें से 55 लाख हैक्टर क्षमता चालू योजना कार्यो से ही प्राप्त होगी। हमारे देश की नदियो में कुल 18 खरब 81 अरब घन मीटर जल उपलब्ध है, इनमें से 5 खरब 67 अरब घन मीटर जल बडे और मध्यम दर्जे की सिचाई परियोजना के जरिए इस्तेमाल में लाया जा सकता है। पहली योजना के शुरू में 93 खरब घन मीटर जल ही इस्तेमाल मे लाया जाता था। तीसरी योजना के अन्त में यह बढकर 1 खरब 52 अरब घन मीटर हो गया। अर्थात् 15 वर्षो में 58 अरब घन मीटर की बढोतरी हो गई। पिछले 9 वर्षों मे जल का इस्तेमाल 2 खरब 5 अरब घन मीटर तक पहुँच गया है। इसका मतलब यह हुआ कि 53 अरब घन मीटर की और बढोतरी हुई है। पिछले 9 वर्षो में बहुत सी ऐसी परियोजनाएँ पूरी की गई हैं जिनमें बहुत ऊँचे दर्जे की तकनीक और दक्षता से काम लिया गया। इन परियोजनाओ में आन्ध्र प्रदेश का नागार्जुन सागर बाँध, बिहार में सोन बराज का नया स्वरूप देना, और गुजरात की बनास और हातमती परियोजनाएँ और उकई बाँध, मध्यप्रदेश का हसदेव बराज, राजस्थान में चम्बल नदी पर बाँध और उत्तर प्रदेश में रामगगा बाँध के नाम उल्लेखनीय है।[1]

1. भारत सरकार—'सिचाई', दिसम्बर 1975

Appendix—5

राष्ट्रीय विकास और आँकड़े

सामाजिक न्याय लाने की दृष्टि से अर्थ-व्यवस्था को नया रूप देने के लिए एक कल्याणकारी राज्य की योजना बनानी होती है और विकास के लिए आयोजन को सामग्री एवं मनुष्य के रूप मे ससाधनो एवं आवश्यकताओ सम्बन्धी तथ्यो एव आँकडो पर आधारित होना चाहिए। तथ्य एव आँकडे एकत्र करने और इस आधार सामग्री का विश्लेषण करने की तकनीक वाले विज्ञान को साँख्यिकी कहते हैं। इस प्रकार साँख्यिकी-वेत्ता को देश के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। अगर हमे यह पता नही है कि देश मे खाद्य उत्पादन कितना हुआ है और कितनी आवश्यकता है तो लाखो लोगो को भारी कष्ट पहुँचने का खतरा हो सकता है। बाँध बनने से पहले इजीनियर को यह जानना होना है कि जलाशय मे कितना पानी प्रवाहित होगा और प्रस्तावित निर्माण कितने दवाव को सह सकेगा।

कार्य पद्धति

लेकिन साँख्यिकी के क्षेत्र मे काम करने वाला व्यक्ति जनता के सामने कम ही दिखाई देता है। वह व्यावहारिक रूप से लोगो से अपरिचित रह कर अबाध रूप से काम करता है। उसे पहले तथ्य एकत्र करने होते हैं। ऐसा करने से पहले उसे यह भी जानना चाहिए कि वह कौन सी जानकारी चाहता है वह कहाँ मिलेगी और कैसे मिलेगी ? काफी सोच विचार के बाद एक प्रश्नावली तैयार की जाती है और क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता उन लोगो से सम्पर्क करता है जो उत्तर देंगे। किसी परियोजना मे, अगर हजारो नही तो सैकडो ऐसे कार्यकर्त्ताओ की सेवाओ की आवश्यकता होती है। इस प्रकार एकत्र विपुल आधार सामग्री अथवा आँकडो का विधायन एव विश्लेषण आधुनिकतम तकनीको से किया जाता है और इसके मूल्यांकित परिणामो से देश की आर्थिक समस्याओ को हल करने मे मदद मिलती है।

मूल आधार सामग्री का विश्लेषण कई दृष्टिकोणो से करना होता है। यह काम हाथ से किया जा सकता है, लेकिन यह श्रम साध्य प्रक्रिया है। साँख्यिकी-विदो की मदद के लिए कम्प्यूटर आ गया है। इससे सिर्फ समय की बचत ही नहीं होती, बल्कि वह गणना करना भी सम्भव है जो किसी दूसरे तरीके स नही हो सकती।

भारत में व्यवस्था

स्वतन्त्रता के बाद सरकारी आँकड़ों को एकत्र करने और उनके प्रकाशन मे विशिष्ट सुधार हुआ है। कई विश्वविद्यालयो मे साँख्यिकी मे पाठ्यक्रम हैं। भारत मे समस्त सरकारी सांख्यिकी सम्बन्धी गतिविधि के शिखर पर साँख्यिकी विभाग है। इसकी स्थापना मन्त्रिमण्डल सचिवालय मे 1961 मे की गई थी, लेकिन अब यह योजना मत्रालय के अन्तर्गत है। साँख्यिकी विभाग के अन्तर्गत केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन (सी. एस ओ.), राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एन एस एस.) और कम्प्यूटर केन्द्र आते हैं। हर राज्य का अपना साँख्यिकी ब्यूरो है जो केन्द्रीय एजेंसियो के साथ मिलकर काम करता है। सन् 1961 मे एक पृथक् सेवा भारतीय साँख्यिकी सेवा' का गठन किया गया था जिससे भारत सरकार मे साँख्यिकी के विशेष ज्ञान वाले पदो की व्यवस्था की जा सके। इसमे इस समय लगभग 400 व्यक्ति है।

केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन—सी एस. ओ. के वर्षों से चले आ रहे मुख्य कार्य क्षेत्र इस समय इस प्रकार है—(1) राष्ट्रीय लेखा तैयार करना, (2) औद्योगिक आँकडो का विधायन, सारणीकरण एव विश्लेषण, (3) साँख्यिकीय प्रशिक्षण; और (4) मानको को कायम रखना और समन्वय।

केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन सभी साँख्यिकीय मामलो पर अन्तर्राष्ट्रीय सगठनों के साथ और विशेष रूप से सयुक्त राष्ट्र साँख्यिकी कार्यालय तथा एशिया एव प्रशांत की आर्थिक एव सामाजिक परिषद् के साँख्यिकी डिवीजन के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन म विभिन्न विषयो की अलग अलग यूनिटें हैं जहाँ इन विषयो के विशेषज्ञ काम करते हैं। यह यूनिटें केन्द्रीय विभागो और राज्य साख्यिकी ब्यूरो के साथ सम्पर्क रखती हैं। बहुत सी स्थायी समितियाँ कार्यकारी दलो का गठन करके सी एस ओ ने साँख्यिकी मामलो पर केन्द्रीय मत्रालयो के साथ समन्वय करने के लिए किया है। सी एस ओ ने दूसरे विभागो को उनके द्वारा एकत्र आँकडो की गुणवत्ता को सुधारने में मदद दी है। केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन और राज्य साँख्यिकी ब्यूरो के बीच निकट सम्पर्क स्थापित किया गया है जिससे साँख्यिकी के विकास के लिए कार्यक्रमो की योजना बनाई जा सके। देश और राज्यो की पचवर्षीय योजनाओ मे साँख्यिकी कार्यक्रम शामिल करने की दृष्टि से राज्य साँख्यिकी ब्यूरो के निदेशकों की बैठकें समय समय पर होती रहती हैं। योजना आयोग के साँख्यिकी एव सर्वेक्षण डिवीजन के माध्यम से सी. एस. ओ योजना की स्कीमो का समन्वय करता है और उन्हे पचवर्षीय योजनाओ एव वार्षिक योजनाओ मे शामिल करने मे मदद देता है। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार एव राज्य सरकारों की साख्यिकी गतिविधियो का सचालन योजना की आवश्यकताओ के अनुरूप होता है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और कुछ ताजा सर्वेक्षण—इसका उद्देश्य भारतीय जनता के आर्थिक एव सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओ पर, जिनम औद्योगिक एव कृषि क्षेत्र भी शामिल हैं, निरन्तर आधार पर बडे स्तर के नमूना सर्वेक्षण करना

था। इसका मुख्य उद्देश्य योजना की आवश्यकताओ को पूरा करना था। यह देश मे सबसे बडा सांख्यिकी सगठन है। प्रबन्ध परिषद् ने सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षणो का दीर्घकालीन *कार्यक्रम बनाया है जिसमे रोजगार, भूमि की जोत, ऋण एव निवेश,* जनसख्या के अध्ययन और परिवार नियोजन जैसे विषयो को प्राथमिकता दी जाएगी। आपात् स्थिति लागू होने पर प्रधान मन्त्री द्वारा घोषित आर्थिक कार्यक्रमो के सन्दर्भ मे उनमे से बहुत से कार्यक्रमो को अत्यधिक महत्त्व मिला है।

कुछ ताजा सर्वेक्षण निम्न आधार पर किए गए हैं—

भूमिहीन खेतिहर मजदूरो एव छोटे काश्तकारो की आर्थिक स्थिति (1970 71),

भूमि जोतो का ढांचा और ऋण एव निवेश (1971-72),

देश मे रोजगार एव बेरोजगारी की स्थिति (1972-73),

जनसख्या के पहलू और परिवार नियोजन की स्थिति (1973-74),

गैर कृषि उद्यमो मे अपने रोजगार;

ग्रामीण श्रमिक जाँच पडताल के परिशिष्ट सहित (1974-75), और

देश मे पशुधन उत्पादो का उत्पादन एव पशुधन उद्यमो का अर्थशास्त्र *(1975-76), यह अध्ययन इस समय चल रहा है।*

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की अपूर्व विशेषता यह रही है कि इसके कार्यक्रम मे राज्य सरकारो ने भाग लिया है। हर सर्वेक्षण के लिए नमूने के एक भाग से सम्पर्क करने और सारणी बनाने का काम राज्य सांख्यिकी ब्यूरो द्वारा किया जाता है। *राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और राज्य ब्यूरो समान प्रक्रियाएँ ही अपनाते है। जल्दी ही* राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के काम को सिक्किम तक फैला दिया जाएगा। राष्ट्रव्यापी सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण करने के अलावा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण सगठन को औद्योगिक एव कृषि आँकडे एकत्र करने का काम भी सौंपा गया है।

कम्प्यूटर केन्द्र—इसकी स्थापना *1967* मे सांख्यिकी विभाग के सम्बद्ध कार्यालय के रूप मे की गई थी। तीन हनीवेल—400 कम्प्यूटरो को लगाया गया था और ये चौबीस घण्टे काम करते है। आधार सामग्री की छानबीन करने और कुशल विश्लेषण करने मे कम्प्यूटर बहुत मदद करते हैं। यह केन्द्र दिल्ली मे और *दिल्ली के आस पास सभी सरकारी विभागो और सरकारी क्षेत्रो के सस्थानो की* आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। इसका उपयोग करने वालो मे प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, केन्द्रीय आबकारी एव सीमा शुल्क बोर्ड, आपूर्ति एव निपटान महानिदेशालय, केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन, भारतीय वायुसेना, थलसेना, सीमा सुरक्षा दल, नियन्त्रक एव महालेखा परीक्षक, गृह मन्त्रालय, आर्थिक मामलो का विभाग और दिल्ली टेलीफोन। सरकार के बडे आर्थिक क्षेत्रो के अलावा दूसरे क्षेत्रो मे भी इलैक्ट्रोनिक आधार सामग्री के विधायन के लिए व्यापक क्षेत्र हैं—जैसे *शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, सामुदायिक विकास, पर्यटन,* पर्सोनल एव कैरियर मेनेजमेट, वेतन एव लेखा और सूचियाँ आदि।

भारतीय सांख्यिकी सस्थान, कलकत्ता—भारतीय सांख्यिकी सस्थान की स्थापना कलकत्ता मे 1932 मे स्वर्गीय प्रोफेसर पी सी महालनोबिस की पहल पर वैज्ञानिक ज्ञान समिति के रूप मे की गई थी । जीवनपर्यन्त इसके निर्देशक एव सचिव प्रो महालनोबिस और वर्तमान निदेशक एव सचिव डी सी एस राव ने इसके लिए अथक् प्रयत्न किए हैं जिससे यह सस्थान बडा सगठन बन गया है और जिसके कलकत्ता (मुख्यालय), बगलौर, बडौदा, बम्बई, दिल्ली, हैदराबाद, मद्रास और त्रिवेंद्रम मे प्रशिक्षण एव अनुसधान केन्द्र हैं । सस्थान ने सिद्धान्त और व्यावहारिक सांख्यिकी मे अनुसधान के लिए बहुत ख्याति प्राप्त की है और भारत को विश्व के सांख्यिकी मानचित्र पर बिठा दिया है । 1955 मे ससद् मे पास एक अधिनियम के अन्तर्गत इसे राष्ट्रीय महत्त्व का सस्थान घोषित किया गया है । सस्थान की मुख्य गतिविधियाँ इस प्रकार है—

(1) विभिन्न गणित एव सांख्यिकी सम्बन्धी शिक्षा रूपो मे अनुसधान,

(2) ये पाठ्यक्रम चलाना—बी स्टेट (आनर्स), एम स्टेट, पी एच डी की डिग्रियाँ : सांख्यिकी सांख्यिकी गुणवत्ता नियन्त्रण, आपरेशनल रिसर्च आदि मे डिप्लोमा पाठ्यक्रम और बाहरी छात्रो के लिए व्यावसायिक परीक्षाओ का आयोजन और

(3) साख्यिकी गुणवत्ता नियन्त्रण मे परामर्श एव प्रशिक्षण सेवाएँ प्रदान करना ।

यह सस्थान यूनेस्को एव भारत सरकार के तत्त्वावधान मे इटरनेशनल स्टेटिस्टीकल इस्टीट्यूट दि हेग के सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय सांख्यिकी शिक्षा केन्द्र का सचालन करता है । प्रतिवर्ष नियमित एव विशेषीकृत पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं और दक्षिण एव दक्षिण पूर्व एशिया, सुदूर पूर्व के विभिन्न देशो तथा अफ्रीका के राष्ट्रमण्डल के देशो के प्रशिक्षणार्थी भी इनमे शिक्षा पाते हैं ।[1]

---

1. भारत सरकार आँकड़ों का महत्त्व, दिसम्बर 1975.

Appendix—6

राष्ट्र के आर्थिक कायाकल्प के लिए परिवार नियोजन

आज देश के सामने मुख्य चुनौती गरीबी की समस्या है और प्रत्येक योजना या गतिविधि केवल तभी महत्त्वपूर्ण समझी जाती है जब वह इस समस्या को हल करने में सहायक होती है। जनसख्या और परिवार नियोजन के प्रश्न को इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

परिवार नियोजन कार्यक्रम को अब एक अलग कार्यक्रम के रूप में देखना सम्भव नहीं है। इस कार्यक्रम को देश के सम्पूर्ण स्वास्थ्य और पोषक आहार कार्यक्रमों के साथ मिलकर चलाया जाना है और इसकी पहुँच दूर-दूर के देहाती क्षेत्रों और शहर की गन्दी बस्तियों में रहने वाले हमारे देश की अधिकांश जनसख्या तक होनी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाँचवी योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन सेवाएँ एक कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। इसको पूरा करने के लिए निस्सन्देह प्रशासन, प्रशिक्षण और सगठन की प्रक्रियाओं में मुख्य परिवर्तन करने होंगे। इस में क्रान्तिकारी कदम उठाए बिना नए दृष्टिकोण को सफलता मिलने की आशा नहीं है।

स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन सेवाओं का एकीकरण करने के साथ-साथ परिवार नियोजन कार्यक्रम को भारत सरकार के कार्यक्रम की जगह वास्तविक जन आन्दोलन के रूप में बदलना आवश्यक है। इस दिशा में श्रीमती गाँधी और सजय गाँधी ने बिगुल फूंक दिया है और भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने इसे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम मानते हुए आवश्यक कदम उठाए हैं। देश भर में 16 सितम्बर, 1976 से 30 सितम्बर, 1976 तक मनाया गया परिवार नियोजन पखवाडा राष्ट्र के दृढ-सकल्प का परिचायक है। जनता के सभी वर्गों से अपेक्षित है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाएँ। न केवल भारत सरकार बल्कि मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने भी स्पष्ट कर दिया है कि 'मुसलमानों को परिवार नियोजन अपनाना चाहिए। पवित्र कुरान में परिवार नियोजन की मनाही नहीं की गई है।'"[1] ईरान में उलमाओं ने अपना एक फतवा जारी किया था जिसमें यह स्पष्ट कहा गया था कि इस्लाम में परिवार नियोजन या अधिक सन्तानों के जन्म पर नियन्त्रण के बारे में कोई बन्धन नहीं है।

1. भारत सरकार विज्ञप्ति, अगस्त 26, 1976

1976-77 मे परिवार नियोजन का जोरदार आयोजन

लगभग एक करोड एक लाख तीन हजार व्यक्तियो को 1976-77 मे परिवार नियोजन के अन्तर्गत लाने का फैसला किया गया है जबकि 1975-76 मे यह लक्ष्य 75,10,000 व्यक्तियो को परिवार नियोजन के अन्तर्गत लाने का था। 1976 77 के निर्धारित अनुमानो के अनुसार 43 लाख नसबन्दियाँ की जाएँगी, 11,40,000 लूप लगाए जाएँगे। परम्परागत गर्भ निरोधको तथा अन्य तरीको का नियमित रूप से प्रयोग करने वालो की सख्या 46 लाख 90 हजार होगी।

परिवार नियोजन के लक्ष्यो के बारे मे हाल ही मे हुई केन्द्रीय स्वास्थ्य और परिवार नियोजन परिषदो की बैठक मे समीक्षा की गई थी और इसे अन्तिम रूप दिया गया था। महाराष्ट्र मे सबसे अधिक 5,62,000 नसबन्दियो का लक्ष्य रखा गया है जबकि 1975-76 के दौरान इस राज्य मे 3,18,300 नसबन्दियो का लक्ष्य रखा गया था। इसके बाद तमिलनाडु की बारी आती है जहाँ 5,00,000 नसबदियो का लक्ष्य रखा गया है। उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश दोनो राज्यो के लिए लगभग 4,00,000 नसबदियो का लक्ष्य रखा गया है।

जहाँ तक परिवार नियोजन के अन्तर्गत लाए जाने वाले व्यक्तियो की कुल सख्या का सम्बन्ध है, उत्तर प्रदेश मे सबसे अधिक 12,02,9000 व्यक्तियो को परिवार नियोजन के अन्तर्गत लाया जाएगा। महाराष्ट्र मे 8,55,800; तमिलनाडु मे ,83 000; पश्चिम बगाल मे 6 46,000, आन्ध्र प्रदेश मे 5,87 800, मध्य प्रदेश 5,82,400 और बिहार मे 5,27,)00 व्यक्तियो को परिवार नियोजन के अन्तर्गत लाने का प्रस्ताव है।

केन्द्रशासित प्रदेशो मे दिल्ली का सबसे पहला स्थान है जहाँ 1976 77 के दौरान 29,000 नसबदियो का लक्ष्य रखा गया है। गोवा, दमन और दीव के लिए 8,000 और पाण्डिचेरी के लिए 5,300 नसबदियो का लक्ष्य रखा गया है।

परिवार नियोजन के बारे मे ये लक्ष्य राज्यो मे पिछले वर्ष हुई प्रगति के आधार पर निर्धारित किए गए हैं। 1976-77 मे परिवार नियोजन सम्बन्धी नीति की अपेक्षाकृत मुख्य विशेषता नसबन्दी पर जोर देना है। राज्यों से परिवार नियोजन कार्य की हर महीने समीक्षा करने को कहा गया है और साथ ही परिवार नियोजन कार्य मे पाए जाने वाले दोषो की जाँच करने तथा शीघ्रता से रुकावटो को दूर करने पर भी बल दिया गया है।

1976 77 के दौरान परिवार नियोजन के लिए 70 करोड 14 लाख रुपये का बजट परिव्यय रखा गया है।

1976-77 के दौरान जन्म दर कम करने के राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिक कठोर और जोरशोर से कार्य किया जाएगा। राष्ट्रीय जनसख्या नीति के अनुसार पांचवीं योजना के अन्त तक जन्म दर 30 प्रति हजार तक लाई जाएगी।[1]

1. कुरुक्षेत्र, जुलाई 1976, पृष्ठ 19

भारत सरकार की राष्ट्रीय जनसख्या नीति की विशेषताएँ

(1) विवाह की आयु बढाकर लडको के लिए 21 और लडकियो के लिए 18 वर्ष की जा रही है।

(2) 30 साल तक लोकसभा और राज्य विधान सभाओ के प्रतिनिधित्व 1971 की जनगणना के स्तर पर ही रहेगा।

(3) राज्यो की योजनाओ मे केन्द्रीय सहायता का 8 प्रतिशत भाग विशेष रूप से परिवार नियोजन कार्यों के लिए रखा जाएगा।

(4) परिवार नियोजन आपरेशन कराने के लिए पुरुष और महिलाओ को दी जाने वाली रकम मे बढोत्तरी की जाएगी।

(5) फिलहाल अनिवार्य नसबन्दी के प्रश्न पर कोई केन्द्रीय कानून नही बन रहा है।

(6) पचायतो, अध्यापको और श्रमिको के लिए सामूहिक प्रोत्साहन योजना शुरू की जाएगी।

(7) परिवार नियोजन को जन आन्दोलन बनाने के उद्देश्य से इसमे स्वय-सेवी सगठनो को सम्मिलित किए जाने की योजना का विस्तार किया जाएगा।

(8) महिला शिक्षा के स्तर को उठाने के लिए विशेष उपाए किए जाएँगे।

(9) बालपोषक आहार कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। जिससे कि बाल मृत्यु के मामलों मे काफी कमी हो सके।

(10) शिक्षा प्रणाली मे जनसख्या समस्या को शामिल किया जाएगा।

(11) केन्द्रीय सरकार कर्मचारियो की सेवा और आचरण नियमो मे परिवर्तन किए जा रहे हैं जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे छोटे परिवार के सिद्धान्तो पर चलें।

"हमारे देश के आम आदमी को यह समझना होगा कि अपने देश से गरीबी और बेरोजगारी का नामो-निशान मिटाने के लिए हमने जो योजना बनाई है, परिवार नियोजन उसका एक अभिन्न और महत्त्वपूर्ण अग है। अगर वे परिवार नियोजन को अपने जीवन का अग बना लेते है तो यह निश्चित है कि उनकी और उनके बच्चो की जिन्दगी बेहतर बन सकती है। उन्हे यह समझना होगा कि कोई माँ स्वस्थ नही रह सकती, यदि वह बार-बार और जल्दी जल्दी गर्भवती होती है। उन्हे यह भी मानना होगा कि बहुत सारे बच्चे पैदा करके उनका उचित तरह लालन-पालन न करना उनके साथ बेइन्साफी करना है।"

—राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद (18 अगस्त, 1976)

"हम अपने अनुभव से अच्छी तरह जानते हैं कि गरीबी दूर करने के प्रयत्नो मे तभी सफलता मिल सकती है जब हमारे परिवार सुगठित हो। एक ही पीढी मे हमारी जनसख्या मे 25 करोड की वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि ब्रिटेन की आबादी का 5 गुना है। हम अपने विकास कार्यों के अच्छे परिणाम दिखा सकते थे बशर्ते कि

हमारी जनसंख्या इतनी तेज रफ्तार से न बढ़ी होती। हमारी जनसंख्या नीति राजनीतिक मान्यताओं पर आधारित नहीं है। इसका उद्देश्य बच्चे-बच्चे की बेहतर तन्दुरुस्ती है तथा शिक्षा और रोजगार के अच्छे अवसर प्रदान करना है।"

—प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए परिवार नियोजन

केन्द्रीय असैनिक सेवा आचरण नियमों में संशोधन करके एक नई धारा जोड़ी गई है जिसके अधीन केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी भी परिवार नियोजन अपनाएँगे।

नई धारा इस प्रकार है—

"प्रत्येक केन्द्रीय कर्मचारी को विश्वास दिलाना होगा कि उसके तीन से अधिक बच्चे नहीं होंगे, परन्तु 30 सितम्बर, 1976 तक जिन कर्मचारियों के तीन से अधिक बच्चे होंगे, उन पर यह धारा लागू नहीं होगी। यदि वे इस बात का विश्वास दिलाएँ कि उसके बच्चों की संख्या उस दिन तक के मौजूदा बच्चों से अधिक नहीं होगी। यह नई धारा राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को कार्य रूप देने की दृष्टि से जोड़ी गई है। यह सभी केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर जिनकी संख्या लगभग 30 लाख है, उन पर लागू होगी।"

—भारत सरकार : 5 सितम्बर, 1976

Appendix—7

जनगणना 1971 तथ्य एक दृष्टि में[1]

भारत की जनसख्या	व्यक्ति	54 80 करोड
	पुरुष	28 40 करोड
	स्त्रियाँ	26 40 करोड
दशवार्षिक वृद्धि (1961-71)	24 80 प्रतिशत	
जन-घनत्व[2]	178 प्रति वर्ग कि मी.	
स्त्री पुरुष अनुपात	930 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरुष	
साक्षरता दर (0-4 प्रायु वर्ग मिलाकर)	व्यक्ति	29·45 प्रतिशत
	पुरुष	39 45 प्रतिशत
	स्त्रियाँ	18 70 प्रतिशत
कुल जनसख्या में शहरी जनसख्या का अनुपात 19 91 प्रतिशत		
कुल जनसख्या मे कामगारो का प्रतिशत (केवल मुख्य धन्धा)		
	व्यक्ति	32·92
	पुरुष	52 50
	स्त्रियाँ	11 85
कामगारो के वर्ग	कुल कामगारो का प्रतिशत	
(1) काश्तकार	कुल	43 34
	पुरुष	38 20
	स्त्रियाँ	5·14
(2) कृषि मजदूर	कुल	26 33
	पुरुष	17 57
	स्त्रियाँ	8 76
(3) पशुधन, वन, मत्स्य पालन, शिकार और बागान, फल उद्यान तथा सम्बद्ध धन्धे	कुल	2 38
	पुरुष	1·95
	स्त्रियाँ	0 43

1. India 1975 pp 16-17
2. घनत्व जम्मू और काश्मीर के आंकडे छोडकर निकाला गया है क्योंकि युद्ध विराम रेखा के उस पार के आंकडे उपलब्ध नहीं हैं।

(4) खनन और खदान	कुल	0 51
	पुरुष	0 44
	स्त्रियाँ	0 07
(5) उत्पादन उपयोगीकरण सेवाएँ (सर्विसिंग) और मरम्मत		
(क) घरेलू उद्योग	कुल	3 52
	पुरुष	2 78
	स्त्रिया	0 74
(ख) गैर घरेलू उद्योग	कुल	5 94
	पुरुष	5 46
	स्त्रियाँ	0 48
(6) निर्माण	कुल	1 23
	पुरुष	1 12
	स्त्रियाँ	0 11
(7) व्यापार और वाणिज्य	कुल	5 57
	पुरुष	5 26
	स्त्रिया	0 31
(8) परिवहन भण्डारण और सचार	कुल	2 44
	पुरुष	2 36
	स्त्रियाँ	0 08
(9) अन्य कामगार	कुल	8 74
	पुरुष	7 50
	स्त्रियाँ	1 24

राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय[1]
(कारक मूल्यों पर)

विवरण	1960–61	1971–72	1973–74
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (करोड रु)			
चालू मूल्यो पर	13,267	36,599	49,290
1960-61 के मूल्यो पर	13,267	19,299	19,724
प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (रु)			
चालू मूल्यो पर	305 7	660·6	849 8
1960-61 के मूल्यो पर	305 7	348·4	340 1
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का सूचकांक (आधार वर्ष . 1960-61)			
चालू मूल्यो पर	100 0	275 9	371·5
1960-61 के मूल्यो पर	100 0	145 5	148 7
प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन का सूचकांक (आधार वर्ष . 1960-61)			
चालू मूल्यो पर	100 0	216 1	278 0
1960-61 के मूल्यो पर	100 0	114 0	111·3
कुल राष्ट्रीय आय (करोड रु)			
चालू मूल्यो पर	14,003	38,899	52,193
1960-61 के मूल्यो पर	14,003	20,672	21,214
कुल राष्ट्रीय आय का सूचकांक			
चालू मूल्यो पर	100 0	277 8	372·7
1960-61 के मूल्यो पर	100 0	147 6	151 5

1 India 1976, p 142

Appendix—9

मूल उद्योग के अनुसार निवल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुमान–प्रतिशत विभाजन[1]
(1960–61 की कीमतों के आधार पर)

उद्योग वर्ग	1960–61	1970–71	1974–75
1 कृषि, वन और लटठा उद्योग, मीन उद्योग, खनन् और पत्थर की खुदाई उद्योग	52 5	45 8	41 2
2 मैन्यूफैक्चरिंग, निर्माण, बिजली, गैस तथा जल पूर्ति	19 2	22 6	23 8
3. परिवहन सचार और व्यापार	14 1	15 9	16 4
4 बैंक और बीमा, भू-गृहादि सम्पदा तथा आवासो का स्वामित्व और व्यापारिक सेवाएँ	4 2	4 1	4 4
5 सरकारी प्रशासन और रक्षा तथा अन्य सेवाएँ	10 5	12 6	14 8
6 उत्पादन लागत पर वास्तविक घरेलू उत्पादन	100 5	101 0	100 6
7 विदेशो से वास्तविक अभिकर्त्ता आय	(—)0 5	(—)1 0	(—)0 6
8 उत्पादन लागत पर वास्तविक राष्ट्रीय उत्पाद	100 0	100 0	100 0

1 आर्थिक समीक्षा 1975–76, पृष्ठ 60.

Appendix—10

सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा निवल राष्ट्रीय उत्पाद
(अर्थात् राष्ट्रीय आय)[1]

	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		निवल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ रुपये)		प्रति व्यक्ति निवल राष्ट्रीय उत्पाद (रुपये)	
	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1960-61 के मूल्यों पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1960 61 के मूल्यों पर	मौजूदा कीमतों के आधार पर	1960-61 के मूल्यों पर
1	2	3	4	5	6	7
1960 61	13999	13999	13263	13263	305 6	305 6
1961 62	14799	14513	13987	13729	315 0	309 2
1962 63	15727	14880	14795	13993	325 9	308 2
1963 64	17978	15686	16977	14771	365 8	318 3
1964 65	21113	16870	20001	15885	422 0	335 1
1965 66	21866	16113	20636	15082	425 5	311 0
1966 67	25279	16324	23883	15240	482 5	307 9
1967 68	29652	17640	28102	16494	555 4	326 0
1968 69	30417	18184	28729	16991	554 6	328 0
1969 70	33669	19350	31770	18092	600 6	342 0
1970 71	36558	20334	34476	19033	637 3	351 8
1971 72	38814	20708	36535	19367	660 7	350 2
1972 73	42077	20460	39573	19077	700 4	337 6
1973 74	51902	21403	49148	20034	851 8	347 2
1974-75	63375	21478	60120	20075	1022 4	341 4
तीसरी आयोजना मे वार्षिक वृद्धि दर	9 3	2 9	9 2	2 6	6 9	0 3
1966 67	15 6	1 3	15 7	1 0	13 4	(—)1 0
1967 68	17 3	8 1	17 7	8 2	15 1	5 9
1968 69	2 6	3 1	2 2	3 0	(—)0 1	0 6
1969 70	10 7	6 4	10 6	6 5	8 3	4 3
1970 71	8 6	5 1	8 5	5 2	6 1	2 9
1971 72	6 2	1 8	6 0	1 8	3 7	(—)0 4
1972 73	8 4	(—)1 2	8 3	(—)1 5	6 0	(—)3 6
1973 74	23 4	4 6	24 2	5 0	21 6	2 8
चौथी आयोजना मे वार्षिक वृद्धि दर	11 3	3 3	11 3	3 3	9 0	1 2
1974 75	22 1	0 4	22 3	0 2	20 0	(—)1 7

1 आर्थिक समीक्षा 1975 76 पृष्ठ 59

Appendix—11

चुने हुए उद्योगो मे उत्पादन[1]

विवरण	इकाई	1960 61	1971-72	1974 75
1	2	3	4	5
I खनन				
1. कोयला (लिगनाइट सहित)	दस लाख मीट्रिक टन	55 7	76 3	90 7
2 कच्चा लोहा	दस लाख मीट्रिक टन	11 0	34 7	35 5
II धातु उद्योग :				
3. ढला लोहा	दस लाख मीट्रिक टन	4·31	6 80	7 64
4 इस्पात के ढले	दस लाख मीटिक टन	3 42	6 41	6 43
5 तैयार इस्पात	दस लाख मीट्रिक टन	2 39	4 79	4 91
6 इस्पात की ढली हुई वस्तुएँ	हजार मीट्रिक टन	34	54	64
7 अल्यूमिनियम (प्राकृतिक धातु)	हजार मीट्रिक टन	18 3	181 5	126 6
8 तांबा (प्राकृतिक धातु)	हजार मीट्रिक टन	8 5	8 3	15 6
III यान्त्रिक इजीनियरी उद्योग				
9 मशीनी औजार	दस लाख रुपये	70	550	925
10 सूती कपडा बनाने की मशीनें	दस लाख रुपये	104	338	773
11 चीनी मिलो की मशीनें	दस लाख रुपये	44	177	270
12 सीमन्ट बनाने की मशीनें	दस लाख रुपये	6	22	93
13 रेल के डिब्बे	हजार की सख्या मे	11 9	8 5	11 1
14 मोटर गाडियां (कुल)	हजार की सख्या मे	55 0	91 3	81 7
(i) वाणिज्यिक गाडियाँ	हजार की सख्या मे	28 4	39 5	40 7
(ii) कारें, जीपें और लैंड रोवर	हजार की सख्या मे	26 6	51 8	41 0

1 आर्थिक समीक्षा 1975-76, पृष्ठ 73 75

1	2	3	4	5
15. मोटर साइक्लि और स्कूटर	हजार की सख्या मे	19·4	112 7	149 0
16 विद्युत चालित पम्प	हजार की सख्या मे	109	208	282
17. डीजल इजन (स्थिर)	हजार की सख्या मे	44 7	69 9	114 3
18. डीजल इजन (मोटर गाडियो के)	हजार की सख्या मे	10 8	1·5	2 9
19. बाइसिक्लि	हजार की सख्या मे	1071	1766	2341
20 सिलाई की मशीनें	हजार की सख्या मे	303	312	335
IV बिजली इजीनियरी उद्योग :				
21. विद्युत् ट्रान्सफार्मर	हजार किलोवाट एम्पियर	1413	8871	12439
22. बिजली की मोटरें	हजार अश्व शक्ति	728	2348	3684
23 बिजली के पखे	हजार की सख्या मे	1059	2067	2247
24. बिजली के लैम्प	दस लाख की सख्या मे	43 5	120 6	134 0
25 रेडियो रिसीवर	हजार की सख्या मे	282	2004	1966
26. बिजली केबल				
(i) अल्युमिनियम के तार	हजार मीट्रिक टन	23 6	79 7	28 6
(ii) तांबे के खुले तार	हजार मीट्रिक टन	10 1	0 7	1 3
V रासायनिक और सम्बद्ध उद्योग				
27. नाइट्रोजनी उर्वरक (एन)	हजार मीट्रिक टन	98	952	1182
28 फास्फेटी उर्वरक (पी$_2$ओ$_5$)	हजार मीट्रिक टन	52	278	323
29. गधक का तेजाब	हजार मीट्रिक टन	368	975	1434
30 सोडा ऐश	हजार मीट्रिक टन	152	489	516
31. कास्टिक सोडा	हजार मीट्रिक टन	101	385	426
32 कागज और गत्ता	हजार मीट्रिक टन	350	803	825
33. रबड के टायर ट्यूब				
(i) मोटर गाडियो के टायर	दस लाख की सख्या मे	1 44	4 33	4·83
(ii) मोटर गाडियो के ट्यूब	दस लाख की सख्या मे	1 35	4 24	4 18
(iii) बाइसिकिलो के टायर	दस लाख की सख्या मे	11 15	22 36	25 00
(iv) बाइसिकिलो के ट्यूब	दस लाख की सख्या मे	13 27	14 35	18 53

1	2	3	4	5
34 सीमेंट	दस लाख मीटिक टन	8 0	15 0	14 7
35 उच्चतापसह वस्तुएँ	हजार मीट्रिक टन	567	808	753
36 परिष्कृत पेट्रोलियम उत्पाद	दस लाख मीट्रिक टन	5 8	18 6	19·5
VI वस्त्र उद्योग :				
37 जूट कपडा	हजार मीट्रिक टन	1071	1274	1049
38 सूती धागा	दस लाख किलोग्राम	801	902	1025
39 सूती कपडा (कुल)	दस लाख मीटर	6740	7549	8268
(i) मिल क्षेत्र	दस लाख मीटर	4649	4039	4450
(ii) विकेन्द्रीकृत क्षेत्र	दस लाख मीटर	2091	3510	3817
40. रेयन का धागा	हजार मीट्रिक टन	43 8	102·3	115 9
41 नकली रेशम का कपडा	दस लाख मीटर	544	968	862
VII खाद्य उद्योग				
42 चीनी	हजार मीट्रिक टन	3029	3113	4793
43 चाय	दस लाख किलोग्राम	332	431	493
44. काफी	हजार मीट्रिक टन	54 1	95 6	86 1
45 बनस्पति	हजार मीट्रिक टन	340	594	352
VIII बिजली (उत्पादित)	अरब कि वा घ.	16 9	60 7	69 4

Appendix—12

गैर-सरकारी क्षेत्र मे रोजगार[1]

उद्योग प्रभाग/सक्षिप्त ब्यौरा	मार्च 1961	मार्च 1971	मार्च 1973	मार्च 1975
1	2	3	4	5
0 बागान, वन आदि	6 7	8 0	8 1	8 2
1 खानो और पत्थर की खानो की खुदाई	5 5	4 1	2 5	1 2
2. और 3. वस्तु निर्माण	30 2	39 7	41 0	41 3
4 इमारतो का निर्माण	2 4	1 4	1 8	1 3
5 बिजली, गैस और जल आदि	0 4	0 5	0 5	0 4
6 व्यापार और वाणिज्य	1 6	3 0	3 1	3 5
7 परिवहन और सचार	0 8	1 0	0 8	0 8
8 सेवाएँ	2 8	10 0	10 8	11 3
जोड	50 4	67 6	68 5	68 0

1 आर्थिक समीक्षा, 1975 76, पृष्ठ 85 86

Appendix—13

सरकारी क्षेत्र मे रोजगार[1]

सरकारी क्षेत्र के वर्गों के अनुसार		मार्च 1961	मार्च 1971	मार्च 1973	माच 1975 (अन्तिम)
1		2	3	4	5
1	केन्द्रीय सरकार	20 90	27 71	29 18	29 86
2	राज्य सरकार	30 14	41 52	45 79	47 44
3	अर्द्ध सरकारी	7·73	19 29	25·78	31 68
4	स्थानीय निकाय	11 73	18 78	19 00	19 39
	जोड	70 50	107 31	119 75	128 38

1. आर्थिक समीक्षा, 1975-76, पृष्ठ 85

Appendix—14

20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम

1. आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के दामो मे गिरावट के रुझान को बनाए रखना, उत्पादन की गति तेज करना, आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों की वसूली व वितरण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाना, सरकारी खर्च मे कमी करना ।
2. कृषि भूमि की हदबन्दी को तेजी से लागू करना, अतिरिक्त भूमि को ज्यादा तेजी से बाँटना तथा भूमि सम्बन्धी प्रलेख तैयार करना। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाएगा कि जनजातीय लोगों को उनकी भूमि से वंचित न किया जाए।
3 देहाती क्षेत्रो मे भूमिहीनों व समाज के कमजोर वर्गों के लिए आवास भूमि के आवटन को तेजी से लागू करना।
4 मजदूरो से जबरन काम कराने को, जहाँ कहीं ऐसा होता हो, गैर-कानूनी करार दिया जाएगा ।
5. ग्रामीणो के कर्ज की समाप्ति की योजना। भूमिहीन मजदूरो, दो हैक्टेयर से कम भूमि वाले छोटे और सीमान्त किसानो व देहाती दस्तकारो से कर्ज की वसूली पर रोक लगाने के लिए कानून बनाया जाएगा ।
6 खेतिहर मजदूरो के निम्नतम मजदूरी सम्बन्धी कानूनो मे सशोधन होगा और जहाँ आवश्यक होगा, न्यूनतम वेतन को उचित रूप से बढाने के लिए कार्यवाही की जाएगी।
7 50 लाख हैक्टेयर भूमि मे और सिचाई की व्यवस्था की जाएगी। भूमिगत जल के उपयोग के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाए जाएँगे और पीने के पानी की व्यवस्था के लिए, विशेष रूप से सूखा पडने वाले क्षेत्रो मे और अधिक सर्वेक्षण किए जाएँगे।
8. बिजली उत्पादन कार्यक्रमों मे तेजी लाई जाएगी। केन्द्र के नियन्त्रण मे सुपर ताप बिजलीघरो की स्थापना की जाएगी।
9 हाथकरघा क्षेत्र के विकास के लिए नए कार्यक्रम लागू किए जाएँगे। बुनकरो को और अधिक सुरक्षा प्रदान करने की नीति को अधिक युक्तिसगत बनाया जाएगा।
10 नियन्त्रित मूल्य पर बिकने वाले कपडे की क्वालिटी सुधारी जाएगी और उसके वितरण की उचित व्यवस्था की जाएगी।

11 शहरी भूमि व शहर बसाने योग्य भूमि का समाजीकरण, खाली छोडी गई अतिरिक्त भूमि पर कब्जा करने तथा नए आवासो मे चौकी क्षेत्र को कम करने के लिए कदम उठाए जाएँग ।

12. दिखावे की शानदार सम्पत्ति के मूल्यांकन के लिए और कर चोरी पकडने के विशेष दस्ते कायम किए जाएँगे । आर्थिक अपराधियो के खिलाफ तुरन्त निर्णायक मुकदमा चलाया जाएगा तथा कडा दण्ड दिया जाएगा ।

13 तस्करो की सम्पत्ति जब्त करने के लिए विशेष कानून बनाया जाएगा ।

14 पूंजी निवेश प्रक्रिया को उदार बनाया जाएगा । आयात लाइसेंस का दुरुपयोग करने वालो के विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी ।

15 उद्योगो म, विशेष रूप मे कारखाने के काम मे कर्मचारियो की शिरकत से सम्बन्धित नई योजनाएँ और उत्पादन कार्यक्रमो की शुरुआत ।

16 सडक परिवहन के लिए राष्ट्रीय परमिट योजना शुरू की जाएगी ।

17. मध्यम वर्ग के आयकर मे छूट की सीमा बढाकर 8 हजार रुपये कर दी जाएगी ।

18 छात्रावासो म छात्रो के लिए नियन्त्रित मूल्य पर आवश्यक वस्तुओ की व्यवस्था की जाएगी ।

19 छात्रो को नियन्त्रित मूल्य पर पुस्तकें व स्टेशनरी के सामान उपलब्ध कराए जाएँगे तथा पुस्तक बैंको की स्थापना की जाएगी ।

20 नइ एप्रेन्टिसशिप योजना शुरू की जाएगी जिसमे रोजगार व प्रशिक्षण के अवसर बढेंगे । अप्रेन्टिसो की भर्ती करते समय अनुसूचित जाति और जनजाति, अल्पसख्यको और विकलांगो का विशेष ध्यान रखा जाएगा ।

(राष्ट्र के नाम प्रधानमन्त्री द्वारा 1 जुलाई 1975 के प्रसारण से)

Appendix—15

पांचवीं पचवर्षीय योजना का प्रारूप
(25 सितम्बर 1976 को राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति)[1]

राष्ट्रीय विकास परिषद् ने पांचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप को 25 सितम्बर, 1976 को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया है। इस योजनाकाल के अब दो ही वर्ष शेष रह गए हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि योजना की यह अन्तिम स्वीकृति बहुत विलम्बित हो गई है। परन्तु योजना के अब तक गुजरे काल मे कुछ ऐसी अस्थिरता की परिस्थितियां और मजबूरियां रही कि योजना का अन्तिम ढांचा स्वीकार करने मे विलम्ब होना स्वाभाविक ही था। वास्तव मे, जैसा कि प्रधान-मन्त्री ने कहा है, यह समझा जाना चाहिए कि पचवर्षीय योजना की यह मध्यावधि समीक्षा हुई है और प्रारम्भ के तीन वर्षों मे प्राप्त अनुभवों और देश मे लाई गई स्थिरता के फलस्वरूप इसके शेष वर्षों के लिए सुविचारित आयोजन किया गया है।

परिषद् के योजना को स्वीकार करने वाले प्रस्ताव मे कहा गया है कि पांचवी योजना के प्रारूप पर विचार करते हुए आत्मनिर्भरता व गरीबी दूर करने के उद्देश्यो पर जोर देते हुए, मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति पर अकुश के लिए उठाए जाने वाले कदमो का समर्थन करते हुए कृषि, सिचाई ऊर्जा व सम्बन्धित आधारभूत क्षेत्र की योजनाओ पर जोर देते हुए, नए आर्थिक कार्यक्रम को लागू करने की इच्छा मे राष्ट्र की क्षमता मे विश्वास व्यक्त करते हुए, पूंजी निवेशो से अधिक आय प्राप्त करने की आवश्यकता को महसूस करते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद् सितम्बर, 1976 की अपनी बैठक मे पांचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप को स्वीकार करती है तथा जनता के सभी वर्गों से अपील करती है कि योजना मे निर्धारित लक्ष्यो को पूरा करने मे पूर्ण सहयोग दें।

राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृत पांचवी पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 39303 24 करोड रु. खर्च करने का प्रावधान है। यह प्रारूप योजना से लगभग 2000 करोड रु अधिक है। अगले दो वर्षों मे इस क्षेत्र पर 19983 करोड रु खर्च होने वाला है। जहां तक अलग-अलग मदो की बात है व्यय का आवटन इस प्रकार रखा गया है—

1. हिन्दुस्तान दि. 26 एव 27 सितम्बर, 1976 के आधार पर

मद	व्यय राशि
कृषि तथा इससे सम्बन्धित विषय	4643 50 करोड रु.
सिंचाई तथा बाढ नियन्त्रण	3440 18 करोड रु.
बिजली	7293 90 करोड रु
उद्योग तथा खनन	10200·60 करोड रु.
परिवहन तथा सचार	6881 43 करोड रु.
शिक्षा	1284 29 करोड रु.
समाज तथा सामुदायिक सेवाओं पर	4759 77 करोड रु
पहाडी तथा आदिवासी क्षेत्रो पर	450 00 करोड रु.
अन्य विविध क्षेत्रो पर	333·73 करोड रु

पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे जिन विषयो को प्राथमिकता मिली थी, उन्हे अपरिवर्तित रखा गया है।

पाँचवी योजना की 39303 24 करोड रु की राशि मे केन्द्र का योगदान 19954·10 करोड रु, राज्यो का 18265·08 करोड रु, सघीय क्षेत्र का 634 06 करोड रु तथा पहाडी और आदिवासी क्षेत्रो को 450 करोड रु. रहेगा।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री हक्सर ने कहा कि सही मायनो मे पाँचवी पचवर्षीय योजना का पहला वर्ष तो तैयारी मे ही चला गया। अत हमे अपना वास्तविक कार्य शेष चार वर्षों मे ही विभाजित करना पडा। यही कारण है कि योजना के अगले दो वर्षों मे 19902 करोड रु खर्च करने की व्यवस्था की गई है जबकि पहले तीन वर्षों के लिए पहले 19401 करोड रु खर्च करने का अनुमान था।

श्री हक्सर ने कहा कि योजना आयोग का अनुमान है कि हमारा कृषि उत्पादन कम से कम 12½ करोड टन तथा अधिक से अधिक 13 करोड 20 लाख टन होगा। उसके आधार पर कृषि क्षेत्र मे 4 प्रतिशत तथा उद्योग के क्षेत्र मे 7 10 प्रतिशत विकास की आशा रखी जा सकती है। हमारे निर्यात मे भी 8 5 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

योजना आयोग का अनुमान है कि इस पचवर्षीय योजना मे निजी क्षेत्र भी 24000 करोड रु खर्च कर सकेगा।

हक्सर ने कहा कि यह योजना यथार्थवादी है और इसमे मूल्यो मे स्थिरता पर विशेष जोर दिया गया है।

योजना मे कोयले का उत्पादन लक्ष्य 12 करोड 40 लाख टन, तैयार इस्पात का 88 लाख टन, रासायनिक खाद (नाइट्रोजन) का 29 लाख टन और फास्फेट खाद का 7 लाख 70 हजार टन रखा गया है। श्री हक्सर ने बताया कि योजना मे नए इस्पात कारखाने के लिए 30 करोड रुपये का प्रावधान रखा गया है। लेकिन यह कारखाना कहां लगाया जा सकता है, इसकी जांच-पडताल अभी चल रही है और निर्णय बाद मे ही हो सकेगा।

आयोग के सदस्य प्रो एस चक्रवर्ती ने बताया कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण सगठन द्वारा बेरोजगारी सम्बन्धी सर्वेक्षण की रिपोर्ट पर अभी विचार हो रहा है। यह हमारी सबसे विकट समस्या बन सकती है।

उन्होने बताया कि योजना मे मध्यम और बडी सिंचाई योजनाओ से 58 लाख हैक्टेयर और लघु सिंचाई से 60 लाख हैक्टेयर क्षेत्र मे अतिरिक्त सिंचाई का प्रावधान किया गया है। योजना के अन्त तक 31000 मेगावाट बिजली का उत्पादन बढाने का लक्ष्य रखा गया है। इसमे छठी योजना के लिए अग्रिम कार्रवाई शुरू करने का प्रावधान भी रखा गया है।

उन्होने बताया कि योजना मे अगले दो वर्षों मे लगभग 1600 करोड रुपये के अतिरिक्त साधन जुटाने का प्रावधान है, जिसमे से 900 करोड रुपये केन्द्रीय क्षेत्र से और 700 करोड रुपये राज्य क्षेत्र मे मुहैया किए जाएँगे। 14700 करोड के अतिरिक्त साधनो मे से लगभग 13,000 करोड रुपये के साधन पहले तीन वर्षो मे जुटाए जा चुके है।

परिषद् ने योजना को स्वीकार करते हुए जनता के सभी वर्गों से निर्धारित लक्ष्यो को पूरा करने मे पूर्ण सहयोग देने की अपील की है। योजना का मुख्य उद्देश्य आत्मनिर्भरता तथा गरीबी को दूर करना है, इसलिए जनता का सहयोग तो इसमे आवश्यक है ही और वह मिलना चाहिए। आपात् स्थिति की घोषणा के बाद देश मे जो अनुशासन और कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा की भावना आई है और असामाजिक प्रवृत्तियाँ रुकने से जो उत्साह पैदा हुआ है, वह बना रहना चाहिए ताकि उत्पादन बढे, ठीक ढग से वितरण हो और योजना के लक्ष्य पूरे हो सकें। इसके अलावा प्रधानमन्त्री ने ग्रामीणो से उनकी बचत को सग्रह करने के लिए ग्रामीण ऋण पत्र जारी करने, राज्यो स ओवर ड्राफ्ट लेने की प्रवृत्ति त्यागने, समुचित वितरण द्वारा किसी वस्तु का अभाव न होने देने, मूल्यो को न बढने देने तथा एक राष्ट्रीय वेतन नीति निर्धारित करने आदि के जो सुझाव दिए है, उन पर भी अमल किया जाना चाहिए। इनसे देश मे आवश्यक आर्थिक व्यवस्था बनाए रखने तथा योजना के लक्ष्यो को मूर्त रूप देने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हो सकेंगी।

Appendix-16

प्रश्न-कोश
(QUESTION BANK)

खण्ड-1. आर्थिक विकास के सिद्धान्त

अध्याय 1

1 आर्थिक विकास की परिभाषा दीजिए। आर्थिक विकास की प्रकृति एव उसके मापदण्ड के बारे मे बताइए।

Define economic growth Mention the nature and measurement of economic growth.

2 "आर्थिक विकास के तीन पहलू हैं—समग्रीकृत राष्ट्र के कुल और प्रति व्यक्ति उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि, सरचनात्मक विकास प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था मे जो विचरण (अथवा परिवर्तन) आते हैं, अन्तर राष्ट्रीय देश मे बदलती हुई सरचना के साथ ही साथ, इस के, और शेष विश्व के बीच आर्थिक प्रवाहो का अनुक्रमिक प्रतिरूप बनाना।" उदाहरणो सहित व्याख्या कीजिए। (1972)

"Economic growth has three aspects—the aggregative sustained increase in a nation's total and per capita product, the structural the shifts that occur in any economy during the growth process, the international: the changing domestic structure is supplemented by a sequential pattern of economic flows between it and the rest of the world" Elaborate with the help of illustrations

3 आर्थिक विकास के तत्वो की और उनके तुलनात्मक महत्त्व की विवेचना करो। आप आर्थिक विकास की दर किस प्रकार मापोगे ? (1973)

Discuss the factors that are responsible for economic growth and their relative importance How would you measure the rate of growth

4 *आर्थिक वृद्धि आर्थिक विकास और आर्थिक प्रगति में भेद कीजिए। आर्थिक विकास की माप-हेतु आय-समको का प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है ?*

Distinguish between economic growth, economic development and economic progress. How for Income Data may be used to measure economic growth ?

5 "हम आर्थिक विकास की परिभाषा एक प्रक्रिया के रूप मे करेंगे जिससे कि किसी देश के प्रत्येक व्यक्ति की वास्तविक आय दीर्घकालीन अवधि मे बढ़ती है।" (मेयर) स्पष्ट कीजिए। (1975)

"We shall define economic development as the PROCESS whereby the REAL PER CAPITA INCOME of a country increases over a long period of time" (Meier) Elucidate

अध्याय 2

1 अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था के मुख्य लक्षण लिखिए। एक अर्द्ध-विकसित और एक विकसित राष्ट्र के आयोजन मे क्या भिन्नताएँ होती है ?

Critically examine the characteristic features of an undeveloped economy How economic planning in an under developed country differs from that of a developed country ?

2 आप की राय में भारत जैसे अल्प-विकसित देश के आर्थिक विकास में कौनसी मुख्य बाधा है पूँजी की कमी, तकनीकी परिवर्तन और अभिनवीकरण प्रक्रिया की धीमी दर अथवा उपयुक्त संस्थागत और सामाजिक ढाँचे का अभाव ? उदाहरण दीजिए। (1972)
What would you consider the main barrier to economic development of a less developed country such as India paucity of capital, slow rate of technological change and innovation or absence of an appropriate institutional and social structure ? Give illustrations.

3 अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था की क्या विशेषताएँ हैं ? ऐसी अर्थव्यवस्था में आधारभूत समस्याएँ क्या होती हैं ? इनकी विवेचना भारत के सन्दर्भ में करो। (1973)
What are the main characteristics of an under-developed economy ? What are the basic problems to planning in such an economy? Discuss them with reference to India

4 "अल्पविकसित देशों से सम्बन्धित आँकड़ों एवं वर्णनात्मक जानकारी का अध्ययन करने से प्रकट होता है कि राष्ट्रीय निर्धनता एवं देश की अर्थव्यवस्था के अन्य लक्षणों में अवश्य ही सहसम्बन्ध है।" (हिगिंस) ये अन्य लक्षण क्या हैं ? (1974)
"Examination of stastics and descriptive information pertaining to under-developed countries reveals that there is indeed a correlation between national proverty and other features of the country's economic and social organization" (Higgins) What are these other features ?

5 विकसित, अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में उसके आर्थिक विकास की दशाओं में क्या अन्तर पाया जाता है ? प्रत्येक का उपयुक्त उदाहरण देते हुए समझाइए।
Describe low states of economic development in developed, undeveloped and under-developed countries differ from one another, giving suitable examples of each

6 अर्द्ध विकसित देशों की समस्याओं की परीक्षा कीजिए।
Examine the problems of under-developed countries

7 "आर्थिक प्रगति की वास्तविक आधारभूत समस्याएँ गैर-आर्थिक हैं।" विवेचना कीजिए।
"The really fundamental problems of economic development are non-economic". Comment

अध्याय 3

1 विकास के अन्तर्गत सरचनात्मक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ? उत्पादन के सगठन में परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
What do you understand by 'structural changes under development' ? Explain changes in the composition of production.

2 विकास के अन्तर्गत सरचनात्मक परिवर्तन को समझाते हुए उपभोग में परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
Explain 'Structural changes under development" and show how do you understand by the changes in consumption

3 रोजगार निवेश और व्यापार के सगठन में विकास के दौरान सरचनात्मक परिवर्तन की विवेचना कीजिए।
Discuss the structural changes in the composition of employment, investment and trade

4 'आधुनिक युग में, मुख्य सरचनात्मक परिवर्तनों का लक्ष्य कृषि मदों के स्थान पर औद्योगिक मदों का उत्पादन (औद्योगीकरण की प्रक्रिया), ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में जनसख्या वितरण

5 रोस्टव के आर्थिक विकास की अवस्थाओं के सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिए तथा इसकी सीमाएँ बताइए।
Elucidate Rostow's Theory of economic growth and point out its limitations

6 स्वचालित विकास क्या है ? इसकी क्या सीमाएँ हैं ?
What is self sustained growth ? What are its problems ?

7 आर्थिक वृद्धि की परिभाषा दीजिए। रोस्टव के अनुसार आर्थिक वृद्धि के विभिन्न काल क्या हैं?
Define Economic growth ? What are according to Rostow the different stages of economic growth ?

8 आर्थिक विकास की पूर्व आवश्यकताएँ क्या हैं ? आर्थिक विकास के अध्ययन ने आधुनिक समय में विशेष महत्त्व क्यों प्राप्त किए हैं ?
What are the pre requisites of economic growth ? Why has the study of economic growth assumed special importance in modern times ?

9 "आर्थिक विकास कोई जादू नहीं है वह एक निश्चित गणित पर आधारित होना चाहिए।" भारतीय अनुभव के आधार पर टिप्पणी कीजिए।
'*Economic development is not a miracle It is based on a definite arithmatic*' Comment in the light of Indian experience

10 विकास दर के विभिन्न तत्त्वों के योगदान पर डेनिसन के विश्लेषण का विवरण दीजिए।
Examine Denison s estimates of the contribution of different factors to the growth rate

अध्याय 5

1 आर्थिक विकास का विश्लेषण कीजिए और महत्त्वपूर्ण मॉडलों को बताइए।
Analyse economic growth and point out important growth models

2 आर्थिक विकास के लेविस माडल की परीक्षा कीजिए।
Examine Lewis Model of economic growth

3 लेविस के असीमित श्रम पूर्ति के वृद्धि-सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। बताइए कि अल्प विकसित देशों में असीमित श्रम पूर्ति के द्वारा पूँजी निर्माण सम्भव भी है और लाभदायक भी।
Discuss Lewis theory of growth with unlimited labour supply Do you agree that Capital formation with unlimited supplies of labour is possible and projectable in under developed countries ?

4 हैराड डोमर माडल स्वय मे विश्लेषण का एक अधूरा और काम चलाऊ साधन है और इससे बहुत अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। (सु चक्रवर्ती) अल्पविकसित देशों के लिए नीति सम्बन्धी तत्त्वों की दृष्टि से हैराड-डामर माडल की सगतता एव सीमाओं को समझाइए।

या

असीमित श्रम पूर्ति की परिस्थिति में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निरूपित कीजिए।

(1974, 75)

Harrod-Domar Model is 'a very rough tool in itself and not too much should be expected from it '(S Chakravarty) Explain the relevance and limitations of Harrod—Domar model in relation to its policy implications for under-developed countries

OR

Outline the process of economic development under conditions of unlimited labour supply

5 हैराड-डोमर के आर्थिक वृद्धि के विश्लेषण के प्रमुख अंश स्पष्ट कीजिए। इसके व्यावहारिक प्रयोग की विवेचना कीजिए।
Explain the main point of Harrod—Domar analysis of economic growth Discuss its practical application

6 अल्पविकसित देशों की आर्थिक विकास की समस्या के लिए हैराड डोमर विश्लेषण के महत्त्व का विवेचन कीजिए।
Discuss the significance of Harrod—Domar analysis for the problem of economic development of under developed countries

7 महालनोबिस के आर्थिक वृद्धि के मॉडल पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on The Mahalanobis Model of economic growth

8 महालनोबिस के नियोजित विकास के मॉडल की व्याख्या कीजिए। महालनोबिस के आर्थिक वृद्धि के सकार्य मॉडल के मुख्य दोष क्या हैं ?
Explain the Mahalanobis Model of planned development What are the important flaws in the operational model of economic growth by Mahalanobis ?

9 उस सैद्धान्तिक ढाँचे को पूरी तरह समझाइए और उसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए जो कि भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना का आधार था। (1975)
Explain fully and evaluate critically the theoritical framework which formed basis of India's Second Five-year Plan

अध्याय 6–9

1 'आर्थिक विकास के लिए नियोजन' पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on "Planning for Economic Development"

2 एक नियोजन अर्थव्यवस्था के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
Criticially examine the agreements advanced for and against a planned economy

3 नियोजित अर्थव्यवस्था मुक्त अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठतर क्यों मानी जाती है? विवेचना कीजिए।
Why is Planned economy' considered superior to Free enterprise—economy ? Discuss fully

4 बचत दर को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
Discuss the factors affecting the saving rate

5 सम्पूर्ण विकास दर को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
Discuss the factors affecting the over-all growth rate

6 "विकास योजना केवल एक हद तक अर्थशास्त्रीय कला है, एक महत्त्वपूर्ण हद तक यह राजनैतिक समझौते का प्रयोग है।" (लुइस) व्याख्या कीजिए। (1974)
"Development planning is only in part an economic art, to an important extent it is also an exercise in political compromise" (Lewis) Elucidate

7 किसी विकास योजना में वृद्धि दर किस प्रकार निर्धारित की जाती है ? वृद्धि दर को परिसीमित करने वाले तत्त्व कौन-कौन से हैं ? पूरी तरह समझाइए। (1974)
How is the rate of growth determined in a development-plan ? What are the constraints on the rate of growth ? Explain fully

8 साधनों की गतिशीलता से आप क्या समझते हैं ? गतिशीलता को निर्धारित करने वाले कारणों की विवेचना कीजिए।
What do you understand by Resource Mobilisation'

9 आन्तरिक साधनों और बाह्य साधनो के विभिन्न रूपो की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
Critically examine the various forms of internal reasons and external resources

10 'योजना के लिए वित्तीय साधनों की गतिशीलता' पर निबन्ध लिखिए।
Write an essay on "Mobilisation of Financial Resources."

11 उपभोक्ता वस्तुओ और मध्यवर्ती वस्तुओ के लिए मांग के अनुमान से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिए।
What do you understand by the demand projections for consumptions goods and intermediate goods ? Explain fully

12 मांग के अनुमानो मे आदा-प्रदा गुणांको के उपयोग को समझाइए।
Explain the use of the input-output co-efficients

13 बताइए कि आदा-प्रदा विश्लेषण की तकनीक कुशल आर्थिक नियोजन के लिए कहाँ तक ग्रहणीय है ? क्या भारत मे इस तकनीक के प्रयोग मे कोई व्यावहारिक कठिनाइयां हैं ?
Discuss how far the technique of input-output analysis is adoptable for efficient economic planning–Are there any practical difficulties in applying this technique in India ?

अध्याय 10-16

1 विभिन्न क्षेत्रो के सन्तुलित उत्पादन लक्ष्य निर्धारित करने की विधि समझाइए। असन्तुलित विकास के पक्ष मे क्या तक हैं ? (1973)
Explain the method of determining balanced growth targets for different sectors What are the arguments for unbalanced growth ?

2 आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए विनियोग के अन्तर-क्षेत्रीय आवटन के महत्त्व का विश्लेषण कीजिए। इस सम्बन्ध मे बचत की सर्वोत्तम दर की धारणा की विवेचना कीजिए।
Analyse the significance of inter-sector allocation of investment for promoting economic growth Discuss in this connection the concept of the 'Optimum' rate of savings

3 वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनके अनुरूप विनियोग करने योग्य कोषो को एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों म वितरण करना चाहिए ?
What are the principles in accordance with which investable funds should be distributed among the various sectors of a planned economy ?

4 एक योजना बनाते समय कुल विनियोग का क्षेत्रीय आवटन आप कैसे निश्चित करेंगे। (1973, 75)
How would you determine the sectoral allocation of investment in making a plan ?

5 किसी योजना मे विनियोग की प्राथमिकताओ और तरीके का निश्चय करने मे किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए ? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि भारतीय योजना निर्माताओ ने भारी और पूँजीगत उद्योगो, शक्ति तथा यातायात को बहुत अधिक ऊँची प्राथमिकता दी है तथा सामाजिक सेवाओं को बहुत कम प्राथमिकता दी है।
What considerations should be kept in view in deciding the priorities and pattern of investment in a plan ? Do you think that Indian planners have given too much high priority to heavy and capital goods industries, power and transport and too low priority to social services ?

6 अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास की योजनाओ मे प्राथमिकता के निर्धारण के मानदड की विवेचना कीजिए।
Discuss the criteria for determination of priorities in plans for the economic development of developed countries

7 एक अर्द्ध-विकसित देश के आर्थिक विकास में 'विनियोग चुनावों और व्यूह रचनाओं' पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on 'Investment Choices and Strategies" in the economic developments of an under developed country

8 'उत्पादन लक्ष्यों के निर्धारण' पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on Determination of out put Targets"

9 'विनियोग विकल्प की आवश्यकता' की व्याख्या कीजिए। अर्द्ध-विकसित देशों की विनियोजन सम्बन्धी विशिष्ट समस्याएँ क्या हैं ?
Explain Need for Investment choice' What are special investment problems in under developed countries ?

10 'विनियोग मानदण्ड' और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की विवेचना कीजिए।
Discuss Investment Criterion' and its practical utility

11 बाजार यन्त्र के अभाव में एक समाजवादी अर्थ व्यवस्था में विभिन्न उद्योगों के बीच साधनों के आवटन का निर्धारण किस प्रकार होता है ? क्या इस मामले में सन्तुलनकारी दशाएँ उन दशाओं से आधारभूत रूप में भिन्न होती हैं जो एक प्रतियोगी पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में पायी जाती हैं ?
How is the allocation of resources between different uses determined in a socialist economy in the absence of a market machanism ? Are the equilibrium conditions in this case basicallydifferent from those in a competitive capitalist economy ?

12 अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास को वित्तीय प्रबन्ध देने वाले विभिन्न तरीकों का वर्णन कीजिए। क्या आप एक नियोजित अर्थ व्यवस्था में हीनार्थ प्रबन्धन को अनिवार्य मानते हैं ?
Describe the various methods of financing development in under-developed countries Do you consider deficit financing in a planned economy

13 ऐसा क्योंकर है कि अनेक अर्द्ध विकसित देशों के मूल्य-स्तर में अत्यधिक वृद्धि भी छिपे स्रोतों को समुचित रूप से गतिशील बनाने में असफल रही है ? पूर्ति-लोच में सुधार के लिए राज्य द्वारा क्या कदम उठाए जा सकते हैं ?
How is it that even a tremendous rise in the price level of many under-developed countries has failed to mobilize adequately the hidden resources? What steps can be taken by the state to improve the supply elasticity?

14 किसी देश को किन आधारों पर अपने दुर्लभ साधनों का विभिन्न उद्योगों में वितरण करना चाहिए ?
On what basis should a country distribute its scarce resources among different industries ?

15 भारत में लोक क्षेत्र की क्या मूल समस्या है ? इसे अधिक लाभपूर्ण बनाने के उपाय सुझाइए।
What are the basic problems of the public sector in India ? Suggest measures for improving its profitability

16 एक दृष्टिकोण यह है कि नियन्त्रित मूल्य व्यवस्था कीमतों को नीचा रखने तथा अधिक लाभों को रोकने के अपने दोनों मुख्य उद्देश्यों में अधिकांशतः स्वयं असफल रहती है। क्या हाल ही का भारतीय अनुभव इसे सिद्ध करता है ?
There is a point of view that a controlled price system is largely self defeating in two of this Principal objectives keeping costs low & preventing excess profits Does recent Indian experience bear this out ?

17 टिप्पणी लिखिए—
(अ) बढ़ते हुए मूल्यों के दुष्प्रभाव।
(ब) तृतीय योजना की मूल्य नीति।

Write a note on :—
(a) Implications of rising prices
(b) Price policy for the Third Plan

18 "मूल्य केवल साधनो का आवटन ही नही करते आय के वितरण का निर्धारण भी करते हैं।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? इस कथन के प्रकाश मे उस कृषि मूल्य नीति का पुनर्मूल्यांकन कीजिए जो देश मे हाल ही के वर्षों मे अपनाई गई है।
"Price not only allocate resources they also determine the distribution of incomes" Do you agree ? In the light of this statement review the Agricultural price policy pursued in the country in recent years

19 एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-नीति के विशिष्ट लक्षणो को बताइए।
Mention the salient features of price policy in a developing economy

20 एक नियोजित विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य नीति के विभिन्न मुख्य सिद्धान्तों को लिखिए।
Write the various principles of price policy in a planned developing economy

21 व्यष्टिवादी और समष्टिवादी अध्ययन से क्या अभिप्राय है ? एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-नीति मे व्यष्टिवादी और समष्टिवादी पहलुओ को स्पष्ट कीजिए।
What is meant by micro and macro studies ? Mention clearly the micro and macro aspects in price policy in a developing economy

22 मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-नीति के सिद्धान्तो की विवेचना कीजिए।
Discuss the principles of price policy in a mixed economy

23 'मूल्य-नीति और पदार्थ-नियन्त्रण' पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on "Price Policy and Commodity Control"

24 विदेशी-विनिमय की महत्ता और आवश्यकता की विवेचना कीजिए।
Discuss importance and necessity of foreign exchange

25 भारतीय नियोजन मे विदेशी विनिमय के आवटन की परीक्षा कीजिए।
Examine allocation of Foreign exchange in Indian planning

26 उपयुक्त सख्यात्मक उदाहरण की सहायता से समझाइए कि आप किसी योजना का वित्तीय सगति की दृष्टि से परीक्षण कैसे करेंगे। (1974)
Explain with the help of suitable illustrations, how you will test a plan for financial consistency

27 सकल लाभदायक विश्लेषण को सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण मे बदलने के लिए कौन से सुधार आवश्यक हैं ? (1974)
What modifications must be made to turn gross profitability analysis into a social cost-benefit analysis ?

Miscellaneous

1 "आर्थिक विकास बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियो, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक सयोगो से सम्बन्ध रखता है।" विवेचना कीजिए।
"Economic development has much to do with human endowments, social attitudes, political conditions and historical accidends" Discuss

2 "यदि बचाना चाहे, तो कोई राष्ट्र इतना दरिद्र नही होता कि अपनी राष्ट्रीय आय का 12 प्रतिशत न बचा सके, दरिद्रता ने राष्ट्रो को युद्धो का सूत्रपात करने से अथवा दूसरी तरह अपनी सम्पत्ति लुटाने से कभी नही रोका है।" व्याख्या कीजिए।
"No nation is so poor that it could not save 12% of its national income if it wanted to poverty has never prevented nations from launching upon wars or from wasting their substances in other ways," Discuss.

3 प्रदर्शनकारी प्रभाव से आप क्या समझते हैं ? यह अल्पविकसित देशों मे पूँजी-निर्माण पर कैसे बुरा प्रभाव डालता है ?
What do you mean by the demonstration effect ? How it affects adversely capital formation in under-developed countries ?

4 इस बात की जाँच कैसे की जा सकती है कि प्रस्तावित वृद्धि-दर के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नही ? (1975)
How can one check whether the required funds are available to finance the postulated rate of growth ?

5 "राजनीतिक दृष्टि से कर लगाने के स्थान पर मुद्रा-स्फीति आरम्भ करना आसान हो सकता है लेकिन मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण करने, उसकी उपादेयता अधिक से अधिक करने और उसकी हानियाँ कम से कम करने के लिए आवश्यक उपाय निर्धारित और लागू करना करो मे वृद्धि से अधिक आसान नही है।" (लुइस) समझाइए। (1975)
"It may be easier politically to start an inflation than to tax but the measures which control inflation, maximize its usefulness and minimize its advantage are no easier to adopt or administer than would be an increase in taxation " (Lewis)

6 "अनेक कारणो से लाभ कई बार किसी प्रयोजना के सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति मे योगदान को नापने का ठीक पैमाना नही हो सकता। लेकिन लाभ को इस स्थिति से विस्थापित करना हो तो निर्णय के लिए कोई अन्य आधार उसके स्थान पर स्थापित करना होगा।" (लिटल और मिरलीज)। यह अन्य आधार क्या है ? उसकी मुख्य विशेषताएँ समझाइए। (1975)
"There are many reasons why profits may not be a very good measure of a projet's contribution to social ends......... But if profits are to dethroned some other guide to decision making must be put in their place " (Little Mirrlees) What is other guide ? Explain its salient Features

7 लीबन्स्टीन के 'क्रान्तिक-न्यूनतम प्रयत्न' सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। 'प्रबल प्रयास' सिद्धान्त और इस सिद्धान्त मे क्या अन्तर है ?
Discuss Liebenstein's "Critical Minimum Thesis' What is the difference between this theory and the 'Big Push' theory ?

8 आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर हर्षमैन के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
Discuss Hirchman's approach to the theory of development

9 'सन्तुलित विकास' पर नर्क्स और लेविस के विचारो के विशेष सन्दर्भ मे प्रकाश डालिए।
Elucidate the concept of 'Balanced Growth' with special reference to Nurkse and Lewis

10 आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर मिन्ट के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।
Examine Myint's approach to the theory of development

11 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
(अ) निर्धनता का दुश्चक्र।
(ब) सन्तुलित विकास।
(स) श्रम गहन बनाम पूँजी-गहन तकनीकें।
(द) भारत मे मानवीय शक्ति का नियोजन।
Write notes on the following :—
(a) Vicious Circle of Poverty.
(b) Balanced Growth
(c) Labour-intensive v/s Capital-intensive Techniques
(d) Man Power Planning in India

खण्ड-2. भारत में आर्थिक नियोजन

अध्याय 1 से 7

1 स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में आर्थिक नियोजन के विचार की मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में पुनः निरीक्षण कीजिए।
Briefly review the main trends of thought on economic planning in India before Independence

2 भारत में आर्थिक नियोजन के विकास को बतलाइए।
Trace the evolution of economic planning in India.

3 भारत की द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों तथा उपलब्धियों की तुलना कीजिए और उनमें अन्तर कीजिए। (1969)
Compare and contrast the objectives and the achievements of India's Second and Third Five Year Plans

4 तृतीय योजनावधि में भारतीय अर्थ व्यवस्था की धीमी प्रगति के कारणों पर प्रकाश डालिए। (1968)
Account for the slow growth of India's economy during the Third Plan Period

5 प्रथम तीन योजनाओं के उद्देश्यों, लक्ष्यों, वित्तीय स्रोतों और दोषों तथा उपलब्धियों को बताइए।
Point out the objectives, targets, resources and defects and achievements of the First Three Plans

6 भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियों और कठिनाइयों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (1967, 69)
Examine critically the achievements and difficulties of India's Third Five Year Plan.

7 चतुर्थ योजना पिछली योजनाओं से किन अर्थों में भिन्न थी? इस योजना की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
In what way the Fourth Plan was different from previous plans? Critically examine the Fourth Plan.

8 भारत में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना काल में वित्त साधनों की व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए। ऐसे कौन से वित्त साधन स्रोत हैं जिनका अभी उपयोग नहीं किया गया है? (1973)
Make an appraisal of resources mobilisation during the Fourth Five Year Plan in India What are the main sources of additional development funds which have not been utilised so far?

9 चतुर्थ योजना के उद्देश्य, लक्ष्य एवं वित्तीय साधनों की संक्षेप में आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
Critically examine the objectives targets and resources of the Fourth Five Year Plan

10 तृतीय व चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग के आवटन पर संक्षेप में मत व्यक्त कीजिए। (1975)
Comment briefly on the allocation of investment funds in the Third and Fourth Five Year Plans

11 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और पूंजी लगाव के ढंग का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
Briefly explain the targets and capital outlay of the Fourth Five Year Plan.

12 चार पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय आवंटन का सिंहावलोकन कीजिए। इससे आर्थिक विकास के गतिवर्द्धन में किस सीमा तक मदद मिली है? (1974)
Review the sectoral allocation in the Four Five Year Plans How far has it been helpful in accelerating the pace of economic development?

13 बचत बढ़ाने के प्रयत्नों में एक बड़ा प्रयत्न सार्वजनिक बचत की दर बढ़ाने का होना चाहिए (चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन)। इस मत की पुष्टि करने वाले तर्क समझाइए और यह बताइए कि यह कार्यनीति कहाँ तक सफल रही है। (1975)
"A major thrust of savings efforts must be towards raising the rate of public savings" (Mid-term Appraised of the Fourth Plan) Explain the arguments which substantiate this view and state how far this strategy has been successful

14 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में 'विकास बचत एवं विनियोग-दरें—नियोजित तथा वास्तव में प्राप्त' की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
Critically examine the growth rates and saving (investment) rates planned and achieved in the first three Five Year Plans

15 प्रथम तीन योजनाओं में वित्तीय आवंटन की परीक्षा कीजिए।
Critically examine the financial allocation in the first three Five Year Plans

16 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय लक्ष्यों की विवेचना कीजिए।
Discuss the sectrol targets in the first three Five Year Plans

17 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।
Discuss the achievements of the first three plans

18 'निर्धनता पर विशेष असर डाल सकने में योजना की असफलता का एक कारण अपर्याप्त वृद्धि दर रही है।' (एप्रोच टू फिफ्थ प्लान) क्या आप सहमत हैं? योजना की पिछली दो दशाब्दियों के निर्धनता पर पड़े प्रभाव की विवेचना कीजिए और इस मामले में असफलता के कारण बताइए। (1974)
"One reason for the failure of planning to make a major dent on poverty has been the inadequate rate of growth" (Approach to the Fifth Plan) Do you agree? Discuss the impact that the last two decades of planning has had on the poverty in India and give reasons for our failure on this front

19 भारत में नियोजन आवंटनों पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on "Plan allocation in India

20 भारतीय योजनाओं में विनियोग वृद्धि के उपाय बतलाइए।
Suggest measures to increase investment in Indian plans

21 भारतीय नियोजन के सन्दर्भ में उत्पादकता सुधार के उपाय बतलाइए।
Suggest measures to improve productivity with reference to Indian Planning

22 "भारत में गत दो दशकों में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ" विषय पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।
Write a critical essay on "Economic Planning in India during the last two Decades"

23 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना' के प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिए। क्या आप इस योजना को पूर्ववर्ती योजनाओं की तुलना में अधिक अच्छा और व्यावहारिक समझते हैं?
Discuss the main features of the Fifth Five Year Plan Do you regard it more effective and practical in comparison to the previous plans?

24 भारतीय नियोजन जिस रूपरेखा पर आधारित है उसकी व्याख्या कीजिए तथा नियोजनतन्त्र की टैकनिक मे जो परिवर्तन हुए हैं उनकी व्याख्या कीजिए।
Explain the plan frame underlying plans in India and trace the developments in the techniques of plan formulation that have been introduced recently

अध्याय 8

1 भारत मे योजना निर्माण और क्रियान्वयन के लिए जो प्रशासन-तन्त्र है, उसका वर्णन कीजिए।
Describe the administrative machinery for plan formulation and implementation in India

2 भारतीय नियोजन आयोग को 'सुपर कैबिनेट' कहा गया है। क्या यह आलोचना सही है? नियोजन आयोग और कबिनट क मध्य आदर्श सम्बन्ध क्या होना चाहिए ?
India's Planning Commission has been described as a Super Cabinet Is this criticism correct ? What would be the ideal relationship between the planning Commission and the Cabinet

3 सक्षप म उस तरीक का उल्लख कीजिए जिसक अनुसार केन्द्र मे भारतीय योजना का निर्माण होता है। क्या आप राज्यो क लिए पृथक् नियोजन-आयोगों की स्थापना का समथन करेंग ?
Indicate briefly the manner in which the Indian plan at the centre is formulated Would you advocate establishment of separate Planning Commissions for the states

4 भारतीय योजना तन्त्र मे क्या दोष हैं ? इन दोषो को दूर करने हेतु सुझाव दीजिए।
What are the defects of Ind an Planning Machinery ? Give suggestions for the removal of these defects

5 केन्द्रीय तथा प्रादेशिक प्रशासनो क (अ) योजना बनाने तथा (ब) उन्हे कार्यान्वित करने के सापेक्ष काय बताइए।
वतमान व्यवस्था मे आप किन सुधारो का सुझाव देंगे ? (1973)
Discuss he relative roles of the Union and state Government in the formulation and implementatino of plans in India What improvements would you suggest in the existing relationship

अध्याय 9 एवं 10

1 भारत मे गरीबी की समस्या का रूपांकन कीजिए। (1975)
Delineate the problem of poverty in India

2 भारत मे गरीबी एव असमानता क लिए हरित क्रान्ति के निहितार्थों पर विचार कीजिए। (1975)
Discuss the implications of Green Revolution" for poverty and inequality in India

3 चौथी योजना मे अधिकाधिक रोजगार-अवसर पैदा करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। इस दिशा मे कौन से कदम उठाए गए और उनमे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई। (1972)
The Fourth Plan has laid emphasis on the need for generating more and more employment opportunities What steps have so far been taken and with what success to achieve this orientation ?

4 रोजगार क क्षेत्र मे पचवर्षीय योजनाओ की उपलब्धियो का आंकलन कीजिए। (1974)
Asses the achievements of Five Year Plans in respects of employment

5 भारत मे बेरोजगारी की समस्या की प्रकृति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए। आप रोजगार नीतियों के सन्दर्भ में क्या सुझाव देंगे।
Write a critical essay on the nature of unemployment problem in India What would you like to suggest regarding the employment policies ?

अध्याय 11

1 राजस्थान में औद्योगीकरण की प्रगति का वर्णन कीजिए। इसकी गति बढाने के सुझाव दीजिए।
Discust the progress of industrialisation in Rajasthan Suggest measures for its acceleration

2 राजस्थान की अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कीजिए। क्या आप राजस्थान के सन्तुलित विकास के लिए उपाय सुझाएंगे ?
Discuss different aspects of Rajasthan's Economy. What measures would you suggest for her balanced development

3 राजस्थान की पचवर्षीय योजनाओ की उपलब्धियो की विवेचना करो। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के विकास मे इन्होंने क्या योगदान दिया है ? (1973)
Discuss the achievements of Rajasthan's Five Year Plans What has been the contribution of the public sector industries to the development of the state ?

4 "राजस्थान की आर्थिक विकास योजनाओं मे औद्योगिक विकास की सर्वथा उपेक्षा की गई है।" क्या आप इस आरोप को ठीक मानते हैं ? अपने उत्तर के कारण बताइए। (1972)
"Industrial development has been grossly neglected in the development plans for Rajasthan " Would you agree with this charge ? Give reasons for your answer

5 राजस्थान की पचवर्षीय योजनाएँ अधिकतर आर्थिक ऊपरी ढांचा बनाने में लगी रही हैं।" आप इस पर बल देने को कहाँ तक उपयुक्त मानते है ? (1972)
"Rajasthan's Five Year Plans have been largely concerned with the creation of economic overheads " How far do you think that this emphasis was justified

6 राजस्थान मे योजना की दो दशाब्दियों की उपलब्धियो की विवेचना कीजिए। (1974)
Discuss the achievements of the two decades of planning in Rajasthan

7 राजस्थान की तृतीय एव चतुर्थ पचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओ का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1974)
Give a critical appraisal of the priorities in Rajasthan's Third and Fourth Five Year Plans

8 राजस्थान की तीसरी व चौथी पचवर्षीय योजनाओ के क्षेत्रीय आवटन का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (1975)
Critically evaluate the sectoral allocation in the Third and Fourth Five Year Plans of Rajasthan.

9 पचवर्षीय योजनाओं के दौरान राजस्थान मे कृषि सुधार के प्रयत्नो का वर्णन कीजिए। (1975)
Describe the efforts for agricultural improvement made in Rajasthan during the Five Year Plans

Appendix—17

ग्रन्थ-कोश
(BOOK BANK)

खण्ड-1

1. *Agrawala & Singh (Eds)* : Economics of Under-development
2. *Adelman* : Theories of Economic Growth and Development.
3. *Bright Singh, D.* : Economics of Development
4 *Bauer, P. T. and Yamey, B. S.* The Economics of Under-Developed Countries.
5 *Baljeet Singh and V.B. Singh* : Social and Economic Change.
6. *Bonne, Alfred* : Studies in Economic Development.
7. *Baran, Paul* : The Political Economy of Growth.
8 *Baumol* : Economic Dynamics.
9 *Chakrawarti, S* : Logic of Investment Planning
10 *Coale and Hoover* : Population and Economic Development in Low Income Countries.
11 *Domar, Evsey* : Essays in the Theory of Economic Growth
12 *Das, Nabagopal* : The Public Sector in India
13 *Durbin, E. F. M* . Problems of Economic Planning
14 *Edward, F Denison* : Sources of Post War Growth in Nine Western Countries
15 Five Year Plans.
16 Five Year Plans of Rajasthan
17 *Gupta, K. R.* : *Economics of Development.*
18. *Ghosh, Alak* : New Horizons in Planning.
19 *Higgins, B* : Economic Development.
20. *Hirschman, A. O* : The Strategy of Economic Development.
21. *Harrod, R F* : Towards Dynamic Economics.
22. *Hoselitz, B F* . Theories of Stages of Economic Growth.
23. *Hoselitz, Berl, F* Sociological Aspect of Economic Growth.
24 *Hanson, A. H* : Public Enterprise and Economic Development
25 *Heyek, F. A.* : Collectivist Economic Planning.
26 *Hussian, I Z* Economic Factors in Economic Growth.
27. *Henderson, P. D* · Investment Criteria for Public Enterprises in Public Enterprises edited by R Turvey.

28 *Jacob Viner*	Economics of Development
29 *Kaldor, N*	Essays of Economic Stability and Growth
30 *Kalecki*	Theory of Economic Dynamics
31 *Kindleberger, C P*	Economic Development
32 *Leibenstein, Harvey*	Economic Backwardness and Economic Growth
33 *Lewis W A*	• The Theory of Economic Growth.
34 *Lewis W A*	Development Planning
35 *Lester, W A*	The Theory of Economic Growth,
36 *Little and Mirrless*	Social Cost-Benifit Analysis
37. *Mishan, E J*	Cost Benifit Analysis
38 *Meier G M and Baldwin, R E*	Economic Development
39 *Meir G*	Leading Issues in Development Economics
40 *Myrdal Gunnar*	Economic Theory and Under-developed Regions
41 *Mehta, J K*	Economics of Growth
42 *Meade, J E A*	: A Neo classical Theory of Economic Growth
43 *Marx Black (Ed)*	The Social Theories of Talcott Parsons
44 *Nag D S*	Problems of Under developed Economy
45 *Nurkse, Ragner*	Some Problems of Capital Formation in Under developed Countries
46 *Neaer's Paper*	Price Policy and Economic Growth
47 Publication U N	Measures for the Economic Development of Under developed Country
48 Publication U N	Development Decads
49 Publication, U N	Determinants and Consequences of Population Trende
50 *Rostow, W W*	The Process of Economic Growth
51 *Robinson*	: (i) Exercises in Economic Analysis (ii) The Accumlation of Capital (iii) An Essay on Marxian Economics
52 *Reddaway*	The Develpment of the Indian Economy
53 *Singh V B*	Theories of Economic Development
54 *Stanely Bober*	The Economics of Cycles and Growth
55 *Simon Kuznets*	Economic Growth and Income Inequality
56 *Steiner G A*	. Government s Role in Economic Life
57 *Seth, M L*	Theory and Practice of Economic Planning
58 *Sen, A K*	The Choice of Techniques
59 *Singh, V B.*	Essays in Indian Political Economy
60 *Simon Kuznets*	Six Lectures on Economic Growth

61. *Simon Kuznets* : Modern Economic Growth.
62 *Tinbergen J.* : The Design of Development.
63. *Ursulla Kicks* · Learing about Economic Development.
64 U. N. Startistical Year Book.
65. U N Economic Survey of Asia and Far East.
66 *V K R V Rao* : Essays in Economic Development.
67. World Economic Survey
68. *Williamson, H F and Buttrick J A* : Economic Development-Principles & Patterns
69 आर्थिक समीक्षा, 1975–76.
70 योजना
71 भारत 1975,76 (Eng)

खण्ड–2

1. *Bhagwati, Jagdish & Desai Padma* : Indian Planning for Industrialisation.
2. *Bhattacharya K. N.* : Indian Plans
3 *Bhattacharya, K N* : India's Fourth Plan, Test in Growthmanship.
4. *Brij Kishore and Singh, B P* : Indian Economy through the Plans
5 *Chatterji, Amiya* : The Central Financing of State Plans in the Indian Federation
6 *Gadgil D R.* : Planning and Economic Policy in India.
7 Indian Planning Commission : Basis Statistics Relating to Indian Economy 1950–51 to 1968-69.
8 Indian Planning Commission : Five Year Plans
9 Indian Planning Commission : Fourth Plan : Mid-term Appraisal.
10 Indian Planning Commission : Draft Fifth Five Year Plan, 1974-79.
11 *Iyengar, S K* · Fifteen Years of Democratic Planning
12 India 1974, 1975, 1976
13 *Mehta, Asoka* : Economic Planning in India.
14 *Maleubaulm* : The Crisis of Indian Planning.
15 *Paranjape, H K.* : Re-organised Planning Commission.
16 Planning Depts Govt. of Rajasthan · Five Year Plans (Rajasthan)
17 Planning Depts Govt. of Rajasthan : Draft—Fifth Five Year Plan, 1974-79.

18 *Venkatasubbiah* Anotomy of Indian Planning
Hiranyappa
19 The Economic Times
20 योजना
21 राजस्थान विवरण
22 हिन्दुस्तान
23 साप्ताहिक हिन्दुस्तान
24 राजस्थान आय व्ययक अध्ययन, 1970-77
25 भारत सरकार योजना मन्त्रालय रिपोर्ट 1975 76